आचार्य भिक्षु

धर्म-परिवार

जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के अवसर पर

आचार्य भिक्षु

धर्म-परिवार

श्रीचन्द रामपुरिया

जैन विश्व भारती

लाडनूं (राजस्थान)

अर्हम्

आशीर्वचन

आचार्य भिक्षु का व्यक्तित्व विराट् था। उस आभामडित व्यक्तित्व का दर्शन करने वाला मुग्ध हो जाता था। वही मुग्ध-मानस की कहानी प्रस्तुत ग्रथ मे उपलब्ध है। इसे प्रस्तुत करने वाले श्री रामपुरियाजी भक्त-हृदय व्यक्ति हे। आचार्य भिक्षु के प्रति उनके मन मे प्रगाढ श्रद्धा है। लेखन मे कोरी श्रद्धा और कोरा तर्क—ये दोनो ही अपर्याप्त होते है। पर्याप्तता श्रद्धा और तर्क दोनो के समन्वय से प्राप्त होती है।

श्री रामपुरियाजी ने आचार्य भिक्षु की जीवन-कथा वडी श्रद्धा के साथ लिखी है। किन्तु साथ-साथ उनकी तार्किक कसौटी भी की है।

ऐतिहासिक दृष्टि से लिखी हुई यह जीवन-कथा सामग्री और सकलन की दृष्टि से वहुत महत्त्वपूर्ण है। 'आचार्य सत भीखणजी' रामपुरियाजी की छोटी कृति है। यह उसकी तुलना मे वहुत विशाल है। इसके प्रथम खड मे जीवन-कथा और दूसरे खड मे उनके धर्म-परिवार की विशद् जानकारी है।

इस ग्रथ के अध्ययन से पता चलता है कि लेखक ने वर्पो तक कठोर श्रम किया है। अनेक स्रोतो से मामग्री का सचयन कर, उसकी समीक्षा कर, कुछ निष्कर्प निकाले है। इसे पढ जनता आचार्य भिक्षु के वारे मे वहुमुखी ज्ञान प्राप्त कर सकेगी।

कुछ पुनरुक्तियो, लवे-चौडे उद्धरणो और कुछ प्रसगो का समावेश इसमे नही होता, तो यह और अधिक सुन्दर हो जाता। इनके होने पर भी ग्रथ के महत्त्व का कम अकन नही किया जा सकता। लेखक के श्रम की प्रत्येक वूद के लिए साधुवाद ही दिया जा सकता है।

जयाचार्य के इप्ट थे आचार्य भिक्षु। जयाचार्य की निर्वाण शताव्दी पर आचार्य भिक्षु की जीवन-कथा का प्रस्तुत होना एक अनिवार्य करणीय की पूर्ति है। जयाचार्य के विद्या-गुरु मुनि हेमराजजी की जीवन-गाथा भी इसमे समाहित है। यह और महत्त्वपूर्ण वात है। मुझे आशा है यह ग्रथ अपनी उपयोगिता स्वत प्रमाणित करेगा।

—आचार्य तुलसी

अणुव्रत भवन
२१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली

प्रकाशकीय

श्री जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह के अवसर पर जैन विश्व भारती के एक सामयिक प्रकाशन के रूप मे 'आचार्य भिक्षु : धर्म-परिवार' नामक ग्रन्थ जनता के हाथो मे सौंपते हुए बड़े हर्ष का अनुभव हो रहा है।

श्रीमज्जयाचार्य का जन्म नाम जीतमलजी था। आपने अपनी कृतियो मे अपना उपनाम 'जय' रक्खा, इसलिए आप जयाचार्य के नाम से प्रख्यात हुए। आप श्वेताम्बर तेरापथ धर्म सघ के चतुर्थ आचार्य थे।

श्रीमज्जयाचार्य की जन्म-भूमि मारवाड का रोयट ग्राम था। आपका जन्म स० १८६० की आश्विन शुक्ला १४ की रात्रि वेला मे हुआ था। आप ओसवाल थे। गोत्र से गोलछा थे। आपके पिता श्री का नाम आईदानजी गोलछा और मातुश्री का नाम कलूजी था। आप तीन भाई थे। दो बडे भाईयो के नाम सरूपचन्दजी और भीमराजजी थे।

आपके जेष्ठ भ्राता सरूपचन्दजी ने स० १८६९ की पौष शुक्ला ९ के दिन साधु-जीवन ग्रहण किया। आपने उसी वर्ष माघ कृष्णा ७ के दिन प्रव्रज्या ग्रहण की। दूसरे बडे भाई भीमराजजी की दीक्षा आपके बाद फाल्गुन कृष्णा ११ के दिन सम्पन्न हुई और उसी दिन माता कलूजी ने भी दीक्षा ग्रहण की। इस तरह स० १८६९ पौष शुक्ला ८ एव फाल्गुन कृष्णा १२ की पौने दो माह की अवधि मे माता सहित तीनो भाई द्वितीय आचार्यश्री भारमलजी के शासन-काल मे दीक्षित हुए।

साधु-जीवन ग्रहण करने के समय जयाचार्य नौ वर्ष के थे। दीक्षा के बाद आप शिक्षा के लिए मुनि हेमराजजी को सौंपे गए। वे ही आपके विद्या-गुरु रहे। आगे जाकर आप एक महान् आध्यात्मिक योगी, विश्रुत इतिहास-सृजक, विचक्षण साहित्य-स्रष्टा एव सहज प्रतिमा-सम्पन्न कवि सिद्ध हुए।

स० १९०८ माघ कृष्णा १४ के दिन तृतीत आचार्य ऋषिराय का छोटी रावलिया गांव मे देहान्त हुआ। आप चतुर्थ आचार्य हुए।

आचार्य ऋषिराय के देवलोक होने का समाचार माघ शुक्ला ८ के दिन बीदासर पहुचा, जहा युवाचार्य जीतमलजी विराज रहे थे। स० १९०८ माघ सुदी १५ प्रात काल पुष्य नक्षत्र के समय आप पदासीन हुए और बडे हर्ष के साथ पट्टोत्सव मनाया गया। आचार्य ऋषिराय ने ६७ साधुओ एव १४३ साध्वियो की धरोहर छोडी।

श्रीमज्जयाचार्य ने श्वेताम्बर तेरापंथ धर्म संघ के चतुर्थ आचार्य पद को ३० वर्षों तक सुशोभित किया। आपका निर्वाण सं० १९३८ की भाद्र कृष्णा १२ के दिन जयपुर में हुआ। सं० २०३८ भाद्र कृष्णा ११ के दिन आपको निर्वाण प्राप्त हुए १०० वर्ष पूरे हुए हैं।

श्रीमज्जयाचार्य ने अपने जीवन-काल में लगभग साढे तीन लाख पद्य-परिमाण साहित्य की रचना की। जैन वाङ्मय के पंचम अंग 'भगवई' का आपका राजस्थानी पद्यानुवाद 'भगवती-जोड' राजस्थानी साहित्य का सबसे बडा ग्रन्थ माना जाता है। यह ५०१ विविध रागिनियों में गेय गीतिकाओं में निबद्ध है।

श्रीमज्जयाचार्य की साहित्यिक रुचि बहुविध थी। तेरापंथ धर्म-संघ के संस्थापक आदि आचार्य श्रीमद् भिक्षु के बाद आपकी साहित्य-साधना बेजोड है। आप महान् तत्त्वज्ञानी थे। जन्मजात कुशल इतिहास-लेखक थे। सजीव संस्मरणात्मक जीवन-चरित्र लिखने की आपकी प्रवीणता अनोखी थी। आप बडे कुशल संघ-व्यवस्थापक और दूरदर्शी आचार्य थे। आपकी कृतियों का सौष्ठव, गाम्भीर्य एवं संगीतमयता—ये सब मनोमुग्धकारी हैं।

श्रीमज्जयाचार्य ने भिक्खु जश रसायण, खेतसी-चरित्र, ऋषिराय सुयश, हेम नवरसो, हेम चोढालियो, शासन विलास, सन्त गुण माला, सन्त गुण वर्णन, सती गुण वर्णन, गणि गुण वर्णन, जिनशासन महिमा, भिक्खु दृष्टान्त, श्रावक दृष्टान्त, हेम दृष्टान्त, साधु दृष्टान्त आदि अमूल्य कृतियों तथा वैसी ही अन्य चारित्रिक कृतियों के द्वारा भिक्षु युगीन ही नहीं अपने युग तक के मूर्धन्य साधु-साध्वियों की जीवन-कथाओं को अमर जीवन देते हुए भावी पीढी को अमूल्य धरोहर छोडी है।

प्रस्तुत ग्रंथ में श्रीमज्जयाचार्य की छोटी-मोटी सारी कृतियों में, सहजतया अप्राप्त, सामग्री को उपलब्ध कर आचार्य भिक्षु-कालीन ४९ साधु और ५६ साध्वियों के जीवन-वृत्त को प्रामाणिक रूप में उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। उक्त सामग्री के अतिरिक्त लिखित तथा अन्य दुर्लभ स्रोतों से भी तथ्यों को उपस्थित करते हुए प्राचीन इतिहास को शृंखला-बद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

इसी प्रकार प्राचीन स्रोतों के आधार पर श्रावक-श्राविकाओं के विषय में यथाशक्य जानकारी दी है।

श्री जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह के अवसर पर मुख्यत जयाचार्य की कृतियों पर आधारित 'आचार्य भिक्षु : धर्म-परिवार' ग्रन्थ को जनता के सम्मुख उपस्थित करना एक सामयिक प्रकाशन माना जाएगा। संयम और तपोप्रधान भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के अनेक पहलुओं पर इस ग्रन्थ में नयी सामग्री प्राप्त हो पायेगी।

युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी ने अपने बहुमूल्य आशीर्वचन प्रदान करने की कृपा की तदर्थ हम कृतज्ञ हैं।

श्रीमज्जयाचार्य जैसे पुनीत पुरुष की निर्वाण शताब्दी के अवसर पर 'जय-वाङ्मय' एवं तत् सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित करने की विशाल योजना जैन विश्व भारती के सम्मुख है और हमें पूरा विश्वास है कि आप सबके सहयोग से यह संस्था उसे पूरा कर पाएगी।

श्रीमद् जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह के उपलक्ष में मित्र परिषद्, कलकत्ता ने जैन विश्व भारती प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना हेतु दो लाख रुपयों की राशि प्रदान करने की कृपा की है। उक्त मुद्रणालय जैन विश्व भारती को साहित्य-प्रकाशन के क्षेत्र में द्रुतगति से बढने में

सहायक होगा। इस अवसर पर हम मित्र परिषद् के पदाधिकारियो एव सदस्यो के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन करते है।

श्री जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह समिति के सयोजक श्री धर्मचन्दजी चोपडा एव सदस्यो को भी उनके आर्थिक सौजन्य के लिए हम अनेक धन्यवाद ज्ञापित करते है।

लाडनू (राज०)
सितम्बर १९८१

—श्रीचन्द रामपुरिया
अध्यक्ष, जैन विश्व भारती

विषय-सूची

१

साधु

आचार्य भिक्षु के युग के साधु

आचार्य रुघनाथजी से पृथक् होने के वाद भिक्षु ने सवत् १८१६ आषाढ सुदी पूर्णिमा के दिन पुन प्रव्रज्या ग्रहण की। उनके साथ अन्य वारह साधुओ ने भी उसी दिन पुनर्दीक्षा ग्रहण की। इन तेरह मे से पाच साधु सवत् १८१७ के चातुर्मास के वाद वोलो के विषय मे पुनर्चर्चा के समय अलग हो गये। इस तरह आदि तेरह साधुओ मे से आठ ही रहे। भिक्षु को आचार्य के रूप मे स्वीकार किया गया। आचार्य भिक्षु ने पूर्व दीक्षा मे अपने से ज्येष्ठ मुनि थिरपालजी और फतैचन्दजी को अपने से वडा रखा। ख्यात मे आचार्य के नाते प्रथम क्रम मे आचार्य भिक्षु को रखा है और उनके वाद मुनि थिरपालजी, फतैचन्दजी आदि को।

भिक्षु के जीवन-काल मे तेरापथ संघ मे ४८ साधुओ ने उनके शिष्य रूप मे दीक्षा ग्रहण की एव ५६ साध्विया प्रव्रजित हुई। प्रस्तुत ग्रन्थ मे अनुक्रम से उक्त साधुओ का विवरण प्रस्तुत करने के वाद आचार्य भिक्षु के समय मे दीक्षित ५६ साध्वियो की भी जीवन-कथा प्रस्तुत की जाएगी।

आचार्य भिक्षु के युग मे तेरापथ सघ मे उनके सहित ४९ साधु हुए। तालिका इस प्रकार है

१. आचार्य भीखनजी (भिक्षु)
२. मुनि थिरपालजी
३. मुनि फतैचन्दजी
+४. मुनि वीरभाणजी
५. मुनि टोकरजी
६. मुनि हरनाथजी
७. मुनि भारमलजी
+८. मुनि लिखमोजी
९. मुनि सुखरामजी
१०. मुनि अखैरामजी
+११. मुनि अमरोजी
+१२. मुनि तिलोकचन्दजी
+१३ मुनि मोजीरामजी
१४. मुनि शिवजी
+१५ मुनि चन्द्रभाणजी
+१६ मुनि अणदोजी
+१७. मुनि पन्नजी
+१८. मुनि सन्तोषजी
+१९. मुनि शिवरामजी
२०. मुनि नगजी
२१. मुनि सामजी
२२. मुनि खेतसीजी
२३. मुनि रामजी
+२४. मुनि सभूजी

+जिन नामो के पहले तारक लगा हुआ है वे वहिर्भूत साधुओ के नाम है।

+२५. मुनि सघवीजी
२६ मुनि नानजी
२७ मुनि नेमजी
२८. मुनि वेणीरामजी
+२९. मुनि रूपचन्दजी
+३० मुनि सुरतोजी
३१. मुनि वर्धमानजी
+३२ मुनि रूपचन्दजी
+३३. मुनि मयारामजी
+३४. मुनि वगतोजी
३५. मुनि सुखजी
३६. मुनि हेमराजजी
३७ मुनि उदयरामजी
।३८. मुनि कुशालोजी
+३९. मुनि ओटोजी
+४० मुनि नाथोजी
४१. मुनि रायचन्दजी
४२. मुनि ताराचन्दजी
४३. मुनि डूगरसीजी
४४. मुनि जीवोजी
४५. मुनि जोगीदासजी
४६. मुनि जोधोजी
४७. मुनि भगजी
४८. मुनि भागचन्दजी
४९. मुनि भोपजी

आचार्य भिक्षु तेरापथ धर्म-सघ के सस्थापक आदि आचार्य थे। उनकी जीवन-कथा विस्तारसे अलग ग्रन्थ रूप मे प्रकाशित हो चुकी है अत इस ग्रन्थ मे पुन. उनका विस्तृत जीवन-विवरण देने की आवश्यकता नही रहती। परन्तु तत्कालीन साधु-साध्वियो मे उनका नाम आचार्य के रूप मे सर्वोपरि होने से परिचय-क्रम मे भी उनका विवरण आना अनिवार्य है, अत. इस ग्रन्थ मे 'मगलाचरण' के रूप मे श्रीमद् जयाचार्य रचित एक ढाल सानुवाद दी जा रही है, जो उक्त कार्य की पूर्ति करने के उपरान्त आचार्य भिक्षु के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओ का सार-सक्षेप भी वडे सुन्दर रूप मे उपस्थित करती है।

१. आचार्य भिक्षु

सतरेसै तयासिये, पचांग लेखे पहिछाण।
शुक्ल पक्ष आपाढ में, भिक्षु जन्म कल्याण ।।
सुगण जन साभलो रे ।।१।।
कंटालिये वल्लु घरे, दीपा दे सुखकार।
सीह स्वप्ने सुत जन्मियो, भिक्षु नाम उदार ।।सु० २।।
ओसवंश वीसा वली, संकलेचा सुविवेक।
अनुक्रमे मोटा हुवा, परणी सुदर एक ।।सु० ३।।
उत्पत्तिया वुद्धि अति धणी, गच्छवास्या पे जात।
पाछे पोत्याबध कनै, पछै मिल्या रघुनाथ ।।सु० ४।।
रमण सहित ब्रह्म आदरचो, ज्यां लग चरण न आय।
तिहां लगे करणो सही, एकातर सुखदाय ।।सु० ५।।

अनुवाद

आचार्य भिक्षु का जन्म पचाग सवत् १७८३ के आपाढ माह के शुक्ल पक्ष मे हुआ। यही उनका जन्म-कल्याण दिवस है। (१)

(काठा-प्रदेश मे) कटालिया ग्राम के शाह वल्लूजी उनके पिता थे, माता दीपाजी थी, जिन्हे पुत्र के जन्म से पूर्व स्वप्न मे सिह-दर्शन हुआ (जो पुत्र के सिह सदृश शूरवीर होने का पूर्व-शकुन था)। (२)

उनकी जाति वीसा ओसवाल और गोत्र सकलेचा था। वय-प्राप्त होने पर उनका विवाह एक सुन्दर सुयोग्य कन्या से हुआ। (३)

आप अत्यन्त प्रत्युत्पन्न वुद्धि के धनी थे। (धर्म जिज्ञासा हेतु) आप पहले गच्छवासी और वाद म पोतियावध के यहा जाते रहे। फिर आपकी आचार्य रुघनाथजी से भेट हुई। (४)

आपने धर्मपत्नी सहित शीलव्रत ग्रहण कर लिया और जब तक दीक्षा न ले ले तव तक के लिए एकान्तर उपवास करने का अभिग्रह किया। (५)

पड्यो वियोग त्रिया तणो, वर्ष पचीस उन्मान।
द्रव्य गुरु धार्‌या रुघनाथ जी, भावे चरण म जान ।।मु० ६।।
समय वांच नै जाणियो, असल नहीं आचार।
पिण परम प्रीत द्रव्य गुरु थकी, तिणसूं नही हुवै न्यार ।।मु० ७।।
इण अवसर द्रव्य गुरु सुण्या, समाचार तिण वार।
भिक्षु नै कहै इह विध, जावो देश मेवाड ।।मु० ८।।
राजनगर भाया तणै, शक पडी मन मांय।
वदणा छोडी छै तिणै, थे समझावो जाय ।।मु० ९।।
भिक्षु विहार कियो तदा, ठाणे पच विमास।
अष्टादश पनरोत्तरे, राजनगर चउमास ।।मु० १०।।
भाया कहै भिक्षू भणी, दोप तण वहु थाप।
स्थानक थापिता आदि दे, प्रगट विचारो आप ।।मु० ११।।
द्रव्य गुरु नों वच्न राखवा, पगे लगाया आप।
इण अवसर भिक्षू भणो, चढियो जवरो ताप ।।मु० १२।।
जव भिक्षू मन जाणियो, आयु आवै इणवार।
तो दुर्गति माहे पडू, वचन उथाप्या सार ।।मु० १३।।

वाद मे धर्मपत्नी का वियोग हो गया। लगभग पच्चीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने आचार्य रुघनाथजी से दीक्षा ग्रहण की। यह द्रव्य दीक्षा थी। इसे भाव-दीक्षा न समझें। (६)

कुछ समय पश्चात् आगमो के वाचन से इन्हे प्रतीत हुआ, यहा शुद्ध आचार का अभाव है। परन्तु द्रव्य गुरु से अति प्रेम था, अत. उनसे अलग नही हुए। (७)

उसी अवसर पर आचार्य रुघनाथजी ने (मेवाड के श्रावकों के वन्दना छोड़ने का) समाचार सुना और भिक्षु को वहा जाने के लिए कहा। (८)

आचार्य रुघनाथजी बोले—राजनगर के श्रावकों के मन मे शकाएं उत्पन्न हो गई है, उन्होंने वन्दना करना छोड दिया है, जाकर उन्हे समझावे। (९)

भिक्षु ने अन्य चार साधुओ सहित विहार किया और सवत् १८१५ का चातुर्मास राजनगर किया। (१०)

श्रावकों ने भिक्षु से कहा—आचार मे अनेक दोप आ गए है, वहुत दोपो की स्थापना है। साधुओ के लिए स्थापित स्थानको का उपयोग किया जाता है, आप इस पर विचार कीजिए। (११)

भिक्षु ने द्रव्य गुरु के वचनो की रक्षा हेतु श्रावकों को समझाया और वे पुनः वन्दना करने लगे। इस अवसर पर भिक्षु को भीपण ज्वर का प्रकोप हुआ। (१२)

भिक्षु ने मन मे विचार किया—अभी देहान्त हो जाए, तो जिन-वचनो की उत्थापना करने के कारण मुझे दुर्गति मे पडना पडे। (१३)

द्रव्य गुरु काम आवै कदि, मिटिया वेदन मोय।
शुद्ध मारग लेणो सही, परभव साहमो जोय ।।सु० १४।।
तुरत ताव जद ऊतर्‌यो, भाया नै कहै वाय।
थे साचा झूठा अम्हे, श्रावक हर्ष्या ताय ।।सु० १५।।
हिवे चउमासो ऊतर्‌या, आया द्रव्य गुरु पाय।
सूत्र न्याय वताविया, पिण नही मानी वाय ।।सु० १६।।
दोय वर्ष के आसरै, वहु खप कीधी ताम।
कितलायक समझायवा, वलि द्रव्य गुरु नै आम ।।सु० १७।।
द्रव्य गुरु तो मान्यो नही, भिक्षु आदि विचार।
तेरे मत थी नीकल्या, मुक्ति साहमो दृष्टि धार ।।सु० १८।।
अष्टादश सोलै समे, सुदि पूनम आषाढ।
भावे चारित्र आदर्‌यो, गुणगिरवो दिल गाढ ।।सु० १९।।
भारीमाल आदे करी, सत अज्जा सुविनीत।
श्रावक नै फुन श्राविका, भिक्षू जगत 'वदीत' ।।सु० २०।।
जीव घणा समझाविया, दान दया दीपाय।
साठे सिरियारी मझे, चरम चउमासो आय ।।सु० २१।।

उस समय द्रव्य गुरु कहां से सहायक होगे ? अत. रोग शात हुआ तो मैं परभव की ओर दृष्टि रखते हुए सच्चा-शुद्ध मार्ग ग्रहण करूंगा। (१४)

ज्वर तुरन्त ही शान्त हुआ। श्रावको से उन्होने कहा—आप सच है, हम झूठ।

सुनकर श्रावक हर्षित हुए। (१५)

चातुर्मास समाप्त होने पर 'मुनि भिक्षु' गुरु (आचार्य रुघनाथजी) के पास आए। सूत्र-न्याय वताया। पर उन्होने वात नही मानी। (१६)

इस प्रकार लगभग दो वर्ष तक आचार्य रुघनाथजी को समझाने का वहुत प्रयास किया। (१७)

द्रव्य गुरु (आचार्य रुघनाथजी) नही माने। तव भिक्षु आदि तेरह सन्त शुद्ध आचार-पालन के लक्ष्य से अलग-अलग टोले से निकल गए। (१८)

सवत् १८१६ की आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को सव ने नई दीक्षा ग्रहण की। इस तरह दृढ-चित्त से भाव-चारित्र अगीकार किया। (१९)

भिक्षु के भारमलजी आदि विनयवत साधु एव साध्वियां तथा वहुत श्रावक-श्राविकाए हुए। भिक्षु जगत् मे प्रसिद्ध हुए। (२०)

भिक्षु ने वहुत उपकार किया। अनेक लोगो को प्रतिवोधित किया। शुद्ध दान-दया का प्रकाश किया। सवत् १८६० मे उन्होने सिरियारी मे अन्तिम चातुर्मास किया। (२१)

खमत खामणा खंत सूं, स्वाम किया सुखदाय।
आलोवण आछी करी, निशल्य थया मुनिराय ॥मु० २२॥
कीधी अंत संलेखणा, भाद्रवा सुदि सार।
बारस बेला विषे, स्वय मुख किया संथार ॥मु० २३॥
सामली हाट सू ऊठ नै, चलिया चलिया आय।
पक्की हाट पक्का मुनि, दियो पक्को संथारो ठाय ॥मु० २४॥
तेरस दिन मुख उच्चरै, संत अज्जा आवन।
साहमा जावो इह विधे, चरम वचन पभणंत ॥मु० २५॥
केतो कह्यो अटकल थकी, के बुद्धि थी आख्यात।
के कोइ अवधिज ऊपनो, ते जाणै जगन्नाथ ॥मु० २६॥
एक मुहूर्त रे आसरै, साधू आया दोय।
लोक माहोमाहि इम भणै, अवधि ऊपनो सोय ॥मु० २७॥
पद पंकज प्रणम्या थका, मस्तक दीधो हाथ।
सावचेत स्वामी इसा, इचरज वाली वात ॥मु० २८॥
कर नी वे अंगुली करी, पूछी चक्षु नी सुख सात।
दोय मुहूर्त आसरै, आयो साधविया रो साथ ॥मु० २९॥

भिक्षु ने अतीव शुद्ध मन से, याद कर-कर, खमत-खामणा किया। अच्छी तरह आत्मालोचन कर भिक्षु नि शल्य बने।
(२२)

भाद्रपद शुक्ल पक्ष मे सलेखना शुरू की। द्वादशी के दिन वेले की तपस्या मे स्वयं अपने मुख से सथारा ग्रहण कर लिया।
(२३)

स्वय ही सामने वाली हाट मे चलकर पक्की हाट मे पधारे। वही दृढचेता मुनिवर ने सथारा ठा दिया।
(२४)

त्रयोदशी के दिन वोले—सन्त और सतिया पधार रहे है, उनकी अगवानी के लिए जाओ। ये उनके चरम—अन्तिम शब्द थे।
(२५)

न जाने ऐसा अनुमान से कहा या बुद्धि-विचार से, अथवा उन्हे कोई अवधिज्ञान हुआ, प्रभु जाने।
(२६)

एक मुहूर्त उपरान्त दो साधु आए। लोग आपस-आपस मे कहने लगे कि अवधिज्ञान हुआ है।
(२७)

साधुओं द्वारा चरण-स्पर्श, वदना करने पर उनके मस्तक पर हाथ रखा। ऐसे सावधान थे। यह आश्चर्य की वात है।
(२८)

दो उगलियो के सकेत द्वारा मुनि वेणीरामजी को चक्षुओ के विपय मे सुखपृच्छा की। लगभग दो मुहूर्त के वाद तीन साध्विया भी आ पहुची। इस तरह, कही वाते मिलने लगी।
(२९)

तेरे खंडी त्यारी करी, जाणक देवक विमाण।
बाह्य सुख बैठा थका, चट दे छोड्या प्राण॥सु० ३०॥
साठे भाद्रव तेरसी, सुदि पक्ष मगलवार।
सप्त पोहर रे आसरै, सखर स्वाम संथार॥सु० ३१॥
जशधारी था स्वाम जी, जश फेल्यो संसार।
जन्म सुधार्यो आपरो, भजन करो नर नार॥सु० ३२॥
उगणीसै पणवीस में, सुदि भादव बारस सार।
गुण गाया भिक्षू तणा, जय जश हर्ष अपार॥सु० ३३॥

देव-विमान तुल्य तेरह खण्डी वैकुंठी तैयार की गई। वाहर मे कोई वेदना नही दिखाई दे रही थी। वैठे-वैठे ही चट प्राण-विसर्जन कर दिया। (३०)

सवत् १८६० की भाद्र शुक्ला त्रयोदशी, मगलवार को स्वामिनाथ का सथारा सिद्ध हुआ। लगभग सात प्रहर का सथारा आया। (३१)

आचार्य भिक्षु वड़े यशधारी थे। जगत् मे उनका यश फैला। उन्होने आत्म-कल्याण द्वारा मनुष्य-जन्म को सार्थक किया।

नर-नारियो ! आप भी भिक्षु का भजन करे। (३२)

अपार हर्पयुक्त होकर मैने (जयाचार्य ने) सवत् १९२५ मे भाद्र शुक्ला द्वादशी के दिन भिक्षु का गुणगान किया। (३३)

□

२. मुनि थिरपालजी
३. मुनि फतैचन्दजी

मुनि थिरपालजी और फतैचन्दजी का सम्बन्ध पिता पुत्र का था। थिरपालजी के पिता और फतैचन्दजी के पितामह का नाम राहांसिहजी था। उनकी जन्म-भूमि लाविया (मारवाड़) गाव था। वे जाति से ओसवाल थे।[1]

पिता-पुत्र दोनो पहले आचार्य जयमलजी के टोले मे दीक्षित हुए थे। आचार्य भिक्षु ने सवत् १८०८ मे आचार्य रुघनाथजी के टोले मे दीक्षा ग्रहण की, उससे पूर्व ही दोनो की दीक्षा हो चुकी थी। इस तरह दीक्षा-वय मे दोनो सत आचार्य भिक्षु से ज्येष्ठ थे। बाद मे आचार्य जयमलजी के टोले से अलग हो, वे आचार्य भिक्षु के साथ हुए और सवत् १८१६ की आषाढ शुक्ला पूर्णिमा के दिन भिक्षु ने पुन दीक्षा ग्रहण की, उसी दिन वे भी पुन दीक्षित हुए।[2]

---

१. नेमीदासजी द्वारा रचित मुनि थिरपालजी विषयक कृति १। २-४

लावीया नगर सुहामणों, त्या ऊँचे कुल अवतारो जी।
पूर्व पुण्य पसाय थीं, लह्यो मानव-भव सारो जी॥
सुणज्यो गुण मुनिराज रा।
आय ओसवाल घर जनमिया, साह्य राहांसिघ जी घर जामो जी।
पाच इन्द्री पाया निरमली, ज्या रो थिरपालजी है नामो जी॥ सुण०
ज्या रे घरे फतैचन्दजी अवतर्‌या, हुवा काकडा भूतो जी।
माता एहवा पुत्र जनमिया, त्या दिया मुगत रा सूतो जी॥ सुण०

नेमीदासजी रचित दो ढालो की यह महत्वपूर्ण कृति पीपाड के पोथे मे सुरक्षित है। वही से लेखक द्वारा करीब २७ वर्ष पूर्व उसकी प्रतिलिपि की गई थी। उसका प्रकाशन सर्वप्रथम "विवरण पत्रिका" जुलाई १९५७ के अक मे किया गया था। बाद मे सन् १९५९ मे लेखक के सम्पादन मे महासभा द्वारा प्रकाशित ग्रथ 'चरित्रावली' (पृष्ठ १-४) मे इसे मुद्रित किया गया था।

२ (क) जय (शा० वि०) १।२
भिक्षु गण मे पिता पुत्र नी जोड कै, स्वामीजी थिरपालजी ने फतैचन्द भला जी।
भिक्षु साथे चरण लियो धर कोड कै, जयमलजी माय सू नीकल्या जी॥
(ख) जय (सत गुण वर्णन) ५५।१
स्वामी थिरपालजी फतैचन्दजी, बाप बेटा वैरागी।
स्वामी लाविया गाम रा, दीया भेषधार्‌या ने त्यागी॥
(ग) ख्यात, क्रम २-३

पिता-पुत्र दोनो किस प्रकार आचार्य भिक्षु के साथ हुए और नई दीक्षा ली, इसका वर्णन वडा ही रोचक है। वह सक्षेप मे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है ·

१ राजनगर के कुछ श्रावको मे तत्कालीन साधुओ की श्रद्धा (विचार-धारा) और आचार के प्रति विद्रोह की भावना जागृत हुई। स० १८१४ मे मुनि थिरपालजी और फतैचन्दजी का चातुर्मास राजनगर मे हुआ। श्रावको ने उनसे चर्चा की। फलस्वरूप दोनो उनकी वातो से प्रभावित हुए और निम्न प्ररूपणा की

१ नौ तत्त्व के ज्ञान के विना सम्यक्त्व नही होता।
२ सम्यक्त्व के विना साधुत्व और श्रावकत्व नही होता।
३ केवली की आज्ञा के वाहर धर्म नही होता।
४ व्रत मे धर्म होता है, अव्रत मे पाप।
५. मोह अनुकम्पा, सावद्य अनुकम्पा मे पाप होता है।

इस प्ररूपणा की वात सुनी तव आचार्य जयमलजी आदि सभी ने इसका निपेध किया।

यह घटना संक्षेप मे राजस्थानी भापा मे निम्न शव्दो मे समाहित है

"जैमलजी रा सिप थरपालजी, वखतमलजी, फतैचन्दजी, भारमलजी जणा ४ चौमासो सवत् १८१४ को राजनगर कीयो। जद उठे सरधा प्रगट कीदी या परूपणा कीधी—नौ तत्व का जाणपणा विना समकित नही। समकित विना साध श्रावकपणो नही, केवल्या की आज्ञा वारै धर्म नही, व्रत माहे धर्म, अवरत माहे पाप, मोह अणकपा माहे पाप, सावज अणकपा माहे पाप। असी परूपणा कीदी तद या सरदा जैमलजी सामली जदी जैमलजी आदि सारा नपेदणा कीदी।"[1]

२ राजनगर के श्रावको ने अपने आचार्य रुघनाथजी को वदना करना छोड दिया तव उन्होने अपने शिष्य भीखन जी, वीरभाणजी, टोकरजी, हरनाथजी और भारमलजी इन पाच साधुओ को राजनगर भेजा, जिन्होने सवत् १८१५ का चातुर्मास वहा किया। भिक्षु ने यहा सूत्रों का दो वार अध्ययन किया, श्रावको की शका को ठीक पाया। चातुर्मास के वाद आचार्य रुघनाथ जी से उन्होने सारी वात कही और श्रावको की शका को सत्य वताते हुए शुद्ध मार्ग अगीकार करने की प्रार्थना की।[2]

३ सवत् १८१६ मे मुनि रूपचन्दजी आदि साधुओ का चातुर्मास राजनगर मे हुआ। वे भी वहा के श्रावको की वातो से प्रभावित हुए और उनके भी उनकी श्रद्धा जची।[3]

४ सवत् १८१६ का भिक्षु का चातुर्मास जोधपुर हुआ, जहा आचार्य जयमलजी का भी चातुर्मास था। मुनि थिरपालजी, फतैचन्दजी वही थे। भिक्षु ने आचार्य जयमलजी से वातचीत की। सारी वात उनके गले उतरी। मुनि थिरपालजी और फतैचन्दजी वार्तालाप के फलस्वरूप भिक्षु की प्ररूपणा से विशेष प्रभावित हुए।[4]

५. सवत् १८१६ के चातुर्मास के वाद भिक्षु ने आचार्य रुघनाथजी को पुन समझाने का भरसक प्रयत्न किया, पर वे नही माने। ऐसी स्थिति मे भिक्षु सम्वन्ध विच्छेद कर आचार्य

---

१. महात्मा सोहनलालजी के सग्रह का हस्तलिखित गद्य ग्रन्थ, पत्र ५
२ जय (भि० ज० र०) ढाल २, ३, ४ का सार
३ महात्मा सोहनलालजी के सग्रह का हस्तलिखित गद्य ग्रथ, पत्र ५-६
४ जय (भि० दृष्टत), दृ० १३

रुघनाथजी से पृथक् हो गए।[1] वीरभाणजी, टोकरजी, हरनाथजी और भारमलजी ये चार साधु भी आचार्य रुघनाथजी से पृथक् हो, भिक्षु के साथ हुए।

६. पृथक् होने के बाद पांचो साधु राजनगर पहुचे। वही आचार्य जयमलजी के साधु थिरपालजी, लखमीचन्दजी, बखतमलजी, फतैचन्दजी, भारमलजी, गुलाबजी तथा अन्य टोले के दो साधु रूपचन्दजी और पेमजी भी उनके साथ हुए। इस तरह इन १३ साधुओ ने संवत् १८१६ आषाढ सुदी १५ के दिन पुन. दीक्षित होने का निर्णय लिया।

पूर्व दीक्षा मे रूपचन्दजी सबमे बडे थे। थिरपालजी, फतैचन्दजी उनमे छोटे थे। अतः रूपचन्दजी को दीक्षा-पर्याय मे ज्येष्ठ रखने का निर्णय हुआ और भिक्षु को आचार्य।[2]

७ मुनि रूपचन्दजी चातुर्मास मे ही अलग हो गए। चातुर्मास के बाद बारह साधु एकत्रित हुए।[3] बखतमलजी, गुलाबजी, भारमलजी (द्वितीय) और पेमजी श्रद्धा न मिलने से पृथक् हो गए। आठ साधु रहे।

आठ साधुओ मे मुनि थिरपालजी और फतैचन्दजी पूर्व दीक्षा-पर्याय मे ज्येष्ठ थे, अतः भिक्षु ने नव-दीक्षा के बाद भी उनको ज्येष्ठ रखा।

बडा सत भिक्खु थकी, जनक सुतन वर जोड। पिता स्वाम थिरपालजी, फतैचन्द सुत मोड॥
बडा टोला मे था बिहु, राख्या बडा सुरीन। सरल भद्र बिहु श्रमण सुद्ध, पूरी तनु परतीन॥[4]

भिक्षु ने सोचा—इसमे क्या परमार्थ है कि मै इन्हे छोटा कर स्वय बडा बनू।[5]

आठ साधुओ मे से दो और बाद मे पृथक् हो गए। अत तक छ साधु साथ रहे जिनमे से दो आप थे।[6]

भिक्षु आचार्य थे, तो भी वे सबके सामने बडे हर्ष पूर्वक दोनो सतो की विनम्रता और भक्ति सहित विधिवत् वदना किया करते और सुखसाता पूछते।

---

१ जय (भि० ज० र०) ४।२२-२६

२. महात्मा सोहनलालजी के सग्रह का हस्तलिखित गद्य ग्रथ, पत्र ६

३. वही

४. जय (भि० ज० र०) ४४।दो० ३-४। तथा देखिए ख्यात, क्रम २-३

५ जय (भि० ज० र०) १०।१, २

टोला में छता बड़ा स्वाम भिक्खु थकी,
त्यानै बडा राख्या भिक्खु स्वाम हो। महामुनि।
यानें छोटा करनै हूं वड़ो होऊं,
इण मैं सू परमार्थ ताम हो॥ महामुनि॥

६ जय (भि० ज० र०) ८।९-१०

थिरपालजी फतैचन्दजी, मुनिन्द मोरा भिक्खु ऋप जगभाण हो।
टोकरजी हरनाथजी, मुनिन्द मोरा भारीमाल बहु जाण हो॥
छडे चित्त मेला रह्या, मुनिन्द मोरा वर पट सत वदीत हो।
जावजीव लग जाणज्यो, मुनिन्द मोरा परम माहोमाहि प्रीत हो॥

पद आचार्य हो भिक्खु बुद्धिना भडार २, जन वहू देखता युक्ति सू ।
आप मूकी हो पद नौ अहकार २, कर जोरी वदना करै भक्ति सू ।।[1]

उल्लेख है कि पिता-पुत्र दोनो ही सत वड़े सरल, भद्र और निर्मल साधु थे। भिक्षु के पूर्ण विश्वास पात्र थे तथा सुविचारक थे ।[2]

ये ही दोनो संत थे, जिन्होने प्रारभिक निराशा के समय भिक्षु को धर्म-प्रचार की प्रेरणा दी थी। दोनो से प्रेरणा पाकर ही भिक्षु ने धर्म-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया था।

जयाचार्य लिखते है—आचार्य भिक्षु सोचने लगे कि सम्यक् श्रद्धा भगवान द्वारा दुर्लभ वस्तु वतायी गई है। इस आरे मे वहुलकर्मी जीव ही अधिक है। उनके हृदय में सच्ची श्रद्धा का वैठना अत्यन्त कठिन है। अनेक लोग धर्म के द्वेपी है। समझाने पर समझते नही। मूढता छाई हुई है। ऐसी स्थिति मे तप कर आत्म-कल्याण साधना चाहिए। धर्मोपदेश द्वारा प्रचार-कार्य से क्या लाभ होगा? घर छोड कर कौन इस कठोर मार्ग मे सयम ग्रहण करेगा? श्रावक-श्राविकाओ का होना भी सम्भव नही लगता। ऐसा सोचकर भिक्षु सतो के साथ एकातर चौविहार, उपवास-पूर्वक वन मे आतापना तप करने लगे। एक दिन के अन्तर से चारो प्रकार के आहार का त्याग कर सूर्य की कडी धूप मे तप करते। कुछ सरल भद्र प्रकृति के लोग उनके पास आते तो उन्हे धर्म का मर्म वतलाते। मुनि थिरपालजी और फतैचन्दजी को लगा कि समझाने पर लोग समझ रहे है। तव वे उनसे नित्य प्रति निवेदन करने लगे कि तपकर क्यो शरीर को कृश कर रहे है? आप वड़े वुद्धिमान् है। स्थिरप्रज्ञ है। औत्पातिक वुद्धि के स्वामी है। सुज्ञ लोगो को न्यायपूर्वक समझावें। हम लोगो की अधिक पहुच नही। तपस्या करने के लिए हम लोग है। ज्येष्ठ संतो के सतत् अनुरोध पर ध्यान देकर आचार्य भिक्षु एकान्तर उपवास करने से निवृत्त हो, दत्तचित्त हो लोगो को समझाने के कार्य मे लगे।[3]

---

१. जय (भि० ज० र०) ४४।२
तथा देखिये—
(क) ख्यात, क्रम २-३
(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन ११३-१४।
दीक्षा मे वडा जाणीनें वडा किया रे भिक्षु गणी स्वयमेव सु०।
आचार्य पदना हुला धणी रे लाल पिण वेला री वेला नितमेव सु०।।
वहुजन वृ द मे हर्ष थी रे वदना करणी विध सार सु०।
सुख साता वलि पूछवी रे लाल विनय सहित धर प्यार सु०।।

२. (क) जय (भि० ज० र०) १०।१
थिरपालजी स्वामी फतैचन्दजी, सत दोनू सुखकार हो। महामुनि।
तात सुत ने दोनू तपसी भला, सरल भद्र सुविचार हो। महामुनि।
(ख) देखिये—पृ० १०, पाद-टिप्पणी ४ से सम्वन्धित उद्धरण।

३. जय (भि० ज० र०) १० दो० २-६, गाथा ५-८
परम दुर्लभ सरधा प्रगट, आखी श्रीजिन आप।
तीजे उत्तराधेन तन्त, थिर भिक्खु चित्त थाप।।

दोनों ही संत बड़े वैरागी, संयम में अत्यन्त दृढ़चित्त और दुर्धर तपस्वी थे। शीत, ग्रीष्म और वर्षाकाल में ऋतु अनुरूप तपस्या करते थे। शीतकाल में पछेवडी (ऊपरी परिधान) का परिहार कर रात्रि में शीत सहन करते। गर्मी में धूप में आतापना लेते। वर्षाकाल में विविध तपस्या करते। बहुधा खड़े-खड़े ध्यान किया करते थे।

तपसी तप करता विहु, शीत उष्ण वरसाल। बड वयरागी विनय वर, रूडा मुनि ऋषपाल॥
सीत काल अति सीत सहै, पछेवडी परिहार। जन निशि देखी जाणियों, ए तपसी अणगार॥[1]

दोनों ही संत बड़े निरभिमानी थे। जब कोई उन्हें पूछता—"आप किस टोले के साधु हैं?" तो अहं न रखते हुए निःसंकोच भाव से कहते—"आचार्य भिक्षु के टोले के।"

बहुलकर्मी जीव बहु, ऊपजिया इण आर।
दिल मैं बैसणी दोहिली, सरधा महासुपकार॥
परम पूरी धूर पगथियों, श्रीजिन सरधा सार।
सुद्ध सरध्या समगत सही, भिक्खू कियो विचार॥
धर्म तणा द्वेषी धणा, लागू बहुला लोग।
समझाया समझै नहीं, अधिका मूढ अजोग॥
जब भिक्खू मन जाणियो, कर तप करू किल्याण।
मग नही दिपै चालतो, अति धन लोग अजाण॥
घर छोडी मुझ गण मझै, संजम कुण ले सोय।
श्रावक नें वलि श्राविका, हुता न दिसै कोय॥
एहवी करे आलोचना, एकान्तर अवधार।
आतापन वलि आदरी, संता साथै सार॥
चौविहार उपवास चित्त, उपधि ग्रीही सहु संत।
आतापन लै वन मझै, तप कर तन तावत॥
नित्य थिरपालजी फतैचन्दजी इम कहे, स्वामी भिक्खू ने सोय हो। महामुनि॥
क्यू तन तोडो थे तपसा करी, समझता दिसै बहु लोय हो। म०॥
थे बुद्धिवान भारी थिर बुद्धि भली, उत्पत्तिया अधिकाय हो। म०।
समझावों बहु जीव सैणा भणी, निरमल बतावी न्याय हो। म०॥
तपसा करा म्हे आतम तारणी, अधिक पोंच नहीं और हो। म०।
आप तरो थे तारो अवर नैं, जाझो बुद्धि नो जोर हो। म०॥
संत वडा रा वचन भिक्खू सुणी, धार्यो धर चित्त धीर हो। म०।
न्याय विशेष बतावता निरमला, हरष्यो हिवडो हीर हो। म०॥

1. जय (भि० ज० र०) ४४। दो० ५, ७।
तथा देखिये—
(क) ख्यात, क्रम २-३।
(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु संत वर्णन १२१ :
रितु री रितु तपस्या करै रे, शीत-उष्ण ने काल।
चौमासे बहु तप कर्‌या रे लाल, ऊभा ध्यान धरै उजमाल॥

किण टोला ना हो तुम्हे संत कहिवाय २, इण विध लोक पूछे घणा।
मांन मूकी हो बोले बिहु मुनिराय २, म्हे भीखणजी रा टोला तणा ।।[1]

उनसे कोई चर्चा करना चाहता तो कहते—"आचार्य भिक्षु से करो।" प्रश्न पूछने पर कहते—"आचार्य भिक्षु से पूछो। वे कहे वही सत्य है। हमे पूरा ज्ञान नही। उन्हे पूछकर निर्णय करो। वे कहे वही प्रमाण है।" गणी के प्रति उनकी ऐसी आस्था थी।

प्रश्न चरचा हो त्यानै कोई पूछन्त २, तौ सत दोनू इम भाखता।
भिक्खू भाखै हो तेहिज जाणज्यो तत २, रूडी आसता भिक्खू नी राखता।
म्हानै तो हो पूरी खबर न काय २, भीखनजी ने पूछी निरणो करौ।
सुद्ध जाणौ हो तेहिज सत्य वाय २, प्रगट कहै इम पाधरो ।।[2]

एक बार दोनो सत कोटा पधारे थे। उनके गुण सुनकर कोटा नरेश उनके दर्शन के लिए आने की सोचने लगे। यह सुनते ही वहां से तुरन्त विहार कर दिया। बोले : "भिक्षु आचार्य हैं। उनके पास दर्शन करने जाना ठीक है। हम तो साधारण साधु है।" ऐसे मान-सम्मान की चाह न रखने वाले निर्गर्वी सत थे।

कोटे आप पधारिया, महिपति आवणहार।
साम्भल नें ते सत बिहु, तत्क्षण कियो विहार ।।
निज आत्म तारण निपुण, वारू वेपरवाह।
तप मुद्रा तीखी घणी, चित्त इक शिवपद चाह ।।[3]

---

१ जय (भि० ज० र०) ४४।३
तथा देखिये—
(क) सत गुण वर्णन ५५।५
कोई पूछै सत दोनू भणी, थे किणरा टोले रा सोय।
ते कहे भीखणजी रा टोला तणा, ऐसा निगर्वी दोय ।।
(ख) ख्यात, क्रम २, ३
(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन ११५-१६

२. जय (भि० ज० र०) ४४।४-५
तथा देखिये—
(क) सत गुण माला ५५।६,७ :
चर्चा बोल कोई पूछता, दोनू सत भाषतो।
भीखणजी ने पूछ निर्णय करो, भिक्षु कहै सो ततो ।।
एहवा सरल हीया तणा, सत दोनू सुखकारी।
(ख) ख्यात, क्रम २-३
(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन ११६-१७

३. जय (भि० ज० र०) ४४ दो० ८-९
तथा देखिए—
ख्यात, क्रम २-३

दोनो संतो को अपनी आत्मा के निस्तार की ही चिन्ता रहती थी। दोनो ही बडे निस्पृह और धर्म-मूर्ति थे। सयम पर तीक्ष्ण दृष्टि थी। मन मे केवल मुक्ति की ही चाह रखते थे। दोनो ही बडे निर्मल, निरकाक्षी, निरहकारी और निष्कलंक थे। कर्म और उपाधि दोनो मे हल्के थे। अवक्र और ऋजु थे। ऐसे गुणवान् सन्तो के प्रति गणी की प्रीत होना स्वाभाविक था। दोनो की ही आत्मा बडी गुणग्राही थी। अत आचार्य भिक्षु के प्रति उनकी पूर्ण प्रतीति गुणानुरागित थी।

निरअहकारी निर्मला, निरलोभी निकलंक।
हलुआकर्मी उपधि करे, आर्जव उभय अवक॥
सत दोनू हो सोभै गुणवन्त नीत २, त्यासू प्रीत पूर्ण भिक्खू तणी।
भिक्खू सेती हो ज्यारै पूर्ण प्रीत २, गुणग्राही आतम घणी॥[1]

जयाचार्य ने लिखा है—इन मुनियो की तपस्या का वर्णन कायरो के हृदय मे भय का सचार कर देता है और धर्म-शूरो के हृदय मे अत्यन्त हर्ष और पौरुष की भावना भर देता है।

त्यारा तपनो हो अधिको विस्तार, कायर सुण कम्पै घणा॥
अति पामै हो सूरा हरष अपार, सत दोनूई सुहामणा॥[2]

एक समसामयिक कवि ने उनके तपस्वी जीवन की ओर सकेत करते हुए लिखा है :
काया रो गढ आप वश कियो, भोमिया कर लिया भीड जी।
तपस्या करने कर्म काटिया, मद्गत घालियो नीर जी॥[3]
धिन धिन रामजी मोटका।
जीभ तो एक ने गुण घणा, ते किम कहू परमाण जी।
आछी तो करणी सामी आपरी, साधु धन्ना री परे जाण जी॥ धिन०[4]

मुनि फतैचन्दजी की तपस्या और देहावसान

कवि ने मुनि फतैचन्दजी को 'काकडाभूत तपस्वी' की उपमा दी है।[5] आपकी अन्तिम तपस्या का वर्णन इस प्रकार प्राप्त है।

---

१. जय (भि० ज० र०) ४४। दो० ६, गा० १
२. जय (भि० ज० र०) ४४।६
तथा देखिए
सत गुण वर्णन ५,५।७,८ :
सीत तापादिक तपस्या कीधी घणी, विविध प्रकारै भारी।
त्यारी तपस्या तणो विवरो सुण्या, इचरज अधिको आयो।
कायर तो कांपै घणा, शूरा हर्ष सवायो॥
३. नेमीदासजी रचित कृति २।१०
४. वही २।२१
५. वही १।४

सवत् १८३१ मे दोनो सत वरलू पधारे। वहा मुनि फतैचन्दजी ने ३७ दिन के उपवास की तपस्या की।[1] पारण के दिन मुनि थिरपालजी भिक्षा के लिए गए तो अनेक घरो मे फिरने पर एक घर से वाजरी की घाट मिली। वह ठण्डी थी। उसे ले वे मुनि फतैचन्दजी के पास आए और सहज भाव से बोले "फता! ठडी घाट मिली है, इसी से पारण करो।" मुनि फतैचन्दजी ने निष्पृह भाव से पारण किया। घाट अपथ्य सिद्ध हुई और उसी दिन आप काल-प्राप्त हो गए।

सजम पाल्यौ हो वहु वर्ष श्रीकार, विचरत वरलू आविया।
धर्ममूर्त्ति हो ज्ञानी महा गुणधार, हलुकर्मी हर्षाविया।।
सुद्ध तपस्या हो फतैचन्दजी सैंतीस, अधिक कियो तप आकरौ।
बारू करणी हो ज्यारी विश्वावीस, क्षान्ति गुणे मुनिवर खरौ।।
पिता दीधौ हो तसु पारणौ आण, ठण्डी घाट वाजरी तणी।
फता करलै हो पारणौ पहिछाण, सरलपणै कहै सुत भणी।।
निरममती हो सुत सन्त निहाल, प्रगट अपथ्य कियो पारणो।
कर गयौ हो तिण जोग सू काल, सुमति जनम सुधारणो।।
एकतीसै हो वर्षे सम्वत् अठार, फतैचन्द फतै कर गया।
निरमोही हो तात निमल निहार, थिरचित सजम अति थया।।[2]

अनुमानत एक जगह मुनि फतैचन्दजी के काले-प्राप्ति का समय सवत् १८३२ का ज्येष्ठ उल्लिखित हुआ है।[3] पर वर्ष और महीने दोनो की ही अपेक्षा यह मन्तव्य ठीक नही।

---

१ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत-वर्णन गाथा १२२-२३ मे ३१ दिन के उपवास की तपस्या का उल्लेख है—

देश विदेशे विचरता रे करता शुद्ध विहार।
अठारै इकतीशे साल मे रे लाल वरलू पधारिया तप श्रीकार।
इकतीश दिना रो थौकडो रे फतैचन्दजी तिहा किध।
पारणे दिन पिता गोचरी रे लाल करण गया सु प्रसिद्ध।।

पर यह तथ्य नही है। अन्य सर्व कृतियो मे ३७ के थोकडे का उल्लेख है।

२ जय (भि० ज० र०) ४४।७-११

तथा देखिए—

(क) जय (शा० वि०) १।३,४

फतैचन्दजी बरलू जगीस, कीधा तप दिन प्रवर सैंतीस।
ठण्डी घाट बाजरा नी ताम, आण दीधी थिरपालजी स्वाम।।
फत्ता पारणो करले एह, मुनि आहार भोगवियो तेह।
तिण जोग सू कर गया काल, अष्टादश इकतीसै निहाल।।

(ख) ख्यात, क्रम २-३

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन १२२-१२६

३ जैन भारती (मासिक), वर्ष २, अक २ (फरवरी) १९६६, पृष्ठ ३३

जय (भि० ज० र०), जय (शा० वि०), ख्यात, हुलास (शा० प्र०) इन सबके अनुसार उनका देहान्त सं० १८३१ में हुआ था। सं० १८३२ का उल्लेख कहीं नहीं है।

मुनि थिरपालजी की तपस्या

पुत्र के वियोग से मुनि थिरपालजी जरा भी शोक-विह्वल नहीं हुए। संयम में और भी स्थिर-चित्त हो गये। धर्म का प्रचार करते हुए विचरने लगे।

संवत् १८३२ में मुनि थिरपालजी खैरवा पधारे और वहां तपस्या ठा दी। आपकी संलेपणा-तपस्या और संथारे का वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

आषाढ वद पख आदरे, तपस्या तणी तरवार जी।
चवदै तो दिन सामी पचखीया, अमावस ने रविवार जी॥
पूनम कीवो सामी पारणो, पारणे कीधा छै दोय जी।
सावन वद तीज सन दिने, बेला रो पारणो होय जी॥
आठ नो दिन वले आदरे, पारणे वले कीया आठ जी।
ताहि सवेण सेठा घणा, दिन-दिन आणंद गेहघाट जी॥
सावन सुद सातम दिने, सोम सही छै ओ वार जी।
आहार लीवो सामी इण दिने, वले बेलो कीयो अणगार जी॥
दोय-दोय सामीजी दोय कीया, पारणे पछै कीया बीस जी।
देखो जी साध सेंठा घणा, ज्यांरे नहीं छै राग नै रीस जी॥
बीस दिना रे सामी पारणे, तेला तो कीधा छै दोय जी।
भादवा सुद पख पूनमी, गुरवार पारणो होय जी॥
दस षट दिने वले पचखीया, अन्नादिक नहीं लियो आहार जी।
यां सोलै दिनां रे सामी पारणे, पचख दिया वले च्यार जी॥
तपस्या तणी तेग बांधने, मदमत गज चढ़िया एम जी।
च्यार तो दिन वले पचखीया, पारणो नव दिन नों नेम जी॥
नवां दिन रे सामी पारणे, पचख दिया छै वले पांच जी।
विरला तो जीव इसी आदरे, विरला री एहवी जाणो पोंहच जी॥
पाच तो दिन वली पचखीया, आठ दिनां रा किया पचखाण जी।
इसड़ी कीधी संलेषणा, साची तो पाली जिण आण जी॥
आसोज सुद पख आवियो, चवदस ने सनवार जी।
आठ दिना रे सामी पारणे, थोड़ो लीवो सुध आहार जी॥
इण विध कीधी सलेषणा, इण विध काटिया कर्म जी।
सरव पारणा सतरे किया, वले बधारे सामी धर्म जी॥
धिन-धिन साधूजी आपने, धिन-धिन आपरो ग्यान जी।
मुनिराज संथारो तो कर दियो, मन कीवो मेरु समान जी॥
सखरी कीधी महा साध जी, त्याग दिया तीन आहार जी।
कनें साध सुखोजी नीलोक जी, विने वियावच रे इधकार जी॥

दिन इगीयारे अणसण रह्या, पछे दिने कीधो काल जी।
साध परणामज राखिया, जिनवर वचन संभाल जी॥
सवत अठारे तेतीस मे, कार्तक मास वखाण जी।
वद इगियारस गुरु भणी, सामीजी रो अवसर जाण जी॥[1]

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार तप की तालिका निम्न रूप मे वनती है ?[2]

	तपस्या और पारण क्रम	संवत्	महीना तिथि दिन
१.	१४	१८३२	आपाढ सुदी १ सोमवार से आपाढ सुदी १४ रविवार[3]
	पारण (१)		आपाढ सुदी १५ सोमवार
२.	२	१८३३	सावन वदि २ बुधवार
	पारण (२)		सावन वदि ३ वृहस्पतिवार[4]
३.	८		सावन वदि ११ शुक्रवार
	पारण (३)		सावन वदि १२ शनिवार
४	८		सावन सुदी ६ रविवार
	पारण (४)		सावन सुदी ७ सोमवार[5]
५	२		सावन सुदी ९ बुधवार
	पारण (५)		सावन सुदी १० वृहस्पतिवार
६.	२		सावन सुदी १२ शनिवार
	पारण (६)		सावन सुदी १३ रविवार
७.	२		सावन सुदी १५ मगलवार
	पारण (७)		भादवा वदि १ वुधवार
८.	२०		भादवा सुदी ६ मगलवार
	पारण (८)		भादवा सुदी ७ वुधवार

१ नेमीदासजी रचित कृति २।१-५, ७-९, ११-१६, २३, २५

२ ढाल के वर्णन मे वार की एक अशुद्धि को तालिका की पाद-टिप्पणी मे सूचित कर दिया गया है। घटी तिथियो का सकेत भी वही दिया है। तपस्या का वर्णन तभी ठीक बैठता है जव कि भाद्र मास दो माने जाए, हालाकि चरित्रावली मे मुद्रित ढालो मे वैसा उल्लेख नही है।

३. १४ दिन की तपस्या का त्याग आपाढ वदी १५ रविवार के दिन किया गया प्रतीत होता है (गा० १)। तपस्या आपाढ सुदी १ के सोमवार से प्रारभ हुई।

४ मूल मे यहा शनिवार है वह प्रत्यक्ष भूल है। वृहस्पतिवार होना चाहिए।

५ तपस्या के दिन और वारो को मिलाने से स्पष्ट है कि सावन वदि १३ रविवार और सावन सुदी ७ सोमवार के वीच एक मिती घटी है।

तपस्या और पारण क्रम		संवत्	महीना तिथि दिन
९.	३		भादवा सुदी १० शनिवार
	पारण (९)		भादवा सुदी ११ रविवार
१०.	३		भादवा सुदी १४ बुधवार
	पारण (१०)		भादवा सुदी १५ बृहस्पतिवार
११	१६		दूजा भादवा सुदी १ शनिवार
	पारण (११)		दूजा भादवा सुदी २ रविवार
१२	४		दूजा भादवा सुदी ६ बृहस्पतिवार
	पारण (१२)		दूजा भादवा सुदी ७ शुक्रवार
१३	४		दूजा भादवा सुदी ११ मंगलवार
	पारण (१३)		दूजा भादवा सुदी १२ बुधवार
१४	६		आसोज वदि ६ शुक्रवार
	पारण (१४)		आसोज वदि ७ शनिवार
१५.	५		आसोज वदि १२ बृहस्पतिवार
	पारण (१५)		आसोज वदि १३ शुक्रवार
१६	५		आसोज सुदी ३ बुधवार
	पारण (१६)		आसोज सुदी ४ बृहस्पतिवार
१७.	८		आसोज सुदी १३ शुक्रवार
	पारण (१७)		आसोज सुदी १४ शनिवार[1]
१८	११ दिन का संथारा		कार्तिक वदि ११ बृहस्पतिवार

उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि मुनि थिरपालजी ने संवत् १८३२ आषाढ सुदी १ से संलेषणा तप आरम्भ किया। संवत् १८३३ कार्त्तिक वदि १ को संथारा ग्रहण किया जो संवत् १८३३ कार्तिक वदि ११ को पूर्ण हुआ। ११ दिन का संथारा आया।[2]

मुनि थिरपालजी ने संलेखना शुरू करने के दिन से संथारा करने तक कुल १७ पारणे

---

१ तपस्या के दिन और वारों के मिलाने से स्पष्ट है कि आसोज सुदी ५ और आसोज सुदी १४ के बीच एक तिथि घटी है।

२ हुलास (शा० प्र०) (भिक्षु मन वर्णन) १२७, १२८ में लिखा है :

शहर खैरव आया साधा कने रे लाल, संलेषणा करवी मांडी तिण वार।
निद्रा रहिता चार मास वलि शेषाकाल में रे, बहु विध तप कियो सार॥

संलेषणा संवत् १८३२ के शेष काल (आषाढ) में शुरू की थी।
संथारा सं० १८३३ के कार्तिक में ग्रहण किया और सम्पन्न हुआ।

किए[1], जैसा कि उक्त तालिका के पारण-क्रमाक से स्पष्ट है। अन्य शब्दो मे अपने जीवन के अन्तिम ४ महीने २६ दिनो मे आपने केवल १७ बार ही आहार लिया। पारण मे आप स्वल्प मात्रा मे आहार लेते। आषाढ सुदी १५ के दिन के पारण को अलग करने से चातुर्मास मे १६ पारण होते है।

जय (भि०ज०र०) मे तपस्या का वर्णन नही है। पर वहा उल्लेख है कि आपने चातुर्मास भर मे १४ पारण किए।[2]

इससे पता चलता है कि उस समय जयाचार्य के सम्मुख आपके तप की जो तालिका थी उसमे उक्त वर्णन से दो तपस्याएँ कम थी।

जय (शा० वि०) उक्त कृति के बाद की कृति है। उसमे तपस्या का विवरण निम्नानुसार उल्लिखित है :

१४। पा। २। पा। ८। पा। ८। पा। २। पा। २। पा। २०। पा। ३। पा। ३। पा। १६। पा। ४। पा। ४। पा। ६। पा। ५। पा। ५। पा। ८। पा। सथारा ११ दिन का।[3]

ख्यात मे तपस्या का वर्णन ठीक इसी रूप में प्राप्त है।[4] जय (शा०वि०) और ख्यात मे वर्णित तपस्या क्रम मे २० की तपस्या के पूर्व दो बेलो का उल्लेख है, जब कि नेमीदासजी ने ३ बेलो का उल्लेख किया है। एक बेले की तपस्या का उल्लेख कम होने से जय (शा० वि०) और ख्यात के अनुसार कुल पारणो की सख्या १६ और चातुर्मास के पारणो की सख्या १५ उल्लिखित हुई है।

ख्यात और जय (शा० वि०) एक दूसरे पर आधारित है अथवा किसी एक मूल स्रोत पर। इसी कारण दोनो का वर्णन समान है और दोनो मे एक बेले का उल्लेख कम है

हुलास (शा० प्र०) मे तपस्या का वर्णन इस प्रकार है

१४। पा। ८। पा। ८। पा। २। पा। २। पा। १६। पा। ३। पा। ३। पा। २४। पा। ३। पा

---

१ नेमीदास रचित कृति २।१३ :

इण विधि कीधी सलेखणा, इण विध काटिया कर्म जी।
सरव पारणा सतरे किया, वले वधारे सामी धर्म जी॥

२ जय (भि०ज०र०) ४४।१२

मुनि आयौ हो खैरवा शहर माहि २, सलेखणा मण्डिया सही।
चिहु मासे हो पारणा चित्त चाहि २, आसरै चवदे किया वही॥

३ जय (शा०वि०) १।५-७

खैरवा मा स्वामी थिरपाल, पचख्या दिन चवदै विशाल।
पारणो कर छठ तप जाण, पछै दोय अठाई पिछाण॥
दोय वेला करी सुजगीश, मुनि पचख दिया दिन वीस।
दोय तेला सोलै दिन हेर, दोय चोला ने नव दिन फेर॥
दोय पचोला आठ उदार, पछै परख दियो सथार।
अणसण दिवस इग्यारा नो आयो, सम्वत् अठारै बतीसै तायो॥

४ ख्यात, क्रम २-३

।३। पा ।१६। पा ।४। पा ।४। पा ।६। पा ।५। पा ।५। पा ।८। पा । संथारा ११ दिन का ।[1]

ख्यात मे १४ के थोकडे के बाद एक बेले का उल्लेख है, जिसका यहा अभाव है। यहा २० के थोकड़े के पूर्व १६।३।३ की तपस्या का उल्लेख है, यह भी ख्यात मे अप्राप्य है। शेष वर्णन ख्यात के अनुसार है। अत जय (शा०वि०) से भी मिलता है। पूर्व परिच्छेद मे नेमीदासजी की कृति और जय (शा० वि०) एव ख्यात मे जो अन्तर बताया गया है उसमे नेमीदासजी की कृति और हुलास (शा० प्र०) मे उक्त अन्तर अधिक है। हुलास (शा० प्र०) के अनुसार पारण सख्या १८ आती है।

उक्त सब वर्णनो मे नेमीदासजी की कृति का वर्णन ही शुद्ध और मान्य है क्योंकि वह तिथि और वार सहित पूरा ब्यौरेवार है। सभी वर्णनो मे उल्लिखित है कि मुनि थिरपालजी को ११ दिन का सथारा आया। नेमीदासजी ने विशेष ब्यौरा देते हुए लिखा है कि कार्त्तिक वदि १ सोमवार के दिन सथारा आरम्भ किया था, जो उसी वर्ष की कार्त्तिक वदि ११ वृहस्पतिवार के दिन सम्पन्न हुआ। इस तरह ११ दिन का सथारा आया।[2]

मुनि सुखजी और तिलोकचन्दजी आपके पास थे।[3]

मुनि थिरपालजी का स्वर्गवास संवत्

मुनि थिरपालजी का स्वर्गवास किस वर्ष मे हुआ यह विचारणीय है। इस सम्बन्ध मे निम्न उल्लेख प्राप्त है

१ जयाचार्य कृत पण्डित-मरण ढाल (१।१) मे लिखा है—

फतैचन्दजी बगलू शहर मे, संथारो कीयो इगतीसे ए।
थिरपालजी खैरवा शहर मे, सथारो वर्ष बतीसे ए॥

---

१ हुलास (शा० प्र०) (भिक्षु सत वर्णन) गा० १२८---१३२ :
तिहा रहिता च्यार मास वलि शेषकाल मे रे, बहु विध तप किया सार।
धुर चवदा रो थोकडो रे लाल, वली अठाई दोय श्रीकार॥
फुन द्वय बेला वलि कियो रे, सोला नो थोकडो एक।
पाछे दोय तेला किया रे लाल, कर चोवीस नो थोकडो सुविवेक॥
दोय तेला फिर सोला नो थोकडो रे, पछै दोय चोला फिर किद्ध।
फुन नव नो कियो थोकडो रे लाल, किया दोय पचोला प्रसिद्ध॥
शेष अठाई नो करि पारणो रे, घणै तीखै परिणाम॥
निज मन सू सथारो पचखियो रे लाल, सूरपणै शिव काम॥
इग्यारा दिन थी सथारो सीझीयो रे, अठारै बतीसै श्रीकार।
पिता-पुत्र विहु सयमी रे लाल, कीधो भव-निस्तार॥

२ सेठिया मुनि वर्णन एव बम्ब (मुनि गुण प्रभाकर) मे ३१ दिन का अनशन लिखा है, वह गलत है।

३ नेमीदासजी रचित कृति की गधैयाजी के सग्रह की प्रति मे सम्बन्धित गाथा मे तिलोकचन्दजी का नाम नही है।

२. जय (भि०ज०र०) ४४।१३ मे उल्लेख है
थिर चित्त सू हो मुनिवर थिरपाल २, वर्ष वतीसै विचारियौ।
कर तपस्या हो मुनि कर गयो काल २, जीतव जन्म सुधारियौ ॥
३ जय (शा०वि०) १।७ मे कहा है .
अणसण दिवस इग्यारा नो आयो।
सवत् अठारै वत्तीसै तायो ॥
४. सत गुण वर्णन ढाल ५५।९ मे मिलता है .
फतैचन्दजी वरलू मझै, सथारो इकत्तीशे।
थिरपालजी परभव गया, अष्टादश बत्तीशै ॥
५ जिन शासन महिमा ढाल ७।१ का उल्लेख है
जिन शासन मे पिता-पुत्र नी जोड कै, स्वामी थिरपालजी फतैचन्दजी भला जी।
सथारा कर पूरया मन रा कोड कै, इगतीशे वतीसे वर्ष मे जी ॥
६ ख्यात २।३ मे उल्लेख है . काम आया १८३२
७. हुलास(शा० प्र०) (भिक्षु सत वर्णन) १३५ मे कहा है :
इग्यारा दिन थी सथारो सीझीयो रे, अठारै बतीशै श्रीकार ॥

उपर्युक्त उद्धरणो मे केवल प्रथम मे सथारा खैरवा मे सम्पन्न होने का उल्लेख है। सभी मे सथारा सम्पन्न होने का वर्प सवत् १८३२ वताया गया है। किसी मे सथारा सम्पन्न होने की तिथि प्राप्त नही है।

हमने तपस्या का विवरण प्रस्तुत करते हुए नेमीदासजी की जिस कृति के उद्धरण दिए है, वह श्रावक गुमानमलजी लूणावत, पीपाड के प्राचीन पोथे मे सग्रहीत है। जैसा कि वताया जा चुका है, इस कृति के अनुसार मुनि थिरपालजी का सथारा सवत् १८३३ कार्तिक वदी ११ के दिन खैरवा मे सम्पन्न हुआ था। उन्हे ११ दिन का सथारा आया था।

इस तरह देखा जाता है कि कई कृतियो के अनुसार सथारा सवत् १८३२ मे सम्पन्न हुआ था और एक कृति के अनुसार सवत् १८३३ मे। अव देखना यह है कि उक्त दोनो वर्पो मे सथारे का कौन सा वर्प सही है।

हमारे मत से सवत् १८३२ के कार्तिक मास मे स्वर्गवास होने की वात निम्न आधारो से नही टिकती :

१. युवराज पदवी का लिखित आचार्य भिक्षु द्वारा सवत् १८३२ की मिगसर वदी ७ का लिखा हुआ है। देखा जाता है कि इस लिखित मे मुनि थिरपालजी के हस्ताक्षर है और मुनि फतैचन्दजी के नही है। इस प्रकार सवत् १८३२ के कार्तिक मास मे आपके दिवगत होने की वात तथ्यपूर्ण नही ठहरती।

२ संवत् १८३२ जेष्ठ सुदी ११ के लिखित मे भी मुनि थिरपालजी के हस्ताक्षर है। इससे भी उक्त मिति तक आपके विद्यमान होने का अकाट्य प्रमाण मिलता है और सवत् १८३२ के चातुर्मास मे देवलोक होने की वात कट जाती है।

३. सवत् १८३२ का आचार्य भिक्षु का चातुर्मास खैरवा मे था। आप अथवा आपके साथ के मुनि सुखजी एव तिलोकचन्दजी उनके साथ नही थे। जव खैरवा मे संवत् १८३२ मे

।३। पा ।१६। पा ।४। पा ।४। पा ।६। पा ।५। पा ।५। पा ।८। पा । सथारा ११ दिन का ।[1]

ख्यात मे १४ के थोकडे के बाद एक बेले का उल्लेख है, जिसका यहाँ अभाव है। यहाँ २० के थोकडे के पूर्व १६।३।३ की तपस्या का उल्लेख है, यह भी ख्यात मे अप्राप्य है। शेष वर्णन ख्यात के अनुसार है। अत जय (शा०वि०) से भी मिलता है। पूर्व परिच्छेद मे नेमीदासजी की कृति और जय (शा० वि०) एव ख्यात मे जो अन्तर बताया गया है उसमे नेमीदासजी की कृति और हुलास (शा० प्र०) मे उक्त अन्तर अधिक है। हुलास (शा० प्र०) के अनुसार पारण सख्या १८ आती है।

उक्त सब वर्णनो मे नेमीदासजी की कृति का वर्णन ही शुद्ध और मान्य है क्योंकि वह तिथि और वार सहित पूरा व्यौरेवार है। सभी वर्णनो मे उल्लिखित है कि मुनि थिरपालजी को ११ दिन का सथारा आया। नेमीदासजी ने विशेष व्यौरा देते हुए लिखा है कि कार्तिक वदि १ सोमवार के दिन सथारा आरम्भ किया था, जो उसी वर्ष की कार्तिक वदि ११ बृहस्पतिवार के दिन सम्पन्न हुआ। इस तरह ११ दिन का सथारा आया।[2]

मुनि सुखजी और तिलोकचन्दजी आपके पास थे।[3]

मुनि थिरपालजी का स्वर्गवास सवत्

मुनि थिरपालजी का स्वर्गवास किस वर्ष मे हुआ यह विचारणीय है। इस सम्बन्ध मे निम्न उल्लेख प्राप्त है

१ जयाचार्य कृत पण्डित-मरण ढाल (१।१) मे लिखा है—

फतैचन्दजी बरलू शहर मे, सथारो कीयो इगतीसे ए।
थिरपालजी खैरवा शहर मे, सथारो वर्ष बतीसे ए॥

---

१ हुलास (शा० प्र०) (भिक्षु सत वर्णन) गा० १२८---१३२

तिहा रहिता च्यार मास वलि शेषकाल मे रे, बहु विध तप किया सार।
धुर चवदा रो थोकडो रे लाल, वली अठाई दोय श्रीकार॥
फुन द्वय वेला वलि कियो रे, सोला नो थोकडो एक।
पाछे दोय तेला किया रे लाल, कर चोवीस नो थोकड़ो सुविवेक॥
दोय तेला फिर सोला नो थोकडो रे, पछै दोय चोला फिर किद्ध।
फुन नव नो कियो थोकडो रे लाल, किया दोय पचोला प्रसिद्ध॥
शेष अठाई नो करि पारणो रे, घणै तीखै परिणाम॥
निज मन सू सथारो पचखियो रे लाल, सूरपणै शिव काम॥
इग्यारा दिन थी सथारो सीझीयो रे, अठारै बतीसै श्रीकार।
पिता-पुत्र बिहु सयमी रे लाल, कीधो भव-निस्तार॥

२ सेठिया मुनि वर्णन एव वम्ब (मुनि गुण प्रभाकर) मे ३१ दिन का अनशन लिखा है, वह गलत है।

३. नेमीदासजी रचित कृति की गधैयाजी के सग्रह की प्रति मे सम्बन्धित गाथा मे तिलोकचन्दजी का नाम नहीं है।

२ जय (भि०ज०र०) ४४।१३ मे उल्लेख है :

थिर चित्त सू हो मुनिवर थिरपाल २, वर्ष वतीसै विचारियौ।
कर तपस्या हो मुनि कर गयो काल २, जीतव जन्म मुधारियौ ॥

३ जय (शा०वि०) १।७ मे कहा हे .

अणसण दिवस इग्यारा नो आयो।
सवत् अठारै वत्तीसै तायो ॥

४. सत गुण वर्णन ढाल ५५।९ मे मिलता है .

फतैचन्दजी वरलू मझै, सथारो इकत्तीशे।
थिरपालजी परभव गया, अष्टादश वत्तीशै ॥

५. जिन शासन महिमा ढाल ७।१ का उल्लेख है·

जिन शासन मे पिता-पुत्र नी जोड कै, स्वामी थिरपालजी फतैचन्दजी भला जी।
सथारा कर पूरया मन रा कोड कै, इगतीशे वतीसे वर्ष मे जी ॥

६. ख्यात २।३ मे उल्लेख है. काम आया १८३२

७. हुलास(शा० प्र०) (भिक्षु सत वर्णन) १३५ मे कहा है·

इग्यारा दिन थी सथारो सीझीयो रे, अठारै वतीशै श्रीकार ॥

उपर्युक्त उद्धरणो मे केवल प्रथम मे सथारा खैरवा मे सम्पन्न होने का उल्लेख है। सभी मे सथारा सम्पन्न होने का वर्ष सवत् १८३२ वताया गया है। किसी मे संथारा सम्पन्न होने की तिथि प्राप्त नही है।

हमने तपस्या का विवरण प्रस्तुत करते हुए नेमीदासजी की जिस कृति के उद्धरण दिए हैं, वह श्रावक गुमानमलजी लूणावत, पीपाड के प्राचीन पोथे मे सग्रहीत है। जैसा कि वताया जा चुका है, इस कृति के अनुसार मुनि थिरपालजी का संथारा सवत् १८३३ कार्तिक वदी ११ के दिन खैरवा मे सम्पन्न हुआ था। उन्हे ११ दिन का संथारा आया था।

इस तरह देखा जाता है कि कई कृतियो के अनुसार सथारा सवत् १८३२ मे सम्पन्न हुआ था और एक कृति के अनुसार सवत् १८३३ मे। अव देखना यह है कि उक्त दोनो वर्षो मे सथारे का कौन सा वर्ष सही है।

हमारे मत से सवत् १८३२ के कार्तिक मास मे स्वर्गवास होने की वात निम्न आधारो से नही टिकती :

१. युवराज पदवी का लिखित आचार्य भिक्षु द्वारा सवत् १८३२ की मिगसर वदी ७ का लिखा हुआ है। देखा जाता है कि इस लिखित मे मुनि थिरपालजी के हस्ताक्षर है और मुनि फतैचन्दजी के नही है। इस प्रकार सवत् १८३२ के कार्त्तिक मास मे आपके दिवगत होने की वात तथ्यपूर्ण नही ठहरती।

२. सवत् १८३२ जेष्ठ सुदी ११ के लिखित मे भी मुनि थिरपालजी के हस्ताक्षर है। इससे भी उक्त मिति तक आपके विद्यमान होने का अकाट्य प्रमाण मिलता है और सवत् १८३२ के चातुर्मास मे देवलोक होने की वात कट जाती है।

३. सवत् १८३२ का आचार्य भिक्षु का चातुर्मास खैरवा मे था। आप अथवा आपके साथ के मुनि सुखजी एव तिलोकचन्दजी उनके साथ नही थे। जव खैरवा मे सवत् १८३२ मे

आपका चातुर्मास था ही नही तव सवत् १८३२ के कार्तिक मास मे आपका स्वर्गवास कैसे सभव है।

४. हमने अनुमान से बताया था कि --आपकी तपस्या का विवरण दो भाद्र मास मानने मे घटित होता है, यद्यपि लूणावतजी के पोथे मे सग्रहीत नेमीदासजी की ढाल मे दो भाद्र मास होने का सूचक कोई पद प्राप्त नही है। अव इस कृति की एक अन्य प्रति गधैयाजी के संग्रहालय से उपलब्ध हुई है, जिसमे निम्न पद उल्लिखित है

प्रथम भाद्रवो पूरो थयो तपस्या किधी मुनि सार जी।
वीजै भाद्रवै वली तप उचरे ते सुणज्यो चित्त ल्याय जी ॥

इसमे प्रमाणित होता है कि आपका स्वर्गवास उस वर्ष मे हुआ था जिस वर्ष मे भाद्र मास दो थे। सवत् १८३२ मे दो भाद्र मास नही थे। सवत् १८३३ मे थे। अत आपका स्वर्गवास सवत् १८३२ नही १८३३ ठीक है।

ऐसा लगता है कि नेमीदासजी को सम्यक्त्व की प्राप्ति मुनि थिरपालजी के द्वारा ही हुई थी। मुनि थिरपालजी को उन्होने गुरु के रूप मे धन्य कहा है।[1] इतना ही नही, उन्होने उनके जीवन के ऐसे वृत्त भी अपनी कृति मे दिये है जो अन्यत्र नही मिलते। ऐसी स्थिति मे मुनि थिरपालजी का देहावसान कार्त्तिक वदि ११ स० १८३३ को मानना ही समीचीन है।

जयाचार्य की कृतियो और ख्यात मे काल-प्राप्ति सवत् एक दूसरे के अनुरूप है। सम्भव है ख्यात जयाचार्य की कृति की अनुकृति हो अथवा ऐसा कोई मूल आधार या परम्परा रही हो जिसके आधार पर दोनो मे समान उल्लेख हुआ हो। यह स्पष्ट है कि एक परम्परागत भूल की ही पुनरावृत्ति उक्त कृतियो मे हुई है।

श्रावक नेमीदासजी की कृति अति प्रसिद्ध न हो पाने मे सम्भव है वह जयाचार्य के युग तक भूली जा चुकी हो। कम से कम वह जयाचार्य के सम्मुख नही आई, इतना तो स्पष्ट ही है। यही कारण है कि वास्तविक स्वर्गवास सवत् का उल्लेख न हो पाया।

एक लेख मे उल्लिखित है "स० १८३१ के ज्येष्ठ मास मे मुनि फतैचन्दजी का स्वर्गवास हो गया...। मुनि थिरपालजी अकेले रह गये। अत वहाँ (वरलू) से विहार कर खैरवा मे अन्य साधुओ के पास आ गये और वही चातुर्मास किया। मुनि थिरपालजी सवत् १८३२ कार्त्तिक कृष्णा एकादशी के दिन दिवगत हुए। मुनि फतैचन्दजी के दिवगत होने के पश्चात् लगभग पौने पाँच महीने मे ही उन्होने भी शरीर त्याग दिया।[2]

ख्यात मे लिखा है "फतैहचन्द फते करी जद पिता विहार करी शहर खैरवा साधां कनै आय सलेखणा सरू करी· ·पछै सथारो पचख्यो।"[3]

इसी का अनुसरण कर यति हुलासचन्दजी ने लिखा .

---

१. नेमीदासजी रचित कृति २। २७

विन गुरु सामी म्हारा आपने, ओ धर्म समकत दीध जी ।
श्रावक नेमीदास वीनवे, म्हारो सफल जमारो सामी कीध जी ॥

२. जैन भारती (मासिक) वर्ष २ अ० २ (फरवरी सन् १९६९) पृष्ठ ३३, ३४

३. ख्यात क्रम २-३

अपत्थ आहार ना जोग थी रे, रात्रिये कीधो काल।
फतैचन्दजी फते करी रे लाल, लह्यो स्वर्ग उजमाल।।
पिता थिरपालजी रे, तिहा थी करी विहार।
शहर खैरव आय साधा कने रे लाल, सलेपणा करवी माडी तिणवार।।[1]

उपर्युक्त उल्लेखो मे ऐसा आभास होने लगता है कि मुनि थिरपालजी, मुनि फतैचन्दजी के स्वर्गवास सं० १८३१ के बाद बरलू से सीधे खैरवा पधारे और सलेपणा तप करते हुए अन्त मे संथारा किया जो संवत् १८३२ मे सम्पन्न हुआ।

उद्धृत लेख का निष्कर्ष उपर्युक्त दोनो तथा ऐसे ही अन्य आधार पर आधारित है पर वह सही नही है।

मुनि फतैचन्दजी का देहान्त जैसा कि उल्लेख हो चुका है सवत् १८३१ के शेषकाल मे हुआ था और मुनि थिरपालजी का संवत् १८३३ की कार्त्तिक कृष्णा ११ के दिन। इस तरह बरलू से सीधे खैरवा मे जाकर सलेपणा-सथारा करने की घटना सिद्ध नही होती। दोनो के देहावसान के मध्य कम से कम १ वर्ष ५ महीने का अन्तराल रहता है, लगभग पौने पाच महीने का नही। मुनि फतैचन्दजी के पण्डित मरण के पश्चात् एक वर्ष पाच महीने से अधिक समय बीत जाने पर ही मुनि थिरपालजी ने खैरवे मे चातुर्मास के पूर्व सलेपणा प्रारम्भ कर चातुर्मास मे पण्डित-मरण प्राप्त किया था। इस बीच काफी विचरण और उपकार किया था।[2]

इसी तरह मुनि फतैचन्दजी का देहान्त ज्येष्ठ महीने मे हुआ, यह अनुमान भी सही नही। देहान्त शेषकाल मे हुआ था पर किस महीने मे यह कहा नही जा सकता।

सलेखणा तपस्या मे भी मुनि थिरपालजी धर्म चर्चा करते एव नय आदि सिखाते थे :

नर-नारी आवै बहु वादवा, सामी चरचा को करण सधीर जी।
बले चवदे तो नय सिखावता, देही कर दीधी जजीर जी।।[3]

आपके सथारे के समय जो धर्मोद्योत हुआ, उसका वर्णन निम्न रूप मे मिलता है :

नर ने नारी इचरज थया, धन सामी अणसण कीध जी।
वृन्द रा वृन्द आवे कइ देखवा, सामीजी रे मूडे व्रत लीध जी।। धिन०
केइक चोथो तो व्रत आदरे, केई लेवे बारहव्रत सूर जी।
समाया तणो त्रिहो नही परे, तिथ परवी पोसा रो पूर जी।। धिन०
केइक भाई-बाई कहे, काचा पानी रो म्हाने त्याग जी।
तपस्या तो करे कई अत घणी, धिन-धिन इधक वैराग जी।। धिन०
केइक श्रावक करे अग्निग रो, सचितादिक छोडे मन हूस जी।
सथारो सीझे सामी आपरो, ज्या लग महिथुन रो सूस जी।। धिन०

---

१. हुलास (शा० प्र०) (भिक्षु सत वर्णन) १२६-१२७
२. नेमीदासजी रचित कृति १।१६-१७
इण विध विचरे लोक मे, इण विध ओ धर्म पाले जी।
महाव्रत पाले मोटका, साम दोषण सगला टाले जी।
विचरता २ लोक मे, आया खैरवा शहर मझारो जी।।
३. नेमीदास जी रचित कृति २।६

४. मुनि वीरभाणजी

मुनि वीरभाणजी के गृहस्थ-जीवन का शासन के किसी भी ग्रथ मे कोई परिचय प्राप्त नही है। मुनि सागरमलजी 'श्रमण' ने उनका परिचय निम्न शब्दो मे दिया है—मुनि वीरभाणजी सोजत (मारवाड) के निवासी थे। वे जाति से धीगड़ ओसवाल थे। उनका जन्म वि० स० १७९३-९४ के आसपास का था। माता-पिता के वियोग मे वे किसी परिजन के यहा पले थे।

आचार्य रुघनाथजी के सघ मे दीक्षा-पर्याय मे ये मुनि टोकरजी (५) और हरनाथजी (६) से वडे थे। आचार्य रुघनाथजी के सघ मे ये सं० १८१० मे दीक्षित हुए थे।'

ये आचार्य भिक्षु के साथ आचार्य रुघनाथजी से पृथक् हुए थे और आपाढ शुक्ला पूर्णिमा स० १८१६ के दिन नई दीक्षा ग्रहण की थी। इस तरह ये भी आदि तेरह सतों में से थे।

जव आचार्य रुघनाथजी ने राजनगर के श्रावको को अनुकूल करने के लिए भिक्षु को वहा भेजा तव ये भी उनके साथ थे। स० १८१५ के राजनगर चातुर्मास के वाद जव भिक्षु ने वहां से प्रस्थान किया तव वीच के छोटे गावो के कारण दो दलो मे विभक्त होकर विहार किया। वीरभाणजी का दल भिक्षु के पूर्व ही आचार्य रुघनाथजी के पास पहुच गया था। भिक्षु के निपेध के वावजूद उन्होने अधैर्यवश राजनगर का वृत्तात ऐसे ढंग से वताया कि आचार्य रुघनाथजी का मन भिक्षु के प्रति खट्टा हो गया।

राजनगर के श्रावको से वातचीत होने पर भिक्षु को उनकी वात मे सार दिखाई दिया तव उन्होने आगमो को दो वार पढा और श्रावको की शकाओ को सत्य पाकर उनसे कहा कि आचार्य रुघनाथजी के दर्शन कर शका की वातो को दूर करवा कर शुद्ध मार्ग पर आने का निवेदन करेगे। चातुर्मास के वाद दो मार्गो से विहार करते समय भिक्षु ने मुनि वीरभाणजी से कहा—पहले पहुंच जाए तो यहा की वात की चर्चा न करे। मै पहुच कर सारी वाते समझा कर निवेदन करूगा। वेणीरामजी पहले पहुच गए। आचार्य रुघनाथजी ने उनसे पूछा—श्रावको की शंकाए दूर हुई या नही ? तव वीरभाणजी ने धैर्य न रखते हुए कहा—श्रावको की शकाए ठीक है। हम लोगो की श्रद्धा और आचार शुद्ध नही। मै तो आपको नमूना मात्र वता रहा हू। पूरी वात तो भीखणजी आएगे तव वे वतावेगे। ऐसा सुनते ही आचार्य रुघनाथजी का मन फट गया। भिक्षु ने पहुचकर दर्शन किए तव उनके मस्तक पर हाथ नही रखा। भिक्षु ने विनयपूर्वक

---

१. जैन भारती' वर्ष २४ अक १, २, ३, पृ० ५

उन्हे प्रसन्न किया और सारी वात उनके सामने प्रस्तुत कर सही मार्ग पर आने की प्रेरणा दी। इसका मूल वर्णन इस प्रकार है

सूत्र विविध निर्णय करी, गाढी मन मे धार।
सम्यक्त चारित विहू नही, एहवो कियो विचार॥
भाया ने भिक्खु कह्यो, थे तो साचा सोय।
म्हे झूठा गुरु सू मिली, शुद्ध मग लेस्या सोय॥
राजनगर थी कियो विहार चौमासो उतरिया सार।
आवै मुरधर देश मझार रे॥
वीचै गाम नान्हा जाणी सोय, दोय साथ किया अवलोय।
सीख इण पर दीधी जोय रे॥
वीरभाणजी ने कहै वाय, जो थै पहिला जावौ गुरु पाय।
तो या वात म करज्यो काय रे॥
पहिला वात सुण्या भिडकाय, मनखच हुवै मन माय।
तो पछै समझाया दोरा जाय रे।
कला विनय करी हू कहस्यू, दिल श्रद्धा वैसाडी देसू।
युक्ति सू समझाई लेसू रे॥
स्वामी एम त्यानै समझाया, वीरभाणजी आगूच आया।
रुघनाथजी सोजत पाया रे॥
कर जोडी नै वन्दना कीधी, पूछै द्रव्य गुरु प्रसिद्धि।
भाया री शका मेट दीधी रे॥
वीरभाणजी वोल्या वायो, भाया तो साचौ भेदज पायो।
मन शक हुवै तो मिटायो रे॥
द्रव्य गुरु कहै यू काई बोलै, वीरभाणजी पाछौ झखौले।
कुडौ तो भिक्खु पास अतोल रे॥
म्हारै कन्है तो वानगी तास, कूडौ रास भीखणजी पास।
इम साभल हुआ उदास रे॥
वीरभाण रे नही समाही, तिण सू आगूच वात जणाई।
हिवै आया भिक्खु ऋपराई रे॥[1]

हिव भिक्खु द्रव्य गुरु भणी, वन्दै वे कर जोड।
माथै हाथ दियौ नही, चश्मा देख्या और॥
कर जोडी ने इम कहै, यू क्यू स्वामीनाथ।
चित्त उदास किण कारणे, माथै न दियौ हाथ॥
द्रव्य गुर भाखै तोहरै, शक पडी सुविचार।
तिण सू कर सिर ना दियौ, मन पिण फाटो धार॥[2]

---

१. जय (भि० ज० र०) ३।दो० ६, ७, गा० १, ५-७, ६-१२, १७-१६
२. वही, ४।दो० १, ३, ४

भिक्षु ने विनयपूर्वक कहा—यदि आप समझते है कि मेरे मन मे शका हो गई है तो मुझे प्रायश्चित्त दे शुद्ध करे। इस तरह आचार्य रुघनाथजी को नम्रता से प्रसन्न किया। बाद मे अवसर देखकर सारी बात निवेदन की और शुद्ध मार्ग पर आने की प्रेरणा दी। बार-बार प्रयत्न करने पर भी असफल हुए तब उनसे पृथक् हो गए। मुनि वीरभाणजी ने उनका साथ दिया।

जयाचार्य के अनुसार भिक्षु ने इन्हे स० १८३२ मे गण से बहिर्भूत कर दिया।[1] इन्हे गण से दूर करने का कारण मूलत इनकी अविनयी प्रकृति थी। उनमे विनय का बड़ा अभाव था।

वर्ष किता वीरभाणजी, मुणिन्द मोरा रह्या भिक्खु रै हजूर हो।
अविनय अवगुण आकरी, मुणिन्द मोरा तिण सू निषेध नै कियो दूर हो॥[2]

वीरभाणजी को गण से दूर करने की घटना के चार विवरण इस प्रकार है

१. उन्होने आचार्य भिक्षु की आज्ञा का उल्लघन किया

विगड्यो पछै वीरभाण, आज्ञा लोप्या सू स्वामी अलगो कियो।[3]

इन्होंने किस आज्ञा का उल्लघन किया, इसका यहा उल्लेख नही है।

२. वीरभाणजी से भिक्षु ने कहा "पन्ना को दीक्षा देने की आज्ञा नही है। यदि दीक्षा दी तो तुम्हारे साथ आहार-पानी का सभोग नही रहेगा।" इस तरह निषेध कर देने पर भी वीरभाणजी ने पन्ना को दीक्षा दे दी। इस पर भिक्षु ने आहार-पानी का सभोग तोड दिया।[4]

३. ···वीरभाणजी पढे-लिखे तो बहुत थे, पर कई वर्षो के बाद अविनय दिखाने लगे। चेले करने की अति चाह रखते। उनकी पन्ना को दीक्षा देने की इच्छा हुई, पर उसे अयोग्य जानकर भिक्षु ने उसे दीक्षित करने की आज्ञा नही दी। बाद मे भिक्षु ने 'विनीत-अविनीत'[5] और 'साधु सीखामणी'[6] आदि ढाले रची। वीरभाणजी ने झूठ-मूठ उन्हे अपने पर लक्षित माना। विशेष अविनीत जानकर भिक्षु ने आहार-पानी तोड दिया।[7]

घटना के दूसरे और तीसरे वर्णन मे एक महत्त्वपूर्ण अतर यह है कि जहा पहले मे पनजी को दीक्षित करने की बात का उल्लेख है वहा दूसरे मे पनजी को दीक्षा देने की भावना-मात्र का उल्लेख है।

४. उनके निष्कासन का प्राचीनतम विवरण इस प्रकार मिलता है :

वीरभाणजी अविनयपूर्ण व्यवहार करने लगे। जिह्वा-लोलुप हो गए। आचार-पालन मे शिथिल हो गए। शिष्यैषणा रखते। साधुओ को लुके-छिपे भ्रात करने लगे। भिक्षु पर मिथ्या

---

१. जय (भि० ज० र०) ८।१४ 'वर्ष वतीसै गण वारै कियो"
२. जय (भि० ज० र०) ८।१२।तथा देखिए—जय (शा० वि०) १।सो० १
वीरभाण ने ताम रे, अविनीत जाणी गण थकी।
छोड्यो भिक्षु स्वाम रे, पछै इन्द्रवादी थयो॥
३. जय (भि० ज० र०) ४५।४
४. जय (भि० दृ०) दृ० १६२
५. इन ढालो के लिए देखिए—भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर, ख० १, पृ० ३५१-८१।
६. इस ढाल के लिए देखिए—वही, पृ० ३८७-८६
७ ख्यात, क्रम ४

दोष मढने लगे। भिक्षु ने उनका ध्यान उनके उन दोपो की ओर आकर्पित किया और शिक्षा दी। वीरभाणजी ने अपने दोप स्वीकार किए। भिक्षु ने उन्हे भविष्य मे सावधान रखने की दृष्टि से उनसे एक लिखित करवाया, जिसमे वीरभाणजी ने शुद्ध साधुत्व पालन करने की भावना व्यक्त की तथा गण के साधुओ को न वहकाने की और पनजी को दीक्षा न देने की प्रतिज्ञा की। यह घटना सं० १८३२ के पूर्व की है।

भिक्षु ने स० १८३२ के चातुर्मास मे 'विनीत-अविनीत री चौपी'[1] की रचना की।

स० १८३२ मिगसर वदि ७ के दिन भिक्षु ने एक लिखित कर मुनि भारमलजी को भावी आचार्य घोपित किया। इस लिखित पर मुनि वीरभाणजी ने स्वेच्छा से हस्ताक्षर किए।

इस लिखित के संवध मे वीरभाणजी के मन की प्रतिक्रिया निम्न रूप मे प्रकट हुई "हिवै राज तकरार हुई छै। मुसदी पाधरा चालीया ठीक लागसी।"

उक्त लिखित के वाद मुनि वीरभाणजी और अणदोजी विहार कर जेतावतो के गूढे पहुचे। वहा अणदोजी ने वीरभाणजी को 'विनीत-अविनीत री चौपी' की ढाले पुन पढ सुनाई। वीरभाणजी ने इस पर कहा "अव मुझे अपने प्रति भिक्षु के मन मे पूरा विश्वास उत्पन्न करना होगा। साधुओ मे मेरे प्रति पहले ही अविश्वास था। मैने यावज्जीवन चेला करने का त्याग किया। भिक्षु चेला सौपे तो आगार रखा। इस तरह मैने साधुओ की अप्रतीति दूर की।" इसके वाद एक लिखित लिख अणदोजी को पढाया और वोले "यह लिखित भिक्षु को देना है। अप्रतीति होने से दूसरे साधुओ से भिक्षु ने लिखित करवाए है। मै स्वय अपने हाथ का लिखा हुआ यह लिखित भिक्षु को सौप दूगा और उसके अनुसार और वे आज्ञा करेगे उस तरह वर्तन करूगा।"

इसके वाद विहार करते हुए उक्त दोनो मुनि स० १८३२ की माह वदि १४ के दिन रोयट गाव पहुंचे। वहा श्रावको से सुना कि पनजी सिरियारी मे आकर आचार्य भिक्षु से नम्रतापूर्वक वहुत अनुनय-विनय कर रहे है। माह सुदी ६ के दिन वीरभाणजी ने अणदोजी से कहा—"भिक्षु ने पनजी को मेरा शिष्य होने की सभावना देखकर भ्रष्ट किया है।"[2]

विनय-अविनय की ढालो और उक्त लिखितो के विपय मे वीरभाणजी ने अणदोजी से निम्न वाते कही .

"विना री ढाल कीधी ते मो उपर कीधी छै। उपसम्यौ कलहो उदीरीयौ छै। राग द्वेप रे वास्ते कीधी छै। दोय वरस ताइ न कीधी हुवैत तो हू हिलमिल जात। इण जोड विना कांइ वीजा भाव थोडा था।...माहारै दोप लागा था तिण री आलोवणा हाडोती कीधी पिण पूरी न कीधी। टोला माहै आत्मार्थी जोवण नै रह्यो।...म्हे वीठोडा माहे लिपत मे मतो घाल्यौ ते

---

१. इस कृति मे ६ ढाले हैं। यह कृति स० १८३२ की भादवा सुदी ६, शुक्रवार के दिन खैरवा मे सपूर्ण है। देखिए—पृ० २८ पा० टि० ५

२. पन्ना नै तो सामीजी भिष्ट कीधो छै म्हारै चैलो हुवे तो जाणनै।

सरमासरमी घाल्यो छै।[1] विना री ढाला मे म्हारा कानि २ गाटा वाध्या छे।...माहरी आगली वाता लोगा आगै कहिता दीसै छै।"

इस तरह वीरभाणजी ने उक्त कृति की ढालों को अपने पर रचित मान लिया[2] और कुढने लगे। अपने व्यक्तिगत एव स० १८३२ के लिखित को पालन न करने की वात कही।

इसके वाद अणदोजी को भ्रान्त करने के लिए वीरभाणजी उनके सामने जव-तव भिक्षु के दोष निकालते हुए नाना अवर्णवाद वोलने लगे। "भिक्षु मे धूर्तता वहुत है, माया-कपट वहुत है, माया के कारण क्रोध, मान का पता नही चलता। वे भारीकर्मा है, कर्म-वध मे विलकुल नही डरते, इहलोकार्थी है आदि।"

अणदोजी से यह भी कहा "मै तो टोले मे आत्मार्थी साधु की खोज के लिए रहा, पर एक भी देखने मे नही आया। भिक्षु का चेला वना यह मेरे कर्मो का दुर्विपाक है।"

अणदोजी को अपना वनाने के लिए पनजी की वडी सराहना करते हुए कहा : "पन्ना को दीक्षा देकर हम इसी क्षेत्र मे विचरे। लोगो से पूछे—देखो, यह पन्ना किससे कम आचार पालन करता है ?" वाद मे अणदोजी को फुसलाने के लिए उनसे कहा . "आप भी टोला मे निभ सकेगे ऐसा नही लगता। आप मेरे गुरु है। अत. इतनी वाते होती है। वाद मे कहा मे ऐसा होगा ?...निश्चित रूप से टोला वनाए।···आप मेरे साथ आए तो उदास नही। अखैरामजी का आना ठीक नही। उनका मुझे विश्वास नही।···मुझे तो साधुओ को फटाना नही है। चाहू तो मुनि सुखरामजी और अखैरामजी को फटा सकता हू। आर्याए मुझे वैरागी कहती है पर साधु मुझे नही सराहते। वे मुझे शिथिल समझकर मेरे त्यागो की प्रशसा नही करते।"

पाली के समीप पहुचने पर अणदोजी से वोले "आप पोथी लेकर जावै मैं तो यहा से चला जाता हू।"

इस तरह अवर्णवाद वोलते हुए और अणदोजी को तोडने की चेष्टा करते हुए विहार

---

१. लिखित मे अपने हस्ताक्षर के सम्बन्ध मे वे किस तरह फिरती वात करने रहे, इसका उल्लेख भिक्षु ने अपनी एक कृति (श्र० चौ० २६।३६-४२, ४७) मे निम्न प्रकार किया है

कदै तो कहै हु लिपत मै नाहि, कदै कहै म्है लिपत आरै न कीधौ।
कदै कहै म्है लिपत मै आपर न कीधा, कदै कहै म्है एक ससो कर दीधो॥
कदै तो कहै म्है लिपीयौ सरमासरमी, लिपत हेठे अपर कर दिया ताहि।
कदहि कहै मोनै कहिनै कराया, कदै कहे म्है तो लिपीयी साकडै आय॥
कदै कहे मोसू कपटाइ दगो करैनै, लिपत हेठै अपर कराया।
कदै कहै मोनै एकलो करता जाणी नै, म्हे डरते थके आपर कीया छै ताहि॥
कदै कहै यारा टोला मै रहसू, तठा तांइ म्हारै छै पचखाण।
कदै कहै लिपत म्हारै ताइ कीधौ, ए सगलाइ मो उपर कीधा मडाण॥
इत्यादिक झूठ वोलै छै अनेक प्रकारै, प्रभव रो डर मूल न आणै लिगार।
जाणी झूठ वोलै अग्यानी, पोय दीयौ तिण सजम भार॥

इस कृति को जयाचार्य ने हाजरी की २७वी ढाल मे उद्धृत किया है।

२. भिक्षु ने ढाल गा० ४६ मे यही वात लिखी है।

कदै कहे अविना री ढाला जोडी ते, सगली ढाला मो उपर कीधी छै ताहि।

कर भिक्षु के पास चेलावास पहुंचे। पश्चात् रात्रि मे भिक्षु के पास आकर कहा "आहार के विषय मे मेरे मन मे शका उत्पन्न हुई है। एक वर्ष तक एक साध्वी ने पछेवडी अधिक रखी। साधुओ ने पछेवडी अधिक रखवाई।" भिक्षु बोले . "तुमने इतने दिन शका में क्यो विताए ? अच्छा है, अव भी जाच-पडताल होकर निर्णय हो। जिस साध्वी ने अधिक पछेवडी रखी है अथवा जिस साधु ने रखाई है उसे दण्ड दिया जाएगा।" वीरभाणजी बोले "पहले पाच विस्वा अप्रतीत थी अव तो वीस विस्वा हुई है।···आपने पन्ना को भ्रष्ट किया है।"

इस पर हरनाथजी बोले . "अधिक पछेवडी की बेवुनियाद बात उठाकर क्यो झूठ बोलते है ? मन मे तो और ही कुछ मालूम देता है। पन्ना को लेने की भावना लगती है।"

भिक्षु ने यह देखकर कि वीरभाणजी व्यर्थ वितडावाद और मिथ्या दोप लगाने पर तुले हुए है, न्याय-निर्णय नही चाहते, उन्हे गण से दूर कर दिया।

दूर करने पर वीरभाणजी भिक्षु के अनेक प्रकार के अवर्णवाद करने लगे। अणदोजी को कही हुई वातो के अतिरिक्त कहा "आपके मन से मेरा भय दूर नही हुआ। मुझे अयोग्य समझ-कर, मुझे लक्ष्य बनाकर 'विनीत-अविनीत री चौपी' जोडी है। आपके मन मे दगा था तव मुझसे लिखित करवाया। मैने लिखित मे सरमासरमी से हस्ताक्षर किए थे।···मैने लिखित किया उसका पालन नही करूगा। मै तो टोले मे आत्मार्थी ढूढने के लिए रहा, पर खोजने पर भी कोई नही मिला। मुझे पन्ना को चेला करने का त्याग करवाया। उसका पालन नही करूगा।"[1]

इसके बाद की घटना का वर्णन भिक्षु के शब्दों मे इस प्रकार है .

"इत्यादि अगल-डगल वोलवा लागौ जद म्है कह्यो—थे अणहूता आल देनै केइ भोला आगे ओछी अवगुण वोलनै सका घालसो। म्हारा पिण था पाछै या क्षेत्रा मे आवण रा भाव छै।···जद वीरभाणजी वोल्या—थे किम साथ आवौ। थारा अवर्णवाद वोलण रा भाव कोइ नही। कठैइ बोलू नही। इम प्रतीत उपजाय नै निकल्या तो ही सरीयारी जाय नै दीपा वाइ आगै अनेक अवगुण वोल्या। सोजत मे पिण अनेक औगुण वोल्या। तथा पछै तो ग्यानी जाणै।"[2]

इस वर्णन मे वीरभाणजी द्वारा पनजी को दीक्षित करने का कोई उल्लेख नही पाया जाता। उन्हे दीक्षित करने की भावना अवश्य दृष्टिगोचर होती है। ख्यात का वर्णन इससे मिलता-जुलता है।

स० १८३२ की जेठ सुदी ११ के दिन भिक्षु ने एक लिखित (क्रमाक ३२।१५) किया, जिसमे मुनि थिरपालजी, हरनाथजी, भारमलजी, चन्द्रभाणजी, सुखरामजी, तिलोकचन्दजी, अणदोजी और अखैरामजी के हस्ताक्षर है। इसमे निर्णय किया गया है कि वचनो की अपेक्षा, कथनों की अपेक्षा, अवर्णवाद करने की अपेक्षा, लिखित मे रजामद हो वदलने की अपेक्षा, अनेक झूठ वोलने की अपेक्षा,टोले मे रहकर दगावाजी की उस अपेक्षा, गुरु आदि पर पछेवडी आदि अधिक रखने का दोप मढने की अपेक्षा—इन अनेक दोपो की अपेक्षा से वीरभाणजी दसवे प्रायश्चित्त के भागी है। यदि वीरभाणजी थोडे दिनो मे सरल भी हो जावे और यह कहते हुए आत्मालोचन करे कि मैंने क्रोधवश अनेक मिथ्या भापण किया, आप लोगो मे दोप नही मानता तो भी जघन्य आठवे और उत्कृष्टत दसवे प्रायश्चित्त के भागी है। साधु-वेश मे ऐसा अकार्य किसी ने किया

१. लेख ३२।१६

२ वही

ऐसा देखा-सुना नही। टोले से निकलने के बाद उन्होने (वीरभाणजी ने) कहा उस अपेक्षा से कहता हूं कि वह चार तीर्थ मे बडा अयोग्य हुआ है। इसमे किसी को शंका हो तो वीरभाणजी ने स्वय लिखकर दिया उसे देखे। वे उक्त प्रायश्चित्त लेने को स्वीकार भी हो तो अनेक लिखितों मे, अनेक गावो के श्रावकों की साक्षी से और उनके सौगन्धो से गाढी प्रतीत हो तो दीक्षा देकर उन्हे लिया जाए। आदमी बडा अयोग्य है। जिसे वीरभाणजी और वीरभाणजी द्वारा दीक्षित ने दीक्षा दी हो उसे साधु नही समझना चाहिए। वीरभाणजी की दीक्षा वाला साधुओ मे आवे तो उसे भी विना दीक्षा दिए नही लिया जाए। यही परम्परा—रीति निर्धारित की है। वीरभाणजी अपने-आप विना आलोचना किए फिर दीक्षा ले तो उसकी दीक्षा को लेखे मे न लेना चाहिए। साधुओ के पास आलोचना करें, साधुओ को पूरी प्रतीति उत्पन्न करें, दसवे तक प्रायश्चित्त ले—इसके बाद साधु समझना चाहिए। यही रीति दूसरो के लिए भी समझनी चाहिए।

इस लिखित मे भी वीरभाणजी द्वारा पनजी को दीक्षित किए जाने का उल्लेख नही है।

उक्त विवरण से निश्चित हो जाता है कि वीरभाणजी का निष्कासन स० १८३२ की माघ सुदी ६[1] और जेठ सुदी ११[2] के बीच किसी दिन हुआ। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वीरभाणजी ने सं० १८३२ की माह वदि ७ और जव वे गण से दूर हुए उसके बीच मे पनजी को दीक्षा नही दी थी और गण से उन्हे अलग करने का कारण पनजी को दीक्षा देना नही था।

पनजी गण से पहले ही अलग हुए या कर दिए गए थे और वाद मे वीरभाणजी को अलग किया गया। गण से पृथक् किए जाने के बाद वीरभाणजी एक वार सोजत गए थे। पनजी भी वहा गए। दोनो के बीच वातचीत हुई। पनजी ने आकर सारी वातचीत वगड़ी मे भिक्षु से कही और कहा "मुझे श्रावक के व्रत ग्रहण करावे।" भिक्षु ने ऐसा नही किया। तव पनजी वोले . "मैं आपके सामने आत्मालोचन कर शुद्ध होना चाहता हू।"

इसके वाद पनजी ने भिक्षु के सम्मुख आत्मालोचन की जिसमे निम्न वाते ध्यान देने जैसी है :

१. मैंने आपको वहुत अच्छा समझा कि आपने मुझ जैसे अयोग्य, अविनीत को टोले मे नही रखा।

२. मै शाहपुरा मे वीरभाणजी का चेला हुआ वह खाने-पीने तथा अन्य सुखसात के लिए। आपको ठगने के लिए कि एक के दो हो गए है, मैं उनका चेला हुआ।

३ मैं तो वीरभाणजी को टोले वाले भेपधारियो के जैसा ही पहले से—गण मे रहते समय से जानता था। कितनी ही वाते तो मैंने आपको माधोविलासपुर मे पहले ही कही थी। तव मै वीरभाणजी का चेला किसलिए हुआ? खाने-पीने के लिए।

इस आलोचना मे पता चलता है कि गण से अलग होने के वाद वीरभाणजी ने शाहपुरा मे पनजी को दीक्षित किया पर थोड़े दिनों के वाद ही पनजी उनसे अलग हो गये।

पनजी और वीरभाणजी के बीच की सारी घटनाओ की विस्तृत चर्चा वाद मे पनजी के प्रकरण-१७ मे की गई है। पाठको को वहा से जान लेनी चाहिए।

वीरभाणजी ने एक वार भिक्षु से कहा : "मैने केलवा के नगजी को सम्यक् दृष्टि वनाया

---

१. उस दिन वीरभाणजी ने प्रथम वार अणदोजी से भिक्षु का अवर्णवाद किया था।
२. यह स० १८३२ के वीरभाणजी से सम्वन्धित लिखित की मिति है।

है। उसे 'ओलखणा दोरी भव जीवा' यह ढाल[1] सिखाई है एव 'नन्दन मणियारा' का व्याख्यान[2] सिखाया है।[3] उक्त ढाल मे रचना-काल का उल्लेख नही है, पर भिक्षु कृत 'नन्दन मणियारा' व्याख्यान स० १८३४ आपाढ वदि ८ की कृति है। इससे सहजत. यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वीरभाणजी स० १८३४ की आपाढ वदि ८ के वाद भी गण मे रहे और उनका निष्कासन स० १८३२ मे नही हुआ। पर यह निष्कर्प भिक्षु के स्वहस्त के लिखे हुए स० १८३२ जेठ सुदी ११ के उक्त लिखित के सामने नही टिकता और यह समझना होगा कि वीरभाणजी ने 'नन्दन मणियारा' का जो व्याख्यान नगजी को सिखाया वह भिक्षु की उक्त कृति से भिन्न कोई कृति रही होगी।

वीरभाणजी प्राय १६ वर्ष गण मे रहे।

अलग होने पर दर्शन-मोह के प्रवल उदय से वे मिथ्या प्ररूपणाए करने लगे। वे इन्द्रियो को सावद्य मानने लगे। द्रव्य-जीव भाव-जीव मे भेद न मान एक प्ररूपित करने लगे और भी कई मान्यताओ मे अन्तर आ गया। उल्लेख है :

> पछै श्रद्धा पिण फिर गई, मु० वीरभाण री विशेष हो।
> इन्द्रिया सावज श्रद्धनै, मु० वले द्रव्य भाव जीव एक हो॥
> अनेक वोल ऊधा पड्या, मु० विगडी अविनय थी वात हो॥[4]

एक प्राचीन विवरण मे उनकी दार्शनिक मान्यताए निम्न रूप मे वर्णित है

१. (पाच आश्रवो मे) एक योग आश्रव है और चार उपयोग आश्रव।

२. प्रथम गुणस्थान मे द्रव्य ध्यान होता है।

३. अकाम निर्जरा से पुण्य का वन्ध होता है।

४. मिथ्या दृष्टि का क्षयोपशम सावद्य होता है।

५. सातवे, आठवे, नवे, दसवे गुणस्थान मे पाप उपयोग से लगता है।

६. उदय भाव जीव का घाट है।

७. शिथिलाचारियो को व्यवहार सूत्र मे साधु ही कहा है, अत शिथिलाचारियो से आहार-जल के सभोग का निषेध नही है।

८. छ लक्षणों के वाहर जीव का लक्षण नही है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग—ये छ लक्षण है।

---

१. इस ढाल के लिए देखिए—(भि० ग्र० र०) ख० १, पृ० ७८१-८४

२. इसके लिए देखिए—वही, ख० २, पृ० ४०७-४१३

३. जय (भि० दृ०), दृ० २२०

४. जय (भि० ज० र०) ८।१३-१४। तथा देखिए—

(क) जय (भि० ज० र०) ४५।४ "दर्शनमोह तिण नै दवावियौ"

(ख) जय (शा० वि०) १। सो. "पछै इन्द्रवादी थयो"

ख्यात, वम्व (मुनि गुण प्रभाकर) और (सेठिया मुनि गुण वर्णन) मे लिखा है कि आप इन्द्रियो को सावद्य-निरवद्य दोनो मानने लगे पर यह ठीक नही है। वे इन्द्रियो को सावद्य मानने लगे थे।

९. जीव के चौदह भेद, चार गति, चौबीस डंडक और द्रव्य जीव—सावद्य-निरवद्य दोनो होते है।

१० आश्रव, सवर, निर्जरा और मोक्ष—ये द्रव्य जीव है।

११. पुद्गल परावर्तन के आठ बोल है।

१२. बारहवे गुणस्थान मे नौ योग होते है।

१३ अज्ञान, तीनो दर्शन और वीर्य सावद्य-निरवद्य दोनो है। क्षयोपशम सावद्य और निरवद्य दोनो है।

१४. सासारिक जीवो का केवलज्ञान निरवद्य होता है। सिद्धों का केवलज्ञान सावद्य अथवा निरवद्य नही होता।

१५. एक बोल उलटा सरधने से दसो ही बोल उलटे हो जाते है।

१६ व्यवहार और निशीथ सूत्र मे शिथिल साधुओ का साधु रूप मे उल्लेख है। सेलग राजर्षि शिथिल था। उसे साधुओ ने वन्दना की। बिना दीक्षा दिये सघ मे लिया। असंवृत अणगार शिथिल साधु है। छ नियठो मे शिथिल साधुओ का वर्णन है।

१७. तेरहवे गुणस्थान मे चार भाव होते है। शुभ योग की अपेक्षा क्षयोपशम भाव है।[1]

एक बार वीरभाणजी की ओर से रची हुई निम्न गाथाए किसी ने भिक्षु को बताई :

भाव तिकोइज दरव छै, दरव तिकोइज भाव।
ए जथा स्वरूप ज्ञान नही वैसे, ते मनरा मगल गावै ॥

एक ढाल जोडी जिसमे गाथा थी :

दरव जीव भवरेटा खातो, फिरे भाव की लार।
किरतव करता भाव जीव छे, न करे दरव विचार ॥
सद्गुर एहवो भाखयोजी।
साभल ने भवि जीवा, शका मूल म राखोजी ॥

आचार्य भिक्षु ने इस प्रकार कहा : "ऐसी गाथा रची वह तो ठीक है, पर सच्ची श्रद्धा को उत्थापित करने के लिए उपहास रूप मे दूसरे को लक्षित कर रची गयी है, अपने कथन के रूप मे नही। वे द्रव्य-जीव और भाव-जीव मे भेद नही करते। एक ही गिनते है। जो द्रव्य-जीव भाव-जीव को अलग मानते है उन्हे मिथ्यात्वी कहते है। आश्रव, सवर, निर्जरा और मोक्ष आदि अनेक बोलो को द्रव्य-जीव कहते है।"

बाद मे गाव देई मे वीरभाणजी से द्रव्य-जीव भाव-जीव के विषय पर लम्बी चर्चा हुई। चर्चा मे वे पद-पद पर अटके। चर्चा की दो-एक बात ही यहां दी जा रही है। वीरभाणजी ने चर्चा मे कहा . "मिथ्यात्वी साधु से सीखता है वह द्रव्य-ज्ञान है।" तब भिक्षु ने पूछा : "द्रव्य-ज्ञान कौन-सा उपयोग है?" इसका उत्तर नही बन पड़ा। चुप रहे। नानजी (वीरभाणजी के साथी) साधु से पूछा। तब वे बोले "हमे तो पहले ज्ञान सावद्य-निरवद्य दोनो श्रद्धाया था।" इस पर वीरभाणजी बोले "झूठ है। अभी ही छोडा।" पूछने पर नानजी ने कहा : "आगे आश्रव दो भाव है—ऐसा बताया था। अब तीन भाव सरधाये है।" पाच ज्ञान को संवर कहने पर भिक्षु ने पूछा—"ज्ञान तो देवता और नारकी जीवो के भी होता है। तब उन्हें भी सवरयुक्त

1. लेख ६२।१२

कहना चाहिए ?" उत्तर नही उपजा। चुप रहे। नेणमुखजी (वीरभाणजी के दूसरे साथी साधु) के सामने ज्ञान को सावद्य कहा था। पन्द्रह योगो को उपयोग कहा था। इसकी साक्षी नानजी ने दी। इसके बाद वे वोले "दोहा तो हम लोगो ने रचा था निठल्ले वैठे हुए।"

आरम्भ मे वीरभाणजी ने एक मैणा को दीक्षा दी। इन्होने भिक्षु के श्रावक कसूरामजी से कहा "म्हारैं साथै मेणौ तिण सू मारवाड़ मांहै म्हारी मानै नही एक वाणीयौ म्हो साथै हुवै तो यारा सैण समझणा श्रावक सगला फेरू।"[१] वाद मे और भी मैणे चेले हुए।[२]

ख्यात मे लिखा है "उनके चेले हुए। मैणो को भी दीक्षा दी। श्रावक-श्राविकाए अनेक हुए।···कोटा, इन्द्रगढ, भगवतगढ, सुनारी आदि क्षेत्रो मे विचरते रहे।"[३]

ख्यात मे लिखा है वर्षो के वाद आचार्य भिक्षु नैणवा पधारे तव वीरभाणजी वहा थे। वीरभाणजी से उनकी मान्यताओ को लेकर चर्चा हुई। वीरभाणजी समझे। अपनी मान्यताओ को छोड पुन. दीक्षित होने की विनम्र इच्छा दिखाई। उनके श्रावको ने जव यह वात सुनी तव कहने लगे. "नई दीक्षा लेने पर आप सव साधुओ से छोटे हो जाएगे। आपको सवको वन्दन-नमस्कार करना होगा। आपने कौन-सा खून किया है ?" इस तरह अनेक वाते कहने से उनके परिणाम शिथिल हो गए। वे इन्द्रियवादी ही रहे—"उण मत मैंइ रह्या।"

वीरभाणजी गण मे तो पुन न आए पर वाद मे विशेप द्वेप नही रखा। साधु आर्याए मिलने पर स्नेहपूर्वक वहुत वाते करते। उतरने की जगह, गोचरी के घर आदि वताते।

देहावसान के समय वीरभाणजी ऐसा कह गए—"मेरे पोथी-पन्ने या तो भीखणजी के साधु तेरापन्थियो को देना अथवा तुम्ही लोग पढना। अन्य किसी को मत देना।" वाद मे वहुताश साधु विखर गए या चल वसे। किसी का वंश आगे नही चला।"[४]

इन्द्रगढ, नैणवा मे वीरभाणजी से जो चर्चा हुई उसको भिक्षु ने गद्य रूप मे लिखा है। उनकी मान्यताओ को निरसन करते हुए 'इन्द्रियवादी की चौपी,'[५] 'द्रव्य जीव भाव जीव की ढाल'[६] आदि रचनाए की, जो आज भी उपलब्ध है।

यति हुलासचन्दजी ने लिखा है

वीरभाण भिक्षु साथ रे, आवी सयम आदरयो।
पछै अविनय प्रवर्त्ता तरे, अठारैं वतीशैं टालियो॥
टली इद्रीवाद्या रै माय रे, जइने ते मत झालियो।
इन्द्रया सावद्य निर्वद्य ठहराये रे, श्रद्धा विगाडी आपणी॥

---

१. लेख ६२। १२ अनु० ४१

२. जय (भि० ज० र०) ८। १४—मु० मैणा नै मुड्या साख्यात हो।"

३. ख्यात, क्रम ४

४. ख्यात, क्रम ४

५. इसके लिए देखिए—(भि० ग्र० र०), ख० १, पृ० ११७-७६। ये ढाले स० १८४६ अथवा स० १८४७ की है।

६. इसके लिए देखिए—वही, पृ० १७७-७९। यह कृति स० १८४७ चैत वदि २, सोमवार की है।

केइ बरसा पछै स्वाम रे, नैणवै गांम पधारिया।
तिहां वीरभाण हुंतो ताम रे, स्वाम साथे चरचा हुई॥
स्वाम सूत्र ने न्याय रे, वीरभाण ने समझाविने।
श्रद्धा दीध बैठाय रे, नूई दीक्षा ने आरे कियो॥
तब तिणरा श्रावक बोल्या वाय रे, थे और साधां सुं अब जई।
दिक्षा मे छोटा थई लागस्यो पाय रे, इसो खून थे के कियो॥
इम श्रावका रा वचन सुणाय रे, कच्चा परिणाम पड्या तेहनां।
इन्द्रीवादी रै माय रे, जब पाछो हीज ते रह्यों॥
इन्द्रीवादी छा जेहरे कोटै भगवतगढ कानी विचरता।
तिहा भिक्षु ना साध आयां थी तेहरे विशेष द्वेष नही राखता॥
सनेह रूप वात करात रे, दिशां री जागा बतावता।
गोचरी ना घर बतात रे, बहुल पणै इम वर्तता॥
पछै खपता २ तेहरे, सहु खप्या वंश चाल्यो नहीं।
पिण राखी गण सु नेह रे, मरता श्रावका ने इम कह्यो॥
मांहरा पोथी पाना एह रे, तेरापथी साधा ने आपज्यो।
का थे वाचज्यो धर नेह रे, पिण औरा नें दीज्यो मती॥[1]

यह विवरण ख्यात पर आधारित है, पर इसमे एक नई बात यह लिखी है कि वीरभाणजी ने अलग होने के बाद इन्द्रियवादियो मे जाकर उनके मत को ग्रहण किया—"इन इंद्रीवाद्या रै मांय रे, जइने ते मत झालियो।" "इन्द्रवादी रै माय रे जब पाछो हीज ते रह्यो" यह ख्यात के "उण मत मे ई रह्या" का ही पद्यानुवाद है। पर ख्यात के शब्दो का अर्थ इतना ही है कि वे इन्द्रियवादी ही रहे। ख्यात अथवा अन्य किसी भी कृति मे ऐसा उल्लेख नही देखा जाता कि उन्होने इन्द्रिय-वादियो में जाकर इस मत को ग्रहण किया था। बहुत दिनो तक वे अकेले अपने एक सैणे शिष्य के साथ विचरते रहे। फिर और शिष्य किए और फिर स्वय इन्द्रिया सावद्य है ऐसी प्ररूपणा करने लगे।

दूसरी भिन्नता यह है कि ख्यात मे साधु-साध्वियो के प्रति स्वय वीरभाणजी के व्यवहार की चर्चा है जबकि हुलास (शा० प्र०) मे बाद मे इन्द्रियवादियो के व्यवहार की चर्चा।[2]

---

1. हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, सो० १३८-१४३।
2. मुनि वीरभाणजी ने २५/३० सैणों को दीक्षा दी थी। उनमे से अधिकाश गृहस्थ हो गए। बचे वे परम्परा को चलाते रहे। इस परम्परा मे अन्त मे सेजरामजी और उनके गुरु रहे। गुरु अस्वस्थ हुए तब सेजरामजी ने पूछा—मैं अकेला आपके बाद कैसे काम चलाऊंगा। गुरु ने जवाब दिया—"तेरापंथी शुद्ध साधु है। उनमे और हममे कोई अन्तर नही है। उनमे सम्मिलित हो जाना। सेजरामजी ने कहा—हम इन्द्रियो को सावद्य मानते है जबकि तेरापंथी निरवद्य। तब अन्तर कैसे नही है? गुरु ने जवाब दिया—अलग होने पर कुछ-न-कुछ भिन्न बात कहनी पड़ती है। भेद ऐसा ही है। मूलत कोई अन्तर नही। गुरु के देहान्त के बाद सेजरामजी अकेले रह गए और अस्वस्थ हो कुछ कालान्तर मे इन्द्रगढ में मृत्यु को प्राप्त हुए। उन्होने श्रावकों को कहा था कि मेरी मृत्यु के बाद पुस्तक, पन्ने आदि सब तेरापथी

वीरभाणजी थली मे भी गए थे। उन्होंने केसूरामजी पटवारी से कहा था—"भीषनजी म्हानै कह्यौ थली माहे साहमा मिलिया तिहां मो उपर धारयौ पारयौ कहयो तिलोक चन्द्रभाण आश्री।"[1]

स्वामीजी ने अपनी कृति (श्र० चौ० २६।५०-५३) मे लिखा है

ज्यांनै ढीला जांणै त्यांरा टोलरा भागल, त्या भागला माहै मन जावणरी कीधौ।
त्या सू नरमाइ करे कहयौ मोनैं ल्यो थे, त्या पिण तिण नै माहै नही लीधौ॥
थे कहौ तो दूर करू म्हारा चेला, थे कहौ तो थाने परतीत उपजाउ।
थे मोनै चलावौ जिण रीते चालू, थे मौने माहै ल्यो हू था माहै आउ॥
दोय वार गयो त्या मै जावा नै काजै, जाता अनेक कोस रो पेडौ कीधौ।
त्यानै अनेक वार कह्यो थे मोनै माहै ल्यौ, तो पिण तिण नै त्या माहै न लीधो॥
ज्यांनै ढीला जाणै त्यारा टोलारा भागल, उत्कृष्टो प्राछित छै त्यारै माहि।
त्या भागला पिण तिण नै माहै न लीधौ, तिण भागल री भोला नै पवर न काइ॥[2]

वीरभाणजी किसके साथ सम्मिलित होने के लिए दो वार गए, उनका नामोल्लेख ढाल मे नही है पर वर्णन से ऐसा लग रहा है कि वे तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी के साथ होने के लिए एक वार थली और दूसरी वार वही अथवा आसपास के अन्य क्षेत्र मे गए थे।

मुनि वीरभाणजी मे कवित्व-शक्ति थी, इसका पता इन्द्रियवादी की ढालों से चलता है। उनमे उल्लेख है

१. मूर्ति ने अमूर्ति वणाविया रे, मुकाणा ने अमूकाणा री ठोर रे।
वडे जोड करी तिण ऊपर रे, कर कर झूठा झोर रे॥[3]
२. पाचू इदरयां ने सावद्य थापवा, करे अनेक उपाय।
वले खोटी २ जोडा करे, भोला लोका ने दीया भरमाय॥[4]

वीरभाणजी ने स्वय कहा है "भीषनजी जोड करै छै तिण माहे नाव न घालै, जाणै म्हारी जोड जूदी दीससी। म्हारी जोड़ छै ते सुषम झीणी छै ते जोड आपरी ठैहरावण रै वास्ते

साधुओ को दे देना। मुनि हीरालालजी १६२३ के शेप काल मे इन्द्रगढ पधारे तव श्रावको ने पुस्तक, पन्ने उन्हे देना चाहा पर काम के न होने से उन्होने नही लिये। (आ० डालगणि के ख्यात के आधार पर)

१. लेष ६२। १२ अनु० २७
२. २७वी हाजरी मे-उद्धृत गाथा १५-१८। इस ढाल के विषय मे जयाचार्य ने कहा है "आगे पिण वीरभाणजी तेरा माहिलौ नीकल्यौ अनै नीकलनै अवर्ण फिरता वचन वोल्यौ। तिण उपर भीपनजी स्वामी जोडी ढाल उणरी कहण री वाला पिण घाली उणरा चिरत पिण उलपाया।" उक्त कृति का रचना स०१८४८ माघ वदि १५ सोमवार है।
३. भिक्षु-ग्रन्थ रत्नाकर (ख० १), पृ० १६० इ० चौ० १०।४३
४. वही, पृ० १७३ . इ० चौ० १४।दो० ४

नाव न घालै छै। भीपन कीधी जोड़ तो वादर छै म्हारी कीधी जोड़ नुपम छै।"[1]

इससे भी प्रगट होता है कि उन्होंने द्रव्य-जीव, भाव-जीव तथा इन्द्रिया सावद्य है या निरवद्य विषयों पर पद्य रचनाए की थी।

उनकी रचनाएं उपलब्ध नही हो पायी।

---

१. लेख १८६२। १२ अनु० २४

५. मुनि टोकरजी

आप मूलतः आचार्य रुघनाथजी के सघ के साधु थे। राजनगर के श्रावको को प्रतिबोधित करने के लिए जब आचार्य रुघनाथजी ने आचार्य भिक्षु का चातुर्मास राजनगर मे करवाया तब आप भी उनके साथ रहे।[1]

जब भिक्षु आचार्य रुघनाथजी से अलग हुए तब आपने साथ दिया। अत आप आदि तेरह संतो मे से थे।[2] भिक्षु ने आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा स० १८१६ के दिन केलवा मे नई दीक्षा ग्रहण की। हरनाथजी, आप और भारमलजी भी साथ ही दीक्षित हुए।

सवत अठारै सतरोतरै रे, आषाढ सुद पूनम जाण।
सजम लीधो सामजी रे, कर जिण वचन प्रमाण॥
हरनाथजी हाजर हुता रे, टोकरजी तीखा सुवनीत।
प्रम भगता सिष पाटवी रे, या राखी पूज री परतीत॥[3]

आचार्य रुघनाथजी के संघ मे आप मुनि वीरभाणजी से दीक्षा-पर्याय मे छोटे थे, अतः भिक्षु ने भी आपको उनसे छोटा रखा।

आपका स० १८१७ का प्रथम चातुर्मास भिक्षु की सेवा मे केलवा मे हुआ।[4]

---

१. (क) वेणी (भि० च०) २।१
   (ख) जय (भि० ज० र०) २।५-६.
   टोकरजी हरनाथजी, वीरभाणजी साथ।
   भिक्खु शिष भारीमालजी, दीक्षा दी निज हाथ॥
   ए साथ लेई भिक्खु आविया, राजनगर मझार।
   सवत अठारै पनरै समै, चोमासो गुणकार॥
   (ग) जय (लघु भि० ज० र०) २।११
२. (क) जय (भि० ज० र०) ८।दो० २-६, ३-५
   (ख) जय (लघु भि० ज० र०) ४।२-३
३. वेणी (भि० ज० र०) ३।१२-१३। यहा पचाग के अनुसार १८१७ लिखा है, जो श्रावणादि सवत् के अनुसार १८१६ ही है।
४. जय (भि० ज० र०) ८।३, ५, ६

आगमों मे विनय को आभ्यन्तर तप कहा है।[1] कहा गया है: "विनय धर्म का मूल है। मोक्ष उसका अन्तिम रस है। विनय के द्वारा ही मनुष्य बड़ी जल्दी शास्त्र-ज्ञान तथा कीर्ति सम्पादित करता है। अन्त मे नि श्रेयस् भी उसी के द्वारा प्राप्त होता है।"[2] आपमे यह विनय अपने भव्यतम रूप मे था।

विनीत की परिभाषा देते हुए उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है: "जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन करता है, गुरु की सुश्रूषा करता है, गुरु के इंगित और आकार को जानता है, वह विनीत कहलाता है।"[3] आप ऐसे ही विनीत थे।

आचार्य के प्रति शिष्य का कर्तव्य बताते हुए कहा गया है: "लोगो के समक्ष या एकान्त मे, वचन या कर्म से कभी भी आचार्यो के प्रतिकूल वर्तन न करे।"[4] यह शिक्षा मुनि के रोम-रोम मे समाई हुई थी। आचार्य के प्रति अनुकूलता के आप साकार स्वरूप थे। विनय के सारे नियम आपके जीवन मे ताने-बाने की तरह परिव्याप्त थे।

अपने देहान्त के ९ दिन पूर्व भिक्षु ने जिन संतो के सहयोग से संयम-पालन में अच्छी चित्त-समाधि रही, उनकी सेवाओ का उल्लेख करते हुए मुनि खेतसीजी और भारमलजी के साथ आपका नाम भी लिया।[5] यह भाद्र शुक्ला ४ की बात है। जयाचार्य ने इस घटना का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है

सुन्दर वाण सुहामणी निपुणै बहु नर नारो ए। सुपकारो ए।
चौथज आई चादणी क। मु० ॥
पिंजर तन हीणो पड्यो, परम पूज्य पहिछाण्यौ ए। मन जाण्यो है
आउ नेडो उजमानथी क। मु० ॥

---

१. उत्तरा० ३०।३०.
पायच्छित्त विणओ वेयावच्च तहेव सज्झाओ।
झाण च विउस्सग्गो एसो अब्भिन्तरो तवो॥

२. दश० ९ (२)।२
एव धम्मस्स विणओ मूलं परमो से मोक्खो।
जेण कित्ति सुय सिग्ध निस्सेस चाभिगच्छई॥

३. उत्तरा० १।२
आणानिद्देसकरे गुरूणमुववायकारए।
इंगियागार-सपन्ने विणीए त्ति वुच्चई॥

४ उत्तरा १।१७
पडिणीय च बुद्धाण वाया अदुव कम्मुणा।
आवी वा जइ वा रहस्से नेव कुज्जा कयाइ वि॥

५. (क) बेणी (भि० च०) ६। दो० ७ (देखिए पृ० ४१, पा० टि० २)
(ख) जय (लघु भि० ज० र०) ५।५
या तीना रा स्हाज, थकी समभावपणै।
पाल्यो सजम पाज, हरप आनन्द घणै।
आनन्द घणै जी त्रिहू संत तणै, अतहि इकधार रह्या सुमणै।
धिन धिन भिक्षु स्वाम, सुजश तसु जगत थुणै॥

स्वाम कहै सतजुगी भणी, थे सपर सिप सुविनीतो ए। धर प्रीतो ए
साझ दियौ सजम तणौ क।मु०॥
टोकरजी तीषा हुन्ता, विनयवन्त सुविचारी ए। हितकारी ए।
भक्ति करी भारी घणी क।मु०॥
भारमलजी सू भेलप भली, रहीज रूडी रीतो ए। अति प्रीतो ए।
जाण के पाछल भव तणी क।मु०॥
संपर तीना रा साझ सू, वर सजम उजवाल्यौ ए। म्है पाल्यौ ए।
प्रत्यक्ष ही सुरापणै क।मु०॥
चित्त समाधि रही घणी, म्हारा मन मझारो ए। हुसियारो ए।
या तीना रा साझ थी क।मु०॥[1]

स्वर्गीय सन्तो मे से आपके विषय मे भिक्षु के उद्‌गार थे :

"टोकरजी वडे विनयी थे। इगित और आकार पर उनकी तीक्ष्ण दृष्टि रहती थी। उन्होने मेरी वडी सेवा-भक्ति की। वे श्रेष्ठ सुविनीत थे।"[2]

आगम मे कहा है "अनुत्तर गुणो को पाने की इच्छा रखने वाला मुनि धर्म का अर्थी होकर आचार्य की आराधना करे और उन्हे प्रसन्न करे।"[3] आगम का यह आदेश मुनि टोकरजी का जीवन-सूत्र रहा है। अपनी अनुपम सेवाओ से आपने अपूर्व कीर्ति प्राप्त की। तेरापथ शासन के इतिहास मे आप "वनीता सिर सेहरा"—विनीत साधुओ के सिरमौर के रूप मे याद किये जाते है।

---

१. जय (भि० ज० र०) ५४।३-६

२. (क) वेणी (भि० च०) ६। दो० ७

आगे टोकरजी तीखा हूता, विनेवत विचार।
भगत करी भारी घणी, सुवनीत हूता श्रीकार॥

(ख) जय (लघु भि० ज० र०) ५।४.

टोकरजी वर रीत, भक्ति करी सुजश लीयौ।

(ग) हुलास (शा० प्र०) (भिक्षु सतमाला) गा० १४५।

सथारा मे स्वामजी रे, प्रशंस्या चारतीर्थ रै माय।
टोकरजी तीखा हुता रे लाल, सयम पालता दाता सहाय॥

यहा भिक्षु के द्वारा सथारे मे टोकरजी की चार तीर्थ मे प्रशसा करने का उल्लेख है, पर यह सही नही है। टोकरजी की प्रशसा खेतसीजी से की थी और यह सथारे की नहीं उसके ६ दिन पूर्व की घटना है। सेठिया, मुनि गुण वर्णन मे इसी कृति के आधार पर सथारे मे प्रशसा किये जाने का उल्लेख है, पर वह भूल है।

३ दस० ६ (१)।१६.

महागरा आयरिया महेसी समाहिजोगे सुयसीलवुद्धिए।
सपाविउकामे अणुत्तराइं आराहए तोमए धम्मकामी॥

अन्त मे आपने संथारा कर पण्डित-मरण प्राप्त किया।[1] आपके संथारे के सबंध में कालक्रम मे निम्न उल्लेख मिलते है :

१. हरनाथजी सामी वगडी मझार, टोकरजी ढूढार देसो ए।[2]

२. वगडी शहर विशेष, स्वाम टोकरजी हो सथारो लियौ।
देश ढूढार मैं देख रे, हद सथारौ हरनाथजी कियौ॥[3]

३ अत समै मे टोकरजी वगडी सैहर मे सथारो कीयो,
अने देश ढूढार मै हरनाथजी संथारो कीयो।[4]

तीसरा ख्यात का उल्लेख दूसरे जय (भि० ज० र०) के उल्लेख का अनुवर्ती है।

प्रथम और वाद के दो उल्लेखो मे स्थान का उलट-फेर देखा जाता है। वाद के दोनो उल्लेख ठीक लग रहे है।

आपका देहान्त कव हुआ इस विपय मे निम्न दो उल्लेख विचारणीय है .

१. श्री भिक्षुगणी महाराज री विनय भक्ति सेवा भांत २ करनै घणी करी सथारा ताइ साथै सेवा मे रह्या···पछै भारीमाल सू दीक्षा मे वडा तो पिण सेवा भक्ति विनय मुरजी प्रमाणै परवर्त्या।[5]

२ स० १८५२ मे देवलोक हुआ।[6]

प्रथम उल्लेख के पूर्वार्द्ध का यह अर्थ लगाया जा सकता है कि अपने-अपने संथारे तक दोनो सत भिक्षु के साथ रहे। पर ऐसा अर्थ करने मे उत्तरार्द्ध वाधक है, जिसमे स्पष्ट कहा गया है कि भिक्षु के देहावसान के उपरान्त दीक्षा-वय मे अपने से छोटे आचार्य भारमलजी की भी वे विनयपूर्वक सेवा करते रहे। तव ख्यात के कथन का एक ही अर्थ यह होता है कि दोनो सतों का देहान्त भिक्षु के वाद हुआ।

अव यह देखना आवश्यक है कि यह वात कहां तक ठीक है।

भिक्षु के अन्तिम चातुर्मास मे छह सत उनके पास थे, जिनमें आप और हरनाथजी दोनो के ही नाम नही है।[7] अत आप भिक्षु के सथारे तक उनकी सेवा मे रहे, यह कथन ययातथ्य नहीं

---

१ (क) जय (भि० ज० र०) ४५।८
(ख) जय (शा० वि०) १।९.
भिक्षु गण मे टोकरजी हरनाथ कै, ए संत दोनू तेरा मायला जी।
अणसण करने आराधक पद पाय कै, पूज भिक्षु परससिया जी॥

२ साधु-साध्वी (पण्डित-मरण ढाल) १।२

३. जय (भि० ज० र०) ४५।८

४. ख्यात, ५-६। हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतमाला १४७ मे भी यही वात लिखी है :
अत समे टोकर मुनि रे वगडी सथारो किध।
देश ढूढार मे हरनाथजी रे लाल, सथार कियो सुप्रसिद्ध॥

५ ख्यात, ५-६

६. संत विवरणी

७. हेम (भि० च०) ५।११-१२; वेणी (भि० च०) ५।१३-१४, जय (भि० ज० र०) ५३।१३-१५

है। भिक्षु के देहावसान के समय गण मे जो सत विद्यमान थे उनकी सूची मे भी इन दोनो के नाम नही है। तीसरी बात यह है कि भिक्षु ने अन्तिम दिनो मे आपकी प्रशसा की, उनके शब्द है "आगे टोकरजी तीखा हूता"—पहले मुनि टोकरजी थे जो इगित-आकार पर वडी तीक्ष्ण दृष्टि रखते रहे।[1] इससे भी स्पष्ट है कि आपका देहान्त हो चुका था। आचार्य भारमलजी के चरित मे उनके प्रति आपकी सेवाओ का कही उल्लेख नही है। इस तरह भारमलजी के शासन-काल मे आपके विद्यमान रहने का कोई प्रमाण नही मिलता। ऐसी स्थिति मे ख्यात का उल्लेख ठीक नही कहा जा सकता।

हुलास (शा० प्र०) मुख्यत ख्यात पर ही आधारित है, पर ख्यात के उक्त उल्लेख के साथ उसका भी मतैक्य नही है। उसमे (१४५-१५६) युवाचार्य भारमलजी की ही सेवा करने का उल्लेख है, आचार्य भारमलजी की नही

टोकरजी तीखा हुता रे लाल सयम पालता दाता सहाय।
गणि नी अनें युगराज नी रे मुरजी प्रमाण प्रवर्त्ती वेह।
निरतिचार व्रत पालने रे लाल, भव निस्तारक रेह॥

स० १८५२ मे दिवगत होने की सूचना देने वाला द्वितीय उल्लेख भी प्रामाणिक नही है। नीचे का स्पष्टीकरण इस वात का समर्थन करेगा।

स० १८३२ और १८४१ के लिखितो मे आपके हस्ताक्षर नही है। दो विकल्प सभव है·

(१) स० १८३२ मिगसर वदि ७ के लिखित के पूर्व ही उनका देहान्त हो गया हो।

(२) लिखित के समय अनुपस्थित रहे हो और वाद मे किसी कारण से हस्ताक्षर न हो पाए हो और स० १८४१ के पूर्व दिवगत हो गए हो। अर्थात् उनका देहावसान स० १८३२ मिगसर वदि ७ और स० १८४१ के वीच हो गया हो।

पण्डित-मरण प्राप्त साधुओ की सूची मे नाम निम्न क्रम से मिलते है.

१ फतैचन्दजी	सथारा	१८३१
२ थिरपालजी	सथारा	१८३३
३. हरनाथजी		
४. टोकरजी		
५. नगजी		
६ नेमजी		
७. वर्द्धमानजी	संथारा	१८५५

इस सूची से इतना तो प्रकट होता है कि आपका देहान्त मुनि थिरपालजी के वाद और स० १८५५ के वीच होना चाहिए।

मुनि थिरपालजी का देहान्त स० १८३३ कार्तिक वदि ११ के दिन हुआ था। इस अपेक्षा से आपका देहान्त स० १८३३ की उक्त तिथि के वाद होना चाहिए।

भिक्षु सं० १८३८ मे श्रीजीद्वार पधारे तव उनके साथ मुनि टोकरजी और हरनाथजी उनकी सेवा मे थे। वह वर्णन इस प्रकार है

---

१. देखे पृ० ४१, पा० टि० २ (क) और (ग)

भारीमालजी आदि महामुनि, टोकरजी हरनाथ हो।
वनीता सिर सेहरा, जोड खडा रहे हाथ हो ॥
मैणाजी आदि महासती, समणी गण सिणगार हो।
सेव करे स्वामी तणी, आण अखडित धार हो ॥
दूजे ढाले श्रीजी दुवारमे समोसर्या भिक्खु स्वाम हो।
सतयुगी भाग वली तणो, मिलियो जोग अमाम हो ॥[1]

इससे यह निर्णीत हो जाता है कि स० १८३२ के लिखित के समय मुनि टोकरजी विद्यमान थे। सभवत कोई कारण था जिससे उनकी सही उस समय और बाद मे भी नही हो पाई थी।

उक्त सतो की पण्डित-मरण सूची मे मुनि हरनाथजी का नाम आपसे पूर्व है। सं० १८४१ के लिखित मे मुनि हरनाथजी की सही है। इससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स० १८४१ के लिखित तक आप विद्यमान रहे, पर ऐसा निष्कर्ष निकलना ठीक नही होगा। उक्त ढाल मे गाथा इस प्रकार है "हरनाथजी सामी बगडी मझार, टोकरजी ढूढार देसो ए।" वास्तव मे आपका देहावसान बगडी मे हुआ था न कि मुनि हरनाथजी का। इस तरह उक्त उद्धरण मे नामो का उलट-फेर है। मुनि हरनाथजी की जगह आपका नाम आना चाहिए था। इस सही स्थिति मे आपका देहावसान मुनि हरनाथजी के पूर्व होता है।

स० १८३९ की कार्तिक सुदी २ बुधवार के दिन केलवा मे रचित ढाल मे श्रावक शोभजी ने उस समय गण मे विद्यमान सतो की स्तुति की है जिसमे मुनि हरनाथजी का नाम होने पर भी आपका नाम नही है। इससे भी आपका मुनि हरनाथजी से पूर्व दिवगत होना सिद्ध होता है। साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि आपका देहान्त उक्त मिती के पूर्व हो चुका था। स० १८४१ के लिखित मे सही न होने का कारण यही है।

भिक्षु १८३८ वैसाख सुदी ९ रविवार के दिन पुर (मेवाड) मे देखे जाते है। इस वर्ष उसके पहले बगडी नही पधारे, बाद मे ही पधारे थे। उपर्युक्त विवेचन एव उक्त तथ्य से यह निष्कर्ष प्रस्तुत होता है कि आपका देहान्त स० १८३८ वैसाख शुक्ला ९ और स० १८३८ आषाढ सुदी १५ के बीच बगडी मे हुआ। भिक्षु के स० १८३९ के सिरियारी चातुर्मास के पूर्व ही आप दिवगत हो गए थे।

आपकी प्रशस्ति मे कहा गया है

टोकरजी स्वामी तीखा घणा तमाम कै, भिक्षु आप परससियाजी।
सजम पाली सार्या आतमकाज कै, त्यारो भजन करो भवियण सदाजी ॥[2]

जयाचार्य कृत विघ्नहरण की ढाल मे भी आपका स्मरण पाया जाता है .

मुणिंद मोरा, टोकर ने हरनाथ।
अखयराम सुखरामजी रे, स्वामी मोरा ॥
ईश्वरू रे, मोरा स्वाम ॥[3]

---

१. जय (खेतसी चरित) २।८-९, १३
२. जिनशासन महिमा ७।४
३. मुनिन्द मोरा की ढाल गा० १६

६. मुनि हरनाथजी

आप भी प्रारम्भत आचार्य रुघनाथजी की सम्प्रदाय के साधु थे। राजनगर चातुर्मास मे आप भी भिक्षु के साथ थे।[1]

श्रावक राजनगर तणा, वदणा छोडी ताहि।
थे जइ सका मेट दौ, वुधिमत विण मिटै नाहि॥
सुण भिक्षु आया तिहा, भारीमालजी जाण।
टोकरजी हरनाथजी, वलि साथै वीरभाण॥[2]

आचार्य भिक्षु के साथ ही आप भी रुघनाथजी से अलग हुए थे अत आदि के १३ सतो मे से थे।[3] स० १८१६ आषाढ शुक्ला १५ के दिन नव दीक्षा के समय आप भिक्षु के साथ केलवा मे प्रव्रजित हुए।[4]

आपका प्रथम चातुर्मास भिक्षु के साथ केलवे मे था।[5] मुनि टोकरजी और आप दोनो सत भारमलजी से वडे थे, तथापि भारमलजी को युवराज पद दिया गया था। इससे आप दोनो के मन मे किसी प्रकार का ऊहापोह नही हुआ। अहभाव से ऊपर रहे। जयाचार्य ने लिखा है

भारीमाल नै भाल, पद युवराज हो पूज समापियौ।
सत वडा सुविशाल, दभ मेटी ने हो थिर चित्त थापियौ॥[6]

टोकरजी की तरह आप भी वडे विनयी थे। वैयावृत्य के लिए सदा प्रस्तुत रहते। आज्ञानुसार वर्तन करते। आगम मे कहा है "आचार्य के मन, वचन (और कायगत) भावो को समझकर वचन द्वारा उन्हे स्वीकार कर शरीर द्वारा उन्हे पूरा करना चाहिए।"[7] आपने इस शिक्षा

---

१. देखिए क्रमाक ५, पृ० ३९ पाद टिप्पणी १

२ जय (ल० भि० ज० र०), २।१०-११

३. देखिए क्रमाक ५, पृ० ३९ पाद टिप्पणी २

४. देखे क्रमाक ५, पृ० ३९ पाद टिप्पणी ३ और उससे सबद्ध अश

५. देखे क्रमाक ५, पृ० ३९ पाद टिप्पणी ४

६ जय (भि० ज० र०) ४५।५-६

७. उत्त० १।४३

मणोगय वक्कगय जाणित्तायरियस्स उ।
त परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए॥

को अपने जीवन मे अनुपम रूप से उतारा था। ऐसा कहा जाता है कि आप हर समय भिक्षु की आज्ञा का पालन करने के लिए हाजिर रहते थे—"हाजिर रहिता हो स्वामी हरनाथजी।"

टोकरजी और आपके संबंध मे निम्न उल्लेख मिलते हैं :

१. टोकरजी ततसार, हाजिर रहिता हो स्वामी हरनाथजी।
सत दोनू सुखकार, वर जश वारु हो तासू विख्यातजी॥
सौम्य मूर्त्ति सुखकार, स्वाम प्रसस्या हो अंत्य समय मही।
साझ थी संजम सार, कीर्ति भिक्खू हो आप मुखे कही॥[1]

२ भिक्षु गण मे टोकरजी हरनाथ कै, ए सत दोन्यूं तेरा मायलाजी।
अणसण करले आराधक पद पाय कै, पूज्य भिक्षु परसमियाजी॥[2]

३. टोकरजी हरनाथजी ए दोनू तेरा माहिला सत, वीनेवान वेयावच करण मे घणा उदमी छा। गणीराज नी तथा जुगराजा नी मरजी परमाण चालता, नीर अतिचार वरत पालने खेवो पार कर्यो। अंत समय टोकरजी वगड़ी शहर मे संथारो, ढूंढार देश मे हरनाथजी सथारो कीयो। स्वामीजी यां दोयां ने चार तीरथ मे परससीया।[3]

४. जयाचार्य कृत एक चमत्कारिक ढाल मे स्तुत्य संतो मे आप दोनों के नाम का स्मरण पाया जाता है।[4]

मुनि टोकरजी का और आपका संथारा अवश्य ही समयान्तर से हुआ था। जब जिसका संथारा सम्पन्न हुआ भिक्षु ने चारो तीर्थ मे उसकी प्रशसा की होगी। द्वितीय और तृतीय उल्लेख इसी बात को व्यक्त करते हैं। प्रथम उल्लेख से ऐसा लगता है कि जैसे भिक्षु ने अपने अतिम दिनों मे सत टोकरजी और हरनाथजी दोनो की प्रशंसा की। स्वय जयाचार्य ने दो स्थलो पर लिखा है कि अत समय मे भिक्षु ने केवल टोकरजी की ही प्रशंसा की थी।[5] अत: इस उल्लेख की दूसरी गाथा केवल टोकरजी से ही सबधित समझनी चाहिए। वैसे मुनि हरनाथजी की भी प्रशंसा तो की ही थी, भले ही वह अत समय मे न हो। उस तथ्य को टोकरजी की भिक्षु द्वारा अत समय मे की गई प्रशसा के तथ्य से मिलाकर यह गाथा लिखी गई हो। विकल्प रूप मे कहा जा सकता है कि जयाचार्य ने किसी दूसरी परंपरा को, जिसमें अत मे दोनो की प्रशसा करने की बात हो, उपस्थित किया है। इसका समर्थन जयाचार्य के निम्न कथन से होता है.

छेहलै अवसर भीक्षु कह्यो, हरनाथ टोकर भारीमालजी।
काई या तीना रा सहाज थी, म्है सयम पाल्यो रसालजी॥[6]

---

१. जय (भि० ज० र०) ४५।५,७
२. जय (शा० वि०) ७।९
३. संत विवरणी
४. मुनिन्द मोरा की ढाल गा० १६ पृ० ४४ पर उद्धृत
५. (क) जय (भि० ज० र०) ५४।६, प्र० ५, पृ० ४१ पर उद्धृत
(ख) जय (लघु भि० ज० र०) ५।४, प्र० ५, पृ० ४१ की पाद टिप्पणी २ मे उद्धृत,
६. संत गुण वर्णन ५.६।२।सेठिया, मुनि गुण वर्णन मे संथारे में प्रशंसा की बात लिखते हैं पर वह ठीक नही है।

एक उल्लेख के अनुसार आपने ढूढार मे सथारा किया था। दूसरे उल्लेख के अनुसार वगड़ी मे (देखे इस तथा पूर्व प्रकरण के उद्धरण)। पर वास्तव मे आपका सथारा ढूढार मे हुआ था।

आपका सथारा टोकरजी के पूर्व हुआ या बाद मे यह भी चिन्तनीय विपय है। पर जैसा कि पूर्व प्रकरण मे विचार किया जा चुका है आपका सथारा टोकरजी के कई वर्प वाद हुआ था। आपके सथारे के साथ 'हद' विशेपण प्रयुक्त है। इससे ध्वनि निकलती है कि आपसे पूर्व मुनि थिरपालजी और टोकरजी का सथारा हुआ उससे अधिक दिनो का आपका सथारा था।

वताया जा चुका है कि स० १८३८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन आप श्रीजीद्वार मे भिक्षु के साथ रहे। (देखिए पूर्व प्रकरण पृ० ४३-४४)।

स० १८३६ कार्तिक सुदी २ बुधवार के दिन केलवा मे रचित अपनी ढाल मे श्रावक शोभजी ने मुनि हरनाथजी के सबध मे लिखा है

हरनाथजी छे मोटा मतवत ए, पादरो लीधो छे मुगत रो पथ ए।
गण मे नही राखे छे धेप ने राग ए, गुरु पाया पुज मात्थे मोटो भाग ए ॥

सं० १८४१ के चैत्र (द्वितीय) वदि १० के लिखित मे आपकी सही है।

मुनि हेमराजजी की दीक्षा स० १८५३ की माघ सुदी १३ के दिन हुई थी। उस दिन विद्यमान सतो मे आपका नाम नही है। अत आपके देहावसान का समय स० १८५३ की माघ सुदी १२ के वाद नही हो सकता। अव यह देखना है कि स०१८४१ एव स० १८५३ की मध्यावधि मे आपका देहावसान कव हुआ? देखा जाता है कि स० १८४५ के ज्येष्ठ शुक्ला १ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है जबकि पूर्व के सभी लिखितो मे पाए जाते है। ऐसी स्थिति मे अनुमान हो सकता है कि आप लिखित के समय तक दिवगत हो चुके थे और आपका स्वर्गवास स० १८४१ द्वि० चैत्र वदि १० और स० १८४५ ज्येष्ठ शुक्ला १ के अतराल काल मे हुआ।

आपका स्वर्गवास ढूढार मे हुआ उल्लिखित है। आप भिक्षु के साथ ही रहे। भिक्षु १८४६-१८४७ के शेपकाल मे क्रमश जेठ और फाल्गुन मे ढूढार मे देखे जाते है। उनका सवत् १८४८ का चातुर्मास माधोपुर मे था और उसके बाद शेपकाल मे भी कुछ समय तक ढूढार मे रहे। ऐसी स्थिति मे आपका स्वर्गवास स० १८४६ के शेपकाल के पूर्व नही घट सकता। स० १८४६ के शेपकाल से लेकर स० १८४८ के शेपकाल के वीच हुआ।

स० १८४५ ज्येष्ठ शुक्ला १ के लिखित मे विद्यमान सभी साधुओ के हस्ताक्षर है। आप अकेले कही रहे हो, यह सभव नही। ऐसी स्थिति मे मानना होगा कि उक्त लिखित मे आपके हस्ताक्षर आपकी अनुपस्थिति के कारण या अन्य किसी परिस्थिति वश नही हो पाए, ऐसा नही है। वास्तव मे उस समय तक आप विद्यमान नही रहे।

हरनाथजी वडे विद्वान सत थे। जयाचार्य ने लिखा है "हरनाथजी ज्ञान गभीरा" (ला० मि० मे० २) अर्थात उनका ज्ञान वडा गम्भीर था।

मुनि टोकरजी और आपके व्यक्तित्व के सबध मे निम्न उल्लेख प्राप्त है

१. सौम्य मूरत सुखकारीजी, वारू दोनू सुविनीतो।
भक्ति भिक्षुनी भारी करी, पूरज पाली प्रीतो ॥
गुणग्राही गिरवा घणा, परछदारा चालणहारो।
सत दोनू रा गुण सभरया, आवै हर्प अपारो ॥

भिक्षु पाट थाप्या भारीमालजी, वर्ष बतीशे विचारो।
ए संत दोनूं इ बड़ा हूता, नाण्यो गर्व लिगारो॥
ऐसा निर्गर्वी ओपता, त्यांरा गुण पूरा कह्या न जावो।
याद आयां मन उल्लसै, रोम रोम विकसायो॥[1]

आपकी प्रशस्ति मे लिखा गया है :

२. जिन शासन सुखदायक सुविनीत के,
स्वामी हरनाथजी हुआ जी।
भिक्षु रीती पूर्ण पाली प्रीत के,
तन मन स्यु सेवा करी जी॥[2]

३. टोकरजी हरनाथजी रे ए वेहु सत सुखदाय।
विनय वेयावच कारिया रे लाल ए तेरा माहिला ताय॥[3]

---

१. संत गुण वर्णन ५६।४-६। तथा देखिए संत गुण माला ८।२ :
हरनाथ टोकर गुणरागी रे। अरु भागी स्वाम प्रसंसीया॥
२. जिन शासन महिमा ७।३
३. हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत माला, गा० १४४

७. आचार्य भारमलजी

जन्म-वंश-जन्मभूमि

साधु भारमलजी आचार्य भिक्षु के पट्टधर शिष्य थे। भिक्षु द्वारा आप द्वितीय आचार्य के पद पर निर्वाचित किए गए थे।[1] भिक्षु के आचार्य रुघनाथजी से अलग होने पर जिन तेरह साधुओ ने नई दीक्षा लेने का विचार किया था, उनमे कई तो प्रथम चातुर्मास के वाद अर्थात् स० १८१७ के शेष काल मे ही और कई और पीछे पृथक हो गये। थिरपालजी, फतैचन्दजी भिक्षु, टोकरजी, हरनाथजी और आप ये छ साधु ही परस्पर प्रीतिपूर्वक अन्त तक सव मे रहे और दृढता के साथ सयम का पालन करते रहे। चार साधु थिरपालजी, फतैचन्दजी, टोकरजी और हरनाथजी ने भिक्षु की जीवनावधि मे ही अनशनपूर्वक पडित-मरण प्राप्त किया। भिक्षु का स्वर्गवास स० १८६० की भाद्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन हुआ, तव आप द्वितीय आचार्य के रूप मे शासनाभिरूढ हुए।[2]

---

१. जय (शा० वि०) ३।दो० १

गणपति भिक्षु रै गणी, पाटोधर पुन्यवान।
भारीमाल भद्रिक भला, तेरा माहिला जान॥

२. (क) हेम (भा० च०) १।दो० ४-१०.

भेपधारया ने छोडने, तेरे जणा तिण वार।
नीकल्या व्रत नीका करण, मनमे गाढी धार॥
स्वामी थिरपालजी फतैचन्दजी, आचारज भीषू रिपराय।
टोकरजी हरनाथजी, भारीमाल मन भाय॥
ऐ छहु रह्या वड सूरमा, सजम उपर नेत।
जिण मारग दीपावता, खरा मुनि रण खेत॥
वीरभाण ऊधो पर्‌यो, इन्द्रर्यां सावज सरध।
लिखमीचन्दजी आठवो, वपतमल गुलाव मिथ्यात मे गरध॥
दूजो भारमल रूपचद ने पेमजी, ऐ सुध न चाल्या मात।
आचार मे पिण ढिला पर्‌या, सुध सरधा पिण नाई हाथ॥
पिण छहु मुनिसर मोटका, विचरत आरज देस।
घणा जीवा ने तारता, दया धर्म उपदेस॥

आपका जन्म मेवाड के मुहा गांव मे हुआ था।[1] यह गाव पुर, भीलोडा, माडल और राजपुर के निकट है।[2] आप ओसवाल थे। आपका जन्म लोढा कुल मे हुआ था। आपके पिताजी का नाम किसनोजी और माता का धारिणी था।[3]

आपका जन्म स० १८०४ मे हुआ था।[4] ख्यात मे आपके जन्म-सवत् का उल्लेख नही मिलता पर यति हुलासचन्दजी ने सवत् १८०३ का जन्म लिखा है।[5] पर उनके इस कथन का

पाच मुनि परभव गया, सथारो कर सार।
हिवे भारीमाल रिपराय नो, भवियन सुणो विचार॥

(ख) जय (भि० ज० र०) ८।६,१०

थिरपालजी फतैचन्दजी, मु० भिक्खू रूप जग भाण हो।
टोकरजी हरनाथजी, मु० भारीमाल बहु जाण हो॥
रूडै चित्त भेला रह्या, मु० वर पट् वदीत हो।
जावजीव लग जाणज्यो, मु० परम माहो माहि प्रीत हो॥

१. (क) हेम (भा० च०) १।दो० ११

देस मेवाडे दीपतो, मुहा गाव मझार।
कृष्ण पिता माता भली, उदर लियो अवतार॥

(ख) ख्यात क्रम ७

(ग) हुलास (शा० प्र०) भा० सं० १।१

२. हेम (भा० च०) १।२ ·

पुर सहर अति दीपतो, सहर भीलोडो ताम।
माडल ने राजपुर विपे, जठे मुहो गाम॥

३. (क) वही १।३ :

तिण गाव मे सामीजी जनमिया, मोटे कुल जाण।
पिता किसनो साह जाणिये, धारणी माता पिछाण॥

(ख) वही १३।६

मुहा गाम मे सामी जनमिया।
ओसवस अवतरिया सुध जाते लोढा जुगता हो लाल॥

(ग) हुलास (शा० प्र०) भा० स० : १।१,२

देश मेवाडै दीपतो रे मुहो नामे ग्राम।
लोढा जात ओशवश मे रे, किसनचन्दजी नाम॥
धारणी नामे भारज्या रे, प्रसव्यो पुत्र प्रधान।

४. जय (भिक्षु गुण वर्णन) १८।२

सवत् अठारै चोकै समै रे, काई भारीमाल उत्पन्न।

५ हुलास (शा० प्र०) भा० सं० १।२.

धारणी नामे भारज्या रे, प्रसव्यो पुत्र प्रधान।
अठारै तीनरी साल मे रे, शुभ दिन वलि शुभ घडी जान॥

कोई प्राचीन आधार नही मिलता ?[1]

उन दिनों कान मे वालियां पहनने की रिवाज थी। आपके कान विंधे हुए नही थे। यह देखकर एक वार आपसे किसी ने पूछा . "आपके कान विंधे हुए क्यो नही है ?" आपने उत्तर दिया "कान विधाये जाते है तव ज्ञाति-वर्ग को भोजन कराया जाता है। गुड वाटा जाता है। स्थिति ऐसी न थी। इसलिए घर वालो ने कान नही विधवाये।" इस घटना से पता चलता है कि आपके परिवार की आर्थिक स्थिति साधारण ही रही। आपने वास्तविक स्थिति को ढँकने की चेष्टा नही की। यह घटना आपकी निश्छल वृत्ति और निरहंकार भाव की परिचायक है।

वाल्यावस्था से ही आप मे वैराग्य-भावना का वडा प्रावल्य था। भिक्षु से सम्पर्क हुआ, तव उनके धर्मोपदेश से प्रभावित हो किसनोजी और आप दोनो दीक्षा के लिए उद्यत हुए। उस समय आपकी अवस्था लगभग १० वर्ष की थी। आपने अपने पिता किसनोजी के साथ भिक्षु से दीक्षा ग्रहण कर मुनि-जीवन वरण किया। दीक्षा वागौर गाव मे एक सुन्दर वट वृक्ष की छाया तले स्वय भिक्षु के कर-कमलो से सम्पन्न हुई। यह स० १८१३ की वात है।[2] उस समय

---

१. उक्त अन्तर पर तेरापन्थ का इतिहास (ख० १) पृ० १२५ पा० टि० १ मे निम्न चिन्तन प्राप्त है ·

"सम्भव है यह अन्तर पचाग और जैन परिपाटी के संवत् वदलने के भेद होने से सम्वन्धित हो। जन्म-मास तथा तिथि उपलब्ध नही हुए। परन्तु उपर्युक्त अनुमान ठीक हो तो वह चैत्र शुक्ला नवमी से आषाढ पूर्णिमा के वीच का सभव हो सकता है।"

उक्त अन्तर संवत् वदलने के भेद से उत्पन्न होना सभव नही है। पचाग सवत् चैत्र सुदी ९ से आरम्भ माना जाय, जैसा कि माना गया है, तो यति हुलासचदजी के अनुसार जन्म चैत्र सुदी ९, १८०३ से चैत्र वदि ८, १८०३ के वीच घटित होगा। इससे सम्वन्धित साधु वर्ष श्रावण वदि १, १८०३ से आपाढ सुदी १५, १८०३ होगा। इस वीच कोई भी ऐसा महीना नही हो सकता जो पचाग के अनुसार १८०३ और साधु सवत् के अनुसार १८०४ हो क्योकि पचाग सवत् पहले ही चैत्र सुदी ९ से ही वदल जाता है और साधु सवत् उसके वाद श्रावण वदि १ से वदलता है। दोनो गणना के किसी एक वर्ष का केवल श्रावण वदि १ से चैत्र वदि ८ तक का काल ही सामान्य हो सकता है। चैत्र शुक्ला नवमी से आपाढ पूर्णिमा की अवधि हमेशा भिन्न-भिन्न वर्षो मे पडेगी। इस वीच जन्म मानने से सगति सभव ही नही।

वास्तव मे तो पचाग वर्ष चैत्र वदि १ से आरभ होता है न कि चैत्र सुदी ९ से। राजस्थान मे राजकीय वर्ष श्रावण वदि १ से आरभ होता है, जैसे कि साधु सवत्।

२. (क) हेम (भा० च०) १। दो० १२

भीपू गुरु भल पामिया, वाप वेटो तिण वार।
दरवे सजम आदर्यो, पिण सुध नही आचार॥

(ख) वही १। ४-५.

सुखे समाधे मोटा हुआ, वुध अकल गुण खाण।
दसवा वर्ष रे आसरे, भीपू गुरु मिल्या आण॥
वागोर सहर विध सु करी, वाप वेटो तिण वार।
वड विरप रलियामणो, लीधो सजम भार॥

भिक्षु आचार्य रुघनाथजी के टोले मे थे। उस टोले मे आचार्य के अतिरिक्त अन्य साधु भी दीक्षा दे सकते थे। दीक्षित साधु उन्ही के शिष्य माने जाते जो दीक्षा देते थे। इस तरह साधु किसनोजी और साधु भारमलजी भिक्षु के शिष्य हुए।[1]

यति हुलासचन्दजी के अनुसार टोले मे शिष्य करने की रीति थी। "ये तुम्हारे शिष्य होगे," यह कहते हुए आचार्य रुघनाथजी ने किसनोजी और भारमलजी को भिक्षु का शिष्य बना उन्हे सौपा था।[2] पर यह कथन उपर्युक्त विवेचन मे उद्धृत सभी साक्ष्यो एव अन्य प्राचीन कथनो से भिन्न पडता है, जहा साधु भारमलजी को भिक्षु का स्वहस्त दीक्षित शिष्य कहा गया है,[3] अत. ठीक प्रतीत नही होता।

आचार्य भिक्षु के अडिग साथी

साधु भारमलजी की प्रकृति बडी ही भद्र और सरल थी। आपके बालगुणों की झाकी आपके विषय मे कहे गए—"बुध अकल गुणखान" शब्दो से प्राप्त होती है। जो केवल दस वर्ष की अवस्था मे ससार के वास्तविक स्वरूप का बोध कर सके, जिसकी वृत्तियां बाल्यावस्था मे ही वैराग्य के रग मे रगी हो, जिसे सासारिक भोग उस अवस्था मे ही नि सार लगने लगे, उसके विचार वास्तव मे ही गहरे और बुद्धि दूरगामी होनी चाहिए। आत्मिक सुख ही सच्चा सुख है, यह प्रज्ञा जिसके हृदय मे अत्यन्त प्रबल थी वह किशोरावस्था मे ही असाधारण बुद्धि वाला माना

(ग) ख्यात क्रम ७ घर मै वरस १० आसरै रह्या।

(घ) हुलास (शा० प्र०) भा० स० वर्णन १।३ .

भारमल अभिधान थी, दश वर्ष अवस्था बाल।
कुवारा रुघ टोलै भिक्षु के पास सयम लियो रे अठारैसे तेरा री साल ॥

१ (क) जय (भि० ज० र०) ६।२-३ ·

आसरै दशमैं वर्ष आया, भारीमाल सरल सुपदाया।
भेष धार्‍या माहि छतां सोय, सुत तात भिक्खु शिष्य होय ॥
त्यारै चेला तणी छै रीत, तिणसू शिष किया धरि प्रीत।
त्यामै रह्या आसरै वर्ष चार, पछै निसरिया भिक्खू लार ॥

(ख) जय (शा० वि०) ३।दो० ३

रीत हूती चेला तणी, भेषधार्‍या रे माय।
तिण सू शिष्य भिखु तणा, भारीमाल थया ताय ॥

२ हुलास (शा० प्र०) भा० स० १।४ ·

भेष धर्‍या रै रीत थी रे, शिष्य करवारी अनूप।
ए थारै थायस्यै, इम कही भिक्षु भणी दिया सूप ॥

३. (क) जय (भि० ज० र०) २।५

भिक्खू शिप भारीमालजी, दिक्षा दी निज हाथ।

(ख) वही ६।१ .

शिप भिक्खू ना महा सुपकारी, भारीमाल सरल भद्र भारी।
त्यारी तात किसनोजी तास, विहू घर छोड्यो भिक्खू पास ॥

जाना चाहिए। निर्मल आत्मदृष्टि, ऋजुता, विनय, दृढता, विवेक ये गुण आपमे सहज मुखरित थे। आपको गुणरूपी रत्नो की खान कहना यथार्थ निरूपण ही है।

आपकी दीक्षा के वाद भिक्षु लगभग ४ वर्ष तक आचार्य रुघनाथजी के टोले मे रहे। आप भी साथ थे।[1] सं० १८१५ का भिक्षु का चातुर्मास राजनगर मे था। इस चातुर्मास मे भिक्षु के जीवन मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित हुआ।[2] अपने और टोले के साधुओ के जीवन मे भिक्षु को शुद्ध सम्यक्त्व और शुद्ध आचार का अभाव दिखाई दिया। अपनी इस अनुभूति को उन्होने उस समय अपने साथ मे रहे हुए साधुओ के सामने रखा। भिक्षु की वात साधु भारमलजी आदि साधुओ के भी जँची।[3]

भिक्षु ने आचार्य रुघनाथजी से प्रार्थना की। उनसे चर्चाए हुई। कई प्रयत्नो के वाद भी सशोधन की सभावना न देख आप आचार्य रुघनाथजी से सम्वन्ध-विच्छेद कर टोले से पृथक् हो गए। उस समय साधु भारमलजी के पिता किसनोजी भिक्षु के पास नही थे। अन्यत्र थे। भिक्षु

---

१. (क) हेम (भा० च०) १३।६, १०

त्या वालपणे सजम लियो,
सरल सभावी साचा भिपू रिपना भल भगता हो लाल।
दस वरस आसरै घर मे रह्या,
चतुर वरस उनमाने रह्या दरवे भेष मझारी हो लाल॥

(ख) वही १।६ :

चतुर वरस रे आसरे, दरवे सजम भार।

(ग) ख्यात क्रमाक ७

(घ) हुलास (शा० प्र०) १।५

सु० चार वर्ष तेहमे रही रे, सोलै भिक्षु साथ।
भाव दिक्षा भव-भय हरू रे, लीधी भिक्षु हाथ॥

२. जय (भि० ज० र०) ढा० २ और ३

(क) हेम (भि० च०) १।७-८

(ख) वेणी (भि० च०) २।दो० ३

३. जय (भि० ज० र०) ३।२, ३ :

साधां नै सहु वात सुणाई, सरधा किरिया ओलखाई।
ते पिण सुण हरष्या मन मांही रे॥
टोकरजी हरनाथजी ताय, भारीमाल घणा सुखदाय।
समझी लागा पुजरै पाय रे॥

(क) वेणी (भि० च०) २।१, २.

एहवो विचार कियो तिण ठामे, गाढी वात हिया मे धार।
टोकरजी हरनाथजी भारिमाल, समझने लागा पुजरी लार॥
मुरुधर देश मे आया तेवारे, मिलिया सोजत सहर मझार।
गुरु ने कहे वीर वचन सभालो, आपा मे नही छैं शुध आचार॥

पुनर्दीक्षित हो शुद्ध साधु-जीवन-यापन का विचार कर रहे थे। ऐसे ही समय साधु किसनोजी भी भिक्षु के पास आ पहुचे।

पिता के साथ सत्याग्रह

भिक्षु नई प्रव्रज्या की भावना से अनुप्राणित हो आगे के कदम की बात सोच रहे थे। तब आपने अपने साथ मे रहे हुए साधुओ की प्रकृति पर एक दृष्टि डाली। किसनोजी की प्रकृति बड़ी तेज थी। भिक्षु ने उनमे सहनशीलता का अभाव देखा। वे आहार अधिक मंगाते। रोटिया बच जाती तो जो अच्छी नही होती उसे नही लेते। अच्छी न देने पर झगड़ा करते। भिक्षु को लगा कि शुद्ध साधुत्व के कठोर मार्ग पर दृढतापूर्वक चलना, खाने-पीने के परीषह सहन करना, कठोर वचन-प्रहारो के समभावपूर्वक झेलना किसनोजी जैसे सुखशील पुरुष के लिए वश की बात नही। यह सोचकर भीलाडा मे भिक्षु ने साधु भारमलजी से कहा . "तुम्हारे पिता साधुत्व के लायक नहीं है, अत उन्हे छोडना चाहता हू। तुम्हारा क्या मन है?" भारमलजी बोले : "मुझे तो आपसे ही काम है। आपकी इच्छा हो वैसा करे।" भिक्षु ने साधु किसनोजी से कहा : "तुम्हारे और हमारे बीच आहार-पानी का सभोग नही है।" यह सुनकर साधु किसनोजी बोले : "ऐसा है तो मै अपने पुत्र को ले जाऊगा।" भिक्षु ने कहा : "वह भी साथ न आए तो उसकी इच्छा।" किसनोजी जबरदस्ती भारमलजी को लेकर एक दूसरी हाट में जाकर बैठ गए। आहार-पानी लाकर भारमलजी को भोजन करने के लिए कहा। भारमलजी बोले "मै नही करूगा।" दूसरे दिन भी करने को कहा पर भारमलजी ने आहार नही किया। तीसरे दिन आहार लाकर बहुत मनुहार करने लगे तब भारमलजी ने कहा . "आपके हाथ का आहार करने का मुझे जीवन-भर के लिए त्याग है।" किसनोजी हतप्रभ थे। भारमलजी को भिक्षु को सौंपते हुए बोले "यह तो आप ही से प्रसन्न है। आपके पास ही रखे। आप नई दीक्षा ले उससे पूर्व मेरा भी कही ठिकाना लगा दे।"[1] भारमलजी से कहा "तुम्हारा भिक्षु से सहज अनुराग है।

---

१. (क) जय (भि० दृ०), दृ० २०२ .

स्वामीजी "माँहि थी नीकली नवो साधपणो पचखवाने त्यार थया। जद कने साध था ज्यारी प्रकृति देखी। भारमलजी स्वामी रो पिता किसनोजी त्यांरी प्रकृति करडी हुंती। आहार वधतो मगावै। अधिकाइ री रोटी वधै तो उतरती लेवे नही। चोखी न दे तो कजियो करै। जद भीलाडा मे भारमलजी स्वामी ने कह्यो थारो पिता तो साधपणे लायक नही सो परहो छोड़स्यां। थारो काई मन है। जद भारमलजी स्वामी फरमायो म्हारै तो आप सू काम है। आपरी इच्छा आवै ज्यू कराइजै। पछै किसनोजी ने स्वामीजी कह्यो : थारै म्हांरै आहार पाणी भेलो नही। इम निसुणी किसनोजी बोल्यो : म्हारा बेटा नें ले जासू। जद स्वामीजी बोल्या . ऊ न आवै तो उणरी इच्छा। जद जबरन भारमलजी स्वामी ने लेयने दूजी हाटें जाय न बेठो। आहार पाणी ल्याय ने करावा लागो। जद भारमलजी स्वामी बोल्या : हुतो न करूं। नित्य धामे पिण करै नही। तीजो दिन आयो जद घणी मनुहार करवा लागो जद भारमलजी स्वामी कह्यो थारा हाथ रो आहार करवारा जावजीव त्याग है। पछै भीखणजी स्वामी ने आण सूप्यो। बोल्यो . ओ तो थासूइज राजी है। थां कने इज राखो। थे नवी दीक्षा न लीधी है जितरे म्हारोइ ठिकाणो बाधो।

तू उनके हाथ का अन्न-जल ले। अपने नियमों को अच्छी तरह निभाना।" इस तरह किसनोजी ने भारमलजी को भिक्षु के चरणो मे रहने की आज्ञा दी।[1]

किसनोजी ने भारमलजी को विकट स्थिति मे डाल दिया। एक ओर पिता का अपने पास रखने का आग्रह था और दूसरी ओर शुद्ध सयम के मार्ग मे जीवन को अग्रसर करने की भावना। एक ओर स्नेह का खिंचाव था और दूसरी ओर उच्चतम साधना मे लगने की तमन्ना का खिंचाव। आप भिक्षु को परख चुके थे। आपकी आध्यात्मिक वृत्ति देख रही थी कि भिक्षु

---

१. (क) हेम (भा० च०) १।६ से १२

चतुर बरस रे आसरे, दरवे सजम भार।
विरचत विरचत आविया,. सहर भिलोडा मझार॥
भीषू कहे भारीमाल ने, मुख सु अमृत वाणी।
तुझ पिता सजम लायक नही, तू तो उत्तम प्राणी॥
छोडवा लागा पिता भणी, पित्रा कहे तिण वार।
मुझ ने छोडो इण रीत सू, तो पुत्र लेसु म्हारी लार॥
जव पुत्र कहे पिता भणी, मुख सू एहवी वाण।
थाहरा हाथरा अन्न पाणी तणा, जावजीव पचषाण॥
अभिग्रह कियो इण रीत सू, भारीमाल करी भारी।
दोय दिन आषा नीकल्या, अडिग रह्या गुणधारी॥
पछे पिता पिण दीधी आगन्या, थाहरे गुरु तू प्रेम।
अन पाणी ले यारा हाथ रो, नीका राप तू नेम॥
पिता रह्यो पाखण्ड मझे, भारीमाल गुरु भगता।
सघ न छोड्यो साम रो, अतेवासी रह्या लगता॥

(ख) जय (भि० ज० र०) ६।४ से १५ :

किस्नाजी री प्रकृत करडी जाणी, भारीमाल भणी वदै वाणी।
सजम लायक नही तुझ तात, तुम तो उत्तम जीव विष्यात॥सु०॥
आपा नवी दिष्या लेसा सोय, लागू होता दिसै वहु लोय।
आहार पाणी वचनादिक ताय, किसनाजी नै दुक्कर अधिकाय॥सु०॥
तुझ मन मुझ पास रहिवारो, कै निज जनक कन्है जायवारौ।
इम पूछ्यौ भिषू धर प्रेम, भारीमाल उत्तर दियौ एम॥सु०॥
म्हांरै तात थकी काई काम, हूं तो आप कन्हे रहस्यू ताम।
सजम पालस्यू रूडी रीत, मोनै आप तणी परतीत॥सु०॥
किस्नोजी नै भिक्खु कहै ताम, थासू मूल नही म्हारे काम।
चारित पालणो दुक्करकार, तिण सू थाने न लेवा लार॥सु०॥
किस्नोजी कहे मोनै न लेवो, तो म्हारौ पुत्र मोनै सूप देवौ।
सुत नै राषसू मुझ साथ, इण ने लेजावा न देऊ विष्यात॥सु०॥
भिक्खू कहे पुत्र ए थारौ, आवै तौ नही वरजा लिगारो।
जव आयौ भारीमाल पास, और जागा लेई गयौ तास॥सु०॥

के सान्निध्य मे रह कर ही आत्म-साधना की भावना को पूरा किया जा सकता है। किसनोजी के बल-प्रयोग ने आपकी भावना को शिथिल नही किया। आपने परिस्थिति का बडी दृढ़ता और साहस के साथ सामना किया। आपने किसनोजी के हाथ मे अन्न-जल ग्रहण करने का यावज्जीवन त्याग कर दिया। किसनोजी आहार लाकर खाने को कहते और आप अस्वीकार कर देते। किसनोजी ने सोचा—बालक है, जिद्द कब तक रख पाएगा? थकने पर भोजन करने लगेगा पर पूरे दो दिन निकल गए और भारमलजी ने अन्न-जल ग्रहण नही किया। मूक शान्त भाव से पिता द्वारा उत्पन्न संकट को उपवासी रहकर सहन करने लगे। तीसरे दिन पिता ने आहार करने के लिए अधिक आग्रह किया तब अपने अभिग्रह की बात प्रगट करते हुए आपने कहा : "मुझे आपके हाथ मे अन्न-जल ग्रहण करने का यावज्जीवन त्याग है।" सत्याग्रह ने दुराग्रह पर विजय प्राप्त की। किसनोजी भारमलजी को लेकर भिक्षु के पास गए और उनके चरणो मे छोडते हुए कहा : "यह आप ही से राजी है। अपने पास ही रखे। इसे जतनपूर्वक रखे। इसे आहार लाकर दे।" भारमलजी से उन्होने कहा : "तुम्हे स्वामीजी से प्रेम है। उनके हाथ मे आहार ग्रहण कर। अपने नियमो का अच्छी तरह पालन करना।"

इस तरह पिता की आज्ञा मिल जाने से आचार्य भिक्षु का मार्ग प्रशस्त हो गया। उन्होने भारमलजी को अपने पास रख लिया। भारमलजी ने पिता द्वारा उत्पन्न संकट को दृढ़ सत्याग्रह से छिन्न-भिन्न कर दिया।

आचार्य भिक्षु बालक भारमलजी मे एक महान् आत्मा का दर्शन कर सके, यह उनकी अलौकिक तलस्पर्शी दृष्टि का एक उदाहरण है। भिक्षु के साथ अपने जीवन को शुद्ध संयम के मार्ग पर न्योछावर कर देने की भारमलजी की भावना आपकी प्रगाढ मोक्षैषणा का परिचय देती है। पिता के प्रति असहयोग न्याय-मार्ग के लिए प्राण-न्योछावर कर देने की आपकी आन्तरिक दृढ़-वृत्ति का दर्शन कराती है। आप इस घटना के समय लगभग १४ वर्ष के थे। आप प्रथम कठोर परीक्षा मे सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुए।

आचार्य भिक्षु ने किसनोजी को आचार्य जयमलजी को सौंपा।[1] काफी समय के बाद किसनोजी आदि दो साधु एक भोज से लापसी याच कर लाए। आहार कर उसी समय विहार कर दिया। गर्मी के दिन थे। लापसी खाई हुई थी। अत्यन्त तृषा उत्पन्न हुई। प्रासुक जल उपलब्ध

भारीमाल पिता नै भाषै, किस्नोजी री काण नही राषै।
थारा हाथ तणुं अन पांण, म्हारै जावजीव पचषाण ॥सु०॥
भारीमाल अभिग्रह कीयौ भारी, दिन दोय निसरीया तिवारी।
रह्या सुरगिर जेम सधीरा, हलुकर्मी अमोलक हीरा ॥सु०॥
तब बाप थाकौ तिण वार, भिक्खू नै आण सूंप्या उदार।
थांसूंइज राजी छै एह, म्हांसूं तौ नही मूल सनेह ॥सु०॥
इण नै आहार पाणी आण दीजै, रूड़ा जतन करी राषीजै।
म्हारी पण गति कांइक कीजै, किण ही ठिकाणै मोनें मेलीजै ॥सु०॥
थे नही लियो संजम भारो, जिलरै करो ठिकाणो म्हारो।
भिक्खु सूंप्यौ जैमलजी नै आंण, जैमलजी हरप्या अति जांण ॥सु०॥

१. जय (भि० दृ०), दृ० २०२

नही था। कच्चा जल नही पीया। इस तरह तृषा परीषह से वे काल-प्राप्त हुए। भोज से आहार लेने की तो उस टोले की विधि थी, पर कच्चा जल न ग्रहण करने के नियम का निर्वाह किया।[1]

नई दीक्षा

आचार्य भिक्षु मनुष्य-स्वभाव के बहुत बडे पारखी थे। उक्त कसौटी पर खरे उतरने के बाद तो साधु भारमलजी के प्रति भिक्षु का आकर्षण और भी अधिक हो गया। भिक्षु को धर्म के लिए प्राण-न्योछावर करने वाले साधुओ की ही आवश्यकता थी और भारमलजी के रूप मे उन्हे एक ऐसे ही दृढचित्त शिष्य का सयोग मिला। भिक्षु ने इस होनहार बालक को अपने कुशल हाथों से गढकर और भी महान् बनाया और चमकाया।

भिक्षु स० १८१६ की आषाढ शुक्ला १३ को केलवा पधारे[2] और आषाढ शुक्ला पूर्णिमा के दिन वहा नई दीक्षा ग्रहण की। भारमलजी भी पुन प्रव्रजित हुए।[3] आपकी बडी दीक्षा ७ दिन बाद हुई।

भयंकर उपसर्ग

नई दीक्षा के बाद का भिक्षु का सवत् १८१७ का प्रथम चातुर्मास केलवा मे हुआ। यहा भिक्षु 'अधेरी ओरी' नामक स्थान मे ठहरे। उस ओरी (कोठरी) मे प्रकाश और हवा का प्रवेश नही था। अधकार रहता था, इसलिए वह 'अधेरी ओरी' कही जाती थी। उसमे उपद्रव भी माना जाता था। ऐसा भयकर माना जाने वाला स्थान आचार्य भिक्षु को प्राप्त हुआ। उसी मे विराजे और अपना प्रथम चातुर्मास वही बिताया। एक रात्रि की घटना है।[4] आप (मुनि भारमलजी) लघु मात्रा प्रतिष्ठापन के लिए बाहर निकले। उस समय एक सर्प उनके पैरो मे लिपट गया। देर तक न लौटे तब भिक्षु बाहर आए। आप (भारमलजी) शान्त मुद्रा मे स्थिर खडे थे। भिक्षु ने इस तरह खडे रहने का कारण पूछा। तब आपने कहा "उरपर जाति

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० २०२

२. सापोल के विरधीचन्दजी कोठारी की प्राचीन चोपडी का उल्लेख। (तेरापथ का इतिहास पृ० ६३)

३. (क) हेम (भा० च०) १। दो० १३

अठारसे षट् दस समै, थया मोटा मुनिराज।
पिता पाखण्ड मत मे रह्यो, पुत्र सारे निज काज॥

(ख) वही १।१३

सवत् अठारै पट दस समे, पच महाव्रत लीधा।
आषाढ सुदि पूनम दिने, जीत नगारा दीधा॥

(ग) वेणी (भि० च०) ३।१२-१३, ४। दो० १

(घ) जय (भि० ज० र०) ८।३-६

४. सदर्भो के अनुसार यह घटना चातुर्मास प्रारभ होने के बाद की है। तेरापन्थ का इतिहास (ख० १) पृ० ६५ पर उसे भाव-सयम ग्रहण के पूर्व की घटना के रूप मे चित्रित किया गया है।

का जन्तु पैर मे लिपटा हुआ है।" यह सुनकर भिक्षु सर्प को सम्बोधन कर बोले : "हे आर्य ! हम लोग साधु है। किसी को कष्ट नही देते। अगर यहा ठहरने से तुम्हे कष्ट होता हो तो हम अन्यत्र चले जाए। इस वालक साधु के पैरो मे लिपटकर क्यो परीषह दे रहे हो ?" आचार्य भिक्षु के इस प्रकार कहते ही वह सर्प एक सपाटे से एक लम्बी लकीर खीचता हुआ वहां से चला गया। सत भारमलजी ऐसे भयंकर उपसर्ग के समय भी शांत और निश्चल रहे। यह उनकी अत्यन्त निर्भीक चित्तवृत्ति का उदाहरण है। इस घटना के समय उनकी अवस्था १४ वर्ष के लगभग थी। रोमाचकारी भय के अवसर पर ऐसी शात निर्भीकता विरल ही देखी जाती है।[1]

वे तूफानी दिन

आचार्य रुघनाथजी से अलग होने के वाद भिक्षु को वडे तूफानी दिनो का सामना करना पड़ा। गांव-गाव मे विरोध का दावानल प्रज्वलित हो गया। उन पर अपशब्दो की बौछार होने लगी। नाना प्रकार के कष्ट उपस्थित हुए। वालक सत भारमलजी भिक्षु की तरह ही इन सव यातनाओ को प्रसन्न मुखमुद्रा से सहन करते। खाने-पीने, पहनने-ओढने और रहने-ठहरने के कठोर कष्टो मे भी उनका चित्त कभी मलिन नही हुआ। उस समय के कष्टों का वर्णन करते हुए भिक्षु ने एक वार कहा था "हम लोग जव रुघनाथजी से अलग हुए तव से करीव पाच वर्ष तक तो घी चुपडे की तो वात ही दूर, रुखा-सूखा आहार भी पूरा नही मिला। कपड़े का यह हाल था कि कभी सवा रुपए कीमत की वासती (रेजी) मिल जाती तव भारमल अर्ज करता : "आप इसकी पछेवडी वनावे।" मैं कहता "इसकी पछेवड़ी नही चोलपट्टे वनाओ—एक तुम्हारे लिए और एक मेरे लिए।" जो कुछ आहार-पानी मिलता उसे लेकर साधु जंगल मे चले जाते। आहार-पानी वृक्षो की छाया मे करते। सूर्य की कडकड़ाती धूप मे सव साधु आतापना लेते। शाम को वापस गाव मे आते। इस प्रकार कष्ट सहन करते और कर्म काटते।"[2] वालक होते हुए भी सत भारमलजी इन कष्टों को सहर्ष झेलते। भूख-प्यास के इन दारुण कष्टों से वे कभी विचलित नही हुए।

---

१. (क) जय (भि० ज० र०) ८।६.

सतरोतरैं केलवा मझे, मु० प्रथम चौमासो पेख हो।
देवल अधारी ओरी तिहां, मु० कष्ट सह्यौ सुविशेष हो॥

(ख) ख्यात क्रम १ :

सं० १८१७ का आषाढ सुध १५ के दिन अरिहंत नी आज्ञा लेइ सिध सापे सामायक चारित्र पचख्यो पछै अधारी ओरी मे उपसर्ग सहया। देव दर्शन थया। केलवा मे उपगार घणो थयो।

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु संत वर्णन १।६१ :

अधारी ओरी मझै रे देव उपसर्ग दिया आप।मु०।
स्वामीजी निर्भय रह्या रे लाल, देव शांत थई दर्श दिराय।मु०।

२. जय (भि० दृ०), दृ० २७६

शिक्षा

गुणवान विनयी संत ने सारी गुरु-कृपा को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उदार गुरु ने भी अपने विरद हाथो से इस हीरे के एक-एक पहलू को मांज-घिसकर अद्भुत आभा से युक्त किया। भिक्षु स्वय उन्हे पढाते और अपनी ज्ञान-राशि उनके लिए उन्मुक्त करते। गुरु उनकी शिक्षा पर कितना परिश्रम करते थे और स्वाध्यायी बालक शिष्य कितने प्रसन्नचित्त से उनसे शिक्षा ग्रहण करता था, उसकी अनेक घटनाए मिलती है। नीचे कुछ घटनाए प्रस्तुत की जा रही है·

१. स० १८२४ मे भिक्षु और आपका अलग-अलग गावो मे चौमासा था। आचार्य भिक्षु का कंटालिया और आपका बगडी मे। दोनो गावो के बीच नदी पडती थी। सुबह सूर्योदय के बाद आप और भिक्षु पचमी समिति (शौच-क्रिया) के लिए उस क्षेत्र मे आते और नदी के एक किनारे भिक्षु और दूसरे किनारे पर भारमलजी खडे हो जाते। भिक्षु आपको अनेक तरह के हेतु, युक्ति, दृष्टान्त बतलाते। नाना प्रकार की शिक्षा देते और दर्शन दे वापिस कटालिया आ जाते।[1]

२. आप (भारमलजी) के लिखने का बहुत अभ्यास था पर कलम काटना नही आता था। इसलिए बार-बार कलम कटवाते। एक बार आचार्य भिक्षु ने कलम कटवाने का त्याग करवा दिया। अब आप (सत भारमलजी) स्वय कलम काटने लगे और कुछ समय बाद कलम बनाने मे बडे निपुण हो गए।[2] भिक्षु ने शिष्य को इसी तरह हर दिशा मे निष्णात और आत्म-निर्भर बनाया था।

३. एक बार आचार्य भिक्षु ने आपको रात मे समूचा उत्तराध्ययन सूत्र खडे-खडे चितारने की आज्ञा दी। आपने निवेदन किया "नाथ ! मुझे नीद आने लगे और गिर जाऊ तो ?" भिक्षु बोले . "कोने को प्रमार्जन कर वहा खडे हो चितारो।" बालक ने 'तहत्त' कहकर वैसा ही किया। इस प्रकार खडे-खडे समूचा उत्तराध्ययन सूत्र चितारने का कार्य कई बार पडा।[3]

आचार्य भिक्षु के कठोर अनुशासन मे इसी तरह आनन्दित हृदय से ज्ञानार्जन कर आप महान ज्ञानी, ध्यानी और गुणवान बने।

४. एक बार आचार्य भिक्षु ने आपसे कहा : गृहस्थ दोप निकाल सके—अगुली उठा सके ऐसा काम मत करना। ऐसा काम किया तो तुम्हे तेले का दण्ड है। आप बोले "यदि कोई झूठ-मूठ ही दोष निकाले तो ?" भिक्षु बोले "अगर कोई सच्चा दोप निकाले तो उस दोप से मुक्त होने के लिए तेले की तपस्या करनी है और अगर कोई झूठ ही दोष निकाले तो पूर्व कर्मो का

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० २७५

२. वही, दृ० २७७

३. (क) वही, दृ० १८२

(ख) जय (भि० ज० र०) ११।५.

उत्तराध्ययन छतीसे अध्ययने, ऊभा छतां अधिकारी।
वार अनेक गुणिया विध सू, धुर गुरु आज्ञा धारी।
गजब गुण ज्ञान गरब गारी रे। ग० ॥
गुरु भिक्खू पै अजब छटा, हद भारीमाल भारी ॥

उदय समझ उनके क्षय के लिए तेले की तपस्या करनी है।" आपने 'तहत्त' कहकर उसी समय उस आज्ञा को शिरोधार्य किया।[1] आप ऐसे विनीत थे।

आचार्य भिक्षु ने शिष्य को सिखा दिया कि निन्दा या कटु आलोचना के समय मनुष्य का क्या कर्त्तव्य होता है। दूसरों की निन्दा से मनुष्य आत्म-पारखी बने, अपनी आत्मा को कसौटी पर चढ़ाए। भिक्षु की ऐसी ही गूढ़ और सुन्दर शिक्षाओं के प्रभाव से आपका जीवन बड़ा ही निर्मल और विशुद्ध बना।

५. एक बार आचार्य भिक्षु आगरिया गांव पधारे। वहां से वापिस विहार करने लगे तब वहां के श्रावकों ने हठपूर्वक विनती की। भिक्षु ने उनकी विनती न मान विहार कर दिया। गांव से बाहर कुछ ही दूर जाने पर आपने आचार्य भिक्षु से कहा : "आज श्रावकों का मन बड़ा उदास है। आपने उनकी विनती नहीं मानी।" आचार्य भिक्षु बोले : "आज तो वापिस चलो पर भविष्य में ऐसी विनती मत करना।"[2]

आचार्य भिक्षु ने प्रिय शिष्य की मूक विनती स्वीकार की। यह उनका परम वात्सल्य भाव था, पर साथ ही आगे के लिए एक अनुशासनात्मक शिक्षा भी दे दी। साधु अप्रतिबंध—मुक्त विहारी हो। लोगों की तुष्टि-अतुष्टि पर ध्यान न दे।

६. आचार्य भिक्षु ने निम्नलिखित गाथा जोड़ी :

छ लेश्या हुंती जद वीर में, हुंता आठुंइ ही कर्म।
छद्मस्थ चूका तिण समें, मूर्ख थापे धर्म॥
चतुर नर समजो ज्ञान विचार।

इस पर आप (भारमलजी) ने कहा—"छद्मस्थ चूका तिण समे" इस पद को बदल दें। लोग वितंडावाद करें—ऐसा है। भिक्षु बोले : "यह पद सत्य है या मिथ्या?" आप बोले : "है तो सत्य।" भिक्षु बोले : "तो लोगों की क्या परवाह करनी है? न्याय-मार्ग पर चलते हुए लोक-विरोध से हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।"[3]

आचार्य भिक्षु ने शिष्य को अभय की एक अमर शिक्षा दे डाली।

---

१. (क) जय (भि० दृ०), दृ० १८१
(ख) जय (भि० ज० र०) ११।६-१०

भिक्खू भारीमाल नैं भाखै, सांभल नृपकारी।
कांइ पूंछणो ग्रहस्थ कोई तो, तेलो दंड त्यारी।ग०॥
भिक्खू भारीमाल नैं भाखै, साचो कहै मारी।
तब तो तेलो तन्त परो, पिण द्वेष जगत् धारी।ग०॥
झूठो नाम लियै कोई जन, लागू अति लारी।
म्हैं करिवो ते स्वामी प्रकासो, आज्ञा अधिकारी।ग०॥
भिक्खू कहै जो साचौ भाखै, तो तेलो त्यारी।
अणहुंतो कोई आल दियै, तो संचित नम्भारी।ग०॥
पूर्व संचित पाप उदय नौं, तेलो तंत सारी।
स्वामी नौं वच सरव कियौ, कर जोड़ी अंगीकारी।ग०॥

२. जय (भि० दृ०), दृ० ८६
३. वही, दृ० १७८

व्यक्तित्व का निखार

साधु भारमलजी का व्यक्तित्व आचार्य भिक्षु की उदात्त शिक्षाओ से निखरता गया। विनयशीलता के कारण उनकी गुण-ग्राहक शक्ति बढ़ती गई। ज्ञान-सम्पन्न होने के साथ-साथ वे आचारनिष्ठ भी हुए। आपकी इन विशेषताओ का अकन भिक्षु के समसामयिक कवि सुश्रावक शोभजी ने इस प्रकार किया है :

"ढढण ने षट् मास की तपस्या की। इस दीर्घ कठोर तपस्या से उनका शरीर अस्थि-पजर हो गया। आखे धस गई। चलने पर हड्डियों से कटकट आवाज आती। पारण के दिन उन्हे मोदक मिला। उनकी प्रतिज्ञा थी कि वे अपनी ही लब्धि से प्राप्त आहार करेगे। उन्होने समझा मोदक की प्राप्ति स्व-लब्धि मे हुई है। वे अपने गुरु नेमिनाथ भगवान् के पास आए और प्राप्त मोदक को दिखाकर आहार करना चाहा। भगवान् नेमिनाथ ने कहा "यह आहार तुम्हारी लब्धि से प्राप्त नही है। तुम इसका आहार मत करो।" षट् मास के उपवासी होने पर भी ढढण मुनि ने गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर पारण नही किया। उन्होने इस बात का आदर्श उपस्थित कर दिया कि प्राण भले ही चले जाए पर आचार-निष्ठा और गुरु-आज्ञा को व्यर्थ नही होने देना चाहिए। जब भारमलजी की चरित्र-निष्ठा और आज्ञाकारिता की ओर दृष्टि डाली जाती है तो वे ढढण ऋषि के प्रसंग को याद दिला देते है। भिक्षु की शिक्षा-बाणो को झेलना किसी शूरवीर का ही काम था। विनयी सत भारमलजी उन्हे समभाव से ग्रहण करने मे और विकसित करने मे शूरवीर थे।"[1]

साधु भारमलजी का व्यक्तित्व कैसा तप पूत, ज्ञान-सम्पन्न, विनयी और आज्ञाकारी था, इसकी झाकी जयाचार्य के निम्न शब्द-चित्र मे मिलेगी ·

गजब गुण ज्ञान करी गाजै रे, गजब गुण ज्ञान करी गाजै।
गुर भिक्खू पै अजब छटा, हद भारीमाल छाजै।
सरल भद्र भल श्रमण सिरोमणी, ऋप रूडा राजै।
चरण करण धर समरया चित्त सू, भरम करम भाजै॥
खात दात चित्त शान्ति खरालज, उभय थकी लाजै।
परम विनय प्रीति हद पूरण, सिव रमणी साजै॥
जोडी गोयम वीर जिसी वर, शिष वारू वाजै।
कार्य भलाया बेकर जोडी, करत मुक्ति काजै॥
परम पीत पुज सु जल पयसी, पद भवदधि पाजै।
कठिन वचन गुरु सीख कहै, तो समचित मुनि माजै॥
भारमल सुवनीत इमा भड, सुगुणा सुखकारी।
पुण्य प्रबल थी भिक्खू पाया, ममत मांन मारी॥
घोर घटा घन गरजारव सी, वाण सुधा उचारी।
भिन्न-भिन्न भेद भली पर भापत, दाखत दमितारी॥

1. अप्रकाशित पूज गुणी की ढाल

हृद वचनामृत सुण जन हरषत, निरखत नर नारी।
नयनानन्दन कुमति-निकन्दन, पद सूरत प्यारी ॥[1]

युवाचार्य

आचार्य भिक्षु आपके गुणो से आरम्भ से ही परिचित थे। आप वाल्यावस्था से ही वडे विचक्षण और गुणवान थे। आपका व्यक्तित्व निखरा तब भिक्षु के लिए और भी अधिक आकर्षण के केन्द्र बन गये। आचार्य भिक्षु ने आपको भावी आचार्य निर्वाचित करने का निर्णय किया। सवत् १८३२ मे जब साधु भारमलजी की अवस्था लगभग २६ वर्ष की थी, आचार्य भिक्षु ने आपको युवाचार्य—शासन के भावी अधिपति के पद से विभूषित किया। सं० १८३२ मे एक लिखित[2] कर उसमे मर्यादा स्थिर की "सब साधु-साध्वी सत भारमलजी की आज्ञा का पालन करे। चातुर्मास या शेषकाल का विहार उनकी आज्ञा के अनुसार करे। किसी को दीक्षा देनी हो तो सत भारमलजी की आज्ञा से और उनके नाम से दे। सब एक आचार्य की आज्ञा मे अनुवर्तन करे।" इस लिखित मे अधिकाश साधुओं के हस्ताक्षर है।

समत अठारह वतीसे मै, भिक्खु बुद्धि भडार।
प्रकृति देष साधु तणी, लिपत कियौ तिण वार ॥
सहु साधा नै पूछनै, वाधी इम मर्याद।
सुपे सजम पालण भणी, टालण कलेश उपाधि ॥
पद युवराज समापियौ, भारमल नै जाण।
सर्व साधु नै साधवी, पालज्यो यारी आण ॥
भारमलजी री आज्ञा थकी, विचरवौ शेषै काल।
चौमासौ करिवौ तिकौ, आज्ञा ले सुविशाल ॥
दिष्या दैणी अवर नै, भारमल रे नाम।
पिण आज्ञा लीधा विना, शिष नही करणौ ताम ॥
इच्छा हुवै भारीमाल री, शिष गुरु भाई सोय।
पदवी देवै तेहनै, तसु आज्ञा अवलोय ॥
एक तणी आज्ञा मझै, रहिवौ रूडी रीत।
एहवी रीत परम्परा, वाधी स्वाम वदीत ॥
टोलामा सू कोई टलै, एक दोय दे आद।
धुरत वगुल ध्यानी हुवै तिणनै न गिणवौ साध ॥
तीर्थ मे गिणवौ न तसु, चिउ सघ नौ निन्दक जाण।
एहवा नै वान्दै तिके, आज्ञा वार पिछाण ॥[3]

आचार्य भिक्षु ने साधु भारमलजी को युवाचार्य निर्वाचित किया, इसका मूलाधार उनका गुणोपेत व्यक्तित्व ही था।

---

१. जय (भि० ज० र०) ११। १-४, ११-१३
२. लिखित के लिए देखिए परिशिष्ट, क्र० १
३. वही, ४५। दो० १-६

पाट लायक शिष्य भालीजी, मुहाली प्रकृति सुन्दरू।
भारीमालजी गँहर गम्भीर।
पदवी थिर करी थापीजी, आ आपी आचारज तणी।
जाणे सुविनीत सुधीर ॥[1]

आचार्य भिक्षु ऐसे गुणवान शिष्य को पाकर कृतकृत्य थे। ऐसे भव्य शिष्यो के आचार्य होने के कारण ही जयाचार्य ने आचार्य भिक्षु को 'भाग्यवली'—भाग्यशाली कहा है।

वीर और गौतम की जोड़ी

आचार्य भिक्षु और साधु भारमलजी मे परस्पर वडा अनुराग-भाव था। दोनो के व्यक्तित्व एक-दूसरे मे ओत-प्रोत थे। दोनो एक-दूसरे से आकर्षित और प्रभावित थे। जयाचार्य ने लिखा है, "आचार्य भिक्षु और साधु भारमलजी का गुरु-शिष्य भाव ठीक भगवान महावीर और इन्द्रभूति गौतम की याद दिलाता है। पाचवे आरे मे यह चौथे आरे की वात थी।" मुनि हेमराजजी लिखते है

१. भीखू जनम्या हे मुरधर देस मे, मेवाड देसे भारीमाल।
गुरु चेला हुआ दोनू दीपता, आणी चौथा आरा नी चाल ॥[2]

२. गुरु भीखु रिप मिलिया भारी, भारीमाल चेला हुआ सुखकारी।
वीर गौतम ज्यू जोड वखाणी, भारीमाल भजो भवियण प्राणी ॥
गुरु चेला दोन्यू ही घणा गमता, ज्ञान ध्यान माहि रह्या रमता।
त्या पार उतार्‌या वहु प्राणी, भारीमाल भजो उत्तम जाणी ॥
भीपू भारीमाल री जुगती जोडी, दोन्यू धर्म तणा हुआ धोरी।
त्या जिन आगन्या आगे आणी, भारीमाल भजो उजम आणी ॥
भीषू भारीमाल री महिमा भारी, त्या प्रतिवोध्या वहु नर नारी।
भवकूप महा सू काढ्या ताणी, भारीमाल भजो उजम आणी ॥[3]

३. ओ दुषम काल दुषकारी हे, लागू घणा भेषधारी हे।
पिण पूज तणा पुण्य भारी हे, भीषू भारीमाल गुण भारी हे ॥
भीषू भारीमाल गुरु गेहरा हे, मुगत सुखा सू नेरा हे।
काई मेटे भव-भव जेहरा हे, भवि जन तारण फिरता हे ॥[4]

श्रावक शोभजी ने तो एक विस्तृत ढाल ही लिखी है जिसमे प्रतिपादित किया है कि दोनो का सगम भगवान महावीर और गौतम का-सा संगम था।[5]

---

१. (क) वेणी (भि० च०) ४।२२
(ख) जय (भि० ज० र०) ४३।२१
२. हेम (भा० च०) १।१
३. हेम (भा० च०) २।१, ६, ७, १३
४. हेम (भा० च०) ३।४, १३
५. छगनमलजी घोडावत, वीदासर के सग्रह की पूज गुणी ढा० १८

युवाचार्य भारमलजी बडे विनम्र थे। आचार्य भिक्षु को हर तरह समाधि उत्पन्न करते थे। आचार्य भिक्षु का भी उन पर अत्यन्त वात्सल्य और विश्वास था। "परम विनीत भारमलजी, भल सत साताकारी" (जय (भि० ज० र०) ११।१४), "सरल भद्र सुखदायका, परम पूज सूं प्रीत" (जय (भि० ज० र०) ८ दो० ४), "परम भगता भारीमालजी, मु० पूरो ज्यारो विशवास हो" (जय (भि० ज० र०) ८।५)—आदि उद्‌गार गुरु-शिष्य के मधुर सम्बन्ध के परिचायक है। युवाचार्य भारमलजी भिक्षु की सेवा मे सदा दत्तचित रहे—"भारीमाल युवराज, सेवा स्वामी नी अन्त ताई सिरै" (जय (भि० ज० र०) ४५।१०)। एक शिष्य के रूप मे युवाचार्य भारमलजी का चित्र निम्न शब्दो मे अकित है

१. भिक्षु रा मुख आगलै, भारीमाल मुख स्हाज।
अष्टादश बतीस मैं, थाप्यो पद युवराज॥
चित अनुकूल मुनि चालता, प्रकृति भद्र पुन्यवान।
गर्वरहित गिरवा गुणी, विनयवान यशवान॥
घन गर्जारव सा वचन, वारू तास वखाण।
वीर तणा मुख आगलै, गौतम जिम अगवाण॥
ग्रथ हजारा तासु मुख, अधिक चातुरी आप।
अतिसैधारी ओपता, स्थिर पद त्यारी थाप॥
परम प्रीत भिक्षु थकी, अन्त सीम अवधार।
सेवा करी साचै मनै, भारीमाल धर प्यार॥[1]

२ शिप भारीमाल भिक्खू पै सोभता, सरल वडा सुविनीत हो।
भद्र प्रकृति बुद्धि पुण्य गुणे भला, परम पूज सू प्रीत हो॥[2]

३. भीखू रिप रे पाटवी, भारीमाल झलकत।
गोतम ज्यू गिरवा मुनि, सील रतन झलकत॥[3]

४. सिप भारमल सुहामणा जी, भिपू रिप रे पाट।
गोतम सामी ज्यू गुण निला जी, जुगती जोडी गुण थाट॥[4]

५. वडा सिप बुधवत वदीता, सारा सिरे सोभाय।
आचार्य पदवी त्याने आपी, भारमलजी मन भाय॥[5]

गुरु-शिष्य का यह युगल वीर और गौतम की तरह ४४ वर्ष तक जिन-शासन को दीप्त करता रहा। मारवाड, मेवाड, हाडोती और ढूढाड इन चार देशो मे पाद-विहार कर धर्मोपदेश देते हुए जनता का महान् कल्याण किया। १०३ साधु-साध्विया प्रव्रजित हुई।

युवाचार्य भारमलजी स० १८२४ के चातुर्मास के अतिरिक्त सदा आचार्य भिक्षु की सेवा मे रहे। दोनो ने अनेक परीषह सहते हुए जिन-धर्म का मार्ग प्रशस्त किया। दोनो कष्टो को

---

१ जय (लघु भि० ज० र०) ५।दो० २-६
२. जय (भि० ज० र०) १०।१४
३. हेम (भा० च०) २।दो० ५
४ वही, ११।१३
५. हेम (भि० च०) १२।६

समभाव से झेलते रहे।

१. चमालीस वर्ष रे आसरे, गुरु चेला गुणवत।
चयार देस मे चूप स्यूं, उपकार कियो मतवत ॥
साध साधवी श्रावक श्राविका, वहुत किया वुधवंत।
खिम्या धर्म मारग खरो, त्यां मार्ग जमायो तत ॥[1]

२. सतरा सु साठा लगे, वहुत कियो उपकार।
मुरधर देश मेवाड़ मे, हाडोती ढूढार ॥
एक सो तीन रे आसरे, साध साधवी सोय।
भीपू रिप नी वार मे, वहु आधारक होय ॥
भारीमाल साथे लगा, गुरु भगता गुणवत।
नाम धरायो लोक मे, तेरापथी तत ॥[2]

३. वाल ब्रह्मचारी ठेटरा, भारीमाल गुण भरपूरो ए। अति सूरो हे।
पाली गुरु नी आगन्याक, मुनिवर ए ॥
गोतम ज्यू लगता रह्या, वीर जिणद ज्यू जोडो ए। धर कोडो ए।
गुरुकुल वासो मूक्यो नही क, मुनिवर ए ॥
एहवी कीजे पीतरी, जेहवी भीखू भारीमालो ए। सुध चालो ए।
सयम तप कर सोभताक, मुनिवर ए ॥[3]

गुरु-शिष्य के कुछ रोचक प्रसंग

१ साधु चन्द्रभाणजी निकलने लगे तव आचार्य भिक्षु वोले "सलेपणा सथारा करना अच्छा है, पर साधुओ को छोडकर स्वच्छंद होना अच्छा नही।" वे वोले . "मै और भारमलजी दोनो सलेपणा करे।" आचार्य भिक्षु वोले "हम दोनों करे।" चन्द्रभाणजी वोले "आपके साथ तो नही करूंगा। भारमलजी के साथ करूगा।" आचार्य भिक्षु फिर वोले "लो, हम लोग साथ करे।"[4] भिक्षु नै इस प्रकार के मिथ्या मान-अहकार के सम्मुख मोर्चा लेते हुए युवाचार्य के व्यक्तित्व की गरिमा को अक्षुण्ण रखा।

२. साध्वी धनाजी की प्रकृति अभद्र थी। वह मुहफट थी। यह सोचकर कि भारमलजी से उसका निर्वाह होना कठिन है, आचार्य भिक्षु ने उसे गण से दूर कर दिया।[5]

चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी को पृथक् करने के वाद स० १८३७ के चातुर्मास के पश्चात् भिक्षु उनके पीछे-पीछे विहार करते हुए वोरावड पहुचे। यहा युवाचार्य भारमलजी अस्वस्थ हो गये। उन्हे चेचक निकल आया। भिक्षु का चूरू पहुचना अत्यावश्यक था। भिक्षु ने दो साधुओ को युवाचार्यश्री की सेवा मे छोड़ा और एक साधु के साथ चूरू के लिए प्रस्थान किया।

---

१. हेम (भा० च०) ४।दोहा १-२
२. वही, १२।दोहा १-३
३. वही, १०।३-५
४. जय (भि० दृ०), दृ० १६५
५. वही, दृ० १७७

पधारते समय कहा—"भारे ने छाछ दिज्यो। आराम हुय जासी"। निकाले मे छाछ आदि वस्तुएँ नही दी जाती पर भिक्षु के कह देने से साधुओं ने वैसा किया और भारमलजी स्वस्थ हो गये।[1]

३. आचार्य भिक्षु के उपदेश से श्रावक हेमराजजी ने यावज्जीवन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। अब इसमे सन्देह न रहा कि वे शीघ्र ही प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे। आचार्य भिक्षु ने उन्हे प्रतिक्रमण सीखने का हुक्म दिया। इसके बाद ही भिक्षु भारमलजी से बोले: "अब तुम्हारे लिए कोई चिन्ता की बात नही रही। अब तक तो हम थे अब चर्चा आदि का काम पड़ने पर हेमराज है ही।"[2]

उक्त तीनो प्रसग आपके प्रति आचार्य भिक्षु के अत्यन्त वात्सल्य भाव के परिचायक है।

४. स० १८६० भाद्र शुक्ला चतुर्थी की बात है। आचार्य भिक्षु को अनुभव हुआ कि शरीर ढीला पडता जा रहा है, आयुष्य अधिक दिनो की नही। तब उन्होने साधु खेतसीजी, टोकरजी एव भारमलजी के प्रति अपनी कृतज्ञता-ज्ञापन करते हुए मुनि खेतसीजी से कहा था—

था तीना रा साझ सू, पाल्यो सुध सयम भार।
चित्त समाध रही घणी, थे रहयाज एकण धार॥[3]

साधु भारमलजी के सम्बन्ध मे उनके विशेष उद्‌गार थे·

भारीमाल सू भेलप घणी, रहीज रूडी रीत।
जाणेक पाछिल भव तणी, लगती हूंती प्रीत॥[4]

५. उस समय चतुर्विध सघ के सम्मुख साधुओं को शिक्षा देते हुए आचार्य भिक्षु ने जो बाते कही, उनमे युवाचार्य भारमलजी के विषय मे कहा था·

"जिस तरह तुम लोग मुझे बहुमान देते रहे और मेरे प्रति तुम लोगों की प्रतीति थी, वैसी ही ऋषि भारमल के प्रति रखना। शिष्य भारमल सर्व संत-सतियों का नाथ है। उसको आचार्य मान, सब कोई उसकी आज्ञा की आराधना करना। उसकी मर्यादा का भंग न होने पावे। जो उसकी आज्ञा का उल्लघन करे, गण से च्युत हो जाए, उसे साधु मत समझना। ऋषि भारमल को भार लायक समझ कर ही उसे आचार्य पदवी दी और आचार्य पद का भार सौंपा है। उसकी प्रकृति बड़ी भद्र, शुद्ध और निर्मल है। उसमे शुद्ध साधु की चाल है। वह शुद्ध संयम का कामी है। इसमे शका को स्थान नही।"

---

१ श्री सोहनलालजी चण्डालिया (राजलदेसर) के सग्रह के एक पत्र से।
२. जय (भि० दृ०), दृ० १७६
३ वेणी (भि० च०) ६।दो० ६। तथा जय (भि० ज० र०) ५४।८-६

मपर तीना रा साझ सू, वर सजम उजवाल्यौ ए। म्हें पाल्यौ ए।
प्रत्यप ही सूरापणे क॥मु०॥
चित समाधि रही घणी, म्हारा मन मझारी ए। हुसियारी ए।
या तीना रा साझ थी क॥मु०॥

४. वेणी (भि० च०) ६। दो० ८। तथा जय (भि०ज०र०) ५४।७.

भारीमाल सू भेलप भली, रहीज रूडी रीतो ए। अति प्रीतो ए।
जांण के पाछल भव तणी क॥मु०॥

१. थे आगे जाणता मो भणी, ज्यू जाणीजो भारीमाल।
सका म आणजो सर्वथा, असल साधु री छे चाल।।
साध साधवी ए सर्व छे, त्यारां भारमलजी नाथ।
भार सूप्यो छे टोला तणो, कोइ म लोपज्यो यांरी वात।।
अरिहत आगन्या माहि रहे, जिण ने सरधजो साध साख्यात।
आगन्या लोपने उधो पडे, त्यारी म करज्यो पखपात।।
इमही आगन्या सतगुर तणी, रहे भारमल जी माहि।
सुध आचार पाले सही, त्याने मत दीज्यो चटकाय।।
अरिहत सतगुर नी आगन्या, कर्म जोगे लोपे कोय।
वदणा परतीत करज्यो मती, साध म सरधज्यो तिण ने सोय।।[1]

२. मोने रे मोने जाणता जिण विधे रे, राखता मुज परतीत रे।
तिमहिज रे तिमहिज परतीत राखजो रे, भारीमालजी री आहिज रीत रे।।सु०।।
आज्ञा रे आज्ञा लोपे एहनी रे, दोप लागा काढे गण वार रे।
तिणने रे तिणने साधु मत सरधजो रे, मत गिणजो तीरथ मजार रे।।सु०।।
आज्ञा रे आज्ञा आराधे एहनी रे, सदा रहे सुवनीत रे।
सेवा रे सेवा भगत कीजो तेहनी रे, आ जिनमारग री रीत रे।।सु०।।
मै पदवी रे पदवी दीधी छै एहने रे, भारलायक जाणे भारीमाल रे।
संका रे सका मूल म आंणजो रे, पामे असल साधा री चाल रे।।सु०।।[2]

३. जिम मुझनै जाणता, म्हारी प्रतीतो रे।
तिमहिज राषज्यो, भारीमालजी री रीतो रे।
शीष भिक्षु तणी।।
सहु सत सत्या रा, भारमलजी नाथो रे।
आज्ञा आराधज्यो, मत लोपज्यो वातो रे।
यारी आण लोपी नै, निकलै गण वारौ रे।
तसु गिणज्यो मति, चिहु तीर्थ मझारो रे।।
यारी आण अराधैं, सदा रहै सुवनीतो रे।
तसु सेवा करौ, ए जिन मग रीतो रे।।
मै पदवी आपी, भारलायक जाणी रे।
भारमलजी भणी, सुद्ध प्रकृति सुहाणी रे।।
नीत चरण पालण री, भल ऋष भारीमालो रे।
सक म रापज्यो, सुद्ध साधु नी चालो रे।।[3]

आचार्य भिक्षु जैसे विचक्षण और आदर्शवादी आचार्य के श्रीमुख से ऐसा विश्वास प्राप्त करना एक महान् आत्मा के लिए ही सभव था। भिक्षु की दृष्टि मे आप सौ टच सोने

---

१. हेम (भि० च०) ७।२-६
२. वेणी (भि० च०) ६।२-५
३. जय (भि० ज० र०) ५५।१-६

की तरह विशुद्ध थे। भिक्षु का यह निष्कर्ष आपके व्यक्तित्व के गहरे निरीक्षण पर ही आधारित था।

६ आचार्य भिक्षु ने इसके बाद पुन: भारमलजी आदि साधुओं को बुलाया और उन्हें अपनी अन्तिम शिक्षा देने के पूर्व कहा :

म्हे तो जाता दीसा परभवे रे, सका न दीसे काय।
मरण रो भय म्हारे नही रे, हिवडे हर्ष अथाय ॥भ०॥[1]

यह बात सुनकर युवाचार्य भारमलजी मर्माहत हो गये। आचार्य भिक्षु की पण्डित-मरण की तैयारी देखकर बोले "आपके साथ रहने से मन मे बडा साहस रहता था। अब विरह के दिन आ रहे है। आपका विरह सहन करना बडा कठिन है।" यह सुनकर भिक्षु ने कहा था, "तुम निर्मल सयम का पालन करोगे। उदार यशवाले देव बनोगे। मुझसे भी महान् अनगारो का महाविदेह क्षेत्र मे दर्शन कर पाओगे।"

१ भगतवत भारमलजी रे, बोले एहवी वाय।
विरहो पडे दर्शन तणो रे, हिवे पूज्य बोले मुखदाय ॥भ०॥
थे संयम आराध्या सुर होसो रे, मुज थकी मोटा अणगार।
महाविदेह खेतर मझे रे, त्यारा देखजो दरसण दीदार ॥भ०॥[2]

२. शिष भारीमाल सोहामणा, परम भक्ता पहिछाण हो।मुणिंद।
पिण्डत मर्ण पेषी पूज री, बोलै एहवी वांण हो।मुणिंद।
धिन-धिन भिक्खु स्वाम ने ॥
धन-धन निरमल ध्यान हो मु०, धन-धन पवर सूरापणू।
धन-धन स्वामी नौ ज्ञान हो ॥
सषर स्वाम ना सग थी, मन हुसियारी माहि हो।मु०।
अबै विरहौ पडै आपरौ, जाणै श्री जिणराय हो ॥
प्रभु गोयम री पीतडी, चौथे आरै पिछाण हो।मु०।
प्रत्यष आरे पचमै भिक्खू, भारीमाल री जाण हो ॥
तिण कारण भारीमालजी, आपी अल्प सी बात हो।मु०।
विरह तुमारौ दोहिलौ, जाणै श्री जगनाथ हो ॥
भिक्खू बलता इम भणै, थे सजम पालसौ सार हो।
निर अतिचारे निरमलौ, होसौ देव उदारो हो ॥
महा विदेह षेतर मझै, मुझ थकी मोटा अणगार हो।मु०।
अरिहत गणधर आदि दे, देषजो तसु दीदार हो ॥[3]

७. भाद्र शुक्ला दशमी के दिन युवाचार्य भारमलजी ने कहा—"आहार का त्याग न करे। मेरे हाथ से थोडा आहार ले।" आचार्य भिक्षु ने आपके अनुरोध से ४० चावल और १० मोठ ग्रहण कर त्याग कर दिया।

---

१. वेणी (भि० च०) ७।२। तथा देखे जय (भि० ज० र०) ५६।२
२. वेणी (भि० च०) ७।१२-१३
३. जय (भि० ज० र०) ५७।१-७

दशमी तणें दिन परम भगता शिप, पूज जी सू एम भाषे।
चालीस चावल दश मोठ रे आसरे, वीनती मांनके तेह चाखे ॥[1]

८. भाद्र शुक्ला १२ के दिन आचार्य भिक्षु ने वेला किया। और जब ऋषि रायचन्दजी ने भिक्षु से कहा कि आपका पराक्रम क्षीण हो रहा है तब आपने युवाचार्य भारमलजी और खेतसी को बुलाया। दोनों तुरन्त उपस्थित हुए। अरिहन्त और सिद्धो को नमस्कार कर भिक्षु ने स्वय ही उच्च स्वर मे तीन आहार का प्रत्याख्यान कर संथारा कर लिया। आप (युवाचार्य भारमलजी) वोले . "अमल का आगार क्यो नही रख लिया ?" भिक्षु वोले : "अव काया की क्या सार-सम्भाल करनी है ?"

पूज सू वीनवे पराक्रम हीणा पड्या, ब्रह्मचारी विने सू एम वोलें।
केसरी नी पडे वेण हीवडे धरी, तांम ते आपरो तेज तोले ॥
वुलावो भारमलजी भणी, वले सतजुगी सुजाण।
याद करता आविया, चटके उभा आंण ॥
अरिहत सिध प्रणमी करी, पोतेइ किया पच्चपाण।
तिनू आहार रा त्याग जावजीव छै उंचे सुर वोल्या इम वाण ॥
कहे प्रथम भगता शीष पाटवी, क्यूं न राख्यो अमल आगार।
स्वाम कहे सेठाइ किसी राखणी, किसी करणी देही री सार ॥[2]

९. आचार्य भिक्षु का सथारा भाद्र शुक्ला १३ के दिन सपन्न हुआ। द्वादशी के साय-कालीन प्रतिक्रमण के वाद भिक्षु ने भारमलजी को व्याख्यान देने का आदेश दिया। एक ओर भिक्षु के सथारा और दूसरी ओर उपदेश दिया जाए—यह युवाचार्य को अटपटा लगा। भिक्षु वोले . "साध्वियां सथारा करती है तो उनके स्थान मे जाकर उपदेश देते हो, फिर मेरे सथारे मे उपदेश क्यो नही देते ?" आज्ञा पाकर आपने व्याख्यान किया।

पडिकमणो किया पछै पूजजी, शिप ने कहे हो विध सू करो वखाण।
शिप कहे वखाण रो कारण किसो, पूज वोल्या हो पाछा इमृत वाण ॥

---

१. वेणी (भि० च०) ६।८। तथा देखे
जय (भि० ज० र०) ५९।५
दसम दिन भारीमालजी विनवै, स्वामी आहार कीजै सुविहांणो।
चाली चावल दश मौठ रे आसरै, चाप किया पचषाणो ॥

२. वेणी (भि० च०) ९।१३, १०।दो० १-३।तथा जय (भि० ज० र०) ५९।११-१४
पूज नै कहै प्राक्रम हीणां पडिया, ऋपराय तणी सुण वायो।
भिक्खू पहिला तन तोल त्यारी था, सुण सिंह ज्यू उठया मुनिरायो ॥
भिक्खू कहै वोलावौ भारीमाल नै, वले पेतसीजी नै विचारो।
याद करताई सत दोनूई, झट आय ऊभा है तिवारो ॥
नमोथुणो कियौ अरिहन्त सिद्धा नै, तीपै वच वोल्या तामो।
वहु नर नारी सुणता नै देपता, सथारो पचप्यौ भिक्खू स्वामो ॥
शिप परम भग्ता कहै स्वामी नै, क्यू न राप्यौ अमल रो आगारो।
पूज कहै आगार किसौ हिवै, किसी करणी काया नी सारो ॥

आर्या क्याइ अणसण लियो होवे, तिण ठामे हो जाय करां छां वग्गांण ।
मुझ अणसण मे उच्चरग सू, उपदेश हो देवो मोटे मडाण ॥
वखांण कियो विस्तार सू, सुपे सूता हो पाछिली रात माय ।[1]

१०. भाद्र शुक्ला तेरस की वात है। करीव १ प्रहर दिन चढा होगा। साधु आचार्य भिक्षु की सेवा कर रहे थे। श्रावक-श्राविकाए भी उपस्थित थी। भिक्षु ध्यान कर रहे थे। करीव डेढ पहर दिन चढने पर सबके सुनते हुए भिक्षु बोले : "साधु आ रहे है। सम्मुख जाओ। साध्विया भी आ रही है।" भारमलजी ने सोचा—भिक्षु का ध्यान सतो मे है। यह सोचकर बोले : "स्वामीजी! आपको चारो शरण है। आप किसी मे मोह मत रखे। आपने बहुत जीवों का उद्धार किया है।"

चरम शब्द चारू कह्या, इचरजकारी हो बोल्या अमृत वाण ।
साध श्रावक सुणता कह्यो सामजी, सूस व्रत हो करावो गहर मांय ।
सामा जावो साध आवै छै, आरज्या हो आवै छे चलाय ।
चौथो शब्द इसडो कह्यो धीरे बोल्या हो तिण री विगत न कांय ॥
भारीमालजी स्वामी इम वीनवे, थाने होइजो हो स्वामी शरणा चार ।
किण ही मांहे मोह मत राखजो, आप कियो हो घणा जीवा रो उद्धार ॥[2]

भारमलजी स्वामी ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया, पर वास्तव मे कुछ समय के वाद दो सत आ पहुचे। वे प्यासे थे। करीव दो पहर के वाद साध्वियां भी आ पहुची। भिक्षु का कथन मिल गया।

१८७७ के शेषकाल का विहार

आप (आचार्य भारमलजी) का स० १८७७ का चातुर्मास श्रीजीद्वार मे था। चातुर्मास के वाद वहा से विहार कर सिहार, कोठार्या, गुड़ला, कूठवा, सिसोदा होते हुए आप काकरोली पधारे। वहा एक मास विराजे। वहा सैकडो नर-नारियो ने दर्शन किए। वहुत उपकार हुआ। वहा से विहार कर वहु संत परिवार के साथ [illegible] पधारे। [illegible]पुर शहर से अनेक श्रावक-श्राविकाए दर्शन के लिए आए। [illegible] चातुर्मास के लिए देश-देश की विनतियां आई। साधुओ की सख्या ३८ हो [illegible] गइ। कई सिघाड़ो को विहार कराया। इसके वाद आप कुछ अस्वस्थ हो गए।

---

१. [illegible]णी (भि० च०) १०।४-६।तथा जय (भि० ज० र०) ६०।५-८ :
पडिकमणो कीधा पछै हो, स्वाम भिक्खू सुविहाण।
भारीमाल आदि शिष्य भणी हो, कहै वारू करो वपाण ॥
शिप सुविनीत कहै सही हो, सथारो आपरै सोय।
वपाण नौ सू विशेप छै हो, तव पूज्य वोल्या अवलोय ॥
किण ही आरजिया अणशण कियौ हुवै हो, तो करौ वपाण त्या जाय।
मुझ अणसण माहै देशना हो, नहि करौ थे किण न्याय ॥
वपाण कियौ विस्तार सु हो, शिप सुवनीत श्रीकार।
भागवली भिक्खू तणौ हो, मिलियौ जोग उदार ॥

२. वेणी (भि० च०) १०।८-११

उपचार किया गया पर लाभ नही हुआ।[1]

भावी आचार्य की नियुक्ति

अब भावी आचार्य का नाम स्थिर करना आवश्यक हो गया।

साधु खेतसीजी बडे गुणवान संत थे। आचार्य भिक्षु उन्हे 'सतयुगी' कहा करते थे।

दीक्षा के बाद ही मुनि हेमराजजी के विषय मे भिक्षु ने कहा था—"भारमल ! इतने दिनो तक तो मै था और अब चर्चावार्ता के लिए हेमराजजी हो गए है। तुम तो निश्चित हो।"[2] आचार्य भारमलजी उक्त दोनो ही संतो का बहुमान रखते थे।

मुनि रायचन्दजी ने लगभग ११ वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा के कुछ दिनो बाद ही आचार्य भिक्षु ने उनके विषय मे कहा था · "यह बालक बडा मेधावी और गुण-वान् है। इसकी पुण्यशीलता देखते हुए यह आचार्य पद के योग्य प्रतीत होता है।"[3] जब वे लगभग

---

१. (क) हेम (भा० च०) ५।२-८ :

सिहाय होय कोठार्यै पधारिया, होजी गुड़ला कियो रे विहार।
कूठवे होय सिसोदे पधारिया, सुखे आया काकरोली मझार॥
एक मास रह्या काकरोली मझे होजी बहुत कियो उपकार।
सैंकडा नरनारी आविया, त्या देख्यो पूज दीदार॥
बहु संता रा परिवार सू, होजी राजनगर परवेस।
श्रावक आया घणा सेहर सू, काई विणती आई देस देस॥
साध साधवी बहु आविया, होजी भगति करण अभिराम।
धिन धिन दिन -छे माहिरो, काई भेट्या भारीमल साम॥
वखाण वाणी तिहा होय रह्या, होजी प्रपदा रा बहु झिड।
सैंकडा नर नारी आविया, जाणे मेलो रह्यो छे मंड॥
राजनगर रहिता थकां, होजी अडतीस गणे अणगार।
आया दर्शन करवा श्रीपूज रो, करायो किताहीक ने विहार॥
कायक असाता उठी परी, होजी ओषध कीधा अनेक।
सामी परिणाम सेहठा घणा, काई दिन दिन अधिका देख॥

२. जय (हे० न०) ३।दो० २-३

भारीमाल सू भिक्खू कहै, अब थे हुवा नचिन्त।
आगे तो थारे म्हे हुंता, अब हेम अघ जीत॥
जे कोई पाखंड्या थकी, पड़े चरचा रो काम।
तो छै थारे हेमजी; इम कहि भिक्खू स्वाम॥

३. जय (भि० ज० र०) ४६।४

प्रबल बुद्धि गुण पुन्य पेखने, पर्म पूज फरमायो।
पद लायक ए पुन्य पोरसो वचनामृत बरसायो॥

२१ वर्ष के युवा ही थे।

आचार्य भारमलजी के लिए एक समस्या हो गई कि अपना उत्तराधिकारी आचार्य किसे चुने। मुनि हेमराजजी, मुनि खेतसीजी और ब्रह्मचारी रायचन्दजी तीनो ही आचार्य पद के योग्य थे। जब चुनाव की बात सोचते तो इन तीनो मे से किसी एक को चुनना कठिन हो जाता था।

एक बार आचार्यश्री के मुह से ऐसे शब्द निकले "रायचन्द अभी युवा ही है।" मुनि रायचन्दजी के कानो मे ये शब्द पडे-तब वे हाथ जोडकर खडे हो गए और बोले . "मेरी अवस्था देखकर आप कोई विचार न करे। आप किसी तरह की चिन्ता न रखे।"

व्याधि बढती ही जा रही थी। उदर मे बहुत दर्द रहने लगा था। आचार्यश्री अपनी शारीरिक अवस्था को देखते हुए भावी आचार्य का निर्धारण करना अत्यावश्यक समझ रहे थे।

मुनि श्री हेमराजजी का स० १८७७ का चातुर्मास उदयपुर था। चातुर्मास समाप्ति पर वहा से विहार कर गोगुन्दा मे वसन्त-पचमी के दिन सतीदामजी को दीक्षित कर आचार्यश्री के दर्शनार्थ राजनगर पधारे थे और वही सेवा मे थे।[1]

आचार्यश्री के उक्त मनोभाव जानकर उन्होने निवेदन किया "रायचन्दजी गुणो के भडार है। आप निश्चिन्त भाव से उन्हे आचार्य-पदवी दे। हमारी ओर से किसी तरह की शंका न रखे। जैसे दायी और बायी आख मे कोई अन्तर नही होता उसी तरह आपके लिए मै और रायचन्द एक समान है। आप कृपा कर उन्हे पाट सौपे।"

मुनि खेतसीजी ने भी ऐसा ही निवेदन किया।

दोनो के निवेदन को सुनकर आचार्य भारमलजी बहुत ही हर्षित हुए। उन्हें सुविनीत, निर्लिप्त और निष्कलक समझा।

इस विषय के तीन मूल वर्णन इस प्रकार है .

१. तिणहिज वर्ष पूज्य तन जाणी रे, कांई वेदन अधिक जणाणी रे।
हेम आदि मिल्या सत आणी॥
भारीमाल री मुरजी पिछाणी रे, मुनि बोल्या अमृत वाणी रे।
रायचन्दजी छै गुणखाणी॥
हेम सुन्दर वाण वदीजे रे, रायचन्दजी ने पाट दीजे रे।
म्हारी तरफ सू शका न राखीजे॥
आख डावी जीमणी विचारो रे, तिण मे फर्क नही छै लिगारो रे।
तिम हू रायचन्दजी सारो॥
हेम वाण मुणी पूज्य हर्ष्या रे, यानें तन मन सुवनीत परख्या रे।
निकलंक हेम इम निरख्या॥
रायचन्दजी ने पाट आप्यो रे, आचार्य पद थिर चित थाप्यो रे।
ज्यारो जग जश चिहु दिश व्याप्यो॥[2]

---

१. (क) जय (हे० न०) ५।४६-५३
(ख) मघवा (ज० सु०) ७।५-६
२. जय (हे० न०) ५। ५४ से ५८, ६०

२. सततरे वर्ष पिछाणी रे, भारीमाल तणे तन जाणी रे।
उदर वेदन अधिक जणाणी, स्वाम गुण सागरू ऋषरायो रे।।
देश देश तणा सुखदाया रे, श्रावक श्राविका सखर सुहाया रे।
पूज्यरा दर्शण करवा आया, स्वाम गुण सागरू ऋप रायो रे।।
साध साधव्या बहु मुखदाणी रे, स्वामी रे तन खेद सुणाणी रे।
हेम आदि मिल्या सत आणी, स्वाम गुण सागरू ऋष रायो रे।।
सतजुगी हेम वयण वदीजे रे, रायचन्दजी ने पट दिजे रे।
म्हारी तरफ सू चिन्ता न कीजे, स्वाम गुण सागरू ऋष रायो रे।।
भारीमाल सुणी मन हर्ष्यो रे, निकलक दोनुई ने निरख्या रे।
याने परम विनैवत परख्या, स्वाम गुण सागरू ऋष रायो रे।।
एहवा उभय वडा मुनि धीरा रे, गणस्थभण गैहर गभीरा रे।
हद विमल अमोलक हीरा, स्वाम गुण सागरू ऋष रायो रे।।
रायचन्दजी ने पट आप्यो रे, आचार्य पद स्थिर कर स्थाप्यो रे।
ज्यारो जग जश चिंहू दिशा व्याप्यो,स्वाम गुण सागरू ऋष रायो रे।।[1]

३. सतजुगी स्वाम साक्षात सतयुग जिसा, हेमाचल सारिखा हेम जाणो।
गण माहै स्थभ सम सत दोनू गुणी, पाखड पेमाल करता पिछाणो।।
सागर जेम गम्भीर गिरवा घणा, परपीड जाण नै प्रवीण पूरा।
अतिसयवत सोभे ज्यो हाथीया, खिम्या करवा भणी खेत शूरा।।
परम सुवनीत मुरजी देखे पूज्य नी, सतयुगी हेम कहे स्वाम सुणीजै।
पदवी नीज आपीनै स्थिर कर स्थापीयै, ब्रह्मचारी भणी पाट दीजै।।
सतयुगी हेम नो वचन सुण सामजी, जाण सुवनीत मन हर्ष थायो।
पाट दीयो रायचन्दजी स्वाम नै, जगत मे जेहनो यश छायो।।[2]

आप राजनगर से विहार कर २२ साधुओं के साथ स० १८७७ की फाल्गुन सुदी १३ के दिन केलवा पधारे।[3] मेवाड जाने का विचार था। केलवा कुछ दिन विराजने पर पुन अस्वस्थता बढ गई। इससे आगे नही पधार सके और वही रुक जाना पडा।[4] असात के

---

१. (क) जय (ऋ० रा० सु०) ७।१-७। तथा देखे मघवा (ज० ५ सु०) ७।१०-१४

२ जिनशासन महिमा ३।४-७

३. वही, ५।६

वाईस ठाणे साथे करी, होजी सामीजी कियो रे विहार।
फागण सुद तेरस दिने, आया केलवा सेहर मझार।।

४. हेम (भा० च०) ५।१०-११

मुरधर देस जावा तणा, होजी मनरा हुता परिणाम।
दरसण देणो हिवे जायने, काई ढील तणो नही काम।।
केइ दिन केलवे निकल्या, होजी ऊठी असाता आण।
सामी परिणाम सेहठा घणा, काई मन कीयो मेरू समान।।

समाचार सुनकर हजारो नर-नारी दर्शन के लिए आए।[1]

मुनि खेतसीजी एव मुनि हेमराजजी के निवेदन से आश्वस्त हो जाने पर भी आचार्य भारमलजी ने युवराज पदवी के पत्र मे मुनि खेतसीजी और रायचन्दजी दोनो के नाम लिखे—"भिक्षु पाट भारमल भारमल पाट मुनि खेतसीजी तथा रायचन्दजी।" स० १८७७ वैशाख वदि ६ बृहस्पतिवार के लिखित मे भी शब्द लिखवाए—"...सर्व साध-साध्वी खेतसीजी रायचन्दजी री आगन्या माहे चालणो...।" लिखित मुनि जीतमलजी से लिखवा रहे थे। आपने निवेदन किया—नाम एक ही रहना चाहिए। आचार्यश्री ने कहा—"मामा भानजा है।" मुनि जीतमलजी बोले : अमुक के पाट अमुक लिखा दें पर आचार्य एक ही रखें। मुनि जीतमलजी के निवेदन पर ध्यान देते हुए एवं मुनि खेतसीजी एव हेमराजजी की बात मानकर पत्र मे "भिक्षु पाट भारमल भारमल पाट रायचन्दजी"—इतने ही शब्द रखे। लिखित मे : "...सर्व साधु-साध्वी रायचन्दजी री आगन्या माहे चालणो..."—इतने शब्द ही रखे। मुनि खेतसीजी के नाम को कटा दिया।

इस तरह केलवा मे वैशाख वदि ६ के लिखित द्वारा मुनि रायचन्दजी को अपने उत्तराधिकारी आचार्य के रूप मे घोषित किया।

इसी घटना को सकेतित करते हुए श्री हेमराज सेवग ने लिखा है :

साध साधवी श्रावक श्राविका, सव लोगा साखीक।
रायचन्द गादी को मालिक, भारीमाल भाखी॥
कोल वचन तो किया केलवे, शुभ वेला साधी।
राजनगर मे रायचन्दजी, गुरु बैठा गादीक॥[2]

संलेषणा

एक दिन आपने सतो को बुलाया और बोले : "अब मै तपस्या करना चाहता हू। अब आत्मार्थ पूरा करना है।"[3]

तपस्या के प्रति स्वामी भारमलजी के अनुराग का इस घटना से बडा अच्छा परिचय मिल जाता है। इस पर टिप्पणी करते हुए मुनि हेमराजजी ने लिखा है :

छेहले अवसर सूरमा, टालें आतम दोष।
सलेषणा सथारो किया, पामे अविचल मोष॥
भारीमाल भय मेटियो, जीवन मरण जरूर।
ममता मेटे देहनी, ते साचेला सूर॥[4]

---

१. हेम (भा० च०) ५।१३ .
हजांरा नर नारी आविया, होजी छोडी ने घर ना काम।
दरसण करवा श्रीपूज रा, परगट हुवो केलवो गाम॥
२. विवरण पत्रिका, जनवरी, १९४०, पृ० १५ पर प्रकाशित ढा० गा० ४-५
३. हेम (भा० च०) ६।दो०-१
असाता ऊपनी जाण नें, साधा नें कहे सांम।
तपस्या करणी माहिरे, सारूं आतम काम॥
४ वही, ६।दो० २-३

आपने अपने निश्चय के अनुसार स० १८७७ की वैशाख वदि ८ से तपस्या आरम्भ कर दी। उसका आरम्भ चौविहार तेले से किया। वैशाख वदि ८, ९, १० के दिन चौविहार (निर्जल) उपवास किया। ११ के पारण मे अल्प आहार लिया। रोग कुछ उपशात हुआ। १२-१३ के दिन कुछ आहार लिया। १४ के दिन उपवास किया। १५ के दिन पारण किया।[1] सतो की विनती होने के कारण वैशाख सुदी १ से जेठ वदि ७ तक उणोदरी तप ही किया—अल्प आहार लेते रहे।[2]

फिर सतो को बुलाकर वोले "अव मुझे तपस्या अत्यन्त प्रिय लग रही है।" सतो ने अर्ज की—"आप थोडा-थोडा आहार लेते रहे।" पर सतो की इस अर्ज को आपने अस्वीकार कर दिया।[3]

इसके वाद आपने किस तरह तपस्या की, इसका वर्णन इस प्रकार है—

ज्येष्ठ मास मे[4] एक तेला (वदि ८,९,१०),[5] पारण (व ११)। उपवास (व.१२), पारण (व० १३), उपवास (व० १४), पारण (व० १५)। वेला (सुदी १-२), पारण (सुदी-३)। वेला (सुदी ४-५), पारण (सुदी ६)। चौला (सुदी ७-१०), पारण (सुदी ११)।

---

१. हेम (भा० च०) ६।१-३

समत अठारे सिततरे, वैसाख वद हो आठम नमी दशमी जाण।
तिण मे तेलो कियो तत ऊजलो, सूरवीर हो धीरपणो मन आण॥
तिण मे चतुर अहार सामी पचखिया, इग्यारस दिन हो लीधो अलपसो आहार।
तिण मे रोग कितोयक उपसम्यो, च्यार तीर्थ हो सुप पाम्या अपार॥
वले दोय दिन अहार लगतो कियों, चउदस रो हो सामी कियो उपवास।
अमावस रो सामीजी कियो पारणो, तपस्या उपर हो दिन २ छै हुलास॥

२. हेम (भा० च०) ६।४

वैसाख शुकल पप तेह मे, सात दिन हो जेष्ट वद तणा जाण।
तिण मे अलप अहार सामी आचरयो, फेर वोल्या हो मुख सू इमृत वाण॥

३. वही, ६।५, ६

हिवे साधाने तेडीनें सामीजी कहे, तपस्या उपर हो म्हारो अति घणो पेम।
साध अरज करे छे हाथ जोडने, अलप लेवो हो माहने राजी करो एम॥

४. जेठ वदि १ से ७ तक ऊणोदरी तप किया था, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

५. वही, ६।६-७

तोही सामीजी अरज मानी नही, तेलो कीधो हो दूजो निरमलो जाण।
जेष्ठ वद आठम नम दशमी तणो, पारणो कीधो हो इग्यारस रो पिछाण॥
वले दोय उपवास आछा किया, दोय वेला हो सामी कीया श्रीकार।
एक चोलो कियो चित ऊजले, सूर वीर हो भीखू सीप सरदार॥

आपाढ मास में[1] · १० दिन का उपवास (सुदी ६-१४), पारण (सुदी १५ रविवार)।
श्रावण मास में[2] · तेला (वदि १-२-३), पारण (अल्पाहार व० ४)। ऊणोदरी (व० ५-६-७)। एकांतर (वदि ८ से सुदी १०)। वेला (सुदी ११-१२), पारण (सुदी १३)। आहार (सुदी १४-१५)।
भादवा मास में[3] : एकान्तर, कई दिन ऊणोदरी, कई दिन उपवास आदि तपस्या।

अन्तिम केलवा चातुर्मास

स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण आचार्य भारमलजी ने सं० १८७८ का चातुर्मास केलवा का फरमाया। इस चातुर्मास में ८ संत साथ में रहे।[4] उनके नाम इस प्रकार हैं (१) खेतसीजी (२२), (२) रायचन्दजी (४१), (३) जीवोजी (४४), (४) रामचन्दजी (छोटे) (६६), (५) विरधोजी (६७), (६) हीरजी (७६), (७) शिवजी (७८), (८) जीवोजी (छोटे) (८६)।[5] तीन

---

१ हेम (भा० च०) ६।८-१०

आसाढ सुद छठ उपवास कियो, उपवास माहि हो सामीजी वेलो दियो ठाय।
वेला माहि तत तेलो कियो, तेला माहि हो चोलों दियो ठहिराय॥
सामी चतुर माहि पाच पचखिया, पाचा माहि हो किया षट् उपवास।
षट् माहि सप्त किया सोभता, सप्त मांहि हो अष्ट किया हुलास॥
सांमी अष्ट माहि नव नीका किया, नव माहि हो दश दिन श्रीकार।
दसम वधी तिण लेखे जाणजो, पारणो कीधो हो पूनम रविवार॥

२. (क) वही, ६।११-१२ :

परिवा वीज तीज तेलो कियो, सांवण वद हो चोथ पंचमी पिछांण।
तिण रो पारणो कियो श्रीपूजजी, अहार लीधो हो सांमी अल्प सो जाण॥
पछे तीन दिन अहार लगतो कियो, वेराग आयो हो भारी भरपूर।
सांमी आठम सू एकांतर मांडिया, करमा ने हो करता चकचूर॥

(ख) वही, ७।दो० १-३ :

सावण मासे सांमजी, एकन्तर मन धार।
वद आठम सू सुद दशमी, अडिग रह्या अणगार॥
इग्यारस वारस वेलो कियों, तेरस पारणो ताहि।
दोय दिन अहार लगतो करे, वले दिया एकंतर ठाय॥

३. वही, देखें टिप्पण न० १

केइ दिन करी अणोदरी, केई दिन किया उपवास।
साध कनें सेवा करें, केलवे सेहर चउमास॥

४. वही, ७।दो० ३-४ :

साध कनें सेवा करें, केलवे सेहर चउमास॥
खेतसीजी सामी आद दे, आठ साध करें सेव।

५. वही, ७।२-११

वक्त व्याख्यान होता ।[1] मारवाड और मेवाड़ से अनेक श्रावक-श्राविकाएं दर्शन के लिए आए। अन्य भी अनेक लोग आए ।[2] चातुर्मास भर मे आचार्य श्री के कुछ अस्वस्थता रही ।[3]

आत्मालोचना और शिक्षा

चातुर्मास समाप्त होने पर चारो ओर से साधु और साध्वियो के सिघाडे केलवा पधारने लगे ।[4] बहुत ठाणा इकट्ठे हो गए । आचार्यश्री का ध्यान अव आत्म-आलोचना की ओर गया। एक-एक बात याद कर-शिष्य रायचन्दजी को सुना-सुनाकर वे आत्म-आलोचना करने लगे ।[5]

आत्म-आलोचना के साथ-साथ सघ के हित के लिए वे रोज एक पहर करीव नाना प्रकार की शिक्षा फरमाते ।[6] उनकी शिक्षा का सार इस प्रकार है[7]—

(१) सर्व साधु-साध्वी सयम मे निरन्तर अडिग रहे ।

(२) निर्मल सयम जिस शुद्ध भावना से ग्रहण किया है उसी भावना से उसका पालन करना ।

(३) ईर्या, भाषा, एषणा आदि समितियो की अच्छी तरह आराधना करना ।

(४) जिन-आज्ञा को हमेशा शिरोधार्य रखना ।

(५) परस्पर वडी प्रीति और प्रेम रखना ।

---

१ हेम (भा० च०) ७।१२ :
हुवे वपाण वाणी रा हगाम, तीन्यू टक मे तिहा जी ।

२. वही, ७।१३
आवे मुरधर देस मेवाड़, श्रावक ने श्रावका जी ।
वले और घणा नर नार, दरसण जिण सारपा जी ।।

३. वही, ८।दो० १
चौमासा मे सांम रे, कायक असाता जाण ।
असाता वेदनी उदय थकी, पिण सेहठा चतुर मुजान ।।

४. हेम (भा० च०) ८।दो० ३
चौमासो उतरिया साध साधवी, भेला हुवा वहु आण ।
केलवे सहर सामी कने, मडिया वहु मडाण ।।

५ वही, ८।दो० ४
आलोवण आछी तरे, कीधी चतुर सुजाण ।
याद करी २ सामजी, सिप ने सुणाई जाण ।।

६ वही, ८।दो० ५
नित्य एक पहोर रे आसरे, सिप देता श्रीकार ।
ग्रहण आसेवन आदि दे, भाखे अनेक प्रकार ।।

७. वही, ८।१-८
सिपावण दे सामीजी, छेहले अवसर सार ।
सगला साध ने साधवी, अडिग रहिज्यो इकधार ।।

(६) शुद्ध संयम साधु की शोभा है। जिन शासन की यह रीति है कि साधु संयम में शुद्ध हो।

(७) सम्यक्त्व की हमेशा रक्षा करना।

(८) नव बाड़ सहित ब्रह्मचर्य का पालन करना।

(९) जीवन पर्यन्त हंसी-मजाक करने का साधु को त्याग होता है, ख्याल रखना।

(१०) मैंने खेतसीजी और हेमराजजी को पूछकर बाल ब्रह्मचारी रायचन्द को पाट दिया है। उसकी मर्यादा को हमेशा स्थिर रखना। वह बड़ा विचक्षण है।

(११) बड़े साधुओं की आज्ञा आराध कर चित्त में समाधि प्राप्त करना।

ऋषि रायचन्द बड़ी स्थिर बुद्धि का स्वामी है। संयम में बड़ा वीर है। उसे शूरवीर समझकर ही भावी आचार्य की पदवी दी है।

दर्शनार्थियों को उपदेश

आचार्यश्री के दर्शन के लिए अधिकाधिक लोग आने लगे। आचार्यश्री उन्हें शिक्षा देते :

(१) धर्म में अडिग रहना।

(२) उत्साहपूर्वक दान, शील, तप, भावना की आराधना करना।

(३) सुपात्र दान दुर्लभ होता है।

(४) पाखण्डियों की संगत का निवारण करना।

(५) सागल एकल को साधु मत मानना। यह श्रावक की मर्यादा है। दृढ़ रहना।'

नीको संजम निरमलो, धरज्यो सुध धर नेम।
जिण हिज रीते जाणज्यो, पूरो राखजो पेम ॥
इरज्या भाषा ने एषणा, वारु वचन विनाण।
आछी रीत अराधज्यो, धारजो जिणवर आण ॥
हेत घणो हद रीत सूं, पूरी राखज्यो प्रीत।
संजम सुध सोभा जगत में, आ जिण मारग री रीत ॥
समकित सील अराधज्यो, वाड़ सहित वपाण।
हास कतोहल करवी नहीं, ए जावजीव पचखाण ॥
खेतसीजी हेमजी भणी, पूछी ने दियो पाट।
बिह्मचारी रिष रायचन्द नें, थिर कर राखज्यो थाट ॥
बडा साधां री आगन्या, आछी रीत अराध।
चतुर विचख्यण अति घणो, चित मे कीजे समाध ॥
थिर बुध करनें सोभतो, ब्रह्मचारी बड़ वीर।
पदवी दीधी छै तेहनें, जाणे सूर वीर नें धीर ॥

१. हेम (भा० च०) ८।६-११.

दरसण करवा दिन-दिनें, आवे बहु नर नार।
सीख देवे स्वामी तेहनें, अडिग रहिज्यो एक धार ॥

राजनगर में संथारा

आचार्य भारमलजी फाल्गुन से अगहन तक ९ महीने केलवा में रहे। अनेक उपाय करने पर भी रोग उपशात नही हुआ।[1]

इसके वाद स्वामीजी साधुओ के साथ राजनगर पधार गये।[2]

सतो ने रोग निवारण के लिए उपचार किया। औषध देने से भूख लगने लगी। आहार लेने से दिन-प्रतिदिन सात रहने लगी।[3]

इसी अवसर पर मालवा देश से आकर साधु-साध्वियो ने दर्शन किये।[4]

हठात् पुन काला ज्वर का प्रकोप हो गया, इससे पूरा बोल नही पाते थे।[5]

श्रावको ने देखा कि आचार्य श्री के अत्यन्त असात है अत वे समाचार दे चारो तीर्थ को एकत्रित करने लगे।[6]

साधुओ को भी लगने लगा कि अव अवसर समीप है। उन्होने आचार्यश्री को सावचेत किया और उनके हकारा भरने पर औषध और जल के आगार उपरात सागारी सथारा करा दिया।

दान सील तप भावना, आदरज्यो ओछाहि।
दान सुपातर दोहिलो, इम कहि कहि समझाय॥
संघत पाखण्डिया तणी, परहर देज्यो दूर।
भागल एकल नही मानणो, सेहठा रहिज्यो दूर॥

१. वही, ८।१३.
फागण थी आघण लगे, केलवे रह्या रूड़ी रीत।
कारण न मिटियो सामरो, वले करे उपाय धर पीत॥

२. वही, ९।दोहा १:
साधा सघाते सामजी, राजनगर आवत।
वहु नर नारी हरपिया, गाढो सुख पावत॥

३. हेम (भा० च०) ९। दोहा ३
रोग गमावण साम रो, साधा किया उपाय।
ओषध दीधो अन चढ्या, दिन २ साता थाय॥

४. वही, ९। दोहा ४
साध साधवी आविया, केई मालव देस थी ताहि।
दरसण कर हरपत हुआ, प्रेम महा सुप पाय॥

५. वही, ९।१
काल जुर करली चढी तिण काले,
तिण सू पूरो तो मुहढे वोलणी नावे।

६. वही, ९।१
श्रावका जाण्यो सामी जी रे करली असाता,
जव च्यार तीर्थ ने वेग वोलावे।

दूसरे दिन प्रभात होने पर आचार्यश्री सावचेत हुए और मुख से बोलकर सूठ और जल मागा। आहार के सबध मे पूछने पर कहा "मुझे आहार का यावज्जीवन त्याग है। मेरे सागारी सथारा है।"

चतुर्विध संघ सामने बैठा सेवा कर रहा था। इस तरह तीसरा पहर आ गया। उस समय मालवा देश से साध्विया आयी।[1] वहा से जो कपड़ा लाई थीं, वह आचार्यश्री को दिखाया। वहा उपकार हुआ उसकी बाते बताई, साध्विया पाठे याचकर लाई थीं, उन्हे खोलकर आचार्यश्री को दिखाने लगी।

आचार्यश्री देखते-देखते ही ढल गये। मुनि भगजी (४७) पास मे थे। वे बोले : "स्वामीजी जा रहे है, इन्हे यावज्जीवन का पूर्ण सथारा करा दिया जाये।" मुनि खेतमीजी और रायचन्दजी दोनो ने कहा : "स्वामी! यदि आप श्रद्धते है तो आपको यावज्जीवन के लिए सर्व आहार-पानी का सर्वथा प्रत्याख्यान है।" आचार्यश्री वापिस कुछ नही कह सके। साधुओ ने खमत-खामना कर वदना की। ऋषि रायचन्दजी पास मे बैठे रहे और तीन प्रहर तक सेवा की। मन वश में रख चारो शरणे दिलाये। छ प्रहर के करीब सागारी सथारा आया। इसके बाद यावज्जीवन चौविहार सथारा रहा, तीन प्रहर चौविहार सथारे मे रहकर काल प्राप्त हुए। अर्द्ध रात्रि का समय था। इस तरह आप राजनगर मे स० १८७८ की माघ बदि ८ मगलवार के दिन दिवगत हुए।[2]

---

१. साध्वी अजबूजी (३०) आदि। आपका १८७८ का चातुर्मास उज्जैन था। वहां से विहार कर आचार्यश्री के दर्शन किए।

२. हेम (भा० च०) ६।२-१२,१४

साधा पिण जाण्यो सामीजी रो अवसर आय लागो, सावचेत बोलाय ने मुहंस कराया।
साघारी सथारो करायो ओपद पाणी रे आगारे, परभात हुयां बोले मुख वाया॥
सावचेत हुआ दूजे दिहारे, थोहरी सी सूठ ने पाणी माग के लीधो।
अन री रुच पूछ्या सु सुहस बताया, जावजीव साघारी अणसण कीधो॥
च्यार तीर्थ मुख आगल सेवा करे छे, दरशण कर २ पूरे छे मन री पात।
तीजो पहोर आयो तिण काले, अणचिंतवी किण विध आवे छे मात॥
मालव देस थी आइ आरजिया, कपडो पूज ने आंण देखायो।
उपगार धर्म री वाता करे छे, दर्शन करे पूज रो चित लायो॥
पाठा फिरगी रा चोपा घणा छे, ते श्रावका कने जाचने लाया।
पाठा खोल चोड़ा कर त्याने, ते पिण पूज नें आण देखाया॥
देखता देखतां ढल गया सामी, वहुत न लागी वेला वारो।
भगजी वेरागी कहे सामीजी जावे छे, कराय द्यो सर्वथा पूर्ण संथारो॥
सतजुगी ने रायचन्द जी ब्रह्मचारी, मुख सू बोलिया एहवी वाण।
सरधो तो सामीजी जावजीव रा, आपरे सर्वथा छे पचपाण॥
वचन वायक पाछो बोलणी नायो, खमत-खामणा करता साधु पाय परिया।
लुल २ लटका करे वारम्वार, हेज तणा ज्यारे हिया भरिया॥
रायचन्दजी ब्रह्मचारी रुडी रीत, तीन पहोर आसरे सेवा कीधी।
मरणा सुंहस दिया भली भात, मन वस कर सुमता धार लीधी॥

आपको कुल मिलाकर ९ प्रहर का सथारा आया।[1]

चरम महोत्सव

देहान्त के वाद साधुओ ने शरीर का व्युत्सर्ग किया और इस वियोग के अवसर पर भी समभाव रखा।[2]

स्वर्गवास का समाचार सुनकर श्रीजीद्वार, केलवा, काकरोली आदि स्थानो से लोग इकट्ठे होने लगे। इकतालीस खड की मडी करवाई गई। ग्यारह सौ के करीव की उछाल की गई।[3] चदन मे दाग दिया गया।[4]

स्वामी हेमराजजी ने आपकी मडी के विषय मे लिखा है

माडी कराई श्रावका, जाणेक देव विमाणो ए। जिम भाणो ए।
जोत क्रियत करि झिगमिगेक भवियण ए॥
हेठे मांडी मेवार नी, उपर खड इगताली ए। रूपाली ए।
रीत करी मुरधर तणीक, मुनिवर ए॥[5]

छव पहोर आसरे साधारी सथारो, पछे जावजीव च्यारू अहार पचखाया।
तीन पहोर रे आसरे तिण माहि वरत्या, पछे भारीमाल रिप छोडी काया॥
आधी रात रे आसरे काल परापत, कहे वीरजी वाली वेला लीधी।
चरम कल्याण राजनगर मे, मेवाड देस जाणो परसिधी॥
समत अठारे ने वरस इठतरे, महा विद आठम मगलवार।
भारीमाल सथारो सीधो इण रीते, वहु गुण ग्राम करे नर-नार॥

१ जय (हे० न०) १।दो० ४.
अठतरे अणसण भलो, नव पोहर उन्मान।
भारीमाल ने आवियो, राजनगर शुभस्थान॥

२ हेम (भा० च०) १०।दो० १
साध सरीर वोसराय ने, अलगा वैठा जाय।
विरहो पर्‌यो सामीनाथ रो, समभाव रह्या सुख थाय॥

३. वही, १०।दोहा २-४.
श्रीजीदुवारा सेहर सु वले केलवा काक्रोली सुजाण।
नर-नारी आया घणा, मडिया वहु मडाण॥
इत्यादिक गामा नगरा तणा, श्रावक श्रावका अनेक।
सामी चलिया जाण ने आणे आरत विसेप॥
इगताली पडी माडी करी, जाणेक देव विमाण।
इग्यारेसो रे आसरे, रोकड लागा जाण॥

४. वही, १०।१३
नरनारी वहु आविया, ओछव देखण काजो ए, मेली साझो ए।
दाग दियो चदण मझेक, मुनिवर ए॥

५. वही १०।८-९

आपके लिए दो मंडिया बनाई गई। एक सिरियारी में बनाई गई थी। समय पर पहुची नही तब दूसरी राजनगर मे बनाई गई। यह तैयार हुई तब तक वह भी पहुच गई। प्रश्न उठ गया कि कौन सी मडी काम मे ली जाए। अन्त मे निश्चय हुआ कि मेवाड़ की मंडी पर मारवाड की मंडी चढा ली जाए। यह बात उक्त पदों मे है।

एक के ऊपर एक मडी लगाने से रथी ऊची अधिक हो गई। रास्ते में राजकीय दरवाजा पडता था। उसमे मडी निकल न सकी। दरवाजा तोड़ दिया गया। दाह-सस्कार धोइन्दा के वाहले मे किया गया। श्रावको द्वारा दरवाजे के तोडने की घटना महाराणा को निवेदन की गई। महाराणा ने कहा "ठीक किया, उसे उसी रूप मे रहने दो। वह स्मृति होगी।" वह दरवाजा आज तक उसी रूप मे देखा जाता है। उसे 'फूटा दरवाजा' कहते है।

ख्यात मे लिखा है--"मोछव घणा किया रूपइ हजार उपर लाग्या। राणाजी भीमसिंघजी पण घणा हठ सू केसरजी मारफत मोछव वास्ते नाणो दियो। पेली तो इसी कही सर्व मारो लागसी, जरे केसरजी भडारी इसी अरज करी अदाता गरीबनिवाज आप तो धणी हो पण ए तो गुर सर्व का है सो दूजा रो खरच न लागणै मै बैराजी हुसी। जरै दरबार पाछी इसी कही सरे नाम मारो खरच लागै।[1]

राणा भीमसिंहजी ने महोत्सव अपनी ओर से करना चाहा। सारा खर्च उन्ही का लगेगा--ऐसा कहा। श्रावक केसरजी ने निवेदन किया--"गरीबनिवाज! आप मालिक है। गुरु सबके है। सबका खर्च न लगने से लोग अप्रसन्न होंगे।" तब राणाजी ने कहा--"सिरे नाम हमारा रहे।" इस तरह बहुत आग्रहपूर्वक राणाजी ने महोत्सव के लिए राशि दी।

आचार्य भिक्षु का देहावसान सवत् १८६० की भाद्र शुक्ला १३ को सिरियारी मे हुआ था। उसी दिन आप (आचार्य भारमलजी) पाट विराजे और द्वितीय आचार्य का पद सुशोभित किया।[2] आपने १८ वर्षो तक बडी ही कुशलता के साथ जिन-शासन का भार वहन किया।[3]

---

१ ख्यात क्रम० ७

२. (क) हेम (भा० च०) १२।दो० ४:

भीखू रिष संथारो कियो, श्रीयारी मे सार।
भारीमाल सिर थापियो, जिण सासन रो भार॥

(ख) वेणी (भि० च०) १३।११:

वीर जिणद री गादी विराजिया, सुवनित सुधरमा स्वाम हो।
इणविध पूज रे पाट परगट थया, भारमलजी स्वामी त्यारो नाम हो॥

३ (क) जय (शा० वि०) ३।दो० ६

सवत् अठारै साठै समय, पद आचार्य पाय।
अठतरै परभव गया, भारीमाल ऋषि राय॥

(ख) वही ४।दो० १, २

अष्टादश साठै समय, सुद पख भाद्रव सार।
तेरस तिथि भिक्षु तणो, सप्त पोहर संथार॥
भारीमाल पट झलकता, तेह तणो वरतार।
अठंतरै लग जाणवो, आज्ञा वर्ष अठार॥

आचार्य भिक्षु २१ साधु और २७ साध्वियो को छोड कर स्वर्गवासी हुए।[1] आपने इस धरोहर की समुचित रूप से रक्षा ही नही की, अपितु उसमे वडी वृद्धि भी की। आपके शासन काल में कुल ८२ दीक्षाए सम्पन्न हुई—३८ साधुओ की और ४४ साध्वियो की।[2] उल्लेख है कि आपके स्वर्गवास के समय ३५ साधु और ४१ साध्विया विद्यमान थी।[3]

आपको ६१ वर्प[4] ६ महीने ९ दिन का सयमी-जीवन प्राप्त हुआ, जिसका विवरण निम्न प्रकार है·

१	मुनि-जीवन आपाढ सुदी १५, १८१६ से मार्गशीर्प वदि ६, १८३२	१५ वर्ष ४ महीने ७ दिन
२.	युवाचार्य-जीवन मार्गशीर्ष वदि ७, १८३२ से भाद्र सुदी १२, १८६०	२७ वर्ष ९ महीने २१ दिन
३.	आचार्य-जीवन भाद्र सुदी १३, १८६० से माघ वदि ८, १८७८	१८ वर्ष ४ महीने ११ दिन
		कुल ६१ वर्प ६ महीने ९ दिन

---

१. हेम (भि० च०) १३।१५
एकवीस साध सतावीस साधव्या, मेली प्रभव पोहता मुनिराय हो।

२. (क) हेम (भा० च०) ११।८.
वयासी हुवा साध साधवीजी, आसरे अर्थ अमोल।
(ख) जय (शा० वि०) ३।दो० ४
एकतीस गण मे रह्या, सहु अडतीस सजात।
(ग) वही ४।३२
भारीमाल थका ए दीक्षा, आखी च्यार अने चालीजी काई।

३. (क) जय (ऋ० रा० सु०) ७।१२-१३
वयासी ठाणा तणो उनमानो रे, दिक्षा लीधी गण माही प्रधानो रे।
कोई रह्या कोई टलिया जाणो।
सत पैतिस चरण खुसालो रे, इकतालीस श्रमणी सुद्ध चालो रे।
मेली परभव पौहता भारीमालो॥
(ख) हेम (भा० च०) १३।११
साध पेतीस इगताली साधव्या,
मेली ने सामीजी सुध गत मे आप सिधाया हो लाल।

४. (क) हेम (भा० च०) १३।१०
(ख) वही १०।२ :
इगसट वरस रे आसरे, काई पाल्यो सजम भारो ए।

आपके युग में साध्वियों में साध्वी हीरांजी (२८) प्रमुख थीं।[1]

आपके शासन-काल में मारवाड़, मेवाड़, हाड़ौती, मालवा और ढूंढाड़ इन चार प्रदेशों में साधु-साध्वियों का विहार हुआ।[2]

आचार्य भिक्षु ने लगभग ४४ वर्ष तक धर्म-प्रचार किया। आपने भिक्षु के साथ और उसके बाद कुल ६१ वर्ष तक धर्म-प्रचार किया।[3]

आचार्य भिक्षु को ७७ वर्ष की आयुष्य प्राप्त हुई, और आपको ७५ वर्ष की।

साधु-जीवन में आप सदा ही आचार्य भिक्षु के साथ रहे। केवल १८२४ में आपका एक चातुर्मास अलग था। एक बार चेचक के कारण आपको बोरावड़ में रख आचार्य भिक्षु चूरू पधारे थे और शीघ्र ही लौट आए थे।

आप दस वर्ष घर में रहे। ४ वर्ष द्रव्य-संयम में रहे। ६१ वर्ष ६ महीने ६ दिन शुद्ध संयमी जीवन में रहे।[4]

चातुर्मास

आपके १८ वर्ष के आचार्य-काल के चातुर्मासों का विवरण इस प्रकार है:

१. सं० १८६१	सिसांगण	(मारवाड़)
२. सं० १८६२	पाली	"
३. सं० १८६३	खैरवा	"
४. सं० १८६४	केलवा	(मेवाड़)

---

१. जय (शा० वि०)

बगतूजी बगडी रा वासी, हद हीरांजी हीर कस्यो।
भारीमाल री मरजी जाणि ही, नाम नगांजी कीरत वर्यो ॥

२. हेम (भा० च०) ११।६:

सुखकर मेवाड देश में जी, मालवो हाडोती ढूंढार।
तिहां साध साधवी विचरताजी, करता पर उपगार ॥

३. वही १३।६:

चमालीस वरस रे आसरे,
भगवन धर्म भली पर दीपू रिष भलो बतायो हो लाल।
भारीमाल इकसठ वरस आसरे,
संजम तप वखाण वाणी में मुनिवर धर्म घणो घनायो हो लाल ॥

४. वही १३।१०:

दस वरस आसरे घर में रह्या,
चतुर वरस उनमाने रह्या दरबे भेष संसारी हो लाल।
संजम पाल्यो इकसट वरस आसरे,
पिचंतर वरस उनमाने मुनि पाया उमर भारी हो लाल ॥

५. वही १२।दो० ५; १-३,११

५. स० १८६५	नाथद्वारा	(मेवाड)
६. स० १८६६	आमेट	(मेवाड)
७. स० १८६७	वालोतरा	(मारवाड)
८. स०,१८६८	पाली	(मारवाड)
९. स० १८६९	जयपुर	(ढूढाड)
१०. सं० १८७०	माधोपुर	(ढूंढाड)[1]
११. स० १८७१	वोरावड	(मारवाड)
१२. स० १८७२	सिरियारी	(मारवाड)
१३. सं० १८७३	पाली	(मारवाड़)
१४. स० १८७४	नाथद्वारा	(मेवाड)
१५. स० १८७५	कांकरोली	(मेवाड)
१६. स० १८७६	पुर	(मेवाड)
१७. सं० १८७७	नाथद्वारा	(मेवाड)
१८. स० १८७८	केलवा	(मेवाड़)[2]

स्थानो की दृष्टि से चातुर्मासो की तालिका इस प्रकार वनती है ·

१ पीसागण	(मारवाड)	१ सं० १८६१
२. पाली	"	३ स० १८६२,६८,७३
३. खेरवा	"	१ स० १८६३
४. केलवा	(मेवाड)	२ स० १८६४,७८
५. श्रीजीद्वारा	"	३ स० १८६५,७४,७७
६. आमेट	"	१ स० १८६६
७ वालोतरा	(मारवाड)	१ स० १८६७
८. जयपुर	(ढूढाड)	१ स० १८६९
९. सवाई माधोपुर	"	१ स० १८७०
१०. वोरावड़	(मारवाड)	१ स० १८७१
११. सिरियारी	"	१ स० १८७२
१२. काकरोली	(मेवाड)	१ स० १८७५
१३. पुर	"	१ स० १८७६

१. यहा साध्वियो का चातुर्मास भी था।

२. इस चातुर्मास मे आपके साथ ८ साधु थे।

(क) हेम (भा० च०) ७।दो० ३-४

साध कने सेवा करे, केलवे सेहर चउमास।
खेतसीजी सामी आद दे, आठ साध करे सेव ॥

(ख) हेम (भा० च०) ७।२-११

आठ साधुओ के नाम इस प्रकार है (१) खेतसीजी (२६), रायचदजी (४१), जीवोजी (४४), रामचदजी (६६), वर्द्धमानजी (विरधोजी) (६७), हीरजी (७६), शिवजी (७८) और जीवोजी लघु (८६)।

इन स्थानो मे तीन स्थान ऐसे है जहा आचार्य भिक्षु का चातुर्मास नही हुआ—पीसांगण, वालोतरा और जयपुर ।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार आपके मारवाड मे ८, मेवाड़ मे ८ और ढूढाड़ मे २ चातुर्मास हुए ।

अन्तिम पाच चौमासे मेवाड मे किए।[1] मेवाड प्रान्त ही आपकी जन्मभूमि थी और मेवाड मे ही आप स्वर्गवासी हुए।[2]

आचार्य भिक्षु ने १५ गावो मे ४४ चातुर्मास किए।[3] आप ४३ चातुर्मासो मे उनके साथ रहे। केवल स० १८२४ का वगडी का चातुर्मास आपका अलग हुआ । आपने कुल मिलाकर ६२ (४४ + १८) चातुर्मास किए। ये चातुर्मास १८ स्थानों मे हुए।

जैसा कि वताया गया है, आचार्य भारमलजी ३५ साधु एव ४१ साध्वियों को छोड़ कर दिवगत हुए थे।[4] इसकी सगति यति हुलासचदजी ने इस प्रकार वैठाई है :[5]

		गणवाहर	दिवगत	अवशेष
आचार्य भिक्षु के युग के साधु	२१	१	१४	६
आ० भारमलजी के युग के साधु	३८	६	३	२९
	५९	७	१७	३५
आचार्य भिक्षु के युग की साध्विया	२८	०	१८	१०
आ० भारमलजी के युग की साध्विया	४४	३	१०	३१
	७२	३	२८	४१

---

१. हेम (भा० च०) ४।१३

च्यार देस मे चूप सु रे लाल, उपगार कियो अपार।
सम्वत अठारे तिमतरे रे लाल, मुनि चढिया देस मेवार ॥

२. हेम (भा० च०) ११।१०, ११

भीपू संथारो सिरियारी सेहर मे जी, भारीमाल मेवाड देस ।
जिण देस मे पोते जनमियाजी, तिण देस मे अणसण लीध ॥

३. वेणी (भि० च०) १२।१३:

पनरै गामा मे किधा पूजजी, चमालीस चोमासा सारजी ।
एतो परम भगता शिष्य पाटवी, घणा रह्या पूज रे लारजी ॥

४. (क) जय (आ० द०) १।दो० ५ .

वर पैतीस मुनिश्वरू, समणी इकतालीस ।
मेली परभव पांगर्‌या, भारीमाल जगीस ॥

(ख) जय (शा० वि०) ४। अन्तर दो० १।शा० वि० की हस्तलिखित प्रति में साधुओ की सख्या ३५ के स्थान मे ३१ लिखी मिलती है .

भारीमाल छता भली, अज्जा इकतालीस ।
मुनि इकतीस सुहामणा, गण मे रह्या जगीस ॥

जयाचार्य की अन्य कृतियो तथा उनसे पूर्व की कृतियो मे भी सख्या ३५ ही है।

५. हुलास (शा० प्र०) पत्र ३२, ३८,

आचार्य भिक्षु के युग के १ नही २ साधु आचार्य भारमलजी के युग मे बहिर्भूत हुए थे। दिवगत १४ नही, १३ साधु हुए थे। आचार्य भिक्षु २७ साध्वियो को छोड़कर दिवगत हुए थे २८ नही। दिवगत १७ साध्विया हुई थी न कि १८।

अत. शुद्ध कोष्ठक इस प्रकार होगा :

		गणवाहर	देवलोक	अवशेष
आचार्य भिक्षु के युग के साधु	२१	२	१३	६
आ० भारमलजी के युग के साधु	३८	६	३	२९
	५९	८	१६	३५
आचार्य भिक्षु के युग की साध्विया	२७	०	१७	१०
आ० भारमलजी के युग की साध्वियां	४४	३	१०	३१
	७१	३	२७	४१

उक्त कोष्ठक से सवधित चार तालिकाए यहाँ दी जा रही है.

आचार्य भिक्षु के युग के २१ साधु भारमलजी के पट्टारोहण के समय विद्यमान		गणवाहर आ० भारमलजी के युग मे	दिवंगत आ० भारमलजी के युग में	वर्तमान आ० भारमलजी के स्वर्गवास के समय
१. भारमलजी	(७)		१८७८	
२. सुखजी	(९)		१८६२	
३. अखैरामजी	(१०)		१८६१	
४. स्वामजी	(२१)		१८६६	
५. खेतसीजी	(२२)			१८८०
६. रामजी	(२३)		१८७०	
७. नानजी	(२६)		१८७१	
८. वणीरामजी	(२८)		१८७०	
९. सुखजी	(३५)		१८६४	
१०. हेमराजजी	(३६)			१९०४
११. उदयरामजी	(३७)		१८६०	
१२. कुसालजी	(३८)	१८६६		
१३. ओटोजी	(३९)	१८६०		
१४. रायचन्दजी	(४१)			१९०८
१५ ताराचन्दजी	(४२)		१८७०	

१६. डूगरसीजी	(४३)		१८६८	
१७ जीवोजी	(४४)			१८६०
१८. जोधोजी	(४६)		१८७५	
१९. भगजी	(४७)			१८६६
२०. भागचन्दजी	(४८)			१८६७
२१. भोपजी	(४९)		१८६६	
		२	१३	६

आ० भारमलजी के युग के ३८ साधु		गणवाहर आ० भारमलजी के युग में	दिवंगत आ० भारमलजी के युग में	वर्तमान आ० भारमलजी के स्वर्गवास के समय
१. जवानजी*[1]	(५०)			१९०५
२. जीवनजी	(५१)		१८६२ (संथारा) अनशन ३१ दिन संथारा २७ दिन	
● ३. दीपोजी	(५२)	१८७७		
४. गुलावजी*	(५३)			१८६५
५. मोजीरामजी*	(५४)			१८६६ (सथारा)
● ६. जयचन्दजी	(५५)	१८६६		
७. पीथलजी (वड़ा)	(५६)			१८८३ (सागारी संथारा)
● ८. सांवलजी	(५७)	१८६६		
९. वगतोजी	(५८)		१८७३ (सथारा २१ दिन)	
१०. सन्तोजी*	(५९)			१९१२
११. ईश्वरजी*	(६०)			१९०१ (संथारा)
१२ गुमानजी	(६१)			१९१०
१३. सरूपजी*	(६२)			१९२५ (संथारा)
१४. भीमजी*	(६३)			१८९७
१५. जीतमलजी[2]	(६४)			१९३८
● १६. नन्दोजी	(६५)	१८६९		

१. जिनके पीछे ● लगा हुआ है वे गण-वाहर हो गए। जिन नामो के तारक चिह्न* लगा है वे साधु कालान्तर मे सिंघाड़पति (अग्रणी) हुए।
२. चतुर्थ आचार्य हुए।

१७ रामोजी[1]	(६६)			१९१९
१८. वर्द्धमानजी	(६७)			१८९४
१९. भवानजी	(६८)			१८८३ गणबाहर
● २०. रूपजी	(६९)	१८७१		
● २१. रासिघजी	(७०)	सवत् अप्राप्त		
२२. माणकजी	(७१)			१९००
२३. पीथलजी	(७२)		१८७८ (सथारा १५ दिन)	
२४. टीकमजी*	(७३)			१९१५
२५ रतनजी	(७४)			१९१७ (संथारा ४९ दिन)
२६. अमीचन्दजी	(७५)			१८८७
२७. हीरजी	(७६)			१८९२ (तेले मे)
२८. मोतीजी*	(७७)			१९२९ (सथारा)
२९. शिवजी*	(७८)			१९११
३०. भैरजी	(७९)			१९२५
३१. अमीचदजी(लघु)*	(८०)			१८९४
३२. रतनजी	(८१)			१९०० (सथारा)
३३. शिवजी	(८२)			१९१३ (सथारा १२ दिन ५ दिन तिविहार ७ दिन चौविहार
३४. कर्मचन्दजी*	(८३)			१९२६
३५. सतीदासजी*	(८४)			१९०९
३६ दीपजी	(८५)			१८९३ (सथारा २२ प्रहर)
३७. जीवोजी*	(८६)			१९३१
३८. मोडजी*	(८७)			१९३४
		६	३	२९

आचार्य भिक्षु के युग की २७ साध्वियां आ० भारमलजी के पट्टारोहण के समय विद्यमान		गणबाहर आ० भारमलजी के युग में	दिवंगत आ० भारमलजी के युग में	वर्तमान आ० भारमलजी के स्वर्गवास के समय
१. अमरूजी	(२३)		१८६०-६८	
२ तेजूजी	(२५)		"	
३. वगतूजी	(२७)			१८७९
४. हीराजी	(२८)		१८७८	

५. नगाजी	(२६)		१८६६	
६. अजबूजी	(३०)			१८८८
७ पन्नाजी	(३१)		१८६०-६८	
८. गुमानाजी	(३३)		"	
९. नेमाजी	(३४)		"	
१० सरूपांजी	(३८)		"	
११. वरजूजी	(३९)			१८८७
१२. वीजांजी	(४०)			१८८७
१३. वन्नाजी	(४१)		१८६७	
१४. कनांजी	(४३)		१८६०-६८	
१५. झूमांजी	(४४)			१८६६-६७
१६. हस्तूजी	(४५)			१८६७
१७ कुशालांजी	(४६)		१८६७	
१८. कस्तूरांजी	(४७)		१८७६	
१९. जेतांजी	(४८)			१९०८
२०. नोरांजी	(४९)		१८७२	
२१. कुशालांजी	(५०)		१८७०	
२२. नाथांजी	(५१)			१८६७
२३. वीजांजी	(५२)			१८८६
२४. गोमाजी	(५३)			१८९०
२५. जसोदांजी	(५४)		१८६८ जेठ सुदी ७ एवं १८७० कार्तिक सुदी १० के बीच	
२६. डाहीजी	(५५)		"	
२७. नोजांजी	(५६)		"	
		×	१७	१०

आ० भारमलजी के युग की ४४ साध्वियां		गणबाहर आ० भारमलजी के युग में	दिवंगत आ० भारमलजी के युग में	वर्तमान आ० भारमलजी के स्वर्गवास के समय
१. आमूजी*	(५७)		१८७३-७४ संथारा	
२. झूमाजी*	(५८)			१८८२
३. हस्तूजी	(५९)			१८६६ संथारा
४. राहीजी	(६०)	संवत् अनुपलब्ध		
५. कुशालांजी	(६१)		१८६८-७० के बीच	
६. कुनणांजी	(६२)		१८६८-७० के बीच	

७ दोलाजी	(६३)	१८६७ संथारा	
८. चनणाजी*	(६४)		१८९६ सथारा
९. चतुरूजी (वडा)	(६५)		१९१४ संथारा
१०. जशूजी	(६६)		१८८८
११. कुशालाजी	(६७)	१८७८ संथारा	
१२. गीगांजी	(६८)	१८७८ सथारा	
१३. कुशालांजी	(६९)		१८९३ संथारा
१४. चतरूजी*	(७०)		१९१३ सथारा
१५. फतूजी*	(७१)	१८७८ सथारा	
१६. रभाजी*	(७२)		१९१५ सथारा
१७. पन्नाजी	(७३)	सवत् अप्राप्त	
१८. कलुजी	(७४)		१८८७ सथारा
१९. वालाजी	(७५)	१८७८	
२०. नगाजी*	(७६)		१९०१ सथारा
२१. ऊमेदाजी	(७७)	१८७८ सथारा	
२२. रत्नाजी	(७८)		१८८७
२३. चनणाजी	(७९)		१८८७
२४. केशरजी	(८०)		१८८५ सथारा
२५. गेदाजी	(८१)		१८९४ सथारा
२६. गगाजी	(८२)		१८७९ सथारा
२७. नौजांजी	(८३)		१८७९ सथारा
२८. वनाजी	(८४)		१८८७ के वाद एव १९०८ माघ वदि १४ के पूर्व
२९. जत्नाजी	(८५)		१८७८ संथारा
३०. मयाजी	(८६)		१९०३
३१. मधुजी*	(८७)		१९०८
३२. वीझाजी	(८८)		१९१६ के वाद
३३. अमियांजी	(८९)	१८७८ के पूर्व	
३४. दीपांजी*	(९०)		१९१८ सथारा
३५. पेमाजी	(९१)	१८७८ के पूर्व	
३६. नन्दुजी*	(९२)		१९४१
३७. नवलांजी	(९३)		१९१६ के पश्चात्
३८. कमलूजी*	(९४)		१९०२ सथारा
३९. नवलाजी	(९५)		१८८७ संथारा
४०. दोलाजी	(९६)		१९११
४१. उमेदाजी	(९७)		१८९९

४२. नोजांजी (९८) १९१० गंथाग
४३. मगदूजी (९९) १९१७ गंताग
४४. चतुरूजी (१००) १८९० मथारा

३ १० ३१

कुछ दीक्षा प्रसंग

आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे दीक्षित साधु-साध्वियो की तालिका ऊपर दी जा चुकी है। यहा कुछ दीक्षाओ के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी दी जा रही है—

१. मुनि जयचन्दजी (५५), पीथलजी (५६), सावलजी (५७), अमीचन्दजी (७५), रतनजी (८१) एव शिवजी (८२) ने पत्नी को छोड़कर दीक्षा ली थी। इस तरह छह दीक्षाएं विवाहित पुरुषो की हुई थी।[1]

२. मुनि सरूपचन्दजी (६२), भीमजी (६३) एव जीतमलजी (६४) सगे भाई थे। साध्वी कल्लुजी इनकी माता थी। इस तरह तीन भाइयों की माता सहित दीक्षा हुई। भीमजी की दीक्षा जीतमलजी के वाद हुई थी। आचार्य भारमलजी ने छेदोपस्थापनीय चारित्र पहले भीमजी को देकर उन्हे जीतमलजी से वडा किया। तीनो भाई अविवाहित थे। मुनि सरूपचंदजी एवं भीमजी की दीक्षा आचार्य भारमलजी ने स्वय सम्पन्न की। मुनि जीतमलजी की दीक्षा मुनि रायचन्दजी (४१) के हाथ से सम्पन्न करवाई। मुनि जीतमलजी की उस समय लगभग नौ वर्ष की आयु थी। आगे जाकर मुनि रायचन्दजी तृतीय आचार्य हुए और उन्ही के हाथ

---

१. (क) जय (शा० वि०) ३।सो० २ :

कटाल्या नो ताय रे, जयचन्द त्रिय तज चरण ग्रही।
शीत वशे गृह आय रे, पाल्या व्रत श्रावक तणा॥

(ख) वही ३।६ :

वड पीथल त्रिय छडी दीक्षा, वाजोली ना नाहरो रे।
तप वहु षटमासी लग कीधो, तियासियैं सथारो रे॥

(ग) वही ३।सो० ३ .

सावल दीक्षा लीध रे, पाली शहरे छयासठैं।
आई त्रिया प्रसिद्ध रे, हाकम भ्रष्ट करावियो॥

(घ) वही ३।२०

त्रिया सघाते रत्न लावा ना, त्रिया सुत तजी अमीचन्दो रे।
एक दिन तिहोत्तरे दीक्षा, दीधी हेम मुनिंदो रे॥

(ङ) वही ३।२९ :

सुरगढ ना त्रिय छाड रत्न शिव, कर्मचन्द सुकुमारो रे।
वर्ष छियतर एक दिन दीक्षा, हेम हाथ सुविचारो रे॥

से दीक्षित उनके प्रथम शिष्य मुनि जीतमलजी उनके पटधर चतुर्थ आचार्य हुए।[1] उक्त चारो दीक्षाए १८६६ मे पौष सुदी ६ से लेकर फाल्गुन वदि ११ तक की अवधि मे सम्पन्न हुई थी।

३. मुनि वर्द्धमानजी (६७) की दीक्षा सं० १८७० मे आचार्य भारमलजी के हाथ मे अर्द्ध रात्रि के समय सम्पन्न हुई थी।[2]

४. मुनि रतनजी (७४) और साध्वी पेमाजी (६१), मुनि हीरजी (७६) और कमलूजी (६४), मुनि दीपजी (८५) और साध्वी चतरूजी (१००) का सासारिक सम्बन्ध पति-पत्नी का था। इस तरह तीन दीक्षाए सपत्नीक हुई थी।[3]

---

१ (क) जय (शा० वि०) ३।११-१४

सरूप भीम जीत त्रिहु बाधव, मात सहित वर दीक्षा रे।
सवत् अठारै गुणतरे वर्षे, शहर जयपुर वर शिक्षा रे॥
पोह सुद नवमी स्वरूप दीक्षा, भारीमाल दी सारो रे।
उगणीसै पणवीसे अणसण, जवर दिशा जयकारो रे॥
माह विद सात्यू चरण जीतने, राय ऋषीश्वर दीधो रे।
रायचन्द स्वामी रे सखरो, पाटोधर प्रसिद्धो रे॥
फागण विद इग्यारस दीक्षा, भीम मात सग सारो रे।
परभव वर्ष सिताणुवै पहुता, उदमी अधिक उदारो रे॥

(ख) वही, वार्तिक पृ० ४३

छेदोस्थापनी चारित्र पहिला भीम ने दीधो, पछै
ऋषि जीत न दीधो—भारीमालजी स्वामी।

२. (क) जय (शा० वि०) ३।१६ :

निशि दीक्षा वर्द्धमान सतरै, पट्मासी तप जोगो रे।
उदक आगारे एक सौ चिहु दिन, चुराणुवै परलोको रे॥

(ख) वही, वार्तिक पृ० ४३

भारीमालजी स्वामी आसरै आधी रात्रि गया वर्द्धमानजी ने दीक्षा दीधी।

३. (क) जय (शा० वि०) ४। सो० ३ ·

लावा ना वसवान रे, रत्न त्रिया साथे दीक्षा।
वर्ष तिहोत्तर जान रे, पाछै पेमा नीकली॥

(ख) वही ४।२६

चरण हीर त्रिय कमलु चिमतरै, सथारो वीयै सारीजी काई॥

(ग) वही ४।३१ ·

चरण सितन्तरै दीप मुनि त्रिय, सुगणी चतरूजी समणीजी काई।
सप्त पोहर सथारो नैउवै, ए चर्म चेली भारीमाल तणीजी काई॥

५. स्वरूपचन्दजी (६२), भीमजी (६३), जीतमलजी (६४), मुनि कर्मचन्दजी (८३)[१] सतीदासजी (८४)[२] और जीवोजी (८६)[३]—इन ६ वालको ने अविवाहित अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की।

६. मुनि जीवोजी (८६) की दीक्षा जगल मे मुनि स्वरूपचन्दजी (६२) के द्वारा सम्पन्न हुई। मुनि स्वरूपचन्दजी का अग्रणी के रूप मे प्रथम चातुर्मास पुर मे हुआ। वहा से विहार कर विचरते-विचरते गगापुर आए। वहां से विहार के समय लोगों के साथ जीवोजी भी कडा अगरखी खोलकर पहुचाने के लिए पीछे-पीछे चले। लोग कुछ दूर पहुच कर वापिस आ गए। केवल जीवोजी सेवा मे रहे। वे १३ वर्ष के थे। जगल मे मुनि स्वरूपचन्दजी से निवेदन किया—मुझे दीक्षा दे। मुनि श्री ने कहा—गंगापुर पहुंच तुम्हारे भाई-भौजाई को पूछकर दीक्षा देंगे। जीवोजी ने कहा—मुझे अभी ही दीक्षा दे। मेरे परिणाम बडे तीव्र है। मुनि स्वरूपचन्दजी को स्मरण हुआ कि उनके बडे भाई दीपजी की आज्ञा का पत्र आचार्य भारमलजी के पास है। यह पत्र उन्होने एक वर्ष पहले लिखकर दिया था। उसमे था कि छ महीने के वाद जीवोजी दीक्षा ले तो मेरी आज्ञा है। तीव्र परिणाम देखकर मुनि स्वरूपचन्दजी ने जंगल में ही उन्हे दीक्षा दे दी।[४]

७. साध्वी आसूजी (३७), चतरूजी (७०), वालाजी (७५) और गेंदाजी (८१)—इन चारों ने अपने-अपने पति को छोडकर दीक्षा ग्रहण की थी।[५] इस तरह चार सुहागिन बहनों की दीक्षा हुई।

---

१. (क) जय (शा० वि०) ३।२६

(ख) जय (हे० न०) ५।४२-४३.

कर्मचन्द छाडया माता तातो रे, वालपणै वैरागी विख्यातो रे।
त्रिया छाडी रत्न शिव आयो॥
एक दिन लियो सजम भारो रे, ज्यारा मेटया है दु ख अपारो रे।
ओ तो हेम तणो उपकारो॥

२. जय (हे० न०) ५।५०.

वागजीरो पुत्र सतीदासो रे, घरका रे परणावा रो हुलासो रे।
ओ तो हुवौ संसार थी उदासो॥
व्याहव नो वनोलो जीम्या एको रे, पछे आयो वैराग विशेषो रे।
हेम पासे चरण सुविशेषो॥
वस्तपचमी दीख्या लीधी रे, प्रीत पयजल जेम प्रसिद्धि रे।
जावजीव ताई सेवा कीधी॥

३. जय (शा० वि०) ३।३४ वार्तिक, पृ० ४६ :

४. जय (शा० वि०) ३।३४ वार्तिक, पृ० ४६

५. (क) वही, ४।१.

शहर पीपाड तणा प्रीतम तज, वर्ष वासठै वर दीक्षा जी काई।
संवत् अठारै चिमतरै अणसण, धुर शिष्यणी आसु शिक्षा जी काई॥

८. साध्वी कुनणाजी (६२), साधु जोगीदासजी (४५) की ससार पक्षीय पत्नी थी। वे आचार्य भिक्षु के युग मे दीक्षित हुए थे। उनका देहान्त १८५६ मे पीसागण मे हुआ। सथारा आया। उसके वाद आचार्य भारमलजी के काल मे आप दीक्षित हुई।[1]

९. साध्वी श्री दोलाजी (६३) मुनि खेतसीजी (२२), साध्वी रूपाजी (३७) और कुशालाजी (४६) की भतीजी थी। आपका स० १८६७ मे कार्तिक वदि १५ दीवाली के दिन सथारे मे स्वर्गवास हुआ।[2] आप मुनि खेतसीजी के छोटे भाई हेमजी की पुत्री थी।[3] पीहर श्रीजीद्वार और ससुराल काकरोली मे था।[4]

१०. साध्वी श्री गेनाजी (८१) और साध्वी श्री वन्नाजी (८४) का सवध जेठानी-देवरानी का था।[5] जेठानी वन्नाजी की दीक्षा स० १८७० और स० १८७१ के बीच हुई थी

(ख) जय (शा० वि०) ४।११

तोसीणा री चरण पिउ तज, छोटी चतरूजी विचारी जी काई।
उगणीसै सत्तरै आणदपुर, वर अणसण पहुती पारीजी काई॥

(ग) वही, ४।१५

वालांजी आऊवा ना वासी, पिउ तज सयम हितकारी जी काई।

(घ) वही, ४।१८

गेदाजी गोपालपुराना, पिउ छोड सजम धारी जी काई।
तप वहु कीधो वर्ष चोराणवै, सथारो तसु सुखकारी जी काई॥

१. वही, ४।४

सती कुशाला भीलवाडा नी, केलवै री कुनणा धारी जी काई।
जोगीदासजी चल्या चरण तसु, तास त्रिया अति सुखकारी जी काई॥

२. (क) जय (सती दौलाजी गुण वर्णन ढाल) दो० १, गा० १, ४

सतजोगी स्वामी तणी जी, सगी भतीजी सुखदाय।

(ख) वही, ४।५

तप बहु वर्ष सतसठै आसरे, दोला अणसण दिवालीजी काई॥

३ जय (खेतसी) ८।२

हेम सुता दोलाजी नामो, सतजुगी नी भतीजी तामो।
धारयो चारित्र गुणमणी धामो॥

४. जय (सती दोला जी गुण वर्णन ढाल) दो० १

सती दोलाजी सोभती, पीहर श्रीजीद्वार।
काकरोली मे सासरो, तिलेसरा कुल धार॥

५ (ख) जय (शा० वि०) ४।२०

सती गेनांजी री देराणी, पियर विदासर सेखाणीजी।
काकडोली मे परभत्र पहुंती, सती वनाजी सुखदाणीजी॥

(क) वही, ४।१८

गेनाजी गोपालपुरा ना, पिउ छाड सयम धारी जी काई।
तप वहुं कीधो वर्ष चोराणवै, सथारो तसु सुखदाई जी काई॥

और देवरानी वन्नांजी की दीक्षा आपके बाद उसी बीच।

११. साध्वी गगाजी (८२) और साध्वी नोजाजी (८३) स्वामीजी के युग की गण-बहिर्भूत साध्वी फतूजी (१०) की शिष्याए थी। दोनों उनमे पृथक् हो दीक्षित हु[१]।

१२. साध्वी मयाजी (८६) साधु दीपजी (८५) और जीवोजी (८६) की बहिन थी, जिन्होंने आपके बाद दीक्षा ग्रहण की थी।[२]

१३ साध्वी दीपाजी (९०) मुनि माणकचन्दजी (९९) की बड़ी बहिन थी।[३]

इस तरह बहिन-भाई के दो युगल दीक्षित हुए थे।

१४. साध्वी नन्दूजी (९२), लावा सरदारगढ के फतेहचन्द की पुत्री थी। आप कुंवारी कन्या थी। सगाई भी नही हुई थी। आपके मन मे उत्कृष्ट वैराग्य भावना उत्पन्न हुई। आपने दीक्षा लेने का निर्णय किया। फतेहचन्दजी ने बडे हर्ष से दीक्षा के महोत्सव किये।

दीक्षा देने के लिए मुनि हेमराजजी (३६) तथा साध्वी जोतांजी (४८) आदि लावा पधारे। दीक्षा के दिन विरोधियो ने रावला म जाकर ठाकुर साहब को बहका दिया। उन्होंने अपनी सीमा मे दीक्षा न देने की आज्ञा दी। मुनि हेमराजजी, साध्वी जोताजी आदि ने वहा से विहार कर दिया। डीगरोल गाव पहुचे। फतेहचन्दजी, परिजन एवं गांव के लोग भी नन्दूजी को लेकर वहा पहुचे। वह गाव चारणों का था। उन्होंने भी विरोधियो के भड़काने से अपनी सीमा मे दीक्षा देने की ना कह दी। तब मुनि हेमराजजी आदि वहा से विहार कर महाराणा की सीमा के गांव खारा मे पहुचे। दीक्षा का मुहूर्त टलते देखकर मुनि श्री हेमराजजी ने पिता फतेहचन्दजी की आज्ञा ले नन्दूजी को गृहस्थ के आभूषण और वस्त्र पहने ही दीक्षा दी। दीक्षा देकर साध्वी नन्दूजी को साध्वी जोताजी को सौंप दिया। उन्होंने प्रातिहारिक आभूषण और वस्त्र नन्दूजी के पिता फतेहचन्दजी को सम्हला दिए। आपकी दीक्षा १८७३ मे हुई थी।[४]

---

१. जय (शा० वि०) ४।१९

गगा नोजा ए दोनूई, फतू तणी चेली धारी जी काई।
चरण लेई ने वर्ष गुण्यासै, सथारो वर सिरियारी जी काई॥

२. वही, ४।२२

दीप जीव नी बहन मयाजी, चरण बहोतर सुविचारी जी काई।

३. जय (सती दीपा गुण वर्णन ढाल) गा०, १३

लघु बधव सजम लीयौ रे, माणक मुनिवर जाण रे।
प्रकृति भद्र तपस्वी भलौ रे लाव, वारु सुगुण बखांण रे॥

४. (क) जय (शा० वि०) ४।२५

संवत् अठारै वर्ष तिहोतरै, हेम हाथ चारित्र धारीजी काई।
नन्दु अकनी कुवारी कन्या, भणी वखाण कला सारीजी काई॥

(ख) जय (हे० न०) ५।२१-२३

थोड़ा दिवस पछै वलि जाणी रे, नन्दु कुमारी कन्या पिछाणी रे।
ते पिण चारित्र नी चित आणी॥

१५. साध्वी चतरूजी (१००) साधु जीवोजी (८६) के वडे भाई साधु दीपजी (८५) की पत्नी थी। इस तरह भौजाई-देवर की एक दीक्षा हुई।[1]

साधु-साध्वियों की विशिष्ट तपस्याएं

आचार्य भारमलजी का शासन-काल महत्त्वपूर्ण घटनाओ से सकुल रहा। उनके युग मे कई अभूतपूर्व तपस्याए हुई, जिनमे से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है .

६६ दिन की तपस्या

सं० १८६५ मे सर्वप्रथम आछ आगार से ६६ दिन की तपस्या आचार्य भिक्षु के युग के साधु भोपजी (४६) द्वारा सिरियारी मे हुई।[2]

६० दिन का सथारा

आचार्य भिक्षु के युग की साध्वी गुमानाजी (३३) का स्वामी भारमलजी के युग मे राजनगर मे स्वर्गवास हुआ। आपको ६० दिन का सथारा आया।[3]

१०१ दिन की तपस्या

स० १८७४ मे सर्वप्रथम आछ आगार से १०१ दिन की तपस्या मुनि वगतोजी (५८) द्वारा धाकडी चातुर्मास मे हुई।[4]

वाप आज्ञा देवा साथे आयो रे, गाम खारा तणी सीम मायो रे।
हेम साधपणो पचखायो ॥
गृहस्थी रा वस्त्र सहित पाडीहारो रे, त्या सहित दियो सजम भारो रे।
तिण मे दोप न जाण्यो लिगारो ॥

१. जय (शा० वि०) ४।३१
चरण सितन्तरे दीप मुनि त्रिय, सुगणी चतरूजी समणी जी काई।
सप्त पोहर सथारो नैउवै. ए चर्म चेली भारीमाल तणीजी काई ॥

२. जय (शा० वि०) १।३२ के वाद का दो० ८ .
सिरीयारी मे पैसठै, छ्यासट दिन एक साथ।
आछ आगारे पचखिया, सुयश अधिक सजात ॥

३. जय (पण्डित मरण) ढाल २।७ :
पन्नाजी सथारो गुमानाजी भारी, दोय मास किया पाणी आगारी।
राजनगर सथारो कियो गुणवती, ममरो मन हर्पे मोटी सती ॥

४. वही ३।७ :
गुमानजी रा टोला मां थी, वगतोजी व्रत धारो रे।
चिमंतरै एक सौ इक दिन तप, दिन इकवीस सथारो रे ॥

१०६ दिन की तपस्या

स० १८७६ मे सर्वप्रथम आछ आगार से १०६ दिन की तपस्या मुनि पीथलजी (५६) द्वारा देवगढ मे हुई।[1]

दो चातुर्मासिक तप

सं० १८७७ मे सर्वप्रथम चातुर्मासिक तप मुनि पीथलजी (५६) द्वारा पुर मे हुआ।[2]

स० १८७७ मे दूसरा चातुर्मासिक तप मुनि माणकचन्दजी (७१) द्वारा हुआ।[3] इस तरह स्वामी भारमलजी के युग मे दो चातुर्मासिक तप हुए।

१०४ दिन का तप

स० १८७७ मे जल के आगार मे १०४ दिन की तपस्या मुनि वर्द्धमानजी (६७) द्वारा की गई।[4]

आचार्य भारमली के शासन-काल मे उक्त विशिष्ट तपस्याओ के अतिरिक्त अन्य भी अनेक तपस्याए हुई, जिनका विवरण तपस्वियो के व्यक्तिगत जीवन-वृत्तातो मे है। आपके युग के साधु-साध्वियो ने पश्चाद्वर्ती आचार्यो के शासन-काल मे भी लोमहर्षक तपस्याए की। नीचे पट्मासी तपस्याओ एवं अन्य कुछ तपो का वर्णन दिया जा रहा है :

१. एक साथ तीन पट्मासी तप। स० १८८२ ज्येष्ठ मास मे आचार्य रायचन्दजी के युग मे उनकी प्रेरणा से मुनि पीथलजी (५६), मुनि वर्द्धमानजी (६७) एवं मुनि हीरजी (७६) तीनो ने एक दिन पट्मासी तप का प्रत्याख्यान किया।

आचार्यश्री ने स० १८८३ मे मुनि पीथलजी (५६) का मुनि भीमजी (६३) के साथ काकरोली मे चातुर्मास कराया, मुनिश्री वर्द्धमानजी का केलवा एव मुनि हीरजी का राजनगर मे। आचार्यश्री ने अपना चातुर्मास उदयपुर मे किया। चातुर्मास समाप्ति के बाद आचार्यश्री ने

---

१. जय (हे० न०) ५।३४

त्या रह्या आसरे नवमासो रे, वर्ष छिहतरे चौमासो रे।
पीथल एक सौ पट तप रासो ॥

२. जय (पीथलजी गुण वर्णन) ढा० १।७ .

सततरै पुर कीया च्यार मासो रे।

३. जय (शा० वि०) ३।१७

माणक शहर केलवै वासी, हीगड जाति पिछाणो रे।
चौमासी तप आछ आगारे, लावे परभव जाणो रे ॥

४. (क) जय (शा० वि०) ३।१६ :

निशि दीक्षा वर्द्धमान सतरै, पटमासी तप जोगो रे।
उदक आगारे एक सौ चिहु दिन, चुराणुवै परलोको रे ॥

(ख) जय (वर्द्धमानजी गुण वर्णन) ढा० १।२, २।१

उक्त स्थानो मे पधारकर स्वयं अपने हाथ से उन्हे पट्मासिक तप के पारण कराए ।[1]

२. चौथा षट्मासी तप सं० १८८५ मे आचार्य रायचन्दजी के युग मे मुनि हीरजी (७६) द्वारा गोगुदा चातुर्मास मे किया गया ।[2] इस तरह आपने दो पट्मासी तप किए ।

३. पाचवा पट्मासी तप स० १८८६ मे आचार्य रायचन्दजी के युग मे मुनि दीपजी (८५) द्वारा पीपाड चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी के सिघाडे मे किया गया ।[3]

४. छठा पट्मासी तप स० १८८६ मे मुनि शिवजी (७८) द्वारा आचरित हुआ ।[4]

५. सातवा पट्मासी तप मुनि मोडजी (८७) द्वारा स० १९१२ मे आचार्य जीतमलजी के युग मे मोखणदा मे हुआ ।[5]

---

१. जय (पीथल गुण वर्णन) ढाल १।११-१३, २१, २३, २४

तयासीयै काकरोली तासो रे, खट मास भीम ऋप पासो रे।
पचखाया पूज हुलासो ॥
केलवे व्रधमान ६ मासी रे, राजनगर हीर तप वासी रे।
काकरोली पीथल पद पासी ॥
रायचन्द पूज सुहाय रे, तीनू रा परणाम चढाया रे।
तपसी तप करण उमाया ॥
जेठ कृष्ण पखे मुनिराया रे, छ मासी तीनू ने पचखाया रे।
पूज उदीयापुर चल आया ॥
चतुरमास करी ऋषरायो रे, आया काकरोली सैहर चलायो रे।
पारणो पीथल ने करायो ॥
तीनू षट्मासी तप कीधो रे, पाणी आछ आगार प्रसिधो रे।
देसदेस माहि जश लीधो ॥

२. (क) हेम (हीरजी गुण वर्णन) ढाल १।६ :

दसमो कानोर दीपावीयो रे, चौमासे चौमास।
गाम गोधूदे गुण वध्या रे, इगतीसा पट्मास ॥

(ख) जय (हीरजी गुण वर्णन) १।१०

चौमासे इग्यार मे हो, इकतीसा षट् मास।
वलिहारी हू वाहरी हो, स्यू गुण करीये तास के ॥

३. जय (हे० न०) ६।३ :

शहर पीपाड मे वर्ष छियासिये, मास उदयचन्द धारी।
दिवस एक सौ छियासी दीपजी, कीधा छै आछ आगारी ॥

४. जय (शिवजी-गुण वर्णन) ढाल ११

मुनि थे तो आछ आगार विमासी, इकसो छयासी रा ॥

५. मघवा (ज० सु०) ४३।२४

हिवे मोखणदे आया मुनिपति, आछ आगार सू मारी रे।
मोटजी तपसी नो छ मासी पारणो परम उदारी रे ॥

६. आठवा पट्मासी तप मुनि मोडजी (८७) द्वारा।[1]

इस तरह स्वामी भारमलजी के युग के साधुओं द्वारा आठ पट्मासी तप हुए।

७. स० १९१७ मे जयाचार्य के युग मे मुनि रतनजी (७४) ४९ दिन का संथारा पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए।[2]

८. स० १९२९ मे साधु जीवोजी (८६) ने ४४ ओली तक आयम्बिल तप किया, जो सर्वाधिक है।[3]

धर्म-प्रचार

आचार्य भिक्षु के युग के मुनि वेणीरामजी (२८) ने आचार्य भारमलजी के युग मे सर्व-प्रथम मालवा प्रात मे पदार्पण कर १८६९ का चातुर्मास रतलाम मे किया और स० १८७० का उज्जैन मे। इस तरह मालवा मे धर्म-प्रचार का कार्य स्वामी भारमलजी के युग मे ही हुआ।[4]

आचार्य भारमलजी के युग के साधु ईशरजी (६०) ने आचार्य रायचन्दजी के युग मे सौराष्ट्र मे सर्व प्रथम स १८९० मे चातुर्मास किया। इस तरह सौराष्ट्र के क्षेत्र को निकालने मे आचार्य भारमलजी के युग के साधुओ का ही हाथ रहा।

मुनि कर्मचन्दजी (८३) ने कच्छ मे सर्वप्रथम पधारकर चातुर्मास किया, और वहा धर्म का वहुत प्रचार हुआ।

आपके युग के साधु और साध्विया वडे धर्म-प्रचारक रहे। साध्वी श्री चतरूजी (६५) ने अपने हाथ से १२ दीक्षाए दी। मुनि स्वरूपचन्दजी (६२) ने १७ दीक्षाए दी। आचार्य भिक्षु के युग के मुनि हेमराजजी ने आप के युग मे १२ दीक्षाए दी।

ज्ञान-आराधना और लेखन-कार्य

आपके समय मे साहित्य की अच्छी वृद्धि हुई। मुनि जीतमलजी (६४), जीवोजी (८६) आदि उच्च कोटि के कवि, लेखक और शोध-कार्य करने वाले सत हुए।

मुनि जीतमलजी ने स० १८७१ मे 'सत गुणमाला' की रचना की। सं० १८७८ मे पन्न-वणा की जोड की। अन्य भी अनेक फुटकर ढाले एव ग्रथ लिखे। उन्होने अपने जीवन-काल मे साढे तीन लाख पदो की रचना की।

---

१. (क) ख्यात
   (ख) चमत्कारी तपस्या की विगत के पन्नो से

२ जय (शा० वि०) ३।२१
   सवत् उगणीसै वर्ष सतरै, शहर आमेट मझारो रे।
   गुणपचास दिवस आसरै, सीजयो रतन सथारो रे॥

३ जय (शा० वि०) ३।३५.
   जीव ऋषि वहु जोड सुत्र नी, आंबिल वर्द्धमान जगीस रे।
   चौमालिस अवली लग परभव, उगणीसै गुणतीसे रे॥

४. (क) जय (शा० वि०) वार्तिक पृ० ३६-३७
   (ख) वेणीरामजी रो चौढालियो ३।५, ४।दो० १

मुनि जीवोजी ने १० आगम ग्रन्थो का राजस्थानी भाषा मे पद्यानुवाद किया।[1] साथ ही अनेक संतों के जीवन-वृत्त लिखे। भिक्खु दृष्टात ग्रथ का सक्षिप्त पद्यानुवाद किया।

मुनि कर्मचन्दजी (८३) बहुत ही स्वाध्यायी और ध्यान-प्रेमी थे। 'वार अनेक बतीसी वाची'—वत्तीसो ही आगमो का अनेक वार वाचन किया। भगवती के अनेक सूक्ष्म स्थलो का गहरा अभ्यास कर उनके गभीर रहस्यो का ज्ञान प्राप्त किया। उत्तराध्ययन और दशवैकालिक सूत्रो का अनेक—सैकडो वार आवर्तन किया।[2]

मुनि सतीदासजी (८४) अनेक चर्चा-वार्ताओ के ज्ञाता थे। क्रमश. वत्तीस सूत्रो का अध्ययन किया। उन्हे चार आगम-ग्रंथ कठस्थ थे। सूत्रो के अनेक सूक्ष्म रहस्यो की उन्हे जानकारी थी। कठकला वहुत अच्छी थी। व्याख्यान अच्छा देते थे।[3]

साध्वी झूमाजी (५८) के वारे मे उल्लेख मिलता है—"कला वखाण तणी अति तीखी, भणी गुणी झूमा भारीजी काई।"[4]

साध्वी दीपाजी भी वहुत विदुषी थी—"पढी भणी बहु यशधारी जी काई।"[5] आपकी प्रेरणा से पाच साध्वियो ने एक साथ आछ के आधार पर आमेट चातुर्मास मे पट् मासी तप किए।

आचार्य भारमलजी के शासन और शासन-काल के साधु-साध्वियो की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए मुनि हेमराजजी ने लिखा है .

भीषू भारीमालजी री वार मे रे, बुधवता हुवा बहु साध।
बुधवती हुई बहु आरज्या रे, त्या ग्यान अपूर्व लाध॥
मुनिसर साध महा गुणधार॥
पहिली वय वैरागियां जी, दिन २ अधिको तेज।
सुत्र सिधात भणे घणा जी, वालक बहु गुण हेज॥ मु०॥
तपसी हुआ बहु तप करी जी, त्या थोकरा कीधा अनेक।
च्यार मास उपर चढचा जी, त्यारे निर्जरा हुई विशेष॥
चरचावादी बहु सूरमा जी, सुत्र सिधत राधार।
पाखडिया रा मद उतारता जी, वोलता वचन विचार॥
वाल ब्रह्मचारी वुधवत घणा जी, नीका सजम उपर नेत।
महिमा करे सुर मानवी जी, त्यारे हद माहो माहि हेत॥
तीन भाई कुवारा ब्रह्मचारी साधु थया जी, वालक वय बुधवान।
सगाई छोडी ससार नी जी, मुगत सगाई मान॥
कुवारी कन्या हुई साधवी जी, वले धणी धणिया नी जोड।
ते सजम पाले निरमलो जी, तो मिट जासी त्यारी षोड॥

---

१. जय (शा० वि०) ३।३५
   जीव ऋषि वहु जोड सूत्र नी
२. वही, ३।३२ और वार्तिक पृ० ४४
३. वही, ३।३३ का वार्तिक पृ० ४४-४५
४. जय (शा० वि०), ४।२
५. वही, ४।२४

वंयासी हुवा साध साधवी जी, आसरे अर्थ अमोल।
ज्या भारीमाल गुरु भेंटिया जी, त्यांरो तीखो वधियो तोल ॥
मुरधर मेवाड देश मे जी, मालवो हाड़ोती ढूंढार।
तिहा साध साधवी विचरता जी, करता पर उपगार ॥
जिण मारग जमायो जुगत सु जी, करणी करता हद वेस।
भीपू सथारो श्रीयारी सेहर मे जी, भारीमाल मेवाड़ देस ॥
जिण देस मे पोते जनमियाजी, तिण देस मे अणसण लीध।
ज्यारी जस महिमा हुई जगत मे जी, आतम कारज कीध ॥'[1]

संस्मरण

यहा प्राप्त सस्मरण दिए जा रहे है ·

एक ही व्याख्यान तीन-तीन वार

आरम्भ मे व्याख्यान वहुत थोडे थे। अत अनेक वर्षो तक चातुर्मास मे अंजना और देवकी का व्याख्यान ही तीन-तीन वार सुनाया जाता रहा। आपने मुनि हेमराजजी से एक वार कहा था "म्है टोला वाला माँहि थी नीकल्या, जद केतला वर्षो ताई चौमास मे अंजणा देवकी रो वखाण तीन-तीन वार वाचता।"[2]

मुनि टीकमजी से चर्चा

स० १८५५ की घटना है। पाली मे आप और मुनि खेतसीजी आहार गवेपणार्थ पधारे। जयपुरिया मुहल्ले मे गए। वहा टीकमजी भी आए। लोग वोले, चर्चा करें। तव मुनि भारमलजी ने टीकमजी से कहा—"सूत्र मे नित्य-पिण्ड लेने का निषेध है किन्तु आप लेते है। उसे सदोप मानते है या नही ?" टीकमजी वोले—"हम तो फेका जाने वाला धोवन ही लेते है, उसका दोप नही।" भारमलजी वोले—"आप धोवन का नाम क्यो लेते है ? पानी भी तो नित्य लेते है।" टीकमजी वोले—"हम पानी नही लेते।" भारमलजी वोले—"आप पानी लेते है।" इस प्रकार वार-वार कहने पर लोग वोले—"ये तो कहते है कि हम नित्यपिंड पानी नही लेते तथा आप कहते है कि ये लेते है। दोनो मे किसी एक के झूठ का पाप लगता है।" भारमलजी वोले—"ये नित्य गर्म पानी एक ही घर से लेते है—वह भी कलाल के घर से। पहले दिन आहार प्राप्त करने के वाद दूसरे दिन विहार करते समय फिर उसी घर से लेते है। यह भी नित्य पिंड ही हुआ।" तव टीकमजी जवाव देने मे असमर्थ हुए। आपने आकर आचार्य भिक्षु से सारी वात कही।[3]

एकातर

स० १८५६ मे आपने चातुर्मास-भर एकातर किया। यह चातुर्मास आचार्य भिक्षु के

१. हेम (भा० च०) ११।१-११
२. जय (भि० दृ०), दृ० २७४
३. हेम दृष्टान्त, दृ० २८

साथ श्रीजीद्वार मे रहा ।[1]

उदयरामजी का सथारा

स० १८६१ की साल उदयरामजी (३७) आयम्बिल वर्द्धमान तप करते थे। इकतालीस ओली तक पूरी की। फिर अठाई की। अठाई का पारण खारचिया मे किया। शरीर मे असात देख चेलावास आचार्य भारमलजी के पास जाने का विचार किया। थकावट से रास्ते मे कराडी गाव मे ही रुक गए। भोपजी (४६) तपस्वी ने चेलावास पहुच कर यह समाचार कहा। आचार्य श्री ने खेतसीजी (२२), हेमराजजी (३६), भोपजी (४६) तपस्वी आदि को जाकर उन्हे लाने की आज्ञा की। वे जाकर कधे पर बिठा उन्हे चेलावास ले आए। घास का बिछौना कर उन्हे सुलाया। सती हीराजी (२८) हेमराजजी स्वामी से बोली—"आप लिखते क्या है! उदयरामजी स्वामी को जल पिलावे।" खेतसीजी स्वामी, हेमराजजी स्वामी दोनो आए। खेतसीजी स्वामी ने कमर मे हाथ दे उन्हे बिठाया। इतने मे आखे फेर दी। आचार्य भारमलजी ने यह देख फरमाया "आप श्रद्धते हो तो आपको चारो आहार का त्याग है।" खेतसीजी स्वामी के हाथो मे ही उनका स्वर्गवास हो गया।[2]

साधुओ की चिन्ता

स० १८६६ के पाली चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी (३६) अस्वस्थ हो गए। चातुर्मास समाप्त होने पर विहार नही हो पाया। अस्वस्थता का समाचार सुनकर आचार्यश्री ने मुनि भगजी (४७) और जवानजी (५०) को उनकी सेवा मे भेजा। बाद मे स्वय पधारे। मुनि खेतसीजी आदि अनेक साधु और हीराजी आदि अनेक साध्विया साथ थी। मुनि हेमराजजी का अच्छी तरह उपचार कराया। स्वस्थ होने पर मुनि हेमराजजी ने विहार किया। साधु पहुचाने गए। वापिस आकर मुनि हेमराजजी के हेमावास पहुचने के समाचार कहे तब आचार्यश्री ने आहार कर वहा से रोयट की ओर विहार किया।[3] ऐसी चिन्ता साधु-साध्वियो की रखते थे।

चनणाजी (६४) के विद्यागुरु

सती चनणाजी ने स० १८६६ मे दीक्षा ग्रहण की थी। उस समय उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी।

उल्लेख है कि आचार्य "भारमल भणाय गुणाय अनेक झीणी-झीणी चरचा सिखाई।"[4] यह साध्वी बाद मे बडी विदुषी और दुर्धर्ष तपस्विनी निकली।

---

१. जय (हे० न०) ४। ३

श्रीजीद्वारे छप्पने, सत पच सुखकारी हो।
भारीमाल हेम सतजुगी, किया एकन्तर भारी हो।
च्यार मास एकधारी हो॥

२. जय (भि० दृ०), दृ० १८८

३. हेम दृष्टान्त, दृ० ३५

४. जय (शा० वि०) वार्तिक पृ० ५०

कृष्णगढ की चर्चा

१८६८ के शेष काल मे आचार्य भारमलजी १० संतों के साथ कृष्णगढ पधारे। नये शहर मे उतरे। बगीचे मे चर्चा का आयोजन हुआ। नानकजी, डूगरजी और अमरसिंहजी आदि के ३५ साधु चर्चा करने के लिए आए। मुनि खेतसीजी(२२), हेमराजजी (३६), रायचन्दजी (४१) आदि संतो के साथ आचार्य भारमलजी बगीचे पधारे। सैकड़ो लोग एकत्रित हुए। नानकजी के साधु निहालजी ने अपना पक्ष रखते हुए कहा कि आश्रव अजीव है। आचार्य भारमलजी बोले : आश्रव जीव है। जो कर्मो को ग्रहण करता है वह आश्रव है। कर्मो को ग्रहण जीव करता है। अजीव कर्मो को ग्रहण नही करता। फिर गृहस्थो को आश्रवी और साधुओ को सवरी कहा गया है। यदि आश्रव को अजीव मानेगे तो गृहस्थ का साधु होना अजीव का जीव होना माना जाएगा। यदि साधु भ्रष्ट होकर गृहस्थ हुआ तो वह भी जीव का अजीव होना मान जाएगा। क्या इससे जीव का अजीव तथा अजीव का जीव हुआ? यह सुनकर वे उत्तर देने में असमर्थ हुए। विपक्षी साधु "ये साधुओ को अजीव कहते हैं"ऐसा हल्ला कर उठ गए।[1]

जयपुर चातुर्मास

आचार्य भारमलजी का १८६९ वर्ष का चातुर्मास जयपुर मे था। मुनि खेतसीजी, रायचन्दजी आदि साथ मे थे। जयपुर मे आचार्य भिक्षु प्रथम बार सं० १८४८[2] मे पधारे थे और लगभग २२ दिन तक वहा विराजे थे। उस समय हरचन्द लाला आदि कुछ लोग ही समझे थे। वहा अधिक उपकार का क्षेत्र समझ[3] स० १८६९ का चातुर्मास आपने वहीं किया। सुबह और रात्रि दोनो समय व्याख्यान होता। आप और संत रायचन्दजी दोनो व्याख्यान देते। अनेक व्यक्ति समझे।[4]

---

१. श्रावक दृष्टान्त १५

२ जय (ऋ० रा० सु०) ६। दो० ३-४.
मूल मे स० १८४७ के लगभग लिखा है, पर आचार्य भारमलजी की हस्तलिखित उपदेश की ढाल की प्रति पर लिखने का समय १८४८ फाल्गुन सुदी १४ अंकित है। आचार्य भिक्षु केवल एक बार ही जयपुर पधारे थे। अत. संवत् १८४८ मे ही पधारे।

३. एक बार अन्य सम्प्रदाय के एक साधु ने आचार्य भारमलजी से पूछा—आप लोग जयपुर क्यो नही आते? आपने कहा—वहां श्रावक कम होने से जाने का अवसर नही बना। साधु बोले—वहा भीखणजी का समझाया हुआ जौहरियो का बादशाह तो बैठा है, फिर श्रावक होते क्या देर लगेगी? सभव है, इस वार्तालाप से जयपुर पधारने की प्रेरणा मिली हो।

४. जय (ऋ० रा० सु०) ६। दो० १-५

गाम नगरा विचरता, भारीमाल महाभाग।
संत जुग रायऋष आदि, सत वारू दिल वैराग॥
समत अठारे गुणंतरे, जैंपुर नगर मझार।
चौमासा चित चाह कर, अधिक थयो उपगार॥

सं० १८६६ के शेषकाल की उपलब्धि

आचार्य भारमलजी के शरीर मे फोडा हो जाने से अत्यन्त वेदना उत्पन्न हुई। इसी कारण से उन्हे फाल्गुन मास तक जयपुर मे ही ठहरना पड़ा। इसी समय उपदेश देकर स्वरूपचन्दजी, भीमजी और जीतमलजी इन तीन भाइयो को उनकी माता सहित दीक्षा के लिए उद्यत किया।

वहा हेमराजजी आदि साधु तथा श्री हीराजी (२८), अजवूजी (३०), हस्तूजी (४५), आदि साध्विया दर्शन के लिए आई। साध्वी अजवूजी स्वरूपचन्दजी, भीमजी, जीतमलजी की भुआ थी। उनकी दीक्षा सं० १८४४ मे हुई थी। उन्होने अपने भतीजो को उपदेश दिया। साध्वी हस्तूजी ने भी उपदेश देते हुए कहा, "स्वरूपचन्दजी ! अपनी भुआ को यश दे। उनके हितकर उपदेश को माने। दीक्षा लेने का वधा ले ले।" साध्वीश्री के वचनो को सुनकर स्वरूपचन्दजी के भाव सयम ग्रहण के हुए। डेढ महीने के भीतर-भीतर-सयम ग्रहण करने का वधा कर लिया। आचार्य भारमलजी ने पोह सुदी ६ के दिन मोहनवाडी मे उन्हे दीक्षा दी। अपूर्व दीक्षा महोत्सव हुआ। जीतमलजी की दीक्षा माघ वदि ७ के दिन हुई। आचार्य भारमलजी ने ऋषि रायचन्दजी को दीक्षा देने के लिए भेजा। वाद मे फाल्गुन वदि ११ के दिन आचार्य भारमलजी ने माता सहित भीमजी को दीक्षित किया। इसके वाद जयपुर से विहार हुआ।[1]

भिक्षु प्रथम पधारिया, सेतालीसे उनमान।
रात्री वावीसरे आसरे, रक्षा मुनि गुणखान॥
हरचन्द लाला आदि दे, अलपज समज्या जाण।
ता पीछै भारमलजी, कियो गुणतरे मडाण॥
जन वौहला समज्या तदा, प्रभात रात्री व्याख्यान।
भारीमाल ऋपराय जी, वाचै उद्यम आण॥

१. (क) जय (ऋ० रा० सु०) ६।१-१०

भारीमाल रे तन मझै, व्रण वेदन भारी हो।
तिण कारण अधिका रह्या, फागण ताई विचारी हो॥
स्वामी गण शिणगारी हो, भिक्षु शिप महा सुखकारी हो॥
सरूप भीम अरु जीतनै, माता सहित तिवारी हो।
उपदेश देई समझाविया, दिक्षा ने किया त्यारी हो॥
स्वामी महा उपगारी हो॥
हेम आदि मुनि आविया, दर्शण री मन धारी हो।
हीरा अजवू हस्तू आदि दे, श्रमणी गण हितकारी हो॥
शिव पथ ने त्यारी हो॥
भूआ तीन भाया तणी, अजवू नाम उदारी हो।
चौमालिसे चारित्र लियो, दियो उपदेश उदारी हो।
वारु विवध प्रकारी हो॥

मुनि जीतमलजी आगे जाकर चतुर्थ आचार्य हुए। उनकी दीक्षा के लिए ऋषि राय-चन्दजी को भेजना एक अनोखे विचार और संयोग की बात थी।

हस्तु सती उपदेश दे, सरूपचन्द ने तिवारी हो।
दे तू जश भूवा भणी, मान वचन हितकारी हो॥
करले वधो उदारी हो॥
वयण सुणी सतीया तणा, पाया प्रेम अपारी हो।
ततक्षिण त्या वधो कियो, सजम नो सुविचारी हो॥
दोढ मास हदधारी हो॥
पोह सुदि नवमी रे दिने, भारीमाल गुणभारी हो।
सयम सरूपचन्द ने, मोछव थया अपारी हो॥
दिक्षा मोहन वाडी हो॥
दिक्षा देवा जीतने, भारीमाल सुविचारी हो।
मेहल्या ऋप रायचन्द ने, माह विद सातम धारी हो॥
स्वाम विचारणा भारी हो॥
सयम देई सूपीया, हेम भणी तिण वारी हो।
हेम भणाय पका किया, विद्या दान दातारी हो॥
ज्यारी वहु-जलहारी हो॥
फागुण विद ग्यारस दिने, भारीमाल सुविचारी हो।
मात सहित भीम जी भणी, दियो चरण उदारी हो॥
विहार कियो तिण वारी हो॥

(ख) जय (हे० न०) ४।२४, २६-२८, ३०

भारीमाल जयपुर कियो, तिणहिज वर्ष विचारी हो।
कारण सू अधिक रह्या, फागुण ताई तिवारी हो।
हुवो उपगार भारी हो॥
सरूप भीम ऋप जीत ने, माता साथे विचारी हो।
चारित्र दीधो चूप सू, दोढ मास मझारी हो।
स्वाम दिशा अति भारी हो॥
भारीमाल सजम दियो, सरूपचन्द ने धारी हो।
पोह सुदि नवमी रे दिन, दीक्षा मोहनवाडी हो।
मोछव हुवा अपारी हो॥
दीख्या देवा जीत नें, भारीमाल सुविचारी हो।
म्हेल्या ऋप रायचन्द ने, माह विद सातम धारी हो।
स्वामी गण शिणगारी हो॥
फागण विद ग्यारस दिने, मात सहित भीम धारी हो।
भारीमाल सजम दियो, मोछव थया अपारी हो।
ए चौथी ढाल उदारी हो॥

दीक्षा देवा जीत नें, भारीमाल सुविचारी हो।
मेहल्या ऋप रायचन्द ने, माह विद सातम धारी हो।
स्वाम विचारणा भारी हो॥
प्रथम शिप ऋपरायजी, स्व हथ वयण उचारी हो।
जीत भणी किधो सही, जोग मिल्यो ततसारी हो।
अकस्मात् अवधारी हो॥
पूर्ण पुन्य प्रवल हुवे, भाग्य दिसा हुवे भारी हो।
आपेइ जोग आयी मिलै, प्रत्यक्ष पेखो विचारी हो।
अतर आंख उघाडी हो॥
छठी ढाल विपै कह्यो. ऋपरायजी भारी हो।
दीक्षा दिधी जीत ने, वायो रूख विचारी हो।
आगल फल विस्तारी हो॥[1]

अर्द्धरात्रि में दीक्षा

आचार्य भारमलजी ने वर्द्धमानजी को लगभग अर्द्ध रात्रि के समय दीक्षा दी थी।[2] यह स० १८७० की घटना है। वे वड़े तपस्वी हुए। उन्होंने षट्मासी तप किया। उदक आगार से १०४ दिन की तपस्या सं० १८७७ मे की।

सूत्रों को हमेशा के लिए देती हूं

स० १८४८ का आचार्य भिक्षु का चातुर्मास सवाई माधोपुर मे हुआ था। तव गुजरीवाई नामक एक वहन ने उन्हे १३ सूत्र प्रातिहारिक रूप मे दिए थे। वाद मे स० १८७० मे आचार्य भारमलजी वहा पधारे। गुजरीवाई ने उनके दर्शन किए और कहा—मैंने स्वामीजी को १३ सूत्र प्रातिहारिक रूप मे दिए थे, उन्हे देखना चाहती हूं। आचार्य भारमलजी ने पुट्ठे खोल १३ सूत्रो की प्रतियां निकाल वाई के सामने रख दी। २२ वर्प के वाद इस तरह अपने सूत्रों की प्रतियो को सुरक्षित देखकर वह गद्गद् होकर वोली—"आज मैं इन सूत्रो को आपको हमेशा के लिए देती हूं। आप इन्हे ग्रहण करे।"[3]

वृद्धों का वहुमान

आचार्य होते हुए भी आप वृद्ध संतों के प्रति वड़ा विनय भाव रखते थे। वृद्ध सत वेणीरामजी सं० १८७० का चातुर्मास उज्जैन मे सम्पूर्ण कर वहां से विहार कर माधोपुर पधारे थे। आप कई साधुओं सहित सामने पधारे थे।[4]

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), ६।८, ११-१३
२. जय (शा० वि०) वार्तिक, पृ० ४३ :
"भारीमाल स्वामी, आसरै आधी रात्रि गए वर्द्धमानजी ने दीक्षा दीधी।"
३. परम्परा के वोल, वोल २४४
४. जय (शा० वि०) वार्तिक, पृ० ३७

१७०० पोषध

आपका स० १८७५ का चातुर्मास कांकरोली मे हुआ। इस चातुर्मास मे १७०० पोषध हुए।[1] वैराग्य की बहुत वृद्धि हुई। नाना प्रकार के व्रत-प्रत्याख्यान लोगों ने ग्रहण किए।[2]

राणाजी के दो पत्र

एक बार आचार्य भारमलजी उदयपुर मे विराज रहे थे। मेवाड़ मे उस समय महाराणा भीमसिहजी शासन कर रहे थे। किसी ने द्वेष वश आपके विरुद्ध राणाजी के कान भर दिये। विना सोचे-विचारे ही राणाजी ने उदयपुर छोडने का हुक्म निकाल दिया। आप उदयपुर से विहार कर अन्यत्र चले गये। बाद मे राणाजी का भ्रम दूर हुआ तब उनको अपनी भूल दिखाई दी। उन्हे बडा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने दो पत्र लिखकर आपको उदयपुर पधारने की विनती की। वे पत्र नीचे दिए जा रहे है।

पहला पत्र

पहले पत्र मे लिखा · किसी दुष्ट ने दुष्टता की उसकी ओर नही देखेंगे। मेरी तथा नगर की प्रजा की ओर देखेगे उन पर दया कर पधारने मे विलम्ब नही करेंगे। मूल पत्र इस प्रकार है

श्री एकलिगजी

श्री वाणनाथजी श्री नाथजी

स्वस्ति श्री साध श्री भारमलजी तेरेपथी साध थी राणा भीमसीघ री वीनती मालम व्है। करपा करे अठे पदारोगा। की दुष्टवे दुष्टणो कीदो जी सामुं न्ही देखेगा। मा सामु वा नगर मे प्रजा हे उणरी दया कर जेज न्ही करेगा। वती काही लखु ओर स्माचार स्हा स्वलाल का लख्या जाणोगा। संवत् १८७५ वर्षे अपाढ़ वदि ३ सुकरे।

प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक) क्रम २० मे लिखा है . द्वेषियों ने राणाजी को भडका दिया।[3] राणाजी ने आपके लिए उदयपुर मे न रहने का हुक्म निकाल दिया। आप वहां से विहार कर राजनगर मे आ गये। फिर काकरोली पधारे। वहा के लिए भी वैसा ही हुक्म निकालने लगे

---

१. हेम (भा० च०), ५।दो० ३ :

पिचतरे वर्ष पूजजी, सेहर काकरोली सोय।
पोसा सतरेसो रे आसरे, वैराग वधतो जोय ॥

शासन वार्ता (पृ० ३) के अनुसार आपके स १८७४ के श्रीजीद्वार चातुर्मास मे १५०० पोषध हुए थे। पर प्राचीन किसी भी कृति मे यह उल्लेख नही मिलता।

२. वही, १२।७

काकरोली पिचतरे कियो चौमासो, व्रत पचखाण वधाया जी।

३. महाराणा को यह कह कर भ्रम मे डाल दिया था कि जहां तेरापथी साधु रहते है, वहा वर्षा नही होती। अकाल पड जाता है। कारण इन्होने दया-दान को उठा दिया है। इसी पर महाराणा ने निष्कासन का हुक्म जारी किया था।

तव केसरजी ने चौडे आकर महाराणा से अर्ज की तव उन्हे खास रुक्का-परवाना देकर आचार्य भारमलजी के पास भेजा ।[1]

दूसरा पत्र

उक्त पत्र के वाद दूसरा पत्र राणाजी ने भेजा वह इस प्रकार है

॥ श्री एकलिगजी

श्री वाणनाथजी   श्री नाथजी

बेगा आवेगा
श्री श्री पं, पद्म
१५, सा, सारा श्री,
श्री र, १५ — श्री श्री,
सं, श्री १५, श्री श्री १५,
आवेगा ।

स्वस्ति श्री तेरापथी साध श्री भारमलजी मु महारी डडोत वचे। अप्र अठे पधारसी जमा पात्र सु । आगे ही रुको लीख्यो हो सो अत्रे वेगा पधारेगा । सवत १८७६ वर्षे पोस वदी ११ ।

प्रश्न है—उदयपुर से निष्कासन की उक्त घटना कव घटित हुई। इस सवध मे दो बाते विचारणीय है

१. उक्त प्रकीर्ण पत्र के अनुमार आचार्य भारमलजी स० १८७६ मे उदयपुर पधारे थे, यह घटना तव की है।

मुनि बुद्धमल्लजी ने शका की है कि जव महाराणा का पहला पत्र ही स० १८७५ आषाढ वदि ३ का है तव यह घटना सं० १८७६ की कैसे हो सकती है ? प्रकीर्ण पत्र का वर्ष सही नही है (तेरापथ का इतिहास, ख० १, पृ० १४५ पा० टि० १)।

मुनिश्री ने महाराणा के पत्रो का सवत् पचागानुसार माना है, जवकि वह श्रावणादि सवत् है। प्रकीर्ण पत्र का सवत् पचागानुसार प्रतीत होता है। श्रावण आदि सवत् १८७५ की चैत्र वदि १ एव आपाढ वदि ३ के बीच की घटना पचागानुसार स० १८७६ की ही होगी। प्रकीर्ण पत्र का वर्ष पचागानुसार न होने पर ही मुनिश्री की आपत्ति ठीक हो सकती है, अन्यथा नही।

२. मुनिश्री ने उदयपुर पदार्पण का समय १८७४ के मार्गशीर्ष से लेकर स० १८७५ के ज्येष्ठ तक का माना है। (तेरापथ का इतिहास, ख०१, पृ० १४५ पा० टि०१)। पर ऐसा

---

१. चक्र ऐसा घूमा कि उक्त हुक्म के वाद राज्य मे महामारी फैल गई। महाराणा के दामाद दिवगत हो गए और राजकुमार अस्वस्थ। केसरजी ने कुछ अर्से पहले ही श्रद्धा ली थी। दृढ श्रावक होते हुए भी चौडे नही आये थे। तेरापथियो के लिए महाराणा का हुक्म घोर अपमानजनक था। केसरजी अपने को प्रच्छन्न न रख सके। वे महाराणा के पास पहुचे और कहा—आप को यह क्या सूझी है? आपने ऐसे साधु-मतो को निष्कासन का हुक्म दिया है, तव राज्य पर ऐसी विपत्ति क्यो न आएगी ? जिन्होने आपको उक्त वात कही वे विद्वेषी है। अव राणाजी की आखे खुली और उपर्युक्त पहला रुक्का भेजा।

मानना भी सही नही है। घटना चातुर्मास काल की नही है अत. स० १८७५ श्रावण वदि १ से १८७५ कार्तिक सुदी १५ की अवधि की नही हो सकती। इस अवधि को वाद देने पर मुनिश्री के अनुसार घटना का काल इस प्रकार ठहरेगा :

१. सं० १८७४ मार्गशीर्ष से फाल्गुन सुदी १५ के बीच का। इसके अनुसार घटना पचागानुसार स० १८७४ की होगी।

२ स १८७४ चैत्र वदि १ से स १८७४ ज्येष्ठ तक का। इसके अनुसार घटना पंचांगानुसार स० १८७५ की होगी।

इन दोनो ही की सगति प्रकीर्ण पत्र के सवत् से नही बैठती।

३ स० १८७५ चैत्र वदि १ से ज्येष्ठ तक का। इसके अनुसार घटना पंचागानुसार स० १८७६ की होगी और उसकी संगति प्रकीर्ण पत्र के साथ बैठ पायेगी।

ऐसी स्थिति मे उक्त घटना आचार्य भारमलजी के सं० १८७५ के काकरोली चातुर्मास के वाद के शेषकाल मे—चैत्र वदि १ से लेकर ज्येष्ठ सुदी १५ के बीच के काल में घटित प्रतीत होती है।

महाराणा का पहला पत्र कहा पहुचा और दूसरा कहा, इस सबध मे मुनिश्री ने लिखा है (आचार्य भारमलजी का) स० १८७५ का चातुर्मास काकरोली और स० १८७६ का पुर मे था, अत स्पष्ट लगता है कि स० १८७५ के आषाढ मे लिखा हुआ पत्र काकरोली चातुर्मास से पूर्व राजनगर विराजे थे तब पहुचा और स १८७६ के पौष मे लिखा हुआ पत्र पुर चातुर्मास के पश्चात काकरोली आने पर पहुचा था। (तेरापथ का इतिहास, खड० १, पा० टि० पृ० १५३-५४)

मुनिश्री का यह मतव्य भी पत्रो के सवत् को पचागानुसार मान लेने पर आधारित है। पर वास्तव मे वह सवत् श्रावण आदि सवत् है न कि पचांग सवत्। अतः पहला पत्र या तो १८७५ मे ही आषाढ वदि ३ और आषाढ सुदी १५ के बीच प्राप्त हुआ अथवा स १८७६ के चातुर्मास मे।

मुनि हेमराजजी रचित आचार्य भारमल चरित्र (५।दो० ४,५) मे वर्णन है :

छिहतरे वर्ष पुर मझे, भारीमाल रिपराय।
आई हिन्दुपति नी विनती, करी घणी नरमाय॥
उदयापुर पधारिये, दुनिया साहमो देप।
दुष्ट सांहमो नही देखिये, क्रिपा करो विशेप॥

इससे निश्चित हो जाता है कि पहला पत्र पुर मे ही प्राप्त हुआ था, न कि सं० १८७५ के काकरोली चातुर्मास के पूर्व राजनगर मे।

स० १८७६ के पुर चातुर्मास के वाद विहार कर विचरते-विचरते आचार्य श्री काकरोली पधारे। स० १८७६ पौष वदि ११ का द्वितीय पत्र यही प्राप्त हुआ था। जय सुजश (१०।१०) मे उल्लेख ही है

काकरोली भारीमाल ने काइ, विनती अधिक विशाल।
परवानो निज हाथ सू, लिख्यो छिहतरे वर्ष निहाल॥

उदयपुर १३ साधु भेजे :

आचार्य भारमलजी ने महाराणा की विनती स्वीकार कर कांकरोली से मुनि हेमराजजी, रायचन्दजी आदि १३ साधुओं को उदयपुर भेजा। सतो के पहुचने पर महाराणा ने जुलूस से पधार कर दर्शन किए और बड़े हर्षित हुए। घटना का पूरा वर्णन इस प्रकार है :

तिण चोमास पहिला तिहा काई, वर्ष छियतरे जोय।
सेखे काल थइ जे दारता, कहु प्रसग इहा अवलोय ॥
भडारी श्रावक पको काई, केशरजी सुविचार।
तास प्रसंग थी समझिया, राणा भीमसिघ सुखकार ॥
काकरोली भारीमाल ने काई, विनती अधिक विशाल।
परवानो निज हाथ सू, लिख्यो छिहतरे वर्ष नहाल ॥
भारीमाल गणपति तदा काइ, निज वय वृद्ध विचार।
शक्ति थोडी तिण कारणे काई, पोते न कियो विहार ॥
मेल्या ऋषिराय हेम जय प्रमुख ही काई, तेरे सत श्रीकार।
उदियापुरे पधारीया काई, ऋषिराय सुजश सिणगार ॥
तिहा राणा भीमसिघजी काई, असवारी मे जोय।
हेम ऋषिराय ने देखने, हुलसित चित अति होय ॥
दोनू हाथा सू लटका करी कांई, वदणा करी तिहवार।
इहा भला पधार्‌या वलि, कहे शब्द श्रवण सुखकार ॥[1]

पूर्वोक्त प्रकीर्ण पत्र के अनुसार महाराणा ने सतो के इस प्रवास मे ११ बार दर्शन किए।

सत उदयपुर मे एक महीने विराजे। बडा उपकार हुआ। वहा से विहार कर गोगुदा, रावलिया होते हुए पुन. आचार्य श्री की सेवा मे उपस्थित हुए।[2]

महाराणा वडे ही श्रद्धालु हो गए। एक बार किसी ने महाराणा को कहा—मैंने देखा है, आज अकेली तेरापथी साध्वी गाव के वाहर जा रही थी। महाराणा बोले—"और कोई होगी। तेरापथी साध्वी नही हो सकती।" वे तेरापथी साधु-साध्वियो की आचार-निष्ठा के विषय मे ऐसे आस्थावान हो गये थे।

तुम्हे हेमजी से वात करने का त्याग है

आचार्य भारमलजी ने स० १८७३ मे मुनि सरूपचदजी का सिघाडा किया[3] तव वे वोले "मेरा एक निवेदन सुनने की कृपा करे। मेरा मन मुनि हेमराजजी की सेवा मे रहने का है।" यह वात सुनकर आचार्य भारमलजी वोले : "तुम्हे हेम से बोलने का त्याग है।" मुनि हेमराजजी को भी मुनि सरूपचदजी से वोलने का त्याग करा दिया।

---

१ मघवा (ज० सु०), १०।८-१४
२ हेम (भा० च०) ५।६-६
३. (क) जय (ऋ० रा० सु०), ७।दो० २
(ख) जय (हे० न०), ५।४५
(ग) जय (स० वि०), ३।१

उनका कोई साधु दर्शन न करे

मुनि सरूपचन्दजी का चौमासा पुर का फरमाया था। चातुर्मास में अच्छा उपकार हुआ। चातुर्मास के बाद विहार कर गंगापुर आए। वहां से विहार किया, तब जीवोजी भी कटा, अगरखी उतारकर उन्हें पहुंचाने गए। लोग वापस लौट आए। केवल जीवोजी साथ रहे। उनकी अवस्था १३ वर्ष के लगभग थी। वन में मुनि सरूपचन्दजी को निवेदन करने लगे—"मुझे दीक्षा दें। मेरे परिणाम बहुत तीव्र हैं।" मुनि सरूपचन्दजी ने कहा . "गंगापुर जाकर तुम्हारे भाई-भौजाई को पूछकर दीक्षा देंगे।" जीवोजी बोले "अभी मेरे परिणाम तीव्र हैं। बाद का क्या पता ?" जीवोजी के बड़े भाई दीपजी ने एक पत्र लिखकर दिया था जिसमें लिखा था : "छ : महीने के बाद मेरा भाई जीवोजी दीक्षा ले तो मेरी आज्ञा है।" यह पत्र आचार्यश्री के पास था। मुनिश्री को यह याद आने पर उन्होंने जीवोजी को वहीं वन में दीक्षा दे दी। यह सं० १८७७ पौष वदि ६ की बात है। मुनि सरूपचन्दजी काकरोली पधारे। आचार्यश्री के दर्शन कर सारी बात कही। आचार्यश्री बड़े प्रसन्न हुए। साधु भेजकर दीपोजी के घर कहला दिया कि जीवोजी ने दीक्षा ले ली है। दीपजी दूसरे गांव गए हुए थे। लौटने पर पत्नी से खबर मिली, तब आग-बबूला हो गए। आमेट तथा लावा में बड़ा अवर्णवाद किया। लावा के लोग बड़े नाराज हुए।[1]

मुनि मोजीरामजी तीन संतों से राजनगर आचार्यश्री का दर्शन करने आ रहे थे। रास्ते में लावा में कुछ एक दिन ठहर गए। आचार्यश्री ने कहा · "लावा के भाई नाराज थे। मोजीराम उस विग्रह में रहा। यहां दर्शन करने आये तब उसके कोई दर्शन मत करना।" मुनि मोजीरामजी पहुंचे। बाजार में अनेक साधुओं को देखा पर कोई भी हाथ ऊंचा नहीं उठाता था। आकर आचार्यश्री की वन्दना की। इस तरह अभिमान भंग कर आचार्यश्री ने उन्हें उपालम्भ दिया—"मेरी मर्जी बिना वहां कैसे रहे ?" मोजीरामजी शासन-प्रेमी थे। दृढ़ रहे। विचलित नहीं हुए। प्रायश्चित दिया वह लिया। कीर्ति बढ़ी।[2]

> तीन ठाणे मोजीरामजी, विण मुरजी ल्हावा में रहिवाया हो।
> राजनगर आया पूज आगलै, सुण साम संताने कहिवाया हो लाल ॥
> कोइ वदणा आने कीजो मती, हिवे मोजीरामजी आया हो।
> देखे सहु साध साधवी, पिण किण नहीं सीस नमाया हो लाल ॥

---

१. सरूप नवरसो, ५।दो० ४-६

२. जय (शा० वि०) वार्तिक, पृ० ४७-४८

"हिवै मोजीरामजी स्वामी ठाणा ३ सु राजनगर भारीमाल का दर्शन करवा आवता रास्ते में लावै आया। तिहां कितायेक दिन रह्या। सो भारीमाल बोल्या उठै रा भाया बेराजी हुंता। सो विग्रह चाल्या में मोजीराम रह्यो। तिण सू वो अठै दर्शण करवा ने आवै जद्र कोई साधु वदना करज्यो मती। इम कह्यो। पछै मोजीरामजी स्वामी आया बाजार में घणा साधु देखै। पिण कोई ऊंचो हाथ करै नहीं पछै आय ने भारीमाल ने वदना करी। इम मांन भंग करीनें घणो ओलमो दियो—थे म्हारी मरजी विना वठै क्यू रह्या। इम कही प्रायछित दियो। पिण मोजीरामजी स्वामी री शासन उपर दृष्टि तीखी घणी, तिण सु मोरचै सेठा घणा रह्या। चलचित्त हुवा नहीं। अपूठा त्यांरा गुण दीप्या।"

पछै आय पूज पगां लागीया, भारीमाल हुक्म फरमाया हो।
जब वंदणा कीधी साध साधव्यां, निषेदी तसु दण्ड दिराया हो लाल ॥'

आचार्य भारमलजी वडे अनुशासन-प्रिय थे। भिक्षु के कठोर अनुशासन को उन्होने जिस हर्ष के साथ वहन किया, वह इस दिशा मे एक वडा आदर्श है। सघ के हित की दृष्टि से आचार्यो मे इस दृष्टि का होना कि साधु-सन अनुशासन-प्रिय हो एक वहुत वडा महत्त्व रखता है। भारमलजी स्वामी जहा एक महान् विनयी और आज्ञाकारी साधु थे वहा आचार्य के रूप मे वे दृढ अनुशासक भी थे। ऊपर की घटना इस वात पर विशेष प्रकाश डालती है।

विरोधी दीक्षित हुए

वाद मे दीपजी साधुओं के पास काकरोली आये। साधुओ ने उन्हे आज्ञा-पत्र की याद दिलाई। उन्हे समझाया। वे शात हुए। साधुओ का उपदेश सुन वैराग्य उत्पन्न हुआ। उनकी पत्नी भी साथ थी। उसे भी वैराग्य उत्पन्न हुआ। दोनो ने शीलव्रत अगीकार किया और वोले "हम लोग दीक्षा लेगे।" वडी भक्ति और विनयपूर्वक दर्शन कर गगापुर आये। आचार्य भारमलजी ने उन्हे दीक्षा देने स्वरूपचदजी स्वामी को गगापुर भेजा। उन्होने दोनो को दीक्षा दी। संवत् १८७७ जेठ सुदी १३ को दीक्षा-समारोह हुआ। वाद मे आचार्य भारमलजी के दर्शन किये। वडे प्रसन्न हुए।

ज्येष्ठ किया

जीवोजी ने पौप मे दीक्षा ली थी। सतीदासजी ने वसन्त पचमी के दिन। मुनि सतीदासजी को आठवे दिन वड़ी दीक्षा दे उन्हे ज्येष्ठ किया। दीपजी को ज्येष्ठ करने के लिए जीवोजी को छ, महीने से वडी दीक्षा दी। दीपजी वडे तपस्वी हुए।[२]

उदयपुर में मुनि हेमराजजी का चातुर्मास

स० १८७७ का मुनि हेमराजजी का चातुर्मास आचार्य भारमलजी ने उदयपुर कराया। इससे वहा वड़ा उपकार हुआ।[३]

रात्रि व्याख्यान के समय द्वेपियो के कथन मे आकर एक ब्राह्मण लडका छिपकर कंकर फेकने लगा। केशरजी कोठारी ने यह वात महाराणा के कान मे डाल दी। गुप्तचर से पकडवाया। महाराणा ने उसे तोप के मुह चढा देने का हुक्म दे दिया। शहर मे तहलका मच गया। लडके की वूढी मा लडके को माफ करने के लिए प्रार्थना करने लगी। द्वेपी लोग भी उसे छुडाने

---

१. जय (परषदा मे निपेधण री ढाल) गा० ३९-४१
२. जय (शा० वि०) वार्तिक पृ० ४७-४८
३. जय (हे० न०) ५।४६-४७

उदियापुर धर्म उजासोरें, सततरे कियो चौमासो रे।
हिन्दुपति हुवो अधिक हुलासो ॥
भीमसिंह भक्ति हद कीधी रे, नमस्कार वदणा प्रसिद्धि रे।
तिण सू हुई घणी धर्म वृद्धि ॥

के लिए चेष्टा करने लगे, पर महाराणा टस से मस न हुए। कहते रहे—मतों का अपराधी है, वह भगवान का अपराधी है, उसे ऐसा ही दण्ड मिलना चाहिए। सारी बात मुनि हेमराजजी को, मालूम हुई। ऋषि रायचन्दजी ने केशरजी से कहा · "हम साधुओं के निमित्त ऐसा काम होना उचित नही।" केशरजी महाराणा से मिले। उन्हे निवेदन किया कि आपने जो यह हुक्म दिया है कि उपद्रवकारी लडके को तोप के मुह चढा दिया जाए, उससे साधु नाराज है। उनकी भावना है कि उनके निमित्त ऐसा नही होना चाहिए। महाराणा बोले : मेरी भी ऐसा करने की भावना नही है, पर आगे ऐसा न हो, उसके लिए भय पैदा करने के लिए ऐसा हुक्म दिया है। बाद मे सम्बन्धित लोगो को चेतावनी देते हुए महाराणा ने लडके को माफ किया। उससे कहा—तुम्हे तोप के मुह ही उडवाता, पर सत इससे अप्रसन्न है, अत तुम्हे छोड़ता हूं। आगे ऐसा किया, तो एकलिंगजी की आण लेकर कहता हूं—माफ नही करूगा।

उन्हे त्याग द

स० १८७७ की बात है। आमेट मे कई श्रावक शकाग्रस्त थे। वे श्रावक-श्राविकाओं के समक्ष सतो का अवर्णवाद बोलते थे। यह बात आचार्य भारमलजी ने केलवा में सुनी और मुनि हेमराजजी से बोले "अन्य अनेक गावो के लोग दर्शनार्थ आ गये लेकिन आमेट वाले नही आये ?" यह उन्होने बार-बार पूछा। मुनि हेमराजजी ने कहा—"आप आमेट वालों के लिए बार-बार क्यो पूछते है ?" भारमलजी बोले—"वहा दो चार शकाग्रस्त व्यक्ति है, उनको पृथक् कर दे और कह दे कि आप हमारे श्रावक मत कहलाइये। अलग करने पर उनकी बात लोग नही मानेगे। जिस प्रकार साधु दीपा को निकाल बाहर किया गया था उसी प्रकार इन्हे भी त्याग दे।"[1] दुमनां चाकर शत्रु के समान होता है—इस लोक अनुश्रुति के प्रकाश मे उन्होने उन्हे छोड़ने का विचार किया जिससे कि वे लोगो को शकाशील न बना सके।

वह कौन आचार्य हो गया ?

स० १८७६ के शेषकाल की घटना है। मुनि हेमराजजी ने आचार्य भारमलजी के केलवे मे दर्शन किये और कहा "थक गया।" आचार्य भारमलजी ने कहा . "जैतपुरे क्यों नही ठहर गये ?" तब बोले . "जीतमलजी का मन न होने से नही रहे।" तब आचार्य भारमलजी बोले : "वह कौन आचार्य हो गया है ? ऐसा कह देना था कि जा, तेरी बात मानने का भाव नही।"[2]

इसमें क्या गुण है ?

आचार्य भारमलजी छोटी-छोटी लडकियो को तात्त्विक बोल सिखाते, चर्चा पूछते, विशेष बात करते, गुरु धारणा कराते तब किसी ने पूछा . "आप छोटी बच्चियो से विशेष बात करते है, इसमे क्या गुण है ?" आचार्य भारमलजी ने उत्तर दिया—"ये बच्चिया सभव है, बड़ी होने पर श्राविकाएं हो। ससुराल, पीहर मे अनेक लोगों को समझा सकेगी। बेटा, बेटी, बेटो की

---

१. हेम दृष्टान्त, दृ० ३०

२. प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक) क्र० १

वहुएं, दोहितो, दोहितियों, पौत्र, पौत्रियो अनेको के समझने की सभावना है। इसी कारण इनसे भी वातचीत करते है।"[1]

आपकी दृष्टि ऐसी दूरदर्शी थी। आपके हृदय मे भावी जनोपकार का खयाल था।

साधां री साध जाणे

आचार्य भारमलजी ने जव ऋषिरायजी को युवराज पदवी दी, तव एक हलचल मच गई। उस समय के दो संस्मरण मूल राजस्थानी भाषा मे नीचे दिए जा रहे है

१. हसराजजी सचीती चीतोड का खेतसी स्वामी ने पूछ्यो भारमल जी स्वामी छा। कह्यो युगराज पदवी खेतसीजी स्वामी ने सुणता छा अनै दीधी रायचदजी नै आ किण तरै। जद भारीमालजी स्वामी फुरमायो थारैं गृहस्थीया रे पचायती सू काई काम। साधारी साध जाणै। ए तो हेमजी सहरा वाकी थे ग्रहस्थी तो इसा हो भाता घलाय देवो। इण वात मे सामल तो घणा गामारा छा पिण हसराजजी ने अगवाणी करने मालम कराइ।

२. गोगुदा को कागद आयो। तिणमे २५ भायां का नाम। तिण मे ऋपराय ने लिख्यो—आप मारा गांम रा छो तिण सू लिख्यो। आपने आ न चाहीजै। हेमराजजी स्वामी ने दिवाइ चाहीजै। इसा ग्रहस्थी भोला सो वेदा ग. पडे।

भारीमालजी भोला जाण्या[2]

अव तो परिषद् में ही उपालम्भ दूगा

एक वार आचार्य भारमलजी ने ईडवा मे मुनि रायचन्दजी को परिषद् मे उपालम्भ दिया। मुनि रायचन्दजी ने निवेदन किया—आप मुझे एकात मे वात वता दिया करे। आचार्य भारमलजी ने मुनि खेतसीजी को वुलाकर कहा—देखो, रायचन्द मुझे उपालम्भ एकान्त मे देने का कह रहा है। वह यह कैसे कह रहा है? अव तो परिपद् मे ही उपालम्भ देने का भाव है। यह सुनकर मुनि रायचन्दजी ने अति विनम्रतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार की।

जयाचार्य इस पर टिप्पण करते है—"हद सीष धार पद पाया है।" आचार्य के ऐसे कठोर अनुशासन को प्रसन्न मन से शिरोधार्य करने वाला साधु ही आचार्य-पद की प्राप्ति मे सक्षम होता है।

> भारीमाल ईडवा मज्झै परपदा निपेधा सवाया हो लाल।
> ते मुनिवर कहे सामने, मोने छाने कहौ ऋषिराया हो लाल॥
> ताम साम भारीमालजी, संतजुगी मुनि ने वुलाया हो लाल।
> सुणो खेतसीजी अे इम कहै, मोने छाने कहो ऋपिराया हो लाल॥
> छाने कहौ सू किण विधैं, हिवैं तो चौडो कहिवो सवाया हो लाल।
> इम सुणने ऋपिरायजी, हद सीप धार पद पाया हो लाल॥[3]

---

१. हेम दृष्टान्त, दृ० ३५.
२. प्रकीर्णपत्र (घटनात्मक) क्र० ८
३. जय (परषदा मे निषेधण री ढाल) गा० २१-२३

पुण्य होगा तो वापिस आ जाएगा

आगरिया वहा के ठाकुर के हाथ से निकल गया। तब भारमलजी स्वामी बोले : "पुण्य होगा तो वापिस आ जाएगा।" कुछ दिन बाद कब्जा हो गया।[1]

पटु लिपिक

बाल्यावस्था मे भी साधु भारमलजी लेखन-कार्य किया करते थे।[2] आपके अक्षर स्पष्ट और सुन्दर थे। आपने अपने हाथ से दस पोथी लिखी[3], जिनमे ५ लाख गाथाएं है। आचार्य भिक्षु की रचनाओ की प्रतिलिपियो के अतिरिक्त आगम-ग्रंथ, श्रावक शोभजी कृत ढालें तथा अन्य कृतियां भी आपके अक्षरो की उपलब्ध है।

व्यक्तित्व

आपका स्वभाव बडा सरल था। "भारीमाल सरल भद्र भारी," "भारीमाल सरल सुखदाया" जैसी उक्तियाँ आपके ऋजु स्वभाव का प्रकृत चित्रण करती है। अहंकार जैसी बात आपसे सर्वथा दूर थी। आपकी सहज, निर्मल, कोमल, ऋजु प्रकृति आपके व्यक्तित्व मे एक अद्-भुत आकर्षण उत्पन्न किए हुए थी। जयाचार्य लिखते है :

भिक्षु पट भारीमालजी मुनिन्द मोरा, सरल भद्र सुखदाय हो।
निरहकार चित निरमलो मुनिन्द मोरा, नही कोई नी परवाह हो॥
सखर गुणाकर सोभता मुनिन्द मोरा, भारीमाल ऋषराय हो॥[4]

आप बाल-ब्रह्मचारी थे।[5] आपका शील बड़ा स्वच्छ था। उसकी रक्षा नवबाड़ पूर्वक करते थे।

शिष्य के रूप मे आप बड़े विनयशील थे। आप अनुशासन को मानने वाले और गुरु की शिक्षा को तत्क्षण धारण करने वाले थे। आप गुरु से प्राप्त सद् शिक्षा के आधार पर अपनी आत्मा को दिनोदिन वश करते हुए अग्रसर होते जाते थे। आचार्य भिक्षु के समीप आप वैसे ही

---

१. प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक) क्र० ४
२. हेम (भि० दृ०) दृ० २७७
३. शासन सुषमा ९५

दश पोथी अनुमान, लेखन द्वितीयाचार्य वर।
रचना जय सविधान, तीन लाख ऊपर मिलै॥९५॥

४. जय (ऋ० रा० सु०) ५।१
५. (क) हेम (भा० च०) ७।४ :

थेट रा बाल ब्रह्मचार, नार सहु परहरी जी।
जिण सासण रा सिणगार, आचारज पदवी परी जी॥

(ख) वही ८।१२ :

बाल ब्रह्मचारी थेट रा, भारी संजम रो जोर।
सुध परिणामां सांमजी, काटे क्रमे कठोर॥

प्रतीत होते जैसे भगवान महावीर के समीप गणधर गौतम।

आचार्य के रूप मे आप ३६ गुणो से युक्त थे।

आप सम्यक्त्व और सयम मे वडे दृढ़ थे। डिगाने पर भी नही डिगते थे। आप सयम का वडी निर्मलता के साथ पालन करते थे।

आप वड़े गहरे, गभीर और ज्ञानी संत थे। सूत्र-सिद्धांतो के रहस्यों के पारगत थे। स्व-मत पर-मत का आपको अच्छा ज्ञान था। आप लाखो गाथाओं के ज्ञाता थे। हजारो गाथाए आपके कठस्थ थी।[1] आप ज्ञान-पुंज थे।

आपका मनोयोग वडा स्थिर था। मन की चचलता को जैसे आपने पूर्ण रूप से पराजित कर लिया हो। आप जितेन्द्रिय पुरुष थे।

आप वचन के वडे दृढ़ थे। फिरते नही थे। वड़े सत्यवादी थे।

आप स्वभाव से ही वडे तपप्रिय थे। कर्मरूपी सेना को दूर से ही भगाने मे वडे शूरवीर थे। आप तपरूपी तलवार और क्षमारूपी ढाल से सुशोभित थे।

सद्‌वोध और शिक्षा देने की आपकी क्षमता अद्‌भुत और कलात्मक थी। आप जन्मजात लोकगुरु थे। चारो ही तीर्थ आपकी शिक्षाओ से वोधित थे। आप सरलता और सौम्यता की प्रतिमूर्ति होते हुए भी समर्थ चर्चावादी थे। जव कोई अड जाता, तो आप सूत्र-सिद्धान्त के आधार पर उससे दृढतापूर्वक चर्चा कर उसे परास्त करते और ज्ञान का सद्‌वोध देते।

आपके सम्पर्क मे अनेक वक्र-बुद्धि व्यक्ति आए। आपने उनकी शकाओ का निराकरण कर उन्हे दृढधर्मी वनाया और उनका नर्कगति मे जाने का द्वार अवरुद्ध किया। सूत्र न्याय से आपने शुद्ध सम्यक्त्व की लौ जलाए रखी और उसे मद नही होने दिया।

आपकी व्याख्यान-शैली वडी कलात्मक थी। सूत्रो की व्याख्या प्रभावोत्पादक थी। आपकी कण्ठ-ध्वनि घनघोर वादलो की तरह गुजारव करती। वाणी मे सुधा-रस-सी मधुरता थी। घोप वड़ा गभीर था। उपदेश सारगर्भित और भेदक होता। वाणी श्रोता के हृदय को मोहित कर लेती।[2] कहा जाता है आपकी कठ-ध्वनि लगभग एक कोस तक सुनाई देती थी।

---

१. हेम (भा० च०) ७।३ .
   ते तो लाषा ग्रन्थ रा जाण, हजारा मुहढे कर्‌याजी।
   ज्यारी मिठी इम्रत वाण, ग्यान पिजरे भर्‌या जी॥

२. (क) हेम (भि० च०) ५।११ .
   वखाण वाणी मे हो भारमलजी वदीत।

   (ख) जय (भि० ज० र०) ५३।१३
   वखाण वाणी मे हो आगैवाण विशाल।

   (ग) हेम (भा० च०) १२।९
   वखाण वाणी जाणे अवर गाजे, पेम करी अति प्यारो जी।

   (घ) जय (भि० ज० र०) २७ दो० १ :
   भारीमाल सोभै भला, पूज भीपनजी पास।
   वारू कला वपाण की, घन जिम शव्द गुजास॥

आप जनपदों मे विचरते रहते। लोगो को धर्मोपदेश देकर उनका उद्धार करते। आप अज्ञान-तिमिर को दूर करने मे भास्कर के समान थे।

सौम्यता मे आप चन्द्रमा के सदृश शीतल थे और तप-तेज मे सूर्य की तरह ज्योतिर्मय। आप स्फटिक की तरह निर्मल थे। आपने अपनी आत्मा को वडा उज्ज्वल किया था।

आप मेरु की तरह धैर्यवान और समुद्र की तरह गभीर थे। सयम-धुरा को वहन करने मे आप वृपभ की तरह दृढ थे।

आचार्य भारमलजी के व्यक्तित्व मे शात आकर्पण था। आपकी मुख-मुद्रा वडी सौम्य और सुन्दर थी। चेहरा हसमुख था। जो एक वार दर्शन कर लेता, वह भूलता नही था।[1]

निर्मल वुद्धि, अगाध श्रद्धा, शात पाण्डित्य, धर्म मे मेरु की-सी दृढता, कप्ट सहन करने की क्षमता, क्षाति, दाति और सहज मृदुता—ये आपके व्यक्तित्व के महान् गुण थे।

आचार्य भिक्षु ने आपको "भार लायक" कहा। वास्तव मे ही आप जिन-शासन के भार को वहन करने मे वडे वलधारी हुए।

आचार्य भिक्षु तेज और तप के जाज्वल्यमान रवि थे। आप शान्ति और क्षमा के सौम्य शशि थे। आचार्य भिक्षु एक महान् आध्यात्मिक यज्ञ के अधिष्ठाता थे और आप उसके सदा जाग्रत पुरोहित। भिक्षु एक दिव्य मन्दिर थे और आप उसके प्रथम स्वर्ण-कलश।

अपने शासन-काल मे आपने जिन-शासन को वडा उद्दीप्त किया।

मुनि हेमराजजी ने आपके व्यक्तित्व को निम्न शब्दो मे चित्रित किया है.

(१)

नीका थया वाल ब्रह्मचारी, नव वाड सहित शीलव्रत धारी।
पाच महाव्रत पूरण जाणी, भारीमाल भजो भवियण प्राणी॥
छत्तीस गुणा सहित आचारज वाजे, वखाण देता ज्यू अम्वर गाजे।
आछा सूत्र वाचे अमृत वाणी, भारीमाल भजो भवियण प्राणी॥
गहिर गंभीर गिरवा ग्यानी, सतगुरु नी सीख साची मानी।
त्या आतम दिन-दिन वस आणी, भारीमाल भजो भवियण प्राणी॥
चित मे घणी त्यारे चतुराई, सूरवीर वचन फिरता नाहि।
गुरु भगता उजम आणी, भारीमाल भजो उजम आणी॥
व्रत अव्रत रा काढ्या खाता, वहु जीव राख्या नरकां जाता।
त्या दान दया न्याय हद छाणी, भारीमाल भजो उजम आणी॥
सुध सरधा जिनवर भाखी, सूत्र नाय करे सेठी राखी।
त्या रे देख रह्या केवल नाणी, भारीमाल भजो उजम आणी॥

(ङ) वही, २७।१
भारीमाल शिष्य अति भारी
अमृत वाण सुधासी अनोपम, हद देसना महा हितकारी।

१. हेम (भा० च०) १२।१० :
भारीमाल रिप भेंट्या त्याने, याद घणां हिज आवे जी।
सूरत मोहे मन ने मोहे, ग्यान करी गुण पावे जी॥

वडा-वडा जीव आया वंका, त्या री मेट दीधी मन री संका।
ज्या लीधो मारग निरवाणी, भारीमाल भजो उजम आणी॥
गावा नगरा पुर पाटण फिरता, सुध करणी करे पातक हरता।
निरदोषण लेता अन्न पाणी, भारीमाल भजो उजम आणी॥
मुरधर मेवाड हाडोती ढूढार विचर्‌या, भवजीव उधार्‌या कारज सार्‌या।
एहवा उत्तम पुरुप प्रगट्या आणी, भारीमाल भजो उजम आणी॥[1]

(२)

जनपद देश विचरता हे, भविजन तारण फिरता हे।
काइ पाप पडल अघ हरता हे, भविजन तारण फिरता हे॥
ग्यान ध्यान मन धरता हे, पाखड वहु विध अडता हे।
पूज चरचा सू वध करता हे, भविजन तारण फिरता हे॥
ऊधी चर्चा आणे हे, पीपल वधी ज्यू ताणे हे।
पूज सूतर न्याय पिछाणे हे, भविजन तारण फिरता हे॥
पूज सूत्र न्याय करी पूठे हे, आगम न्याय अखूटे हे।
काइ पाखड ना पग छूटे हे, भविजन तारण फिरता हे॥
आचार अखंडता पाले हे, मोह कर्म मद गाले हे।
काइ जिन मारग उजवाले हे, भविजन तारण फिरता हे॥
दान दया अर्थ उडा हे, ते न्याय न जाणे मूढा हे।
पूज ज्ञान वतावे गूढा हे, भविजन तारण फिरता हे॥
धर्म आज्ञा मे धरता हे, जाडा पातिक झरता हे।
सामी मुगत नगर ने खरता हे, भवि जन तारण फिरता हे॥
विरत मे धर्म वताया हे, इवरत पाप उडाया हे।
काई भव जीवा मन भाया हे, भविजन तारण फिरता हे॥
कई अग्यानी ऊधा हे, पाये पथ विलुधा हे।
सामी अर्थ वतावे सूधा हे, भविजन तारण फिरता हे॥
खिम्या कर-कर खिमता हे, पाचू इन्द्रयां दमता हे।
ज्यू-ज्यू जिण मारग जमता हे, भविजन तारण फिरता हे॥[2]

(३)

ज्ञानी पुरुष छे गुण निला रे लाल, भारीमाल वडभाग।
सजम पाले निरमलो रे लाल, साधे सिवपुर भाग॥
भीखू सिप भारीमाल वड वीर॥
पाचे सुमते सुमता सदा रे लाल, तीनू गुप्ति तहतीक।
पाच आचारे परवडा रे लाल, धारी सतगुरु सीख॥

१. हेम (भा० च०) २।२-५, ८-१२
२. हेम (भा० च०) ३।२-३, ५-१२

चंद ज्यूं सीतल गुणमणा रे लाल, [illegible] ।
वाणी मीठी खीर ज्यूं रे लाल, [illegible] ॥
फटिक रतन ज्यूं निरमला रे लाल, [illegible] ।
आतम कीधी उजली रे लाल, [illegible] ॥
भीखू देख्या सरधं गणा रे लाल, [illegible] ।
मतवादी घणा सूरमा रे लाल, [illegible] ॥
संजम में मेढा घणा रे लाल, [illegible] ।
देव डिगाया ही डिगे नहीं रे लाल, [illegible] ॥
सूत्र सिद्धान्त रा जाण छै रे लाल, [illegible] ।
पाखंड मत [illegible] रे लाल, [illegible] ॥
कर्म कठिन दल डारे रे लाल, [illegible] ।
तोड़ना तप तरवार सूं रे लाल, [illegible] ॥
भीखू गुरु समीपे भला रे लाल, [illegible] ।
समझावे नर नार ने रे लाल, [illegible] ॥
इण आरे [illegible] मुनि रे लाल, [illegible] ।
चौथे आरे पिण विरला हुसी रे लाल, साधू [illegible] ॥
मेरु ज्यूं धीरा घणा रे लाल, समुद्र जिम [illegible] ।
धोरी ज्यूं संजम धुरा रे लाल, [illegible] ॥
अरिहंत देव री आगन्या रे लाल, [illegible] ।
भीखू सिष भारीमालजी रे लाल, नमो नमो [illegible] ॥[1]

जयाचार्य ने आपके गुण-कीर्तन में लिखा है :

(८)

सेनापति सेना माहि शोभतो रे, तीन खंड में वासुदेव जाण ।
चक्रवर्ती छ खंड माहि शोभतो रे, ज्यूं साधां माहे वखाण रे ॥
जिम चन्द्र शोभै देवता मही रे, तिम साधां माहे शोभै स्वाम ।
एहवा उत्तम पुरुष भरत क्षेत्र में रे, त्यांरो लीजै नित प्रति नाम रे ॥
जिम सूर्य उगै थकी रे, भरतक्षेत्र में करै उद्योत रे ।
उगावद थकी जाणज्यो रे, करै बीजा क्षेत्र माहे जोत रे ॥
इम सूर्यनी ऊपमा रे, स्वामी भारीमालजी ने जाण ।
शील आचार बुद्धि करी रे, जीवादिक नवतत्त्व वखाण रे ॥
काती सुद पूनम दिनै रे, शोभे चन्द्रमा नाम रे ।
जिम साधा माहे दीपता रे, भारमलजी स्वाम ॥
पाच महाव्रत पालता रे, पालै पाच आचार ।
टालै च्यार कषाय रे, पालै शील तणी नव वाड ॥[2]

---

१. हेम (भा० च०) ४ । १-१२
२. जय (सत गुणमाला)

(५)

पूज्य भारीमाल भजो भवि प्रेम सू, सरल घणा सुवनीत हो भविक जन।
गुरु भिक्षु आगे गणधर जिसा, पूरण पाली प्रीत हो ॥ भ० ॥
निर अहकारी मुनि हिये निर्मला, शील सिणगार सुगध।
सत्यवादी मुनि वचने शूरमा, चित्त जिम शीतल चद ॥
समता दमता खमता सागरू, वलि वाल ब्रह्मचार।
सूरत मुद्रा मुदर सोभती, पेखत पामै प्यार ॥
असल आचारी उपगारी मुनि, अमृत वाण अमाम।
जगत उदासी ऋषि जूना जती, नमण करू शिर नाम ॥
शील आचार अखड आराधिया, सुगुरु समाधि उवज्झाय।
गोत्र तीर्थकर वधै तेह नै, एहवा गुण भारीमाल रे माय ॥
सवत अठारै वर्ष एकाणूवे, वैसाख सुदि एकम सार हो।
पूज्य भारीमाल तणा गुण गाविया, रामगढ शहर मझार हो ॥[1]

(६)

भिक्षू पट भारीमाल ए, ज्या मे असल साधु नी चाल ए।
ज्या किया घणा जीवा नै निहाल ए, भजलै तू पूज्य भारीमाल ए ॥
सोम प्रकृति चित शात ए, सुवनीत घणा जशवत ए।
वचन दृढ विरुद विशाल ए ॥
उत्तराध्ययन रा छत्तीस अध्येन ए, उभा थका गुणै सम श्रेण ए।
वार अनेक दयाल ए ॥
अवसर ना जाण आप ए, याद आयां मिटै सताप ए।
तन मन होवै खुसाल ए।
अठाणूवे वर्ष अठार ए, गाया भारीमाल गुणधार ए।
मुज उपगारी सभाल ए ॥[2]

श्री सोहनलालजी सेठिया ने आपके गुणो को एक दोहे मे बडी निपुणता से व्यक्त किया है

परम भक्त भिक्षु तणा, निर्भय दिल सुविशाल।
वक्ता लेखन मे निपुण, गणपति भारीमाल ॥[3]

---

१. जय (सत गुणमाला) ढा० ५
२. वही, ढा० ६
३. शासन-सुषमा १६

८. मुनि लिखमीचन्दजी

आचार्य रुघनाथजी से पृथक् होने के बाद आचार्य भिक्षु के साथ [illegible]
नई दीक्षा लेने का विचार किया था, उनमें आप भी थे।[1] [illegible] कि आप
आचार्य रुघनाथजी के टोले के नहीं थे, पर आचार्य [illegible]
के यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अधिक [illegible] कि आप आचार्य [illegible]
के टोले के थे। आचार्य भिक्षु ने श्रेष्ठ [illegible] सं० १८१७ की आषाढ़ पूर्णिमा के
दिन नई दीक्षा ग्रहण की आज्ञा थी। इन नयी दीक्षा लेने [illegible] थे।[2]

सं० १८१७ के चातुर्मास के बाद तेरह [illegible] एकत्रित हुए[3] और [illegible] श्रद्धा और
आचार के बोलों (मुद्दों) की परस्पर चर्चा की। बोलों का मेल न बैठने से [illegible] भिक्षु
ने साथ नहीं रखा। वे उसी समय पृथक् हो गये। अवशिष्ट आठ साधुओं की श्रद्धा और आचार
विषयक बातें परस्पर मिल गयीं। श्रद्धाचार की बातों के [illegible] इन

---

१. (क) जय (भि० ज० र०) ढा० १०, २-६

(ख) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु संतमाला ६८-६९ :

आप विचरया तिहां थी स्वामीजी रे,
साथे संत थया इण नाम सु०।
थिरपालजी फतैचन्द वीरभाणजी रे लाल,
टोकरजी हरनाथजी सुधारण काम सु०॥
भारीमाल लिखमीचन्द बगतरामजी रे,
गुलाब जी वले दूजो भारीमाल सु०।
रूपचन्द ने पेमजी रे लाल,
भिक्षु सहित तेरा उजमाल सु०॥

२. (क) ख्यात, क्रम ८

(ख) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु संतमाला १५०

भिक्षु साथे आप रे लिखमे संयम आदर्यो।
तेरा माहिलो ताय रे चारित्र खोय गण थी टल्यो॥

३. एक प्राचीन उल्लेख के अनुसार रूपचन्दजी चातुर्मास में ही अलग हो गए थे, अत: १२ साधु ही एकत्रित हुए।

आठ साधुओ मे आप एक थे।[1] आप दीक्षा-पर्याय मे सबसे छोटे थे।

आप कई वर्षो तक साधुत्व का पालन करते रहे। बाद मे कर्म-प्रभाव से गण से अलग हो गये।[2]

स० १८३९ कार्तिक सुदी २ बुधवार के दिन रचित श्रावक शोभजी की ढाल मे उस दिन विद्यमान सतो की स्तुति की गई है, जिनमे आपका नाम प्राप्त नही होता। इससे इतना तो सुनिश्चित हो जाता है कि आप उसके पहले ही वहिर्भूत हो गए।

स० १८२९ (माघ सुदी १२) के लिखित मे आपका नाम नही पाया जाता। १८३२ (मार्गशीर्ष वदि ७) के लिखित मे भी आपके हस्ताक्षर नही हे। निम्न विकल्प सभव है

१. आप स० १८२९ की माघ सुदी १२ के पूर्व ही गण से पृथक् हो गए थे। यही कारण है कि उक्त लिखित मे आपका नाम नही।

२. स० १८२९ के लिखित मे आपका नाम आपकी अनुपस्थिति अथवा अन्य किसी कारण से नही है। अन्य कई साधुओ के भी नाम नही है। आप स० १८२९ माघ सुदी १२ तक गण मे थे। उसके वाद एव स० १८३२ की मार्गशीर्ष वदि ७ के पूर्व गण से वहिर्भूत हुए।

३. श्री सोहनलालजी सेठिया के अनुसार आप स० १८३२ मे गण से अलग हुए थे। (टालोकर वर्णन)। उन्होने यह नही लिखा कि आप स० १८३२ मार्गशीर्ष वदि ७ के लिखित के पहले पृथक् हुए या वाद मे। उनका निष्कर्ष किस आधार पर है इसका भी कोई उल्लेख नही है। वैसी स्थिति मे उनका निष्कर्ष दूसरे विकल्प जैसा ही होता है अथवा उनका विकल्प यह हो कि आप स० १८३२ के लिखित के वाद गण से पृथक् हुए थे। इस स्थिति मे यह तीसरा विकल्प होगा।

---

१. (क) जय (भि० ज० र०) ८।७-१२ तथा ४५।४-११ के स्थलो को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वखतरामजी, गुलावजी, भारीमाल (द्वितीय) रूपचन्द और पेमजी ये पाचो सत स० १८१७ के चातुर्मास के वाद की परस्पर चर्चा के पश्चात् अलग हो गये थे। आचार्य भिक्षु, थिरपालजी, फतैचन्दजी, वीरभाणजी, टोकरजी, हरनाथजी, भारमलजी और लिखमीचन्दजी ये आठ साधु साथ रहे।

(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन ९५-९७ मे इस वात को स्पष्ट करते हुए लिखा है

पिण स्वाम गिणत राखै नही रे, हिव चोमासा मेल्या ते साध सु०।
चोमासा उतर्‌या भेला थया रे लाल, पूछै सुख समाध सु०॥
जरै वखतराम ने गुलावजी रे ए विहु कालवादी थाय सु०।
दूजो भारीमाल रूपचन्द पेमजी रे लाल, ए त्रिहुनी सरधा नाही मिलाय सु०॥
ए पाच पहिली टल्या रे, शेष अष्ट भिक्षु साथ सु०।

२. (क) जय (शा० वि०) १।सो० २

तेरा माहिलो ताम रे, लिखमो छुटो गण थकी।
पामी गण अभिराम रे, चारित्र-रत्न गमावियौ॥

(ख) जय (भि० ज० र०) ४५।११

लिखमैजी सजम लीध, कर्म प्रभावै हो गण सू न्यारौ थयौ।
पडिवाई कह्यौ कद सिद्ध, देसुण अध पुद्गल हो उत्कृष्ट जिन कह्यौ॥

९. मुनि सुखरामजी[1]

आपकी जन्म-भूमि लोहावट (परगना फलौदी) थी। आपका जन्म सवत् १७८९ मे हुआ था। आपके पिताजी का नाम नैणसुखजी श्रीश्रीमाल[2] और माताजी का नाम गगाजी था।[3] आप पाचो इन्द्रियो से सुसम्पन्न और सुजात थे। वडे विनयी थे।[4]

जयाचार्य के अनुसार आप धर्म से मूलत पोत्यावध थे।[5] ख्यात मे लिखा है "पोत्यावध

---

१. सुखरामजी (९), अखयरामजी (१०), अमरोजी (११)—यह क्रम जय (शा० वि०) और ख्यात के अनुसार है। जय (भि० ज० र०) के अनुसार क्रम है—अखयरामजी, अमरोजी, सुखरामजी। जिनशासन महिमा (सत गुणमाला) मे अखैरामजी, सुखरामजी क्रम है (८।५, ६)। वाद की दोनो कृतिया जय (शा० वि०) के पूर्व की है। जय (शा० वि०) का सशोधित मत ठीक है।

२. (क) श्रा० चन्द्र (सुख०) १।२-३

लोहावट नामे गाव तिहा वसे, परगने फलोदी रे पिछाण हो।
नैणसुखजी नाम महाजन दीपता, श्रीश्रीमाल वखाण हो।।
तिणारे घरे आयने अवतरिया, सुखरामजी तिण ठाम हो।
मात-पिता पोष्या थी मोटा हुवे, सतरेसे नियासे ताम हो।।

(ख) जय (शा० वि०) १।११ एव वार्तिक

(ग) ख्यात ९

(घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन १५२

(ङ) वम्ब (मुनि गुण प्रभाकर) मे जन्म १७७९ का लिखा है, जो अशुद्ध है।

३ सत विवरणी

४ (क) श्रा० चन्द्र (सुख) १।४

पाचू ही पाम्या इन्द्री परवडी, विनेवत वड भाग हो।

(ख) ख्यात

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन १५२

५ जय (भि० ज० र०) ४५।१६

सत वड़ा सुखरामजी, वासी लोहावट ना हो पोत्यावध सही।
समझाया भिक्खु स्वाम, सुरतरु सरीपौ हो चरण लियो सही।।

मे सु आय नै आतमवश घणी करी।" यति हुलासचन्दजी ने अपनी कृति शासन-प्रभाकर, भिक्षु संत वर्णन (१५२-१५३) मे ख्यात की इस बात का पद्यानुवाद मात्र किया है। अत. वह इस विषय मे कोई नया प्रकाश नही डालते।

ख्यात और शासन प्रभाकर के शब्दो के दो अर्थ हो सकते है :

(१) आप मूलत पोत्यावध श्रावक थे। फिर सम्यक्त्वी हुए—पोत्यावध नही रहे और दीक्षा ग्रहण कर ली।

(२) आप पोत्यावध धर्म के अनुयायी ही नही थे, पर उससे दीक्षित साधु थे और उस सघ से निकलकर आचार्य भिक्षु के पास दीक्षित हुए।

इस सम्बन्ध मे मुनि बुद्धमलजी ने जो मन्तव्य दिया है, उसे दो भागो मे नीचे दिया जा रहा है .

१. पितृक्रम से वे पोत्यावध सम्प्रदाय के अनुयायी थे, इसलिए जब उन्हे सासारिक प्रवृत्तियो से विरक्ति हुई, तव सहज रूप मे उसी परम्परा मे प्रव्रजित हो गये।

२ कालान्तर मे उन्होने आचार्य भिक्षु द्वारा की गई आचार-क्रान्ति की बाते सुनी तो उधर आकृष्ट हुए। शीघ्र ही उन्होने भिक्षु से सम्पर्क किया और विभिन्न विषयो पर वातचीत कर तत्त्व को समझा। सभी वाते हृदयगम हो गई। तव पोत्यावध सम्प्रदाय को छोड़कर (स० १८२२) खैरवा मे वे आचार्य भिक्षु के पास दीक्षित हुए।

मुनिश्री का मन्तव्य ख्यात के "पोत्यावंध मे सु आय नै आतमवश घणी करी" शब्दो का पल्लवित रूप मात्र है।

प्राचीन कृतियो मे आपके पोत्यावध साधु होने का कही उल्लेख नही है। जय (भि० ज० र०) आपको पोत्यावध मात्र कहता है, पोत्यावध साधु नही। जय (शा० वि०) में आप किस धर्म के थे, इसकी चर्चा ही नही है।

श्रावक चन्द्रभाणजी द्वारा रचित "मुनि सुखरामजी" शीर्षक ढाल सबसे प्राचीन और विस्तृत कृति है, जो आपके जीवन-वृत्तो पर प्रामाणिक प्रकाश डालती है। इस कृति का एतद्-विषयक वर्णन इस प्रकार है

"आप साधु-सतो के प्रति विनयवान थे। धर्म सुनने मे रुचि थी। स्थिर मन से जैन धर्म सुनते थे। इससे जैन धर्म के प्रति अनुराग हुआ। एक वार आपकी आचार्य भिक्षु से भेट हो गई। आपने सम्यक्त्व ग्रहण किया। वाद मे खैरवे मे स० १८८२ मे आपने अति वैराग्य पूर्वक दीक्षा ग्रहण की।"

पाचू ही पाम्या इन्द्री परवडी, विनेवत वड भाग हो।
जैन धरम सुणे मन दिढत को, लागो धर्म सु राग हो॥
भारी सत भीखणजी भेटिया, आई समकित सार हो।
वैराग वाइसे वरसे खैरवे, लीधो सजम भार हो॥[2]

---

१. इसके पूर्व वम्ब (मुनि गुण प्रभाकर) मे यही बात लिखते है : "आपने पोत्यावंध समाज में दीक्षा ग्रहण की, परन्तु स्वामीजी के उपदेशो से प्रभावित होकर आपने उस सम्प्रदाय को त्याग दिया।

२. श्रा० चन्द्र (सुख) १।४-५

यहां विशेष ध्यान देने की बात यह है कि चन्द्र (सुख) के इस वर्णन मे कही भी ऐसा उल्लेख नही है कि आप पोत्यावध या पोत्यावध के साधु थे। उक्त कृति के वर्णन से अधिक मे अधिक इतना ही फलित हो सकता है कि आप अन्य धर्म के अनुयायी थे। व्याख्यान सुनने आदि से आपको जैन धर्म मे रुचि हुई, वैराग्य दृढ़ हुआ और फलस्वरूप आप प्रव्रजित हुए।

चन्द्र (सुख) के इस वर्णन से स्पष्ट है कि आप गृहस्थावस्था से सीधे आचार्य भिक्षु के पास प्रव्रजित हुए थे। सभव है, गृहस्थावस्था मे आप पोत्यावध रहे हो, पर आप पोत्यावंध साधु थे, इस वात का कोई पक्का आधार नहीं।

दीक्षा के समय आप तेतीस वर्ष के थे।

जैसा कि पहले वताया जा चुका है—तेरापथ सघ की स्थापना स० १८१७ के चातुर्मास के वाद शेपकाल मे हुई थी। सघ स्थापना के वाद सर्वप्रथम दीक्षा साधुओ मे आपकी ही हुई। इस तरह लगभग पाच वर्ष के वाद पहली दीक्षा हुई।

आप वडे उग्र विहारी थे। शुद्धतापूर्वक सयम का पालन कर आत्मोद्धार करने के साथ-साथ आप जैन-धर्म का प्रसार कर जन-कल्याण करते थे। आपने अनेक लोगो को प्रतिवोधित किया। अज्ञान और मिथ्यात्व को दूर कर उन्हे सम्यक्त्वी वनाया। धर्म-प्रचार करते हुए आपने मारवाड, मेवाड, हाडोती और ढूढाड—इन चार प्रदेशो मे विहार किया।[1]

आप विनयी सत थे। स० १८३३ मे खैरवे मे मुनि थिरपालजी ने सलेपणा-सथारा किया, तव आपने उनकी वडो दत्तचित्त से वैयावृत्य की थी।[2]

आपके जीवन मे एक वडी अनहोनी घटना घटी। मुनि चन्द्रभाणजी (१५) ने जिन सतो को फटाने का प्रयास किया उनमे आप भी एक थे। चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी (१२)दोनों ने मिलकर मिथ्या प्रचार द्वारा इन्हे फोडने की चेष्टा की। एक लेख मे उन्होने उन्हे क्या-क्या वाते कहकर भ्रान्त किया था, इसका वर्णन है। वह संक्षेप मे इस प्रकार है ·

"आचार्य भिक्षु कहते थे—'सुखजी को महीन पछेवड़ी नही देनी है। उन्होने सिरियारी में आसकद के लड्डू खाये। वे जिह्वालोलुप है।' आचार्य भिक्षु आपको महीन चोलपट्टा देने वाले थे। वाद मे वलूदा मे कपट से दूसरा चोलपट्टा दिया। आचार्य भिक्षु को कोई वात कहना हाथी के दातो पर वैठना है। जव हम लोग कोसीफल मे आमेट आये तव आचार्य भिक्षु ने हम

---

१. श्रा० चन्द्र (सुख०) १।६-८

सयम लेईने सुध पालता, करता उगर विहार हो।
धर्म दिपावे श्री जगदीश रो, आत्मा रो करत उद्धार हो॥
घणा जीवा ने समझावता, देता समकित 'मार हो।
अज्ञान मिथ्यात उडावता, करता पर उपकार हो॥
मारवाड ने मेवाड देश मे, हाडोती ने ढूढार हो।
वीरतणी आज्ञा माहे विचरता, करता करमा सू राड हो॥

२. (क) नेमी (थिर०) २।१५ ·

सखरी कीधी महा साधजी, त्याग दिया तीन आहार जी।
कने साधु सुखोजी तिलोकजी, विने वियावच रे उपकार जी॥

(ख) जय (शा० वि०) १।११ वार्तिक

लोगो को मुनि तिलोकचन्दजी के सामने लोलुप कहा—ऐसा तिलोकचन्दजी कहते थे। तिलोकचन्दजी कहते थे · भारमलजी की आचार्य-पदवी हटानी ही है। मै (चन्द्रभाण) ऐसी स्थिति जानता तो घर ही क्यो छोडता ? भारमलजी का इलाज कराते है, क्या आपका भी कभी कराते है ? भारमलजी को सात पूछते है, क्या कभी आपको भी पूछते है ? आचार्य भिक्षु कभी कही हुई बात न माने, तब आहार-पानी का सभोग तोडना है। टोला छोडने की बात सोचते है तब केवल मैणा से क्या होगा ? मैने कहा—हु जानू इण घणी पेद पामी दीसे है। तिलोकचन्दजी ने एक बार कहा—हम तीन से आचार्य भिक्षु का द्वेष है। आपको आचार्य भिक्षु 'जोगडा' कहते थे। एक बार मैने कहा—केलवा की बहिनो को तीखा जोरदार उपदेश क्यो नही दिया ? चद्रभाण बोले इन्हे राग-द्वेष मे डालकर क्या करे ?''[1]

आप तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी की बातो मे विश्वास कर उनके प्रति झुक गये। उनके साथ गण से अलग होने की बात पर आ गये। आचार्य भिक्षु ने आपको सावधान किया, तब आप चेते और आचार्य भिक्षु से बताया कि किस तरह उन्हे बहकाया गया था। आपने दोष स्वीकार करते हुए कहा "वे लोगो मे अवर्णवाद करते है, उनमे से अनेक अवर्णवाद अनेक बार कह-कह कर मेरे मन को आपसे तोड दिया। मन फेरने की अनेक बाते करते रहते। सब याद नही है। चन्द्रभाणजी ने मुझसे कहा—'मेरे और तिलोकचन्दजी के वचनबद्धता है—आपको छोडे तो मेरे पास आवे। सौ कोस दूर होऊ तो भी मेरे पास आकर मेरे साथ हो। मुझे छोड़े तो आप मेरे साथ, आपको छोडे तो मै आपके साथ—ऐसी एकता है।' इस तरह आपसे मन भंग हो वैसी बाते करते रहते। परस्पर कलह हो, वैसी बाते करते रहते। इससे मेरा मन आपसे फट गया। इनकी गुटबदी मे था। आपके प्रति अशिष्ट, हीन बाते कहते तब मै आपको नही बलाता था। आप कोई वचन कहते तो उन्हे कहने का भाव रखता था। ये आपसे तोड़े तब इनके साथ जाने का भाव था। इस तरह आपसे विपरीत था।''[2]

इस तरह दोष स्वीकार कर प्रायश्चित्त ले उन्होने आत्मा को परिशुद्ध किया। आचार्य भिक्षु ने स० १८३७ माघ वदि ६ के लिखित मे लिखा है "सुपाजी ने मैणाजी आगै कहिवाइ लीयौ त्या आलोवण करे प्राछित लेनै सुध हुआ।"

इसके बाद आप आचार्य भिक्षु के बडे भक्त हो गये और धर्म का प्रचार करते हुए विचरते रहे। आप, वेणीरामजी(२८) और नानजी(३६) स्वामी अनेक वर्षो तक साथ विचरे।[3]

एक बार पीसागण के श्रावको ने सम्मिलित रूप से आपको चातुर्मास के लिए भावभीनी प्रार्थना की। इस अर्ज पर स० १८६२ का चातुर्मास करने के लिए आप वहा पधारे।[4] उस

---

१. लेख स० १८३७ (२२)।

२. वही

३. वेणीरामजी स्वामी रो चोढालियो २।५

सुखरामजी स्वामी नानजी वेणीरामजी रे, तीनू ही विचर्‌या ताहि।
घणा वर्षा लग जाणज्यो रे, त्यारै हेत घणो माही माहि॥

४. श्रा० चन्द्र (सुख०) १।६-१०

नगर पिसागण रा श्रावका मिले, अर्ज कराई इण भात हो।
कीजे चोमासो नगर पितम्बरी, म्हाने दरसण री मन खांत हो॥

समय सिघाडे मे नानजी, वेणीरामजी और डूगरसीजी (४३) मुनि थे।[1]

एक वार आप अपने साथी साधुओ से वोले "यह झोपडी जर्जर हो गयी है। तपरूपी शमशेर से इसे विखेर डालने की इच्छा हो रही है।" साधु विनती करते हुए वोले. "आप उतावले क्यो हो रहे है? मारवाड़ मे विहार कर उपकार करे।" पर आप ससार से पूर्णत विरक्त हो चुके थे। आपने तपरूपी तलवार से कर्मो को चकनाचूर करने का निश्चय कर लिया।[2]

आपने ऊनोदरी-तप आरम्भ किया और कई दिन ऊनोदरी करते हुए धीरे-धीरे अन्न पर से रुचि हटा ली।

श्रावण सुदी एकादशी के दिन आपने चोले (चार दिन के उपवास) की तपस्या शुरू की।

चौथे दिन अर्थात् श्रावण सुदी १४ के दिन चोले मे ही आपने सथारा कर दिया। पाच पदो को नमस्कार कर, नमोत्थुण कर, साधु श्रावको से खमत-खामणा करते हुए आपने यावज्जीवन तीनो आहार का त्याग कर दिया।[3] इस तरह आप एक मृत्युन्जयी वीर की तरह आत्म-सग्राम मे प्रवृत्त हुए।

भादवा सुदी ६ के दिन आपने नमुत्थुण कर, सव सिद्धो को वन्दन कर हाथ जोड वडे हर्ष के साथ सव सन्तो की वन्दना की। उसके वाद एक पहर दिन रहते आपका सथारा सिद्ध

मानी अर्ज सुणी मोटा मुनि, अठारेसे वासठे जाण हो।
नगर पीसागण चौमासे पधारिया, मुनि गुण रतना री खान हो॥

१. (क) श्रा० चन्द्र (सुख) २।दो-३-५
(ख) जय (शा० वि०) १।११ वार्तिक

२ श्रा० चन्द्र (सुख०) २।दो० ७-६

साध कहे सुखरामजी, तपरूपी शमशेर।
हुई जोजरी झूपडी, नाखू ताह विखेर॥
साध करे सहु विनती, करो उतावल काय।
विहार करो विचरो सुखे, मारवाड रे माय॥
विरक्त हुआ ससार थी, सुखजी साचा सूर।
तेग झाल तप रूपणी, करे कर्म चकचूर॥

३. (क) वही, २।?-३

केई दिन कीधी अणोदरजी, अन तणी रुच उतार।
सावन सुद एकादशी जी, लगता कीधा सामी च्यार॥
चवदस रे दिन चूप सू जी, चोला रे दिन अणगार।
मन मे न डरिया छै मोत सू जी, थाप दियो छै सथार॥
पाचू ही पद सामी वादिया जी, नमोथुण कियो सिर नाय।
साध श्रावका ने खमाय ने जी, तीनू आहार दियो वोसराय॥

(ख) जय (शा० वि०) १।११ वार्तिक

हो गया। इस तरह राग-द्वेष को जीत कर संत ने सद्गति की ओर प्रयाण किया।[1]

आपने स० १८६२ की श्रावण सुदी १४ को संथारा अंगीकार किया और वह स० १८६२ की भादवा सुदी ९ को पूर्ण हुआ। इस तरह आपको २५ दिनों का संथारा आया।[2] चोले के प्रथम तीन दिन जोड देने पर कुल तपस्या २८ दिन की हुई।[3]

आपका देहान्त लगभग ७३ वर्ष की आयु मे हुआ।

आपके परिणाम बडे तीव्र रहे। निर्मल ध्यान ध्याते रहे। क्षुधादिक परीषह समभाव-पूर्वक सहन किये। सिसकारा तक नही किया। मुह मे दीन-वचन नही निकला। राग-द्वेष से दूर रहे। जिनभगवान का ध्यान रखा। जाप उनका जपते रहे। सुमेरु की तरह दृढ रहे।[4]

---

१. श्रा० चन्द्र (सुख) २।१३-१५

भादवा सुद नवमी दिनैजी, वादिया सिद्ध भगवन्त।
हाथ जोड मन हरष सू जी, सगला ही वादिया सन्त॥
पोहर एक दिन रह्यो पाछलो जी, कर दियो सामजी काल।
मारग दिखायो मोक्ष रो जी, तोडे घणा कर्मा रा जाल॥
साध तो सद्गत साचर्या जी, नही कीधो राग ने रीस।
मोटे मडाणे कर श्रावकाजी, माडी कीधो खण्ड पचीस॥

२. (क) जय (भि० ज० र०) ४५।१८

(ख) सत गुण वर्णन ५७।४

अणसण पच्चीस दिवश नो आवियो, मुनि सगला रे मन भावियो ए।
पहुता वासठै परलोक ताम ए॥

(ग) जय (शा० वि०) १।११.

अणसण दिन पणवीस नो जी।

(घ) वही, १।११ वार्तिक

(ङ) १८७४ भादवा वदि ६ के दिन रचित ढा० २-६

सुखरामजी स्वामी सथारो कियो पिसागण शहर।
आयौ पच्चीस दिन आसरे सुद्ध साधु श्रीकार॥

३. श्रा० चन्द्र (सुख) २।६-७

करली तपस्या सामी आदरीजी, करला कीधा घणा मूस।
नहीं राखी आशा ससार नी जी, मन धरे मोक्ष तणी हूस॥
अठाईस दिन अणसण रह्याजी, ध्याया स्वामी निरमल ध्यान।
उत्कृष्टी तपस्या करी भली जी, रह्या घणा सावधान॥

४. वही, २।११-१२

खुदादिक परिसा वहु भातरा जी, समे परिणामा खमो आप।
इसको खिसको सामी नही कियोजी, जप रह्या जिणजी रो जाप॥
इचरज आवै सामी आपरोजी, सेठा रह्या जेम सुमेर।
दीन वचन नही दाखियोजी, राग-द्वेष कर दियो जेर॥

आपके सथारे के समय धर्म-प्रभावना का वड़ा आह्लादकारी दृश्य छा गया। लोगो ने नाना प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये।[1]

श्रावक चन्द्रभाणजी के अनुसार आपने स० १८२२ मे दीक्षा ली। सं० १८६२ की भादवा सुदी ६ को आपका देहान्त हुआ। आप ३६ वर्ष से कुछ अधिक साधु जीवन मे रहे :

वरस गुणतालीस जाझा विचरिया जी,
सयम पाल्यो खर्गधार।।[2]

इस हिसाव से आपके दीक्षा की मिति स० १८२२ मे चैत वदि १५ अथवा उसके कुछ पूर्व कोई दिन रहा।

जयाचार्य के अनुसार आप लगभग ४२ वर्ष तक साधु जीवन मे रहे

आसरै वयालीश वरस, निर्मल चारित्र हो स्वामी गुण निलौ।
वासठै वर्ष विभास, दिवस पचीसे अणसण अति भलौ।।[3]

जयाचार्य की एक अन्य कृति मे भी ४२ वर्ष का उल्लेख है।[4]

इस कृति मे दीक्षा लेने का वर्ष उल्लिखित नही है। साधु जीवन ४२ वर्ष का तभी हो सकता है जव आपकी दीक्षा सं० १८२० को मानी जाए। यह चन्द्रभाणजी द्वारा उल्लिखित वर्ष से दो वर्ष पूर्व है।

जयाचार्य ने इस सम्वन्ध मे अपने वाद की कृति मे लिखा है

लोहावट ना वडा सत सुखराम कै, चरण अठारह वावीस मे जी।
वर्ष वासठै शहर पीसागण ताम कै, अणसण दिन पनवीस नो जी।।[5]

यह कथन श्रावक चन्द्रभाणजी की कृति से मिलता है। जयाचार्य ने जय (भि०ज०र०) की भूल को वाद की कृति जय (शा० वि०) मे शुद्ध किया है। वास्तव मे मुनि सुखरामजी का साधु-जीवन लगभग ४० वर्ष का रहा।

जय (शा० वि०) १।११ से सम्वन्धित वार्तिक इन शव्दो मे है . "जाति रा श्रीश्रीमाल घणा वर्ष विचर्‌या सुखरामजी, नानजी, वेणीरामजी, डूगरसीजी पीसागण चोमासो। सुखरामजी चौले मे सथारो पचख्यो, पचीस दिन रो सथारो आयो।"

इस वार्तिक मे तीन वाते ऐसी है, जो जयाचार्य की दोनो कृतियो मे नही है

१. उनका श्रीश्रीमाल होना

२. उनके साथ के साधुओ का नाम

---

१. श्रा० चन्द्र (सुख), २।६
कइक तपस्या आदरे जी, कइक पालै छै शील।
केइक सामायक पोसा करेजी, रहै वैराग मे लील।।

२. श्रा० चन्द्र (सुख) २।५

३. जय (भि० ज० र०) ४५।१८

४ सत गुण वर्णन ५७।३ :
आसरै वयालीस वरस तास ए, चारित्र पाल्यो आण उल्लास ए।
गुरु मिलिया भिक्षु स्वाम ए।।

५. जय (शा० वि०) १।११

३. चोले में सथारा करने की बात।

ये तीनों बातें ख्यात मे भी नही है। प्रश्न हो सकता है, तब जय (शा० वि०) के उक्त वार्तिक मे इन्हे देने का आधार क्या हो सकता है? यह स्पष्ट है कि जय (शा० वि०) लिखने के पूर्व चन्द्र (सुख) जयाचार्य के सामने आया और इसी के आधार पर उन्होंने तीनों बातें वार्तिक मे दी। दीक्षा सवत् भी उसके अनुसार बदला। इस तरह परिवर्तन मे ख्यात का प्रभाव नही, चन्द्र (सुख) का प्रभाव है।

शासन प्रभाकर अपने वर्णन मे जय (शा० वि०) वार्तिक से हूबहू मिलता है। उक्त तीनों बातें ख्यात मे न होने पर भी उसमे है:

सवत् अठारे बासठै रे, पिसागण चोमासो सिद्ध।
सुखरामजी नानजी वेणीरामजी रे लाल, डूगरसीजी सग सुप्रसिद्ध॥
तिहा सुखरामजी सथारो कर्‌यो रे, चोला री तपस्या माय।
सथारे दिवस पचीस ने रे लाल सुखजी स्वर्ग लहाय॥[1]

ख्यात मे निम्न दो बातो का उल्लेख अधिक है:

१. तपस्या पण मोकली करी दिसे।

२ पोत्यावध मै सु आय नै आतमवश घणी करी।

इन दोनो का उल्लेख ख्यात के आधार पर शासन-प्रभाकर मे प्राय उन्ही शब्दों मे हुआ है।

लोहावट ना सुखरामजी रै, जाति ना श्रीश्रीमाल।
पोत्यावध सु आय ने रे लाल, अठारै बावीसे दीख उजमाल।
निज आतमवश घणी करी रै, देव सुखी दिसत।
ईर्या धुन भारी घणी रे लाल, तप पिण बहुत तपत॥[2]

बहुत तपस्या की बात कहते हुए भी ख्यात अथवा शासन प्रभाकर मे उस का वर्णन नही है। न पहले की किसी कृति मे इस तरह तपस्या करने का उल्लेख है।

जहा तक ख्यात के दूसरे उल्लेख की बात है, इस विवरण के आरम्भ में उसकी विस्तृत चर्चा की जा चुकी है।

सत विवरणी पर ख्यात का प्रभाव है और दोनो बातें उसमे प्राय: ख्यात के शब्दो मे ही लिखी हुई है।

जय (भि० ज० र०) मे आपके लिए 'सत बडा सुखरामजी' शब्द मिलते है। इसका कारण यह है कि आचार्य भिक्षु के सघ मे बाद मे इसी नाम के एक और संत प्रव्रजित हुए थे। उनसे पृथक्ता सूचित करने के लिए 'बडा' शब्द का प्रयोग हुआ।

चन्द्र (सुख) मे 'छोटा साध सुखरामजी, कहू त्यारो विस्तार' १।१२—ऐसे शब्दो का प्रयोग है। इसका अर्थ समझ मे नही आ रहा है। सभवत 'बडा' के स्थान पर भूल से 'छोटा' लिखा गया है।

आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे जयाचार्य ने लिखा है

---

१. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, १५४-१५५

२. वही, १५२-१५३

देवमूरत सम देख, धुनी ईर्या नी हो निर्मल धारणा।
वारू चरण विशेप, सौम्य प्रकृति हो महासुख कारणा ॥[1]

आप देखने मे देवमूर्ति के समान गभीर और सुन्दर थे। ईर्या समिति मे वडे सावधान और प्रवीण थे। सयम मे विशेप निर्मल थे। प्रकृति वडी सौम्य थी।

ख्यात के अनुसार आप वडे तपस्वी भी रहे।[2]

जयाचार्य कृत एक चमत्कारिक ढाल मे स्तुत्य सतो मे आपका भी नाम पाया जाता है।[3]

स० १८३९ कार्तिक सुदी २ वुधवार के दिन केलवा मे रचित अपनी ढाल में श्रावक शोभजी ने मुनि सुखरामजी के सम्वन्ध मे लिखा है—

सुपजी साम साधा माहे सूर ए।
त्यारो दरसण कीधा जाए दु ख दूर ए।
सूतर वाचण घणा सधीर ए
ग्यान प्रकाशे जाणे रतन ने हीर ए ॥१६॥

---

१. जय (भि० ज० र०) ४५।१७ तथा देखिए—
(क) सत गुण वर्णन ५७।१-२
सत वडा सुखराम ए, त्या सार्‍या आतम-काम ए।
तीखी समिति गुप्ति तमाम ए, भज सत वडा सुखराम ए ॥
देव सूरत सम जाण ए, त्यारी शाति प्रकृति गुनखान ए।
सुविनीत घणा अभिराम ए ॥
(ख) जिन शासन महिमा ७।६
देवमूर्त सम सत वडा सुखराम के, ज्यारी सुमति गुप्ति निर्मल घणी जी।
सथारो कर सार्‍या आत्म-काम के, भजन किया भव दुख मिटे जी ॥

२. ख्यात, हुलास (शा० प्र०) और संत विवरणी मे आपके व्यक्तित्व का उल्लेख प्राय जयाचार्य के अनुसार ही है। ख्यात मे इतना अधिक है "तपमा पण मोकली करी दीपे।' इसी का अनुसरण करते हुए सत विवरणी मे लिखा है—'तपस्या घणी करता।" हुलास (शा० प्र०) का वर्णन ख्यात का अनुवाद मात्र है "तप पिण वहुत तपता।"

३. मुनिन्द मोरा की ढाल, गा० १६ :
प्र० ५ पृ० ४४ पर उद्धृत

१०. मुनि अखैरामजी[1]

आपकी जन्मभूमि लोहावट थी। आप जाति से ओसवाल थे। आपका गोत्र पारख था। आप वाईस सम्प्रदाय मे दीक्षित थे। वाद मे अलग हो आचार्य भिक्षु से दीक्षा प्राप्त की थी।

> अखैंराम सुमण्ड, स्वाम भिक्खु पैं हो सजम आदर्यो।
> भेपधारया नैं छड, शुद्ध मन सेती हो पवर चरण धर्यो।
> पारख जाति पिछाण, पारख साची हो थे पूरण करी।
> लोहावट ना सुजाण, चरण आराध्यौं हो थिर चित्त आदरी ॥[2]

ख्यात के अनुसार आप स० १८२४ मे दीक्षित हुए थे। अन्य कृतिया तथा शासन प्रभाकर मे इस विपय मे कोई उल्लेख नही मिलता।

स० १८२६ माघ सुदी १२ वृहस्पतिवार का एक लिखित है, जिसका प्रारम्भिक भाग इस प्रकार है

---

१. क्रम के विपय मे देखिए प्रकरण ६, पा० टि० १

२. जय (भि० ज० र०) ४५। १२-१३ तथा देखिए :

(क) जय (शा० वि०) १।१२ :

> अखयरामजी लोहावट ना ताय कै, भेपधारया ने छोडने जी।
> भिक्षु गण में चरण लियो सुखदाय के, पारख जाति पिछाणजो जी।

(ख) सत गुण वर्णन ५४। २-३

> वासी लोहावट गाम रा, पारख जाति पिछाण हो।
> पारखा साची था करी, भेट्या भिक्षु संत गुणखान हो ॥
> भेषधार्यां ने छोडने, दृढ व्रत धारिया धीर।
> तप जप था कीधो घणो, चरचा करण वजीर ॥

(ग) ख्यात क्रम १० : गाम लोहावटा ना जाति रा पारख भेपधार्यां मैं सुं आयनै दीक्षा लीधी स० १८२४

(घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु संत वर्णन, १५६ :

> अखैरामजी पिण लोहावट तणा रे, पारख जाति पिछाण सु०।
> भेपधार्यां सु आयने रे लाल, इण गण चरण लहाण सु० ॥

"अपैरामजी रा टोला माहें आवणरा परिणाम, साधपणो पालण रा परिणाम दीठा पिण अपरतीत घणी ऊपनी तिण सू एतली परतीत पूरी उपजावै अनता सिद्धारी साषे तो माहै लेणरा परणाम छै। सर्व साधारी आगन्या माहे चालणौ, सभाव आपरो फेरणो, बडा रै छादै चालणौ, आचार चोपो पालणौ। साधांरो आचार दीठोइज छै..."

इसके वाद अनेक शर्ते लिखी हुई है। पहली शर्त के वाद लिखा हुआ है "(ए) पचषाण करै तो माहै ल्या।" वाद मे प्रत्येक शर्त के अन्त मे शब्द है "ए पचपाण करै तो ल्या।"

आप (अखैरामजी) ने शर्ते मजूर कर विश्वास उत्पन्न किया, तव दीक्षा दी गयी। दीक्षा लेने के साथ-साथ आपने लिखित पर हस्ताक्षर कर उसमे उल्लिखित प्रत्याख्यान किये। लिखित निम्न शब्दो से सम्पूर्ण है .

"स० १८२९ माघ सुदि १२ वार वृसप्त लिखतु रिप भीखन गाव वुसी मध्ये ए लिखत श्री थिरपालजी, फतैचन्दजी, हरनाथजी, भारमलजी, तिलोकचन्दजी ने पिण सुणायौ छै ए पाछै कह्या लिख्या ते सगलाइ वोल अखैराम सुणनै अगीकार कीधा चरित सघाते पचखाण करनै साधाने परतीत उपजाइ। लिखतु अखैराम उपर लिख्यो सही।"

इस लिखित के "अपैरामजी रा टोला माहे आवणरा परिणाम दीठा", "साधारो आचार दीठोइज छै", "ए पचषाण करै तो माहै ल्या" आदि शब्दो से सूचित होता है कि यह लिखित पुनर्दीक्षा के अवसर से सम्वन्धित होना चाहिए। जयाचार्य ने उक्त लिखित का पद्यानुवाद किया है। उसके आरम्भ मे इस लिखित की पृष्ठभूमि एक दोहे मे अकित है, जो इस प्रकार है

अपैरामजी गण थकी, टल फिर आवत ताम।
भिक्षु लिषत कियो इसो, सुणो राष चित ठाम॥

इससे असदिग्ध रूप से प्रकट होता है कि स० १८२४ मे दीक्षा लेने के कुछ वर्षों वाद आप (अखैरामजी) गण से अलग हो गए थे। आप वाद मे पुन गण मे दीक्षित हुए। उस समय के प्रत्याख्यान उक्त लिखित मे है। आपकी यह पुनर्दीक्षा वुसी गाव मे स० १८२९ की माघ सुदी १२ वृहस्पतिवार के दिन आचार्य भिक्षु के हाथो सम्पन्न हुई। मुनि थिरपालजी, फतैचन्दजी, टोकरजी, हरनाथजी, भारमलजी, तिलोकचन्दजी उपस्थित थे। उक्त लिखित मे मुनि टोकरजी को छोडकर सवके नाम है। लिखित परिशिष्ट मे दिया जा रहा है।[1]

स० १८३७ की वात है। साध्वी फत्तूजी आदि के पास मर्यादा से अधिक कपडा था। पूछने पर झूठ वोल गई। भिक्षु को सदेह हुआ। आचार्य भिक्षु ने आप (मुनि अखैरामजी) को कपडा मापने के लिए भेजा। कपडा अधिक निकला। भिक्षु ने साध्वियो को वाहर कर दिया। यह चडावल की वात है।[2]

आप (मुनि अखैरामजी) और सघवीजी (२५) मे परस्पर विवाद होता रहता। आप सघवीजी को लोलुप कहते। सघवीजी आपको लोलुप कहते। दोनो आचार्य भिक्षु से वार-वार दीक्षा लेने की वात कहते। एक वार विवाद करते हुए आचार्य भिक्षु के पास आये, तव उन्होने कहा—"तुम दोनो विगय का त्याग कर दो। आज्ञा का आगार रखो। जो पहले आज्ञा मागेगा

---

१ देखिए—परिशिष्ट, क्र० २
२. जय (भि० दृ०), दृ० १५४

वही कच्चा होगा। दोनो ने त्याग किये। चार महीने तक दोनों ने विगय ग्रहण नही किया। बाद मे एक ने खाने की आज्ञा मागी[1], तब दूसरे के भी खाना खुला हो गया।[2]

भिक्षु ने विगय का त्याग करते समय दोनो से एक लिखित कराया था। दोनों के त्याग का पूरा विवरण उसमे प्राप्त है। लिखित सं० १८४१ चेत वदि १३ का है। लिखित परिशिष्ट मे दिया जा रहा है।[3]

एक बार साधुओ मे आपके बारे मे परस्पर बातचीत चली। मुनि खेतसीजी ने कहा "लगता है, अब तो उन्होंने अपनी आत्मा वश मे कर ली है।" आचार्य भिक्षु बोले : "पूरी प्रतीति नही।" यह बात किसी ने आप (अखैरामजी) से कह दी। आपको बुरी लगी। बाद मे आपका चातुर्मास राजनगर मे हुआ। वहा भिक्षु मे अनेक दोष बता, उन्हे पन्ने मे लिख आहार-पानी का सम्भोग विच्छिन्न कर दिया। चातुर्मास उतरने के बाद आप जहा भिक्षु थे, वहा आये। मुनि खेतसीजी उन्हे वंदना करने शीघ्रता मे गये तब बोले "हमलोगा का आहार-पानी साथ नही।" बाद मे जब मुनि खेतसीजी ने समझाया, तब भिक्षु के सम्मुख आसू बहाते हुए बोले. "आपने मेरा विश्वास नही किया, इसलिए मन उदास हो गया। खेतसीजी ने तो मेरा विश्वास किया।" भिक्षु बोले· "मैने विश्वास नही किया, फिर भी सच्चा तो तुमने मुझे ही ठहराया। गरीब साधु खेतसीजी ने विश्वास किया उन्हे तुमने झूठा साबित किया।" इस विनोद मे आप (अखैरामजी) प्रसन्न हुए।[4]

यह दूसरी घटना है, जब अखैरामजी ने संभोग तोडा और फिर साथ हुए।

स० १८५० मे आप (मुनि अखैरामजी) और रूपचन्दजी (बडे) दोनो ने सभोग तोड़ दिया। उन्होंने १५६ दोष आचार्य भिक्षु मे बताये। तालिका के प्रारम्भिक शब्द है : "स० १८५० रूपचन्द अखैराम दोष काढीयारी विगत"।

स० १८५० के उक्त सभोग-विच्छेद की घटना का वर्णन स्वय भिक्षु ने किया है। वृत्त इस प्रकार है

"रिष भीषन आदि च्यार साध कोठारिया थी विहार करनै गाम गोगुदे आवा। आगे अषैरामजी नै रूपचन्दजी आहार-पानी तोर बेठा। तिण री म्हानै ठीक नही तिण सु म्हे या भेला उतरता था। जद अषैरामजी कह्यो—थारै म्हारै संभोग कोई नही। जद रिष भीषन याने पूछ्यो—किण कारण सभोग तोरयो कोइ म्हा मै दोष कै साध आर्या मे दोष। जद रूपचन्द कह्यो—किण ही मैं दोष जाणनै कोइ तोडयो नही। अठा पैहली थे नैं म्हे सौ बरोबर छा थाम्हे म्हामैं किण ही मैं साधपणो नही। ए बोल तो आवतांपाण कह्या। पछै कह्या ते लिखीयै छै. अठा पैली सरधा पिण ठीक नही तेरै दुवार माहै षोट घणी तिण लेषै समकत पिण नही आचार माहै दोष घणा तिण लेखै समकत नै साधपणो एक ही नही। सगलाइ जणा फैर दिख्या लो तो म्हे पिण था माहै आवा। जद म्हा कह्यो थे दिख्या लीधी कै न लीधी। जद बोले नही। घणाइ खपिया पिण दोना जणा भेद देवै नही।...जद म्है कह्यो म्हो मैं सरधा आचार री षोट बताओ।

१. किसने आज्ञा मागी, इसका उल्लेख नही मिलता।

२. जय (भि० दृ०), दृ० १६८

३. परिशिष्ट, क्र० ३

४. वही, दृ० ४६

म्हारै दिल बेसंसी मान लेसा इत्यादिक घणौइ कह्यो पिण बतावै नही। जद कह्यो—बतावो नही। जद रूपचन्द बोल्यौ—एक पूछ सू थे साचौ के हु साचौ। अहकार नै जोम सहित बोलै। जद म्है पिण ढीलो कीधौ। पछै म्है साधा विचार कीधो—किण ही मेल अखैरामजी नै समझाय नै उरौ ल्यो तो पछै इणरा परिणाम होसी तो ओही समझसी नही तो इणरी कमाइ ओजासी। अैलाण तो इसा ए आता दीसै छै ओ इण भव माहि समझतो दीसै नही। तिण उपर अखैरामजी नै समझावण रा अनेक उपाय विचारया। पछै दोय उपाय ठहराया एक तो अखैरामजी गोचरी जअै पाछै जाय नै समझावो कि दिसा जाअै जद पाछै जायनै समझावौ जद भारमलजी कह्यो अखैरामजी नै तो समझावणरा भाव छै। पछै बीजै दिन इणहीज रीते अखैरामजी नै समझाया।"[1]

आप (अखैरामजी) समझाने से समझ गये। आपके हृदय मे बडी आत्म-ग्लानि हुई। आपने भिक्षु के सम्मुख आत्मालोचना करते हुए कहा . "म्है थानै घणा षोटा कह्या, ते एकत धेष रे वस कह्या। म्है थानै अनेक प्रकारै अणहुता धेष रे वस दोप रूपचन्द आगै कह्या। रूपचन्द (नै) म्हे धेप चढाय २ नै बोलाया। म्है आगुण बोलण पाछ काइ रापी नही। म्हारै किण ही तरैरा पाप उदे हुआ तिण सू हू घणो अजोग बोल्यौ। इण रूपचन्द रै प्रसगै करी हू महा अन्याइ हू, म्हा अकार्य रो करणहारौ हू, महापापी हू, म्हारा काइ काइ (ओगुण) कहू। म्हारी आत्मा नै घणी पुराव कीधी। म्हारो इहलोक परलोक दोनूइ लोक विगार्यो। हिवै कितरोयक कहि कहि नै कहू। आप मौने ल्यौ तो आप कहो सो करू। आप कहो तो सलेषणा सथारो करू। आपरी इच्छा आवै तो एक साध कनै रापो तो सलेपना करू। आपनै भासै साधा नै भासै जितरो प्राछित देंने माहि रापो। म्हारा कीधा साम्हो जायजो मती। म्हारी आलोचना प्रमाण मोनै साध प्राछित देवै जितरो कवूल छै। पछैइ कोइ था रै च्यार तीरथ (रै) म्हारी सका परै, मतइ आपने कोइ षूचणो काठै तो मो नै सलेपणा करायजो कै मौन पछैइ सीप दीजो। साधारी इच्छा आवै ज्यु कीजै। जो आप मोनै मोहे नही ल्यौ तो म्हारै इण रूपचन्द माहे जावारा तो जावजीव लगै पचखाण है।"[2]

इस तरह सरल परिणाम से आलोचना की। साधुओ मे अच्छा साधुत्व समझा। अनेक बोलो के त्याग कर प्रतीति उत्पन्न की।

आचार्य भिक्षु और साधुओ ने कहा "अब चिन्ता न करे। अच्छी तरह सयम का पालन करे। साधुओ के स्वभाव अनुसार चले। स्वभाव अच्छा रख घुल-मिल कर चले।" इस तरह पुन गण मे आये। स० १८५० की मिगसर वदि ८ के लिखित मे हस्ताक्षर किये, जिसमे लिखा है .

"अनता सिधारी आण करनै परतीत उपजाय नै माहि आया। आगै परतीत उपजाय नै लिख्या ते पिण सर्व कवूल छै। हिवै वदलण रा जावजीव रा पचपाण छै। ओर साध अखैरामजी सू कलुप भाव राखसी तो या नै मुसकल छे। पिण अखैरामजी ने सेठो रहणो। रूपचन्द आगुण बोल्या छै साध साधवायारा ते रिष भीषन कहिवारे तौ कहिणा पिण और साध साधवीया आगै जठै तठै कहिवारा त्याग छै। कोई पूछै तो यू कहिणो मै सामीजी कनै आलोवणा कीधी। मनै मा पूछो। वले कोइ याद आवे ते लिपणो। ना कहिवारा त्याग। सवत्

१. लेख १८५०। ११

२. लिखित १८५० मिगसर वदि ८

१८५० रा मिगसर वदि ८। लिपतु रिप भीपन रो छै। लिपतु रिप अपैराम उपर लिस्यो मही। अे त्याग हरप सहित किधा छै। साधां नें सुध साध मरधै ने आयां छै।"[1]

यह नाथद्वारा के स० १८५० के चातुर्मास के वाद की घटना है।

इस वार गण मे पुनः आने के वाद आप (अखैरामजी) की वृत्तियो मे आकाश-पाताल का कायापलट हो गया।

स० १८५५ की वात है। ढूढाड के मार्ग मे मुनि वर्द्धमानजी (३१) को लू लग गयी। चमडी खीचने पर हाथ मे आ जाती थी। शरीर दग्ध हो गया था। चलते-चलते गिर गए। खडे होकर चलने लगे तव फिर गिर गए। आप और मुनि मयारामजी (३३) साथ थे। गाव मे जाकर खटिया लाये। मुनि वर्द्धमानजी पर छाया की। उन्हे संथारा आया। इस तरह उनकी सेवा की।[2]

जीवन के अन्तिम दिनो मे आपने ३६ तेले किये। अन्तिम तेले का पारण दिवाली के दिन पडा। अत. आपने पारण न कर चोला कर लिया। इसी चोले मे स० १८६१ की कार्तिक कृष्णा अमावस्या (दीपावली) के दिन कटालिया मे, जहा आपका चातुर्मास था, आपका स्वर्गवास हो गया।

> धर तप छेहडै धिन, छतीस तेला हो चोला मे चलता रह्या।
> अखै दिवाली दिन, वर्प इकसठै परभव मे गया॥[3]

आपके द्वारा किये गये तेलो का विवरण नीचे दिया जा रहा है .

---

१. देखे—परिशिष्ट, क्र० ४

२. हेम दृप्टान्त, दृ० ३६। देखिए प्रकरण ३१

३ जय (भि० ज० र०) ४५।१४ तथा देखिए :

(क) पडित मरण १।७ .

अखेरामजी स्वामी वरस इगसठे। चल्या कटाल्ये चोला माह्योरे॥

(ख) जय (शा० वि०) १।१३ :

संवत अठारै वर्प इकसठै सुजन कै, छतीस तेला ताजा किया जी।
शहर कंटाले अखै दिवाली दिन कै, चोला मे चलता रह्या जी॥

(ग) सत गुण वर्णन ५४।१,४ .

आणद करी अखैरामजी, छतीस तेला कर तन तायो हो।
चोला मे चलता रह्या, अखै दिवाली दिन हो॥
वहु वर्प चारित्र पालनै, पहुंता इकसठै परलोक।
भजन करे नित्य आपरो, तो मिट जावै दुःख भ्रम योग॥

(घ) जिनशासन महिमा ७।५ :

अखैरामजी छतीस तेला कीध के, चोला मे चलता रह्याजी।
अखै दिवाली जीत नगारो दीध के, वधा वर्पां सजम पालनेजी॥

(ङ) ख्यात क्र० १०

(च) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सन्त गुण वर्णन, १५०

अन्त मे छतीस तेला किया रे छेले तेलारे पारणै दिवाली दिन जाण मु०।
चोलो पचख्यो तिण चोला मझै रे लाल शहर कटाल्यै अठारै इकसठै स्वर्गं लहाण॥

तेला-क्रम		मिति		पारण मिति
१.	१८६०	ज्येष्ठ सुदी ७-६		१०
२.		,, ,, ११-१३		१४
३.		,, ,, १५-आषाढ वदि २		३
४.	,,	आषाढ वदि ४-६		७
५.		,, ,, ८-१०		११
६.		,, ,, १२-१४		१५
७.	,,	आषाढ सुदी १-३		४
८.		,, ,, ५-७		८
९.		,, ,, ६-११		१२
१०.		,, ,, १३-१५	सावन वदि	१
११.	१८६१	सावन वदि २-४		५
१२.		,, ,, ६-८		६
१३.		,, ,, १०-१२		१३
१४.		,, ,, १४-सावन सुदी १		२
१५.		सावन सुदी ३-५		६
१६.		,, ,, ७-६		१०
१७.		,, ,, ११-१३		१४
१८.		,, ,, १५-भादवा वदि २		३
१९.		भादवा वदि ४-६		७
२०.		,, ,, ८-१०		११
२१.		,, ,, १२-१४		१५
२२.		भादवा सुदी १-३		४
२३.		,, ,, ५-७		८
२४.		,, ,, ६-११		१२
२५.		,, ,, १३-१५	आसोज वदि	१
२६.		आसोज वदि २-४		५
२७.		,, ,, ६-८		६
२८.		,, ,, १०-११		१३
२९.		,, ,, १४-आसोज सुदी १		२
३०.		आसोज सुदी ३-५		६
३१.		,, ,, ७-६		१०
३२.		,, ,, ११-१३		१४
३३.		,, ,, १५-कार्तिक वदि २		३
३४.		कार्तिक वदि ४-६		७
३५.		,, ,, ८-१०		११
३६.		,, ,, १२-१४	अमावस्या के दिन पारण न कर चोला किया उसमे स्वर्गवास हुआ।	

सं० १८३९ कार्तिक सुदी २ बुधवार के दिन केलवा में रचित अपनी ढाल में श्रावक शोभजी ने मुनि अखैरामजी के सम्बन्ध में लिखा है :

> अखैरामजी छोड़ पाखंड री झुंड ए, ज्यांनू चरचा में पाखंडी सकें मंड ए।
>
> नहीं खुणावंदी परतख मुनिराय ए, चारित ले लागा पूजरें पाय ए॥

जयाचार्य कृत विघ्नहरण की एक ढाल में स्तुत्य सन्तो मे आपका भी स्मरण पाया जाता है।[1]

संत गुण वर्णन ५.४।३ में आपके विषय मे जयाचार्य के उद्गार है—"तप जप था किधो घणो, चरचा करण वजीर।"

आपके चातुर्मास का पूरा विवरण प्राप्त नहीं। कुछ चातुर्मास इस प्रकार रहे :

१. राजनगर[2]

२. नाथद्वारा[3]

३. बगड़ी[4]

४. कोड़्यल[5]

५. गणवोर[6]

---

१. मुनिन्द मोरा की ढाल गा० १६

२. जय (भि० दृ०), दृ० ४६

३. अखैराम नैं कारण री विध रो लेख बोल १०

४. वही, बोल १५

५. वही, बोल १६

६. रूपचन्द अखैराम आगे धेख वश कहिया ते बोल, बोल १३।

अन्तिम चार चातुर्मास सं० १८५० के पूर्व के हैं। कब-कब के है, पता नहीं चलता।

११. मुनि अमरोजो

प्राचीन किसी भी कृति मे आपकी जन्मभूमि कौन थी, आप कब प्रव्रजित हुए आदि बातो का विवरण प्राप्त नही होता। अर्वाचीन कृति सत विवरणी मे आपको चेलावास का निवासी बताया गया है। उसमे आपकी दीक्षा स० १८२४ की कही गई है। जयाचार्य ने आपसे ज्येष्ठ मुनि अखैरामजी (प्र० १०) की दीक्षा स० १८२४ के लगभग[1] बताई है, अत आपकी दीक्षा स० १८२४ की सभव है।

यह तथ्य है कि आप गण से पृथक् हो गए थे,[2] पर आप कितने वर्ष साधु-पर्याय मे रहे और कब पृथक् हुए इसका उल्लेख किसी भी प्राचीन कृति मे नही पाया जाता। बाद की कृति ख्यात और अर्वाचीन हुलास (शा० प्र०) भी इस विषय मे मौन है।

स० १८३९ कार्तिक सुदी २ की एक कृति मे उस दिन वर्तमान साधुओ का गुण-कीर्तन है। उनमे आपका नाम नही पाया जाता। अत सहजत ही यह निश्चित हो जाता है कि आप उक्त तिथि के पहले ही गण से पृथक् हो गये।

श्री सोहनलाल सेठिया ने गण से आपका पृथक्करण स० १८३६ मे मुनि चन्द्रभाणजी के साथ सांठ-गाठ के कारण माना है, पर उसके लिए कोई प्रमाण उपस्थित नही किया।

स० १८३२ (मार्गशीर्ष कृष्णा ७) के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही पाए जाते।[3] इससे यह प्रमाणित होता है कि उसके पूर्व ही आप गण से अलग हो गए। अत स० १८३६ मे पृथक्करण का सेठियाजी का कथन प्रमाणित नही ठहरता।

जैसा कि मुनि लिखमोजी (८) के प्रकरण मे विवेचन किया जा चुका है, आपकी

---

१. देखिए जय (शा० वि०) की हस्तलिखित प्रति का हासिया।

२. (क) जय (भि० ज० र०) ४५।१५

अमरोजी छूटक धार, पच काया थी अभवी अनन्त गुणा।
अभवी थी अधिकार, ज्ञानी देवां भाष्या पडिवाई अनन्त गुणा॥

(ख) जय (शा० वि०) १। सो० ३

अमरो अघ वश जाण रे, छूटो भिक्षु गण थकी।
पडिवाई पहिचाण रे, अनन्त गुणा छै अभव्य थी॥

३. लिखित पर एक मुनि टोकरजी को छोडकर उस समय के गण के सभी साधुओं के हस्ताक्षर है। टोकरजी लिखना नही जानते थे, अतः उनके हस्ताक्षर नही है।

गणच्युति की घटना सं० १८२६ से लेकर स० १८३१ आपाढ के अन्त की मध्यावधि में घटित हुई।

स० १८३७ के शेप-काल मे तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी मुनि सतोपचन्दजी और शिवरामदासजी के पास चूरू गए, तव उनके पास एक अमरचन्दजी थे, जिन्होंने कहा था कि जो गुरु के ही नही हुए, उनके साथ सभोग न करे। वे अमरचन्दजी मुनि अमरोजी ही रहे या अन्य, कहा नही जा सकता। अगर वे ही थे, तो संभव है कि मुनि सतोपचन्दजी और शिवरामदासजी ने उन्हे वहा शामिल कर लिया हो अथवा वे यो ही वहां हों और उक्त वात कही हो।

१२. मुनि तिलोकचन्दजी

आप चेलावास के निवासी थे।[1] आपकी दीक्षा स० १८२४ मे हुई थी[2] अथवा स० १८२५ मे।

स० १८२९ माघ सुदी १२ एव स० १८३२ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर है। उक्त द्वितीय लिखित मे निम्न उल्लेख है

"भारमलजी पिण आपरै चेलौ करे ते पिण तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी आदि वुधवान साध कहै ओ साधपणा लायक छै वीजा साधा ने परतीत आवै तेहवा करणो परतीत नही आवै तो नही करणो। कीधा पछै कोई अजोग हुवै तो पिण तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी आदि वुधवान साधा रा कह्या सू छोड देणौ पिण माहे राखणौ नही।...चरचा वोल किण नै छोडणौ मेलणौ तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी आदि वुधवान नै पूछनै करणौ।"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि आपकी गिनती उस समय के वुद्धिमान साधुओं मे थी और आपके प्रति वहु-सम्मान की भावना भी थी।

स० १८३३ के खैरवे चातुर्मास मे मुनि थिरपालजी ने सलेपना-सथारा किया तव मुनि सुखजी (९) और आप उनकी सेवा मे थे।[3]

वाद मे आप मुनि चन्द्रभाणजी (१५) के वहकावे मे आकर उनके साथ दलवन्दी मे फस गये। उनका पक्ष लेने लगे। अविनय दिखाने लगे। भिक्षु ने चन्द्रभाणजी के साथ इन्हे भी छोड दिया। यह माडा गाव की घटना है। वाद मे प्रायश्चित्त ग्रहण करना स्वीकार कर पुन चन्द्रभाणजी सहित गण मे आए। यह चेलावास की वात है। पर प्रायश्चित्त ग्रहण न कर फिर गुटवन्दी करने लगे। भिक्षु ने पहले मुनि चन्द्रभाणजी को और वाद मे कुछ कालान्तर से आपको खैरवे मे गण से अलग कर दिया।[4]

---

१. (क) जय (शा० वि०) १।सो० ४
   (ख) जय (भि० ज० र०) ४६।सो० १

२. सत विवरणी

३. नेमी (थिर) २।१५ .
   मखरी कीधी महा साधजी, त्याग दिया तीन आहार जी।
   कने साधु सुखोजी तीलोकजी, विने वियावच रे ऊधकार जी ।।

४. लेख १८३७ (तिलोक ने चन्द्रभाण रा कूट-कपट नै दगा री विगत) अनु० १,३,४

यह सं० १८३६ की घटना है।[1] पृथक् किये जाने पर आप और चन्द्रभाणजी साथ हो गए।[2]

आपका चरित्र चन्द्रभाणजी के जीवन-वृत्त से जुडा हुआ है, अत. वहा विस्तार से दिया गया है।[3]

पृथक् होने के वाद कई वर्षो तक मुनि तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी के साथ भिक्षु का अवर्णवाद करते रहे।

आमेट मे तिलोकचन्दजी ने चन्दुवाई से कहा "भीखनजी कहते थे कि तू कृपण है।" तव वह वाई वोली—"जा रे पेजारे! मै कृपण हू और मुझे कृपण कहते हैं, वह तो मेरा दोष मिटाने के लिए कहते है। तुम्हारे कहने से मेरा मन नही वदल सकता। तुम्हारे जैसे बहुत भागल भटकते रहते है।"[4]

मुनि चन्द्रभाणजी ने आपको सूरी (आचार्य) पदवी का लोभ देकर फटाया था। भिक्षु ने आपसे कहा "आपको सूरी (आचार्य) की पदवी मिलनी तो मुश्किल दीखती है। कहीं सूरदास की पदवी न मिल जाए? चन्द्रभाणजी आपको कही जगल मे न छोड दे।"[5] कुछ वर्षो के

---

१. (क) जय (शा० वि०) १।सो० ४·

छूटो तिलोकचन्द रे, वासी चेलावास नो।
वर्ष छतीसै मन्द रे, चन्द्रभाण फटावियो॥

(ख) जय (भि० ज० र०) ४६ सो० १

छूटक तिलोकचन्द रे, वासी चेलावास रो।
चन्द्रभाण कर फन्द रे, जिलौ वांधनै फटाविया॥

२ बम्ब मुनि गुण प्रभाकर मे लिखते है· "गण वाहर होकर चन्द्रभाणजी के टोले मे चले गये।" उस समय चन्द्रभाणजी का कोई टोला नही था। पहले की गुटबन्दी के कारण दोनो साथ हो गये।

३. प्रकरण १५

४ प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक) क्रम ५

५. 'आदर्श श्रावक श्री सागरमलजी वैद' नामक पुस्तक (पृ० १५२) मे घटना का वर्णन इस प्रकार मिलता है·

"स० १८३२ मे जव आचार्य भारीमालजी स्वामी को युवाचार्य घोपित किया गया, चन्द्रभाणजी ने कहा 'स्वामीजी! आचार्य पद के लायक भारीमालजी नही है। यह पद तो तिलोकचन्दजी को सौपना चाहिए था।' स्वामीजी ने कहा—'तिलोकचद को सूरी पद तो नही, पर सूरदास का पद आ सकता है।'

"जव वे अलग होकर चलने लगे, स्वामीजी ने कहा—'तिलोकचंद! तू चन्द्रभाण का विश्वास कर तो रहा है, पर वह कही तुझे जगल मे छोडेगा'।"

इस उद्धरण के प्रथम अनुच्छेद की वात सन्देहपूर्ण इसलिए लगती है कि स० १८३२ के लिखित मे तिलोकचदजी एव चन्द्रभाणजी के प्रति अति वहुमान देखा जाता है। यदि उस समय यह वात हुई होती तो स्वामीजी उन्हे वह स्थान नही देते जो कि लिखित द्वारा दिया गया है।

वाद मुनि तिलोकचन्दजी की नजर कम हो गई। उसके वहाने से मुनि चन्द्रभाणजी ने उन्हे जगल मे ही छोड दिया।[1]

पूरी वात इस प्रकार है मुनि चन्द्रभाणजी ने मुनि तिलोकचन्दजी से कहा "आपकी नजर कम पड गई है। आप सलेषणा करे तव तो ठीक, नही तो मै साथ नही रहूगा।" मुनि तिलोकचन्दजी वोले "अभी तक तो मुझे दिखाई देता है। शक्ति रहते सलेपणा कैसे करू।" इस पर परस्पर तू-ता हो गई। चन्द्रभाणजी तिलोकचन्दजी को तत्क्षण छोड आगे वढ गये?[2] चन्द्रभाणजी ने तिलोकचन्दजी को रीणी के रास्ते मे जुहारिया ग्राम के पास छोडा था।[3]

वाद मे तिलोकचन्दजी ने भिक्षु से द्वेप छोड दिया। थली मे तोल्यासर, कोडासर, वीकानेर की ओर विहार करते रहे। श्रद्धा मे विशेप फेर नही किया।[4]

ख्यात मे लिखा है—गोलछा वीकानेर निवासी कहते रहे—तिलोकचन्दजी ने यहा ग्यारह मासखमण अलग-अलग समय मे किये। जव गोलछा जी ने उनसे पूछा कि किवाडिया खोलकर दिया हुआ आहार लेते है, तव उत्तर दिया—भिक्षु ने भी लिया, छोडा नही। अत हम भी लेते है।[5]

अन्त मे आपने अपने चेले रूपजी से कहा "चन्द्रभाणजी मे मत जाना। शामिल ही होना हो तो भारमलजी के टोले मे जाना।" इस तरह अन्त समय मे शासन से प्रीति रखी।[6]

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० ७०

२. ख्यात क्रम १२। हुलास (शा० प्र०) मे यह घटना उल्लिखित नही है।

३ आदर्श श्रावक श्री सागरमलजी वैद, पृ० १५२

४. ख्यात क्रम १५। हुलास (शा० प्र०) मे ऐसा उल्लेख नही है।

५ ख्यात क्रम १२। हुलास (शा० प्र०) मे ऐसा उल्लेख नही है।

६. वही। हुलास (शा० प्र०) मे इसका उल्लेख नही है।

१३. मुनि मोजीरामजी

आप वैराग्य भाव से दीक्षित हुए, पर बाद मे विचलित हो गण मे अलग हो गये।[1]

सत विवरणी के अनुसार आपकी दीक्षा स० १८२४ मे हुई थी और अन्य मत के अनुसार स० १८२५ मे। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध मे प्राचीन किसी भी कृति मे कोई उल्लेख नही मिलता।

यह भी पता नही चलता कि आप कहा के निवासी थे और आपके माता-पिता का नाम क्या था।

स० १८३९ कार्तिक सुदी २ के दिन रचित ढाल मे उस दिन विद्यमान सतो की नामावली मे आपका नाम नही पाया जाता। अत. यह निश्चित है कि उक्त मिति के पहले ही आप गण से पृथक् हो गये।

स० १८३२ मिगसर वदि ७ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है, जबकि गण के सभी साधुओ के है[2]। इससे यह निश्चित हो जाता है कि उस समय तक आप गण से पृथक् हो चुके थे।

मुनि लिखमोजी के प्रकरण (८) मे विस्तृत रूप से विवेचित हो चुका है कि अमरोजी की तरह आप की गण-च्युति की घटना भी स० १८२६ से लेकर स० १८३१ आषाढ़ तक की मध्यावधि मे कभी हुई थी।

---

१. (क) जय (भि० ज० र०) ४६। सो० २

मोजीराम गण माहि रे, शुद्ध मन सू सजम लियौ।
कर्मा दियौ धकाय रे, ते पिण छुटक जाणज्यौ॥

(ख) जय (शा० वि०) १। सो० ५

छूटो मोजीराम रे, चरण रयण कर आवियो।
तुरत गमावै ताम रे, मोह कर्म वश जीव जे॥

(ग) ख्यात क्र० १३

(घ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १५८

अमरो वलि तिलोक रे, मोजीराम ए तीन जण।
कीधो नर तन फोक रे, भ्रष्ट थया गण थी टली॥

२. वर्तमान सतों मे से केवल मुनि टोकरजी के हस्ताक्षर नही है। इसका कारण यह है कि वे लिखना नही जानते थे।

१४. मुनि शिवजी

आपके सम्वन्ध मे जयाचार्य ने लिखा है

भिक्षु गण मे शिवजी स्वामी सार कै, थली देश रा जाणियौ जी।
समचित सेती लीधो सयम भार कै, जन्म सुधारयौ आपरो जी ॥[1]

उक्त विवरण मे केवल आपके जन्म-प्रदेश का ही उल्लेख है। आप थली प्रदेश के थे।

अन्य उल्लेख से पता चलता है कि आपकी दीक्षा स० १८२४ मे हुई थी[2] अथवा स० १८२५ मे।

स० १८३९ कार्तिक सुदी २ बुधवार के दिन श्रावक शोभजी द्वारा रचित ढाल मे उस-समय विद्यमान सतो के नाम मिलते है, जिनमे आपका नाम नही है। इससे ऐसा सोचना कपोल-कल्पित नही होगा कि आपका देहान्त उक्त समय तक हो चुका था।

आचार्य भारमलजी कालीन सं० १८७१ फाल्गुन वदि १३ की रचित एक ढाल मे आपका नाम नही है, एवं स० १८७७ वैशाख वदि ९ के दिन किये गये लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही पाये जाते। इससे भी उपर्युक्त निष्कर्ष की ही पुष्टि होती है।

पर एक अन्य कृति मे जो स० १८७९ भाद्रपद वदि ८ को रचित है, स १८७८ माघ वदि ८ तक दिवगत हुए साधुओ के नामो का उल्लेख है। उसमे मुनि शिवजी का नामोल्लेख नही है। इस आधार पर ऊपर जो अनुमान किया गया था कि आपका देहान्त स० १८३९ कार्तिक सुदी २ के पूर्व हो गया था, तथ्य के रूप मे नही ठहरता।

आपका नाम स० १८७८ तक दिवगत हुए साधुओ की सूची मे नही है और न स० १८३९, १८७१ और १८७७ तक विद्यमान सतो की सूची मे भी। तव प्रश्न उठता है कि आखिर गण मे दीक्षित शिवजी का क्या हुआ ?

यहा यह भी ध्यान देने योग्य है कि स० १८२९ या उसके वाद के किसी भी लिखित मे

---

१. जय (शा० वि०) १।१४। देखिए—

(क) ख्यात, क्रम १४

(ख) हुलास (शा० प्र०) १५९

शिवजीराम सुहामणा रे देश थली वासेण सु०।
समचित सयम पालने रे लाल जन्म सुधारयो जेण सु० ॥

२. सत विवरणी

आपके हस्ताक्षर नही है। इससे भी स्थिति जटिल होती है।

इस गुत्थी को सुलझाने के लिए दो अनुमान किये जा सकते हैं।

१. पहला यह है कि शिवजी का देहावसान सं० १८२६ के लिखित के पूर्व ही हो चुका था। अत. स० १८३६ एव स० १८७१ की ढालों मे तथा १८७७ के लिखित मे उनका नाम न होना यथास्थिति है। स० १८७६ की उक्त ढाल मे उनका विवरण भूल से छूट गया।

२. दूसरा अनुमान यह हो सकता है कि शिवजी स० १८२६ माघ सुदी १२ के लिखित के पूर्व ही गण से अलग हो गये। इसी कारण सं० १८२६ एव परवर्ती किसी भी लिखित मे उनके हस्ताक्षर न होना स्वाभाविक ही है। १८३६ कातिक सुदी २ के दिन ही नही सं० १८७७ वैशाख वदि ६ तक वे गण मे नही थे अतः उक्त ढालो और लिखितो मे उनका नाम अथवा हस्ताक्षर न होना संभव है।

स० १८७७ वैशाख वदि ६ के वाद उन्होने पुन दीक्षा ली। उनका देहान्त स० १८७८ माघ वदि ८ तक नही हुआ अत उनका नाम उक्त तिथि तक दिवगत आत्माओ का विवरण प्रस्तुत करने वाली ढाल मे न आना अन्यथा नही।

उक्त दूसरे अनुमान की संगति स० १८६८ की जेठ वदि १४ की एक कृति से होती है, जिसमे उन सव सन्तो के नाम है जिनका देहावसान उक्त कृति के रचना काल तक हुआ। उनमे आपका नाम सम्मिलित है। सम्वन्धित पद्य इस प्रकार है—

जिन मार्ग मे शिवजी स्वामी श्रीकार के, भिक्षु गुरु भल पामीया जी।
परभव पहुता ते छेड़े कर सथार के, संयम तप आराधनें जी।।

इससे यह सहज ही प्रमाणित होता है कि आपका देहावसान सं० १८७८ की माघ वदि ८ के वाद और स० १८६८ की जेठ वदि १४ के मध्यकाल मे किसी समय हुआ था।

अव हम उक्त दोनो अनुमानों पर कुछ विचार करेंगे।

जहां तक दूसरे अनुमान का सम्वन्ध है वह अपने आप मे प्रवल तो है पर शिवजी का देहान्त स० १८७८ की माघ वदि ८ और स० १८६८ की जेठ वदि १४ के मध्यकाल मे होने की वात तथ्य रूप मे कही भी उल्लिखित नही पायी जाती। अत. उसे मानना सामान्यतः कठिन हो रहा है।

जहा तक पहले अनुमान का सवध है हम लिखमोजी के प्रकरण (७) मे विवेचन कर चुके है कि शिवजी के स्वर्गवास का समय स० १८२६ एव १८३१ आषाढ की मध्यावधि का कोई भी समय हो सकता है। वे स० १८२६ के लिखित के समय विद्यमान थे ही नही, ऐसा कोई प्रमाण अभी तक उपलब्ध नही हुआ है। सभव है कि वे भी उस समय अन्य साधुओ की तरह अन्यत्र विहार मे रहे। स० १८७६ की ढाल मे उनके देहान्त का विवरण करना भूल से छूट गया। वास्तव मे उनका स्वर्गवास उपर्युक्त अवधि मे ही हुआ।

जय (भि०ज०र०) ४६। दो० १ मे उल्लेख है कि आपको पण्डित-मरण प्राप्त हुआ था.

शिवजी स्वामी शोभता, स्वाम तणा सुविनीत।
पण्डित-मरण कियौ पवर, गया जमारो जीत।

स० १८६८ की कृति के ऊपर उद्धृत पद्य मे स्पष्ट उल्लेख है कि आपका देहावसान सथारा पूर्वक हुआ।

१५. मुनि चन्द्रभाणजी

जयाचार्य ने मुनि चन्द्रभाणजी के जीवन-वृत्तान्त को सक्षेप मे निम्न पद्यो मे प्रस्तुत किया है

जाति चौरडिया जाण रे, पुर ना वासी पिछाणज्यो।
चारित्र चन्द्रभाण रे, शुद्ध मन सु सजम लियो ॥
भण्या बुद्धि भरपूर रे, पिण प्रकृति अहकार नी।
अविनय अवगुण भूर रे, आज्ञा कठिन आराधवी ॥
जिलौ बाधियौ जाण रे, तिलोकचन्द सू तुरत ही।
मन मै अधिकौ मान रे, साध फटाया अवर ही ॥
सत अवर समझाय रे, स्वाम भिक्खु सिह सारिषा।
एक एक नै ताहि रे, छोड्या विहु नै जु जुआ ॥
अवगुण अधिक अजोग रे, त्यां वोल्या भिक्खु तणा।
प्रत्यक्ष कषाय प्रयोग रे, असाध प्ररूप्या स्वाम नै ॥
भिक्खु बुद्धि भण्डार रे, शुद्ध मन सू समझाविया।
प्राश्चित्त कर अगीकार रे, पाछा आया गण मझे ॥
सहु नै किया निशक रे, आया डड अगीकरी।
विरुऔ यामै वक रे, प्रत्यक्ष लोका पेखियौ ॥
श्रमणी सत समाधि रे, किणनै डड न ठहरावियौ।
सहु नै कह्या असाध रे, त्याराहिज पग वादिया ॥
मान घणौ घट माहि रे, विगडी तिणसू वातडी।
प्राश्चित्त नही लै ताहि रे, विहु नै साथे छोडिया ॥[1]

उक्त वृत्तात से पता चलता है कि चन्द्रभाणजी पुर के निवासी थे। ओसवाल थे। जाति से चोरडिया थे। उन्होने अन्तर्भावना से मुनि-जीवन ग्रहण किया था। बुद्धि भरपूर थी। परिश्रमपूर्वक पढे।

ख्यात मे उन्हे चोरडिया के वदले वोरद्या वताया गया है। वहा उल्लेख है कि उन्होने

१. जय (भि० ज० र०) ४६। सो० ३-११

भिक्षु के हाथ से संयम ग्रहण किया था।[1]

एक तीसरी कृति में पुर के नैणसुखजी को उनका भाई बताया गया है।[2]

उनकी दीक्षा कब हुई, इसका प्राचीन उल्लेख नहीं मिलता। प्राय: १८२४ में हुई मानी जाती है।[3] अन्यत्र दीक्षा-संवत् १८२५ भी उल्लिखित है।

मुनि भारमलजी (७) को युवराज पदवी प्रदान करते हुए भिक्षु द्वारा जो लिखित बनाया गया, उसमें निम्न आदेश है:

१. भारमलजी भी चेला करें तो तिलोकचन्दजी, चन्द्रभाणजी आदि बुद्धिमान् साधु कहें कि यह साधु होने के योग्य है—दूसरे साधुओं को प्रतीत आये वैसा हो तो करे। प्रतीत नहीं आये तो नहीं करे।

२. चेला करने पर कोई अयोग्य निकल जाए तो उसे भी तिलोकचन्दजी, चन्द्रभाणजी आदि बुद्धिमान् साधुओं के कहने से छोड़ दे पर गण में न रखे।

३. चर्चा बोल कोई छोड़ना रखना हो वह तिलोकचन्दजी, चंद्रभाणजी आदि बुद्धिमान् को पूछकर करें। श्रद्धा के बोल इत्यादि के विषय में भी वैसा ही जानें।

उक्त लिखित सं० १८३२ मार्गशीर्ष वदि ७ के दिन वृंसी में लिखा गया था। इसमें मुनि तिलोकचन्दजी, चन्द्रभाणजी के भी हस्ताक्षर हैं।

उक्त लिखित से पता चलता है कि उस समय के बुद्धिमान् साधुओं में चन्द्रभाणजी एक विशिष्ट स्थान रखते थे। वे विद्वान् और सूत्र-सिद्धान्त के ज्ञाता थे। भिक्षु उनको आदर की दृष्टि से देखते थे।

सभी स्रोत इस बात में एकमत हैं कि बुद्धिमान् और विद्वान् होने पर भी चन्द्रभाणजी की प्रकृति बहुत अहंकारपूर्ण थी। उनमें विनय का अभाव था। अभिमान और अविनय के दुर्गुण उनके जीवन में बढ़ते गए।[4]

जयाचार्य द्वारा प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट है कि अपनी इसी प्रकृति के कारण उन्होंने मुनि तिलोकचन्दजी से गुटबंदी की। और भी साधुओं को फटाया। भिक्षु ने अन्य साधुओं को समझाकर उनकी भ्रांति दूर की। मुनि तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी को गण से हटा दिया।

कषायवश उन्होंने भिक्षु को असाधु कहा। उनमें बहुत दोष होने की बात प्रचारित की। पर उनकी इस प्रकार की चेष्टाओं के बावजूद किसी ने उनका साथ नहीं दिया। उनमें विवेक जागा। नम्रता आई। गण में लेने के लिए भिक्षु से अनुनय-विनय करने लगे। प्रायश्चित्त लेना स्वीकार कर गण में आए। अब और भी स्पष्ट हो गया कि उन्होंने मिथ्या ही भिक्षु और साधुओं पर दोषारोपण किया था। जिन्हें असाधु रूप में प्रख्यात किया, उन्हीं के चरणों में वंदना कर रहे हैं।

---

१. ख्यात क्रम १५: "चन्द्रभाणजी पुर का। जाति बोरद्या। भिक्षु कै पास संयम लीधो। भण्या गुण्या। हुलास (शा० प्र०) भिक्षु संत वर्णन गा० १६० में भी 'बोरदियो चन्द्रभाण' रूप से उनका उल्लेख है।

२. श्रावक दृष्टान्त, दृ० १

३. जय (शा० वि०) १।१३ की नोध

४. ख्यात: "अविनय अभिमान पणै अवगुण वध्यो।"

चन्द्रभाणजी की अभिमानी प्रकृति उन्हे कचोटने लगी। उनमे उभार आया। साधुओं को फंटाने का षड्यंत्र रचने लगे। भिक्षु ने पुन. दोनो को गण से पृथक् कर दिया।

उक्त घटनाओ तथा उससे पहले की एक घटना का विस्तृत वर्णन भिक्षु ने अपनी कृति 'अविनीत रास' मे प्रस्तुत किया है। नीचे उसी आधार से कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

पहली घटना

स० १८३२ के चर्चित लिखित तक चन्द्रभाणजी का व्यवहार ठीक रहा। मुनि भारमलजी को भावी आचार्य की पदवी देने के वाद से वे अपने हृदय मे द्वेप की भावना पोपित करने लगे। धीरे-धीरे उनकी अभिमानी प्रकृति विकार उत्पन्न करने लगी।

चन्द्रभाणजी ने किसी दोष का सेवन किया। भिक्षु ने उन्हे वहुत-से साधुओ के सम्मुख उपालम्भ दिया—टोका। इससे वे भिक्षु के प्रति द्वेप-भाव रखने लगे।[1] सोचने लगे—"इन्होंने अनेक साधुओं के बीच मेरी इज्जत ले ली। प्रत्यक्ष मेरा विश्वास उठा दिया। अव मै इनके अधीन नही रहूगा। इन्हे छोडकर अलग हो जाऊगा। इन्हें नीचा दिखाऊगा। इनमें दोपो की प्ररूपणा करूगा। तव इन्हें पता चलेगा। साधु-साध्वियो को अपने पक्ष मे करूगा।"[2] ऐसा सोचकर वे कुछ अन्य साधुओ से छिपे-छिपे मिलने लगे। भिक्षु के प्रति मन फटे, उनके प्रति द्वेप जागे, ऐसी वाते करने लगे। झूठे दोष मढने लगे, उन्हे विलकुल बुरा वता श्रद्धा हटाने लगे। जिनसे स्वार्थ नही सधता था उन साधुओ मे अनेक दोप वताने लगे। कहने लगे—"कइयो की तो मुझे प्रतीति हो ही नही सकती। मै तो उन्हे आरम्भ से ही असाधु जानता रहा। टोले मे वडी शिथिलता है। कहना ठीक नही। मै तो अलग होने जा रहा हू। यहा रहकर कौन जन्म विगाडे। यदि पता होता कि ये ऐसे है तो भला मै घर क्यों छोडता? मुझे वडा पश्चात्ताप है। अजान मे मैने कुअन्न खा लिया।"[3] इस तरह कलह उत्पन्न करने की वाते करने लगे। साधुओ को फटाने की चेप्टा करने लगे। कान के कच्चे दो-एक साधु वहकावे मे आ गये और इन्हे सच मानने लगे। इनका विश्वास करने लगे। वे भी इन्ही की तरह वाते करने लगे। स्वय किसी मे दोप न जानते हुए भी चन्द्रभाणजी के कहने से खीचतान करने लगे। चन्द्रभाणजी साथी पा भिक्षु से झगडा करने लगे। अपने साथी के सम्मुख ही अट-सट वोलने लगे। भिक्षु पर झूठे दोप मढने लगे। दोषो का पिटारा-सा खोल दिया।[4]

एक साधु ने उन्हे उनकी एक वात पर मिथ्याभाषी सिद्ध किया। ये तभी से उस पर कुढे हुए थे। अव उसमे अनेक दोप वताने लगे। कहने लगे मै इन्हे साधु नही समझता। जव मैं घर मे था, तव से ही मै इन्हे असाधु जानता रहा हू। उनके पाचो महाव्रत खण्डित हो चुके हैं। समितियो-गुप्तियो मे स्खलन है। यदि इन्हे गण मे रखेगे तो मै निकल जाऊगा।" इसी तरह

---

१. अवनीत रास ४ ·
   इसडो अभिमानी हुवे अवनीत, कदे चाले रीत कुरीत।
   तिणने गुर निषेदे घणा मांय, तो उ गुर रो धेपी हुय जाय॥
२. वही, ६-८
३. वही, ८-१४
४. वही, १५-१८

अनेक साध्वियो मे भी असाधुत्व बताने लगे।[1]

भिक्षु से बोले . "आप इनका पक्षपात करते है। मै आपकी बात नही मान सकता। मैं अलग होकर इसी क्षेत्र मे आपके पीछे-पीछे विचरण करता रहूगा। आपके सम्मुख ठहरूंगा। आप समझ ले, दूसरे दूर हुए है, उस तरह मै जाने वाला नही। आपके दोष बहुत लोगों में प्रकट करूगा। आपको असाधु सिद्ध करूगा।"[2]

जिस साधु मे चन्द्रभाणजी की साठ-गाठ थी वह भी दोष मढने लगा। एक बार इस साधु ने चन्द्रभाणजी का पक्षपात किया था। प्रत्यक्षत मिथ्या साक्षी दी थी। तब भिक्षु ने उसे अत्यन्त उपालम्भ दिया था। इससे यह भी चन्द्रभाणजी के पक्ष मे हो आड़ा-टेढ़ा बोलता था।[3]

भिक्षु ने देखा—चन्द्रभाणजी की अभिमानी प्रकृति बुरी तरह से उदय मे आ गयी है। वे क्रोध और अहकार के गज पर आरूढ हो रहे है। उनका चिन्तन विपरीत दिशा में है। भिक्षु सोचने लगे—"यदि मैने कठोर बात कही, तो सभवत. वह बिना विचारे गण से अलग हो जाये। दूसरो मे भी शका पडे। जैन धर्म की हानि हो। उपकार के मार्ग मे बाधा आये। लोगों मे वितण्डावाद खडा हो जाये। सभव है मृदुता से वह ठीक ठौर आ जाये। आलोचना कर शुद्ध हो जाये। अत मुझे मृदुता से काम लेना चाहिए।

> इणने प्रतख सूझी भूडी, जब गुर तो विचारी ऊडी।
> रखे छूट एकलो थावे, रखे सका घणा रे परजावे॥
> रखे गूजे पाखडी अयाण, रखे जिणमत री पडे हाण।
> रखे घट जायेला उपगार, वेदो उठेला लोक मझार॥
> जो इणने करडा कहू इणवारो, तो ए छूट होय जायला न्यारो।
> ओ तो चढियो क्रोध अहकारो, तो हिवे करणो कुण विचारो।
> जो नरमाई कीया ठाय आवे, कदा आलोय ने सुध थावे॥[4]

भिक्षु ने चन्द्रभाणजी की उग्र और भडकाने वाली बातों को बड़े शान्त भाव से सहन किया और उनके साथ अत्यन्त नम्रता और मृदुता का व्यवहार किया। वातावरण ऐसा हो गया कि वस्तुस्थिति स्वय सबके समझ मे आ जाय और सब सत्यासत्य के सबध मे स्वय निर्णय पर पहुच सके।

भिक्षु ने इस वातावरण मे एक-एक शका का निवारण किया। किसी भी साधु-साध्वी के शका न रहने दी। सबको समझा दिया। अब चन्द्रभाणजी ने ऊटपटांग बोलना छोड दिया। नम्रता धारण कर मार्ग पर आये। भिक्षु से बार-बार क्षमा याचना की। अपने कृत्यो के लिए पश्चात्ताप करने लगे।

बोले "अब मै गण छोडने की बात जीवन-भर कभी मुंह से नही निकालूगा। बहुत दोष निकाले थे। उनकी चर्चा तक नही की। किसी को अधिक किसी को थोडा दण्ड देने की बात के सबध मे बोले तक नही। अनेक साध्वियो मे साधुत्व नही समझते थे। उन्हे निकालने की बात

---

१. अवनीत रास ५, १९-२०
२. वही, २१-२३
३. वही, २५-२६
४. वही, ३२-३५

तक न छेडी। टोले मे ढिलाई बता रहे थे, उस सबध मे भी मौन थे। अमुक को गण मे निकाले बिना गण मे नही रहूगा। इसकी कोई चर्चा नही की। विनम्र भाव से क्षमा-याचना करने लगे।

इम जाणी कीधी नरमाई, परतीत पूरी उपजाई।
किणरे संका न राखी काय, सगला ने दीया समझाय॥
जब ओ किण विध बोले उधो, हिवे ओ पिण बोलीयो सूधो।
अब तो जावजीव रहू माय, गण छोडण री न काढू वाय॥
इण दोपण काढ्या था अनेक, तिणरी पाछी न पूछी एक।
किणने थोडो घणो दंड देणो, ते पिण नही काढीयो वेणो॥
वले घणी साधवीया माहि, साधपणो न जाणतो ताहि।
त्याने काढणी नही ठेराई, त्यारी बात न कीधी काई॥
याने छोड्या रहूं गण माहि, तका पिण काई वात न काय।
टोला मांहे कहेतों थो ढीलाई, तिणरी पाछी नही चलाई॥
सगली ढीली मेले दीधी वात, विने सहीत बोने जोडी हाथ।
हिवे आप घणो पिछतावे, गुर ने वाम्वार खमावे॥'[1]

भिक्षु से निवेदन किया . "मैने वडा बुरा काम किया, आपके प्रति वडा अपराध किया। अब मै मन मे कोई पाप नही रखूगा। जो किया है वह सब बतलाता हू।" उसके बाद भिक्षु के सम्मुख आत्मालोचना करते हुए कहा : "मैने साधुओ मे आपका वडा अवर्णवाद किया है। भविष्य में ऐसा नही करूगा। मन मे शल्य नही रखूगा। जो भी बात मैने की है और कहने मे छूट गयी है वह भी याद आते ही आपसे निवेदन कर दूगा। मेरे मन मे आपके प्रति बहुत बुरे विचार आये। मैने मन मे सोचा—आप मेरी कोई परवाह नही करते। मेरा विश्वास हटा रहे है। अत मैने अलग होने की ठान ली। मैने विचारा—इस तरह की बाते कहने मे आपके मन मे द्वेष उत्पन्न होगा। आप कठोर व्यवहार करेगे। उस पर मै अलग हो जाऊगा। मेरी अलग होने की नीति थी इसलिए मैने ये सब विपरीत बाते कही। मैने ऐसा नही जाना था कि आप इतनी नम्रता से पेश आयेगे। मैने वडा विपवाद किया। मेरे सारे अपराधो को क्षमा करे। मैं वडा अविनयी हो गया था। इस भव मे मै पुन. ऐसा काम नही करूगा। यदि आपमे कोई दोप समझूगा तो आप ही से कह दूगा। किसी अन्य से नही कहूगा। आप मेरे प्रति किसी प्रकार की शका न रखे। विश्वास रखे।" इस तरह से उन्होने भिक्षु के सम्मुख अपनी निदा की। अपने दुर्गुणो को प्रकट किया और वडी विनम्रता के साथ प्रतीति उत्पन्न की। बहुत पश्चात्ताप करते हुए बोले—"आप उचित समझे, वह प्रायश्चित्त मुझे दे।"[2]

उक्त आत्मालोचना सुनकर भिक्षु ने सोचा—अभी इसकी चित्त स्थिति ठीक है, पर मेरा इसे प्रायश्चित्त देना ठीक नही। जो कुछ किया, वह क्रोधवश किया है। मै इसी अपेक्षा से दण्ड दूगा। यदि भविष्य मे फिर कभी ऐसी चित्तवृत्ति हो जाए, मर्यादा का भग करने लगे, तो जो प्रायश्चित्त दूगा उसे भी आधार बना लेगा और कहने लगेगा—"मैने उनसे प्रायश्चित्त लिया। भयवश मुझे पूरा दण्ड नही दिया। यदि पूरा न्याय-निर्णय करते, तो मुझे नई दीक्षा देते।' अतः इस

---

१. अवनीत रास, ३६-४१
२. वही, ४२-५५

मे ऐसी बात निकाली तो उसका निर्णय कौन करेगा ? अभी तो इसमे किसी तरह का दोष नहीं रहा। प्रायश्चित्त लेने का भी इच्छुक है। कपट नही दिखाई देता, अतः अच्छा है कि प्रायश्चित्त इसी पर छोड दू। ऐसी आलोचना करने के बाद दण्ड कम कैसे लेगा ? ऐसा सोचकर भिक्षु बोले : "जो उचित लगे, वैसा प्रायश्चित्त स्वय ले लो। मन मे जो बाते आई हो, जो परिणाम हुए हो, दूसरो को बुरे परिणामो से जो कहा हो, वह सब याद कर सब दोषों का एक साथ प्रायश्चित्त कर लो। इसके लिए मेरी आज्ञा है। आत्मा मे कोई शल्य न रखो।" इस पर चन्द्रभाणजी कहने लगे "मुझे आप ही प्रायश्चित्त दे।" इस तरह अनेक दिनो तक प्रायश्चित्त के लिए अनुरोध करते रहे। भिक्षु ने प्रायश्चित्त लेना उन्ही पर ही रखा।

वले करे घणो पिछ्याताप, हिवे प्रायाछित दो मोनें आप।
इम कीधी आलोवण ताय, जब गुर जाण्यो आयो ठाय॥
ओं तो प्राछित मागें म्हा आगे, म्हारे तो दीधां ठीक न लागे।
ओ तो कषाय वस बोल्यो जांण, प्राछित देउं इण अेलांण॥
कदे विकटे वले किण काल, वले भागी दे बाधी पाल।
प्राछित दीधो ते बोल सभाल, एक ओ पिण दे काढें आल॥
म्हे तो प्राछित या कने लीधो, मोसू डरतां पूरो नही दीधो।
म्हारा बोल्या रो करत निवेरो, तो मोनें साधपणों देन फेरों॥
कदे इसरोई दे काढे आल, तिणरो कुण काढे नीकाल।
इणरो आगा सू नही वेसास, इसरो जाण टालो दीयो तास॥
हिवडा तो न दीसे खामी, प्राछित लेवारो छे कामी।
वले कपट न दीसें ताय, तो इणरो देउ इणने भोलाय॥
ओ तो करें ओलावण एम, ओछो प्राछित लेसी केम।
इसरो जाणे कह्यो तिणने आंम, थने भासे जितों लेवो तांम॥
आड दोढ आई मन माय, ते पिण सारी याद अणाय।
जिण परिणामा कह्यो ओरां पास, सगला दोष भेला करें तास॥
तिणरो प्राछित ले थारे मेले, वले याद आवे तिण वेले।
थने दीधी छे आग्या ताहिं, कोइ सल मत राखजो माहि॥
जब ओ करवा लागो विलाप, मोने प्राछित देवो आप।
प्राछित माग्यो घणा दिन ताय, तो पिण दीधो उणने भोलाय॥[1]

इसके बाद भिक्षु चन्द्रभाणजी से बोले : "तुम बताओ वह प्रायश्चित्त मैं लू।" चन्द्रभाणजी बोले : "मुझे कुछ भी मालूम नही। आपको भाषित हो, वह ले।" इनको कई बार कहा पर दोष और प्रायश्चित्त कुछ नही बताया। एक ही उत्तर देते थे—"आपको भासे, वह ले।" इतना ही नही, भिक्षु के ऐसा पूछने पर चन्द्रभाणजी लज्जित हो दु.खित होते। भिक्षु ने सोचा—अभी तो चन्द्रभाणजी के परिणाम शुद्ध है पर कदाचित् पुन अग्नि की तरह प्रज्वलित हो जाएं और कोई टटा खड़ा करे, अत. भविष्य मे उत्तर देने के लिए आवश्यक है कि कुछ तप करू। इस तरह

---

१. अवनीत रास, ५६-६५

जान-अजान मे हुए दोप, उदय मे आए कर्मो की निर्जरा और कलह को उपशान्त करने की दृष्टि से भिक्षु ने तप किया।

पछे इणने कह्यो तू वताय, ते हूं प्राछित ले काढू ताय।
जव ओ कहे मोने खवर न काय, आपने भासे ते लेवो ताय॥
इणने वतलायो घणी वार, दोप प्राछित न कहे लिगार।
इणने पूछ्या रो उत्तर एह, आपने भासें ते लेवो तेह॥
पूछ्यां सीदावे सकोच पाम, जव इणरा जाण्या सुध परिणाम।
कदा फेर अगन ज्यू ओ जागे, वले विगट वेदो करे आगे॥
तो इणने उत्तर देवा काम, तप थोडो घणो लेउ ताम।
दोप निरजरा हेत लीयो जाण, कलहादिक मेटण री मन आण॥
ते तो केवल ग्यानी रह्या देख, पिण केतव न राख्यो एक।
जे कोई माहे राखसी सल, तो उणरी उणने मुसकल॥[1]

इसके वाद भिक्षु ने अनेक साधुओ के मध्य विशेप रूप से कहा—जिसमे जो दोप हो, वह शुद्ध हृदय से वताकर प्रायश्चित्त ले ले। इस तरह उस समय तक के एक भी कलह को खडा नही रखा। चन्द्रभाणजी ने भी उस समय तक के अपराधो के लिए वार-वार क्षमा-याचना की। सरल हुए, विनयी प्रतीत होने लगे। इस तरह सव हिल-मिलकर एक हो गए। कोई जुदा नही दिखाई देता था। "किसी मे कोई दोप दिखाई दे, तो उसे तुरन्त वता देना चाहिए"—इस पुरानी परम्परा को पुन स्थापित किया गया।

वले घणा साधा रे माय, त्याने दीयो वशेप जताय।
कोइ दोष जाणो जिण माय, प्राछित लेजो सुध वताय॥
अठा पेहली रा केतव अनेक, ते तो वाकी न राख्या एक।
अठा पेहली रो अपराध सारो, ओ पिण खमायो वारूवारो॥
सरल हूवो दीसे सुवनीत, आगे हूता तिणहीज रीत।
सहु हिल मिल ने एक हूआ, ओपरा नही दीसे जूआ॥
कोइ गण माहे दोप लगावे, ते निजर आपरी आवे।
तिणने देणो तुरत वताई, आगली रीत सेठी ठेराई॥[2]

दूसरी घटना

अपने दोपो के लिए योग्य प्रायश्चित्त लेना भिक्षु ने चन्द्रभाणजी पर ही छोडा था। उन्होने तुरन्त प्रायश्चित्त नही लिया। कुछ दिन निकले और चन्द्रभाणजी की भावना मे अन्तर आ गया। उनके मन मे तरगे उठने लगी—मैने इन पर अनेक मिथ्या दोप मढे थे। इनसे वे छिपे नही है। ये मेरा विश्वास कैसे करेगे? सव साधुओ के मन से मेरी प्रतीति हटा कही मुझ एकाकी को गण से वाहर न कर दें। अत अच्छा है कि मै कुछ साधुओ को अपने वश मे करू। उनका

---

१. अवनीत रास, ६६-७०

२. वही, ७१-७४

मन फंटा कर उनसे कौल (वचन) करू, जिससे कभी गण से दूर किया जाऊं तो अकेला न रहूं। वे भी मेरा साथ दे।[1]

ऐसा विचार कर चन्द्रभाणजी पुनः अन्दर ही अन्दर कुचक्र चलाने लगे। बाहर मे अति विनय दिखाने लगे और मन मे वैरी की-सी भावना रखने लगे।

टोलो फारणरी धारी मन माय, सकीयो नही करतो अन्याय।
ज्या भेलो रहे दिनरात, त्यांमूइज माडी वेसासघात ॥
बाह्य विनो करे दिनरात, अभितर मे खेल रह्यो घात।
घणो केलवे कपट नें कूरो, गुर गे धेषी होय गयो पूरो ॥
वेरी ज्यू रह्यों इस झाल, मुख सू करे लाल नें पाल।
विनो नरमाई करे वशेखो, छल छिद्र रह्यो नित देखो ॥
चोर ज्यू रहे दुष्ट परिणाम, साध साधवी फारवा काम।
अवनीत उधी उंधी धारे, आप विगड्यो ओरा ने विगारे ॥
एकला री आसग नही आवे, जब ओरां मे वेली उठावे।
तिणने लालच लोभ दिखावे, गुर मूं जावक भिडकावे ॥
जिण विध गुर सू मन भागे, तेहवी वात करे तिण आगे।
जिण विध जागे गुर सू धेष, तेहवी करें वात वशेष ॥[2]

तिलोकचन्दजी से बोले ·

आपा उपर छे गुर रो धेख, दाव वालसी अवसर देख।
एके कर साध साधवी सारा, आपा ने छोडसी न्यारा न्यारा ॥
आपा सू वोले नरम वशेखे, ते तो आपरों मुतलब देखे।
याने सुधा कदे मत जाणो, यारी परतीत मूल म आंणो ॥
जो आपामासू करे एक काल, तो एकण ने दे गण सूं टाल।
माहे राखें तो फोरा पारें, वले परतीत पूरी उतारें ॥
तो आपा पिण टोला मांहि, आपणा कर राखा ताहि।
त्यासू सेठो कर-कर करारो, तें गुर नें लखाव म पारो ॥[3]

तिलोकचन्दजी को इस तरह भ्रमित कर उनकी भावनाओ को कलुपित कर दिया। उन्हे पूरी तरह अपने वश मे करने के लिए उन्हे आचार्य पदवी का लोभ दिया :

इम कहि कहि उणने भरमावे, सिप पदवी रो लोभ दिखावे।
तिणसू कर कर घणी नरमाय, वले विविध पणे ललचाय ॥[4]

तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी की वातो से वहकावे मे आकर भिक्षु की आज्ञा का उल्लघन करने लगे। चन्द्रभाणजी के पूरे पक्षपाती हो गये। इस तरह दोनो परस्पर वचनवद्ध हो गये। परस्पर शपथपूर्वक एक-दूसरे के साथ गुटवदी कर ली ·

---

१. अवनीत रास, ७५-८१
२. वही, ८२, ८५-८९
३. वही, ९०-९३
४. वही, ९४

जो उणरे उदे हुवे मिथ्यात, तो उ मान ले उणरी वात।
परमारथ पिण पूरो न वूझे, कर्मा वस संवली नही सूझे।।
जव ओ गुर आग्या दे ठेली, अवनीत रों होय जाअे वेली।
तिणसू करे अग्यानी एको, वोल वध सेठा लेवे वशेखो।।[1]

तिलोकचन्दजी के मन मे आचार्य पदवी का लोभ छा गया। पूजा-श्लाघा की तीव्र आकाक्षा उत्पन्न हो गई और लोभवश उन्होने चन्द्रभाणजी के साथ पूरी साठ-गाठ कर ली। दोनो का मन एक हो गया और वे गुप-चुप वाते करने लगे—"भिक्षु से डरने की कोई जरूरत नही। वे कोई कडी वात कहे, तो उसका उत्तर कडे रूप मे ही देना चाहिए। हम लोग क्यों डरते रहेगे? साधु-साध्वियो मे हम लोगो की विशेप प्रतीति है। हम लोग मिलकर रहेगे तो हम लोगो से कौन भिन्न होगा? कभी परिपद् मे लोगो के सामने कोई कडी वात कहे, तो कड़ा ही प्रत्युत्तर देना है। मन मे कोई डर नही रखना है। इस तरह उत्तर न देने से लोगो मे हल्कापन जाहिर होगा। कोई गिनती नही रहेगी। अगर इस पर वे तोडे तो मुझ (चन्द्रभाण) से आकर मिले। अपनी वात हमेशा ऊपर रखे, जिससे हम लोगो का वजन वढे। यदि मै दूर भी होऊ, तो मुझसे आकर मिलें। मेरे प्रति कोई शका न रखे। मुझे अपना ही समझे। इस तरह अविनय मे वीर वन भिक्षु से झगडा करने की वाट जोहने लगे।[2]

इसके वाद अन्य साधुओ से मिलकर गुटवन्दी करने का प्रयत्न करने लगे। एक की वात दूसरे के सामने करने लगे, जिससे कि परस्पर कलह हो। इस तरह गण मे तोड-फोड की चेष्टा करने लगे। भिक्षु से मन फटे वैसी, वात करने लगे। इस दिशा मे उनकी चेष्टाओ का वर्णन इस प्रकार मिलता है.

हिवे मिल मिल ने करे चोरी, गण मे करे फारा तोरी।
उणरी वात करे उण आगें, जिण विध माहोमा कलह लागे।।
किणने कहे था उपर धेख, ते अरु-वरु ल्यो देख।
किणने कहे थारी कीधी उतरती, मो आगे पिण कीधी परती।।
किणने वले कहे छे आम, थाने लोलपी कहे छे ताम।
किणने कहे थाने कहिता वेणो, इणने मही कपडो नही देणो।।
किणने कहे थे प्राछित लीधो, ते तो मो आगे कहि दीधो।
थारी आसता एम उतारे, वले निन्दा करे पूठ लारे।।
किणने कहे थाने कहिता चोरो, किणने कहे थासू हेत थोरो।
किणने कहे थाने कहिता अविनीत, किणने कहे थारी करे अप्रतीत।।
किणने कहे थाने नही भणावे, किणने कहे थाने नही वतलावे।
किणने कहे थाने रोगी जाणे, पिण ओपध कदेय न आणे।।
किणने कहे थाने चोमासे काल, लावो खेतर वतावे टाल।
आछे खेतर' थाने नही मेले, सेपे काल पिण इमहीज ठेले।।
किणने कहे थारो न करे वेसास, माहे रहिवा री न करे आस।
जिण विध जागे गुर सू धेप, तेहवी करे वात वशेप।।

---

१. अवनीत रास, ६५-६६
२. वही, ६७-१०५

जिण विध गुर सू मन भागे, तेहवी वात करे उण आगें।
जिण विध गुर सूं हेत तूटे, तेहवी वात करे परपूठे॥
इण विध साध साधवी फाडे, गण मे भेद इण विध पाडें।
गुर सू परिणाम उतारे, सुध साधा ने मूढ विगारे॥[1]

साधुओ को चलचित्त करने के लिए चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी भिक्षु के अवगुण दिखाने लगे। उनमे झूठे-झूठे दोष बताने लगे। छिप-छिप कर निन्दा करने लगे। जो अपना हो जाता, उसकी प्रशसा करते।[2] इस तरह वे तोड-फोड़ मे प्रवृत्त हुए।

इण विध करे फारातोडी, गुर सू छाने छाने करें चोरी।
त्यांसू छाने छाने जिलो बाधे, जिण धर्म न ओलख्यो आधे॥[3]

वे मुह पर गुणगान करते और छिपे-छिपे जहर उगलते। कुछ समय तक भिक्षु को इस दुमुही चाल का पता नही चला।

एहवा गेरी थका गण माय, तिण री गुर ने खवर न काय।
मुख उपर तो करे गुणग्राम, छाने छाने करे एहवा काम॥
गुर रे मुख तो गुण गावे, छाने छांने अवगुण दरसावे।
मुख उपर तो वोले राजी, छाने छांने करे दगावाजी॥
वले वादे गुर ने जोडी हाथो, पगा मे देवे नित नित माथो।
वादताई करे गुणग्राम, सारा पेहली ले गुरा रो नाम॥
वले लोका ने वदणा सिखावे, त्यामे पिण गुर रो नाम घलावे।
लोका आगे करे गुणग्रांम, पिण मन रा मेला परिणाम॥[4]

भिक्षु ने देखा, चन्द्रभाणजी प्रायश्चित्त ले शुद्ध नही हो रहे है। समय निकाल रहे है। वातावरण से उन्हे इसका भी कुछ आभास हुआ कि चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी साधुओ और साध्वियो को वहकाने और फोडने का गुप्त प्रयास कर रहे है।[5] चन्द्रभाणजी को लग रहा था जैसे काफी साधु-साध्विया उनके पक्ष मे हो गये है। इससे उनकी अहकार-वृत्ति पुष्ट हो रही थी। यही कारण था कि उन्हे प्रायश्चित्त लेने की आवश्यकता प्रतीत नही हो रही थी।

अनुशासन की सुरक्षा के लिए भिक्षु को अव कडा कदम उठाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होने चन्द्रभाणजी को सावचेत किया, पर अहवश उन्होने ध्यान नही दिया। भिक्षु ने जव पाया कि चन्द्रभाणजी प्रायश्चित्त ग्रहण कर विश्वास उत्पन्न नही करते, तव उन्होने चन्द्रभाणजी को गण से दूर कर दिया और साथ ही तिलोकचन्दजी को भी।[6]

---

१. अवनीत रास, ११०, ११२-१२०
२. वही, १२१-२३
३. वही, १२४
४. वही, १२६-१३२
५. स० १८३७ के लिखित के अनुसार उन्होने सुखजी और मैणाजी को फोड़ा। संतोपजी और सिवरामजी का मन फेरा।
६. जयाचार्य के अनुसार दोनो को अलग-अलग छोडा था (जय (भि० ज० र०) ४६। सो० ५-६, प्रकरण के आरभ मे उद्धृत) पर ऐसा दूसरी वार के निष्कासन के समय किया था। पहली वार के निष्कासन के समय नही।

जोम अहकार मे नही मावे, त्यासू आलोवणी नही आवें।
प्राछित लेने सुध नही थावे, पूरी परतीत नही उपजावे॥
जव याने जाण्या दगादार पूरा, तव कर दीया गण सू दूरा।[1]

लेख के अनुसार यह घटना माडा गाव की है।[2]

तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी को दूर करने के साथ ही गण की आन्तरिक स्थिति मे वडा परिवर्तन आ गया। सव सहम गये। तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी के छिपे प्रयत्नो का भण्डाफोड हो गया। उनकी अशोभनीय चेष्टाओ के प्रति ग्लानि की भावना फैल गई। सवने उनके वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया। किसी ने उनका साथ नही दिया। उनकी आकाक्षाओ पर तुपारपात हो गया। जिनको अपना समझा, वे भी साथ नही गये।

गण मे करता था फारा तोरो, त्याने जाण्या घणा जणा चोरो।
सगला साधा मे परतीत खोई, त्यारी साख भरे नही कोई॥
त्यारे सिप पदवी री थी आस, तिण थी पिण हुआ निरास।
त्यारो वेसास आगा सू भागो, आत्म ने कलक मोटो लागो॥
गण मे कीधी थी वेसासघात, पिण कोइ न लागो हाथ।
ज्याने आपरा कीधा था फार, ते पिण न गया त्यारी लार॥
त्या पिण याने खोटा जाण, गुर नी आग्या कीधी परमाण।
अे तो गण माहे भूडा दीठा, सगला साधा मे पर गया फीटा॥[4]

कुछ साधु-साध्विया तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी की गुटवन्दी मे शामिल हुए थे। उन्हे अपनी भूल महसूस हुई। उन्होने दोप स्वीकार कर भिक्षु से प्रायश्चित्त ले अपनी आत्म-शुद्धि की।

तिलोकचन्दजी एवं चन्द्रभाणजी द्वारा मिथ्या प्रचार

साधु-साध्वियो के विपय मे निष्फल हो तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी श्रावक-श्राविकाओ को फोडने का प्रयत्न करने लगे। विल्ली की-सी चाल चलने लगे। भक्त नाहर की कथा को चरितार्थ करने पर तुल गये। वगुलाध्यानी हो लोगो को फदे मे डालने की चेष्टा करने लगे। भिक्षु की भरपूर निन्दा करने लगे। उन पर मनगढन्त दोप मढने लगे। मिथ्या दोपो का पिटारा खोल दिया।

साध तो कोइ हाथे न लागो, श्रावका सू करे हिवे ठागो।
त्या आगे वोले सूधा वशेख, मिनकी ज्यू रह्या छल देख॥
त्या देखता करे खप गाढी, न्हार भगत तणी चाल काढी।
वुगलध्यानी ज्यू वणीया ताहि, लोका ने न्हाखवा फद माहि॥
श्रावका री लागी त्यारे चाय, त्याने फारण रो करे उपाय।
मान वडाई ने पेट काज, हिवे कुण कुण करे अकाज॥

---

१. अवनीत रास, १३३ तथा १३४
२ १८ ३७।२०११ (लेख—तिलोकचन्द चन्द्रभाण रे दगा री विगत)।
३. जय (भि० ज० र०) ४६।मो० ४-६
४. अवनीत रास १३७-१४०

खोटी पेडी जमावण काजें, झूठ बोलता मूल न लाजें।
आपणा दोष सगला ढाके, ओरां सिर आल देता न सार्के॥
जाणे गुर मांहे दोष वताय, श्रावक श्रावका लेउ फटाय।
इसरी आसा वाधे मन माय, रात दिवस करे वकवाय॥
श्रावक श्रावका पूछे ताय, वले पूछे अनेराई आय।
वले पूछे त्याने ओर लोक, जव अे गुर मे वतावे दोख॥
घणां लोका मे झूठ चलावे, अणहुता दोप गुर मे वतावे।
आपरे मन मांने ज्यू वोले, आ गुणा रो पिटारो खोले॥
दोप वीसा तीसा रो ले नाम, पछे वोले अग्यानी आंम।
यामे दोपा रो कहू उनमान, ते सुणो सुरत दे कान॥
सो मण तणी खाड माहि, तिण मासू एक मूठी दिखाइ।
ज्यू छे दोप घणा या माहि, थाने थोडा सा दीया वताय॥[1]

वास्तविक वात को छिपाकर गण से दूर होने का कारण इस प्रकार वताने लगे :

घणी ढीलाइ छे टोला माय, ते तो लोका ने खवर न काय।
यारे खोट वणो छे माहि, परूपे जिम पाले नाहि॥
अे आचार घणोई दिढावे, पोते तों पूरो पालणी नावे।
अे तो कपट सू काम चलावे, यामे साधपणो नही पावे॥
म्हे यामे आगेई दोप वताया, याने प्राछित दीधो छो ताय।
पिण अे वले न चाले सूधा, तिणसू म्हे हो गया जूदा॥[2]

अपने दोपो को छिपा अपनी सफाई मे कहने लगे

म्हारे आचार री छे सगाई, यामे तो दीसे घणी ढीलाई।
जव म्हे असाध जाणीया याने, खोटा जाण छोडीया त्याने॥
म्हे मिनप तणो भव-हार, म्हे किम वूडा यारे लार।
म्हे करसा आतमा रो किल्याण, चोखो चारित पालसा जाण॥
किणने कहे याने प्राछित आवे, तो यासू लेणी न आवे।
तिण कारण म्हे नीकलीया वारे, कुण वूडसी यारे लारे॥
किणने कहे याने म्हे दड दीधो, जव तो प्राछित या लीधो।
वले या दोप सेव्या छे ताहि, प्राछित विन लीधा किम रहा माहि॥
किणने कहे याने दोपण लागा, यारा पाचोई महावरत भागा।
सुमत गुपत हुआ चकचूर, इण कारण यासू हो गया दूर॥
किणने कहे यांमे नही आचार, दोप सेवता न डरे लिगार।
अणाचारी न लागे प्यारा, तिण कारण यासू हो गया न्यारा॥
किणने कहे अे तो वोले फिरता, झूठ सू नही दीसे डरता।
कूड-कपट घणों यां माहि, यारा वोल्या री परतीत नाहि॥

---

१. अवनीत राम, १४१-१४६

२. वही, १५०-५२

किणने कहें अे तो सुध न चाले, दोप सेवे तो कुण याने पाले।
जे कोइ दोप काढे या माहि, तिणसू इस भ्राल राखे ताहि॥
हूतो कहितो याने दोप देख, जव अे म्हासू पिण करता धेख।
म्हारी वात ने देता उडाय, मोने तो राखता दवकाय॥
म्हारे हुती घणी मन माय, एकला री आसग नही काय।
हिवे तो म्हे हुआ छा दोय, दोप सेवण न द्या कोय॥[1]

मूल वात को छिपाकर अपने निकलने का दूसरा कारण इस प्रकार वताने लगे .

किणने कहे यांमे दोपण पावे, विविध प्रकारे प्राछित आवे।
म्हामे दोपण मूल न पावे, मिच्छामि दुकड पिण नही आवे॥
किणने कहे या कह्यो म्हारे पास, एक लिखत कर द्यो मोने तास।
जो थे नीकलो टोला वार, जव थाने करणा नही च्यारू आहार॥
पाछे भागल तूटल रहे ज्याने, सगला पाना सूप देणा त्याने।
इसरो लिखत कर द्यो कहे म्हांने, इण कारण यासू हो गया काने॥
अे तो ढीला पारण रे काम, एहवा वध वाधे ताम।
इसरा वध मे परा नही ताहि, म्हारे गुण रहसी ढीला माहि॥[2]

जिनसे द्वेष रखते थे, उन पर मिथ्या कलक चढाने लगे। उनमे अनेक दोप वताने लगे। कपोल-कल्पित वाते कहने लगे। दिन-रात उनकी हेलना-निन्दा करने लगे। विपवाद फैलाने लगे। सारे साधुओ को असाधु कहने लगे। पहला गुणस्थान वताने लगे।[3] उस समय की उनकी चित्तवृत्ति का भिक्षु ने निम्न प्रकार चित्रण किया है

जिण तिण आगे इण विध वोले, ओगुणा रो पिटारो खोले।
यारे ओहिज मुदे ध्यान, यारे ओहिज मुदे ग्यान॥
जाणे गुर ने खोटा सरधाय, श्रावक श्राविका लेउं फटाय।
जाणे म्हे यारी वदणा छुडाय, सगला ने पारा म्हारे पाय॥
जो जांणे याने लोक खोटा, तो म्हांने जाणे अे पुरुप मोटा।
जिण विध गुर सू मन भागे, तेहवी वात करे तिण आगे॥
जिण विध गुर सू हुवे उदास, तेहवी वात करे तिण पास।
जिण विध गुर सू हेत तूटे, तेहवी वात करे परपूठे॥
जिण विध जागे गुर ने धेप, तेहवी करे वात वशेप।
जिण विध गुर ने न जाणे आछा, जिण विध जाणे आपने साचा॥[4]

पर जैसे-जैसे ये असत्य प्रचार करते जाते थे, वैसे-वैसे सत्य अधिक प्रकट होता जाता था। लोग इन्हे धर्म-च्युत समझने लगे। लोगों की दृष्टि मे ये गण मे भेद डालने वाले सिद्ध हुए। लोगो ने इन्हे मिथ्याभाषी समझा

---

१. अवनीत रास, १५३-१५४, १६०-१६७
२. वही, १६६-१७२
३. वही, १५५-१५६, १७४
४. वही, १८२, १८३-१८७

यां तो कीधो अकारज खोटों, याने दोपण लागो मोटो।
गुर सू छाने छाने बांध्यो जिलो, याने कर्मा दीधो टिलो॥
गण मे कीधी फारा तोरी, करवा लागा छाने छाने चोरी।
गुर सू माडी वेसासघात, त्यारी परगट होय गई वात॥
वले सेवीया दोप अनेक, ते पिण चावा हुआ वशेप।
तिणरो प्राछित न हुआ आरे, जव काढ दीया गण वारें॥
खोटा जांण ने छोडीया याने, ते वात न राखी छांने।
याने चोडे छोड्या साख्यात, तिण मे कूड नही तिलमात॥
अे तो कहे छें घणा लोका माहि, म्हे छोड्या छे यानें ताहि।
इण विध वोले छे परपूठ, ते तो निश्चेइ वोले छे झूठ॥
किणने कहे या छोडीया म्हाने, किणने कहे म्हे छांडीया याने।
इम झूठ वोले जाण जाण, सके नही मूढ अयाण॥
जिण किरतव सू कीया वारे, तिण वात रो नाम न काडे।
हिवे ओर री ओर ले उठे, अे तो लाग रह्या मत झूठे॥
आप माहे छे दोप अनेक, ते तो वारे न काढे एक।
उलटो ओरा मे दोप वतावे, झूठ मे झूठ जाण चलावे॥
ओगुण सुण सुण ने समदिष्टि, याने जाणे धर्म सू भिष्टि।
यारा वोल्या री परतीत नाणे, झूठ मे झूठ वोलता जाणे॥[1]

गण में वापिस आने की घटना

अव चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी से अपनी स्थिति छिपी नही रही। उनका अहम् कम हुआ। आपे मे आये। गण मे लेने की प्रार्थना करने लगे। भिक्षु ने उनसे वातचीत की। उनमे अनुताप और प्रायश्चित्त की भावना देखी। सरल पाया। गण मे लेने के पूर्व चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी के साथ जो करार निश्चित हुआ, उसका विवरण स्वामीजी ने रास मे किया है.

श्रावक आरे करता दीसे नाहि, जव अें प्राछित ओढे आया माहि।
आ आलोवण करणी थापी ताय, प्राछित पूरों लेणो ठेहराय॥
पाचू पद विचे दे आया गण माय, परतीत पूरी उपजाय।
तिणरा साखी ग्रहस्थ ठेहराय, तठा पछे लीया गण माय॥
याने पाछा लीया गण माहि, जव यासू पेहली वात ठहराइ।
सिप सिपणी न करणा सोय, जुदो टोलो न वाधणो कोय॥
कदा गुर ने पिण दोपण लागे, तो कहणो नही ओरा आगे।
गुर नेइज कहिणो सताव, घणा दिन नही राखणो दाव॥
वले फाडा तोडा री वात, किणसू करणी नही तिलमात।
जिलो वाधणो नही माहोमाहि, फेर साथे ले जावणो नाहि॥

---

१. अवनीत रास, १९२-२००

पाचू पद विचे दीया ताय, आलोवण प्राछित पूरो ठेहराय।
आग्या मे चालणो रूडी रीत, पूरी उपजावणी परतीत ॥
आगा विचेह रहिणो वनीत, वाकी सर्व आगली रीत।
इत्यादिक पेहली सेठी ठेहराय, पछे गण मे लेणा थाप्या ताय ॥
एक वले परतीत उपजावो, वले कर्म जोगे न्यारा थावो।
तो न वोलणा अवगुणवाद, इसडों करणो नही विपवाद ॥
जिण वोल सू वले तूट जाय, तेहिज वोल कहिणो लोकां माय।
ओर वोल न कहिणो एक, आ परतीत उपजावो वशेख ॥
जव ओ पिण वोल्यो चोखी वाणो, हिवे इण भव मे सका मत आणो।
तो पिण ओ वोल गाढो खराय, इत्यादिक घणा वोल जताय ॥
पछे दोय सूस कराय, तठा पछे लीया गण माय।
आलोवणा प्राछित पूरो ठेहराय, अनन्ता सिध विचे दे आया माय ॥[1]

उपर्युक्त शर्ते तय हो जाने के वाद तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी को गण मे लिया गया।

उन्होंने पूरा विश्वास उत्पन्न किया। प्रायश्चित्त लेना स्वीकार किया।

भिक्षु आदि किसी भी साधु-साध्वी को कोई प्रायश्चित्त नही आया।

तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी को चेलावास मे गण मे शामिल किया।[2]

आलोचना भिक्षु के सम्मुख लेनी निश्चित हुई और प्रायश्चित्त देना मुनि तिलोकचन्दजी पर रखा गया।[3]

तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी वड़े सरल होकर गण मे आये। भिक्षु और साधु, जिन पर उन्होने दोप मढे थे, सवको साधु मानकर वन्दना की। किसी मे दोप होने की वात तव मुह से नही निकाली।

टोला रा साध साधवी माहि, किणरे प्राछित ठेहरायो नाहि।
किणही प्राछित मूल न लीधो, मिच्छामि दुकड पिण नही दीधो ॥
किणही मे न काढ्यो वक, सगला ने कर दीधा निसक।
प्राछित विण दीधा आया माहि, सगला ने सुध जाणी ताहि ॥[4]

लोगो ने जाना—गण विशुद्ध था। आचार्य भिक्षु आदि साधु-साध्वियो मे कोई दोप नही था। तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी ने मिथ्या दोप मढे थे। यदि वास्तव मे किसी साधु-साध्वी मे दोप होता, तो उसके लिए वे प्रायश्चित्त की वात उठाये विना नही रहते।

यारी तरफ सू चोखा जाण, गुर रे पगा पडीया आण।
जो ए दोप जाणे किण माहि, तो ए आगो काढें जिना नाहि ॥

---

१. अवनीत रास, २०१, २०२, २५१-२५६
२. (कूड कपट नै दगारी विगत) ३७।२०।३, लेख—तिलोक नै चदभाण रा (३७।२१ लिखित)
३. लिखित ३७।२१ (स० १८३७ माघ वदि ६ का लिखित)
४. अवनीत रास, २०३-२०४

ज्यांनें असाध कह्या था मुख सूं, त्यांरा वांदीया पग मसतक सूं ।
त्यांनें प्राछित मूल न दीधो, उलटो आप प्राछित ओढ लीधो ॥
ज्यांरा पांचूं व्रत कह्या भागा, त्यांरै हीज पगां आय लागा ।
ज्यांनें कह्या था लोकां में खोटा, त्यांनेंहीज लेखव लीया मोटा ॥
ज्यांमें काढ्या था अनेक दोष, ते तो कर दीया सगला फोक ।
उलटो आपरें डंड ठेंहराय, इण विध आया गण मांय ॥
ज्यांनें ढीला कहिता ताण ताण, वले भागल कहिता जांण जांण ।
ज्यांरी वंदणा देना छुडाय, त्यांराहीज पोते वांदीया पाय ॥
ज्यांनें कहिता पेहलें गुणठाणें, त्यांराहीज पग वांदीया आणें ।
अणाचारी कहिता दिनरात, तिका पाछी न पूछी वात ॥
ज्यांनें प्राछित देता था आप, ते तो जावक दीयो उथाप ।
उलटो आप डंड कराय, गण मांहि पेंठा छें आय ॥
कहितो थो मोंमें दोष न पावें, मिच्छामि दुकडं पिण नहीं आवें ।
तिणनें प्राछित देणों ठेंहराय, नठा पछें लीयो गण मांय ॥
कहितो आलोवण करूं नांहि, आप छांदे रहिसूं गण मांहि ।
तिण आलोवण करणी थाप, ते प्राछित पिण ओढीयो आप ॥
ज्यांमें कहिता कपट नें झूठ, हिला निन्दा करता परपूठ ।
त्यांनें उत्तम पुरुष ठेंहराय, प्राछित ओढ आया त्यां मांय ॥
ज्यांनें खोटा सरधावण ताय, कीधा था अनेक उपाय ।
त्यांनें तिरण तारण ठेंहराय, प्राछित ओढे आया त्यां मांय ॥
त्यांरा थकां हुंता गेंरी, गण रा हुआ था पूरा वेंरी ।
सर्व साधां नें असाध सरधाया, त्यांमेंहीज डंड ओढ नें आया ॥
यां तो च्यार तीर्थ रे मांय, कीधो थो घणो अन्याय ।
पिण प्राछित ले आया मांहि, टोला री परतीत अणाई ॥
घणा श्रावक हुआ निसंक, यांमेंहीज जाणीयों वंक ।
यां तो दोष बताया यां मांय, आ तो झूठी कीधी बकवाय ॥[1]

लोगों की ऐसी भावना बनती स्वाभाविक थी। बात असत्य भी नहीं थी। ऐसी भावना को कोई रोक भी नहीं सकता था, पर तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी की अभिमानी प्रकृति उन्हें पुनः कचोटने लगी। आचार्य भिक्षु की ऋजुता, सत्य और विनम्रता उन्हें अभिशाप से लगने लगे। उनके अहं ने उनके मन को आलोचना और प्रायश्चित्त करने से विमुख कर दिया। भिक्षु ने उन्हें अनेक बार आलोचना के लिए कहा, पर उनकी भावना आलोचना करने की मालूम नहीं दी। मुनि तिलोकचन्दजी पर प्रायश्चित्त देने का भार था। उन्हें भी चेताया, पर उन्होंने कहा—चन्द्रभाणजी को ठीक लगेगा, वह प्रायश्चित्त वे स्वयं ले लेंगे। मैं उन्हें प्रायश्चित्त नहीं दूंगा।

१. अवनीत रास, २०५-२१५, २२१-२२३

जिण दोप थी काढीया वार, ते पिण दोप सगला चितार।
ते आलोवणा गुर हजूरो, तिणरे प्राछित लेणों पूरो॥
सगला साधा ने असाध सरधाया, त्यामे दोप अनेक वताया।
ते तो दोप साधा मे न पावे, तिणरो प्राछित पिण याने आवे॥
ते पिण आलोवणो गुर पास, प्राछित लेणो आण हुलास।
ते आलोवण करणी न आवे, प्राछित पिण लीधो न जावे॥
उणने कह्यो घणीवार ताम, पिण आलोवण रा नही परिणाम।
ओ तो भारीकर्मो नही सरलो, तिणने आलोवणो काम करलो॥
जिण ऊपर प्राछित ठेहरायो, तिणने पिण घणो जतायो।
इणनें प्राछित दीजो भारी, इणरी सक म करजो लिगारी॥
इणने प्राछित पूरो दीजो, थानें दोप लागे ज्यू म कीजो।
जव इण पिण नही मानी वात, इणरी छूटी नही पखपात॥
इणरेई दगो मन माहिं, ते कहे हुतो प्रायछित देउ नाहिं।
जे दोप भ्याससी ते उण माहि, उणरो उहिज ले काढसी ताहि॥[1]

प्रायश्चित्त लेने की बात स्वीकार कर वे गण मे आये, पर अभिमान नही छूटा, इससे प्रायश्चित्त लेने मे आनाकानी करने लगे।

गुरु के सामने न ले अपने आप प्रायश्चित्त ले लेने को तिलोकचन्दजी के प्रस्ताव मे भिक्षु को सरलता और विनय नही लगा। चन्द्रभाणजी भी भिक्षु के सामने प्रायश्चित्त न ले स्वय ले, इसमे भी उन्हे अविनय लगा।

उणरो प्राछित उणने भलावे, गुर आगे लेणो नही वतावे।
जव जाण्यो इणने अवनीत, इणने उधो सूझ्यो विपरीत॥
आप तो उणने प्राछित न देवे, उणरे मेले उ प्राछित लेवे।
गुर आगे लेण री नही वात, ओ उघाडोई मिथ्यात॥
गुर आगे प्राछित लेवे नाहि, आप छादे लेवे मन माहि।
जव तों चोरेई जांणो अवनीत, त्यामे साध तणी नही रीत॥[2]

चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी को गण मे लेते समय निश्चय हुआ था कि गण मे रहते अथवा वाहर मे भी किसी साधु, साध्वी या गण का 'अवर्णवाद' नही वोला जायेगा। चन्द्रभाणजी ने कहा—मैने तो गण मे रहू, तव तक के लिए ही यह प्रत्याख्यान किया है। इस सम्वन्ध मे जो घटना घटी वह प्रकार है :

हूं तो ज्या लग रहिसू गण माहि, किणरो अवगुण वोलसू नाहिं।
म्हे तो सूस जठेताई कीधो, जावजीव रो सूस न लीधो॥
इणने जावक वदल गयो जाण, जव फेर पूछ्यों मीठी वाण।
यारी परख करवा कह्यो आम, सगला सूस करो एक ताम॥
कदा आहार पाणी तूट जाय, तो किण रा अवगुण न वोलणा ताय।
जिण वोल सू तूट जाअे आहार, तेहिज वोल कहिणो विचार॥

१. अवनीत रास, २२७-२३३
२. वही, २३४-२३६

ओर अवगुण न बोलणा जाण, ओं तो सगला करो पच्चखाण।
जब यां पाछो उत्तर दियो एम, ओं तो न करा म्हे नेम ॥
ओं सूस म्हारे ठीक न लागे, कदा तूट जाओ बले आगे।
पेहला सूस कीयो ते भागो, आगा सू इम बोलवा लागो ॥[1]

इस पर भिक्षु ने सोचा

जब इणने जाण्यो घणो अवनीत, साधु तणी न जाणी रीत।
ओगुण बोलण सू काई काम, इणरा दुष्ट जाण्या परिणाम ॥
ओगुण बोलण रो डर दिखाय, गण माहे रहिता जाण्या ताय।
आगा ज्यू जाण्यो झूठ रो चालो, ते कदे दे काढे मोटोई आलो ॥
अे दगा सू आया दीसे ताहि, इसडा आछा नही गण माहि।
तो याने वेगा देणा छिटकाय, इमडी धारी मन माय ॥[2]

जब मुनि तिलोकचन्दजी ने यह कहा कि मै प्रायश्चित्त नही दूगा, जो उचित होगा वह चन्द्रभाणजी स्वय ले लेगे, तब अन्य साधुओ ने प्रायश्चित्त के विपय मे जो बात ठहराई गई थी वह उन्हे याद दिलाई और निर्णय के अनुसार जनता मे प्रायश्चित्त लेने की बात पर डट गए। तिलोकचन्दजी निर्णीत बात से अलग होने की हिम्मत नही कर सके।

इसके अनन्तर तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी के पास गए तथा उनसे यह बात कही। चन्द्रभाणजी बोले—आपसे प्रायश्चित्त लूगा तो और किसी को कहने नही दूगा। इस पर तिलोकचन्दजी ने चुप्पी साध ली। चन्द्रभाणजी ने एक नई ही बात खडी कर दी। प्रायश्चित्त के विपय को लेकर प्रसग उठा उसका रास मे निम्नानुसार वर्णन है

ते आलोए प्राछित लेणी नावे, तिणसू झूठी झूखलायां खावे।
जाणे आगे ठेहराड ते भेलो, प्राछित लेवू म्हारे मेलो ॥
ओ पिण खाचातांण माडी, जाणे टल जाये ज्यू म्हारी भाडी।
जब साधा घणो दबकायो, घणो दोरोसो आरे करायो ॥
गृहस्थ बेठा ठेहराइ बात, ते प्रसिध करणी विख्यात।
जिण मे हुतो जिण रो जाणे वक, ज्यू भागे लोका री सक ॥
आगे कीधो थो तिम ठेहरायो, प्राछित लेणों आरे करायो।
जब उणने कह्यो इण जाय, जब ऊ ओर ले उठीयो ताय ॥
जो हू प्राछित था आगे लेसू, ते ओर आगे कहण नही देसूं।
साधा री रीत तिम कीधो कहिणो, प्राछित रो नाम किणरो नही लेणो ॥
ओर कहिवा रो कीधो छे टालो, सगला सूस किया ते सभालो।
ओ तो झूठो ले उठीयो झोर, साधा तो सूस कीधो ते ओर ॥
जो सूस कीयो जाणे एह, तो दूजो क्यूं आरे हुओ तेह।
लोका कने प्राछित कहिणो थाप, उण कने जाय दीयो उथाप ॥
ओ तो उणरेइज वल झूझे, पोते काई सवली नही सूझे।
जाणे ओ करसी म्हारे रूडो, इणरे पाछे लागो पूरो ॥

१. अवनीत रास, २६९-२७३
२. वही, २७४-२७६

ओर साधा प्राछित लीधो नाहि, त्याने कहवा न दू लोकां माहि ।
जो उवे कहे म्हाने प्राछित न दीधो, तो हू पिण केसू म्हेई न लीधो ॥
जव इणने वले पूछीयो जाण, कोई ग्रहस्थ पूछे मोने आण ।
थारा सूस भागा सुणीया तास, थाराइज सिपां रे पास ॥
नही भागा ने नही भागो तो कहिसू, अण वोल्यो वेठो किम रहिसू ।
इसडो आल माथे किम लेसू, जव ओ कहे यू तो कहिण न देसू ॥
साधा री रीत कीधो कहिणो, ओर उत्तर पाछो नही देणो ।
आमना करे देवो जणाय, तेहवी पिण नही काढणी वाय ॥
जो थे कहिसो म्हामे दोप नाहि, तो हू कहि देसू दोप या माहि ।
म्हे कह्यो ते नही छे झूठ, तो वले वेदो जासी उठ ॥
जिण प्राछित नही लीधो छे ताय, तिणने न लीयों न काढणी वाय ।
जिण प्राछित लीधो छे ताम, तिणरो पिण नही लेणो नांम ॥
लीधा न लीधा रो नाम नकारो, ग्रहस्थ आगे न कहिणो लिगारो ।
जो थे कहिसो इणने प्राछित दीधो, तो हू कहिसू म्हें मूल न लीधो ॥
इसडो आल कुण ओढे माथे, प्रतीत जाए इण वाते ।
ग्रहस्थ ने भर्म ओर रो होवे, तो यारे वदले परतीत कुण खोवे ॥
ग्रहस्थ पिण साचा ने झूठो जाणे, झूठा ने साचों कहे अजाणे ।
ग्रहस्थ दोनू प्रकारे हुवे भारी, केयक होय जाए अनत ससारी ॥
जाण ने साचा झूठा रो, सरीखो भर काढे हूकारो ।
एहवी मिश्र भाषा सू हुवे खुवारी, ज्यू वणी वसुदेव राजा री ॥
इसडो कुण करसी अन्याय, वले निज परतीत गमाय ।
कोइ जाणे यारे सिपा री चाहि, याने प्राछित विण लीया माहि ॥
आप प्राछित लीयो ते छिपावे, न लीयो तिण ने दीयो सरधावे ।
लोका ने कहिवा न दे इण काम, यारा दुष्ट घणा परिणाम ॥
म्हाने प्राछित लीयो जाणे लोक, तो म्हामे जाण लेसी दोप ।
नही तो यामे हिज जाणे दोष, याने प्राछित लीयो जाणे लोक ॥
इसडी गूढ माया सेवे, ओर साधा सिर आल देवे ।
इसडा आछा नही गण माहि, जाण्यो वेगा दीजे छिटकाइ ॥[1]

चन्द्रभाणजी निर्णय के अनुसार आलोचना कर प्रायश्चित्त लेना नही चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि पहली बार और इस बार के दोषो का प्रायश्चित्त एक ही साथ स्वय ले लू। मुनि तिलोकचन्दजी भी अपने सिर से इस वला को टालना चाहते थे। इसलिए सरल मन से प्रायश्चित्त लेना स्वीकार करने पर भी चन्द्रभाणजी निर्णय से निकलने के लिए वडी खींचतान करने लगे। उन्होने कहा, यदि किसी से यह कहा जायेगा कि चन्द्रभाणजी ने प्रायश्चित्त लिया है तो मै इस वात को इनकार कर दूगा। यदि स्वामीजी कहेगे कि हम लोगो मे दोप नही हैं तो मैं कहूगा कि इनमे दोष है। प्रायश्चित्त लिया या नही, ऐसा गृहस्थो को नही कह सकेगे। इस तरह

---

१. अवनीत रास ढाल : १।२६०-६७, ८०-९३

चन्द्रभाणजी गूढ माया से काम लेने लगे। भिक्षु ने सोचा, अब इन्हें और अधिक गण मे रखना ठीक नही।

एक बाई ने चन्द्रभाणजी से पूछा—आप भिक्षु से अलग कैसे हुए थे? इस पर एक अन्य साधु ने कहा—अब तो सम्मिलित हो चुके है। इस पर जो घटना घटी, वह इस प्रकार है:

इणने एक बाई पूछ्यो एम, सामीजी सू जुदा हुवा केम।
जब ओर साध बोल्यो इम वांण, अब तो गुरा रे पगे पडीया आंण॥
जब उण साध ने कह्यो इण एम, इसडो थे बोलीया केम।
म्हाने पगा पडीयो कह्यो कांय, हू तो करार करे आयो माय॥
आज पछे थे इसडी वाय, मूढा बारे म काढजो ताय।[1]

भिक्षु ने देखा, इनका मन सरल नही हुआ है। उन पर विश्वास नही किया जा सकता। गुरु के आराधक नही हो सकते।

छोडी जिण मारग री रीति, इणरी जावक नावे परतीत।
ग्रहस्थ आगे कहिवा रा पचखाण, ते पिण सूस भागीयो जाण॥
प्राछित ठेहरायो घणा री साखी, ते बदल गयो अन्हाखी।[2]

इन सब कारणो से भिक्षु ने उसी समय निर्णय ले चन्द्रभाणजी को गण से दूर कर दिया।

इस तरह अभिमानी प्रकृति के कारण बात पुन बिगड गयी।[3]

यह घटना खैरवे की है।[4]

चन्द्रभाणजी को पृथक् करने के बाद भिक्षु ने मुनि तिलोकचन्दजी से कहा—"यदि तुम्हारी चन्द्रभाणजी से साठ-गाठ नही है और तुमने तोड-फोड नही की है तो तुम गण को मत छोडो। यदि तुम गये, तो यही समझा जायेगा कि तुम्हारा उसके साथ गठबन्धन है और तुम लोगो ने मिलकर तोड-फोड की है।" यह कहने पर तिलोकचन्दजी बैठे रहे, पर उनके परिणाम मलिन थे। वे चन्द्रभाणजी का पक्षपात करते थे और उनसे मिल-जुल कर बातचीत करते थे। चन्द्रभाणजी और वे एक होकर गण मे रहे। इनकी इच्छा थी कि ये गण मे रहे पर चन्द्रभाणजी के बिना रह नही सकते थे। अत बीच-बीच मे उन्हे गण मे लाने की बात चलाते। इस सम्बन्ध मे तिलोकचन्दजी और भिक्षु के बीच जो बातचीत हुई वह इस प्रकार है .

आगे ठेहरायो प्राछित ताहि, ते प्राछित दे लेवो मांहि।
इणरो परमारथ छे एह, मो उपर प्राछित थापों तेह॥
जब उणने पाछो कह्यो एम, तो उपर थापा प्राछित केम।
थारे उणरी दीसे पखपात, वले भेली दीसे थारी बात॥
जब इण कह्यो मो उपर थे थाप्यो, ते थेइज कांय उथाप्यो।
जब इणने कह्यो वले आम, उणहीज उथापीयो ताम॥

---

१. अवनीत रास, ३०३-३०५

२. वही, ३०६-३०७

३. और अधिक विस्तार के लिए देखिए अवनीत रास, २३७-५९ तथा २९४-३०८।

४. पछै आलोवणा करै नही, प्राछित लेवै नहीं तिण सुं गाव खेरवो माहे न्यारा कीधा (३७।२१ लिखित)

उण कह्यो प्राछित लेऊ नाहि, तिणने किण विध राखा मांहि।
जब इण झूठ वोले तिणवार, उणरी वात लीधी सवार॥
उ तो प्राछित वदले क्याने, उणने आवे जितो देणो म्हाने।
फाडा तोडो न कीयो म्हे सोय, तिणरो प्राछित न लेउ कोय॥
उ तो बदलीयो ते इण न्याय, ओ वोल्यो इसडो झूठ वणाय।
जब उणने दीयो जताय, तोसू प्राछित दीयो न जाय॥
म्हे तो सरल हुवो जाण्यो ताह्यो, जव था उपर प्राछित ठेहरायो।
अब तो सरल न दीसो एक, छल खेलता दीसो अनेक॥
उणने प्राछित भारी आवे, ते तोसू पूरो दीयो नही जावे।
तोने प्राछित कुण भलावे, थारी परतीत भूल न आवे॥
तू प्राछित दीधा रो करे नाम, ते तो खोज भागण रे काम।
तू प्राछित रो करे गालागोलो, इसडो दूजो कुण वेठो छे भोलो॥
जो उणरे रहिणो होसी गण माय, तो गुर कने प्राछित लेसी आय।
गुर छोडे तोकने लेवे ताय, ते कारण मोहि वताय॥
आ उघाडा दगा री वात, मिल मिल ने करो वेसासघात।
थामे साध तणी नही रीत, उघाडाई दीसो अवनीत॥[1]

भिक्षु ने कहा—जो गुरु के सम्मुख प्रायश्चित्त लेने से इनकार करता है उसको कभी अच्छा नही मानना चाहिए। ऐसे साधु को गण मे रखने से भला नही होता। भिक्षु के ऐसा कहने पर तिलोकचन्दजी ने चन्द्रभाणजी का ही पक्ष लिया। भिक्षु ने फिर कहा चन्द्रभाणजी ने तुम्हे सूरि (आचार्य) पद का प्रलोभन देकर फटाया है, पर ध्यान मे रखना सूरि का पद तो तुम्हे मिलता नही दिखता। सूरि के वदले सूरदास की पदवी न मिल जाये। चन्द्रभाणजी तुम्हे कही जगल मे छोडते लगते है। पर तिलोकचन्दजी का मन उसी ओर झुका रहा।[2] भिक्षु ने इन्हे भी गण से दूर कर दिया। पहली वार दोनो को साथ छोडा था। इस वार एक-एक कर दोनो को छोड दिया।[3]

यह घटना खैरवा की है।[4]

गुर कने प्राछित लेवा ने पाछो, तिणने कदे म जाणजो आछो।
इसडाने राखे गण माय, तो सगला ने आछो नही थाय॥
जव उणरी पख मे वोल्यो पूरो, जव इणनेइ कर दीयो दूरो।
इणनेइ नही राखियो माय, जव ओ उण सू भेलो हुवो जाय॥

---

१. अवनीत रास, ३१४-३२४
२. जय (भि० दृ०), दृ० ७०
३. लेखपत्र १८३७।२०।४ मे लिखा है—"आलोवण करै नही प्राछित लेवै नही जद गांव खेरवा माहै पेहिला तो चन्द्रभाण ने छोड्यो पछै तिलोकचन्द ने छोड्यो।" जयाचार्य के अनुसार दोनो को साथ छोडा था। देखिए जय (भि० ज० र०) ४६।सो० ११ (इस प्रकरण के आरभ मे उद्धृत)।
४. वही

यांनें छोडीया पेंहली वार, दोया ने साथे काढीया वार।
हिवे छोडीया दूजी वार, एकीकाने काढीयो वार॥[1]

तिलोकचन्दजी की मानसिक स्थिति :

गण से अलग करने के बाद तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी के पास चले गये। चन्द्रभाणजी ने तिलोकचन्दजी को आचार्य-पदवी का लालच दे रखा था। इसके लोभ मे किस तरह फसे हुए थे। इसका चित्रण इस प्रकार है :

एक आचार्य पदवी रो भूखो, कदागरों करवा ढूको।
पदवी मूढे आणे वारूवार, कहितो पिण नही लाजें लिगार॥
जिणने थाप्यो आचार्य आप, तिणने तो जाणें देउ उथाप।
आचार्य पदवी हू लेऊ, जांणें सगला रो नायक वेऊ॥
जिणने थाप्यो आचार्य जाण, जावजीव रा करे पचखांण।
तिण मे अनंता सिद्धा री साख, त्या सूरा री करवा माडी राख॥
आचार्य पदवी रे काजें, सूस भाग तो पिण नही लाजें।
हूवो पदवी रो मोह मतवालो, आत्मा नें लगावे कालो॥
इसडो अभिमानी नें अवनीत, माडी गछवास्या वाली रीत।
पदवी पदवी करतो दीठो भूडो, अवनीत सू एको कर वूडो॥[2]

तिलोकचन्दजी का गण मे नही रह सकने का एक दूसरा भी कारण था। भिक्षु ने इसे निम्न रूप मे प्रस्तुत किया हे

जो उ न जाअे उणरी लार, तो उ कर दें इणरो उघाड।
कदा दसमों प्राछित वतावे, ते इणसू पछे लीयो न जावे॥
ओ जाणें म्हारी पारेला कूक, अठा सू पिण जाउंला चूक।
भेला होय ने कीधा छे कर्म, चावा हुवा निकल जाअे भर्म॥
जो आप मे खामी न हुवे लिगार, तो कुण जाए भागल री लार।
ओ तो आपरा किरतव देखें, ते गुर सू भेलो रहे किण लेखे॥
जो उणने प्राछित आप ओढावे, तो उ इणनें उतरो वतावे।
तिणसू उणनें प्राछित देणी नावे, आप सू पिण लेंणी न आवे॥
इणरे इसडी वणी छे आय, आड दोड मे पडीयो जाय।
अवनीत सू गाढी जोडी, गुर सू तो पेहलांइज तोडी॥
गुर कीधो थो उपगार भारी, ते तो घाल दीयो विसारी।
अवनीत रे जिले जूतो, नर नो भव खोय विगूतो॥[3]

निष्कासन के वाद गृहस्थो से वार्तालाप

निकलने के वाद दोनो सम्मिलित हो भिक्षु की हेलना-निन्दा करने लगे। एक गृहस्थ के

१. अवनीत रास ३२५, ३२६, ३३३
२. वही, २९४-२९८
३. वही, ३२७-३३२

साथ इनकी वातचीत हुई, वह इस प्रकार है :

प्राछित न ले तिणसू काढ्या वारे, तिण वात रो नाम न काढे।
उलटो दोप साधा मे वतावे, झूठ बोलतो सक न ल्यावे ।।
जव गृहस्थ बोल्या वाय, यांमे दोप हुवे ते द्यो वताय।
जव ओ पाछो बोल्यो तिणवार, यारा दोपा रो घणों विसतार ।।
हिवे काल पडिकमणा रो आयो, ते तो पूरा केम कहिवायो।
चेडा ने कोणक री हुइ राडो, ज्यू यारा दोपा रो छे विसतारो ।।[1]

इसके वाद अनेक लोग मिलकर आये। जो वार्तालाप हुआ वह इस प्रकार है :

पछे घणा लोक मिल आया, त्या कने दोप अनेक वताया।
जव लोक पाछा बोल्या एम, ओ गढ इण विध भागे केम ।।
कोइ भारी वतावो दोप, ज्यू सुणे सगलाई लोक।
जव कह्यो मोटो दोष नही मांय, अणहूतो वतायो न जाय ।।
जो अेही दोष यामे हुवेसी, तिणरों अे प्राछित लेसी।
जव कहे प्राछित तो यामे नाही, आगे सुध हुवा म्हा माही ।।
जव लोका कह्यो तो क्यू वतावो, यामे दोप हुवे ते सुणावो।
जव कहे अे तो म्हे वाता वताई, यारी उठाणपरीया सुणाई ।।
जव लोका कह्यो वले याने, आ निरथक सुणाई थे क्याने।
हिवे थे प्राछित ले आवो माहि, जिलो मत राखो ताहि ।।
जो थे जिला सहित आवो माहि, जव तो माहे न लेवे ताहि।
थारी परतीत याने न आवे, रपे वले किणनेई ले जावे ।।
जव अे पिण बोल्या वेरीत, म्हाने यारी नावे परतीत।
अे म्हासू गाढो करे करार, पछे काढे एकीका नें वार ।।
जद गृहस्थ बोल्या तिणवार, थाने दोप विना काढे वार।
तो म्हे वदणा छोड द्या याने, इसडी वात विचारो क्याने ।।
जव कहे म्हे रहिसा दोय, तीजा ने नही फाडा कोय।
इसडी परतीत उपजावा, दोय तो वीखर न्यारा न थावा ।।
मुदे जिलो विखेरणो पेहलो, ओ तो दोष नही छे सेहिलो।
चोरी सहीत लेवे गण माय, तो सगलाई भिष्टी थाय ।।
जिलो विखेरण रा नही परिणाम, प्राछित लेवा रो पिण काठो काम।
जव लोका पिण जाणे लीया ताहि, अे दगा सहीत आवे गण माहि ।।[2]

फिर कुछ गृहस्थो से वात हुई, वह इस प्रकार है

वले गृहस्थ बोल्या केई वाय, गुरु कने प्राछित ल्यो जाय।
जव ओ बोल्यो अविनेकारी वाणो, आ वात इण भव मे मत जाणो ।।

---

१. अवनीत रास ३३५-३३७
२. वही, ३३८-३४८

जो म्हें जावा यारा गण माय, तठे तो म्हारी गिणत न कांय।
म्हाने दिख्या दे लेवे मांय, सगला रे पगा देवे नगाय ॥
आपणा किरतब देखे, ते गण मे आवसी किण लेखे।
आलोवण पिण करणी नावे, प्राछित पिण लेणी न आवे ॥
जथातथ निज ओगुण बतावे, तो याने प्राछित दसमो आवे।
एहवो वेराग ने नरमाई, ते मूल न दीसे काई ॥
जव घणा लोका जाण्यां अजोग, याने माहें लेवा नही जोग।
लोका पिण कह्यों साधा ने आय, काची वाता म त्यो याने माय ॥[1]

गण से निकलने के बाद उन्होंने भिक्षु के दोप बताकर श्रावकों को भड़काने का निश्चय किया। उनकी चेष्टा का वर्णन इस प्रकार है :

अे जाणे यामे दोप बताउं, श्रावका ने यासू भिडकाउ।
यारे उसभ उदे हुआ आण, मुख सू पिण नीकले खोटी बाण ॥
विसवा पिण म्हाराई घट जासी, लोका मे पिण आछी नही थासी।
पिण यारा श्रावका ने करू एम, दाहे बलीया आकडा जेम ॥
या कने हरकोइ आवे, जव अे गुर माहे दोप बतावे।
अे तो मिल मिल ने झूठ बोले, अवगुणां रो पिटारो खोले ॥
आगे बोलीया अवगुण अनेक, तिण विचेइ बोले छे वशेप।
यारे निन्दा तिकोइज ध्यान, यारे निन्दा तिकोइज ग्यान ॥
जाणे अवगुण काढ्या दिन रात, कोयक लागे म्हारेइ हाथ।
इण कारण करे छे विलाप, यारे उदे हूआ छे पाप ॥[2]

भिक्षु ने सारी स्थिति का निचोड निम्न प्रकार से उपस्थित किया है :

गाव माडा माहे आलोवण न करै नै प्राछित न लै। परतीत नही उपजावै जद टोला बारै कीधा[3] पछै गाव चेलावास माहे आलोवण प्राछित ठेहरायौ जद माहे लीधा।...साध साधव्या नै किणनैइ प्राछित ठेहरायौ नही। किणही प्राछित असमात्र लीधौ पिण नही।[4]

गाव चेलावास माहै चन्दरभाण री आलोवण तौ रिप भीखन उपर त्थापी प्राछित तिलोक उपर त्थापनै माहै लीधा। रिष भीखन आदि देइनै किण ही साध साधवी नै प्राछित ठेहरायौ नही। पछै आलोवण करै नही। प्राछित लेवै नही तिण सु गाव खेरवा माहे न्यारा कीधा।[5]

आलोवण करै नही प्राछित लेवै नही जद गाव पैरवा माहै पैह्लि तौ चन्दरभाण नै छौड्यो पछै तिलोकचन्द नै छोड्यौ।[6]

मुनि तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी स० १८३६ के शेपकाल मे गण से पृथक किए

---

१. अवनीत रास, ३४६-३५३
२. वही, ३५५-३५६
३. तिलोक नै चन्दरभाण रा कूट कपट नै दगारी विगत १८।३७।२०।१
४. वही, १८।३७।२०।३
५. लिखित १८३७ (माह वदि ६ का)
६. लेख १८।३७।२०।४

गये थे। इनका स० १८३७ का चातुर्मास—इनके गण से पृथक् होने के वाद का प्रथम चातुर्मास—नागौर मे था।[1] भिक्षु का इस वर्ष का चातुर्मास पादू मे था, जहा उन्होंने 'अवनीत रास' को कार्तिक सुदी १, शनिवार के दिन सम्पूर्ण किया।[2] इस रास मे तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी को गण से पृथक् करने तक की घटनाओं का विना नाम-निर्देश के साकेतिक रूप से वर्णन है और उसके पश्चात् वाद मे घटी तीन घटनाओ का उल्लेख है।

स० १८३७ माघ वदि ६ के दिन आ० भिक्षु ने एक लिखित किया जिसमें भिक्षु मुनि हरनाथजी, भारमलजी, सुखरामजी, अखैरामजी और मुनि नगजी के हस्ताक्षरो के साथ-साथ साध्वी सुजानाजी, जीऊजी, कुलाजी, नदुजी, फतुजी, चटुजी, धनुजी एव मैणाजी के भी हस्ताक्षर है।

इस लिखित का मुख्य निर्णय था · "तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी को दसवां प्रायश्चित्त दिए विना कभी भी गण मे नही लेना।"[3]

निष्कासन के वाद की कुछ घटनाएं

नागौर चातुर्मास के वाद तिलोकचन्दजी एवं चन्द्रभाणजी दोनो शेपकाल मे मेवाड, मारवाड के क्षेत्रो मे विचरते रहे।[4]

निष्कासन के वाद की कुछ घटनाए इस प्रकार है ·

चन्द्रभाणजी निकलने लगे तव भिक्षु वोले "सलेखणा सथारा करना श्रेयस्कर, पर साधुओ को छोड़कर अपछद विहार श्रेयस्कर नही।" तव चन्द्रभाणजी वोले "मै और भारमलजी दोनो सलेषणा करे।" भिक्षु वोले "हम दोनो करे।" चन्द्रभाणजी वोले "आपके

---

१. लेख १८।३७।२०।४ (तिलोकचन्द चन्द्रभाण र कूट कपट री विगत)

२. इस कृति का अन्तिम पद इस प्रकार है
सेतीसे वरस सवत् अठारे, काती सुद एकम सनीसर वारी।
निन्व भागल रो विस्तार, कीधो पादू गाव मझार॥४७१॥

३. लिखित के निर्णयो के विपय से सम्वन्धित अश इस प्रकार है "हिवै तिलोकचन्द चदरभाण प्राछित रिप भीखन री तरफ सू तो प्राछित दसमो देणो दसमा सु घाट देनै माहि लेवारा त्याग छै। ओर साधा पिण इमहीज कह्यौ—यांनै प्राछित दसमो आवै। यानै आलोया पडिकम्या नै गुरु देवे ते प्राछित लीया विना साध सरदना नही। यारे मेलै आलोए नै फिर दिख्या लेवै तोही यानै साध सरदणा। नही या कनै दिख्या लेवै त्याने साध सरदणा नही। या माहिला कोइ आपा माहे आवै त्तिणनै दिष्या देनै माहि लैणी। आपा माहिलौ कोइ या सू जाणनै तथा अजाणपणै सभोग करै तो जथाजोग प्राछित आवै। जो उ जाणनै या सु सभोग करे घणा काल लगै आपाने असाध सरधै तिणने तो दिष्या देनै माहे लेणो। कोइ अजाण पणै यासु सभोग करै थोडा काल करै तो जथाजोग प्राछित छै। यानै च्यार तीर्थ माहे गिणवा नही। याने वादे पूजै त्यानै पिण च्यार तीर्थ माहे गिणवा नही। च्यार तीर्थ वारे जाणणा।"

४. लेख १८३७।२०।४ (तिलोक नै चन्दभाण रा कूढ कपट नै दगारी विगत) . सतोपजी भेला गया पहिली नागोर चौमासो कीधो सेषकाल पिण घणा महीना अै दोय जण फिर्या।

साथ नही भारमलजी के साथ करूगा।" भिक्षु ने फिर अपने साथ करने के लिए कहा। चन्द्रभाणजी चुप हो गये।

तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी निकले तब चन्द्रभाणजी ने कहा . "विष्ठा तो हमारे भी घटेगे पर आपके श्रावको को तो दाह से झुलसे आकडे जैसा करू तभी मेरा नाम चन्द्रभाण।" इस पर चतुरोजी श्रावक बोले "आप तो थोडे कोस ही जा पायेंगे और मै कासीद भेज कर पहले ही स्थान-स्थान पर समाचार करा दूगा। आपको कोई मन मे चाहेगा तक नही। जब दाह से झुलसे आकडे की तरह आप ही होगे।"

आगे चलने पर आचार्य रुघनाथजी मिले। उन्होने कहा . "आप लोग हम मे आ जायें। तुम लोगो की रीति रखेगे।" उन्हे वडा रूखा उत्तर दिया।

रोयट के श्रावको से किसी ने कहा—"विद्वान् सत निकल गये।" श्रावको ने उत्तर दिया "भीखणजी है तब क्या होने वाला है? वे है तब और भी बहुत साधु हो जायेंगे। चन्द्रभाणजी निकल गये तो कोई बात नही।"[1]

तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी पुर(मेवाड)पहुचे वहा चन्द्रभाणजी के भाई नैणसुखजी थे। उन्होंने कहा—प्रायश्चित्त न ले गण से अलग हुए। आप लोगो ने इहभव परभव दोनो विगाड लिये। हम लोगो को आपने लज्जित किया है।" पुर मे पैर जमने न लगे। वहा से तुरत विहार कर दिया।[2]

एक वार तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी आमेट (मेवाड़) में पेमजी कोठारी की वहिन चन्दूवाई के पास गये। चन्द्रभाणजी ने चन्दूवाई से कहा—भीखणजी स्वामी तुम्हे कृपण कहते थे। कहते थे, साधुओ को खुले दिल से दान नही देती। चन्दूवाई वोली—इसमे आपको क्या मतलव? वे मेरे गुरु है। उत्तम पुरुषो ने मेरे मे कमी देखी होगी तो उसे दूर करने के लिए कह दिया होगा। चले जाए आप यहा से, जो गुरु से मन फटाना चाहते है।[3]

तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी देवगढ से सिरियारी पहुचे। गाव मे ईर्यासमितिपूर्वक वहुत धीरे-धीरे चलने लगे। लखूवाई तथा कल्लूवाई ने पूछा—कहा से चलकर आये है। वे वोले—देवगढ से यहां आये है। वहिनो ने कहा—क्या इसी चाल से चलते रहे? इस प्रकार चलने पर तो दो-तीन दिन वाद ही पहुचते।[4]

आमेट मे चन्द्रभाणजी ने अमरोजी डांगी से कहा—"भीखणजी तुम्हे लगूरिया कहते थे। केवल इधर-उधर घूमता रहता है। गुजाइश नही।" अमरोजी इस तरह बहकाये जाने से श्रद्धा-च्युत हो गये। वे अस्थिर विचार के थे ही।[5]

तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी इस तरह लोगो को भ्रात करने लगे। भिक्षु और साधुओ पर मिथ्या दोपारोपण करते रहे। भिक्षु ने इस अवर्णवाद का निराकरण करना आवश्यक समझा और उनके पीछे-पीछे विहार करते रहे।

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १९५
२. श्रावक दृष्टान्त १
३. वही, २
४. वही, ४
५. वही, ३

तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी जिस गाव जाते उस गाव का मार्ग न पूछ कर दूसरे गाव का मार्ग पूछते, जिससे कि भिक्षु उनके पीछे न पहुच सके। भिक्षु आते और लोगो से पूछते—वे कौन-से गांव गये है। जव लोग कहते अमुक गाव का मार्ग पूछते थे। भिक्षु विचार कर देखते—उस गाव का मार्ग पूछा है तव वहा न जाकर अमुक गाव मे गये है। वहा चलो। साथी साधु कहते—उन्होने रास्ता तो उस गाव का पूछा। आप इधर चलने को क्यो कहते है? भिक्षु ने कहा मै उनकी चाल को समझता हू। जिस गाव का मार्ग पूछा, उस गाव वे नही गये। अमुक गाव गये है। पहुचने पर उन्हे वही पाते। साधु कहते—आपने भारी तोला। लोगो मे शका डालते। भिक्षु उसे दूर करते। श्रावक-श्राविकाओ को शुद्ध करते। वडा परिश्रम करना पडा।[1]

चूरू में

भिक्षु चन्द्रभाणजी के पीछे चूरू तक पधारे। इस सम्वन्ध के तीन वृत्तान्त नीचे दिये जा रहे है

१. भिक्खु दृष्टान्त मे इस सम्वन्ध मे निम्न वर्णन मिलता है "स्वामीजी उणाने अवगुणवाद वोलता जाणने उणारे लारै-लारै विहार कीधो तिण सू एक वर्ष मे सात सौ कोश आसरै चालणौ पड्यो थेट चूरू ताइ पधार्‌या। खेत्रा मे कठैइ टीप लागी नही। उवे लोका रे सका घाले ते ठाम ठाम स्वामीजी सका मेट निसक किया उणाने ओलखाय दिया। चूरू कानी पधार्‌या जद चन्द्रभाणजी तीलोकचन्दजी पहिला सिवरामदासजी ने सतोपचन्दजी ने फटाय ने आहार पानी भेलो कर लियो। पछै स्वामीजी पधार्‌या जद सिवरामदासजी सतोपचन्दजी स्वामीजी ने आवता देख ने मत्थेन वदामि कहिने उभा थया। जद चन्द्रभाणजी कह्यौ—आपा रे यारे आहार पाणी तो भेलो नही ने थे वदणा क्यू कीधी।[2] जद सिवरामदासजी सतोपचन्दजी वोल्या—आपा रा गुरु है सो वदणा तो करस्यांइज।[3] पछै उणा दोया सू स्वामीजी वात करनै समझाया। चन्द्रभाणजी ने ओलखाय दियो। पछै स्वामीजी तो पाछा मारवाड पधार्‌या। लारा सू उणा चन्द्रभाण तीलोकचन्द सू आहार पाणी तौड दियौ। उणा ने ओलख पिण लिया। वोल्या—याने जिसा स्वामीजी कहता था जिसा ई निकलिया।[4]

२. ख्यात का एतद्विषयक वर्णन कुछ विस्तृत है। विशेप वाते नीचे उद्धृत की जा रही है

"सतोकचन्दजी शिवरामजी नै चन्द्रभाणजी फटाया। जिला वधी मै छा। पहली स० १८३५ के आसरै श्री भिखणजी स्वामी री आज्ञा सू थली मे विचरता हा। पछै छतीसै चन्द्रभाणजी तिलोकचन्दजी ने वार काढ्या जरै या २ नै फटाया। थली मै आया। तिहा आगे आय आप साभल कर लीया। पछै श्री भिक्षु ५ ठाणा सू थली पधारता भारमलजी स्वामी नै

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १६५

२. ख्यात क्रम १८, १९ मे भी ऐसा ही उल्लिखित है।

३. ख्यात क्रम १८, १९ मे उत्तर इस प्रकार है. "आपा रा गुरु है मालक है इताइ सु गया।"

४. जय (भि० दृ०), दृ० १६५

माता नीकल आइ जरै उणा नै बोरावड ठाणा ३ नै राख्य २ ठाणा सुं थली मैं पधार्‌या।···त्यानै (सतोषचन्दजी सिवरामदासजी नैं) समझाया पण ते बोल्या मे तो वचन दे घाल्या गो अवार तो अवसर नही पण चन्द्रभाणजी इसी कहवै मैं ओगुणवाद बोला नही उठी नै जावा नही मैं समझा-स्या सो कणरा है।···श्री भिक्षु···तो पाछा मारवाड पधार गया। पछै उणा रै माहोमांहि बणी नही जदै न्यारा हुय गया।[1]

३ तीसरा वृत्तान्त "आदर्श श्रावक श्री सागरमलजी वैद" नामक पुस्तक मे लिखा है। विशेष अशमात्र नीचे दिये जा रहे है।

"स० १८३६[2] मे आचार्य भिक्षु का थली प्रदेश मे आना हुआ और चूरू तक पधारे।

चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी···(ने) थली प्रान्त मे आचार्य भिक्षु के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। इतना ही नही, थली की तरफ आते हुए बोरावड मे उनके शिष्य मुनि श्री सन्तोकचन्दजी एव शिवरामजी को अपनी ओर प्रभावित करने का प्रयास किया और वे सफल हुए। आचार्य भिक्षु को जब यह पता लगा तब वे चार शिष्यो को साथ लेकर थली की ओर पधारे।[3]

"आचार्य भिक्षु चूरू मे रामनारायणजी मरदा के मकान मे ठहरे। चन्द्रभाणजी उस समय सतोकचन्दजी एव शिवरामजी के साथ भूरामलजी मणोत के मकान मे ठहरे हुए थे। भिक्षु आते ही वहा गये। उस समय दोनो शिष्य आहार कर रहे थे।...दोनो सन्तों के साथ बातचीत हुई। वे समझ गये। जवाब मे उन्होने चन्द्रभाणजी से भी बातचीत की और उनकी तरफ से उन सतो ने आश्वासन दिया कि अब वे तेरापथ की निन्दा-अवहेलना नही करेंगे और मारवाड मेवाड की तरफ जायेगे भी नही।

"भिक्षु ने फरमाया कि ये अपना घृणित रवैया बदल दे तो मेरा बोरावड मे आगे आने का विचार नही है।"[4]

---

१. ख्यात क्रम १८, १९

२. यह सवत् गलत है। भिक्षु स० १८३७ के शेष काल मे थली मे पधारे थे।

३ भिक्षु को उल्लिखित वृत्तान्त का पता लगा तब थली की ओर प्रस्थान किया, यह तथ्य नही है। त्रिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी अवश्य अवर्णवाद करेंगे, इसी आशका से भिक्षु ने स० १८३७ के चातुर्मास के बाद उनका अनुसरण करते हुए विहार किया था। "बोरावड मे सतोकचन्दजी शिवरामजी को प्रभावित किया," यह भी ठीक नही है। गुट-बन्दी तो पहले से ही थी। बाद मे थली मे आकर तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी ने उनसे मिल कर सभोग किया था। भिक्षु चार सतो से नही, पाच से पधारे थे। भारीमालजी की अस्वस्थता के कारण दो साधुओ को उनकी सेवा मे छोडकर दो सतो से चूरू पधारे।

४. 'आदर्श श्रावक श्री सागरमलजी वैद' नामक पुस्तक पृ० १५१-५२ से सक्षिप्त। अन्तिम पैरा मे जो बात है वह सोहनलालजी चण्डालिया के सग्रह की 'चन्द्रभाणजी तिलोकचन्दजी की वार्ता' के वर्णन से मिलती-जुलती है। पूर्व दोनो वर्णनो मे ऐसा उल्लेख नही है। उक्त वार्ता प्रसग मे लिखा है "स्वामीजी बोल्या—तू भ्रम नही फैलासी तो थारो लारो छोड्यो।" चन्द्रभाणजी बोल्या—"अबै थारै विषय मे भ्रम फैलावू नही।" स्वामीजी बोल्या—"तू भ्रम नही फैलासी तो मारे किण वास्ते थली आणो है। लोग नया समझ्-योड़ा है वारै शका पडै जिका मिटानी पडै। मै तो नही आवू। सन्त आसी।"

भिक्षु चूरू पधारे तब वहां सतोपजी, शिवरामजी तथा श्रावको ने फतूजी के विपय मे कई बाते कही। भिक्षु ने उन्हे "फतू दोष सेव्या तेहनी विगत" शीर्षक लेख मे लिपिवद्ध कर लिया। (१८।३७।१९)। इस लेख मे फतूजी के सम्वन्ध की इनके गण मे रहते समय की अनेक वाते है। उनका व्यवहार सतोपचन्दजी आदि के साथ कैसा है, इस सम्वन्ध की भी कुछ वाते है। तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी का उनके साथ जो व्यवहार था, उस पर भी प्रकाश पडता है। उनकी चर्चा सम्वन्धित प्रकरणो मे विस्तार से की गई है।

भिक्षु वोरावड से चूरू लाडनू, बीदासर, राजलदेसर, रतनगढ होकर पधारे थे। रतनगढ मे पडिहार राजपूतो की कोटडी मे ठहरे थे। अपने स्वल्प प्रवास मे भी वहा भिक्षु ने श्रीमती सरूपाजी डागा को प्रतिवोधित किया। एक पारख और एक वाठिया भाई समझे। इसके वाद भिक्षु वहा से विहार कर मारवाड पधार गये। भिक्षु को इस वर्ष मे सात सौ कोस की यात्रा करनी पडी थी। श्री सोहनलालजी हीरावत (चूरू) के वर्णन के अनुसार भिक्षु नागौर होते हुए मारवाड़ पधारे थे।

पीछे जो स्थिति हुई उसका वर्णन ख्यात मे निम्न रूप मे मिलता है

"पछै उणा रे माहो माहे वणी नही जदै न्यारा हुय गया।"[१] "पछै दोन्यू थली मै आया। केइक दिवस भेला रह्या। पछै प्रकृत माहोमाहि न मिली जदे चन्द्रभाणजी तिलोकचन्दजी नै कह्यो थारी निजर कम है सो थे सलेखणा करो जद तो ठीक नही तर हू भेलो न रहु जद तिलोकचन्दजी कह्यो हाल तो मनै दीसै छै अवार छती सगत सलेखणा किम करु जरै माहोमाहि ता तू हुय गइ पछै चन्द्रभाणजी तिलोकचन्दजी नै छोड[२] उरा आया। किताक वर्श तो एकला विचरया। पछै एक सवजीरामजी चेलो थयो। पछै मोकला पड्या...। पछै सिवजीरामजी स्याव ढीलो पड गयो। अनै चन्द्रभाणजी तो थली मै आया पछै विशेप निद्या पण कीधी न दीसै। कवाड्या आदि आचार सरधा रा वोल पिण विशेप विगट्या दीसै नही अनै छतीसै नीकल्या पछै घणा लोका पूछ्यो जणा नै इम कह्यो म्हे भीखनजी मै सु न्यारा हुवा तिण रो ४ मास रो प्राछित लीयो पिण नवो तो न लीयो। इण वात देखता गण रे नेडा रह्या पिण कर्मा री विचित्र गति। भागचन्दजी वाठ्या रा दादा प्रमुख चन्द्रभाणजी नै पूछ्यो उणा रा श्रावक छा तिण सू— आप किवाड्या रो आहार लेवो छो। जरै त्या जवाव इसो दीयो भीखनजी वत्तीस सूत्रां रा जाण त्याने पण सुध भ्यास्यो जरै मारी तो काइ। तिण सू लेवा छा। इम गण री मर्यादा ने सुध जाणता हा।"[३]

चन्द्रभाणजी के देहावसान के विपय मे ख्यात मे लिखा है—"विसाउ मै वाण वह गयो तिण सू काल कर गयो।"

ख्यात मे सतोकचन्दजी शिवरामजी के वारे मे लिखा है "गाम सारगसर मै राठागाम का ठाकुर ज़ाणी नै मार्‌या सुण्या।"[४] श्री सोहनलालजी हिरावत के वर्णन के अनुसार वे वीकानेर की ओर जा रहे थे।

---

१. ख्यात सतोकचन्दजी शिवरामजी री

२. छोडने का वृतान्त तिलोकचन्दजी के प्रकरण (११) मे विस्तार से दिया गया है।

३. ख्यात, क्रमाक १५ चन्द्रभाणजी की

४. ख्यात, क्रमाक १८, १९ सतोकचन्दजी शिवरामजी की

इस सम्बन्ध मे दूसरा वृत्तान्त इस प्रकार मिलता है :

"चन्द्रभाणजी एवं तिलोकचन्दजी कई वर्षों तक थली प्रान्त मे विचरते रहे। उनके विचरने का मुख्य केन्द्र राजलदेसर, पडिहारा, बिसाऊ, फतेहपुर तथा रीणी (तारा नगर) रहा।[1] कुछ समय बाद तिलोकचन्दजी की नजर कम पड़ जाने के कारण रीणी के पास जुहारिया ग्राम के पास ही उन्हे छोड़ दिया।

"चन्द्रभाणजी ने फतेहपुर के सोजीरामजी को पडिहारा मे दीक्षित किया, फिर बिसाऊ मे सं० १८७३ मे उन्होंने देह-परित्याग किया और उनके बाद सोजीरामजी पूज्य बने। वे अकेले कुछ वर्षों तक परिभ्रमण करते रहे और रामगढ़ मे भानीरामजी पोद्दार की छत्री मे ठहरे। वहां पर उनका देहावसान हो गया और उनका पथ भी यही समाप्त हो गया।"[2]

चन्द्रभाणजी और शिवरामदासजी की श्रद्धा उनके स्वर्गवास के बाद भी कई गांवो में रही। साध्वी सिरदारांजी के घरवालो के भी उनकी श्रद्धा थी।[3]

मुनि जीतमलजी ने स० १८८७ का चातुर्मास पाच मुनियों से चूरू मे किया था, उस समय जो उपकार हुआ, उसका उल्लेख करते हुए मघवा गणि ने लिखा है :

चन्द्रभाणजी शिवजीराम तणी तिहां, सरधा हुंति तिह काल।
त्यांने भिक्खु कृत लिखित रास विविध बताया, समजावण सुविशाल रा॥
सिरदाराजी आदि बहु बायां भायां, तिहां पूछ्या विविध वर बोल।
बहु दिन लग चरचा करी समज्या, सुण जय जाब अमोल रा॥
बहु बाया भाया गुरु धारणा कीधी, तिहां थी क्षेत्र थयो श्रीकार।
ठाम ठाम तिण वर्ष थली मे, थयो घणो उपगार रा॥[4]

स० १८९१ के फलौदी चातुर्मास के बाद विहार करते-करते मुनि जीतमलजी लाडनूं पधारे। उस समय वहा कई चन्द्रभाणजी की श्रद्धा में थे। फतेहचन्दजी उसका प्रचार करते थे। मुनि जीतमलजी ने लाडनू के श्रावकों को समझाया और श्रद्धा दी।[5]

चन्द्रभाणजी प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी कृतियां वैराग्य भाव मे परिपूर्ण है। अब तक उनकी ८६ कृतियो का पता चल पाया है। नीचे उनकी तालिका दी जा रही है। उपलब्ध कृतियों मे से दो कृतियां सवत् १८३८ की है। उसके बाद संवत् १८५० तक की एक भी कृति नही मिली। अन्तिम कृति संवत् १८६६ की उपलब्ध हुई है। उनका देहान्त संवत् १८७३ का बताया गया है। सभव है, उन्होंने और भी बहुत-सी कृतिया रची हों, जो अभी तक उपलब्ध नही हो पायी हैं। उनकी रचनाओं की प्राप्त तालिका इस प्रकार है :

---

१. बीदासर, सुहाई, चूरू, मेणसर, चाडवास, गोपालपुरा, साडवा, लाडनू मे भी विचरे।

२. पृ० १५१-५२ मे संक्षिप्त

३. जय (सरदार सुजश) १।दो० ६-७

४. मघवा (ज० सु०) १४।२-४

५. वही, २१।१-६

१. जम्बूकुमार रो वखाण[1]	दोहा सोरठा १३७ गाथा ५२६	१८३८		वोरावड
२. अणगार वतीसी	३२ सवैया			
३. अरिहत पचीसी	२५ सवैया	१८५५	माघ सुदि ५, रविवार	
४. ज्ञान पचीसी	२५	१८५८	सावन सुदी ११, वृहस्पतिवार	फतेहपुर
५. समझ पचीसी	२५	१८५८	भाद्र वदि ६, वृहस्पतिवार	फतेहपुर
६. वैराग्य पचीसी	२५ सवैया	१८५८	पोह सुदी १५, सोमवार	पडिहारा
७. उपदेश पचीसी	२५	१८६०	आसोज वदि १२, सोमवार	वीदासर
८. वैंराग्य पचीसी	२५	१८६०	आसोज सुदी ६, वृहस्पतिवार	वीदासर
९. धर्म पचीसी	२५	१८६१	भाद्र ६, रविवार	सुहाई
१०. भजन पचीसी	२५	१८६१	आसोज वदि १२, रविवार	सुहाई
११. सुवुध पचीसी	२५	१८६१	मिगसर सुदी ५, शुक्रवार	सुहाई
१२. सील पचीसी	२५	१८६२	भाद्र सुदि १५, रविवार	साडवा
१३. नेम पचीसी	२५	१८६२		वीदासर
१४. उपदेश पचीसी	२५ सवैया			
१५. भाव पचीसी	२५	१८६२	माह वदि १२, वृहस्पतिवार	फतेहपुर
१६. तपस्या पचीसी	२५	१८६२	माह सुदी १, सोमवार	फतेहपुर
१७. समगत पचीसी	२५	१८६३	आसोज वदि ५, वृहस्पतिवार	चूरू
१८. क्रोध पचीसी	२५	१८६३	आसोज वदि ६, सोमवार	चूरू
१९. मान पचीसी	२५	१८६३	आसोज सुदि १०, बुधवार	चूरू
२०. वहरमान पचीसी	२५	१८६३	कार्तिक वदि १५	चूरू

[1]. सवत् अठारे वरस अडतीसे जाण, वोरावड मध्ये कीया छे एह वखाण।
रिप चन्दरभाण जोड्यो जुगते जांण, भविजन तुम सुणज्यो लेस परम कल्याण ॥

२१. दान पचीसी	२५	१८६३ वैसाख वदि ७, बुधवार	फतेहपुर
२२. खीम्या पचीसी	२५	१८६३ वैसाख सुदी ३, सोमवार	फतेहपुर
२३. विवेक पचीसी	२५	१८६३ वैसाख सुदी १०, सोमवार	फतेहपुर
२४ समता पचीसी	२५	१८६३ जेठ सुदी १०, मंगलवार	फतेहपुर
२५. प्रबोध पचीसी	२५	१८६४ मिगसर सुदी, बृहस्पतिवार	[illegible]
२६. ध्यान पचीसी	२५	१८६५ पौष वदि ८, बृहस्पतिवार	फतेहपुर
२७. समझ पचीसी	२५ सवैया	१८६७ जेठ सुदि १२, बृहस्पतिवार	[illegible]
२८. मोख पचीसी	२५	१८६८ कार्तिक वदि, बुधवार	[illegible]

चौबीस तीर्थंकर स्तवन

२९. ऋषभनाथ स्तवन	२५		फतेहपुर
३०. अजितनाथ स्तवन	१२	१८५२ श्रावण सुदी ६, बुधवार	चूरू
३१ संभवनाथ स्तवन	२०	१८५२ मिगसर वदि ११, रविवार	फतेहपुर
३२ अभिनन्दन स्तवन	१५	१८५२ मिगसर	फतेहपुर
३३ सुमतनाथ स्तवन	१४	१८५२ माघ सुदी २, रविवार	फतेहपुर
३४. पद्मनाथ स्तवन	१०	१८५३	पडिहारा
३५ सुपार्श्वनाथ स्तवन	८	१८५२ फागुन सुदी १४	गोपालपुर
३६. चन्द्रनाथ स्तवन	१३	१८५२ मिगसर सुदी ५	फतेहपुर
३७ सुविधिनाथ स्तवन	१०		गोपालपुर
३८. शीतलनाथ स्तवन	१२	१८५३ चैत्र सुदी ४	गोपालपुर
३९. श्रेयासनाथ स्तवन	१०		
४० वासुपूज्य स्तवन	१६	जेठ	फतेहपुर
४१. विमलनाथ स्तवन	१३		
४२ अनन्तनाथ स्तवन	२१	जेठ सुदी	फतेहपुर
४३ धर्मनाथ स्तवन	१७	१८५२ जेठ सुदी ६	फतेहपुर
४४ शान्तिनाथ स्तवन	१२	१८५१ माघ सुदी १०, शुक्रवार	
४५. कुंथुनाथ स्तवन	१७		पडिहारा
४६ अरनाथ स्तवन	१५		पडिहारा

४७. मल्लीनाथ स्तवन	१६	१८५३	श्रावण सुदी १२	पडिहारा
४८. सुव्रतनाथ स्तवन	१५	१८५३	भाद्र सुदी १५	पडिहारा
४९. नमीनाथ स्तवन	१३	१८५३		पडिहारा
५०. नेमिनाथ स्तवन	१८	१८५२	वैशाख वदि ३, मगलवार	फतेहपुर
५१. पार्श्वनाथ स्तवन	१३	१८५२		वलिहारी
५२. महावीर स्तवन	३०	१८५१	कार्तिक वदि ११	फतेहपुर

विहरमान स्तवन

५३. श्रीमधर (१) स्तवन	२०			फतेहपुर
५४. जुगमिन्दर (२) स्तवन	२१	१८५४	श्रावण सुदी १२	फतेहपुर
५५. वाहु (३) स्तवन	१५	१८५४	आसोज सुदी ६	फतेहपुर
५६. सुवाहु (४) स्तवन	१५	१८५४		फतेहपुर
५७. सुजात (५) स्तवन	१४			
५८. स्वयप्रभ (६) स्तवन	१६	१८५४	कार्तिक वदि २	फतेहपुर
५९. सूरप्रभव (९) स्तवन	१६	१८५४	कार्तिक वदि ६	फतेहपुर
६०. चंद्रानन्द (१२) स्तवन	१३	१८५४	चैत्र सुदी १२	
६१. चन्द्रवाहु (१३) स्तवन	२१	१८५५	जेठ ४, शनिवार	गोपालपुर
६२. भुजग (१४) स्तवन	१३	१८५५	आषाढ, शनिवार	खुरवुजेरी कोट
६३. ईसर (१५) स्तवन	१३		श्रावण	राजलदेसर
६४. नेमीसर (१६) स्तवन	१३	१८५५	द्वि० श्रावण वदि ५ शुक्रवार	राजलदेसर
६५. वीरसेन (१७) स्तवन	१३	१८५५	द्वि० श्रावण सुदी, सोमवार	राजलदेसर
६६. महाभद्र (१८) स्तवन	१३	१८५५	आसोज वदि १३, शुक्रवार	राजलदेसर
६७. देवजश स्तवन	१३	१८५५	श्रावण सुदी १२	राजलदेसर
६८. अजीतवीर्य स्तवन	११	१८५५	कार्तिक वदि २, रविवार	राजलदेसर
६९. वीस वहरमान स्तवन	१७	१८५५	मिगसर सुदी ८, शनिवार	फतेहपुर

फुटकर

७०. सीमधर स्वामी सू विनति	९	१८३८	आषाढ	फतेहपुर
७१. तीर्थंकर जिन तेरहवा	२०	१८५५	जेठ ४	गोपालपुर

७२. पखवाडे की जोड	१६	१८५८	मिगसर वदि ५	बीदासर
७३. समाई सुखदाईजी	१०	१८५९	माघ सुदी ७ शनिवार	[illegible]
७४. पाच महाव्रतपालनताजी	५	१८६०	कार्तिक वदि १०	[illegible]
७५. साध सगत की ढाल	११	१८६३	कार्तिक सुदी	चूरू
७६. बारह मासं की जोड	१६	१८६४	भाद्र सुदी ५	बीदासर
७७. श्री सीमंधर स्वामी	१०	१८६४	कार्तिक सुदी ८	बीदासर
७८. पारस जिनेश्वर वदिये	५	१८६४	वैशाख सुदी	[illegible]
७९. साधारी वाणी	२५	१८६५	आसोज वदि ३	
८०. उपदेश री ढाल	६	१८६५	पोष सुदी १५	चूरू
८१. न्यातीला सू नेहडलो निवार	१०	१८६६		राजलदेसर
८२. शील चोखे चित्त पालो	७	१८६८	कार्तिक वदि १५	चूरू
८३. कुथु जिनवर भजिए रे	१७			फतेहपुर
८४. उपदेश री ढाल	५	१८६८	वैशाख सुदी	फतेहपुर
८५. पूर्व पुखरावती	६	१८६८	आषाढ	फतेहपुर
८६. च्यारू गत मे चाकज्यू	७	१८६९	वैशाख वदि ५	[illegible]

१६. मुनि अणदोजी

आप खेरवा (मारवाड़) के निवासी थे।[१] आपकी दीक्षा स० १८२९ माघ सुदी १२ के लिखित के बाद उसी वर्ष हुई प्रतीत होती है।

स० १८३२ मिगसर वदि ७ के लिखित मे मुनि वीरभाणजी और आपकी सही है। उक्त लिखित के बाद आप दोनो ने वहा से विहार किया। जेतावतो के गूढै पहुचे। यहा आपने मुनि वीरभाणजी को विनीत-अविनीत की चौपी की ढाले सुनाई। बाद मे माह वदि १४ के दिन मुनि वीरभाणजी और आप गाव रोयट पहुचे। वहा के श्रावको से सुना—"पनजी सिरियारी मे भिक्षु के पास आया है। विनय नम्रता बहुत करता है।"[२] माह सुदी ६ के दिन वीरभाणजी ने अणदोजी से कहा—"पन्ना को भिक्षु ने भ्रष्ट किया, यह जानकर कि वह मेरा चेला होगा।"[३] इस तरह भ्रात वीरभाणजी और भी भ्रात हो गये। वीरभाणजी अणदोजी के सम्मुख भिक्षु का अवर्णवाद करने लगे। अणदोजी को फटाने के लिए भिक्षु की निन्दा करते हुए अनेक दोष निकालने लगे। अणदोजी को फुसलाने की चेष्टा करने लगे—"थे पिण टोला माहै रहिता कोई दीसो नही।···थे म्हारे गुर छो तेरै माहो माहि अवत हूती पछै यू क्याने हुसी,...अबै थारे नचित टोलौ बाधौ,...थे म्हारै सात्थे आवो तो कोइ अटकै नही अषैराम तो आवै तो ठीक लागै नही परतीत नही।"[४]

इस तरह वीरभाणजी के फुसलाने पर भी अणदोजी दृढ रहे। अन्त मे दोनो ने चेलावास मे भिक्षु के दर्शन किये। अणदोजी ने सारी बाते भिक्षु से कही। भिक्षु ने यही वीरभाणजी

---

१. (क) ख्यात, क्रम १६
   (ख) सत विवरणी

२. लेख १८३२।१६.
   पना नै गाव सिरियारी आयौ सुणीयौ रोयठ रा भाया कनै पनों विनो नरमाई स्वामीजी आगै घणो करै छै

३. वही
   पना नै तो सामीजी भिष्ट कीधौ छै म्हारो चैलो हुवतो जाणनै।

४. वही ३२।१६

को गण से दूर किया। यह स० १८३२ की माघ सुदी के बाद और जेठ सुदी ११[1] के पूर्व की घटना है।

कालान्तर मे आपने बिना सोचे-विचारे चौविहार संथारा कर लिया। १७ दिन संथारे मे रहे। अत्यन्त प्यास लगने से सहन न कर पाए। १८ वे दिन संथारा भग कर गण से अलग हो गए। यह बात विठौरे गाव की है :

अणन्दै विना विचार रे, संथारो कीधो सही।
चौविहार नित्त धार रे, गाम विठौरे पूज्य गण ॥
उपनी तृष्णा अपार रे, सतरै दिन सु निसर्यो।
नेणा करै सथार रे, निकल्या परिसहा सोग मैं ॥[2]

स० १८३२ जेठ सुदी ११ के लिखित पर आपके हस्ताक्षर पाए जाते है। स० १८३७ माघ वदी ६ का लिखित भिक्षु द्वारा लिखा हुआ है। उसमे मुनि हीरजी, जो लिखना नही जानते थे, के अतिरिक्त आपके हस्ताक्षर नही है, अन्य सब साधुओ के हस्ताक्षर है। इससे इतना तो प्रमाणित हो जाता है कि आप दोनो लिखितो की मध्यावधि मे गण से अलग हुए, पर आप संथारा भग कर किस वर्ष कब अलग हुए, इसका पता नही चलता।

---

१. यह मिति स० १८३२ के एक लिखित की है, जिसमे आपके हस्ताक्षर नही पाए जाते।

२ जय (भि० ज० र०) ४५।१३,१४। तथा देखे—

(क) जय (शा० वि०) ३। सो० ७ :

चौविहार सथार रे, सतरै दिन तो काढिया।
लागी तृषा अपार रे, छूट्यो अणदो गण थकी॥

(ख) ख्यात, क्रमाक १६

वीठोडा मे विना विचार चोविहार सथारो कीयो। १७ दिन तो काढया पछै तृपा रा परिपह थी भागो टोला बारे थयो।

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, गा० १६० मे केवल गण से अलग होने का ही उल्लेख है।

१७. मुनि पनजी

आप से ज्येष्ठ मुनि अणदोजी १६ मुनि की दीक्षा अनुमानत स० १८२६ मे माघ सुदी १२ के बाद मानी गई है। आपकी दीक्षा उसी वर्ष मुनि अणदोजी की दीक्षा के बाद हुई।

पनजी ने वीरभाणजी के विषय मे भिक्षु से कुछ बाते कही थी, उन्हे भिक्षु ने एक लेख के रूप मे लिपिबद्ध कर लिया था। उसके कुछ वृत्तात इस प्रकार है "पनजी ने कहा---मै उनका (वीरभाणजी का) चेला नही हुआ, इसी कारण मुझसे बडा द्वेष रखते थे।[१]··· तपस्वियो से मेरा मन फटाने के लिए कहा—बुलाया तो मुझे और तपस्वियो के चेले क्यो हुए ? इस तरह चातुर्मास मे मुझे फटाने के अनेक उपाय किए।[२] मुझ से कहा---"तुम्हे थिरपालजी फतैचन्दजी नही थाम सकते। तुम्हे थामने वाला तो मै (वीरभाण) ही हू।[३] तपस्वियो के गुणगान कर मुझे वढावा दे एक मास गिवारो के घर गोचरी भेजा।[४]···एक बार कहा—हम लोग दो हो जाएगे तो किसी को आचार-गोचर की शिक्षा देने मे नही डरेगे।[५] वीरभाणजी ने देवीग्राम मे मुझे फोडने और चेला बनाने के लिए अनेक दाव-पेच लगाए।[६] साहपुरा और बामणीया गाव मे भी मुझे चेला बनाने के लिए फोडने की चेष्टा की।"[७]

उक्त लेख मे वीरभाणजी ने पनजी के बारे मे जो कथन किए, वे भी लिपिबद्ध है। उनमे से कुछ इस प्रकार है —"वीरभाणजी ने कहा—मैने पनजी को कई बार कहा—तू तपस्वियो का चेला पेट-पूर्ति के लिए हुआ है। तूने सोचा कि तरकारी, घृतादि तपस्वी नही खाएगे। वह सब तुझे मिलेगे।[८] पनजी ने चातुर्मास मे मुझसे कहा—मुझे एक महीन पछेवडी देनी होगी।"[९]

---

१. लेख १८३२।१७ प्रारम्भिक अश मे से
२. वही, अनु० १
३. वही, अनु० ११
४. वही, अनु० १३
५ वही, अनु० १६
६. वही, अनु० १७
७. वही, अनु० १८
८. वही, वीरभाणजी के कथन का अनु० ५
९ वही, अनु० ८

पनजी और वीरभाणजी के उक्त कथनों से पता चलता है कि पनजी तपस्वियों द्वारा दीक्षित हो उनके चेले हुए थे। ये तपस्वी अन्य कोई नहीं मुनि थिरपालजी और फतैचन्दजी ही थे। पनजी की दीक्षा फतैचन्दजी के जीवन-काल में हुई थी। मुनि थिरपालजी, फतैचन्दजी, वीरभाणजी और पनजी का एक चातुर्मास साथ में हुआ था। यह चातुर्मास सं० १८३० का ही संभव हो सकता है। कारण सं० १८३१ के शेष काल में मुनि फतैचन्दजी दिवंगत हो गए थे और सम्बन्धित वर्णन में ऐसा नहीं लगता कि उस वर्ष के चातुर्मास में वीरभाणजी और पनजी उनके साथ थे।

उक्त विवेचन से फलित होता है कि पनजी की दीक्षा सं० १८२९ के बाद संभव नहीं।

वीरभाणजी ने पनजी के सुनते हुए और उनके पीठ-पीछे उनके क्रिया-कलाप भिक्षु को बताए। भिक्षु ने पनजी की जाच करने के लिए उनको लिख डाला था। वीरभाणजी ने बताया—पनजी खाने-पीने में बड़ा गृद्ध है। बहुत अविनीत है, अयोग्य है और उलटा बोलता है। वस्त्रों का बहुत लोलुप है। कमरबंध और झोली मोटी नहीं सुहाती। तरकारी बार-बार मांग कर लाया करता। तरकारी के लिए बहुत फिरा करता[1] पूजने-परठने में दया-रहित है। रात्रि में बिना पूंजे बाहर जाता। श्राद्धों के दिनों में खीरवाले घरों में भटकता रहता। श्राद्धों के बाद खीर हाथ न आई, तब खिन्न होकर बोला—आज खीर नहीं मिली।[2] "गोगानियों के यहां से मैं पड़त लेना चाहता था, यह जानकर पहले ही स्वयं ने ले ली। टोला में ऐसा विकल लोलुप नहीं देखा गया।[3]

भिक्षु के अन्य लेख में निम्न वृत्तान्त मिलता है—सं० १८३२ मिगसर बदि ७ के लिखित के पश्चात् वीरभाणजी और अणदोजी ने साथ विहार किया और माघ बदि १४ के दिन रोयट पहुंचे। वहां श्रावकों से सुना कि पनजी सिरियारी आए हुए हैं, और भिक्षु के सम्मुख अत्यन्त विनय और नम्रता दिखा रहे हैं। वीरभाण ने माघ सुदी ६ के दिन अणदोजी से कहा—"पना नै तो सामीजी भिष्ट कीधो छै म्हारो चेलो हुवैनो जाणनै।"[4] अणंदोजी को फटाने के लिए वीरभाणजी ने अनेक चेष्टाए की। वीरभाणजी की हरकतों का उल्लेख करते हुए अणदोजी ने कहा—"पना रा अनेक गुण कीधा। पना नै घणों सरायो। (और कह्यो) पना नै दिष्या देने इणहीज पेमां में फेरा। पछै लोगानै पूछां—ओ देषों पनो किण स्युं घटतो आचार पालै छै। इत्यादि अनेक गुण कीधा।" वीरभाणजी ने अणदोजी से कहा: "थानै बिगारीया ज्यूं पना नै मूस कराय नै भिष्ट कीधों छै।"[5]

बाद में वीरभाणजी और अणदोजी चेलावास भिक्षु के पास पहुचे। भिक्षु के शब्दों में वहां घटना इस प्रकार घटी: "पाछली रात रा वीरभाण कनै आयनै कह्यो—

---

१. लेख १८३२।१७ अनु० १-४
२. वही, अनु० ६-७
३. वही, अनु० ९-१०
४. लेख १८३२।१६ प्रारम्भिक अंश
५. वही, अनु० १२-१३
६. वही, अनु० १४

सामीजी ! माहरै तो आहार की सका परी सो अवै ठीक लागै नही। एक पिछेवडी आर्या इधिक रापी···सामीजी ! आगै तो पाच विसवा अबै वीस विसवा अप्रतीत उपनी । वले एक पना नै भिष्ट कीधौ छै। जद हरनाथजी वोल्या पिछैवडी रो अनहुतो क्या नै झूठ वोलौ। थारै मन मे तो और दीसै छै। पना नै लेवणारा परिणाम दीसै छै।" इसके वाद भिक्षु ने वीरभाणजी को वही चेलावास मे गण से पृथक् कर दिया।[1]

स० १८३२ मिगसर वदि ७ के लिखित मे पनजी के हस्ताक्षर नही है, जब कि वीरभाणजी और अणदोजी के है। रोयट मे माह वदि १४ के दिन यह वात पहुची कि पनजी सिरियारी मे आकर 'विनो नरमाइ सामीजी आगै घणौ करै छै'। इससे प्रगट होता है कि वे उक्त लिखित के पहले से ही गण मे नही थे। पनजी ने वीरभाणजी से उनके अलग होने के वाद कहा था "आगै तो थारी परतीत राषी तिण सु साधपणौ गमायौ पिण अवै थारी परतीत रापू तो समकित पिण जाए।"[2]

इससे स्पष्ट है कि एक ओर पनजी वीरभाणजी के वहकावे मे आकर उनकी वातो मे विश्वास करने लगे। सघ मे दोप देखने लगे। दूसरी ओर वीरभाणजी की लोलुपता, खाने-पीने मे स्वच्छद वृत्ति आदि देखकर उनकी शका पुष्ट हुई। साधु-जीवन मे उनकी श्रद्धा नही रही। उन्होने भिक्षु के सम्मुख स्वीकार किया था—"वीरभाणजी रो लोलपणौ खाणौ वैहरणौ देखनै साधपणै री सका परी, साधपणा री आसाता उतरी तिण सु अवनीतपणौ घणौ कीधौ।"[3]

ये दोनो वाते उनके पतन का कारण वनी। भिक्षु ने लिखा है—वीरभाणजी के विषय की कितनी ही वाते पनजी ने माधोपुर मे वताई थी। पनजी का कथन इस वात को पुष्ट करता है। उन्होने कहा है—"हूतो वीरभाणजी नै टोलावाला भेपधारचा ज्यू पैहिलाइज माहि थको जाणतो कितरीएक तौ आपनै म्हे पैहिलाइज मादो विलास मे कह्या था···।"[4] भिक्षु का स० १८३१ का चातुर्मास सवाई माधोपुर मे था। भिक्षु आपाढ महीने मे ही वहा पधार गए थे। उसी समय पनजी ने सारी वाते उन्हे निवेदन की होगी। वीरभाणजी ने भी पनजी की शिकायते उसी समय कही।

भिक्षु ने वीरभाणजी को उपालम्भ दिया। उन्होने अपने दोप स्वीकार किए। भिक्षु ने उनसे लिखित करवाया, जिसमे वीरभाणजी ने शुद्ध साधुत्व पालन करने की भावना व्यक्त की तथा गण के साधुओ को न फटाने की तथा पनजी को चेला न वनाने का प्रत्याख्यान किया। यह हाडोती प्रदेश की वात है।[5]

पनजी से ऐसा कोई लेख कराया था या नही, पता नही चलता। सभवत पनजी ने भी

---

१. लेख १८३२।१६ अनु० ३३
२. लेख १८३२।१७ वीरभाणजी को पनजी ने सोजत मे उत्तर दिया, उसका अनु० १
३. लेख १८३२।१७ पनजी की आलोवणा का प्रथम वोल।
४. लेख १८३२।१७ पनजी की आलोवणा का पाचवा वोल।
५. लेख १८३२।१६ अनु० ६, २६ तथा पृथक्त्व के वाद का वीरभाणजी का कथन.अनु० ६— "माहारै दोप लागा था तिण री आलोवणा हाडोती कीधी ··माहरी आगली वाता लोकां आगै कहिता दीसै छै···पन्ना ने चेला करण रा सूस कराया ते पालू नही।

दोष स्वीकार किया होगा और आलोचना की होगी, पर लगता है बाद मे भी उनके मन मे उथल-पुथल चलती रही। इससे या तो वे स्वय ही स० १८३१ के शेष-काल मे गण से पृथक् हो गए अथवा भिक्षु द्वारा कर दिए गए। यही कारण है कि स० १८३२ के मिगसर वदि ७ के लिखित मे उनका हस्ताक्षर नही पाया जाता।

गण से च्युत होने के बाद वीरभाणजी सिरियारी गए। वहा दीपांबाई के सम्मुख नाना अवर्णवाद किया। वहा से सोजत गए। वहा भी बहुत अवर्णवाद किया। पनजी को दीक्षित कर चेला बनाने का प्रयत्न किया। पनजी ने बगडी मे आकर सारा वृत्तांत भिक्षु से कहा। भिक्षु ने पनजी के बताए अनुसार सभी बातें लिख ली। उसके कुछ वृत्तात इस प्रकार है : "वीरभाणजी ने पनजी से कहा . भीखनजी ने तुम्हे आहार, जल, वस्त्रादि का व्यर्थ दु ख दिया। तुम्हे मेरा चेला होता जानकर दु.ख दिया। भीखनजी की प्रतीति तुम्हे और मुझे दोनो को ही जरा भी नही है। उनमे कूट-कपट बहुत है। मेरा तो तुमसे स्नेह था पर भीखनजी के कारण—उनको राजी रखने के लिए—तुमसे अनुचित व्यवहार किया। आर्या ने एक पछेवड़ी अधिक रखी। अब तैयार हो जाए। थिरपालजी अखैरामजी उधर ही है। चतुरभुज भी उधर ही आने वाले है। उनके उधर आने से तुम्हे तुम्हारे माता-पिता के पास ले जाकर दीक्षा देगे। फिर इन गावो मे विचरेगे। थिरपालजी और अपैरामजी अपने मे आने वाले है। हम चारो साथ विचरेगे। तुमको यहा शर्म आएगी तो हम लोग हाडोती मे विचरेगे। वहा कोई अडचन नही रहेगी। मैने तुमको चेला करने का सौगध लिया, उसका पालन नही करूगा। भीखनजी ने तुमको साधुत्व से भ्रष्ट किया है। अब तुम्हारी क्या गति होगी?"[1]

इन बातो को सुनकर पनजी ने उन्हे जो उत्तर दिया वह इस प्रकार लिखाया "मुझे तो तीन करण तीन योग से भीखनजी की प्रतीति है। उनके टोले से निकलकर अवर्णवाद करते है!···मै आपको विकल मानता हू। सच्चे हो तो चले भीखनजी के पास। बिना निर्णय किए आपकी बात नही मान सकता। मेरा आपके पास दीक्षा लेने का भाव नही है। आपका विश्वास करू, आपके पास सयम ग्रहण करू तो भीखनजी के अवगुण कहने पडे। तब मेरी समकित भी न रहे। पहले आपकी प्रतीति की जिससे साधुत्व खोया अब प्रतीति करू तो सम्यक्त्व भी चला जाए और खराब होऊ। आप भी भिक्षु की प्रतीति न रखेगे, तो बहुत खराब होगे। आप भिक्षु के अवगुण कहेगे तो आपसे मेरा हेतु नही रहेगा। आपसे जिनमार्ग चलता नही दिखता। भिक्षु आपको असाधु प्ररूपित करेगे पर आप उन्हे असाधु प्ररूपित करेगे, तो बडे भोड़े दीखेगे। आपने मुझे चेला करने का त्याग किया था और फिर चेला करने को तैयार हो गए, इससे आपको भागल समझता हू।"[2] पनजी ने आगे कहा—"यह सुनकर मुझ पर बहुत कुढे और मुझे चेला करने का त्याग किया।"[3]

भिक्षु के प्रति ऐसी भावना रखते हुए तथा वीरभाणजी को ठीक न समझते हुए भी पनजी ने उनकी सगत नही छोडी। आखिर साहपुर मे वीरभाणजी से दीक्षा ले उनके चेले हो

---

१. लेख १८३२।१७ सोजत मे वीरभाणजी द्वारा किए गए अवर्णवाद के अनु० १-६, ११
२. वही, १८३२।१७ पनजी के प्रत्युत्तर से
३. वही

गए। वीरभाणजी ने पहले भिक्षु से एव वाद मे स्वय पनजी को चेला न करने का त्याग किया था। उसको भग कर पनजी को चेला किया, पर दोनो का स्वभाव नही मिला। उनसे अलग होकर भिक्षु के पास आकर पनजी वोले—"मेरी आलोचना सुनकर मुझे श्रावक के व्रत ग्रहण करावे।" भिक्षु ने ऐसा नही किया, तब वोले "स्वामी! मेरी आलोचना तो सुने। मै शल्य दूर करना चाहता हू।" इसके वाद आलोचना की, वह इस प्रकार है

१. वीरभाणजी की लोलुपता, खाना, पीना देखकर साधुत्व मे शका उत्पन्न हुई। साधुत्व से श्रद्धा हट गई। इससे मै देखा-देखी करता। वडा अविनय किया।

२. उस समय मुझ मे साधुत्व नही था। मैने साधुत्व क्या है, यह समझा भी नही था।

३. मैने आपको बहुत उत्तम समझा कि आपने मुझ जैसे अयोग्य अविनीत को टोले मे नही रखा।

इस प्रकार अपने पूर्व व्यवहार की आलोचना कर वे फिर वोले—"मै साहपुरा मे वीरभाणजी का चेला हुआ सो खाने-पीने और दूसरे सुखो के लिए और आपको डराने के लिए कि हम दो हो गए। मै टोले मे था तव ही वीरभाणजी को वेशधर जानता था पर वीरभाणजी का चेला हुआ खाने आदि के लिए।"[१]

पनजी की उपर्युक्त आलोचना से दो वाते स्पष्ट हो जाती है—(१) वे वीरभाणजी को गण से अलग करने के वाद साहपुरा मे उनसे दीक्षित हुए। (२) वाद मे उनसे अलग हो गए।

स्व० सोहनलालजी सेठिया के अनुसार पनजी स० १८३५ मे गण से वहिष्कृत किए गए थे।[२] पर ऊपर के विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट है कि वे स० १८३२ मिगसर वदि ७ के लिखित के पूर्व से ही गण मे नही रहे।

---

१. लेख १८३२।१७ पनजी की आलोवणा अनु० १-५

२. टालोकर वर्णन, क्रम १७

१८. मुनि सन्तोषचन्दजी
१९. मुनि शिवरामदासजी

सं० १८३२ जेठ सुदी ११ के लिखित में आप दोनों के ही हस्ताक्षर नहीं है। ऐसा कोई प्रसंग नहीं मिलता जिससे यह निष्कर्ष फलित किया जा सके कि आपकी दीक्षा उक्त समय के पूर्व हुई थी। प्रतीत होता है कि उक्त लिखित के कुछ समय बाद सं० १८३२ के शेषकाल अथवा सं० १८३३ में आपकी दीक्षा हुई थी।

सुना जाता है कि आप दोनों का सांसारिक संबंध मामा-भानजे का था। दोनों की दीक्षा एक साथ हुई या कुछ कालान्तर से, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

मुनि तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी सं० १८३६ में गण से पृथक् किए गए थे।[1] भिक्षु का सं० १८३६ का चातुर्मास सुधरी (बगड़ी) में था। बहिष्करण की घटना खैरवा की है, अतः वह सं० १८३६ के शेष काल की है, इसमें सन्देह नहीं है। इसके बाद १८३७ का चातुर्मास भिक्षु ने पादू (मारवाड़) में किया था।[2] यहीं भिक्षु ने 'अवनीत रास' कार्तिक सुदी १, शनिवार को सम्पूर्ण किया। मुनि तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी ने अपना चातुर्मास नागौर में किया था। बाद में शेष-काल में कुछ समय तक वे दोनों उधर ही विचरते रहे।[3] चातुर्मास के बाद शेष-काल में सं० १८३७ माघ वदि ९ के दिन भिक्षु ने मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी के विषय में एक लिखित किया। उसमें उल्लेख है: "चन्द्रभाणजी सन्तोषचन्दजी ने सिवरामजी रो पिण (मन) भाग्यों त्यारा पिण परिणाम जाबक भाग्या।"

सन्तोषचन्दजी और शिवरामदासजी के मन को फेरने और भिक्षु से विमुख करने की उक्त घटना तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी को बहिर्गत करने के बाद की नहीं हो सकती। गण में रहते हुए तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी ने गण को फोड़ने के लिए क्या-क्या चेष्टाएं की, उनका ही वर्णन उक्त लिखित के प्रारम्भिक अंशों में है और वहीं उक्त घटना का उल्लेख है, अतः यह घटना निष्कासन के पूर्व की है। सं० १८३६ के पूर्व ही ऐसा करना संभव रहा। ख्यात में उल्लेख है कि सं० १८३५ से सतोषचन्दजी और शिवरामजी थली में विचरण करते

---

१. ख्यात, क्रम १८,१९

२. अवनीत रास, ४७१

३. लेख १८३७।२० (तिलोक नै चंदरभाण रा कूट कपट नै दगा री विगत): "संतोषजी भेला गया पेहली नागोर चोमासो कीधो। शेष-काल पिण घणा महीना औ दोय जणा फिर्‌या।"

रहे। यदि यह तथ्य हो तो चन्द्रभाणजी के द्वारा इनके मन को विचलित करने की घटना उसके पूर्व स० १८३४ मे ही घट सकती है। इससे सिद्ध होता है कि मुनि तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी तथा सतोपचन्दजी एव शिवरामदासजी मे गुटवन्दी की सृष्टि स० १८३४ से चली आ रही थी।

मुनि सतोपचन्दजी और मुनि शिवरामदासजी के मन को मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी ने किस तरह से तोडा था, इस सवध मे एक लेख प्राप्त है। उन्होने कहा "स्वामीजी आपको लाठीपूछा कहते थे। सुखशील कहते थे। एक वार भिक्षु ने कहा—उनके अच्छे चेला हो तो छीन लेना है। पाली मे भिक्षु ने कहा—इन्हे पतले कोरे पन्ने क्यो दिए ? इनके अक्षर लम्बे है। स्वामीजी ने आपको 'ठेलिया' कहा।" इससे प्रकट है कि उनके मन मे आप लोगो के प्रति शका है। भारमलजी ने पश्चात् रात्रि के प्रतिक्रमण मे छ आवश्यको मे से एक भी आवश्यक कभी पूरा नही किया। कभी वीरभाणजी आदि जैसे साधु आते, तभी पूरा प्रतिक्रमण करते। अखैरामजी से कराए गए लिखित (स० १८२९) मे सावद्य वाते है। आप लोगो मे, हम लोगो मे और फत्तूजी आदि मे गुटवदी समझते है। साधुत्व नही मानते।"[1]

इस तरह मुनि सतोपचन्दजी और मुनि शिवरामदासजी को भिक्षु से भडका दिया। भिक्षु के शब्दो मे "थारौ जावक मन भाग ने फार दीया। पाछो कदेइ मन न मिले ज्यू कीधौ।"[2]

इनके चित्त मे ऐसी स्थिति मे उन्हे कुछ भ्रात धारणाए भी हो गई थी। उन्होने गृहस्थो से कहा "हमे खैरवा, पाली आदि क्षेत्र नही वताए। चोमासा वगडी मे कराया। इससे हम लोगो को वडा असात—कष्ट हुआ। हम लोग वगडी मे महीन कपडा और अरण्डी लाए थे, वे ले लिये। पीपाड मे कपडा लिया वह नही दिखाया। चातुर्मास के लिए अच्छा क्षेत्र नही वताया। हमे सिरियारी जाने से रोका।"[3]

उक्त गुटवदी की वात भिक्षु की जानकारी मे आई, तव उन्होने सतोपचदजी और शिवरामदासजी को समझाकर उन्हे थली प्रदेश मे भेज दिया।[4] पर वे स्थिरचित्त के व्यक्ति नही थे।

स० १८३६ मे मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी को वहिर्गत करने के समय मुनि सतोपचन्दजी एव मुनि शिवरामदासजी समीप नही थे। उनका स० १८३७ का चातुर्मास कहा हुआ था, इसका पता नही चल पाया है, पर थली के आस-पास अथवा थली मे हुआ होगा।

मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी से मुनि सतोपचन्दजी और मुनि शिवरामदासजी के चित्त की स्थिति छिपी न थी। अत नागौर चातुर्मास के वाद उन्होने थली की ओर विहार किया। भिक्षु ने उनका अनुसरण किया। युवराज भारमलजी को रास्ते मे

---

१. लेख १८३७ (सतोपजी सिवरामजी रो मन भाग नै फार्‌या ते विध) अनु० १-५, १८, २०, ६

२. वही, अनु० ११

३ वही, अनु० ७, ८, ९, १०, ११

४ ख्यात क्रम १८, १९ "सतोपचन्दजी शिवरामजी ने चन्द्रभाणजी फटाया जिलावधी मे छा पहली। स० १८३५ के आसरै श्री भिखनजी स्वामी री आज्ञा थी थली मे विचरता हा।"

चेचक निकल आया। आपने भारमलजी के समीप दो संतो को बोरावड मे छोडकर एक साधु को साथ ले बोरावड से प्रस्थान किया।[1]

उक्त घटना के कारण भिक्षु को बोरावड में कुछ दिनो के लिए रुक जाना पडा था। मुनि तिलोकचन्दजी एवं मुनि चन्द्रभाणजी को अवकाश मिल गया और वे भिक्षु से काफी पूर्व थली मे पहुच मुनि सतोषचन्दजी और मुनि शिवरामदासजी से मिले।

वहा पहुचकर इन्होने गण से पृथक् होने की बात मुनि सतोपचन्दजी और मुनि शिवरामदासजी से कही, और कहा—"नागौर चातुर्मास के पूर्व हम लोग चार महीने के छेद का प्रायश्चित्त ले चुके है।" मुनि सन्तोपचन्दजी ने उन्हे दो महीने का छेद और लेने के लिए कहा। तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी ने यह स्वीकार किया और उनके साथ सम्मिलित हुए और आहार-पानी साथ कर लिया।[2]

इसके बाद भिक्षु से मन फटाने की प्रक्रिया का सहारा ले उन्हे वचनबद्ध कर भिक्षु से सभोग तुडवा दिया।[3]

इस तरह जब मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी के साथ मुनि सन्तोपचन्दजी और मुनि शिवरामदासजी का सभोग हो चुका, तब भिक्षु चूरू पहुचे। भिक्षु उनसे बात-चीत करने के लिए जहा वे थे,[4] वहा गए। तब मुनि सन्तोषचन्दजी और मुनि शिवरामदासजी दोनो ने खडे होकर 'मत्थेण वदामि' कहकर उनकी वदना की। यह देखकर मुनि चन्द्रभाणजी बोले—"अपने और इनके आहार-पानी साथ नही, तब वंदना क्यो की?" उन्होने कहा—"अपने गुरु है अत. वदना तो करेगे ही।"[5] भिक्षु ने दोनो से बातचीत की और उन्हे समझाया

---

१ ख्यात क्रम १८, १९

२. लेख १८३७।२० (तिलोक ने चदरभाण रा कूट-कपट नै दगा री विगत) अनु० ४ सतोपजी आगै प्राछित लेने माहि गया।...चदरभाण कह्यो ..म्हे च्यार मास रो छेद तो नागोर चौमासो कीया पैहिला लीयौ दोय मास रौ छेद सतोपजी रा कह्या सु लीयौ।

३. (क) जय (भि० ज० र०) ४५।सो० १५
पनजी छूटक पेख रे, सतोपचन्द सिवराम नै।
चन्द्रभाणजी देख रे, दोनू भणी फटाविया।
(ख) जय (शा० वि०) १।सोरठा ८
पनजी छूटक पेख रे, सतोकचन्द शिवराजजी।
चन्द्रभाणजी देख रे, विहु फटाया नीकल्या॥

४ जय (भि० दृ०), दृ० १९५.
"चूरू कानी पधार्‍या जद आगै चन्द्रभाणजी तिलोकचन्दजी पहिला सिवरामदासजी ने सतोपचन्दजी ने फंटाय ने आहार-पाणी भेलो कर लियो।"

५ जय (भि० दृ०),दृ० १९५
स्वामी पधार्‍या जद सिवरामदासजी सतोपचन्दजी स्वामीजी ने आवता देखने मत्थेन वदामि कहिने उभा थया। जद चन्द्रभाणजी कह्यो आपा रे यांरे आहार-पाणी तो भेलो नहीं नें थे वदणा क्यू कीधी। जद सिवरामदासजी सतोखचन्दजी बोल्या . आपा रा गुरु हे सो वदना तो करस्या इज। ख्यात क्रम १८, १९ के अनुसार उन्होने उत्तर दिया था : "आपा रा गुरु है मालक है इताइ सु गया?"

तब वे बोले : "हम वचन दे चुके है। अत. अभी तो अवसर नही, पर मुनि चन्द्रभाणजी ऐसा कहते है कि अब अवर्णवाद नही करेगे। उधर के क्षेत्रो मे नही जाएगे। हम जिन्हे समझाऐंगे आखिर वे किसके होगे?" दोनो ने बडी विनम्रता दिखाई और फिर बोले "आप ही मालिक है। हमारी क्या निभने वाली है?" इस तरह अनेक बाते शिष्टाचार रूप मे कही। बाद मे भिक्षु विहार कर मारवाड मे पधारे।[1]

पहले मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी और शिवरामदासजी से यह नही कहा कि वे भिक्षु और उनके साधुओ को असाधु समझते है। शामिल हो जाने के बाद उन्होंने भिक्षु और गण की निन्दा करते हुए कहा .

"भीखणजी आचार मे बहुत ही शिथिल है। अत हम उन्हे छोडकर आए है। टोले मे साधुत्व नही है। हम टोले मे वापिस गए तब भीखणजी ने प्रायश्चित्त लिया। हमने तो थोडा भी प्रायश्चित नही लिया।" मुनि चन्द्रभाणजी ने कहा "मै तो इन्हे कब का ही असाधु समझता रहा, पर कुछ शका थी। आमेट चातुर्मास (स० १८३५)[2] मे इन्हे निश्चित रूप से असाधु जान लिया। इनकी अनेक चालबाजिया देखी। मै इन्हे असाधु मानता हू। असाधुओ के टोले मे भेद डाला है। साधुओ के टोले मे भेद डाला है, ऐसा नही मानता। असाधुओ मे भेद डालने का प्रायश्चित्त नही होता।" चन्द्रभाणजी ने पुन कहा—"साधु और आर्याओ को बुलाने आया सो इन्हे साधु मानकर बिलकुल नही आया। इन्हे आमेट के चातुर्मास मे ही निश्चित रूप से असाधु जान लिया। अपने मतलब से साधु आर्याओ को बुलाने आया हू। जैचन्द दीक्षा लेगा तो उसे लेकर टोला से बाहर हो आऊगा। तोड-फोड तो तब मानी जाए जब मै इन्हे साधु मानू।"[1]

भिक्षु बाजोली एव ईडवा गए तब उन्होने वहा के भाइयो के द्वारा बताई गई बातो को अलग-अलग लेखो मे लिपिबद्ध कर लिया था। एक लेख मे उन्होने अपने अनुभव मे आई हुई मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी की कूट-कपट पूर्ण बातों का भी विवरण लिखा था। ये तीनों लेख आज भी सुरक्षित है। मुनि सतोषचन्दजी और मुनि शिवरामदासजी के साथ मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी का मेल बहुत वर्षो तक नही टिक पाया। इनका स० १८३८ का चातुर्मास फतेहपुर मे हुआ। मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी से मुनि सतोषचन्दजी एव मुनि शिवरामदासजी के मन चूरू मे ही फटने लगे। फतेहपुर चातुर्मास मे उनकी प्रकृति के भिन्न-भिन्न पक्षो ने और भी असतोष उत्पन्न कर दिया। उन लेखो से ऐसे अश उद्धृत किये जा रहे है, जिनमे पृथक्करण का इतिहास छिपा हुआ है। भिक्षु से पृथक् होने के बाद की हलचलो का भी उससे पता चलेगा।

१. मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी ने चार मास तक छेद तो नागोर-

---

१. ख्यात क्रम १८, १९। इस घटना के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए प्रकरण १५ पृ० १७२-७४

२. प्रतीत होता है कि आ० भिक्षु के उक्त आमेट चातुर्मास मे मुनि तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी उनके साथ रहे।

३. लेख १८३७ (सतोषजी सिवरामजी रो मन भागनै फाट्या ते विध) अनु० १३-१७
वे किन साधु और साध्वियो को कहा से लाने गए, इसका पता नहीं चलता। जैचन्दजी नामक कोई साधु भिक्षु के युग मे नहीं हुए।

चातुर्मास (सं० १८३७) के पहले ही ले लिया और दो मास का छेद मुनि संतोषचन्दजी के कहने पर लिया। इस तरह प्रायश्चित्त लेने के बाद मुनि संतोषचन्दजी और मुनि शिवरामदासजी ने उन्हें शामिल किया।[1]

२. मुनि तिलोकचन्दजी और मुनि चन्द्रभाणजी कहने लगे : "हममें मिच्छामि दुक्कडं जितना दोष भी नहीं था। हम लोगों ने छः मास का छेद लिया। वह भीखणजी के दोष छिपाकर रखे, उसके लिए लिया था।"[2]

३. भारमलजी को इधर नहीं लायें, वह इसलिए कि उनकी ईर्यासमिति नीचे आ जाएगी। मैंने पहले ही कह दिया था कि भारमलजी को इधर नहीं लायेंगे।[3]

४. चूरू में कपड़ा याचने के विषय में तथा और भी बहुत तान-चाल हुई। विगतोजी ने कहा : "इन्होंने मेरी परत, जो फत्तूजी ने दी, वह दबा रखी है। इन्हें चोरी का दोष लगा, चौथा प्रायश्चित्त आता है।"[4] मुनि तिलोकचन्दजी ने उत्तर दिया : "यदि आर्या के कहने में हमारे लिए चौथे प्रायश्चित्त की प्ररूपणा करते हैं तो इन्हें भी चौथा प्रायश्चित्त आएगा।"[5] "हमने मिच्छामि दुक्कडं तो लिया, पर कपड़ा तो नहीं अधिक है।"[5]

५. चन्द्रभाणजी ने संतोषचन्दजी से कहा—"तिलोकचन्दजी ने अधिक कपड़ा रखा। हमने तो अधिक नहीं रखा। हमसे क्यों तोड़ते हैं?" संतोषचन्दजी ने कहा—"तपस्वी से पूछने पर पता चलेगा।" बाद में चन्द्रभाणजी से बातचीत होने पर 'फेतव हुई'। तब चन्द्रभाणजी बोले— "हुं तो थारी गल लेतो थो।"[7]

६. संतोषचन्दजी ने कहा- -"भीखनजी कहते थे तिलोकचन्दजी को चन्द्रभाण ने बिगाड़ा, फोड़ा। दोनों में चन्द्रभाण महा कपटी और दगाबाज है, पर हमें तो लगता है कि चन्द्रभाण की अपेक्षा तिलोकचन्दजी महाकपटी है। तपस्वी (शिवरामदासजी) ने बहुत कहा—इन्हें अदर न लें। अगरचन्द ने भी बहुत कहा—"भीखणजी से तोड़कर आए हैं। इन्हें न लें। जो गुरु के न हुए, वे आपके कैसे होंगे?"[8]

७. विगतोजी ने कहा— "चन्द्रभाणजी कमर बांधकर तिलोकचन्दजी से अलग हो रहे थे। महीन कपड़ा नहीं दिया इसलिए। बाद में महीन कपड़ा दिया।"[9]

८. संतोषचन्दजी ने रायतोजी से कहा—"देखो जिन्हें हम लोगों ने मिच्छामि दुक्कडं दिया, वे ही मे हमारी वन्दना भी कर रहे हैं। देखो, हम लोगों की बुद्धि! भीखनजी से तोड़ी और

---

१. लेख १८३७।२० (तिलोका नै चन्द्रभाण रा कूट-कपट नै दगा री विगत) अनु० ४
२. वही, अनु० ४
३. लेख १८३७ (संतोषजी शिवरामजी रो मन भांग ने फाड्या से विध) अनु० १९
४. लेख (ईडवा का) १८३७, अनु० ३
५. लेख (नाजोली का) १८३७, अनु० १
६. वही, अनु० २
७. लेख (ईडवा का) १८३७, अनु० ६
८. वही, अनु० ७-९
९. वही, अनु० ५

इनसे सभोग किया। ये तो महाकपटी और मिथ्याभापी निकले। भीखनजी कहते है, वैसे ही हे। भीखनजी महापुरुप है। कही वे नजदीक हों तो हम लोग उनमे शामिल हो जाए। उनसे वहुत वात करनी है।"[1]

९. "हम लोगो ने तो इन्हे पहले चातुर्मास मे ही जान लिया कि ये दगावाज है, पर सोचा कि अभी सभोग तोडेगे तो लोगो मे अच्छी नही लगेगी।"[2]

१०. ऐरडिया वहुत अधिक रखी। एक ऐरडी विगतोजी नै मागी, पर नही दी। विहार कर दिया। तब तपस्वी बोले—"सहजी ही सभोग तूटा।" उपस्थिति मे सभोग तोडने पर लोगो मे हलचल होती। अच्छा नही लगता, अत अनुपस्थिति मे सभोग तोडा। गृहस्थो को सिखाए हुए हमारे वोलो को पलटकर हमारी आस्था उतारने लगे। महा धोखेवाज है।"[3]

११. तपस्वी (शिवरामदासजी) ने कहा—"यासू पाछौ भेलौ कीयौ तो थारै म्हारै ठीक नही छै।"[4]

१२. चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी के परिणाम वापिस सम्मिलित होने के वहुत रहे, पर सतोपचन्दजी के विलकुल नही रहे।[5]

१३. सतोषचन्दजी ने कहा—"हम लोगो ने भीखनजी को कतई असाधु नही कहा। हम लोगो मे आने के वाद इन्होने भीखनजी को असाधु कहा।" चन्द्रभाणजी ने कहा—"किसी ने कहा, हमारा चौथा व्रत भग नही हुआ है। थोडा सा दोप लगा है। प्रायश्चित्त लेने के वाद यदि वह कहे ...मेरा चौथा महाव्रत भग हुआ है तो फिर प्रायश्चित्त देना चाहिए या नही ? वैसे ही हम लोगो ने भीखनजी को पहले तो असाधु नही कहा, पर (वाद मे तो उन्हे असाधु कहा) फिर साथ क्यो रहे ?"[6]

इस तरह सतोपचन्दजी और शिवरामदासजी, तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी से पृथक् हो गये।

ख्यात मे लिखा है "गाम सारगसर मै राठा गाम का ठाकुर जाणी नै मार्‌या सुण्या।"[7]

अन्यत्र इस घटना का वर्णन इस प्रकार है—"पृथक् होने के वाद उन्होने चूरू से तारानगर (रीणी) की ओर विहार किया, पर बुचास के पास सारगपुर मे राठियो ने उनको राजपूतो के जासूसो के भ्रम मे मार दिया।"[8]

वाद के वर्णन के अनुसार पृथक्त्व की घटना चूरू मे घटी थी और उसके वाद तुरन्त ही उक्त ढग से वे मार डाले गये थे, पर पुष्ट प्रमाण के अभाव मे ऐसा मानना कठिन पडता है।

---

१. लेख (ईडवा का) १८३७, अनु० १८
२. वही, अनु० २ एव १८
३. वही, अनु० १८
४. वही, अनु० ४
५. (क) लेख (ईडवा का) १८३७, अनु० १७
   (ख) लेख (वाजोली का) १८३७, अनु० १९
६. लेख (वाजोली का) १८३७, अनु० ४-५
७. ख्यात क्रम १८, १९
८. आदर्श श्रावक श्री सागरमलजी वैद, पृ० १५२

२०. मुनि नगजी

आप कुंड्या (मेवाड) ग्राम के निवासी थे।[1] आपका स्वर्गवास पुर में हुआ था।[2] आपने संथारा पूर्वक समाधि-मरण प्राप्त किया।[3]

आप वडे गुणी संत थे। वडे वैरागी और नीति-निपुण थे। साधु-क्रिया मे प्रवीण थे। बुद्धिमान् थे। निर्मल थे। आपने विनीत-पद प्राप्त किया।[4]

---

१. (क) जय (भि० ज० र०) ४६।१

नीत निपुण नगजी नी निर्मल, कुंड्या ना वसवांन।
संथारो कर कारज सार्‌यो, कियौ जनम किल्याण॥

(ख) ख्यात क्रम २०

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु संत वर्णन १६१-६२

२. पण्डित-मरण ढाल १।२ :

"नगजी पहुता पुर शहर मे"

३. (क) पाद टिप्पणी १ (क) मे उद्धृत पद

(ख) जय (शा० वि०) १।१५ :

भिक्षु गण मे नीत निपुण गुणवान कै, चारित्र धार्‌यो चूंप सू जी।
संथारो कर कारज सार्‌या सुध्यान कै, नगजी स्वामी निरमलाजी॥

४. (क) पा० टि० १ (क)

(ख) जिन शासन महिमा ७।८ .

नगजी स्वामी नीत निपुण गुणवान के, अधिकी करणी आदरी जी।
अनशन करने पाम्या परम कल्याण के, पूज्य भिक्षु रा प्रताप स्यू जी॥

(ग) ख्यात क्रम २० "नगजी गांम कुड्या ना वसवान वडा वेरागी। नीत-निपुण घणा वरस संजम पाल वनीत पद पाय संथारो करने कारज सार्‌या।"

(घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु संत वर्णन (१६१-१६२)

नगजी गाम कुडा तणा रे, वड वैरागी संत।
नीति निपुण वुध आगला रे लाल, किरिया करण महंत॥
विनीत पद पाम्यो तिणै रे, घणां वर्ष संयम पाल।
संथारो करने सिरै रे लाल, लह्यो स्वर्ग उजमाल॥

यह प्राय ख्यात का ही पद्यानुवाद है।

स० १८३२ जेठ सुदी ११ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है। सभवत. आपकी दीक्षा उस समय तक नही हुई थी। स० १८३७ माघ वदी ६ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर है। अत सभव है कि आपकी दीक्षा उक्त दोनो लिखितो के बीच की अवधि मे हुई हो।

स० १८३६ कार्त्तिक सुदी २ बुधवार के दिन रचित अपनी ढाल मे श्रावक शोभजी ने मुनि नगजी के सबध मे लिखा है

वधो राषै दीया मुगतरा सूत ए, दीसता दीसे छै काकडा भूत ए।
आराधक थइने लीधो आचार ए, नगजी ने हरष वादो नर नार ए ॥

इससे स्पष्ट है कि आप उक्त मिति तक विद्यमान थे।

स० १८४१ चैत्र वदि १३ एव स० १८४१ द्वि० चैत्र वदि १० के लिखितो मे आपके हस्ताक्षर नही है, इससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि आप इन लिखितो के पूर्व ही दिवगत हो गए, पर इन लिखितो पर मुनि सुखरामजी और मुनि शभूजी के भी हस्ताक्षर नही है, जवकि अन्य सारे साधुओ के है। इससे ऐसा लगता है कि दोनो लिखितो के समय मुनि सुखरामजी, आप और शभूजी अन्य स्थान पर थे और इसी कारण उनके हस्ताक्षर नही हो पाए।

स० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है, जवकि मुनि सुखरामजी के है। इस समय तक मुनि शभूजी वहिर्गत हो चुके थे। आप अकेले कही हो ऐसा सभव नही, अत आपका स्वर्गवास स० १८४१ द्वि० चैत्र वदि १० और स० १८४५ जेठ सुदी १ के वीच हुआ प्रतीत होता है।

पडित-मरण ढाल के अनुसार आपका देहात मुनि हरनाथजी के वाद है। मुनि हरनाथजी के भी स० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखित मे हस्ताक्षर नही है। जीवित सतो मे अन्य एक भी ऐसा साधु नही, जिसके हस्ताक्षर लिखित मे न हो। ऐसी स्थिति मे मुनि हरनाथजी का स्वर्गवास भी स० १८४१ द्वि० चैत्र वदि १० एव स० १८४५ जेठ सुदी १ की मध्यावस्था मे मानना होगा। आपका स्वर्गवास मुनि हरनाथजी के बाद उसी अवधि मे कुछ कालान्तर से प्रतीत होता है।

(ड) सत विवरणी "वडा वैरागी सत। नीति निपुण। बुद्धि का भंडार। किरियाकरण मे हुसियार। विनीत पद पाम्यो। घणा वरस लग सयम पाल्यो।"
यह ख्यात और शासन-प्रभाकर का मिला-जुला वर्णन है।

२१. मुनि सामजी (स्वामजी)[1]

आपका जन्म हाडोती प्रात के देवलाणा गाव मे हुआ था। आपके पिताजी का नाम नगजी शाह एव माताजी का नाम रभा था।[2] आप जाति मे वैद थे। धर्म मे श्रावगी—दिगवर जैन थे।[3] आपके छोटे यमज भाई का नाम रामजी था। दोनो साथ जन्मे हुए ये भाई रूप-रग मे एक सरीखे थे।

दोनो भाई वडे हुए तब बूदी मे आकर वस गए।[4] दोनो भाई अविवाहित अवस्था मे ही दीक्षित हुए थे।[5]

जैसा कि बताया जा चुका है, आप धर्म से श्रावगी दिगम्बर जैन थे। आप किस तरह से प्रबुद्ध हुए, इसका पूरा विवरण इस प्रकार प्राप्त है

एक बार मुनि थिरपालजी और फतैचन्दजी ने बूदी मे चातुर्मास किया। उन तपस्वी साधुओ का दर्शन करने अनेक लोग आते और उनके उपदेश को सुन आत्मिक शांति का अनुभव

---

१. जय (भि० ज० र०) ४६।२, ३, २८ तथा ५२। छंद ३ मे आपका नाम 'स्वाम' मिलता है।

२. मुनि साम राम गुण वर्णन, ढा० १।दो० १, २

देस हाडोती दीपतो, दवलाणा गाम मझार।
त्या नगजी साहा श्रावगी वसै, तिण रे रभा नामे नार॥
त्यारे दोय पुत्र आया उपना, युगलपणे सुखदाय।
साम राम सूहामणा, दीठा हर्षत थाय॥

३. (क) जय (भि० दृ०), दृ० १६६ श्रावगी जाति रा वैद

(ख) जय (भि० ज० र०) ४६।२

(ग) जय (शा० वि) १।१६ एवं वार्तिक, पृ० ३५

(घ) ख्यात क्रम २१ जाति ना श्रावगी बुदी ना वासी साम राम जोडै जन्म्या।

(ड) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १६३

सामजी जाति श्रावगी रे, वुदी ना वसीवान सु।
राम तेहनो वंधवो रे लाल, जोडै जनम्या वेहु प्रधान सु॥

४ मुनि साम राम गुण वर्णन ढा० १।दो० ३.

अनुक्रम मोटा हुवा, पछै बूदी वसीया जाय।

५. संत विवरणी

करते। दोनो मुनियो को देख साम-राम दोनो भाई उनके पास आए। वदना कर सम्मुख वैठे और धर्म-चर्चा की। उनकी वाणी से प्रभावित हुए। अपूर्व ज्ञान प्राप्त किया। इस तरह प्रबुद्ध हो श्रद्धालु वने।[1] यह स० १८३१ के पूर्व की घटना है।

इस तरह सम्यक्त्व ग्रहण करने के कुछ अर्से वाद दोनो भाई भिक्षु के दर्शनार्थ गए। मेडता मे भिक्षु के दर्शन कर वडे प्रमुदित हुए। उनके मन मे वैराग्य अकुरित हुआ। इस तरह ससार से विरक्ति की महान् भावना को हृदय मे पोपित करते हुए वे हाडोती लौटे।[2]

---

१. (क) मुनि साम राम गुण वर्णन ढा० १।१-४

तिण कालै ने तिण समे रे, स्वामी थिरपालजी अणगार रे।
विचरै आत्म भावता रे लाल, त्यारे सुत फतैचन्द श्रीकार रे॥
त्यां बूदी शहर चोमासो कीयो रे, घणी महीमा हुई शहर माय रे।
नरनारी आवी दर्शण करै रे लाल, मिलीया तपस्वी साध अपूर्व आय रे॥
साम राम साधाने देखने रे, वदणा करी सनमुख बैठा आय रे।
वाणी सुण चरचा करी रे लाल, त्या ग्यान अपूर्व पाय रे॥
कुल रूड कांइ राखी नही रे, साचो लियो श्री जिनधर्म रे।
गुरु किया पूज भीखणजी भणी रे लाल, छोड दियो सर्व भर्म रे॥

(ख) जय (शा० वि०) १।१६ वार्तिक, पृ० ३५

(ग) ख्यात क्रम २१ ·
स्वामीजी थिरपालजी फतेचन्दजी वुदी मे चोमासो कीयो त्या कने दोनूइ भाई समज्या।

(घ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत गुण वर्णन १६४-६५

स्वाम श्री थिरपालजी रे, फतैचन्दजी मुनि ताम सु०।
बुदी चौमासा मझै रे लाल, प्रतिवोध्या साम न राम सु०॥

२. (क) मुनि साम राम गुण वर्णन ढा० १।५-६

काल कितो एक वीता पछै रे, मेटीया भीषू अणगार रे।
मेडता शहर माही मील्या रे लाल, दीठा हूवो हर्ष अपार रे॥
त्यारा वचन सूणी हीये धारने रे, पाछा आया हाडोती चलाय रे।
मन भागो ससार कारज थकी रे लाल, सजम लेवा हर्ष ओछाह रे॥

(ख) जय (शा० वि०) १।१६ वार्तिक, पृ० ३५
केतलै काले मेडतै आया। भीखणजी स्वामी रा दर्शण करी पाछा हाडोती देश में आया। पछै ससार सू मन भागो।

(ग) ख्यात क्रम २१ · पिछे मेडते भीखनजी स्वामी रा दर्शन करी पाछा हाडोती आया पछे ससार सूं मन भागो।

(घ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत गुण वर्णन १६४-६५ ·

पछै मेडता माहि स्वामी भिक्षु ना रे, दर्शण किया विहु आया।
पाछा हाडोती आविया रे लाल, पिण संसार सू मन उतराया॥

आप दोनो की दीक्षा के विषय मे दो प्रकार के उल्लेख प्राप्त है, जो अपने-आप में असंदिग्ध है। वे इस प्रकार है :

१. सामजी-रामजी केलवे दीक्षा लेने आए। वहा सामजी ने स० १८३८ मे दीक्षा ली। थोड़े दिन बाद नाथद्वारा मे खेतसीजी ने दीक्षा ली। उनके थोडे दिन बाद रामजी दीक्षित हुए।

साधपणो लेवा नीकल्या रे, मतो करी दोनू भाय रे।
आया शहर केलवै चलाय ने रे लाल, वांध्या श्री भीखनजी ऋषिराय रे॥
स्वामीजी दिख्या पहली ग्रही रे, पछै रामजी लिधी लार रे।
समत अठारै अडतीस मे रे लाल, करवा आत्म नो उद्धार रे॥[1]

२. दोनो भाई बूदी से भिक्षु के पास केलवे आए। सामजी ने रामजी को आज्ञा दे उनकी दीक्षा सपन्न करवाई। बाद मे स० १८३८ मे श्रीजीद्वार मे खेतसीजी की दीक्षा हुई। उसके उपरात सामजी की दीक्षा हुई :

स्वाम राम बुन्दी ना वासी, जाति श्रावकी जाण।
जुगल जोडलै दोनू जाया, सोम्य भद्र सुविहाण॥
करि मनसोबो आया कैलवै, पूज भिक्खू पै तांम।
आज्ञा राम भणी आपी नै, सजम दिरायो स्वामी॥
इह अवसर मैं श्रीजीद्वारै, साह भोपो सुत सार।
नाम खेतसी निर्मल नीको, थयो सजम नैं त्यार॥
अडतीसै सजम आदरियो, भिक्खु ऋष रै हाथ।
पछै स्वामजी संजम पचख्यौ, औ भिक्खु तणौ उपगार॥[2]

पहले उल्लेख के अनुसार सामजी दीक्षावय में ज्येष्ठ ठहरते है और दूसरे के अनुसार रामजी। दोनो उल्लेखो मे यह मौलिक अन्तर है। यह अन्तर और भी विचारणीय इसलिए हो जाता है कि दोनो उल्लेखो के साथ एक ही व्यक्ति जयाचार्य संपृक्त है।

जय (भि० दृ०) दृ०, १९६ के अनुसार खेतसीजी द्वारा सामजी वंदनीय थे और रामजी द्वारा खेतसीजी।[3] इससे दीक्षा-क्रम का पहला उल्लेख ठीक प्रतीत होता है।

---

१. मुनि सामजी रामजी गुण वर्णन ढा० १।७-८। तथा देखे जय (भि० दृ०), दृ० १९६; जय (शा० वि०) १।१६ वार्तिक। ख्यात मे भी प्राय. इन्ही शब्दों मे यह उल्लेख है—
"साधपणो लेवानै केलवै आया पछै सामजी दीक्षा लीधी।
पछै खेतसीजी स्वामी लीधी पछै रामजी स्वामी लीधी।"
हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १९६ मे ख्यात का अनुवाद इस प्रकार है :
जद साधपणो लेवा आया केलवै रे, पहली सामजी दीक्षा लीध।
विचै खेतसीजी नी दीक्षा थई रे लाल, पछै राम ने दीक्षा दीध॥

२. जय (भि० ज० र०) ४६।२, ३, ४, ११, २४

३. केतलै एक काले साम राम रो टोलो कीधो। त्यारा विचरी ने स्वामीजी रा दर्शण करवा विहार करने आवै जद खेतसीजी स्वामी सामजी रै भोलै रामजी ने वंदणा करै एक सरीखो उणियारो तिण सूं। जद ते कहे हू रामजी छू सामजी तो इवै छै। इण मुजब घणी वार काम पड्यो जद स्वामीजी बुद्धि सू कह्यो : रामजी थे पहली खेतसीजी ने वदना कियां करो जद खेतसीजी जाण लेसी लारै बाकी रह्या जिकै सामजी छै। इसी बुद्धि स्वामीजी री।

जय (भि० ज० र०) मे दीक्षावय मे मुनि राम को ज्येष्ठ उल्लिखित करने पर भी वाद के क्रम मे मुनि साम का नाम पहले रखा है।[1] कृति मे यह अन्तर्विरोध है।

कहा जा सकता है कि रामजी की दीक्षा तो मुनि खेतसीजी और सामजी से पहले ही हुई थी, पर वडी दीक्षा सामजी, खेतसीजी और रामजी—इस क्रम से दी गई और इस तरह सामजी दीक्षावय मे वडे हो जाने से खेतसीजी द्वारा वदनीय हो गए और रामजी द्वारा खेतसीजी। पर वडी दीक्षा द्वारा सामजी को तीनो सतो मे ज्येष्ठ कर देने की वात का उल्लेख किसी भी कृति मे नही है। सामजी की मूलभूत ज्येष्ठता के स्पष्ट उल्लेखो के रहते हुए इसे स्वीकार करना भी कठिन पडता है। अधिक सभव यह प्रतीत होता है कि किसी-न-किसी भूल से जय (भि० ज० र०) मे सामजी के स्थान मे रामजी और रामजी के स्थान मे सामजी का उल्लेख हुआ है। ऐसी स्थिति मे इस कृति के पूर्व और वाद के उल्लेख ही यथातथ्य प्रतीत होते है अर्थात् सामजी की दीक्षा ही पहले हुई थी।

श्रावक शोभजी की एक कृति केलवा मे रचित स० १८३६ कात्तिक सुदी २ सोमवार की प्राप्त है। यह कृति इस प्रकरण मे प्रयुक्त सव कृतियो से प्राचीन है। यह कृति सामजी, रामजी, खेतसीजी के दीक्षा-क्रम को असदिग्ध रूप मे स्पष्ट करती हुई उपर्युक्त निर्णय को पुष्ट करती है। सवधित पद इस प्रकार है

> सामजी रामजी वूदी सू आय ए, कैलवै लाग्या छै पूज रै पाय ए।
> पाछल चिता न राखी लिगार ए, सामजी लीधो छै सजम भार ए ॥१६॥
> खेतसीजी राचा चारित रग ए, हिवडा तो माड्यो छै करमा सू जग ए।
> माता पिता नै दिया उभा छोड ए, धिन-धिन ते करै एहनी होड ए ॥२०॥
> रामजी दीयौ ससार नै छैह ए, निज भाइ सू राखीयौ धर्म सनेह ए।
> न पड्या पाखड फद मै जाए ए, गमता लागै छै घणा गण माहि ए ॥२१॥

उक्त निर्णय के वाद यह भी निश्चित हो जाता है कि सामजी की दीक्षा केलवा मे सपन्न हुई थी न कि रामजी की, जैसा कि जय (भि० ज० र०) के उद्धरण मे है। अन्य कृतिया रामजी के दीक्षा-स्थल के विपय मे मौन है, सामजी की दीक्षा सवमे केलवा की ही उल्लिखित है।

उक्त दोनो उल्लेखो के अनुसार इतना तो निश्चित ही है कि आपकी दीक्षा स० १८३८ मे हुई थी, पर सारी कृतिया इस सवध मे मौन है कि केलवा मे दीक्षा कव सम्पन्न हुई। दो अभिमत हो सकते है

१. दीक्षा चातुर्मास-काल मे ही केलवा मे सपन्न हुई।

२. चातुर्मास के वाद केलवा से विहार हो गया। आचार्य भिक्षु मेवाड मे ही विचरते रहे और पुन केलवा पधारे तव दीक्षा हुई।

पहले अभिमत को स्वीकार करने मे वाधा यह आती है कि सामजी और खेतसीजी की दीक्षा मे कम-से-कम चार महीने का अतर पड जाता है, जवकि जय (भि० दृ०), दृ० १६६ के

---

१ (क) जय (भि० ज० र०) ४७।दो० १, २
(ख) वही, ५२।छद ३, ४

अनुसार यह अंतर थोडे दिनो का ही होना चाहिए।

दूसरे अभिमत को स्वीकार करने मे विशेष कठिनाई इसलिए नहीं है कि चातुर्मास समाप्ति के बाद विहार कर वापस केलवा पधारने के लिए महीनो का अवकाश हाथ मे रह जाता है।

दोनो स्थितियो पर विचारने के बाद यही निष्कर्ष ठीक लगता है कि दीक्षा चातुर्मास-काल मे न होकर स० १८३८ के शेष-काल मे हुई जब स्वामीजी पुनः केलवा पधारे।

सबसे प्राचीन उल्लेख से यह पता चलता है कि सामजी का देहात सं० १८६६ मे हुआ था और उस दिन आपके उपवास की तपस्या थी।[1]

इसके बाद के उल्लेख से इतना और अधिक पता चल जाता है कि आपके देहांत के समय आप मुनि हेमराजजी के सिंघाडे मे थे। स० १८६६ का उनका चातुर्मास पाली मे था। इस चातुर्मास मे मुनि भोपजी भी साथ थे। उन्होने ५ दिन की तपस्या की और उसके बाद सथारा किया। साढे चार प्रहर का सथारा आया।[2]

उक्त घटना के बाद पाली मे उपवास मे आपका स्वर्गवास हुआ।[3]

विस्तृत विवरण इस प्रकार है आपको बुखार आया। उपवास किया। बुखार के कारण उपवास मे ही चल बसे। मृत्यु के पूर्व अच्छी तरह आतमालोचना की।[4] एक उल्लेख के अनुसार

---

१. साधु-साध्वी पण्डित-मरण ढाल १।११ :

सवत् अठारे ने छासठे, सामजी चोथ भगत मझारो ए ॥

अर्वाचीन कृतियो मे भी ऐसा ही उल्लेख हुआ है :

ख्यात मे लिखा है "स० १८६६ उपवास मे सामजी चलता रह्या।" शासन प्रभाकर (भिक्षु सत वर्णन) १६८ मे उल्लेख है :

सवत अठारै छयासटै रै, साम उपवास मझार ।सु०।
आउषो पूरण कर्‌यो रे लाल, हिव खेतसीजी अधिकार ।।सु०।।

२. जय (शा० वि०) १।दो० २१, २७

३. जय (हेम० नव०) ४।१४, २१.

सिरियारी वर्ष पैसठे, वर्ष छासठे आया हो।
प्रगट पाली शहर मै, जाझा ठाट जमाया हो॥
ते सुणज्यो चित ल्याया हो॥
उपवास कियो कारण थकी, स्वामजी सुखकारी हो।
रात्रि आऊपो पूरो करी, चाल्या जन्म सुधारी हो॥
महा मोटा अणगारी हो॥

४. (क) हेम दृष्टात, दृ० ३४ ताव चढयो उपवास मे आलोचना करने सामजी स्वामी आउखो पूरो कीधो।

(ख) जय (शा० वि०) १।१६ वार्तिक

(ग) साधु-साध्वी पण्डित-मरण १।११ (पा० टि० १ में उद्धृत)

(घ) ख्यात क्रम २१ (पा० टि० १ मे उद्धृत)

(ङ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १६८ (पा० टि० १ में उद्धृत)

आपने अन्त मे सथारा किया था ।[1]

उपर्युक्त वर्णनो से ऐसा लगता है कि आपका देहावसान चातुर्मास काल मे हुआ था, पर आपसे सवधित गुण-वर्णन ढाल से पता चलता है कि आपका स्वर्गवास मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को हुआ था ·

हिवै अवसर आयो साम नो रे, काइ एक असाता उठी आण रे।
साधा उपवास करायो सही रे लाल, उपवास मे छोड्या प्राण रे ।।
समत अठारे छासठे, मृगसर विद पाचम जाण।
साम परभव पहुता पाली मझै, हीवे राम रा सुणो वखाण ।।[2]

उपर्युक्त कृतियो के वाद की कृति मे आपका देहावसान स० १८६५ लिखा हुआ है, जो उक्त कृतियो के उल्लेख से एक वर्ष पूर्व है ।[3]

परतु उक्त तथा अन्य लेखको की कृतियो मे स० १८६६ का स्पष्ट उल्लेख है ।[4] अत १८६५ का उल्लेख एक भूल ही माना जा सकता है ।

निष्कर्ष यह है कि आपका देहात स० १८६६ में पाली मे उपवास की तपस्या मे मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को हुआ था । आप २८ वर्ष मुनि-जीवन मे रहे ।

जयाचार्य द्वारा विकल्प रूप से यह लिखा हुआ मिलता है कि मुनि जोधोजी की दीक्षा स० १८५९ मे सामजी रामजी के द्वारा हुई थी ।[5]

स० १८६४ का आपका चातुर्मास लावा मे था । मुनि रामजी, भोपजी साथ थे । इस

---

१. सत गुण वर्णन, १।१७, १९
खट अणसण त्या कने, त्याने वैराग चढायो भरपूर ।
जन्म मरण त्यारा मेटवा, उपकार कियो वड सूर ।।
जोगीदास स्वामी जीवणजी, सुखजी स्वामी भोपजी जाण ।
सामजी ने स्वामी रामजी, ए छहु तपसी वखाण ।।

२. मुनि साम राम गुण वर्णन १।१३, २।दो० १

३. जय (भि० ज० र०) ४७।दो० २ .
वर्ष पैसठे उपवास मे, भिक्खु पाछै भाल ।
पाली मे परभव गया, निर्मल साम निहाल ।।

४. जय (शा० वि०) १।१६
भिक्षु गण मे युगल भाया री जोड़ कै, साम राम विहु मुनि भलाजी ।
वर्ष अडतीसै चरण लियौ धर कोड कै, परभव छ्यासठे सतरै जी ।।
सवधित वार्तिक मे भी स० १८६६ ही उल्लिखित है । ख्यात मे भी ऐसा ही है । हुलास (शा० प्र०) १६८ का वर्णन ख्यात के अनुरूप ही है ।

५. जय (शा० वि०) १।२९ वार्तिक । देखे ख्यात क्रम ४६ । जय (शा० वि०) १।४९ मे स्वामीजी के पास दीक्षित होने का उल्लेख है "जोधो मारू सयम भिक्षु पास के ।" जय (भि० ज० र०) ५।५ मे स्वामीजी के द्वारा दीक्षा कही गई है—"स्वाम भिक्खु स्वहस्त सयम सुध ।" जय (शा० वि०) १।२९ वार्तिक, पृ० ३५ का उल्लेख विकल्प रूप मे है ।

चातुर्मास मे भोपजी ने चार मास मे केवल १७ दिन पारण किया, अवशेष तपस्या की।[1]

सत विवरणी मे आपके सबध मे उल्लेख है·

"परकरती सरल सुविनीत सासण भगता सुसंजम पालता।"

यति हुलासचन्दजी ने आपकी प्रशस्ति में लिखा है :

साम राम विहु बधव रे, प्रकृति सरल सुविनीत।
शासण भक्त सुपालता रे लाल, चरण करण धरि प्रीति ॥[2]

---

१. जय (शा० वि०) १।दो० १७:
लावै वर्षज चौसटे, साम राम ने भोप।
चिहु मासे पारण सतरै, कियौ कर्मा सु कोप ॥
२. हुलास (शा० प्र०) (भिक्षु सत वर्णन) १६७

२२. मुनि खेतसीजी

आप श्रीजीद्वार के निवासी थे। आपके पिता का नाम शाह भोपजी था। आपका वश ओसवाल और गोत्र सोलकी था। आपकी माता का नाम हरू था। आपके एक छोटे भाई थे, जिनका नाम हेमजी था। आपकी दो छोटी वहिने खुशालाजी और रूपाजी रावलिया ग्राम मे विवाही गई थी। आप तृतीय आचार्य रायचन्दजी के मामा लगते थे।[1] आपका जन्म आपके ननिहाल राजनगर मे हुआ था।[2]

---

१. (क) हेम (खे० पच ढा०) १।१

श्रीजीद्वारा सैहर मै रे, भोपौ साह ओसवाल रे सोभागी।
गोत सोलकी गुणनिला रे, नार हरू सुषमाल रे सोभागी॥

(ख) जय (ऋ० रा० सु०) १।३-४

श्रीजीदुवारे भोपो साहा वसै, पुत्र खेतसी हेम।
पुत्री खुसाला रूपा कही, पूरो धर्म सु प्रेम॥
रावलीया व्याही सही, दोनू ने तिणवार।

(ग) सत गुण वर्णन १५।७

मामोजी ऋपराय आचार्य तणा रे, दोनूइ समणी ने हेम तणो वड वीर रे।
भोपा साहजी तणो छै डीकरो रे, हरू माता जायो छै गुण धीर रे॥

(घ) जय (खे० च०) १। दू० २-३, १।६,७

(ङ) जय (भि० ज० र०) ४६।४

(च) सत गुण वर्णन १६।२

(छ) ख्यात, क्रम २२

(ज) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १६९, १७५

ख्यात तथा शासन प्रभाकर दोनो मे ही हेमजी को वडा भाई वताया गया है पर वे छोटे भाई ही थे। देखिए ऊपर पा० टि० १ (ख), (ग)

२ हेम (खे० पच ढा०) १।२

मोसाल राजनगर मझै रे, जन्म हुवो तिण जागरे।
नाम खेतसीजी निरमला रे, पुनवत पूरण भाग रे॥

आपके माता-पिता का साक्षात्कार भिक्षु से हुआ। उन्होने समझकर श्रद्धा ग्रहण की। और भी ज्ञातिजन समझे। धर्म के प्रति घर मे अच्छा उत्साह था।[1]

शाह भोपजी बड़े भद्र, सरल, गुणी और गुण-प्रेमी थे।[2] माता हारू वडी विवेकशील थी। छोटे भाई हेमजी बड़े स्वच्छ-हृदय थे। खुशालाजी और रूपाजी दोनो बहिनें वडी बुद्धिमान् और धार्मिक थी।[3] आगे चलकर दोनो ही दीक्षा ले साध्विया हुई। इस तरह आप एक धार्मिक सस्कार-सपन्न परिवार मे परिवर्द्धित हुए थे।

आप वडे सुन्दर और सुकुमार थे। दूसरो को वडे प्रिय लगते थे। आपके अग-प्रत्यग चारु थे। प्रकृति निर्मल, सौम्य और सुखकर थी। आप माता-पिता के वड़े स्नेह-भाजन थे। आप भी उनके प्रति वड़े विनयी थे।[4]

गृहस्थ-जीवन

माता-पिता ने वडे हर्प के साथ आपका विवाह किया।[5] विवाह के वाद भी आपकी धुन धर्म-ध्यान मे ही रहती थी। वडी भावना पूर्वक सामायिक-पौपध आदि करते।[6]

गृहस्थावस्था मे आपकी वडी कीर्ति थी। आप कपडे का व्यापार किया करते। ग्राहकों के साथ झूठ-कपट का व्यवहार नही करते। अयतना का वड़ा भय रखते। खुले मुह नही वोलते। कपडे ग्राहको को दिखाते तव कपड़े को झटकाते नही। वायुकाय की हिसा का वचाव करते। मन मे दया वहुत थी। ग्राहक कदाचित् माल-कपडा लौटाने आते तो फिरती ले लेते। किसी से कलह-कदाग्रह नही करते। इससे ग्राहक वहुत आते। इज्जत वहुत थी। लाभ वहुत होता।

करता व्यापार तो पिण जयणा करै, पूरी दया सू प्रीत रे।
उत्तरासण कर मुख वच उचरै, नरम प्रकृति वर नीत रे॥
वस्त्र वेचे तो पिण वायुकाय नी, अजैणा तणो भय आण रे।
वस्त्र झटकवो वरजे वसेष थी, पाप थी विहता पिछाण रे॥[7]

---

१. हेम (खे० पच ढा०) १।५

भीखू गुर मिलीया भला रे, माता-पिता समज्या धर्म पाय रे।
ओर न्यातीला पिण समज्या घणा रे, दिन-दिन इधक ओछाय रे॥

२. जय (खे० च०) ३।१

३ (क) जय (खे० च०) १।६,
(ख) जय (ऋ० रा० सु०) १।४

४. (क) जय (खे० च०) १।दो० ३-४, (ख) ख्यात

५. जय (खे० च०) १।दो० ४

६. वही, १।दो० ५

७. वही, १।४-५ तथा देखिए—
(क) जय (भि० ज० र०) ४६।७
(ख) जय (शा० वि०) १।७ वार्त्तिक, पृ० ३५
(ग) ख्यात क्रम २२
(घ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, १७१, १७२, १७३, १७४

कपड़े पर हाथी, घोडे आदि की छाप होती तो ग्राहक को कुछ ज्यादा दे देते, पर पशु की छाप को वीच से नही काटते।'[1]

आप वडे पाप-भीरु थे। दूसरो को भी विविध धर्मोपदेश देते।

> पाप तणो भय ते पोते घणो, अवरा ने दे उपदेश रे।
> विविध पणे देवे जनवृन्द ने, काटण कर्म कलेश रे॥[2]

इससे स्पष्ट है कि गृहस्थ-जीवन मे भी आप धर्म-प्रचार के लिए किस तरह उद्यत रहते थे। आप अपनी वहिनों के यहा रावलिया जाते तव लोगो को निरवद्य दान-दया का स्वरूप वतलाते। शुद्ध आचार की वाते वताते। सम्यक्त्व के मूलाधार नौ तत्त्वों का वोध कराते। जैन-धर्म का रहस्य वतलाते। लोगों को वडी युक्तिपूर्वक समझाते। आपके वहिन-वहनोई आपकी इस प्रवृत्ति से दृढधर्मी हुए। आपके कारण रावलिया मे विशेष रूप से धर्म-वृद्धि हुई। कहा है

> खेतसीजी जावै तिहा, खत सू देवे वर उपदेश रे।
> जन वहू समझावै अति जुगत सू, रूढी वतावी रेस रे॥
> दान दया भिन्न-भिन्न दीपावता, ओलखावता आचार रे।
> धरम धुरा नवतत्त्व धरावता, इम करता उपगार रे॥
> वहिन-वहनोई आद वहु थया, प्रिय दृढ धर्मी पेख रे।
> धर्म वृधी रावलिया मे धुर थकी, वपराई सु वसेप रे॥[3]

वैराग्य-वृत्ति

आपकी पहली पत्नी का देहान्त हो गया, तव माता-पिता ने आपका दूसरा विवाह किया। कितने ही वर्षो के वाद दूसरी पत्नी का भी देहान्त हो गया। आपके पिता ने आपका तीसरा विवाह करना चाहा पर आपकी इच्छा न रही।[4] आपने शीलव्रत ग्रहण कर लिया।

---

१ ऐतिहासिक सुमन सदोह (भा०४) पृ० ९०

२. जय (खे० च०) १।११

३. जय (खे० च०) १।८-१०। तथा देखिए—

(क). जय (भि० ज० र०) ४६।६ :

> वहिन दो रावलिया व्याही, जाय तिहा किण वार।
> वेन वैनोई न्यातीला नै समझावै सुखकार॥

(ख) जय (ऋ० रा० सु०) १।९ :

> वलि सतयुगी ना प्रसग थी, वहिन वैनोई विचार।
> अधिक धर्म माहे समझिया, परम पीत अति प्यार॥

४ जय (खे० च०) १।दो० ६-७, जय (शा० वि०) १।१७ वार्तिक, जय (भि० ज० र०) ४६।५

> दोय व्याह पहिली कर दीधा, तीजो करता त्यार।
> उत्तम जीव खेतसी अधिको, इणरै वछा न लिगार॥

सवध मिलने पर भी विवाह नही किया।[1]

अव आपका समय और भी धर्म-ध्यान मे व्यतीत होने लगा। आपको धर्म मे वड़ा रस मिलने लगा। हृदय धर्मानुराग से रग गया। व्रतों का निर्मलता के साथ पालन करते। नित्य प्रति शुद्ध मन से सामायिक करते। एकान्तर उपवास और पौपध करने लगे। ६ दिन की तपस्या ६ दिन का पौपध (७२प्रहर का पौपध) किया। इस तरह कर्म काटने के लिए वहु विध साधना करने लगे।[2]

जयाचार्य ने लिखा है

> समकित सहित श्रावकपणो, पाले दिन-दिन प्यार।
> अतिचार अलगा करे, मन मे हर्प अपार॥
> समकत रूपी तरु भणी, समवेग जल सिचंत।
> खम दम सम गुण खेतसी, दृढधर्मी दिपत॥[3]

आपकी वैराग्य-भावना अत्यत तीव्र हो गई और आपकी साधु-जीवन अगीकार करने की भावना दिन-दिन प्रवलता से वढने लगी।[4]

दीक्षा

आप माता-पिता के वडे विनयी थे। उनसे वडा संकोच रखते थे। पारिवारिक व्यक्तियो से भी वडा स्नेह था। इसी कारण मन मे दीक्षा की तीव्र भावना होने पर भी आप माता-पिता से आज्ञा नही माग पा रहे थे।[5]

---

१. (क) हेम (खे० पच ढा०) १।३ ·
सुषे समाधे मोटा हुवा रे, दोय प्रणीया नार रे।
तीजी री त्यारी करे रे, जव सील आदरीयो श्रीकार रे॥
(ख) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १७०, १७१

२. जय (खे० च०) १।२-३। हेम (खे०पच ढा०) १।६ :
उपवास पोसा एकतर करै रे, नव पोसा लगता दीया ठाय रे।
वैराग वधै दिन-दिन घणो रे, आग्या मागण री आसंग न काय रे॥

३ जय (खे० च०) २।दो० १-२

४. वही, १।१,१२

५. (क) हेम (खे० पच ढा०) १।४ ·
सजम लेवारी मन मे भावना रे, पिण न्यातीला सू अति नेह रे।
आग्या मागण री आसग परै नही रे, जाणे किण विध देउ या नै छेह रे॥
(ख) जय (खे० च०) २। दो० ५:
भाव चरण लेवा तणा, पिण न्यातीला सू नेह।
आज्ञा लैणी आवै नही, जाणं किम दचू यानै छेह॥
(ग) जय (भि० ज० र०) ४६।७-८
(घ) ख्यात, क्रम २२
(ङ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १७६-१७७

ऐसे ही अवसर पर आचार्य भिक्षु नाथद्वारा पधारे। भारमलजी, टोकरजी और हरनाथजी साथ थे। मैणाजी आदि सतिया भी साथ थी।[1] उस समय भोपजी कुछ अस्वस्थ थे। लोग स्वास्थ्य के विषय मे पूछने आते। भोपजी ने उनसे सुना कि रंगूजी की दीक्षा हो रही है। तव उन्होंने आप (खेतसीजी) को वुलाकर पूछा "क्या तुम्हारी भावना भी दीक्षा लेने की है?" आप विनय पूर्वक वोले "हा, मेरी उत्कट इच्छा है। मै दीक्षा लेना चाहता हूं। मुझे ससार से विरक्ति हो गई है। आप आज्ञा दे तो दीक्षा लू।" यह सुनकर भोपजी दीक्षा की आज्ञा देते हुए वोले "भले ही दीक्षा लो।" फिर घर वालो को कहा "इसका भी दीक्षा महोत्सव रगूजी के साथ करो।"

भिक्षु ने आपको स० १८३८ की चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन नाथद्वारा मे रंगूजी के साथ दीक्षा दी।[2]

---

१ जय(खे० च०) २।१,८,६, जय (शा० वि०) १।१७ वार्त्तिक पृ० ३५-३६, ख्यात, हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १७८

२. यह वर्णन जय (भि० ज० र०) ४६।७-११, जय (शा० वि०) १।१७ वार्त्तिक एव ख्यात के आधार पर है। हुलास (शा० प्र०) मे भी ऐसा ही उल्लेख है (गा० १७९-१८२)। जय (भि० ज० र०) ४६।७-११ मे लिखा है

विणज करत मुख जयणा विध सू, वर वैराग वधाय।
चित्त चारित्र लेवा सू चढतौ, आज्ञा मागी नही जाय॥
इसा विनीत तात ना अधिका, इतलै तिण पुर माह।
सजम ले रगूजी सती, साभल्या भोपै साह॥
भोपौ साह कहै खेतसी भणी रे, चित तुझ लैण चरित्र।
कहै खेतसी वेकर जोडी, मुझ मन अधिक पवित्र॥
आज्ञा हर्ष धरी नै आपी, वदै भोपो साह वाय।
रगूजी भेला करौ रे, इणरा महोछव अधिकाय॥
अडतीसै 'सजम आदरियौ, भिक्खु ऋप रै हाथ।
विहार करी कोठार्‍यै आया, लारै तौ चल गयौ तात॥

इससे पूर्व की कृति जय (खे० च०) मे भी ऐसा ही वर्णन है —

रगूजी तिहा सजम लियै, जात पौरवाल जाण हो।
दिख्या मोछव दीपता, मडियो वहु मडाण हो॥

जय (खे० च०) २।१२

भोपा साहा रा डील मे, कायक कारण देख।
रगूजी सजम लियो, निमुणी वात विशेप॥
कहै वोलावो खेतसी भणी, ते साभल आया ताहि।
विनय करी ऊभा रह्या, जद पूछो भोपो साह॥
स्यू भाव थांरा चरण लेण का, सतजुगी कहे कर जोड।
साधपणो लेवा थकी, मुझ मन अधिको कोड॥

उस समय आपकी अवस्था ३३ वर्ष की थी।[1]

इस तरह आप माता-पिता, भाई, बहिन तथा सारी धन सम्पति को छोडकर वडे वैराग्य-भाव से दीक्षा ग्रहण कर मुक्ति मार्ग पर अग्रसर हुए।[2] आपकी वडी ख्याति थी। अत. आपकी दीक्षा के उपलक्ष मे धर्म की बडी प्रभावना हुई। आपकी दीक्षा भिक्षु के प्रवल सौभाग्य का प्रतीक मानी गई है

धर्म उद्योत हुओ घणों ,रे, जिन-मारग जयकार।
शिष्य सुविनीत मिल्या थका रे, सुगुरु लहे सुखसार ।।
जस किरत जग मे घणो रे, लोक करै गुण ग्राम।
सिप मिल्या सतजुगी सारपा रे, भागवली भिक्खु स्वाम ।।[3]

दीक्षा से आपको परम कल्याण का मार्ग हाथ लगा। आपको भिक्षु जैसे सत्पुरुप गुरु रूप मे प्राप्त हुए। भिक्षु और आपका सबध क्षीर और खॉड का-सा वताया गया है

परवल गुण पोरसो रे, खेतसीजी वड़ भाग।
गुरु मिल्या भीखु सारपा रे, फल्यो जस सोभाग ।।
जोडी तो जुगती मिली, गुरु चेला मही मड।
जग माही पिण इम कहे, खीर माही जिम खड ।।[4]

भोपजी का देहान्त

दीक्षा के वाद भिक्षु ने विहार कर दिया। पीछे भोपजी का देहान्त हो गया। यह वात आपको कोठारिया मे मालूम हुई।[5] भिक्षु ने आपसे कहा . "मन मे कोई विचार मत करना।" तव आप बोले · "वे सांसारिक पक्ष से पिता थे। अव आप पिता है। मुझे तो पिता का वियोग भोगना ही नही पडा। मै क्यो सताप करू ?"

भोपो साह इण विध भणै, तू सुखे लै संयम भार।
कहै मोछव दिख्या तणा, इणराइ करो अपार ।।
जय (खे० च०) ३।दो० १-४

समत अठारे अडतीसे समैरे, चैति पूनम जाण।
खेतसीजी सजम आदर्यो रे, पाया परम क्रिल्याण ।।
जय (खे० च०) ३।३)

१. जय (खे० च०) १३।७

२ सत गुण वर्णन १५।२

नाथद्वारे नीका पणै रे, सयम लियो वड वैराग रे।
मात पिता ऋद्धि सपत छोडनै रे, मुनिश्वर लागा मुक्ति रे मार्ग रे ।।

३. जय (खे० च०) ३।४-५। तथा देखें भिक्षु गुण वर्णन ११।४ ·

भविजन तारण श्री जिन जैसा, आप थया अवतारी।
पुन्य प्रमाणै मिल्या शिष्य सुगुणा, खेतसीजी हितकारी ।।

४. जय (खे० च०) ३।६७

५ हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन गा० १८३

मोनै तो आप आवी मिल्या रे, जो चल्या ससारी वाप।
म्हारै तो विरह पडियौ नही रे, हूं क्याने करू सताप॥
हू ससार माहे रह्यो हुतो रे, तो रोवणौ पडतो मोय।
सो हू तो छूट्यो दुख थकी रे, इम बोल्या अवलोय॥[1]

इसी कारण आपके विपय मे कहा गया है—"निरमोही तन-मन तणांजी।"

विद्यार्थी के रूप मे

एक विद्यार्थी के रूप मे आप अति परिश्रमी थे। ज्ञानार्जन मे वडी एकाग्रता से मन लगाते थे। पढ-लिखकर वडे विद्वान् हुए। भिक्षु से शास्त्रो के अनेक सूक्ष्म रहस्यो का ज्ञान प्राप्त किया।

१. भण्या गुण्या घणाइज भाव सू रे, अनेक कला सीख्या असमान रे।[2]
२. झिणी रहिसा अति घणी, स्वाम भिखू रे पास।
खेतसीजी सिख्या घणी, अर्थ अनोपम तास॥[3]
३. भीपू गुर समीपै भण्या रे, सूत्र सिद्धत चरचा बोल रे।
विनौ विवेक जस वहु वध्यौ रे, तीपो तोल अमोल रे॥[4]
४. भण्या गुण्या वड उद्यमी रे, उत्कृष्ट विनय पद पाय।
भिक्षु मरजी घणी आराधवी रे लाल, सतयुगी नाम कहाय॥[5]

साधु के रूप में

आपका साधु-जीवन एक जीवन्त आदर्श था। आपके साधु-जीवन की विशेपताओ का श्री जयाचार्य ने निम्नानुसार चित्रण किया है

चरण करण गुण धरण चित्त, वरण अमर-वधु सार।
मद अघ हरण सुसरण मुनि, तर्‌या भवोदधि पार॥
अमल सुमित व्रत गुप्त सुध, निर्मल सील निकलक।
विमल ध्यान लहलीन वर, कमल जिम निरपक॥

---

१. जय (खे० च) ३।११-१२। तथा देखिए—जय (भि० ज० र०) ४६।११-१२, हेम (खे० पच० ढा०) १।८-९
विहार करी आगा चालीया रे, लारै चल गयौ त्यारौ तात रे॥
सतजुगी सुन मन चितवै रे, मोनै गुर मिलीया तात ममान रे।
हू सोच करूं किण कारणै रे, ध्याया निरमल ध्यान रे॥

२. सत गुण वर्णन १५।४
३. जय (खे० च०) ६। दो० ५
४. हेम (खे० पच ढा०) १।११
५ हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १८४

मूल उत्तर गुण रखण मुनी, मन शुद्ध कीधो मेल।
खरै मतै रिप खेतसी, खेल रह्यो इम खेल ॥[1]

पांच समितियों तथा तीन गुप्तियों के परिपालन मे आप कितने दत्तचित्त और कुशल थे, इसका चित्रण करते हुए जयाचार्य लिखते है :

इर्या सुमति अति ओपती २, अधिक अनोपम सार हो।
वांण विचारी वागरै २, सीतल महा सुखदाय हो ॥
एपणा सुमन आछी तरै २, करै गवेपणा अधिकाय हो।
वस्त्रादिक लेवै मेलवै २, करत जैणा अगवाण हो ॥
पूजत परठत सुमति थी २, जतन सहित अति जाण हो।
मन वच काया गोपवै २, निरमल जेहनी तीन हो ॥
रख्या करत पट कायनी २, परम दया सू पीत हो।
मत दत ममत रहित मुनि २, निरमल सील सुगध हो ॥
वाडि सहित वर व्रत धरै २, महियल मोटो मुणिन्द हो ॥[2]

आप मे अतीव निरभिमानता व सरलता थी। आपके अन्य गुणो का वर्णन करते हुए लिखा है :

निरलोभपणो भल ताहरोजी २, सरलपणो गुण धांम २ ॥
नरम प्रकृति गुण निरमलाजी २, ते मरद्यो वहुमान २ ॥
हलका कर्म उपधि कनीजी २, धारी सिप अमाम २ ॥
सत्य वचन सतजुगी तणोजी २, पचख्यो झूठ तमाम २ ॥
सजम सखर सुहामणोजी २, अहिसा अभिराम २ ॥
तप गुण निरमल तांहरोजी २, अधिक अनोपम ताम २ ॥
दिल ओदार तू दान मे जी २, वस्त्रादिक अन पान २ ॥
आण आपे मुनिवर भणीजी २, आलस मूकी आम २ ॥
वारू रे ब्रह्मव्रत ताहरो जी २, वाड़ि सहित सुठाम २ ॥[3]

आपके दम, क्षमा, सुमति, नम्रता, चित्त-समाधि और विनय पर निम्न पद्य अतीव सुन्दर प्रकाश डालते है

दमता इन्द्री पांच दिल, रमता गुण रू वच रग।
खमता गुण कर खेतसी, सुमता सुखर सुचग ॥
नमता गुण सूं निरमला, वमता चार कपाय।
जमता जिनमत सतयुगी, गमता सहु गुण मांय ॥

---

१. जय (खे० च०) ४। दो० ३,४,५
२. वही, ४।२-१०
३. वही, ७।२-९

प्रकति विनय गुण कर प्रवर, सतजुगी सरिखा सत।
सतजुगी नाम सुहावणो, मोटा मुनि महत ॥[१]

आप मे विनय का गुण अतुल्य था। जयाचार्य ने आपको 'सुवनीता सिणगार,' 'सुवणीता सिरमोड़'[२] उपाधियो से विभूषित किया है।

आचार्य भिक्षु के प्रति विरल विनय

आप विनय की प्रतिमूर्ति थे। भिक्षु आपको पुकारते, तो सुनते ही वही से हाथ जोडकर समीप आते। उस समय हाथ मे कोई वस्तु होती, तो छूट जाती। उसका आपको भान तक नही रहता। इसी कारण भिक्षु ने सतो से कह रखा था कि मै कभी खेतसीजी को कोई वात कहलाऊं तो कहने के पहले देख लिया करो कि उसके हाथ मे पात्रादि जैसी कोई वस्तु तो नही है। मेरे नाम से कोई बात सुनते ही सहसा उसके हाथ जुड जाते है और हाथ की वस्तु नीचे गिर जाती है, जिससे उसके टूटने-फूटने की सभावना रहती है। अत सहसा मत कहना।[३]

भिक्षु के प्रति आपकी विनयशीलता को निम्न उपमा से चित्रित किया गया है.

विनय विवेक वारू घणो, सुगुरु थकी अति प्रीत।
सतयुगी स्वामी सारिखा, विरला सत विनीत ॥[४]
पतिव्रता निज पिउ भणी, सेव करै दिन रात।
तिमहिज भिक्खु आगले, जोड खड़ा रहै हात ॥[५]

भिक्षु उन्हे किसी कार्य की आज्ञा देते, तो हाथ जोड़ कर उसे पूरा करने के लिए प्रस्तुत रहते। जो काम करते, आदरपूर्वक करते। भिक्षु की इच्छानुसार चलते। इगिताकार के जानकार थे। जव कभी भिक्षु कोमल, कठोर शव्दो मे शिक्षा देते, तो हर्पपूर्वक प्रसन्नता से ग्रहण करते। आपके मुख से केवल 'तहत्त' वचन ही निकलता।[६]

---

१. जय (खे० च०) ५। दो० २-४
२. (क) सत गुण वर्णन १०।१
   सतयुगी स्वाम सुहामणाजी, सुविनिता शिरमोड।
   (ख) जय (खे० च०) ४।१.
   सतजुगी स्वाम सुहामणो २, ओ तो सुवनीता सिरदार हो।
३. (क) सेठिया (सप्त सुमन), सुमन २
   (ख) वम्व (मुनि गुण प्रभाकर)
   (ग) सेठिया (ऐतिहासिक सुमन सदोह (भाग ४) पृ० ६०
४. सत गुण वर्णन १२।३
५. जय (खे० च०)६।दो० ३
६. जय (भि० ज० र०)४६।१३-१५ :

परम विनीत खेतमी प्रगट्या, स्वाम भणी मुखकार।
कार्य भलाया वेकर जोडी, तुर्त करण नै त्यार ॥

कोमल कठन वचन करिनै भीक्खू सीख दिये अति भारी २।
खेतसीजी धारै हरख धरी नै२, तहत् वचन तत सारी॥
कार्य भुलाया विहु कर जोडी नैं, आदर सहित अपारी २।
विलम्ब रहित कार्य मुणी करता २, एहवा विनयवन्त भारी॥
वोलण चालण सर्व कार्य मे, अन्नपान वस्त्रादि विचारी २।
चित्त अनुकूल चालै सन्त खेतसी २, स्वामी नैं महा सुखकारी॥
हरख धरी रहै भीक्खू गुर हाजर, अन्तरग प्रीत अपारी २।
सुखम वुध सू आलोची परवरते २, अग चेष्टा अनुसारी॥[1]

अपनी सेवाओं से मुनि खेतसीजी ने भिक्षु को विविध प्रकार से सुख पहुचाया :

गुर भगता गुणवत गुणागर, खेतसीजी सुखकारी।
विविध प्रकार साता उपजावे, विनय विवेक विचारी।[2]

उन्होंने अपने आपको मेघकुमार की तरह भिक्षु को समर्पित कर दिया था :

ज्ञाता प्रथम झयणे मेघ मुनि कह्यो, वे चखू मुकी उदारी २।
अवशेप शरीर म्हे सूप्यो साधा नैं, सतजुगी सिख ए धारी॥
नमन पणै प्रवृत्ति विनय साध्यो, मान अहकार निवारी २।
निज आपो सुप्यो स्वाम भिखु नै २, तो होय गयो गण हितकारी॥[3]

कोमल कठिन वचन करि भिक्खु, सीख दियै सुखकार।
क्षान्ति हर्ष कर धरैं खेतसी, तहत् वचन ततसार॥
हर्ष धरी रहै भिक्खु हाजर, अन्तरग प्रीत अपार।
सेवा करी रिझाया स्वामी, सो जांण लिया ततसार॥

१. जय (खे० च०) ५।२-५। तथा देखे—

(क) सत गुण वर्णन ११।२,४

सुवनित घणा सतगुरु तणांजी, कारज विलंव रहित।
गुरुकुल वासै राजी घणाजी, पूरण पाली ज्या प्रीत॥
समता दमता खमता घणांजी, रमता गुरु वचना रे रंग।
कठन वचन गुरु सीख थी जी, मन मांहि पामै उचरंग॥

(ख) सत गुण वर्णन १०।१

(ग) वही, १३।३

सतगुरु सीख कठिन वयणेह।
थे समचित धारी गुण गेह॥

(घ) वही, १६।३

(ङ) भिक्षु गणि गुण वर्णन ११।५ .

सतयुगी नाम अपर सत युग सा, विनयवान महाभारी।
भिक्षु नी कठिन शीख पिण सुणनै, अमिय समान आहारी॥

२. जय (खे० च०) ५।१

३ वही, ५।६,१२

आपके कारण भिक्षु को बडी चित्त-समाधि रही :

भिक्खू स्वाम तणै भली, चित समाधि सवाय।[1]

गण के प्रति

गणि के प्रति आपकी जैसी भक्ति और आस्था थी, वैसी ही गण के प्रति आपकी प्रीति थी। आप सकल सघ के हितैपी थे। साधु-साध्वियो के लिए जनक-तुल्य थे। जयाचार्य ने लिखा है ·

सुखदायक सहु जन भणी २, खेतसीजी गुणखाण हो।
गणवच्छल गणवाल हो २, दर्शन अमृत पान हो।।[2]

सारे गण के लिए आप विश्राम-स्थल थे। आप शासन-स्तम्भ थे

शासन स्थभ शिरोमणी मुनिन्द मोरा, बारू गण विश्राम हो।[3]

आपने सारे गण को वडा आह्लाद दिया

खेतसी स्वामी रे प्रसादो, पाया चार तीर्थ अहलादो।[4]

---

१. जय (खे० च०) ६।दो० ४

२. वही, ४।११,१२। मिलावे—

(क) सत गुण वर्णन

प्रतिपालक सहु गण तणो, स्वामी जनक समान।
याद आप मन हुलसै, एहवा खेतसीजी गुणखान।।

(ख) जिन शासन महिमा ७।१० ·

स्वामी खेतसी विनय ने खम्या गुणखान के, गण प्रतिपालक सतजुगी जी।
सत सत्या न प्रत्यक्ष जनक समान के, साप्रत काले दोहिलो जी।।

(ग) हेम (खे० पच ढा०) १।दो० ४

सकल सघ नै सतजुगी, साताकारी सोय।
ऐसा पुरुप इण जगत मे, कइक विरला जोय।।

(घ) वही २।दो० १-२

भगता गुर भीषू तणा, सेव करत सुजाण।
इमहीज भारीमाल सू, पूरण प्रीत पिछाण।।
और साध नै साधवी, सगला नै सुखकार।
सतजुगी सोभ रह्यो, दीवै ज्यू दिनकार।।

(ङ) भिक्षु गणी गुण वर्णन १२।४,५

मुनि सुखदाई मिल्या सत सत्या भणी रे, थे तो खेतसीजी गुणखान रे।
श्रमण प्रतिपाल सत सत्या भणी रे, स्वामी प्रत्यक्ष जनक समान रे।।
विविध विनय सतयुगी तणै रे, तन मन करे साधा री सेव रे।
चित्त प्रशन्न कियो सतगुरु तणो रे, अलगो करिने अहमेव रे।।

३. जय (ऋ० रा० सु०) ५।७

४. जय (खे० च०) ८।१

इसी कारण वे चारो तीर्थ के वल्लभ थे

रखिया रोहिणा सारिखा, स्वाम मतजुगी सार।
वल्लभ तीरथ चार ने, पेखत पामे प्यार ॥[1]

सत-सतियो के प्रति आप बडे विनयी और सेवा भावी थे। छोटे-वडे सभी संत-सतियों की निर्जरा हेतु सार-सभाल करते रहते।

१. सतयुगी स्वामी नित्य समरीयैजी, सत प्रतिपाल सुखमाल।[2]
२. समण सत्या ने जनक समान, प्रतीतकारी थे बुधमान।
सत सत्या निश दिन समरत, तू पीयर सम महा यशवित ॥[3]
३ शान्त प्रकृति थारी सुदरू हो, लघु वृध यत्न विशेप हो।
कर्म काटण उद्यमी घणा हो, प्रेम विनै गुण पेख ॥
याद करै नित्य आपने, समण सत्या सुविशेष।
अशरण शरण तू ही सही, परम विनय गुण पेख ॥[4]
४. सत सत्या ने आश्वासना, अतिसेव अमदा।
निरअहकार चित निर्मलैजी २, धिन धिन विनय धुनिदा ॥
वर्णन विनय तै वारता, किम जाय कथिंदा।
जनक लघु वृद्ध जत्न थी जी, उचरग अमदा ॥[5]

सेवा-वृत्ति के साथ आप मे निरहकार भाव था। चित्त की प्रफुल्लता रहती थी। छोटे-वडे सव साधुओ की समान भाव से सार-सभाल करते थे।

वडे-छोटे साधु लेखन-कार्य करते, उन्हे आप स्वय ले जाकर पानी पिलाया करते थे। जब सत कहते—"आप यह क्या कर रहे है?" तो उन्हे उत्तर देते—"आप लोग लेखन-कार्य कर रहे है, मैं तो लिखना-पढना नही करता, तव इतना ही करता हू। मुझसे और क्या हो सकता है?"[6]

साधु-साध्वियो के लिए उष्ण जलादि की व्यवस्था करते थे .

लघु वृध समणी सत्या ने, उष्ण जल आणी।
विविध समाध पमावे सामी, धर्म निर्जरा जाणी जा ॥[7]

आप सत-सतियो के लिए आश्वासन-स्वरूप थे :

सन्त सतियो ने असासनाजी, स्वामी जनक समान ॥[8]

---

१. जय (खे० च०) ६।दो० ४
२. सत गुण वर्णन ११।१
३. वही, १३।२,९
४. वही, १४।२,८
५. वही, १९।५-६
६. सेठिया (सप्त सुमन), सुमन २
७. जय (खे० च०) ७।९
८. सत गुण वर्णन १०।२

इस गुण के कारण सब सत-सतिया आपको याद करते रहते थे।[1]

सकल सघ के हितकारी, अत्यन्त विनयवान और विवेकशील होने के कारण आप 'गण-वत्सल' और 'गण-वल्लभ' कहे गए

विनयवत मुनि प्रकृति विवेकी, सकल सघ हितकारी।
काम पड्या याद आवै, खेतसीजी गणवछल गणधारी ॥[2]

तपस्वी के रूप मे

आप बडे तपस्वी थे। उपवास, बेला आदि तपस्या आप बहुधा किया करते थे। अनेक बार पाच-पाच के थोकडे किए। आपने अनेक बार अठाई की। उत्कृष्टत आपने अठारह दिन की तपस्या की, जिसमे केवल एक बार जल लेने का आगार था। आपने अनेक विकृतियो का त्याग किया था और दस प्रत्याख्यान करते रहे। ग्रीष्म ऋतु मे आप धूप मे आतापना लिया करते। शीतकाल मे आप शीत सहन किया करते। एक प्रहर खडे रहकर ध्यान करने की तपस्या आपने कई वर्षो तक की।[3]

तप बहु करता पातक हरता, चोथ छठमादिक जाणी।
उष्ण काल मे लीयै आतापन, उजम इधको आणी ॥
पाच पाचना प्रवर थोकडा, कीध्या बोहली बारो।
वले आठ दिन पचख्या लगता, मन मे हर्ष अपारो ॥
उत्कृष्टा मुनि दिवस अठारै, कीधा महा सुखदायौ।
एक बार पाणी आधारै, तपस्या करी तन तायौ ॥
दस पचखांण किया मुनि दिल सू, ते पिण बार अनेको।
बहु विगै छाड आतम नै वाली, वारू अधिक विवेको ॥
शीत काल मै सीत सह्यो अति, काटण करम करूरो।
सार करता सन्त सत्यानी, करम काटण नै सूरो ॥
उभा रहिवारी तपस्या करी, एक पोहर उनमानौ।
ते पिण घणा काल लग कीधी, खेतसीजी गुणखाणो ॥[4]

---

१. जय (खे० च०) १३।११
समण सत्या ने जनक सरीपा, सतजुगी महा सुपकारी।
सत सत्या थांनै निश दिन सवरे, आप इसा साताकारी ॥
२. जय (खे० च०) १३।१०
३. जय (भि० ज० र०) ४६।१८-२०, ख्यात क्रम २२ ,हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १८६-१६०
४. जय (खे० च०) ६।३-६। मिलाए—
(क) सत गुण वर्णन १५।६
एकान्तर आदि तपस्या कीधी घणी रे, सीयालै सी उन्हालै आताप रे।
दुक्कर करणी कर वर्षा लगै रे, काटण पूरव भव ना पाप रे ॥

शिक्षक के रूप में

शिक्षक के रूप मे आप बडे उदात्त थे। आपको 'उपाध्याय-सम' कहा गया है।[1] आपका जीवन ही दूसरों के लिए शिक्षक-रूप था :

विनय देख सतजुगी तणो, जती धर्म दृढ देख।
अवर सत नै महासती, सिख्या गुण सुविशेष ॥[2]

आपने अनेक सन्तो को ज्ञान-दान देकर प्रवीण किया

दान दया हद न्याय दीपता, विविध प्रकार बतावै।
भिक्खु पास सुणी नै धार्या, तिम भवियण समझावै ॥[3]
व्रत इव्रत माड बतावता रे, जाझा रूडा तिण मै जाव रे।
हलुकर्मी हृदये उतरै रे, पाखड छोडे तुरत सताव रे ॥[4]

मुनि हेमराजजी और जीतमलजी ने आपसे अनेक बाते धारी। प्रश्नो का उत्तर आप विविध दृष्टान्तो सहित देते। आप ज्ञान के भडार थे·

हेम जीत दिल पोल हो सु०, सतजुगी नै कर जोड पूछै वर वारता रे लो।
आपै अर्थ अमोल हो सु०, विविध प्रकार ना दृष्टान्त दे ओलपावता रे लो ॥
भिक्खू रिष रै पास हो सु०, विविध जूनी-जूनी सूत्र नी रहसा सिष्या घणी रे लो।
आपै आण हुलास हो सु०, ग्यान पजरो सतजुगी महा गीरवो गुणी रे लो ॥[5]

(ख) सत गुण वर्णन १४।३·
एक टक उदक आगार थी जी, तप कीयो दिवस अठार।
ग्रीष्म ऋतु मे आतापना जी, मन माहि हर्ष अपार ॥

(ग) हेम (खे० पंच ढा०) ३।२-५
तपस्या करवा तीपा घणा, चौथ छठ अठम दसम दुवाल रे।
उनाले लीयै आतापना, सरीर दाजै सुपमाल रे ॥
एक पोहर कै आसरै, उभा रहीवा री तपस्या अमाम रे।
ते पिण किधी घणा दिन आसरै, त्यारे कर्म काटण री हाम रे ॥
दस पचपाण कीधा दीपता, ते पिण वारूवार रे।
उत्कृष्टा अठारै दिन लगै, एक वार पाणी आधार रे ॥
पाच-पाच तणा वहु थोकड़ा, वले आठ किया उपवास रे।
सीयालै सी समता थका, काटण कर्मा ना पास रे ॥

१. जय (शा० चि०) १।१७
२. जय (खे० च०) ८।दो० १
३ जय (खे० च०) ६।१
४. सत गुण वर्णन १५।५। देखे—हेम (खे० पच ढा०) १।१३
व्रत इव्रत माड बतावता रे, चरचा वतावण घणी चूप रे।
उद्यमी घणा नही आलसू रे, तारण भव-जल कूप रे ॥
५. जय (खे० च०) ११।१०, ११

जयाचार्य को विद्या-दान

जयाचार्य को विद्या-दान दिया, उसकी चर्चा उन्होने अनेक स्थलो पर की है

(१) झीणी रेस बताइ मोय ।
हू निश दिन समरू मुनि तोय ॥[1]

(२) हू बलिहारी थाहरी हो सतजुगी, ज्ञान दातार गुण खान हो । मोटा मुनि ।
याद आया मन हुल्लासे हो सतजुगी, सकल मिटै दु खखान हो । मोटा मुनि ।
आप तणा गुण किम विसरू हो सतजुगी, प्राणनाथ महाराज हो । मोटा मुनि ।
सुपनै देख्याइ सुख उपजै हो सतजुगी, आप तारण तिरण जिहाज हो । मोटा मुनि ।[2]

(३) मोसू उपगार महामुनि, अति कीध उमदा ।
जनम जनम नही विसरू २, वर तुज गुण वृ दा ।[3]

(४) सूत्र सज्झाय मे स्याणा घणाजी, झीणी रहिस रा जाण ।
मो सू उपकार कीधा घणाजी, सिखाई रहिस अमूल्य ।
याद आया हियो हुलसैजी, तुम गुण सिन्धु अतूल्य ॥[4]

शासन-वृद्धि में योगदानी

आपके प्रयास से शासन मे विपुल वृद्धि हुई । आपकी वहिन रूपाजी (३७) ने सं० १८४८ मे दीक्षा ली और सिरयारी मे स० १८५७ मे सथारा किया । आपकी दूसरी वहिन खुशालाजी (४६) ने अपने पुत्र रायचन्दजी के साथ स० १८५७ मे दीक्षा ली । रायचन्दजी आगे जाकर तृतीय आचार्य हुए । खुशालाजी ने स १८६७ मे सथारा किया ।[5] आपके छोटे भाई

---

१. सत गुण वर्णन १३।१२
२ वही, १४।५, ७
३. वही, १६।१०
४ वही, १०।३,४
५ जय (खे० च०) ८।३-११, जय (भि० ज० र०) ४६।२१, हेम (खे० पच ढा०) ५।दो० १-४

सतजुगी रा साहज सू, और हुवो उपगार ।
साध साधवी सोभता, श्रावक-श्रावका सार ॥
दोनू वहिना दीपती, छोडी निज भरतार ।
कुसालाजी रूपाजी कही, पूज उतारी पार ॥
भाणेजो भल भाव सू वय वालक वयराग ।
दस वरसारे आसरै, रायचन्द वड भाग ॥
समत अठारै सतावनै, चेती पूनम सोय ।
मा वेटा दोनू जणा, सयम लीधो जोय ॥

हेमराजजी की पुत्री दौलाजी (६३) ने भी गण मे दीक्षा ली।[1] यह सब आपके उपदेश और प्रेरणा का परिणाम था। सथारे के समय आपने अपनी बहिनो को वडा सहारा दिया।

महान् शुश्रूपक

आपमे वैयावृत्य-सेवा का वडा गुण था। इसी कारण आप 'व्यावच्चिया-संत' कहलाते थे। कहा है ·

> विनय वियावच मे वधिया घणा रे,
> सागेइ चौथा आरा नी रीत रे ॥[2]

स० १८६० के सिरयारी चातुर्मास मे आप भिक्षु के साथ थे। सथारे के समय आपने उनकी वडी सेवा की।[3] इसी तरह आचार्य भारमलजी की भी सथारे के समय आपने वडी सेवा की।

जयाचार्य ने लिखा है ·

> भीषू रिष नी भली परे, इम हिज भारीमाल।
> खेतसीजी व्यावच करी, सुवनिता ए चाल ॥[4]

स० १८७७ की फालगुन सुदी १३ को आचार्य भारमलजी केलवा पधारे। कुछ दिनो के वाद आप अस्वस्थ हो गए। आपने तपस्या करने का विचार कर वैसाख महीने से तपस्या शुरू कर दी। अस्वस्थता के कारण आचार्यश्री का चातुर्मास केलवे मे ही हुआ। चातुर्मास मे भी तपस्या चालू रखी। इस चातुर्मास मे आठ सत सेवा मे थे, जिनका नामोल्लेख करते हुए मुनि हेमराजजी ने आपका परिचय निम्न शब्दो मे दिया है ·

> सतजुगी खेतसी सार, साधा मे दीपता जी।
> विने व्यावच मे श्रीकार, इन्द्रया ने जीपता जी ॥[5]

आचार्य भारमलजी को अन्त समय मे चौविहार सथारा कराने मे आप साथ रहे ·

> भगजी वेरागी कहे सामीजी जावे छे, कराय द्यो सर्वथा पूर्ण सथारो ॥
> सतजुगी ने रायचन्दजी ब्रह्मचारी, मुख सू वोलिया एहवी वाण।
> सरधो तो सामीजी जावाजीव रा, आपरे सर्वथा छे पचषाण ॥[6]

---

१. जय (खे० च०) ८।२ ·

> हेम सुता दौलाजी नामो, सतजुगी ने भतीजी तामो।
> धारचो चारीत्र गुण मणि धामो ॥

२. सत गुण वर्णन १५।३

३. जय (भि० ज० र०) ५३।१४, ५४।५

४. हेम (भा० च०) १३। दो० ३

५. वही, ७।५

६. वही, ९।७,८

मुनि हेमराजजी ने आपके सबध मे अन्य स्थल पर लिखा है :

> साताकारी सिप साम रे, सतजुगी सावधान।
> सेवग सामधर्मी पणे, ज्यू पके मते परधान ॥
> सतजुगी सेवा करे, खेतसीजी परे पेल।
> विनय वियावच मे विचखणपणे, साचा रह्या सचेत ॥[1]

जयाचार्य लिखते है · सत खेतसीजी ने तीनो आचार्यो के प्रति एक-सी प्रीति निभाई। सबके प्रति बडे विनयी रहे

(१) भीक्षु भारीमाल अनै ऋपिराय, पूर्ण प्रीत नीभाइ सवाय ॥[2]

(२) भिक्खू भारीमाल ऋपराय थी हो, सतयुगी पूरण पाली प्रीत हो, मोटा मुनि।
गण वच्छल गण आधार हो ॥[3]

सतयुगी

मुनि खेतसीजी गुण-रत्नो की खान थे।[4] क्षमा, सयम और समता के सागर थे।[5] शील के घर थे। वोली अमृत जैसी मीठी थी। लोगो को अत्यत प्रिय थे। जन-वल्लभ थे। बडे सज्जन थे।[6] आप परम दयालु थे। जयाचार्य ने लिखा है—ऐसे सत पचम-काल मे तो दुर्लभ है ही, चतुर्थ काल मे भी विरल होते है।[7] आपका वाचा-सयम अत्यत प्रशसनीय था।[8] आपकी वाणी सुन्दर थी। प्रकृति निर्मल, सुधारम के समान मधुर और अति उदार थी।[9] सतो के

---

१. हेम (भा० च०) १३।दो० १,२

२. सत गुण वर्णन १३।११

३. वही, १४।१

४. वही, १३।१
सनयुग सरीखा सतयुगी जान।
खेतसीजी गुण रत्ना री खान ॥

५. वही, १४।९
क्षम दम सम गुण सागरू सतजुगी, आशा पूरण आप हो। मोटा मुनि।
समरण करू नित्य आप रो हो सतजुगी, सकल मिटै सताप हो। मोटा मुनि ॥

६ वही, १४।४
शील तणा घर थे सही हो सतजुगी, वारू थारी अमृत वैण हो। मोटा मुनि।
परम प्रिय जन वालहा हो सतजुगी, आप साचेला सैण हो। मोटा मुनि ॥

७. वही, १४।६
सत खेतसीजी सारखा हो सतजुगी, दुर्लभ होणाई इण काल हो। मोटा मुनि।
चौथे आरे पिण विरला होसी हो सतजुगी, इसा आप परम दयाल हो। मोटा मुनि ॥

८ वही, १६।८
वाच यम अति भाल हो।

९ वही १३।६
सुन्दर थारी वाण विशाल, निर्मल सुधारस अति सुविशाल।

प्रतिपालक थे। सबको सुख पहुचाने वाले थे। बड़े गहरे और गम्भीर थे। नेत्रो मे शीतलता थी।[1] बड़े उपकारी थे। सुन्दर प्रज्ञा से सपन्न थे।[2] आपके विनय गुण की स्वय भिक्षु ने प्रशसा की थी।[3] विनय और वैयावृत्य मे आप बड़े प्रवीण थे। प्रकृति बड़ी कोमल थी।[4] शासन के लिए स्तम्भ-स्वरूप थे।[5] समरस के सागर थे। बड़े महिमावान संत थे।[6]

इस तरह आपकी प्रकृति सतयुग के संतों की-सी भद्र, मृदु और निष्कपट थी। आप मे विनयादि गुण भी उस युग जैसे थे। आपके सारे गुणों से प्रभावित होकर ही भिक्षु आपको 'सतजुगी' कहा करते थे।[7]

> सतजुग सरिषा प्रकृत विनय सू, निर्मल मतजोगी नाम।
> गण आधार ग्लेतसी गिरवो, सरायो भिक्खु स्वाम॥[8]

आचार्यों के बहुमान के पात्र

आचार्यो ने आपका बड़ा सम्मान रखा। भिक्षु ने आपको 'सतयुगी' की उपाधि से विभूषित किया था। इससे आपके प्रति भिक्षु की उदात्त भावनाओ का अच्छा परिचय मिल जाता है।

स० १८५५ के पाली चातुर्मास में आपको एक रात्रि मे दस्त और उल्टियां होने लगीं। रास्ते मे ही गिर पड़े। भिक्षु ने मुनि हेमराजजी को जगाया। दोनो ने मिल कर आपको अंदर लिया। भिक्षु बोले —ससार की माया कितनी क्षण-भगुर है। खेतसीजी जैसा ऐसा हो गया।

---

१. सत गुण वर्णन ११।१

सतयुगी स्वामी नित्य समरीयें जी, संत प्रतिपाल सुखमाल।
गहरा गभीर गिरवा गुणजी, शीतल नयन निहाल सुखमाल॥

२. वही, १२।१

सतयुगी स्वामी नित समरीयै जी, गिरवो नै गुणवान। सुग्यानी रे।
उपगारी गुण आगलो, वारु बुद्ध निधान। सुग्यानी रे॥

३. वही, १०।३

विनय तणो सूं वर्णवो जी, त्यारा भिक्षु ऋषि कीया वखाण॥

४ वही, १३।८

कोमल थारी प्रकृति अमोल। चार तीर्थ में आपरो तोल॥

५. वही, १३।७

तू गिरवो गुणवत सुथभ, तू धोरी जिनमत नो थभ।

६ वही, १२।२

सुमता रसनो सागरू, महिमावत मुनिराय॥

७. जय (खे० च०) ५।दो० ४

८ जय (भि० ज० र०) ४६।१६। मिलावे—

सत गुण वर्णन १४।१०:

सतयुग सरखा थे सही हो, सतजुगी निर्मल गुण निर्दोष, सतजुगी।
च्यार तीर्थ थानै सभरै हो, सतजुगी, पूरण आपरो पोष, सतजुगी॥

खेतसीजी को सुलाकर सिरहाने से नई पछेवडी निकालकर उन्हें ओढाई। कुछ देर वाद सचेत हुए। वोलने लगे। वोले—"आप रूपाजी को अच्छी तरह पढाइएगा।" भिक्षु वोले "तू भगवान का स्मरण कर। रूपाजी की चिन्ता मत कर।"[1] आपके प्रति भिक्षु की उदात्त भावना का इस प्रसग से सुन्दर परिचय मिलता है।

अन्तिम दिनो मे भिक्षु ने आपकी वडी प्रशसा की और फरमाया—"मैंने 'सतजुगी' के सहयोग से वडी समाधि का अनुभव किया। उनके सयोग से मैंने निरतिचार सयम का पालन किया।"[2]

> सरियारी मे भिक्खू स्वामी, साठे कियो सथारो।
> कह्यो सतयुगी रा साहज थी, मैं पाल्यो सजम भारो॥
> इण विध भिखु आप प्रशसा, इसा खेतसी स्वामी।
> गण वच्छल गण नायक गिरवा, सतयुगी अन्तरजामी॥[3]

भिक्षु ने सलेखना सथारा की मन मे ठानी तव मुनि भारमलजी और खेतसीजी की साक्षी से आलोचना की।

> अरिहत सिद्ध री साख सू, वडा शिप श्रीकार।
> वले सतजुगी री साख सू, वचन काढ्या मुन वार॥
> सुणजो आलोयणा स्वामि तणी॥[4]

सथारा करने लगे तव भारमलजी के साथ खेतसीजी को भी वुलाया

> वुलावो भारीमालजी भणी, वले सतजुगी सुजाण॥[5]

आचार्य भारमलजी ने भावी आचार्य का चुनाव करते हुए पन्ने मे एक नाम न लिखकर दो नाम लिखे। मुनि रायचन्दजी के पहले आपका नाम लिखा। आचार्य भारमलजी के हृदय मे आपके प्रति जो गौरवपूर्ण स्थान था, उसका इस घटना से अच्छी तरह पता चल जाता है।

वाद मे सन्तों ने एक नाम रखने का अनुरोध किया। आप और मुनि हेमराजजी ने भी मुनि रायचन्दजी को भावी आचार्य नियुक्त करने का अनुरोध किया, तभी आपने मुनि

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० २५३

२. (क) वेणी (भि० च०) ६।दो० ६ :

> सतजुगी ने सामी कहे, थे आछा शिष्य सुवनीत।
> साज दियो थे मो भणी, मे सयम पाल्यो रूढी रीत॥

(ख) जय (भि० ज० र०) ५४।५ :

> स्वाम कहै सतजुगी भणी, थे सखर शिष्य सुविनीतो ए। घर प्रीतो ए।
> साझ दियो सजम तणोक। मु०॥

३. जय (खे० च०) ६।११,१२

सेठिया (मुनि गुण वर्णन मे) लिखते है : स्वामीजी ने अनशन मे आपकी भूरि-भूरि प्रशसा की, पर यह ठीक नही है। प्रशसा अनशन के ६ दिन पहले की थी।

४. वेणी (भि० च०) ८।१

५ वही, १०।दो० १

रायचन्दजी को भावी आचार्य मनोनीत किया।[1]

सतजुगी हेम वयण वदीजे रे, रायचन्दजी ने पट दिजे रे।
म्हारी तरफ सू चिन्ता न कीजे, भारीमाल सुणी मन हर्ष्यो रे।
निकलक दोनुई ने निरख्या रे, या ने परम विनैवत परख्या ॥
एहवा उभय वडा मुनि धीरा रे, गणस्थभण गेहर गम्भीरा रे।
हद विमल अमोलक हीरा ॥[2]

इस घटना से इस वात का पता चलता है कि मुनि खेतसीजी कितने निस्पृह थे। उनका चित्त कितना गम्भीर और विशुद्ध था। वे प्रकृति के कितने निर्मल व विनयवत थे तथा आचार्य के प्रति उनकी कितनी गहरी आस्था थी। साथ ही आचार्य भारमलजी का उनके प्रति जो वहुमान था, उसका भी सुन्दर परिचय प्राप्त होता है।

चातुर्मास

आपने भिक्षु के चरणो मे २२ वर्ष व्यतीत किए। स० १८४८ मे वेणीरामजी को प्रतिवोधित करने के लिए आपका चातुर्मास वगडी मे रखा गया। इसके अतिरिक्त १८३९ मे लेकर १८६० तक आपके चातुर्मास भिक्षु के साथ हुए

भिखू रिप भेला किया, सर्व चौमासा सार।
एक चौमासो न्यारो कियो, जाणी लाभ अपार ॥
वेणीरामजी रे वास्ते, स्वाम खेतसी सोय।
चौमासो वगडी कियो, चमालीसे अवलोय ॥
चौमासे उतरया पछै, भिखु रिष रे पास।
पाली मे संजम लियो, वेणीरामजी तास ॥[3]

भिक्षु के देहान्त के वाद आपने सर्व चातुर्मास आचार्य भारमलजी की सेवा मे किए। १८ वर्षो तक उनकी सेवा की

---

१. हेम (भा० च०) ८।६.
खेतसीजी हेमजी भणी, पूछी ने दियो पाट।
व्रह्मचारी रिप रायचन्द ने, थिर कर राखज्यो थाठ ॥
२. जय (ऋ० रा० सु०) ७।४-६
३. जय (खे० च०) १०।दो १-३। तथा मिलाए—
(क) हेम (खे० पच ढा०) ३।६-८

वावीस वरसा रे आसरै, भीखु गुर री सेवा भाल रे।
अतेवासी उजल आत्मा, आणी भाव रसाल रे ॥
समत अठारै साठा समै, सथारो कीयो भीखू साम रे।
अतेवामी रिप खेतसी, सेवा कीधी अमाम रे ॥
सगला चौमासा सामीजी कनै, एक चौमासो अलगो कीध रे।
वैणीरामजी काजे वगड़ी मझै, त्या पाली मैं दिण्या लीध रे ॥

(ख) ख्यात, क्रम २२

साठा थी अठतरा लगे, विचर्या भारीमाल।
सेव खेतसी साचवी, आणी भाव रसाल ॥
वर अठारे आसरै, भारीमालजी जोय।
तन मन सू सेवा करी, स्वाम खेतसी सोय ॥[1]

आचार्य भारमलजी का देहात स० १८७८ माघ वदि ८ को हुआ। इसके वाद आपको तृतीय आचार्य रायचन्दजी की सेवा मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सं० १८७९ का आचार्य श्री का चातुर्मास पाली मे और स० १८८० का जयपुर मे था। आप साथ मे रहे। चातुर्मास के वाद विहार करते हुए आप आचार्यश्री के साथ पीपाड पधारे। यही आपने आचार्यश्री से सथारा ग्रहण किया। आपका देहावसान स० १८८० की आषाढ कृष्णा १४ को हुआ

हिव चौमासो उतरयो रे, विचरत विचरत ताय।
शहर पीपाड पधारिया रे, सतजुगी स्वाम ऋषराय ॥
स्वामी सतजुगी तिण समे रे, सारचा आतम काज।
संथारो सावचेत मे रे, अदरायो ऋषराय ॥[2]

इस अवसर पर आचार्य रायचन्दजी ने आपको वडा सहारा पहुचाया

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १८७
स्वाम भेला चोमासा किया रे, अडतीसा सु लेइ सवत साठ।
एक चोमासो न्यारो कियो रे लाल, वेणीराम ने दिक्षा देवा माठ ॥
शासन प्रभाकर के अनुसार वेणीरामजी को इसी चातुर्मास मे खेतसीजी ने दीक्षा दी थी, पर यह वात ठीक नही है। देखिए—ऊपर के उद्धरण तथा मुनि वेणीरामजी का प्रकरण।

१. जय (खे० च०) १० दो० ४-५। तथा मिलाएं—
(क) हेम (खे० पच ढा०) ३।९-१०
वले भगत कीधी भारीमाल री, वरस अठारै उनमान रे।
साता कारी सोभता पेतसीजी, विनै गुण पान रे॥
अणसण भारीमाल अठतरै, राजनगर मै रूडी रीत रे।
सतजुगी सेवा साचवी, रापी चौथा आरा री रीत रे॥
(ख) ख्यात, क्रम २२
(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, १८८
भिक्षु पछै साठा थी अठतरा लगै रे, भारीमाल भेला रही नेह।
अधिक विनय गुण साचव्यो रे लाल, तप पिण अधिक करेह ॥

२. जय (ऋ० रा० सु०) ८।६-७। मिलाए—
जय (भि० ज० र०) ४६।२२-२३.
वर्ष वावीस स्वाम नी सेवा, छेहडा लग सुविचार।
भारीमाल नी छेह लग भक्ती, आसरै वर्ष अठार ॥मु०॥
सलेपणा छेहडै करी सखरी, सखरोई संथार।
भिक्खु भारीमाल पाछै परभव मै, असीयै वर्ष उदार ॥सु०॥

सखरो साहज दियो सही रे, स्वामी खेतसी सार।
ऋषराय सेव हद साचवी, अत समै अवधार॥'

इस तरह आपने तीन आचार्यो की समान भाव से सेवा की और उनसे एक-सा सम्मान पाया।[२]

सथारा

आचार्य रायचन्दजी के १८७६ के पाली चातुर्मास के वाद मिगसर वदि १ के दिन वहा से विहार करने पर आपके कुछ असात हुई, पर आपने उसकी परवाह नही की। समभाव से सहन करते रहे। स्थानापन्न नही हुए।[३] आचार्य रायचन्दजी के साथ आपका स० १८८० का चातुर्मास जयपुर मे हुआ।[४] वहां से विहार कर विचरते-विचरते वाजोली पधारे।[५] वहां आचार्यश्री एक माह तक रहे। आप स्वस्थ नही हुए।[६] वाजोली से विहार कर ईडवा, पादू, अणदपुर, वलूदा फिर अनुक्रम से विहार कहते हुए पीपाड पधारे। यही आपने संलेखना आरभ की और अन्त मे सथारा किया।[७]

सलेखना और सथारे की घटना का विवरण इस प्रकार है · आरम्भ मे उपवास से लगाकर चौले की तपस्या की। एक दिन आचार्य रायचन्दजी से वोले "सासारिक सवंध मे मैं मामा हू और आप भानजे है। मुझे आराधक-पद प्राप्त हो, वैसी कृपा करे, तभी मै समझूगा कि

---

१. जय (ऋ० रा० सु०) ८।८। देखे—
   (क) ख्यात, क्रम २२
   (ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन १९१ :
      अठतरै ऋपराय पाट विराजिया रे, ते भाणेजा खेतसीजी ना जाण।
      छेहली वृद्ध अवस्था मझै रे लाल, सेवा भक्ति थी सहाज दिराण॥

२. सत गुण वर्णन १२।७
   भिक्षु गुरु भल भेटीया, भारीमाल नै साज।
   प्रीत घणी ऋपिराय थी, जगत उद्धारण जिहाज॥

३. जय (खे० च०) १०।५-६, हेम (खे० पच ढा०) ३।११-१२

४ जय (खे० च०) १०।६; हेम (खे० पच ढा०) ३।१३ एव ४।दो० १।५

५. (क) जय (खे० च०) ढाल ११
   (ख) हेम (खे० पच ढा०) ४।१-६

६. जय (खे० च०) १२।दो० १-२

७. (क) जय (खे० च०) १२।१-४
   (ख) हेम (खे० पच ढा०) ५।दो० १, १-२
   (ग) ख्यात, क्रम २२
   (घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन १९२
      उपवास थी लेई चौलै तांइ तप किया रे, पछै वेले वेले करता सार।
      तीखा परणामा महा मुनि रे लाल, जावजीव कियो सथार॥

मै आपका हू—आपका मुझ पर वात्सल्य भाव है।" आचार्य श्री ने कहा . "जो शल्य-रहित होता है, वह आराधक ही होता है।"

इसके वाद आपाढ़ वदि ६ के दिन आपने चौले का अल्प आहार से पारण किया। फिर वेला किया। १२ के दिन पारणा किया। फिर वेला किया। वेले मे १४ के दिन आचार्यश्री ने आपसे कहा . "अव अवसर समीप है। आप कहे, तो यावज्जीवन सथारा करा दू।" हा भरने से आचार्य श्री ने तिविहार सथारा करा दिया और वोले "यदि आपने सथारा स्वीकार किया हो, तो मेरे मस्तक पर हाथ रखे।" मुनि खेतसीजी ने आचार्यश्री के मस्तक पर अपना हाथ धर दिया। इस तरह पूर्ण सजग अवस्था मे उन्होने सथारा ग्रहण किया।[1] परिणाम वडे तीव्र रहे। लगभग दो पहर का सथारा आया। इस तरह स० १८८० की आपाढ कृष्णा १४, शनिवार को करीव पहर रात वीतने पर आपका सथारा सफल हुआ।[2]

---

१. जय (खे० च०) १२।४-१३

२. (क) हेम (खे० पच ढा०) ५।३-८, १५ ·

त्या माडी सलेपणा सार, प्रभव सामौ नाल आछी काल।
उपवास सू लेइ चोला लगे॥
आपाढ विध नवमी दिन जाण, चौला रौ पारणो पिछाण। आ०।
तिण मे आहार लीयो अल्प सौ॥
वेलौ कीयो दसम इग्यार, वारस पारणै अल्प आहार। आ०।
तेरस चोदस वेलौ पचपीयौ॥
वेला मै पचख्यौ सथार, सूरपणनै मन धार। आ०।
परिणाम त्यारा पका घणा॥
जिण धर्म रौ मडीयौ उछाव, च्यार तीर्थ मन चाय। आ०।
साध सेवा मै वहु घणा॥
आसरै दोय पोहर सथार, सीज्यौ चवदस तिथ सार। आ०।
आसरै पोहर रात गया थका॥
सथारो कियो सेहर पीपाड़, आसाढ विध चौथ दस शनिवार। आ०।
समत अठारै असीयै॥

(ख) जय (खे० च०) १३।१-४

आसरै दो पोहर नो आयो, सथारो सुखकारी।
सवत अठार ने वरस असियै, अपाढ मास उदारी॥
कष्णा चतुरसी वार मनेसर, चाल्या जनम सुधारी रा।
आसरे पोहर रात गया, स्वाम परभव कीध सचारी॥
जीत नगारो दिधो खेतसी, त्यारा गुण गावे नरनारी रा।

(ग) ख्यात, क्रम २२

(घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन १६३

दोय पहर सथारो आवियो रे, सवत अठारै असियै मान।
आपाढ वद चउदश निर्मल पणै रे लाल, आराधक थया उजमाल॥

सथारे के समय मुनि हीरजी (७६) ने आपकी बड़ी सेवा की :

> सतजुगी री सेवा सहर पीपाड।
> मन वचन काया सुध धार रे॥[1]

उपसंहार

आप तैतीस वर्ष तक गृहवास में रहे। आपने स० १८३८ चैत्र पूर्णिमा के दिन दीक्षा ग्रहण की थी और सं० १८८० के प्राय अन्त मे आपका सथारा सपन्न हुआ। इस तरह साधुत्व-जीवन मे ४२ वर्ष से कुछ अधिक रहे।[2] आपने ७५ वर्ष की आयु पाई।[3]

सस्मरण

१. आप चर्चा करने मे वडे निपुण थे।[4] सूत्रों के सूक्ष्म रहस्यो के जानकार थे। ज्ञान के सागर थे। आप एक निर्भय और भ्रम-भजक चर्चावादी थे।

> चरचा करवा नै चातुर घणा जी, झीणी रहिसा तणा जाण।
> ज्ञान सागर गुण आगलाजी, भिक्षु ऋषि कीया वखाण॥[5]

सेठिया (मुनि गुण वर्णन) तथा वम्व (मुनि गुण प्रभाकर) मे आपका स्वर्गवास स० १८८० की पौष शुक्ला १४ को हुआ लिखा है, पर यह तथ्य नही है।

१. हेम (मुनि हीरजी) गा० ६

२. (क) जय (हे० न०) १।दो० ५.

> खेतसीजी अणसण कियो, प्रगट शहर पीपाड।
> अडतीसे दीक्षा ग्रही, असिये उतर्‌या पार॥

(ख) सत गुण वर्णन २।७

> वरस बयालिस आसरै जी, पालीयो सयम भार।
> अन्तकाल अणसण कीयो जी, सफल कीयो अवतार॥

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन १९४.

> तेतीस वर्ष आसरै घर मे रह्या रे, बयालिस वर्ष जाझो चारित्र पाल।
> स्वर्ग गया सक्षेप इहा कह्यो रे, विशेप विस्तार सतयुगी चरित्रे निहाल॥

३ (क) जय (खे० च०) १३।७, ८.

> वर्ष तेतीस आसरे सतयुगी, रह्या गृहवास मझारी।
> जाझो व्यालीस वर्ष चारित्र पाल्यो, करणी कीधी भारी॥
> वर्ष आयु सर्व ७५ आसरे, पाल्यो आप उदारी।
> घणा जीवा ने समाध्र व्ययराई, हुआ उजागर भारी॥

(ख) हेम (से० पच ढा०) ५।१४

४. सत गुण वर्णन १।२।२

५. वही, १।१।३

समय सज्झाय सूरा घणा, चरचा चित चन्दा।
अनभय कुपी आगलाजी, मेटण भर्म भन्दा ॥[1]

आप प्रश्नो के उत्तर वडी कुशलतापूर्वक देते। उत्तरो मे सरलता के साथ-साथ हृदय-भेदकता रहती। इसके प्रमाण-स्वरूप यहा एक-दो प्रश्नोत्तर दिए जाते है .

आपसे किसी ने पूछा शुभ योगो का अनुवर्तन होता है, तव पहले पुण्य वध होता है या निर्जरा ?

आपने पूछा पहले पत्ते होते है या धान्य ?

प्रश्नकर्ता ने कहा पहले पत्ते होते है, फिर धान्य।

आपने कहा : इसी प्रकार शुभयोग के प्रवर्तन से प्रथम समय मे पुण्य वध होता है। उस समय अशुभ कर्म चलित तो होते है, पर झडते है दूसरे समय मे (भगवती २।१)। कर्मो के चलित होने तथा उनकी निर्जरा होने का समय आगम मे पृथक्-पृथक् वताया गया है। अत पहले पुण्य वध होता है, तदनन्तर निर्जरा।[2]

किसी ने पूछा शुभ योगो को आश्रव कहा जाए कि निर्जरा ?

आप वोले . शुभ योगो को आश्रव भी कहा जाता है तथा निर्जरा भी।

प्रश्न—शुभयोग वस्तु तो एक है, फिर उसे आश्रव और निर्जरा दोनो कैसे कहा जाता है ?

आप दृष्टान्त देते हुए वोले एक ही मनुष्य को वाप भी कहा जाता है तथा वेटा भी, सो कैसे ? अपने वाप की अपेक्षा वह वेटा है तथा अपने वेटे की अपेक्षा वह वाप कहा जाता है। उसी प्रकार शुभयोगो से पुण्य का वध होता है, इस दृष्टि से उन्हे आश्रव कहा जाता है तथा अशुभ कर्म झडते है, इस दृष्टि से उन्हे निर्जरा कहा जाता है। उत्तराध्ययन अध्ययन ३४ मे तेजो, पद्म तथा शुक्ल लेश्या को धर्मलेश्या कहा गया है तथा छहो लेश्याओ को कर्मलेश्या भी कहा गया है। तेजो, पद्म तथा शुक्ल—इन तीन लेश्याओ से पुण्य का वध होता है इस अपेक्षा से उन्हे कर्मलेश्या कहा गया है तथा इन तीनो से अशुभ कर्म झडते है, अत उन्हे धर्मलेश्या भी कहा जाता है। इसी तरह शुभयोगो को अपेक्षा भेद से आश्रव भी कहा गया और निर्जरा भी।[3]

भगवती सूत्र का वाचन करना तथा राम-चरित का व्याख्यान करना दोनो समान कैसे है ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए आपने एक वार कहा—साधु भगवती का गायन करे चाहे रामचरित का, मैं तो दोनो को वरावर मानता हू। साधु निरवद्य भाषा ही बोलते है, उन्हें सावद्य भाषा वोलने का त्याग है। इसी अपेक्षा से नन्दी सूत्र मे समदृष्टि की मति को मतिज्ञान कहा गया है। इसी दृष्टि से ही दोनो का वाचन समान है।[4]

स० १८६६ का मुनि हेमराजजी का चातुर्मास पाली मे था। अस्वस्थतावश चातुर्मास के वाद विहार नही कर सके। आचार्य भारमलजी मुनि खेतसीजी आदि वहु सत एव हीराजी

---

१. सत गुण वर्णन १६।७
२. हेम दृष्टान्त दृ० २५
३. वही, दृ० २६
४. वही, २७

आदि वहु साध्वियों के साथ पाली पधारे। मास पूरा होने लगा तव लोगों ने कहा—"अव तो विहार कर जाएगे।" खेतसीजी वोले. "महीने का नियम हम पर लागू नही होता। मुनि हेमराजजी के कारण अधिक रहना भी कल्पता है। हम हेमजी के विहार के वाद विहार करेंगे।" खेतसीजी ने स्पष्ट कर दिया कि एक साधु अस्वस्थ हो तो दूसरे कम अधिक साधु रहे तो कल्प का उल्लंघन नही होता।[1]

२. आपको सूत्र-स्वाध्याय से वडा प्रेम था। स्वाध्याय करते कभी थकते नही थे। इसी कारण आपके विषय मे कई स्थलो पर "समय सझाय शूरा घणा"[2] ऐसे उद्गार मिलते हैं।

इसी स्वाध्याय प्रवृत्ति के कारण आप अनेक सूक्ष्म रहस्यो के जानकार हुए। आप सूत्र सिद्धान्त के क्षेत्र मे वीर सुभट माने जाते थे।[3]

३. आपकी दीक्षा तक आचार्य भिक्षु विहार के समय एक कधे पर उपकरणों का वोझ तथा दूसरे पर पोथियो के पुट्ठे का वोझ वहन करते थे। दीक्षा के वाद एक कधे का भार आप वहन करने लगे।

४. एक वार काफरला मे आप और मुनि हेमजी गोचरी पधारे। विना चखे धोवन ग्रहण किया। आप वोले—"विना चखे कई घरों का धोवन मिला तो लिया है, पर यदि ठीक न निकला तो भिक्षु उपालम्भ देने मे कोई कोर-कसर नही रखेंगे।" वाद मे देहरा मे जल चख कर देखा। ठीक था, तव मन हर्षित हुआ।[4]

५. स० १८५५ मे पाली चातुर्मास मे आप एक वार अस्वस्थ हो गये। रात्रि मे दस्त और उल्टिया हुई। रास्ते मे ही गिर पडे। भिक्षु और मुनि हेमराजजी उनको उठा कर लाये। थोडी देर वाद सचेत हुए। वोलने लगे। कहा—"रूपाजी को अच्छी तरह पढ़ाइएगा।"[5] गण के साधु-साध्विया ज्ञानी-ध्यानी हो—इसकी आपको कितनी उत्कण्ठा रहती थी, इसका यह एक दृष्टान्त है।

६. आचार्य भारमलजी द्वारा युवराज-पद मुनि रायचन्दजी को दिया गया। लोग सोचने लगे—यह पद खेतसीजी को देना चाहिए था। देवगढ निवासी रतनजी श्रावक ने आपसे ही पूछा "इस विषय मे पूछने पर लोगो को क्या उत्तर दिया जाय?" आपने कहा: "मने भलाय दीजो"—जो पूछे उन्हे मुझसे ही वात करवा देना।[6]

७. आचार्य भारमलजी के देहावसान के उपरान्त मुनि रायचन्दजी आचार्य-पद पर आसीन हुए, तव एक भाई ने कहा—आप तो नीचे जमीन पर वैठे है और वे पाट पर। यह

---

१. हेम दृष्टान्त, दृ० ३४
२. संत गुण वर्णन १६।७, ११।६
३. वही, १०।३ :
सूत्र सिद्धान्त सूरा घणांजी, झीणी रहस्य ना जाण।
४. जय (भि० दृ०), दृ० १७०
५. जय (भि० दृ०), दृ० २५३
६. प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक) क्र० ८
रतनजी देवगढ का। खेतसीजी स्वामी नै पूछ्यो—लोक पूछै तो कांइ जाव देवा। जद खेतसीजी स्वामी कह्यौ थे मने भलाय दीजै।

शोभा नही देता। मुनि खेतसीजी ने यह कहते हुए कि तुम लोग भोले हो, इस बात को क्या समझो, उत्तर दिया, "जब किसी के बेटे का विवाह होता है तो बेटा सिरपाव धारण कर घोडे, हाथी, पालखी पर चढता है और बाप फटी-सी पगरखी, फटे-से कपडे पहने दौडता-भागता फिरता है। वह बेटे की शोभा सुनकर बडा खुश होता है। जैसे पुत्र की शोभा बाप की है, वैसे ही आपकी शोभा मेरी शोभा है।[1]

८. एक बार भिक्षु कुछ अस्वस्थ थे। रात को कई बार लघुशका के लिए उठे। मुनि खेतसीजी ने प्रत्येक बार उनकी सेवा की। रात मे भिक्षु ने उन्हे अनेक बार जगाया था। दूसरे दिन बोले—"आज रात मे तुम्हे जगाने का त्याग है।" खेतसीजी बोले—"तो मुझे सोने का त्याग है।"[2]

९. स० १८५९ भादवा वदि ११ सोमवार के दिन आपने वगचूलिया की पाण्डुलिपि पूर्ण की। टीकम डोसी देश कच्छ शहर माडवी से भिक्षु के दर्शन करने आये थे। उनकी प्रति पर से प्रति की।

प्रशस्तिया

जयाचार्य की सत गुण कीर्तन की ढालो मे ७ ढाले विघ्नहरणकारी कही गई है। वे इस प्रकार है—

१. भिक्षु प्रगट्या भरत क्षेत्र मे रे, उत्तम पुरुप आचारी।
२. भरत क्षेत्र मे भिक्षु, प्रगट्या भारीमाल ऋपिभारी।
३. पूज्य भीखनजी प्रगट्या रे, शिष्य भीरीमाल सुखकार रे।
• ४. भिक्षु भारीमाल ऋपिरायजी, खेतसीजी सुखकारी हो।
• ५. मुणिद मोरा भिक्षु ने भारीमाल, वीर गोयम सी जोडी रे।
६. पचम आरे प्रगट्या, भिक्षु भारीमालजी।
• ७ भिक्षु म्हारे प्रगट्याजी, भरत क्षेत्र मे, थारो ध्यान धरूं अन्तर मे।

इनमे चिह्नित तीन ढाले तो आम तौर से प्रसिद्ध है।

उपर्युक्त ढालो मे से प्रथम और सातवी को छोडकर वाकी सभी मे मुनि खेतसीजी का नाम स्मरण किया गया है। इससे मुनि खेतसीजी का साधु के रूप मे कैसा महान् व्यक्तित्व था, इसका आभास हो जाता है।

मुनि हेमराज ने स० १८८१ मे पाच ढालो मे आपका सक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त उपस्थित किया। जयाचार्य ने स० १९०५ मे १३ ढालो मे विस्तृत जीवन-चरित्र लिखा। इनके अतिरिक्त

---

१. प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक) क्र० ९

आमेट मे एक भायो बोल्यो। खेतसीजी स्वामी ने कह्यो—आप तो हेठा धरती पर बैठा अने रायचन्दजी बाजौट उपर बैठा ते किम सौभै। जद खेतसीजी कह्यो—भोला थे काइ समझो। तिण उपर एक दृष्टान्त—किण रो बेटो परणीजे जरे बेटो तो भारी २ सिरपाव करी घोडे हाथी पालखी चढै अने बाप फाटीसी पगरख्या फाटा सा गाभा दोडतो भाग तो फिरे। पिण बेटा री सोभा सुणने बाप राजी घणो हुवै। ते शोभा बापरीज छै तिम ए सोभा माहरीज छै।"

२. इतिहास के बोलते पृष्ठ, पृ० १३४

ते पूज्य तणा वनीत छै पूरा, सतयुगी नाम धरायो।
ते जीवादिक नव तत्त्व वतावै, साधां नै सुखदायो ॥[1]

(६) गुरभगता गुणवत गुणागार खेतसीजी सुखकारी।
विविध प्रकारे साता उपजावे, विनय विवेक विचारी ॥
गावत मै तो सतजुगी ना गुण, भारी जांरी करनी री वलिहारी।
गावत मैं तो सतजुगी ना गुण, त्यारी मुखमुद्रा प्यारी ॥[2]

(७) ख्यात मे लिखा है · "भणने गुणने मे उदमी घणा। भीखु नी मरजी घणी। अनदाता रे मन परमाणे चालता। कोई काम भोलावे तो तुरत वीलम रहीत करता। अगचेष्टा ना जाण छा। भण्या गुण्या परीपक। झीणी-झीणी रहीसां रा जाण हुया। दयावंत दीपता घणा। सासण मे स्थभ समान छा। धीरजवान, लज्जावान, वीसवासी, सारीइ सत सत्या ने गमता घणा लागता। घणा संता ने भणाय पका कीया। केहने कठिन वचन कहता नही, कोमल वचन सु कहता। सारा ने वतलावता।"

(८) दयावत वलि दीपता रे, शासण स्थभ समान।
विश्वासिक सहु सत ने रे लाल, धीर्यवान लज्जावान ॥
स्वै मुख स्वाम प्रशसिया रे, निज सथार मझार।
सतयुगी तणा सहाझ सु रे लाल, सयम पाल्यो निरतिचार ॥[3]

(९) सुविनीता सरदार, श्रीमुख स्वाम सराहिया।
सकल संघ सुखकार, सत खेतसी सतजुगी ॥[4]

१ भारीमाल गणि गुण वर्णन, ३।५-६
२. जय (खे० च०), ५।१
३. हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, १८५-१८६
४. शासन सुषमा, ३१

२३. मुनि रामजी

मुनि सामजी के प्रकरण (२१) मे बताया जा चुका है कि आप उनके छोटे यमज भाई थे। वहां यह भी बताया जा चुका है कि दोनो भाइयो ने किस तरह बूंदी मे मुनि थिरपालजी और फतैचन्दजी से बोध प्राप्त किया। कालान्तर मे आचार्य भिक्षु के दर्शन मेडता मे किये और बाद मे दीक्षित हुए।

आप भी अविवाहित थे।[1]

दोनो भाइयो की दीक्षा एक ही वर्ष स० १८३८ मे हुई थी[2]—मुनि सामजी की स० १८३८ की चैत्र शुक्ला पूर्णिमा[3] के कुछ दिन पूर्व और आपकी उक्त तिथि के कुछ दिन बाद वैशाख वदि मे।

आपसे कनिष्ठ साधु सभुजी (२४) और सघजी (२५) की दीक्षा क्रमश देवगढ और नाथद्वारा मे हुई थी। ये दोनो ही स्थान मेवाड मे है। १८३८ की वैशाख सुदी ५ को भिक्षु पुर मे देखे जाते है। वैशाख वदि पक्ष तक वे मेवाड मे रहे। बाद मे मारवाड पधारे और चार वर्ष से अधिक समय तक इसी क्षेत्र मे विचरते रहे। आप की दीक्षा मेवाड मे ही सम्पन्न हुई, अत सभुजी (२४) और सघजी (२५) से पूर्व स० १८३८ के वैशाख महीने की वदि पक्ष मे किसी दिन हुई।

जैसा कि बताया जा चुका है सामजी की दीक्षा केलवा मे हुई थी, पर आपकी दीक्षा कहा हुई, इसका पता नही चलता।[4] मुनि सभुजी और सघजी के दीक्षा स्थलो की समीक्षा से प्रतीत होता है कि आपकी दीक्षा नाथ द्वारा अथवा नाथद्वारा और देवगढ के बीच कही हुई।

आपके नेत्रो की ज्योति कम पड गई। चलती-फिरती चीटियो को भी देख नही पाते

---

१. सत विवरणी।

२ जय (शा० वि०) १।१६ ·

भिक्षु गण मे युगल भाया री जोड कै, साम राम बिहु मुनि भला जी।
वर्ष अडतीसै चरण लियौ धर कोड कै, परभव छ्यासठै सतरै जी ॥

३. उक्त मिति मुनि खेतसीजी की दीक्षा की है। सामजी की दीक्षा उनके कुछ पूर्व और रामजी की उनके कुछ दिन बाद हुई थी। देखिये, जय (भि० दृ०) दृ० १९६ एव जय (शा० वि०) १।१६ का वार्तिक, पृ० ३५।

४ इस विषय मे मुनि सामजी (प्र० २१) के जीवन-वृत्त मे विस्तृत चर्चा की जा चुकी है।

थे। आपने अभिग्रह लिया—"मैं चींटियों को नहीं देख सकूंगा, तब तक संलेपना करता रहूंगा।" नजर में सुधार हुआ। आपने चलती-फिरती चींटियों को बता दिया। संलेपना करने का अभिग्रह सम्पूर्ण हुआ। भिक्षु ने सं० १८४१ चैत्र (द्वितीय) वदि १० के दिन साधुओं के हस्ताक्षर युक्त एक लिखित कर आपकी परिचर्या की व्यवस्था की। आपके स्वयं के विहार और गोचरी विषयक नियम भी निर्धारित किये। आपकी परिचर्या आपके बड़े भाई सामजी पर रखी।

जैसा कि बताया जा चुका है, मुनि सामजी का देहावसान पाली में मुनि हेमराजजी के समक्ष सं० १८६६ की मार्गशीर्ष वदि ५ के दिन हुआ था। आप साथ थे। आपका देहावसान सं० १८७० में हुआ था।

एक उल्लेख के अनुसार आपका देहावसान इन्द्रगढ में सं० १८६६ में हुआ था।[1] पर यह ठीक नहीं है।

बाद की कृति में उल्लिखित है कि सं० १८७० का मुनि हेमराज जी का चातुर्मास इन्द्रगढ़ में हुआ था। मुनि जवानजी, पीथलजी, सरूपचन्दजी, जीतमलजी और आप साथ थे। इसी चातुर्मास की कार्तिक शुक्ला दशमी के दिन अष्टमभक्त (तेले) की तपस्या में आपका देहावसान हुआ।[2]

उक्त कृति के बाद की कृति के अनुसार भी आपका देहान्त तो १८७० में ही हुआ था, पर स्वर्गवास के दिन आपके चोला था।[3]

जय (शा० वि०) १।१६ वार्तिक और ख्यात में इतनी अतिरिक्त सूचना मिलती है कि आपका देहान्त कार्तिक सुदी दशमी सं० १८७० के दिन हुआ था तथा आपको चार पहर का संथारा आया था। यह अन्तिम उल्लेख एक बहुत ही प्राचीन ढाल से समर्थित है। अतः ठीक है। उक्त ढाल में आपकी सलेपणा और संथारे का पूरा विवरण इस प्रकार प्राप्त है:

च्यार मास एकातर कीधा, तिणमें केइ पारणा लूखा लीधा।
देही ने क्षीण पाडी छै सोधी, भवजीवां ने रह्या प्रतिबोधी ॥सो०॥
वर्ष बतीस आसरै प्रवरज्या पाली, छेहले अवसर सूरत सभाली।
सथारो कियो समभावैं, कर्म काटण रो ओहीज डावै ॥सो०॥

---

१. पण्डित मरण ढाल १।१२:

ताराचन्दजी झालरापाटण मझै, अणसण गुणचाली दिन रो आयो रे।
राम सथारों इन्द्रगढ में कीयो, गुणंतरे दोन्यु ही मुनिरायो रे ॥

२. जय (हे० नव०) ५।१,२:

सितरै इन्द्रगढ चौमासो रे, राम हेम जवान विमासो रे।
पिथल स्वरूप जीत हेम सुखवासो हरष धर हेम ने नित वदो रे ॥
रामजी अठम भक्त मझारो रे, परभव पहुंता सुखकारो रे।
काती सुदी दशम तिथिवारो, हरष धर हेम ने नित वंदो रे ॥

३. जय (भि० ज० र०) ४७।दो० ३:

रांम ऋषि रलियामणा, इन्दुगढ मैं आय।
चौला मैं चलता रह्या, सितरै वर्ष ताय ॥

श्री रामजी मुख स्यू फरमाई, साध साधव्या ने दीज्यो खमाई।
किण स्यू राग द्वेष कीधो हुवे किणवार, मिछामि दुकड माहरै इणवार ॥सो०॥
आलोवणा कीधी सल्य काढी, जिनमार्ग ने सोभा चाढी।
पांच महाव्रत ने फेर आरोपी, सवर कर आतम ने गोपी ॥सो०॥
चोरासी लाख जीवा ने खमाय, आलोवी निंदी निसल्य थाय।
पाप अठारा आलोया आप, टाल्या भव भव ना सताप ॥सो०॥
श्री रामजी लीधा मोटा सरणा, कर्म वैर्‌या ने दूरां करणा।
श्री अरहत सिद्ध साधू सुद्ध धर्म, ए सरण उत्कृष्टा पर्म ॥सो०॥
कितरा एक दिवस असाता पाई, दिवस तीन पाव रोटी खाई।
पछै साधा कराय दीयो सथारो, तिण माहि वरत्या छै पोहर च्यारो ॥सो०॥
समत अठारै सीतरै वर्प, इन्द्रगढ चौमामे उपगार सर्स।
काति सुद दसम ने वुधवार, श्री रामजी खेवो कर गया पार[1] ॥सो०॥

उपर्युक्त कृति से पुष्ट होता है कि आपने अपने साधु-जीवन के अन्तिम चातुर्मास मे निरतर एकातर उपवास किए।[2] कुछ एकांतरो के पारण मे आपने लूखा आहार लिया। अन्तिम तीन एकातरो के पारण मे आपने केवल चौथाई रोटी ही ली। उक्त कृति इस बात पर प्रकाश नही डालती कि सथारा ग्रहण करने के दिन आपके तेला था या चोला।

आपने तपस्या से देह को क्षीण कर डाला। आपने साधु-साध्वियो से कहा —"मेरी त्रुटियो के लिए मुझे क्षमा करे। किसी से राग-द्वेप किया हो, तो उसका मुझे मिच्छामि दुक्कड है।" इस तरह आलोचना कर नि शल्य हुए। पाच महाव्रतो का आरोपण किया। चौरासी लाख जीव योनि से क्षमत-क्षमापन किया। अठारह पापो की आलोचना की। शरीर मे असाता उत्पन्न हुई। समभावपूर्वक सहते रहे। अन्त मे आपने सथारा ग्रहण किया, जो चार प्रहर का आया। आपका सथारा स० १८७० की कार्तिक शुक्ला १० वुधवार के दिन सम्पूर्ण हुआ।

साधु रामजी ने २६ वर्ष और आपने ३२ वर्ष का सयमी जीवन प्राप्त किया।

दोनो भाइयो का देहान्त मुनि हेमराजजी के सामीप्य मे हुआ।

मुनि सामजी और रामजी जैसे जन्म से यमज थे, वैसे ही गुणो से यमज थे। दोनो भाई वडे सौम्य, सरल और भद्र प्रकृति के थे। दोनो ही वडे विनयी और नीति-निपुण थे। इस सम्वन्ध मे चार प्रशस्तिया नीचे दी जा रही है

---

१. मुनि साम राम गुण वर्णन, ढा० २।२-७,८,११

२ (क) जय (शा० वि०), १।१६ वार्तिक, पृ० ३५

(ख) ख्यात, क्रम २१,२३

हिवै राम जी स० १८७० रै वर्ष इन्द्रगढ चोमासो च्यार मास एकान्तर कीया अने काती सुध १० सथारो ४ पोहर रो सीज्यो।

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, १९५-१९६

हिव साम भ्रात मुनी रामजी रे, सवत अठारै सतरै आय।
इन्द्रगढ चोमासो ते मझै रे लाल, च्यार मास एकातरा कराय॥
तिहा काती सुदि दशमी दिने रे, च्यार प्रहर सथार सीझाय।

१. घणा वर्पा लग विचरीया रे, दोनू भाया री पूर परतीत रे।
बोल थोकडा ग्यान सीखावता रे लाल, उदमी घणा सुवनीत रे ॥[1]

२ साम राम साधु सरल, सता नै सुखदाय।
भद्र प्रकृति भारी घणी, नीति निपुण नरमाय ॥[2]

३. जिन शासन मे युगल भाया नी जोड के, साम रांम संत महागुणीजी।
साताकारी सुवनीता सिरमोड के, सरल अधिक मुहामणा जी ॥[3]

४ दोनू भाई साम राम वडा हीया रा सरल वनीत तपसी मामण मे रगरता ॥[4]

जयाचार्य कृत एक ढाल मे आप दोनो भाइयो का नाम स्मरण किया गया है।[5]

दोनो भाई इतने गुणी थे कि आचार्य भिक्षु ने दीक्षा लेने के कुछ वर्प वाद से ही दोनों को एक साथ रख सिघाडा कर दिया। "केतले एक काले साम राम रो टोलो कीधो। न्यारा विचरी ने स्वामीजी रा दर्शन करवा विहार करने आवै।"[6]

स० १८३९ कार्तिक सुदी २ बुधवार के दिन केलवा मे रचित अपनी ढाल १९, गाथा २२ मे श्रावक शोभजी ने मुनि सामजी और रामजी के सम्वन्ध मे लिखा है ·

सामजी रामजी वूदी सू आय ए, केलवे लागा छे पूज रें पाय ए।
पाछली चिंता न कीधी लिगार ए, सामजी लीधो सजम भार ए॥
रामजी दोओ ससार ने छेह ए, निज-भाई सू राख्यो छे धर्म नो नेह ए।
नही पडिया छे पापड फद जाय ए, गमता लागे घणा गण माहि ए॥

---

१. मुनि साम-राम गुण वर्णन, ढा० १।९
२. जय (भि० ज० र०), ४७।दो०-१
३. जिन शासन महिमा, ७।९
४. ख्यात, क्रम २३
५. मुनिन्द मोरा की ढाल, गा-१४
मुणिन्द मोरा, उभय पिथल वर्द्धमान।
माम राम युग वन्धव रे, स्वामी मोरा ॥
नेम स्यू रे, मोरा स्वाम ॥
६. जय (भि० दृ०), दृ० १९६

२४. मुनि संभुजी

स० १८३९ कार्तिक सुदी २ बुधवार के दिन केलवा मे श्रावक शोभचन्दजी द्वारा रचित एक ढाल मे उस समय विद्यमान सघ के मुनियो की स्तुति है। इस ढाल मे मुनि सामजी (२१), खेतसी (२२) और रामजी (२३) तक की स्तुति है। आप और सघजी (२५)—इन दोनो की स्तुति उसमे नही देखी जाती। इससे अनुमान किया जा सकता है कि आपकी दीक्षा ढाल की रचना तक अर्थात् १८३९ कार्तिक सुदी २ तक सम्पन्न नही हुई थी, पर ऐसा अनुमान करना ठीक नही होगा, यह नीचे के विवेचन से स्पष्ट होगा।

मुनि खेतसीजी (२२) की दीक्षा स० १८३८ की चैत्र पूर्णिमा को नाथद्वारा (मेवाड) मे हुई। मुनि रामजी (२३) की दीक्षा उसके कुछ दिन वाद मेवाड प्रदेश मे ही कही हुई थी।

यह एक तथ्य है कि आपकी दीक्षा देवगढ[1] मे हुई थी और मुनि सघजी (२५) की नाथद्वारा[2] मे। सवत् १८३८ वैशाख सुदी ५ के दिन आचार्य भिक्षु पादू (मारवाड) में देखे जाते है।[3] वैशाख वदि पक्ष मे वे मेवाड मे रहे और फिर विहार कर मारवाड मे पधार गये और उसके वाद चार वर्ष से अधिक समय तक उसी प्रदेश मे विचरण करते रहे। चूकि आप (मुनि सभुजी) और सघजी (२५) की दीक्षा मेवाड प्रदेश मे हुई थी, अत रामजी की दीक्षा के वाद वैशाख वदि पक्ष मे ही होनी सभव है क्योकि उसके वाद आचार्य भिक्षु मेवाड मे रहे ही नही। शोभजी कृत उक्त ढाल मे आप अथवा सघजी (२५) का नामोल्लेख न होने का कारण कुछ भी हो, यह तथ्य है कि आप दोनो की दीक्षा स० १८३८ के वैशाख महीने के कृष्ण पक्ष मे भिक्षु के मेवाड मे रहते-रहते किसी दिन सम्पन्न हुई।

आपकी प्रकृति वडी शकाशील थी। किसी-न-किसी वात की शका पडती रहती थी। वार-वार शका पडने की इस प्रकृति के कारण आपको गण से अलग कर दिया गया।

---

१. जय (भि० ज० र०), ४७। दो० ४
इसी प्रकरण मे वाद मे उद्धृत।

२ जय (भि० दृ०), दृ० १६६
प्रकरण २५ मे उद्धृत।

३ देखिए कालवादी री चौ०, ६।१७,
कालवादी री सरधा पुर मे परगट कीधी, भव जीवा रो करण उधारो रे।
समत अठारै वरस अडतीसे, वैसाख सुद पाचम, बुधवारो रे लो॥

यह वताया जा चुका है कि स० १८३६ कार्तिक सुदी २ के दिन रचित ढाल मे आ नामोल्लेख नही है । इसी तरह स० १८४१ चैत्र वदि १३ के दो लिखित, स० १८४१ द्वित चैत्र वदि १० एव स० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखितो मे भी आपके हस्ताक्षर नही है ।

उक्त स्थिति मे निम्न दो विकल्प घट सकते है—

१. आपको स० १८३६ कार्तिक सुदी २ के पूर्व ही गण से पृथक् कर दिया गया । ढाल मे नामोल्लेख न होने का कारण यही है। वाद के लिखितों मे आपका हस्ताक्षर न होना उक्त निष्कर्ष की पुष्ट करता है ।

२. शोभजी की कृति मे नामोल्लेख न होने का कारण अन्य कुछ रहा । वार-वार शका पडने के कारण आपको छोडा गया था । स० १८३६ का चातुर्मास दीक्षा के वाद का प्रथम चातुर्मास था । इसमे आप भिक्षु के साथ नही थे । वार-वार शका पड़ने का प्रसग भिक्षु के सामने आने का अवसर ही नही वना। वे कुछ वर्षो तक गण मे रहे। उस अवधि मे उक्त शका के प्रसग घटने से उन्हे पृथक् किया गया। स० १८४१ के सभी लिखितो मे विद्यमान मुनि सुखरामजी (६) एव नगजी (२०) के भी हस्ताक्षर नही पाये जाते। लगता है आप उक्त साधुओं के साथ अन्यत्र रहे और इसी कारण तीनो के हस्ताक्षर नही हो पाए ।

उक्त दोनो विकल्पो मे दूसरा विकल्प ठीक प्रतीत होता है ।

स० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखित मे मुनि सुखरामजी (६) के हस्ताक्षर है । उस समय तक मुनि नगजी (२०) दिवंगत हो चुके थे । अन्य सारे साधुओं के हस्ताक्षर भी उसमे है। ऐसी स्थिति मे आपके हस्ताक्षर न होने का कारण आपका अन्यत्र होना नही हो सकता। उक्त लिखित के पहले ही आप गण मे पृथक् कर दिये गये थे। आप सं० १८४१ द्वितीय चैत्र वदि १० एव स० १८४५ जेठ सुदी १ की मध्यावधि मे गण से अलग किये गये, ऐसा फलित होता है।

गण से वहिर्भूत होने पर भी आप साधुओं की सेवा करते रहते। उनका सम्मान करते, साधुओ के गोचरी कर लेने के वाद आहार लाते। जिस गांव मे जाते, वहा मुनि होते तो उनके दर्शन करने जाते । मुनियो से अति प्रीति थी ।

> देवगढ दीख्या ग्रही, सभुजी सुविचार ।
> वार-वार शका पडी, छोड दियो तिण वार ।।
> तौ पिण गण वारै छतौ, करे साधा नी सेव ।
> साध आहार आण्या पछै, आप ल्यावे नित्यमेव ।।
> पीत मुनि थी अति पवर, मुनि जिण गाव मझार ।
> आवै दर्शन करण कु, पिण शका थी हुवो खुवार ।।[1]

---

१. जय (भि० ज० र०) ४७। दो० ४-६ तथा देखें
जय (शा० वि०) १। सो० ६
वार-वार पडै शक रे, शभु ने छोड्यो तदा ।
तो पिण तज मन वक रे, सेव अधिक साधा तणी ।।

सभुजी देवगढ दीक्षा लीधी, पिण सका घणी पड़ै वात-वात मैं संका घणी पडै जद छोड़ दीयो। पिण टोला वारै थकौ, पिण सेवा घणी करतौ। साधा रा दर्शण करवा आवतौ साध गोचरी ल्याया पछै आहार ल्यावीनै करतो। साधा थी राग घणी, पिण सका थी खराव हुऔ।[1]

शासन प्रभाकर का वर्णन ख्यात से वडा सक्षिप्त है

सभु ने पडै शक रे वात-वात मे तेह थी।
निकल्यो कर्म ने वक रे पिण सेवा करतो साधा तणी।[2]

१ ख्यात क्रम २४

२. हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, १९७ :

२५. मुनि संघजी

ये गुजरात के थे। स्थानकवासी सम्प्रदाय मे दीक्षित थे। वहा से आकर नाथद्वारा मे आचार्य भिक्षु से दीक्षा ग्रहण की। पर अयोग्य निकले, इससे इन्हे गण मे पृथक् कर दिया गया। यह सिरियारी की वात है।[1]

पूर्व प्रकरण मे वताया जा चुका है कि इनकी दीक्षा स० १८३८ के शेष-काल मे रामजी और संभुजी की दीक्षा के वाद वैशाख महीने की कृष्ण पक्ष मे सम्पन्न हुई थी।

जयाचार्य की कृतियो मे ऐसी ध्वनि निकलती है, जैसे ये स्वय निकले :

सघजी थी गुजरात री, व्रर्ण लियाँ चित्त चहाय।
शिरियारी मै निकल्यौ, दुधर व्रत दिखाय॥[2]

पृथक् होने के वाद ये माहढै चले गये।

मुनि खेतसीजी ने इन्हे प्रायश्चित्त दे पुन गण मे लेने का अनुरोध किया। उन्हे जाकर लाने की इच्छा व्यक्त की। आचार्य भिक्षु वोले · "वह गण मे लेने योग्य नही है।" इस पर भी मुनि खेतसीजी कमर वाधकर जाने के लिए प्रस्तुत हुए। भिक्षु ने इस दिशा मे कोई भी प्रयास करने से उन्हे कडे शब्दो मे रोका। वोले . "उसके साथ आहार किया तो तुम्हारे साथ आहार

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १६६
गुजरात सू सिघजी... आप नाथद्वारै मे स्वामीजी कनें दीक्षा लीधी। पछै कितरा एक दिन तो ठीक रह्यो, पछै सिरयारी मे अयोग्य जाण ने छोड़ दियो।

२. जय (भि० ज० र०), ४७। दो० ७। तथा देखिए :

(क) जय (शा० वि०), १। सो० १० .
सघजी जेहनो नाम रे, वासी ते गुजरात नो।
सिरीयारी मे ताम रे, अशुभ कर्मवश नीकल्यो॥

(ख) ख्यात मे उल्लेख है
"गुजरात नौ कर्मा वशे नीकल्यो।"

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, १९८ मे सिरियारी मे निकलने की वात ख्यात से अधिक है .
सिघजी गुजरात नो जाण रे, सिरियारी मे नीकल्यो।
कर्म न राखै काण रे, कर्म जोरावर जग विषै॥

करने का त्याग है।"[1] वाद मे समाचार सुना गया कि ये राली ओढकर घट्टी के पास सोए हुए है।"[2]

स० १८४१ चैत्र वदि १३ के दोनो लिखित एव सं० १८४१ के द्वितीय चैत्र वदि १०, वार सोमवार के लाटोती के लिखित मे भी इनके हस्ताक्षर है। अत गण से अलग होने की घटना इसके वाद की ही हो सकती है।

सं० १८४२ का भिक्षु का चातुर्मास सिरियारी मे हुआ था। अत स० १८४१ के अतिम मास आषाढ तक वे अवश्य ही सिरियारी पधार गये होगे। सभवत उसी समय इनका गण से विच्छेद हुआ। मुनि खेतसीजी वाली उपर्युक्त घटना स० १८४१ के आषाढ महीने की प्रतीत होती है। स० १८४५ के जेठ सुदी १ के लिखित मे आपकी सही न होने का कारण आपका उसके वहुत पूर्व ही निष्कासन है। आपके जीवन की एक घटना इस प्रकार है

आप और मुनि अखैरामजी (१०) मे विवाद चलता। एक-दूसरे को लोलुप कहते। विवाद का अत लाने के लिए भिक्षु ने दोनो से कहा—विगय खाने का त्याग कर दो। जो पहले खाने की आज्ञा मागेगा, वह कच्चा समझा जायेगा। दोनो ने विगय खाने का त्याग किया। आज्ञा से खाने का आगार रखा। चार महीने के वाद एक के खाने की आज्ञा मागने से[3] दूसरे का त्याग समाप्त हुआ।[4] विगय छोडने का त्याग करते समय भिक्षु ने दोनो से एक लिखित कराया था। स० १८४१ चैत्र वदि १३ का यह लिखित परिशिष्ट मे दिया गया है।

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १६६

२ वही

पछै सिघजी रा समाचार सुण्या ऊतो राली ओढने घरटी रे जोड़ै सूतो है।

३. किसने आज्ञा मागी, इसका उल्लेख नही मिलता।

४. जय (भि० दृ०), दृ०१६८

२६. मुनि नानजी

आप बोरावड के निवासी थे।[1] जाति से वरल्या-बोहरा थे। आपकी दीक्षा स० १८४१ मे हुई थी।[2] कृतियों मे आपकी दीक्षा की मिति का उल्लेख प्राप्त नही है। सं० १८४१ चैत्र वदि १३ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर पाये जाते है। अत' आपकी दीक्षा उक्त संवत् की उक्त मिति के पूर्व किसी दिन हुई थी।

---

१. सत विवरणी।

२. (क) जय (भि० ज० र०), ४७।दो० ८.

तदनन्तर संजम लियौ, वरल्या वौहरा जोय।
एकचालीसै आसरै, नाम नानजी सोय ॥

(ख) जय (शा० वि०), १।१८ :

स्वाम नानजी सयम लीधौ सार कै
वर्ष इकतालीसै आसरै जी।

(ग) ख्यात, क्र० २६

नानजी वरड्या वोरा इकतालीसै सजम लीधो।
अनै ७१ तेला मै चल्या धर्म ध्यान मै।

(घ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु संत वर्णन, १६६ :

नानजी वरडया बोरा जाति ना रे, इकतालै सयम भार सु०।
चोला री तपस्या मझै रे लाल, इकत्तरै स्वर्ग दुवार सु० ॥

ख्यात और शासन प्रभाकर के उक्त उद्धरण मे आपकी जाति 'वरडया वोरा' लिखी है और पूर्व कृतियो मे 'वरल्या वौहरा।' यह उच्चारण मात्र का अतर हो सकता है। यदि ऐसा नही है तो जय (भि० ज० र०) और जय (शा० वि०) मे उल्लिखित जाति ठीक माननी चाहिए। श्री सोहनलालजी वम्व ने आपकी जाति वडजात्या वोहरा लिखी है, जिसका कोई आधार नही मिलता। जय (भि० ज० र०) और जय (शा० वि०) मे स० १८४१ के वाद 'आसरै' शब्द का प्रयोग है, पर उसका कोई खास अर्थ नही होता। दीक्षा स० १८४१ ही रहा।

मुनि सुखरामजी (९), आप और वेणीरामजी (२८) बहुत वर्षों तक साथ विचरे।[1]

सं० १८६२ के पीसागण चातुर्मास मे मुनि सुखरामजी के संलेखना-संथारा के समय आप, मुनि वेणीरामजी और डूगरसीजी (४३) उनके पास थे। उन्हे पचीस दिन का संथारा आया था।[2]

मुनि सुखरामजी के दिवंगत हो जाने के पश्चात् सम्भवत आप मुनि वेणीरामजी के सिंघाड़े मे रहे। सं० १८७० के उज्जैन चातुर्मास मे आप उनके साथ देखे जाते है।[3] मुनि रामोजी (६६) ने इसी चातुर्मास मे दीक्षा ली थी।[4]

उज्जैन चातुर्मास की समाप्ति के बाद विहार कर मुनि वेणीरामजी झालरापाटन पधारे। तब मुनि ताराचन्दजी ने अनशन किया। ४१ दिन से सम्पन्न हुआ। आप साथ ही थे। वहा से विहार कर आप मुनि वेणीरामजी आदि ७ संतो ने विचरते-विचरते माधोपुर पधार कर आचार्य भारमलजी के दर्शन किए। वहा २१ साधु एकत्रित हुए। आचार्य भारमलजी माधोपुर से विहार कर जयपुर पधारे। आप और वेणीरामजी आदि संतो ने पुन जयपुर मे आचार्य श्री के दर्शन किए। आचार्यश्री ने आपका चातुर्मास जयपुर का फरमाया और आपको जयपुर मे रख स्वय ने मारवाड की ओर प्रस्थान किया। चातुर्मास आरम्भ होने के बीच काफी समय था अत आप और मुनि वेणीरामजी आदि पाच संतो ने जयपुर से विहार किया और विचरते-विचरते चासटू शहर पहुचे। यही अकस्मात् १८७० की जेठ सुदी १० के दिन मुनि वेणीरामजी का स्वर्गवास हो गया।[5]

---

१. वेणीरामजी रो चोढालियो, २।५

सुखरामजी स्वामी नानजी वेणीरामजी रे, तीनूइ विचर्‌या ताहि।
घणा वर्षां लग जाणज्यो रे, त्या हेत घणो माहो माहि॥

२. (क) चन्द्र (मुनि सुख०), २।दो० ३,४,५

(ख) जय (शा० वि०), १।११ वार्तिक

सुखरामजी नानजी वेणीरामजी डूगरसीजी पिसागण चौमासो। सुखरामजी चोमै मे संथारो पचख्यो। पचीस दिन रो संथारो आयो।

(ग) हेम (वेणीराम स्वामी रो चौढालियो), २।दो० १

३. वेणीरामजी रो चोढालियो, ३।५, ४।दो० ४।१-२

४. वही, ४।दो० १

नगर उजेणी शहर मे, आछो कियो उपगार।
रामजी संजम लीयो, पछै कियो तिहा थी विहार॥

५. मुनि वेणीरामजी रो चोढालियो, ४।१-६

झालरापाटन शहर मे, ताराचन्दजी हो अणसण कियो अमाम।
दिन एकतालीसमैं सिझीयो, मुनि राख्या हो रूडा सुद्ध परिणाम॥
नान्हजी स्वामी वेणीरामजी, आद देइ हो साधू सात विचार।
विचरत-विचरत आवीया, पूज दर्शण हो माधोपुर शहर मझार॥
त्या दर्शन किया श्री पूजना, भेला हुवा हो त्या ठाणा इकवीस।
त्या स्यू विहार कियो रूडी रीत स्यूं, आगेवाणी हो पूज भारीमालजी जगीस॥

मुनि वेणीरामजी के स्वर्गवास के बाद आप मुनि हेमराजजी (३६) के सिंघाडे मे आए।

आपने मुनि हेमराजजी को भिक्षु के जीवन का एक बहुत ही सुन्दर सस्मरण सुनाया था। आपने कहा "हेमजी! भीखणजी स्वामी म्हा साधा नै तो हाट मे वेसाणता। कठ मिलाण वाला आडा वेसता। परसेवो घणो हुतो। उपकार रै वासतै कस्ट रो अटकाव नही इम स्वामीजी फुरमावता। उन्हालै चौमासै सिरियारी पक्की हाटै स्वामीजी वखांण देता, भीखणजी स्वामी भारमलजी आगै जोडै विराजता। पाखती कठ मिलावण वाला भाया वेठता, वीजा साध माहै वेसता। गर्मी रो वडो कस्ट। इण पर परिषह सहिनै अपकार कीधो।"[1]

इस सस्मरण से पता लगता है कि कभी-न-कभी एक या अधिक चातुर्मासो मे तथा शेपकाल मे आप भिक्षु के साथ रहे थे।

मुनि हेमराजजी का स० १८७१ का चातुर्मास पाली मे था। मुनि जवानजी (५०), पीथलजी (५६), भीमजी (६३), जीतमलजी (६४) और आप इस चातुर्मास मे उनके साथ थे। चातुर्मास के वाद शेषकाल मे माघ महीने मे आपका स्वर्गवास हुआ।[2]

आपका देहान्त चोला की तपस्या मे धर्म-ध्यान ध्याते हुए माघ महीने मे सिरियारी मे हुआ।[3]

वली जैंपुर शहर मे भेला हुवा, स्वामी दीधा हो त्या चौमासा भोलाय।
वेणीरामजी नै जयपुर राखनै, मुरधर देसे हो चाल्या मुनिराय॥
चौमासा आडा दिन घणा जाणनै, वेणीरामजी हो पाच साधा सहीत।
विहार कियो जयपुर थकी, विचरत हो काटण उठ्यो अणचित॥
चासटू सहर मे आवीया, जेठ सुदि मे हो दसम दिन जाण।
समत अठारै सतरै वेणीरामजी हो छोड्या चट दे प्राण॥

१. जय (भि० दृ०), दृ० १८७

२. (क) जय (हे० नव०), ५।३-४

पाली इकोतरे चउमासो रे, नानजी हेम जवान विमासो रे।
पिथल भीम जीत हेम पासो॥
नानजी शेषेकाल मझारो रे, चोला मे परभव सुखकारो रे।
हेम कियो घणो उपगारो॥

(ख) वेणीरामजी स्वामी रो चौढालियो, ४।७.

नान्हजी स्वामि सिरीयारी मझै, एकोतरै हो माह महीना रे माय।
चोला मे चलता रह्या, वेणीरामजी हो सहीत पच मुनिराय॥

३. (क) पडित मरण ढाल १।१४.

नानजी सांमी वसर इकोतरै, श्रीयारी चल्या चोला माह्यो रे।
धर्म ध्यान माहि जो चले, ते निश्चय ही सुध गत जायो रे॥

(ख) सत गुण माला, २।१२.

स्वामी नानजी भीखु स्वाम प्रताप के, जन्म सुधार्‌यो आपरो जी।
सजम तप स्यू काट्या सचित पाप कै, चोला मे चलता रह्या जी॥

(ग) वेणीरामजी रो चौढालियो, ४।७

(घ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, १६६, पृ० २४४ पाद टिप्पणी २ (घ) मे उद्धृत।

कुछ कृतियो मे तेले की तपस्या मे देहान्त होने का उल्लेख है।[1] पर पूर्व[2] और बाद[3] की सारी कृतियो मे चोला का ही उल्लेख मिलता है अत. यही ठीक है।

आपके व्यक्तित्व के विषय मे निम्न उल्लेख मिलता है

ज्ञान ध्यान कर नानजी, डाहा चतुर सुजाण।
त्यागी वैरागी ते करे, आठ करमा रो हाण॥[4]

आप बडे ज्ञानी, ध्यानी, त्यागी और वैरागी पुरुष थे। आपने सयम और तपमय जीवन से संचित कर्मो को क्षीण किया।

स्वामी नानजी भिक्षु स्वाम प्रताप के, जन्म सुधार्यो आपरोजी।
सयम तप स्यू काढ्या सचित पाप के, चोला मे चलता रह्या जी॥[5]

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ४७।६

स्वाम भिक्खु पाछै सही, एकोतरे अवलोय।
तेला मे चलता रह्या, धर्म ध्यान मे जोय॥

(ख) ख्यात, देखिए पृ० २४४ पा० टि० २ (ग) मे उद्धृत

२. देखिए, पृ० २४६पा० टि० २ और ३

३. जय (शा० वि०), ११।१८

परभव पहुता एकोतरै, अवधार कै।
चोला मे चलता रह्या जी॥

४. चन्द्र (सुख०), २।दो० ३

५. जिन शासन महिमा, ७।११

२७. मुनि नेमजी

आपसे ठीक पूर्व दीक्षित मुनि नानजी की दीक्षा सं० १८४१ मे प्रथम चैत्र वदि १३ के पूर्व किसी दिन हुई थी। स० १८४१ द्वितीय चैत्र वदि १० के लिखित मे आप (मुनि नेमजी) के हस्ताक्षर नही है। सभवत आपकी दीक्षा उक्त मिति तक नही हुई थी। क्रम मे आपसे वाद के मुनि वेणीरामजी की दीक्षा स० १८४४ के शेपकाल मे हुई थी। अत यह भी सुनिश्चित है कि आप उससे पूर्व दीक्षित हो चुके थे।

स० १८४४ के चातुर्मास मे दीक्षा होने का उल्लेख नही है। अत. नेमजी की दीक्षा की अतिम सीमा स० १८४३ आपाढ पूर्णिमा ही हो सकती है।

आप रोयट के निवासी थे। आचार्य भिक्षु के हाथ से दीक्षित हुए थे। आपने नैणवे गांव मे संथारा किया था

नानजी पछै चरण निहालो रे, मुनि नेम मोटो गुण मालौ रे।
वासी रोयट नौ सुविशालौ।
हर्ष ऋपिराय नै नित्य वन्दौ रे॥
पवर चर्ण भिक्खु पासे पायौ रे, संजम वहु वर्ष शोभायौ रे।
मुनि जिन शासन दीपायौ।
भिक्खु शिष्य शोभता नित्य वन्दौ रे॥
शहर नैणवे कियो सथारो रे, पाम्यो भवसागर नौ पारौ रे।
औ तो भिक्खु तणौ उपगारौ॥[1]

---

१. जय (भि० ज० र०), ४७।१-३। देखे—

(क) जय (शा० वि०), १।१६.

शहर रोयट ना वासी अधिक सधीर कै, भिक्षु पै सयम लियो जी।
वहु वर्पा लग पाल्यो गुणमणि हीर कै, नेम सथारो निनाणवै जी॥

(ख) ख्यात, क्रमाक २७·

नेमजी वासी रोयट ना भिक्षु पै दीक्षा आछा साधु नैणवे सथारो कीयो।

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २००·

नेमजी वासी रोयट तणा रे, भिक्षु पासे दिक्षा धार।
आछा महाव्रत ऊचरी रे लाल, नैणवै कीध सथार॥

इस विषय मे सर्व कृतिया एक मत है कि आपका सथारा नैणवे गाव मे सम्पन्न हुआ था, परन्तु वह कब हुआ, इस सबध मे सब कृतिया चुप है। केवल सत विवरणी मे आपका सथारा स० १८९९ मे सपन्न उल्लिखित है।[1] यह स्पष्ट भूल है। मुद्रित जय (शा० वि०) १।१६ मे 'निनाणवे' शब्द है[2] उसी से यह अर्थ निकालकर सत विवरणी मे बाद मे जोडा गया है। पर 'निनाणवे' शब्द सख्या-सूचक नही 'नैणवै' गाव का ही बोधक है। सबसे प्राचीन कृति मे सथारा स्थल 'नैणवा' ही उल्लिखित है।[3] अन्य कृतियो मे भी ऐसा ही उल्लेख है।

यह प्रसिद्ध बात है कि स० १८७८ मिति माघ वदि ८ को जब आचार्य भारमलजी का स्वर्गवास हुआ, तब आचार्य रायचन्दजी से दीक्षा वय मे बडे दो ही सन्त थे—मुनि खेतसीजी और मुनि हेमराजजी[4]। दीक्षा-वय मे आप आचार्य रायचन्दजी से बडे थे। अगर आपका देहान्त १८९९ मे हुआ होता तो बडे तीन सन्त लिखे जाते। इससे यह स्पष्ट है कि आपका देहान्त स० १८९९ मे मानना महज भ्रांति है।

उपर्युक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आपका देहावसान स० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व ही कभी हो गया था।

स० १८७७ वैसाख वदि ९ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है, अत आपका देहावसान उसके पूर्व चला जाता है।

स० १८७१ फाल्गुन वदि १३ के दिन विद्यमान सतो की नामावली मे आपका नाम नही पाया जाता अत यह सुनिश्चित हो जाता है कि आपका देहान्त उक्त मिति के पूर्व ही हो चुका था।

यति हुलासचन्दजी ने अपनी कृति शासन प्रभाकर मे आपका देहावसान आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे माना है।[5] यदि यह ठीक मान लिया जाए तो आपका देहान्त स० १८६० भाद्र सुदी १३ और स० १८७१ फाल्गुन वदि १२ के बीच सम्भव होगा। पर ऐसा मानना भी भूल होगा। कारण स० १८७९ की भाद्र सुदी १ की पडित मरण ढाल मे आपका देहान्त भिक्षु के पूर्व उल्लिखित है।[6] अत स० १८६० की भाद्र शुक्ला १३ के बाद मे सभव नही।

---

१. श्री मालचन्दजी सेठिया के रजिस्टर मे भी स्वर्गवास स० १८९९ उल्लिखित है।

२. पाठ के लिए देखे—पृ० २४८ पाद टिप्पणी १ (क)

३. पण्डित मरण ढाल, १।२

...नेमजी नैणवै कहियो ए।

४ (क) जय (हे० न०), ५।६२

पछै माह विद आठम जोयो रे, भारीमाल पहुता परलोयो रे।
ऋषराय वडा सत दोयो ॥

(ख) जय (ऋ० रा० सु०) ८।दो० ३

खेतसीजी ने हेम ऋषि, वडा सत सुविदित।
अखण्ड आणा माने सहु, पूरण पूज्य सू प्रीति ॥

५. हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, गा० २६६

६. पण्डित मरण ढाल १।२, ५

उक्त ढाल मे आपका देहान्त मुनि वर्धमानजी के पूर्व उल्लिखित है, जिनका देह स० १८५५ के शेष-काल मे हुआ था। अत. आपका देहान्त उसके बाद भी नहीं हो सकता।

स० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर पाए जाते है। अत: आप देहान्त स० १८४५ जेठ सुदी १ और स १८५५ के शेषकाल के बीच मे ही सम्भव है।

यहा एक प्रश्न उठता है—मुनि हेमराजजी की दीक्षा स० १८५३ माघ सुदी १३ दिन हुई थी। आप उस दिन गण मे विद्यमान थे या नही ? यदि आपको विद्यमान मान जाएगा तो उस समय गण मे भिक्षु सहित साधुओ की संख्या तेरह माननी होगी और मुनि हेमराजजी १४वे साधु होगे। अगर उस समय गण मे भिक्षु सहित १२ साधु ही थे और मुनि हेमराजजी १३वे साधु हुए, ऐसा माना जाएगा, तो आपका स्वर्गवास स० १८५३ माघ सुदी १३ के पूर्व मानना होगा।

मुनि हेमराजजी स्वय ने जयाचार्य से कहा था : "आगै सर्व बारै सत हुंता पछै तेरह थया।"[1] इससे दूसरा विकल्प ही ठीक ठहरता है और साथ ही यह निश्चित हो जाता है कि आप (नेमजी) का स्वर्गवास स० १८५३ माघ सुदी १३ के पूर्व हुआ था। इस तरह आपके स्वर्गवास स० १८४५ जेठ सुदी १ और स० १८५३ माघ सुदी १३ से मध्यवर्ती काल मे ठहरता है।

जयाचार्य ने आपके लिए 'नित्य वंदनीय ऋषिराज' शब्दो का व्यवहार किया है। आप महान् संत थे। गुण-रत्नो की माला थे। आपने सयम की शुद्ध साधना द्वारा जिनशासन की महिमा को बडा उद्दीप्त किया। बडे धीर थे। 'गुणमणि हीरक' शब्द आपके व्यक्तित्व की महनीयता को प्रकट करते है।

आपकी प्रशस्ति मे जयाचार्य ने लिखा है '

स्वाम नेमजी निर्मल पाल्यो नेम के, ज्यारी करणी रो कहिवो किसू जी।
भजन किया सू इहभव परभव खेम के, जिन मार्ग उज्ज्वालियो जी ॥[2]

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १७६

२ जिन शासन महिमा, ७।१२

२८. मुनि वेणीरामजी[1]

आप वगडी के निवासी थे।

वेणीरामजी ने अपने को वेणीदास लिखा है।[2] श्रावक चन्द्रभाणजी कृत मुनि सुखरामजी की ढाल एव एक अन्य प्राचीन ढालो मे भी आपका नाम वेणीदास लिखित है।[3] आपका मूल नाम यही रहा। पर साधारणत आपको वेणीरामजी कहा जाता रहा। मुनि हेमराजजी ने आपका नाम यही बताया है।[4] बाद मे तो यह नाम रूढ हो गया। जयाचार्य ने आपका विवरण 'वेणीराम' के नाम से ही दिया है।[5]

दीक्षा

आपकी दीक्षा कब और कहा हुई, यह एक पहेली बन गई है। उसकी कुछ विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता है। इस सबध मे निम्न उल्लेख मिलते है

१. जय (भि० ज० र०) के अनुसार आपकी दीक्षा स० १८४४ मे आचार्य भिक्षु के हाथो हुई थी। स० १८४४ मे कहा और कब हुई, इसका उल्लेख नही है।[6]

---

१. लेखक द्वारा स० २०१८ मे प्रकाशित (देखिए—तेरापथ आचार्य चरितावलि (ख० १), भूमिका पृ० २०-२६) लेख का सस्कृत और परिवर्द्धित रूप।

२. वेणी (भि० च०), ११।दो० १, ११।२, १३।१३

३. (क) चन्द्र (सुख०), २।दो० ४
   (ख) पण्डित मरण ढाल १।१२

४. (क) जय (भि० दृ०), पृ० १५६, १६०, १६२-१६५
   (ख) वेणीरामजी स्वामी रो चौढालियो, १।दो० १ आदि

५. (क) जय (भि० ज० र०), ४७।४-६, ६१।६
   (ख) जय (हे० न०), १।दो० ६
   (ग) जय (शा० वि०), १।२० तथा उसका वार्तिक

६. जय (भि० ज० र०), ४७।४, ७५

तदनन्तर वर्ष चौमालौ रे, वैणीरामजी अधिक विशालो रे।
निकलक चरण चित्त निहालौ॥
दीख्या भीषणजी स्वामी दीधी रे, वसवान वगडी रा प्रसिद्धि रे।
मुनि गण माहि शोभा लीधी॥

२. जय (शा० वि०) मे—"चमालीसै सयम लीयो जी"—सं० १८४४ में संयम लिया, इतना ही उल्लेख है।[1] किससे, कहा, कब दीक्षा दी, इन बातो की चर्चा नही है।

३ जय (शा० वि०) वार्तिक मे लिखा है · "चमालीसा रा वर्ष भिक्षु चौमासो पाली कियो। खेतसीजी स्वामी ने वगडी करायो। तिहा वेणीरामजी ने सिखायने पक्का किया। जद पाली आय दीक्षा लीधी।"

इससे पता चलता है कि भिक्षु ने स० १८४४ का चातुर्मास पाली मे किया। उस वर्ष मुनि खेतसीजी का चातुर्मास वगडी मे कराया। मुनि खेतसीजी ने वेणीरामजी को धर्मबोध देकर उनकी श्रद्धा दृढ कर वैराग्य वढाया। वाद में वेणीरामजी पाली गए और भिक्षु ने वहा उन्हे दीक्षा दी। यहा पाली चातुर्मास मे दीक्षा देने की वात तो उल्लिखित नही है, पर ध्वनि ऐसी ही है जैसे पाली मे चातुर्मास-काल में ही भिक्षु द्वारा दीक्षा हुई हो।

४. इस सबध मे चौथा उल्लेख इस प्रकार है

सगला चौमासा सामीजी कने, एक चौमासो अलगो कीध रे।
वेणीरामजी काज वगडी मझे, त्या पाली मे दिया लीध रे॥[2]

इससे स्पष्ट नही होता कि दीक्षा पाली चातुर्मास मे हुई या इसके बाद।

५ ख्यात क्रम २८ मे लिखा है · "वेणीरामजी गाव वगड़ी का। दिक्षा ४४ खेतसीजी स्वामी दीधी। जद श्री भिक्षु गणी रो चोमासो पाली हुं तो। खेतसीजी स्वामी उणां रे वास्तै चोमासो न्यारो कर्‌यौ सो सीखाय परिणाम चढाय ने दीक्षा दीधी।"

यह वर्णन पिछले सारे उल्लेखो से मूलभूत दो बातो मे भिन्न पडता है। इस उल्लेख के अनुसार दीक्षा तो स० १८४४ मे ही सपन्न होती है पर दीक्षा स्थान पाली के वदले वगडी कहा गया है और दीक्षा भिक्षु द्वारा सपन्न न होकर मुनि खेतसीजी द्वारा चातुर्मास मे संपन्न होती है, जिन्होंने वेणीरामजी के लिए ही वगडी मे चातुर्मास किया था।

६ यति हुलासचन्दजी लिखते है

वेणीरामजी गाम वगडी तणा रे, चमालै दिक्षा खेतसीजी हात।
एहिज कारण खेतसीजी स्वाम थी रे लाल, एक चोमासो न्यारो करात॥[3]

यह वर्णन ख्यात पर आधारित है।

७ वेणीरामजी स्वामी के चौढालिये मे निम्न वृत्त मिलता है .

वेणीरामजी आया पाली सहर मे रे, पूज भीषणजी रे पास।
वनणा किधी घणा हर्ष स्यू रे, सजम लेणो आण हुलास॥
भाई आग्या दीधी भली भात स्यूं रे, लिधो सजम भार।
समत अठारै चमालीस मे रे, पूज कियो तिहा थी विहार॥[4]

---

१. जय (शा० वि०), १।२० ·

वेणीरामजी स्वामी अधिक वजीर कै, चमालीसै सयम लियो जी।
चरचावादी सूरवीर ने धीर कै, परभव चासठु सत्तरै जी॥

२. खेतसीजी रो पंचढालियो, ३।८

३. हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २०१

४. वेणीरामजी स्वामी रो चोढालिया, २।२, ३

हालाकि विहार शेप काल मे ही सभव है तथापि इससे यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि दीक्षा चातुर्मास काल मे नही हुई क्योकि वह चातुर्मास के अंतिम दिन भी हो सकती है और दूसरे दिन विहार घटित हो सकता है।

८. उक्त कृतियो से प्राचीन कृति जय (खे० च०) है। उसमे इस विपय मे इस प्रकार उल्लेख है

वेणीरामजी रे वास्ते, स्वाम खेतसी सोय।
चौमासो वगडी कियो, चमालीसे अवलोय ॥
चौमासो उतर्‌या पछै, भिक्खु रिप रे पास।
पाली मे सयम लियौ, वेणीरामजी तास ॥[1]

यह प्रथम चार सक्षिप्त रूपो का मूल स्रोत है जो अपने आप मे पूर्ण है। इसके अनुसार दीक्षा स० १८४४ मे चातुर्मास के वाद पाली मे आचार्य भिक्षु के हाथ से सपन्न हुई थी। प्रारभिक वोध कार्य ही मुनि खेतसीजी के द्वारा हुआ था। दीक्षा मार्गशीर्ष वदि १ अथवा उसके समीप दिनो मे ही हुई थी।

यह आठवा जो काल-क्रम से पहला उल्लेख है, वही सही है। पाचवा ख्यात का उल्लेख मूल परपरा से सर्वथा भिन्न है। शासन प्रभाकर मे उसका अनुकरण हुआ है।

आपकी दीक्षा के विषय मे विस्तृत वर्णन इस प्रकार मिलता है · जव आपकी आयु लगभग १५ वर्ष की थी, तभी आपको धर्म मे रुचि हो गयी। आपका साक्षात्कार भिक्षु से हुआ। आपका मन उनके प्रति आकृष्ट हुआ और आपने विनती की—मैं सयम ग्रहण करना चाहता हू अत मुझ पर कृपा कर वगडी चातुर्मास करावे।" भिक्षु ने वगडी मे मुनि खेतसीजी का चातुर्मास करवाया और स्वय ने पाली चातुर्मास किया। आपने तेरह द्वार, चर्चा आदि सीखे। इसके वाद आपने दीक्षा लेने का विचार घर वालो के सम्मुख रखा। ज्ञाति जनो ने अनेक अडचने डाली और सहजतया आज्ञा नही दी पर आपकी वैराग्य भावना क्षीण नही पडी। इससे प्रभावित हो अन्त मे भाई ने आज्ञा दी और भिक्षु ने आपको दीक्षित किया।

मूल वर्णन वडा ही रोचक है, वह नीचे दिया जा रहा है

पूज भीखणजी जन्म्या कटालीयै रे, वेणीरामजी वगडी माय रे।सु०।
सजम आवै त्याने किण विधे रे लाल, ते सुणज्यो चित ल्याय रे॥सु०॥
वाल ब्रह्मचारी पनरे वर्ष आसरै रे, पूरो लागो धर्म स्यू प्रेम रे।सु०।
भीखू गुर भल भेटिया रे लाल, त्याने नीका लाग्या नेम रे॥सु०॥
ते हाथ जोडी करे वीनती रे, म्हारै लेणो सजम भार रे।सु०।
कृपा करो मुज ऊपरै रे लाल, चौमासो करावो वगडी शहर मजार रे॥सु०॥
प्रतीत आई श्री पूजनै रे, राख्या सतजूगी नै चौमास रे।सु०।
पूज चौमासो पाली कियो रे लाल, पिण मन मे मोटी आस रे॥सु०॥
तेरा द्वार चरचा वोल सीखनै रे, काढी दिख्या लेवारी वात रे।सु०।
न्यातिला वैधो कियो घणो रे लाल, कह्यो कठा लग जाय रे॥सु०॥

---

१. जय (खे० च०), १०।दो० २-३

न्यातिला मेजर लियो घणो रे, वैणीरामजी अधिक वैराग।
आग्या लीधी घणा हर्ष स्यू रे, ज्यारै पूरो धर्म स्यू राग॥
वेणीरामजी आया पाली शहर मै रे, पूज भीखणजी रे पास।
वनणा कीधी घणा हर्ष स्यू रे, सजम लेणो आण हुलास॥
भाई आग्या दीधी भली भांत स्यू रे, लीधो सजम भार।
समत अठारै चमालीसै समे रे, पूज कियो तिहां थी विहार॥[1]

दीक्षा के समय आपकी अवस्था लगभग १५ वर्ष की थी। इससे आपका जन्म १८२९ का ठहरता है।

आपकी छोटी वहिन नगाजी (२९) ने भी स० १८४४ मे भिक्षु से दीक्षा ग्रहण की।[2]

कुछ प्रसग

आप और भिक्षु के बीच घटे हुए कुछ प्रसंग नीचे दिये जाते हैं :

१. वाल्यावस्था मे आपमे दोप निकालने की प्रवृत्ति थी। आप कुछ शकाशील स्वभाव के थे। एक दिन आप दूर वैठे हुए थे। भिक्षु ने गुप्त रूप मे जगह पूज कर पैर फैलाया और साधुओ से वोले · "देखो, वेणा दूर वैठा देख रहा है, वह कुछ कहेगा।" एक क्षण के वाद ही मुनि वेणीरामजी वोले "आपने विना पूजे पैर कैसे फैलाया ?" अन्य साधु भिक्षु की ओर देखकर हसने लगे। साधु वोले "पूजकर ही पैर फैलाया है।" इस पर वे शर्मिन्दा हो समीप आ भिक्षु के चरणो मे नतमस्तक हो गए।[3]

२. वाल्यावस्था मे ही आप एक वार भिक्षु से वोले . "हिंगुलु से पात्र नही रंगने चाहिए।" भिक्षु वोले : "मेरे पात्र तो रंगे हुए ही हैं। तुम्हें शका हो तो मत रगो।" वेणीरामजी वोले "मेरा केलू से रंगने का विचार है।" भिक्षु वोले . "केलू लाने के लिए जाने पर यदि नजदीक मे कच्चे पीले रंग का केलू हो तो तुम्हे पहले कच्चे पीले रग वाले केलू को लेना चाहिए। यदि उसे न लेकर पक्के केलू की चाह करोगे, तव तो ध्यान सुरगे रग का ही रहा।"[4] जव इस तरह उन्हे समझाया, तव समझ गए।

३. पीपाड की घटना है। एक दिन भिक्षु ने आपको दो-तीन वार पुकारा। आप दूसरी हाट मे थे। वोले नही। श्रावक गुमानजी लूणावत से भिक्षु वोले "वेणी छूटता दिखाई देता है।" गुमानजी ने सारी वात जाकर वेणीरामजी से कही। वेणीरामजी तुरन्त आकर चरणो मे झुक गए। भिक्षु वोले · "पुकारने पर भी तुम वोले नही !" वेणीरामजी वोले : "मैने सुना नही।" इसके वाद वडी विनम्रता से क्षमायाचना की।[5]

४ एक वार वेणीरामजी वोले "मै थली मे जाकर चन्द्रभाणजी से चर्चा करूगा।"

---

१. वेणीरामजी रो चौढालियो, १।१-५, २।१-४
२. (क) जय (भि० ज० र०), ५।१। अन्तर दो० ४-५
   (ख) जय (शा० वि०), २।१३
३. जय (भि० दृ०), दृ० १६२
४. वही, दृ० १६०
५ वही, दृ० १६३

अवसर न देखकर भिक्षु बोले "उनसे चर्चा करने का तुम्हे त्याग है।"[1]

५. भिक्षु ने एक बार वेणीरामजी से कहा "तुम आखो मे औपधि वहुत डालते हो। आखे खो बैठते दिखाई देते हो।" इस पर भी उन्होने औपधि डालनी न छोडी। आखे कच्ची पड गई। उनमे घाव हो गए।[2]

६. जव मुनि हेमराजजी ने यावज्जीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया, नव यह जानकर आपको वडी प्रसन्नता हुई। आपने भिक्षु से कहा "आप हेमराजजी को ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करवा सके यह वडा जबरदस्त काम किया है। मैने भी वहुत चेष्टा की थी, पर जरा भी सफलता नही मिली।"[3]

जव हेमराजजी ने शीलव्रत ग्रहण किया तव उन्होने भिक्षु से कहा कि इस वात को प्रसिद्ध न करे। भिक्षु ने कहा—"मै प्रसिद्ध न करूँगा।" हेमराजजी के शीलव्रत ग्रहण की वात मुनि वेणीरामजी को कही, तव वे भिक्षु से बोले "आपको कहा हे कि आप वात प्रसिद्ध नही करेगे, तो आप न करे।" ऐसा कह उन्होने वात प्रगट कर दी।

वैणीरामजी ने कही, सगली बात विख्यात।
हेम शीलवत आदरयो, कह्यो प्रसिद्ध न करनी वात॥
कह्यो वात प्रसिद्ध करणी नही, तो आप प्रगट न करो वात।
इम कही वैणीरामजी, प्रसिद्ध करी विख्यात॥[4]

७. भिक्षु ने मुनि हेमराजजी का स० १८५८ का पुर चातुर्मास आपके साथ कराया।[5] मुनि हेमराजजी ने आपसे वहुत ज्ञान प्राप्त किया।

८. भिक्षु ने एक वार साधु मयारामजी (३३) को आपके पास रखा था।[6] स० १८६० मे जब भिक्षु ने सिरियारी मे सथारा किया, तव आपका चातुर्मास पाली मे था। भिक्षु के समाचार पाकर आपने तुरन्त विहार किया और भाद्र शुक्ला १३ के मध्याह्न मे सिरियारी पहुच दर्शन किए। भिक्षु ने आपके मस्तक पर हाथ रखा और आखो की ओर दो अगुलिया कर आखो की नजर के लिए पूछा। आपने भिक्षु के पास आ उनका स्तवन किया, अरिहन्त देव और सिद्धो की स्तुति सुनाई तथा चारो शरणो का आधार दिया।[7]

---

१ जय (भि० दृ०) दृ० १६४
२ वही, दृ० १६५
३ जय (हे० न०), ३।दो० ७,८

वैणीरामजी , साभली, हर्ष्या घणा मन माय।
घणा प्रशस्या स्वाम ने, कीधी वात अथाय॥
थे शील अदरायो हेम ने, कीधो उत्तम काम।
म्हे पिण खप कीधी घणी, (पिण) टीप न लागी ताम॥

४. जय (हे० न०) ३।दो० ७, ६
५. जय (हे० न०), ४।६
६. जय (भि० दृ०), दृ० ५५
७. (क) वेणी (भि० च०), ११।दो० १२

पाली रा चलीया पाधरा, दोय साध आया तिण वार।
रिख वेणीदास कुशालजी, देखी इचरिज पाम्या नरनार॥

९. मुनि ताराचन्दजी और डूगरसीजी को दीक्षा के बाद भिक्षु ने आपके पास रखा। वे बहुत वर्षों तक आपके साथ रहे। आपने उन्हे ज्ञानदान दे प्रवीण किया।[1]

दीक्षाए

आपका शासन की वृद्धि मे बहुत बडा हाथ रहा। आपके द्वारा आचार्य भिक्षु और आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे निम्न ७ दीक्षाए सम्पन्न हुई थी।

१-२. स० १८५७ मे मुनि ताराचदजी और डूगरसीजी की। उनका अध्यापन भी आपके द्वारा ही हुआ।[2]

३ स० १८६५ मे गोगुदा के ईश्वरदासजी पोरवाल के बड़े भाई गुलाबजी की।[3]

४. स० १८६५ मे गोगुदा के मुनि मोजीरामजी की। ये बहुत ही विद्वान् निकले।

पग प्रणम्या श्री पूज रा, दिधो माथे हाथ।
साता पूछ्या सानी करी, पिण मुख सू न कीधी बात ॥

(ख) वेणी (भि० च०), ११।१-४

दोनूइ साध आया तके रे, बोले बे कर जोड।
दरशन दीठा दयाल रा रे, पुगा मन रा कोड ॥
रिख वेणीदास इम विनवें रे, थाने होज्यो सरणा चार।
तुम सरणो मुझ भव भव रे, होज्यो वारवार ॥
जिसोइ मारग जिण तणो रे, जिसोइ जमायो आप।
दिन दिन इधिका दीपिया रे, टाल्या घणां रा सताप ॥
स्तुति अरिहत सिध तणी रे, सभलाइ श्रीकार।
जाण्यो भगत कीहा थी भीखु तणी रे, इण अवसर मझार ॥

(ग) जय (भि० ज० र०), ६१।८-१०

१ वेणीरामजी रो चौढालियो, ३।१, ३

२. वेणीरामजी रो चौढालियो, ३।१-३

ताराचदजी डूगसी धर्म पासी, गगापुरना वासी।
त्या सजम लियो छै हो, वेणीरामजी स्वामी कनें ॥
वाप ने वेटो वैरागी, दोनू छती ऋधना त्यागी।
चेला हुवा छै हो भीखू ऋपना भल भाव स्यू ॥
दोनू वेणीरामजी कने साथे दीष्या, त्या मणायनें पका कीधा।
त्यारेहीज साथे हो विचरचा छै भले भाव स्यू ॥

३ हुलास (शा० प्र०) भारीमाल सत वर्णन, ३६-३७

पोरवाल गोगुदा रा गुलावजी, ईसरदास ना भाइ कहाय।
वेणीरामजी पास थी रे, सवत पैसठे दीख गहाय ॥
पिण वयासियै गण थी नीकली, गृहस्थ श्रावक थई यति थाय।
निवै साल नवी दिक्षा लेयने, ऋषिराय वारै फ़िर आय ॥

व्याख्यान की वडी कला थी। सिंघाडवद हुए। अन्त मे सथारा किया था। स० १८६६ मे देवलोक हुए।[1]

५ स० १८६६ मे मुनि गुलावजी के छोटे भाई ईश्वरदासजी की। आप भी सिंघाड्वद हुए। नौं वर्ष तक एकान्तर तप किया। अन्य भी विविध तपस्या की। शीत सहते आप धूप मे आतापना लेते। १६०० मे सथारा कर स्वर्गस्थ हुए।[2]

६ स० १८६६ मे मुनि गुमानजी की। आपने वहुत वर्षो तक सयम पालन करते हुए अनेक लोगो को प्रतिवोधित किया। हेतु दृष्टान्त देने मे वडे प्रवीण थे। अन्तिम अवस्था मे जयाचार्य ने संत भेजे। स० १६१० मे स्वर्गवास हुआ।[3]

७. स १८७० के उज्जैन चातुर्मास मे रामोजी की दीक्षा।[4] इन्होंने वहुत लेखन-कार्य

---

१. (क) जय (शा० वि०), ३।५

गोगुन्दै रा मोजीरामजी, वेणीरामजी पासो रे।
दीक्षा लेई वर्ष निनाणुवै, सथारो मुख रासो रे।।ग०।।

(ख) हुलास (शा० प्र०) भारीमाल सत वर्णन, ४६-४७.

गोगुदा वासी मोजीरामजी रे, वेणीरामजी पास दिक्षा लेय।
भण्या गुण्या भारी घणा, व्याख्यान री कला अधिकेय।।
सिंघाडवद्ध साधु थया, अठारै निनाणवै सथार कराय।
आराधन मुख उचरी, आयु अते स्वर्ग लहाय।।

२. (क) जय (शा० वि०), ३।६

गुलावजी रा वाधव ईशरजी, सौम्य प्रकृति सुखकारो रे।
वेणीराम स्वामी दी दीक्षा, उगणीसै सथारो रे।।ग०।।

(ख) हुलास (शा० वि०) भारीमाल सत वर्णन, ६५-६६.

ईशरजी भाई गुलावजी तणा, वेणीरामजी हस्तचरण ग्रहि लिद्ध।
प्रकृति सौम्य धीरज धरू सिंघाडवध सुप्रसिद्ध।।
नव वर्ष लगै एकातर किया, वली खुल्लो तप कियो सार।
शीताताप सही घणो, उगणीसै सथारो कार।।

३. (क) जय (शा० वि०), ३।१०

गुमानजी ने दीक्षा दीधी, वेणीरामजी स्वामी रे।
आमेट मे उगणीसै दशके, परभव शिव सुख कामी रे।।

(ख) हुलास (शा० प्र०) भारीमाल सत वर्णन ६७-६८

वेणीराम हस्त दिक्षित सत गुमानजी वहु वर्षा चरण पलाय।
लोक घणा समझाविया, हेतु दृष्टान्ते चित्र पानां दिखाय।।
गुरु धारणा कराइ वहुला भणी, वडा जूना साधु महत।
जवर कराई जय चाकरी साधु म्हेली दशकै आमेट मे स्वर्गजत।।

४. वेणीरामजी रो चौढालियो, ४।दो० १.

नगर उजेणी शहर मे, आछो कियो उपगार।
रामेजी सजम लीयो, पछै कियो तिहा थी विहार।।

ढूढियो के स्थानक मे जाकर चर्चा की।[1] ख्यात मे लिखा है. "थानक जाय चरचा करी नै जय पाया वहु लोगां नै समझाया।" खाचरोद, वड़नगर आदि स्थानो मे विचरे। वहां भी वहुत उपकार हुआ।[2]

आपने सं० १८७० के उज्जैन चातुर्मास मे रामोजी को दीक्षा दी।[3]

यति हुलासचदजी ने इस यात्रा के उपकार कार्यो का वर्णन इस प्रकार किया है·

मालव देशे विचरतां रे, उज्जैण मे ढुढिया रे थानक जाय।
चरचा करी हटाविया रे लाल, आप झडा दिया जमाय॥
कोदरजी ने गुरु कराविया रे, वलि खाचरोद वडनगर आदि शहर विचरंत।
रामाजी ने सयम दियो रे लाल, इम वहु उपगार करत॥[4]

आचार्य द्वारा सम्मानित·

स० १८७० के उज्जैन चातुर्मास के वाद आपने आचार्य भारमलजी के दर्शनार्थ प्रस्थान किया। आचार्यश्री माधोपुर मे थे। आप पहुचने वाले थे, उस दिन आचार्यश्री अनेक साधुओ को लेकर आपके सम्मुख पधारे।[5] यह घटना आपके प्रति आचार्यश्री के वहुमान की परिचायक है।

अन्तिम दर्शन :

आप उज्जैन से विहार कर झालरापाटन पधारे, वहा मुनि ताराचन्दजी का स्वर्गवास हो गया। ४१ दिन का सथारा आया। आप, नानजी आदि सात साधु माधोपुर पधारे। वहां आचार्यश्री की सेवा मे २१ साधु एकत्रित हुए।

झालरापाटन शहर मे, ताराचन्दजी हो अणसण कियो अमाम।
दिन इकतालीसमैं सिझीयो, मुनि राख्या हो रूडा शुद्ध परिणाम॥
नान्हजी स्वामी वेणीरामजी, आद देइ हो साधू सात विचार।
विचरत-विचरत आवीया, पूज दर्शण हो माधोपुर शहर मझार॥

---

१. जय (शा० वि०), १।२० वार्तिक
२. ख्यात, क्रमाक २८
३. (क) जय (शा० वि०), १।२० वार्तिक
 (ख) ख्यात, क्रमाक २८
४ हुलास (शा० प्र०) भिक्षु संत वर्णन, २०५, २०७
५ (क) जय (शा० वि०) १।२० वार्तिक
 उज्जैन (थी)...विहारकरी माधोपुर पधारया। तिहा भारीमालजी साधा ने लेईने साहमा पधार्‌या।
 (ख) ख्यात, क्रमाक २८
 (ग) हुलास (शा० प्र०) (भिक्षु सत वर्णन), २०८
 पछै माधोपुर पाछा आविया रे, भारीमाल गणी दर्शण माट।
 भारीमाल आप साह्मा गया रे लाल, मिल्या इकवीस सता ना थाट॥

त्यां दर्शण किया श्री पूज ना, भेला हुवा हो त्यां ठाणा इकवीस।
त्यां सू विहार कियो रुडी रीत स्यू, आगेवाणी हो पूज भारीमालजी जगीस ॥[1]

अन्तिम विहार : महाप्रयाण

आचार्यश्री माधोपुर से विहार कर जयपुर पधारे। वहा आप भी पधारे।

आचार्यश्री ने आपका आगामी चातुर्मास जयपुर का फरमाया, और आपको वही छोड मारवाड पधार गये। चातुर्मास प्रारंभ होने मे काफी समय था। अत. आप जयपुर मे चासटू (चासठू) पधारे और वही विराजे। आप पाच संत थे। वही सं० १८७० की जेठ वदि १० को हठात् आपका देहान्त हो गया।

वली जैंपुर शहर मे भेला हुवा, स्वामी दीधा हो त्या चोमासा भोलाय।
वेणीरामजी ने जयपुर राखनें, मुरधर देसे हो चाल्या मुनिराय ॥
चोमासा आडा दिन घणा जाणनें, वेणीरामजी हो पांच साधा सहीत।
विहार कियो जयपुर थकी, विचरत-विचरत हो कारण उठ्यो अचित ॥
चासटू सहर ने आविया, जेठ सुदि मे हो दसम दिन जाण।
समत अठारै सतरै वेणीरामजी हो, छोड्या चट दे प्राण ॥[2]

---

१. मुनि वेणीरामजी रो चौढालियो, ४।१-३

२. मुनि वेणीरामजी रो चौढालियो, ४।४-६। तथा देखिए—

(क) जय (भि० ज० र०), ४७।१३ :
कीधो स्वाम भिक्खु पछै कालो रे, शहर चासटु मे सुविशालो रे।
संवत् अठारह सितरै निहालो ॥

(ख) जय (शा० वि०), ११२० :
वेणीरामजी स्वामी अधिक वजीर कै, चमालीसे संजम लियो जी।
चरचावादी ने धीर कै, परभव चासठु सतरै जी ॥

(ग) पण्डित-मरण ढाल, १।१२
वेणीदासजी सामी चाप्टू मझे, पहुता परभव नाणी रे।
अणचितव्या चलता रह्या, सित्तर वर्ष पिछाणी रे ॥

(घ) जय (हे० न०), १। दो० ६
चमालीसे संजम लियो, वेणीरामजी जोय।
हरचासटु में सही, सतरे पोहंता परलोय ॥

स्वर्गवास के स्थान का नाम चामुढ, चासटु, चाटसु और चामटु लिखा मिलता है।

(ङ) शासन प्रभाकर (भिक्षु सत वर्णन), २०९, २१० :
पछै वेणीरामजी ने भारमालजी रे, जैंपुर चोमासो दियो भोलाय।
विहार करचां वधता दिन जांण ने रे लाल, चामुढ गाम विराज्या आय ॥
तिहां अणचिंतो काल आवियो रे, अठारे सतरै जेठ सुदि दशम दिन सार।
शासण रागी मुनि एहवा रे लाल, होणा दुक्कर इण आर ॥

यह वर्णन जय (शा० वि०), ११२० वार्तिक और ख्यात क्रमांक २८ पर आधारित है।

ऐसी अनुश्रुति है कि आपको एक यति द्वारा द्वेष-वश विप-मिश्रित औपधि दे दी गयी थी।[1]

व्यक्तित्व ·

आप जैसे निर्भीक और साहसी थे, वैसे ही तेजस्वी भी थे। एक वार मेवाड़ मे सन्ध्या समय विहार करते हुए साधुओ से चोर भण्डोपकरण छीन कर ले गये। आप पीछे रह गये थे। पहुचने पर साधुओं से घटना अवगत हुई। आप उस पथरीली भूमि मे पद-चिह्नो से चोरो की खोज करते हुए चोरपल्ली मे जा पहुचे। चोरो की आज्ञा ले रात मे उन्ही के स्थान पर विराजे। सध्या के प्रतिक्रमण के वाद चोरो को समझाना शुरू किया। चोरो को समझा-वुझा कर प्राय सभी वस्तुएं वापस ले आए। केवल एक पात्र और कुछ चित्र-पत्र वापिस नही दिये। पात्र भैस को वटा देने के लिए रखा और चित्र वच्चो के मनोरजन के लिए।[2]

आप वडे प्रत्युत्पन्न-वुद्धि थे। एक वार किसी ने व्यंग्य कसते हुए कहा· "भैस मर गई, अव पोठे रह गये है।" आपने हाथो-हाथ उत्तर दिया "भैस अवश्य चल वसी, पर पोठे भैस के ही है जो लोहे को भी काट डालते है।"

आप व्याख्यान मे वडे कुशल थे। घोप उच्च और मधुर था। मालवा की प्रथम यात्रा मे रतलाम मे स्थानकवासी साधुओ की आज्ञा से उनके स्थानक मे ठहरे। एक ओर स्थानकवासी साधुओ ने व्याख्यान शुरू किया। दूसरी ओर आपने भी नमस्कार मन्त्र द्वारा व्याख्यान आरम्भ किया। उन साधुओ के व्याख्यान को सुनने आयी हुई परिषद् आपका व्याख्यान सुनने लगी। उन साधुओ ने आपको वहा रहने की मनाही कर दी। अन्यत्र भी स्थान नही मिला, आखिर मे सल्लू नामक यतनी ने अपने उपाश्रय मे उन्हे जगह दी।[3]

श्रमण सागरमलजी के अनुसार वाद की घटना इस प्रकार है। समाज के पचो द्वारा यतनी पर दवाव आया। उसे धमकिया दी गई। वह एक कटार निकाल कर उपाश्रय के दरवाजे पर वैठ गई। वोली—"जो कुछ करना है कर लो, मै सतो को नही निकालूगी।" पच लोग अपना-सा मुह ले चले गये। लुक-छिप कर कुछ लोग आने लगे। लिखमोजी, गुमानजी सवसे पहले तेरापथी वने। वे भोजा भगवानजी के यहा नौकरी करते थे। लिखमोजी ने भोजाजी

---

१. (क) सेठिया (मुनि गुण वर्णन)
(ख) वम्व (मुनि गुण प्रभाकर)
(ग) इतिहास के वोलते पृष्ठ, पृ० १४४
यतिजी को वाद मे कोढ का रोग हो गया (सेठिया सप्त सुमन, सुमन २)। इस भयकर व्याधि से पीडित होने पर अपने कृत्य पर वडा पश्चात्ताप किया।
मुनि सागरमलजी के अनुसार उपाश्रय उस समय से वीरान पडा है। कोई यति वहाँ आकर नही वसे।

२. (क) वही
(ख) वही
(ग) इतिहास के वोलते पृष्ठ, पृ० १४०-१४१

३. (क) सेठिया मुनि वर्णन।
(ख) वम्व (सत गुण प्रभाकर) के आधार पर।

से तेरापन्थी वनने का वृत्तात वताया। ईसरदास नामक एक भाई के नेतृत्व मे तेरापन्थ के विरोध मे हस्ताक्षर कराने शुरू किए गए। अनेक व्यक्तियो के हस्ताक्षर कराने के वाद वे भोजाजी के हस्ताक्षर कराने के लिए उनके पास पहुचे। भोजाजी ने पत्र हाथ मे ले उसे पढ डाला और उस निन्दात्मक पत्र पर सही करने के वदले टुकड़े-टुकडे कर फेंक दिया, और वोले : "जाओ, आज से मै भी तेरापन्थी वना।"[1]

मुनि सागरमलजी के अनुसार रतलाम मे आरंभ में लिखमोजी और गुमानजी श्रावक हुए पर सेठिया (मुनि गुण वर्णन), एव वम्व (सन्त गुण प्रभाकर) के अनुसार ईश्वरदासजी और गुलावचन्दजी अग्रवाल प्रथम श्रावक थे।

आपके व्यक्तित्व के विषय मे ख्यात मे उल्लेख है :

१. वडे पण्डित थे। शास्त्रो की वहुत धारणा थी।

२. अपराजेय वुद्धि थी।

३. मित्थात्व को हरने को सूर्य के समान तेजस्वी थे।

४. साहसी और वेपरवाह थे।

५. व्याख्यान देने की अद्भुत कला थी। कण्ठ जवरदस्त थे।

६. कण्ठस्थ ज्ञान वहुत था।

७. चर्चा मे दुर्धर्ष थे।

८. वुद्धि वडी औत्पातिक थी।

९. वडे गुणग्राही थे।

१०. नीति-निपुण थे।

११. शासन के हित पर दृष्टि थी। शासन-स्तम्भ थे। वडे गुण-ग्राही, वड़े उपकारी पुरुष थे।

यति हुलासचन्दजी लिखते है :

पढ गुण ने पण्डित थया रे, घणा शास्त्रा री धारणा तास।
मुहडै ज्ञान छतो घणो रे लाल, घणो जोडण कला अभ्यास॥
अघ टारक वारक वड़ा रे, मिथ्या मत अंधकार।
रविसम उपम जेहनी रे लाल, उत्पातिक वुद्धि अपार॥
व्याख्यान कला चातुर घणा रे, कण्ठ जवर विस्तार।
किण री काण न राखता रे लाल, इसा वेपरवाही अणगार॥[2]

"सतो मे वेणीरामजी तथा साध्वियो मे मैणाजी" उस समय की प्रसिद्ध लोकोक्ति थी। आप वडे वहुश्रुत थे। वुद्धि वडी कुशाग्र थी। स्मरण शक्ति वडी तेज थी। आचार्य भिक्षु द्वारा रचित ३८००० पद प्राय कण्ठस्थ वतलाये जाते है।[3] सूत्र और सिद्धान्त के रहस्यों के आप वड़े अच्छे जानकार थे। आप वडे प्रभावशाली वक्ता थे। प्रवचन शैली वड़ी हृदयग्राही थी।

---

१. 'जाओ हम भी आज से तेरापथी है'—शीर्षक अप्रकाशित लेख के आधार पर।

२. हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २०२-२०४

३. (क) सेठिया (मुनि गुण वर्णन)
 (ख) वम्व (मुनि गुण प्रभाकर)

श्रोता के मन मे आपकी वाणी से चमत्कार सा उत्पन्न होता। आपका व्याख्यान हेतु, न्याय और दृष्टान्तो से गर्भित होता। आप कुशाग्र और औत्पातिक बुद्धि के स्वामी थे।

कवि चन्द्रभाणजी लिखते है

वेणीदास दीपता, त्यारी कला बुध वखाण।
नर नारी हरषत हुवे, सुण सुण निरवद वाण ॥[1]

जयाचार्य ने आपके व्यक्तित्व का चित्रण इस रूप मे किया है

हुवौ वैणीराम ऋषि नीको रे, प्रवल पडित चरचावादी तीखौ रे।
मुनि लियो सुजश नौ टीकौ ॥
वारू वाचत सखर वखाणो रे, सखर हेतु दृष्टात सुजाणो रे।
भर्त मै प्रगट्यौ जिम भाणौ ॥
हद देशना मै हुशियारौ रे, श्रोता नै लागै अधिक सुप्यारौ रे।
चित्त माहै पामै चमत्कारौ ॥
जाय मालव देश जमायौ रे, खण्डीसू चरचा कर तायौ रे।
वहुजन नै लियौ समझायौ ॥
त्यारी धाक सू पाखण्ड धूजै रे, वैणीराम केशरी जिम गूजै रे।
प्रगट हलुकर्मी प्रतिबुजै ॥
उत्पत्तिया है बुद्धि उदारौ रे, समझाया घणा नरनारी रे।
हुयो जिण शासण शिणगारौ ॥
घणा नै दियौ सजम भारो रे, धर्म वृद्धि-मूर्त सुखकारौ रे।
ए तौ भिक्खु तणो उपगारो ॥[2]

महान् सेवा-भावी

आप वड़े सेवा-भावी थे। तपस्या और सथारा आदि के समय वैयावृत्य करने के साथ-साथ परिणामो को निर्मल रखने मे वडा सहयोग करते। इस सवध मे तीन घटनाए उल्लेखनीय है —

१. स० १८६२ मे पीसागण चातुर्मास मे मुनि सुखरामजी ने सलेपणा सथारा किया। इस चातुर्मास मे नानजी, आप और डूगरसीजी साथ थे। आपने वडी सेवा की।[3]

२. आपकी वहिन साध्वी श्री नगाजी वडी तपस्विनी थी। गण मे उनका वहुमान था। स० १८६२ के शेष काल में सलेखना सथारा के समय आपने उन्हे वडा सहारा दिया।

इगतालीस दिन सथारो तेजूजी ने आयो, नगाजी सथारो देवगढ ठायो।
वधव साझ दियो कीधी भगती, सुमरो मन हर्षे मोटी सती ॥[4]

---

१. चन्द्र (सुख), २।दो० ४
२. जय (भि० ज० र०) ४७।६-१२
३. चन्द्र (सुख), २।दो० ३-५
४. पण्डित मरण ढाल, २।६

साध्वी नगाजी ने साध्वियो से सलेपणा करने की बात कही। साध्वियों ने शी- करने की अर्ज की। मुनि वेणीरामजी ने कहा—धीरज रखो। जल्दी न करो। आच भारमलजी पधारने वाले है। वे दर्शन देगे, तब तक उतावल न करो।" नगाजी ने कहा "आप कहते हे वह ठीक है, पर मुझे कर्मो के जाल को काटना है।"[1] साध्वी ने सलेपणा क आरभ कर दी। विविध तपस्या करने लगी। आपने दर्शन दिए। आचार्यश्री भी पध साध्वीजी ने सलेपणा करने का विचार नही छोडा और विविध प्रकार तप करती रही अन्त मे सथारा ठा दिया। पर मुनिश्री ने आपको सथारा नही कराया। इस तरह स्वयं किए हुए सथारे मे ६ दिन निकल गये। सातवे दिन साध्वी की विशेष अर्ज पर उन्हे संथा ग्रहण कराया। मूल शब्दो मे घटना का वर्णन इस प्रकार है:

वले तेलो कीधो छै तीखा भाव सू, तिण मे बीजे दिन उठी उजम आण।
सथारो कीधो छै हो अरिहत साख सू, डर नही आण्यो चतुर सुजाण॥
थानै भाइ वरजे छै हो वाइ भगत सू, वले वरजे छै सतीयां ने नरनार।
सती कहे अणसण आवै दोय मास रो, तोही डर नही आणु लिगार॥
हिवै अरज करे छो हो सती इण विधे, मोने आगन्या दो अणगार।
ज्यू सुख पामै हो जीव माहरो, मत राखो मन मझार॥
इम करता पाच दिन परखीया, आयो सातमो दिन श्रीकार।
दशम रे दिन दुघरीये पेहल रे, सोमवार करायो संथार॥[2]

३. इसी तरह स० १८६८ मे मुनि डूगरसीजी ने सलेपणा सथारा किया, तब आपने उन्हे वडा सहारा दिया। उस समय की एक घटना से यह भी पता चलता है कि आप कितने विवेक-शील और दूरदर्शी थे।

मुनि डूगरसीजी ने उक्त वर्ष की फाल्गुन सुदी १ से सलेखना आरंभ की। १४ एकान्तर किये। फिर बेला किया, जिसका पारण चैत्र वदि १ को हुआ। शीघ्र सथारा करने की भावना से मुनि डूगरसीजी ने साधुओ से निवेदन किया—"अब मुझे एक महीने के उपवास की तपस्या का प्रत्याख्यान करा दे।" मुनि वेणीरामजी, जो कि सिंघाडपति थे, बोले: अब महीने की तपस्या का कोई प्रयोजन नही। अपने बधे[3] के अनुसार तपस्या करते जावे। अधिक हठ करने पर उन्हे आठ दिनो के उपवास की ही तपस्या कराई।

हाथ जोडी साधां ने कहे हो, मासखमण दयो पचखाय।
वेणीरामजी कहे डूगर सुणो हो, मासखमण तणो नही काम॥
पालो बधा री सलेपणा हो, ज्यू सीझे आतम काम।
वचन सुणी साधा तणा हो, इम बोल्या मुनिराय॥
मासखमण पचखावो नही हो, तो अठाई तो दयो पचखाय॥[4]

---

१. साध्वी नगाजी गुण वर्णन ढाल, ५,६,६
२. नगाजी गुण वर्णन ढाल, १८-२१
३. मुनि डूगरसीजी ने चैत्र मे वेले, प्रथम वैशाख मे तेले, द्वितीय वैशाख में चोले और ज्येष्ठ मे पचोला करने का वधा लिया था।
४. नाथू (डूगसी गुण वर्णन), १।५-७

४ सं० १८७० के शेपकाल मे मुनि ताराचन्दजी ने ४१ दिन का अनशन किया, तव वे आपके ही पास थे।[1]

प्रतिभाशाली कवि

सत वेणीरामजी एक प्रतिभाशाली कवि थे। उस समय के साहित्यकार सतो मे आप अग्रणी थे, यह आपकी साहित्यिक कृतियो से सहज ही प्रतिभासित हो जाता है। आपकी विशिष्ट कृति 'भिक्खु चरित'[2] है। इसमे आपने भिक्षु का जीवन-चरित काव्य रूप मे लिखा है। इसमे तेरह ढाले, वहत्तर दोहे तथा एक सौ उनहत्तर गाथाए है। प्रत्येक ढाल के दोहो को छोड़कर १३-१३ गाथाए हैं। इसकी ढाले भिन्न-भिन्न राग-रागिनियो मे गेय है। इस कृति का रचना-स्थान वगडी और समाप्ति-काल स० १८६० की फाल्गुन वदि १३, वृहस्पतिवार है।

ए चिरत कियो छे भीखु अणगार नो, वगडी सहर मजार हो। महामुनि ॥
सवत अठारे साठा वरस मे, फागण विद तेरस गुरुवार हो। महामुनि ॥[3]

इस कृति की कई ढालो को जयाचार्य ने भिक्खु जश रसायन मे उद्धृत किया है। यह कृति अनुपम भक्ति तथा वैराग्य-भावना से परिप्लावित है। भाव और रस की दृष्टि से उत्कृष्ट साहित्यिक कृति है। उपमाओ और रूपको मे इसका काव्य-वैभव अतीव भव्य रूप मे निखरा है। मुनि वेणीरामजी भिक्षु के प्रमुख सतो मे से एक थे। अत यह जीवन-चरित अधिकाशत उनका आखो-देखा वर्णन है। मुनि हेमराजजी की और आपकी कृतियाँ परस्पर पूरक हे। दोनो के समवेत अध्ययन से भिक्षु के जीवन व कर्तृत्व का पूरा विवरण मिल जाता है।

आपकी चातुर्मासो की पूरी तालिका प्राप्त नही है। कुछ चातुर्मासो का विवरण आ चुका है।

प्रशस्ति

आपकी प्रशस्ति मे जयाचार्य ने लिखा है

वेणीरामजी गण मे हुवा वजीर के, उपकारी उद्यमी घणाजी।
जाप जप्या सू भाजे भवदु ख भीड के, ज्या जिन मार्ग कियो दीपताजी ॥[4]

सिघाड़पति

आप आरभ से ही वडे विचक्षण थे। पीपाड के चौथमलजी वोहरा ने आपकी छोटी अवस्था देखकर भिक्षु से कहा "यह क्या? आप भी वालको को मूडने लगे।" भिक्षु वोले "शका हो तो कोई वात पूछो।" तव वेणीरामजी के पास आकर पूछा "जीव कौन-से गुणस्थान से सिद्ध होता है?" आपने उत्तर दिया "जीव गुणस्थान से मुक्त नही होता,

---

१. वेणीरामजी रो चौढालियो, ४।१
२. इस कृति और उसके विवरण के वारे मे देखिए—आचार्य चरितावलि, प्रथम खण्ड, पृ० २५-३८-क तथा भूमिका पृ० २४-२६
३. वेणी (भि० च०), १३।१२
४. जिन शासन महिमा, ७।१३

गुणस्थान छोड़ने पर मुक्त होता है।"[1]

उत्तराध्ययन में कहा है—"सिद्ध मनुष्य-लोक में शरीर को छोड़ते हैं और लोक के अग्रभाग में जाकर सिद्ध होते हैं।"[2] यही बात इन्हीं शब्दों में औपपातिक सूत्र में कही है।[3] वेणीरामजी का उत्तर इन्हीं आगमों के आधार पर था।

उत्तर सुनकर चौथमलजी बोहरा बहुत प्रसन्न हुए।

इस तरह आप बाल्यावस्था में ही बड़ी प्रतिभा का परिचय देते थे। आरंभ में ही विद्याभ्यासी थे। व्याख्यान देने में बड़े प्रवीण थे।[4] दीक्षा के कुछ वर्ष बाद ही आपको सिंघाड़पति कर दिया गया।

मुनि रूपचन्दजी (३२) की दीक्षा सं० १८४५ जेठ सुदी १ एवं १८४७ के शेषकाल के बीच हुई थी। वे सं० १८५३ के पूर्व गण से निकल गये थे। उन्होंने निकलने के छः मास पूर्व मुनि वेणीरामजी से एक अभिग्रह लिया था। अभिग्रह का पालन न करने से वे दूर हुए थे। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे सं० १८४७ (१८५३-६) के पूर्व ही सिंघाड़पति हो चुके थे।

आगे जाकर आप बड़े चर्चावादी निकले। शासन की आप द्वारा बहुत बड़ी सेवा हुई।[5]

---

१. (क) हेम दृष्टान्त, दृ० ३७

२. (क) उत्तरा०, ३६।५६

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोन्दि चइत्ताणं, तत्थ गन्तूण सिज्झई॥

३. औप०, ४३। सिद्ध स्तवना, श्लोक २

४ हेम (मुनि वेणीरामजी रो चौढालियो), २।४ :

भण गुण ग्यान सीख पका हुवा रे, बाल अभ्यासी ताम।
वखाण वाणी देवा में तीखा घणा रे, त्यारी महिमा घणी गाम गाम॥

५. जय लघु (भि० च०), ५।दो० ८

चरचावादी विमल चित्त, उपकारी अधिकाय।

२९. मुनि रूपचंदजी

आप, सुरतोजी (३०), वर्धमानजी (३१) और रूपचन्दजी (छोटे) (३२) ये चारो दौलतरामजी के टोले के साधु थे। वहा से आकर चारो ने एक साथ आचार्य भिक्षु से दीक्षा ग्रहण की थी।[1]

> तिण अवसर कोटा तणा, दौलतरामजी देख।
> आया तसु टोला थकी, सत च्यार सुविशेप ॥
> दोय रूपचन्द देख रे, वारु ऋप वर्द्धमानजी।
> सूरतौजी सपेख रे, स्वाम गणै सजम लियौ ॥[2]

स० १८४४ के शेपकाल के प्रारभिक महीने मे वेणीरामजी (२८) की दीक्षा हुई और उसके बाद स० १८४७ मे मुनि सुखरामजी (छोटे) (३५) की। इस अवधि मे सपन्न छह दीक्षाओ मे आप चारो की पहले और एक साथ हुई थी।

स० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखित मे आप चारो के ही हस्ताक्षर नही है अत उस दिन तक आप चारो की दीक्षा नही हुई थी। भिक्षु का सवत् १८४६ का चातुर्मास खेरवा (मारवाड) मे हुआ था। उसके वाद शेपकाल मे जेठ वदि १२ से लेकर जेठ सुदी १५ तक भिक्षु नैणवा (ढूढाण) मे देखे जाते है। मुनि दौलतरामजी की सम्प्रदाय के साधु प्राय. कोटा, बूदी आदि हाडोती के गावो मे विहार करते थे, जो नैणवा, माधोपुर आदि के समीप है। सभवत आप चारो की दीक्षा उस समय नैणवा मे हुई, अथवा स० १८४७ के शेपकाल मे हाडौती मे नैणवा अथवा अन्य स्थान मे।

रूपचन्दजी की प्रकृति वडी अभिमानी थी। विनय के अभाव के कारण स्वच्छद चलने लगे। अन्त मे गण से पृथक् हो गए।

---

१. (क) जय (भि० दृ०), दृ० १९७
   (ख) हेम दृष्टान्त, दृ० ३६
२. जय (भि० ज० र०), अन्तर ४७।दो० १ सो० १ ।तथा—
   (क) (जय शा० वि०), १।दो० ६ सो० ११
   (ख) ख्यात, क्रम २९
   (ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, २११

रूपचन्द बहुमान रे, छूटौ तेह प्रयोग थी।
प्रकृति अजोग पिछाण रे, सूरतो पिण छूटक थयो ॥[1]

स० १८५० के चातुर्मास के बाद अखैरामजी और आप दोनो एक साथ सभोग तो से अलग हो गये थे। भिक्षु स० १८५० के नाथद्वारा के चातुर्मास के बाद विहार कर कोठा होते हुए धोइदा पधारे, तब दोनो वहा थे। भिक्षु को मालूम नही था कि दोनो संभोग तोड़ है। अत उनके साथ ठहरने लगे तब अखैरामजी से मालूम हुआ कि वे संभोग तोड़ चुके भिक्षु ने पूछा है · "किस कारण से सभोग तोडा है ? हममे दोप है या साधु और आर्याओं मे तव रूपचन्दजी बोले "किसी मे दोप समझकर सभोग नही तोड़ा। अब तक हम लोग समान थे। आप मे और हम लोगो मे किसी मे साधुत्व नही है।" इसके बाद फिर कहा : "आ तक श्रद्धा भी शुद्ध नही थी। तेरह द्वार मे अनेक भूलें हैं। अतः हम लोगो मे न सम्यक्त्व है सयम। सब पुन. दीक्षा ले, तो हम लोग भी आप मे शामिल हो।" भिक्षु ने पूछा : "क्या तुम लोगो ने दीक्षा ली है ?" दोनो ने ही उत्तर नही दिया। रूपचन्दजी अंटसट बोलने लगे। अहं पूर्वक बात करने लगे। भिक्षु ने पुनः कहा 'दीक्षा ली है या नही, बताते क्यो नही।" तब रूपचन्दजी बोले "मै एक बात पूछता हू—आप सच्चे है या मैं ?" इस तरह अहकार और गर्वपूर्वक बोले। इस चर्चा के समय रूपचन्दजी ने बडी ही अनुचित बाते कही थी। 'रे' कार 'तू' कार का प्रयोग किया। यह भी कहा "तू यहा किसकी आज्ञा से बैठा है ?" भिक्षु ने सब शान्त भाव से सुना।[2]

भिक्षु ने सोचा "अखैरामजी के समझने के बाद यह समझेगा, तो समझ जाएगा अन्यथा अपनी करनी अपनी भरनी। यह इस भव मे समझता दिखाई नहीं देता।" भिक्षु ने अखैरामजी को समझाने की बात सोची। उन्हे समझाने का प्रयास किया। रूपचन्दजी आकर पूछने लगे "भीखनजी और साधु कहां गये हैं ?" सुखजी ने भेद नही दिया। रूपचन्दजी बड़े आकुल-व्याकुल हुए। अखैरामजी समझ गये। बाद मे रूपचन्दजी को उपालम्भ देते हुए भिक्षु ने कहा : "इण टोला माहे इसौ दगौ करौ। म्हारा साध नै फार्‌यों। इसो वेसासघात करणो नही। थे घणो अकार्य कीधों। इण भेप मै इसौ दगौ करणो नही।" रूपचन्दजी बोले : "म्है तो फारातोरो कीधो कोई नही।"[3]

गण से अलग होने पर अखैरामजी और रूपचन्दजी ने १५६ दोप भिक्षु मे निकाले।[4]

एक बार रूपचन्दजी बोले . "मेरी शकाएं दूर करे।" भिक्षु बोले : "चर्चा मे बोल मिल

---

१. जय (भि० ज० र०), ४७।सो० २, जय (शा० वि०), १ सो० १२।तथा देखे—
   (क) ख्यात, क्रम २६
      प्रकृत अजोग। मान घणो। विनय मे रहणी आवे नही तिण सु छूटो।
   (ख) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २१२
      तेह मे वडो रूपचन्द रे, प्रकृति अयोग्य पणा थकी।
      वर्तवा लागो निज छदरे, तेह थी फिर गण थी टल्यो ॥
२ देखिए इस विपयक १८५० का लेख
३. लेख १८५०(११)
४ वही

भी सकते है और नही भी। तुमसे चर्चा कर नया टटा कौन खड़ा करे ? आज के वाद मुझसे लेकर सर्व साधुओं का अश मात्र भी अवर्णवाद करने का त्याग करो तो चर्चा करे। साधु-साध्वियो के अवगुण बोले बिना कौन-सा काम अटकता है ? ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप मे से किसमे रुकावट आती है ? आत्मार्थी हो, तो इस बात का त्याग ग्रहण कर प्रतीति उत्पन्न करो, फिर चर्चा करो। अन्यथा रहने दो। फिर दीक्षा लो तो उसके वाद भी अवगुण निदा करने का त्याग करो। कदाचित् कहने लगो—मैने पुन दीक्षा ले ली है, अव अवगुण वोलने मे वाधा नही। अत वाद मे निदा करने का त्याग कर विश्वास पैदा करो। इसके वाद चर्चा मे परस्पर एकता हो, तो ठीक, नही तो अपनी श्रद्धा अपने-अपने पास रही। चर्चा मे विपवाद दिखाई देता हो तो चर्चा नही करनी चाहिए। वाद मे ऐसा नही कहना चाहिए कि कपटपूर्वक सौगध करा दिया। वोल वैठ जाए तो कहना चाहिए, बैठ गया। बैठा नही हो तो भी सौगध अच्छी तरह पालना चाहिए। दौलतरामजी ने वोल उतरवाये उसका तो पश्चाताप करते हो। कोई भीखनजी के दोष कहता हो तो उसे उतारने का उद्यम करते हो, तब कैसे विश्वास हो ? तीन सौ तिरसठ पाखडो से तो मेल रखते हो, उनके श्रावक-श्राविकाओ मे शका डालने का उद्यम नही करते। भीखनजी की श्रद्धा के साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका तथा अनुरागी है उनके शका उत्पन्न करने का उद्यम करते हो। यही ध्यान लगा रहता है। दौलतरामजी के श्रावको से तोडी, दौलतरामजी से तोडी, उसका पश्चात्ताप करते हो, और भीखनजी से खीच-तान कर तोडते हो, फिर प्रतीति कैसे हो ? द्वेषी से चर्चा कौन करेगा ? गाढी प्रतीति हो तो भीतर आना। प्रतीति न हो, तो न आना। पर पहले प्रतीति के वोल पाने मे लिखे है उन्हे ग्रहण कर प्रतीति उपजाओ तो चर्चा करने का भाव है अन्यथा नही। सरल परिणाम हो तो प्रत्याख्यान कर विश्वास उत्पन्न करो। यदि मन मे अन्य उधेड-बुन हो तो क्यो इधर-उधर की बात करते हो ? जो रह-रहकर लोगो मे शका उत्पन्न कर श्रद्धा दूर करता जाए, उसे तो धोखेबाज समझना चाहिए। कोई पूछे, खास प्रयोजन हो, कोई विशेष अडचन हो तो इतना ही कहना चाहिए—मुझे श्रद्धा मे, आचार मे कुछ शका हुई है, उससे अलग हुआ हू। विस्तार नही करना चाहिए। इन वोलो मे फेर है, ऐसा नही कहना चाहिए।"[1]

रूपचन्दजी चुप रहे। भिक्षु ने उनसे चर्चा नही की।

मुनि अखैरामजी समझकर गण मे आ गए। रूपचन्दजी वाहर ही रहे।

रूपचन्दजी का एक चातुर्मास अखैरामजी के साथ सणयार (मेवाड) मे हुआ था।[2] शेप-काल मे भी साथ विचरे प्रतीत होते है।

वूदी, माधोपुर मे भी विहार किया था।[3]

मेवाड के साहपुरा, पुर, कोठारिया, नाथद्वारा, रीछेड, उदयपुर, काकरोली, गोगूदा, राजनगर, रावलिया आदि स्थानों मे विहार का उल्लेख मिलता है।

९

१ लेख १८५० (१३)

२ रूपचन्द अखैरामजी आगे धेख चढिये थके कह्या ते वोल का लेख, वोल १३।

३. (क) रूपचन्द अखैराम दोष काढिया री विगत का लेख।

(ख) रूपचन्द अखैरामजी आगे धेख चढिये थके कह्या ते वोल का लेख।

३०. मुनि सुरतोजी

जैसा कि पूर्व प्रकरण मे वताया जा चुका है ये भी दौलतरामजी के टोले के साधु थे और मुनि रूपचन्दजी (२९) वर्द्धमानजी (३१) और रूपचन्दजी (३२) के साथ एक ही दिन आचार्य भिक्षु से दीक्षा ली थी।[1]

सं० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखित पर इनका हस्ताक्षर नही पाया जाता, जव कि उस समय के अन्य सभी विद्यमान सतों के हैं। ऐसी स्थिति मे यह स्पष्ट है कि उस दिन तक इनकी दीक्षा नही हुई थी। स० १८४६ के खेरवा (मारवाड) चातुर्मास के वाद शेप काल मे जेठ वदि १२ से लेकर जेठ सुदी १५ तक भिक्षु नैणवा (ढूढाड) मे थे। जैसा कि पूर्व प्रकरण मे चर्चा जा चुकी है, वहुत सभव है कि इनकी दीक्षा भी उस समय नैणवा मे हुई, अथवा स० १८४७ के शेप काल मे हाडौती के नैणवा अथवा अन्य स्थान मे।

मुनि रूपचन्दजी (२९) स० १८५० के शेपकाल मे गण से दूर हुए, उस समय भिक्षु के प्रति उनका एक आरोप यह था कि वे अयोग्य को दीक्षा देते हैं। इसके उदाहरण में उन्होंने इनका भी नामोल्लेख किया था "अजोग ने दिख्या दै है सुरतो विगतो।"[2] इससे स्पष्ट है कि उस समय तक ये गण मे थे।

हेम दृष्टान्त ३६ मे उल्लेख है "सूरतौ तौ थोडा दिन रही छूट गयी।" 'थोडे दिन' का अभिप्राय थोडे वर्षो से हे।

कुछ वर्प गण मे रहने के वाद आप निकल गए।[3] उनके निकलने का कारण इनकी असयत व स्वच्छद-प्रकृति ही थी।

प्रकृति अजोग पिछाण रे, सुरतो पिण छुटक थयो ॥[4]

---

१. देखिए प्रकरण २९

२. १८५० (११), दोप सख्या ६१

३. हेम दृष्टान्त, दृ० ३६

४. जय (भि० ज० र०), ४७।सो० २, जय (शा० वि०), १।सो० १२। देखे—

(क) ख्यात, क्रम ३०

"मौकलाइ मै रह्योडा था, सकडाई मै रहणो दोहरा तेह सु छूटो"

किसी के द्वारा वताया हुआ एक दोहा प्रसिद्ध है, जिससे मालूम होता है कि आप वड़े जिह्वा-लोलुप थे।[1]

(ख) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २१३

वीजो सुरतो त्याह रे मुकलाई मे रह्योडो हुतो।
घणी सकडाई याहरे रहणो दोरो जव निकल्यो ॥

१ सुरत विहुणो सुरतियां, अणदो घणो अजोग।
विकल वीरभाणियो, या रे लागो खावा रो रोग ॥

३१. मुनि वर्धमानजी

आपने भी कोटा सप्रदाय के मुनि दौलतरामजी के टोले मे आकर मुनि रूपचन्दजी(२६) सूरतोजी (३०) एवं रूपचन्दजी (लघु) (३२) के साथ आचार्य भिक्षु से एक ही दिन दीक्षा ग्रहण की थी।

स० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखित पर आपके भी हस्ताक्षर नही देखे जाते। इससे यह प्रमाणित होता है कि आपकी भी दीक्षा उस दिन तक नही हुई थी। उसके वाद भिक्षु का स० १८४६ का चातुर्मास खेरवा (मारवाड) मे हुआ था। चातुर्मास के वाद शेपकाल में जेठ महीने मे भिक्षु नैणवा (ढूढाड) मे थे। जैसा कि प्रकरण २६ और ३० मे चर्चा जा चुका है, आपकी भी दीक्षा उस समय नैणवा मे उक्त तीन साधुओं के साथ सपन्न हुई प्रतीत होती है। अथवा उसके वाद स० १८४७ के शेपकाल मे हाडोती मे ही नैणवा अथवा अन्य ग्राम मे।

आपने अनेक वर्षो तक वडी दृढता के साथ संयम का पालन किया। आपका जीवन वड़ा तपस्वी था। शीत सहन और आतापना की तपस्या वहुत की। उपवास, वेला आदि भी वहुत किए।[1]

आपका देहावसान सथारा पूर्वक ढूढाड के मार्ग मे हुआ। यह स० १८५५ की चातुर्मास के वाद की घटना है :

> वडा सत वर्द्धमानजी, सजम सरल सुधार।
> विचरत विचरत आविया, देश ढूढाड मझार॥
> लू रा कारण थी लियौ, मारग मे सथार।
> सम्वत् अठारह पचावनै, लीधौ संजम सार॥[2]

---

१. (क) ख्यात, क्रम ३१

छाती रा वडा हडीप। सीत आतापना घणी खमी। उपवास वेला स्युं लेनै उष्ण पाणी रै आगारै कीया।

(ख) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २१४-२१५ :

> छाती तणा हडीप छा रे लाल, तपस्या वहु विध कीन।
> शीत आताप सह्या घणा रे, अत देश ढुढाड मझार।
> लू रा कारण थी सथारो करी रे लाल, अठारै पिचावने पण्डित मरण श्रीकार॥

२. जय (भि० ज० र०), ४७।दो० २-३। तथा देखिए—

आपके स्वर्गवास की रचना वडी ही रोमांचकारी है। इसका विशद वर्णन निम्न शब्दो मे मिलता है "वर्धमानजी घणा वर्ष साधपणो पाल्यो। पछै ढूढाड मे मारग मे लू लागी। चावडी खाच्या हाथ मे आवै इसो सरीर सीज गयो। हालता हेठा पड गया। वैठा होय चालता फेर हेठा पड्या। साथे अखैरामजी मयारामजी हुता। ते गाम माहि थी माचौ आण छाया कीधी। सथारो करवाय दियौ। थोडी वेला थी दिन नैइज आउखौ पूरी कीधो। परिणाम घणा सैंठा रह्या।"[1]

उक्त वर्णन से पता चलता है कि आपको ढूढाड़ की ओर विहार करते समय रास्ते मे लू लग गई। शरीर ऐसा झुलस गया कि खीचने पर चमडी हाथ मे आ जाती। जमीन पर गिर पडे। उठाने पर फिर गिर पडे। गाव से खाट लाकर छाया की गई। साधुओ ने उनकी इच्छा से सथारा कराया। उसी दिन कुछ समय वाद सथारा सम्पूर्ण हुआ। परिणाम वडे दृढ रहे।

(क) पण्डित मरण ढाल १।३

वर्धमानजी लू रा कारण थकी, मारग मे कीयो सथारो ए।
समत अठारै पचावनै, ढूढाड देश मझारो ए॥

(ख) जय (शा० वि०), १।२१.

वर्द्धमानजी देश ढूढाड मझार कै, लू रा कारण थी भलो जी।
मारग माही संथारो सुखकार कै, सवत् अठारै पिच्यावने जी॥

(ग) जिन शासन महिमा, ७।१४

जिन शासन मे सत वडा-वर्धमान के, मारग लू रा कारण थकी जी।
सथारो कर पाया सुख प्रधान के, सवत अठार पचावने जी॥

(घ) ख्यात, क्रम ३१. अत समै देस ढुढार मै लु रा कारण थी सथारो कीयो स० १८५५ गण मै पण्डित मरण पाया।

(ङ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २१५, पृ० २७२ पाद टिप्पणी १ (ख) मे उद्धृत।

१. हेम दृष्टान्त, दृ० ३६

३२. मुनि रूपचन्दजी (लघु)

जैसा कि लिखा जा चुका है ये भी कोटा के मुनि दौलतरामजी के संघ के साधु थे। उन्हें छोडकर आचार्य भिक्षु के पास दीक्षा ली थी। दीक्षा का अनुमानित काल पूर्व प्रकरणों मे बताया जा चुका है। स० १८४५ जेठ सुदी ७ और १८४७ के शेषकाल के बीच हुई छह दीक्षाओं मे प्रथम चार दीक्षाए एक ही दिन हुई थी। उनमे इनकी दीक्षा चौथी है। जैसा कि पूर्व प्रकरण में बताया जा चुका है, इनकी दीक्षा भी नैणवां मे स० १८४६ के शेषकाल के जेठ महीने मे अथवा स० १८४७ के शेषकाल मे हाडोती मे ही नैणवा अथवा अन्य ग्राम मे हुई।

एक बार की घटना है, इन्होने आचार्य भिक्षु से कहा . "मुझे ठंडी रोटी नही भाती।" तब आहार की पाती करते समय भिक्षु ने ठडी रोटियो पर एक-एक लड्डू रख दिया। गर्म रोटिया ऐसे ही रहने दी और बोले—"जो ठडी रोटी नही लेता, वह लड्डू भी न ले। जो गर्म रोटी लेगा उसे लड्डू नही मिलेगा। अनुक्रम से सबने अपनी-अपनी पांती उठा ली। किसी को गर्म-ठडी कहने का अवसर न रहा।[1] इन्होंने कौन-सी रोटी उठाई, इसका उल्लेख नही है।

इन्होने माधोपुर मे मुनि वेणीरामजी से अनशन का बधा लिया।[2] बाद मे परिणाम शिथिल हो गए। "मै आपके काम का नही रहा। रत्न था, ककर हो गया" कह अलग हो गए।

मुनि हेमराजजी की दीक्षा स० १८५३ माघ सुदी १३ के दिन हुई थी। उस दिन वर्तमान १२ साधुओ मे आपका नाम नही है। इससे प्रमाणित है कि आप उक्त तिथि के पूर्व ही गण से पृथक् हो गए थे।

आपके विषय मे एक घटना निम्न रूप मे मिलती है। आप अलग होने के बाद भिक्षु के दर्शन के लिए जा रहे थे। रास्ते मे ताराचन्दजी नामक एक व्यक्ति मिले। पूछा · "आप किसके साधु है ?" आपने उत्तर दिया "भीखनजी के।" ताराचन्दजी बोले : "उनका साधु तो अकेला नही विचरता ?" आप बोले "मै टोले के बाहर हू। मुझ मे साधुत्व नही है। मुझे वदना मत करे।" ऐसा कह आगे बढ गए।[3] इस घटना से प्रतीत होता है कि गण से दूर रहने पर भी आप सम्मुख रहे।

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १६७

२ सेठिया (मुनि गुण वर्णन) और बम्ब (मुनि गुण प्रभाकर) के अनुसार बधा यह था कि वे छह वर्षो के बाद सथारा करेंगे। उक्त द्वितीय कृति के अनुसार बधा चौविहार सथारे का था।

३. श्रावक दृष्टान्त, ४६

वाद मे चोर मिले। तलवार निकालकर वोले "कपडा डाल दो।" आपने पात्र खोलकर दिखलाए। चोर माने नही। तव भृकुटी चढाकर मूछ का केश तोडकर बोले "इस वृक्ष के आगे वढने दू तो असल गुरु का मुडा हुआ चेला नही।" चोर डर के मारे भाग गए। आपने वडी रावलिया पहुचकर भिक्षु के दर्शन किए। इस घटना से भी स्पष्ट है कि पृथक् होने पर भी आप आचार्य भिक्षु के प्रति पूरी श्रद्धा रखते थे।

कालान्तर मे आपने एक शिष्य किया। एक वार इन्द्रगढ आए। शिष्य का त्याग कर दिया और गृहस्थो से बोले "मेरे वस्त्र और सूत्रादि भीखनजी को देना। वे ही मेरे गुरु है।" ऐसा कह स्वय पुन दीक्षित हुए और सथारा ग्रहण कर लिया। पाच दिन का सथारा आया।

जयाचार्य ने आपका वृत्तान्त वडे सुन्दर रूप मे प्रस्तुत किया है :

लघु रूपचन्द स्वाम गण, माधौपुर रै माहि।
अणसण रौ वधौ कियौ, वैणीरामजी पाहि॥
पछै परिणाम कचा पड्या, वोल्यौ एहवी वाय।
हू थारै नही 'काम कौ, रत्न काकरौ थाय॥
इम कहीनै अलगो थयौ, काल कितौ इम थाय।
एक चेलौ कीधा पछै, आयो इन्द्रगढ माय॥
शिष्य तज कहै गृहस्था भणी, तत सूत्र मुझ ताम।
भिक्खु नै वहिरावज्यो, मुझ गुरु भिक्खु स्वाम॥
इम कही साधपणौ पचख, दियो सथारो ठाय।
पाच दिवस रै आसरै, परभव पहोतौ जाय॥[1]

जयाचार्य ने अन्तिम घटना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है

ए वीस टल्या गण माहि थी, रूपचन्द शिर आण।
पूज्य तणी धर चरण ले, इन्द्रगढे तज प्राण॥[2]

---

१. जय (भि० ज० र०), ४७।२-८। तथा देखे—
  (क) जय (शा० वि०), १।दो० ७-११ प्राय जय (भि० ज० र०) के शब्दो मे ही है
  (ख) ख्यात, क्रम ३२
  (ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २१६-१८

चोथो लघु रूपचन्द रे, वेणीरामजी स्वामी कने अणसण।
वधो करयो स्वय छन्द रे, पछै परिणाम कच्चा पड्या॥
जद वोल्यो इम वायरे, अव हू नही थारा काम रो।
रतन कांकरो थाय रे, इम कही गण थी नीकल्यो॥
पछै इन्द्रगढ मायरे, एक चेलो कर्‌यो ते वोसिरावीने।
पाच दिवस सथार कराय रे, गुरु मानी भिक्षु भणी॥

२. जय (शा० वि०), १।दो० ३१

बीसां मांहे एक वर, रूपचन्द शुद्ध रीत।
छेहड़े अणसण कर्यो लियो, पूज आण प्रतीत॥'

भिक्षु के युग के २० साधु गण से पृथक् हुए, उनमें एक रूपचन्दजी ही ऐसे थे अंत में भिक्षु को गुरु रूप में स्वीकार कर उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए संथारापूर्वक प्राप्त किया।

---

१. रूप (भि० ज० र०), ४२।दो० ३

३३. मुनि मयारामजी

स० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखित मे आपकी सही नही है अत आप उस दिन तक दीक्षित नही हुए थे। स० १८४५ जेठ सुदी १ और स० १८४७ के शेषकाल की मध्यावधि मे छह दीक्षाए सपन्न हुई थी जिनमे आपकी पाचवी है। आचार्य भिक्षु का स० १८४७ का चातुर्मास पुर (मेवाड) मे था। शेपकाल मे वे पुन ढूढाण प्रदेश मे पधारे थे। प्रतीत होता है आप और आपके बाद की दीक्षा उसी काल मे हुई थी।

आपके सबध मे सक्षिप्त विवरण इस प्रकार मिलता है

जति भेप नै जाण रे, मयारामजी मूकियौ।
प्रत्यक्ष ही पहिछाण रे, भेषधार्‌या मै आवियौ ।।
भेषधारी नै छड रे, सजम लीधौ स्वाम पै।
वहु वर्ष चरण सुमण्ड रे, निकल कालवादी थयौ ।।[1]

ये पहले यति थे। बाद मे बाईस सप्रदाय मे दीक्षित हुए। उन्हे छोड आचार्य भिक्षु के पास दीक्षित हुए।

स० १८५५ की घटना है। मुनि वर्धमानजी (३१) लू के कारण अस्वस्थ हो ढूढाड मे विहार करते हुए मार्ग मे गिर पडे। तब मुनि अखैरामजी और आपने गाव से खटिया लाकर उन पर छाया की थी।[2]

---

१ जय (भि० ज० र०), ४८।सो० ३-५। तथा देखिए—

(क) जय (शा० वि०), १।सो० १३
मयाराम गण माय रे, आयो भेपधार्‌या थकी।
काल केतलै ताय रे, निकल कालवादी थयो ।।

(ख) ख्यात, क्रम ३३
वावीस टोला मै सु आय दिक्षा लीधी पछै नीकल कालवादी थयौ।

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २१६
मयाराम इण नाम रे, वावीस टोला सु आयने।
उत्तम ए गण पाम रे, पाछो निकल कालवादी थयो ।।

२. हेम दृष्टान्त, ३६। देखिए प्रकरण ३१

एक वार पाली मे मुनि मयारामजी आठ रोटी अधिक ले आए। आचार्य भिक्षु रोटिया गिनकर कहा . "मगाई उससे आठ रोटिया अधिक कैसे लाए?" मुनि मयार बोले . "यहा रख दे।" भिक्षु ने निकालकर अलग कर दी। मयारामजी ने साधुओ को चाहा पर किसी ने नही ली। तव बोले · "परठ देने का विचार है।" भिक्षु बोले : "परठोगे दूसरे दिन विगय छोडनी पडेगी।" तव क्रोध कर अटसंट बोलने लगे। बोले : "मैं ऐसा नही रखूगा। नौ पदार्थ मे पांच जीव, चार अजीव की श्रद्धा मिथ्या है। एक जीव, आठ अजीव है।" भिक्षु ने क्षमा कर आहार का काम चुकती कर कहा · "तुम्हारे यह शका है, तो चर्चा करने का भाव है।" ऐसा कह उसी समय धूप मे विहार किया। उतमूण मे उत्तराध्ययन सूत्र दिखाकर शका दूर की। प्रायश्चित्त दिया। वाद मे मुनि वेणीरामजी को सौप दिया।[1]

कुछ दिनों वाद ये अलग हो गए।[2]

निकलने के वाद कालवादी हो गए।[3]

भिक्षु के देहान्त (स १८६०) के पूर्व स० १८५५ मे मुनि वर्धमानजी (३१) ने संथारा किया, उसके वाद आप किसी समय गण से अलग हुए थे।

"वहु वर्प चरण सुभल रे"—आप वहुत वर्पो तक साधु-जीवन मे रहकर निकले थे।

लगता है, स० १८५९ का आपका चातुर्मास ताराचन्दजी (४२) और नाथोजी (४०) के साथ था। आप १८५९ माघ सुदी ७ के पूर्व अलग हो गए तव साधु ताराचन्दजी और नाथोजी दो ही रह गए। वे अन्यत्र विहार मे ही रहे। स० १८५९ माघ सुदी ७ के लिखित मे उनके हस्ताक्षर इसी कारण नही हो पाए।

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० ५५

२. वही

३. देखे पृ० २७७, पाद टिप्पणी १

३४. मुनि विगतौजी

स० १८४५ जेठ सुदी १ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है। इससे फलीभूत होता है कि उस दिन तक आप दीक्षित नही हुए थे। स० १८४५ जेठ सुदी १ एव स० १८४७ के शेप-काल के बीच के समय मे छह दीक्षाए सम्पन्न हुई थी, जिनमे से अन्तिम दीक्षा आपकी है। स० १८४७ के पुर चातुर्मास के बाद भिक्षु पुन ढूढाड प्रदेश मे पधारे थे। आपकी दीक्षा उसी अवधि मे ढूढाड प्रदेश के किसी ग्राम मे सम्पन्न हुई प्रतीत होती है।

आप वोरावड (मारवाड) के निवासी थे। कई वर्षो तक सयम पालन के बाद दुर्भाग्य-वश गण से पृथक् हो गये।[1]

स० १८५० मे मुनि रूपचन्दजी गण से अलग हुए तव उन्होने आचार्य भिक्षु पर एक आरोप यह लगाया था कि अयोग्य को दीक्षा देते है। अयोग्य दीक्षा के उदाहरण मे सुरतोजी और विगतौजी का नाम लिया। लगता है कि उस समय तक आप गण मे रहे।

मुनि हेमराजजी की दीक्षा स० १८५३ माघ सुदी १३ के दिन हुई थी। उस समय आप गण मे नही थे। अत आप उक्त दोनो घटनाओ के मध्यकाल मे अर्थात् स० १८५० के शेपकाल एव स० १८५३ माघ सुदी १३ के वीच कभी गण से अलग हुए थे।

स० १८३७ के नागौर चातुर्मास के वाद तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी चूरू पहुचे।

---

१ (क) जय (भि० ज० र०), ४७।सो० ५ :

विगतौ नाम विचार रे, वासी वोरावड तणौ।
सजम ले सुखकार रे, कर्म प्रभावे निकल्यौ॥'

(ख) जय (शा० वि०), १।सो० १४

वोरावड वसवान रे, विगतै सयम आदर्यौ।
कर्म प्रभावे जाण रे, गण थी वाहिर नीकल्यौ॥

(ग) ख्यात, क्रम ३४

वगतोजी सयम लेइ पछै केइ वर्ष पछै छूटो।

(घ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २२०

वोरावड वसीवान रे, वखतै सयम आदर्यो।
रह्यो केइ वर्ष अनुमान रे, पछै छूट्यो ए गण थकी॥

तव मुनि सतोपचन्दजी और शिवरामदासजी के साथ वगतोजी नामक एक साधु के होने का उल्लेख मिलता है।

जैसा कि ऊपर वताया जा चुका है, प्रस्तुत वगतोजी की दीक्षा स० १८४५ के शेपकाल और १८४७ के वीच हुई थी। तव क्या सतोपचन्दजी और शिवरामदासजी के साथ जो वगतोजी थे, वे इनसे भिन्न थे?

ऐसा लगता है कि तिलोकचन्दजी एव चन्द्रभाणजी, सतोपजी और शिवरामजी से जाकर मिले, उसके पहले ही सतोपचन्दजी और शिवरामदासजी, साध्वी फत्तूजी, आदि की हरकतो को सुनकर टोले से उदासीन हो गये थे और संभोग तोडने के वाद उन्होने वगतोजी को दीक्षा दी। तिलोकचन्दजी और चन्द्रभाणजी के पहुचने के पश्चात् पहुचकर सतोपचन्दजी और शिवरामदासजी को समझाने पर भी वे भिक्षु के साथ नही हुए। अत उनके द्वारा दीक्षित वगतोजी भी उन्ही के साथ रह गये।

मालूम होता है, यही वगतोजी वाद मे उनसे अलग हो गये और कालान्तर मे गण मे पुनर्दीक्षित हुए।

३५. मुनि सुखजी

आप टूगच (मारवाड) के निवासी थे। आप ओसवाल वशज थे। आपका गौत्र पीपाडा था। आपकी दीक्षा स० १८४७ मे आचार्य भिक्षु के हाथो सपन्न हुई थी।[1] आपने देवगढ मे सथारा किया। दस दिन का सथारा आया। यह स० १८६४ की बात है।[2]

आपके सथारे की घटना बडी रोचक है। वह इस प्रकार है

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ४८।१,२

तदन्तर टूगचना वासी, सुखजी नाम सुखकार।
स्वाम भिक्खु पै सजम लीधौ, आणी हर्ष अपार रा॥
स्वाम भिक्खु पछै चौसठे, काई शहर देवगढ सार।
अणसण कर आतम उजवालियौ, तौ शुद्ध दस दिन सथार॥

(ख) जय (शा० वि०), १।२२

भिक्षु गण मे छोटो सुखजी सार कै, वासी टुगचै गामना जी।
वर्ष चौसटै दश दिन नो सथार कै, परभव सुरगढ हेम पै जी॥

(ग) जय (शा० वि०), १।२२ वार्त्तिक

सुखजी स्वामी जाति पीपाडा। ४७ सै दीक्षा।

(घ) ख्यात

वासी टूगच रा...घणा वर्ष चारित्र पाली पछै स० १८६४ देवगढ मे सथारो दिन नौ आयो...जाति का ओसवाल पीपाड दीक्षा स० १८४७ लीधी।

(ड) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २२१, २२२

वलि छोटा सुखरामजी रे, डुगच ना वसिवान सु०।
उत्तम ओसज वशना रे लाल, जाति पीपाडा जान सु०॥
सवत सैंताले दिक्षा ग्रही रे, पाली निरतीचार सु०।
चौसटै चोमासै देवगढ मझै रे लाल, हेम समीप उदार सु०॥

इसमे जन्म स्थान का नाम डूगच प्राप्त है।

भिक्षु द्वारा दीक्षा सपन्न होने की बात केवल जय (भि० ज० र०) मे है। अन्य कृतियो मे नही।

२. (क) देखिए, पाद टिप्पणी १

सं० १८६४ मे मुनि हेमराजजी (३६) ने देवगढ़ में चातुर्मास किया। आप, मुनि भागचन्दजी (४८) और दीपचन्दजी (५२)[1] उनके साथ थे। आपने भाद्र मास में अभिग्रह-प्रतिज्ञा की—"माघ शुक्ला १५ के बाद मुझे यावज्जीवन तीनों आहारों का त्याग है।" बाद मे आपका शरीर निर्बल होने लगा। अतः पौष शुक्ला १५ के बाद तीनों आहारों का त्याग कर दिया। इसके बाद आपने आश्विन मास के कृष्ण पक्ष मे तपस्या आरंभ की। उसका विवरण इस प्रकार है :

१. सर्वप्रथम १४ दिन की एकान्तर तपस्या ।

२. फिर तीन वेले।

३. कार्त्तिक मास मे ६ वेले और फिर २ तेले किये।

४. उक्त तपस्याओ के बाद आपने चौले (चार दिन के उपवास) का प्रत्याख्यान किया। प्रथम दिन की रात्रि में ही आपने जीवन-भर चारों आहार करने का त्याग कर दिया। दस दिन का संथारा आया।[2]

(ख) पण्डित मरण ढाल १।९ :

सुखजी सामी संथारो देवगढ मझै, दस दिन अणशण दीपायो ए।
समत अठारै ने चौसठे, देशो देश मिलायो ए ॥

१. ख्यात और हुलास (शा० प्र०) मे इनकी दीक्षा सं० १८६५ की उल्लिखित है पर यहां के वर्णन के अनुसार उनकी दीक्षा स० १८६४ के पूर्व हो चुकी थी।

२. (क) जय (शा० वि०) १।१२ वार्तिक पृ० ३७

महा सुदी पूनम पछै तीन आहार रा त्याग। पछै शरीर कच्चो पड्यो जाणने पोषी पूनम पछै तीनू आहार रा त्याग। आसोज वदी सू तपस्या मांडी। १४ दिन तो एकान्तर किया पछै तीन वेला किया काती मे ६ वेला किया। २ तेला। पछै च्यार पचख्या। उणहिज रात्रि च्यारू आहार रा त्याग जावजीव कीधा। १० दिन को संथारो।

(ख) ख्यात, क्रम ३५

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २२२-२२६ :

सवत सैतालै दिक्षा ग्रही रे, पाली निरतीचार।
चौसटै चोमासै देवगढ मझै रे लाल, हेम समीप उदार॥
तिहा भाग्यवत सुखजी भाद्रवै रे, कीधो अभिग्रह सार।
माघ शुक्ल पूनम पछै रे लाल, तीनू आहार नां जावजीव परिहार॥
पछै शरीर कच्चो पड्यो जाणने रे, पोसी पूनम पछै तीनू आहार ना त्याग।
इम कहिने आसोज विद थकी रे लाल, सलेपणा करवी मांडी धर राग॥
चवदै दिन तो एकातरा किया रे, किया तीन वेला तंतसार।
काती मे छव वेला करी रे लाल, दोय तेला किया श्रीकार॥
पाछै चार दिन पचखिया रे, उण रात्रि जावजीव संथार।
दश दिन नो संथारो सीझीयो रे लाल, वैराग्य थयो घणो ससार॥

मुनि हेमराजजी ने सथारे के समय आपको वडा वल पहुचाया

मुखजी सथारो कियो, वहु हठ स्यु मुनिराया हो।
दस दिन अणसण दीपतो, हेम परिणाम चढाया हो ॥[1]

आपका सथारा किस दिन सपन्न हुआ, यह उल्लिखित नही है। कार्तिक मास की तपस्या की गणना के आधार पर वह सं० १८६४ के मिगसर वदि ७ अथवा ८ के दिन सपन्न होना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि चातुर्मास समाप्त हो जाने पर भी सथारे के कारण मुनि हेमराजजी के सिंघाडे को वहां रुक जाना पडा था।

जयाचार्य ने आपकी प्रशस्ति मे लिखा है

छोटा सुखजी पाल्यो सयम भार के, भिक्षु गुरु पाया भलाजी।
अनशन करने कर दीयो खेवो पार के, उत्तम ऋषि गुण आगलाजी ॥[2]

ख्यात मे आपके विषय मे लिखा है "वड़ा वैरागी छा। भद्रीक घणा...। वडा उत्तम मुनि हुया।"[3]

आपने १७ वर्ष से अधिक साधुत्व का पालन किया। पर आपके चातुर्मासो का वर्णन प्राप्त नही होता। स० १८६२ मे आपका चातुर्मास मुनि हेमराजजी के साथ जैतारण मे था। मुनि भागचन्दजी और जीवनजी साथ थे।[4]

यह मुनि हेमराजजी का नवा चातुर्मास था। इस चातुर्मास मे वडा उपकार हुआ। वहुत लोग प्रतिवोधित-हुए। मुनि जीवणजी ने वाईस दिन के उपवास की तपस्या ग्रहण की। तपस्या के वाईसवे दिन सथारा ग्रहण किया। १७ दिन का सथारा आया। इस तरह जीवणजी ३६ दिन के अनशन मे कार्तिक वदि १ बुधवार के दिन अतिम दुघडिया मे दिवगत हुए।[5]

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, आपका अतिम स० १८६४ का चातुर्मास भी मुनि हेमराजजी के साथ ही था। सभव है स० १८६३ का चातुर्मास भी उनके साथ हो।

---

१. जय (हे० न०), ४।१३
२. जिन-शासन महिमा, ७।१५
३. ख्यात, क्रम ३५
४. पनजी (जीवनजी) ३।११, ४।दो० १ :

वडा सत सुखरामजी, हेमराजी वुधवन्त।
भागचन्दजी मे गुण घणा, जीवणी तपसी सत ॥

५. जय (हे० न०), ४।१०-११

शहर जैतारण वासठे, नवमो चौमासो सागी हो।
नरनारी समझाया घणा, जीवणजी अन्न त्यागी हो
वावीस पचख्या वैरागी हो ॥
वाइसमे दिन पचखियो, सथारो वडभागी हो।
सतरे दिन रो आवियो, दिन गुणचालिस सागी हो,
जिनमत महिमा जागी हो ॥

३६. मुनि हेमराजजी

१. परिचय

आप मारवाड़ प्रदेश के सिरियारी गाव के निवासी थे। आपके पिताश्री का नाम अमरोजी वागरेचा था। आप जाति से ओसवाल थे। आपकी माताश्री का नाम सोमांजी था। जव आप गर्भस्थ हुए तब माता सोमांजी ने स्वप्न मे देव-विमान देखा। संतान जीती न थी। माता ने स्वप्न मे ही कहा : "संतान नही जीती।" उत्तर मिला : "तुम्हारी दो संतान जीवित रहेगी।" स्वप्न के अनुरूप आप जैसा पुण्यशाली पुत्र सोमाजी को प्राप्त हुआ। आपका जन्म सं० १८२९ की माघ शुक्ला त्रयोदशी शुक्रवार के दिन पुण्य नक्षत्र मे आयुष्मान् योग मे हुआ।[1]

स्वप्न के अनुसार कुछ वर्षो वाद आपके एक छोटी वहिन हुई। नाम रत्तूजी रखा गया। भाई-वहिन दोनो मे परस्पर वडा अनुराग था। आप कैसे स्नेही भाई थे, इसकी परिचायक एक घटना इस प्रकार है। रत्तूजी को आपके मामा ननिहाल ले गये। आपका मन नही लगा। आपने आचार्य भिक्षु से निवेदन किया : "मन करता है कि अभी सवार को भेजकर रत्तू को वापिस वुला लू।" भिक्षु बोले : "सांसारिक सुख ऐसे ही कच्चे होते है। जहां सयोग है, वहा वियोग भी है। इससे शारीरिक और मानसिक दु ख उत्पन्न होते रहते है। मोक्ष के सुख शाश्वत और स्थिर होते है। उनमे विरह नही होता।" यह सुनकर आपका मन शात हुआ।[2]

आप वचपन से ही सुसस्कार-सपन्न देखे जाते थे। आपकी वृत्तिया सहज रूप से ही शान्त और वैराग्यमय थी। वचपन से ही आप में वडा धर्म-प्रेम था, जो क्रमश वढ़ता ही चला गया। आपने १५ वर्ष की अवस्था मे 'परदार-विरमण-व्रत' ग्रहण किया। नियमित रूप से प्रतिदिन सामायिक करते। साधुओ के भक्त थे। उनके प्रति वडा अनुराग रखते। उनका वड़ा आदर-सत्कार करते। उनकी सत्संगत का लाभ उठाते हुए ज्ञान-ध्यान मे समय व्यतीत करते। साधु-साध्वियो की सेवा के फलस्वरूप आपका तात्त्विक ज्ञान वड़ी गभीरता को प्राप्त हुआ, और आप धर्म-चर्चा मे वडे प्रखर हुए। वुद्धि गभीर, तीक्ष्ण और हाजिरजवाव थी। कण्ठ मधुर, सुरीले और उच्च घोपयुक्त थे। गायन-कला में प्रवीण थे। गृहस्थावस्था में आप

---

१. जय (हे० न०), १।१-४

२. जय (भि० दृ०), दृ० २५८

व्यापारार्थ पाली, वीलाडा आदि स्थानो मे जाते-आते रहते। वहा लोगो को धर्मोपदेश देते। चर्चा कर तत्त्व समझाते। श्रावक-व्रत ग्रहण करवाते। ज्ञान की गभीरता के कारण आप चर्चा-वार्ता के समय वडे निर्भीक रहते। जरा भी घवडाते नही थे। नि सकोच भाव से स्थानको मे जाकर तात्त्विक-चर्चा करते। सिद्धात, युक्ति और दृष्टान्तो के वल पर अपना प्रभाव छोडकर आते।

स्वभाव से ही आप पापभीरु थे। वडे विनम्र और विनयी थे।

वरस पनरै आसरै वधियाजी काइ सधिया चेत खडा हुया, किया परनारी ना पचखाण।
सत सत्यानी सेवाजी नित्य मेवा सामायक करै, वहु पाप तणो भय जांण।
सोम मुद्रा अति प्यारीजी सुखकारी हेम मुनीश्वरू॥
उतपतिया वुद्धि भारीजी सिरदारी हेम तणी घणी, काइ चरचावादी जाण।
कठ कला अधिकारीजी समजावै नरनारी भणी, काइ वाचै वरस वखाण।
सोम मुद्रा अति प्यारीजी सुखकारी, हेम मुनीश्वरू॥
विणज करण नै जावैजी पाली भीलाडै आदि दे, त्या पिण देवै उपदेश।
चरचा कर जन समजावैजी अदरावै व्रत श्रावक तणा, घालै दान दया री रेस॥
सोम मुद्रा अति प्यारीजी सुखकारी, हेम मुनीश्वरू।
करै भेप धारचा सू चरचाजी काइ थानक माहि जायनै, विविध न्याय थी जोय।
इम पाखडिया नै हठावैजी सुध जाव न आवै तेहनै, ते सुणियाइ इचर्य होय॥
सोम मुद्रा अति प्यारीजी सुखकारी, हेम मुनीश्वरू॥[1]

२. प्रतिबोध और प्रेरणा

आचार्य भिक्षु आपके उक्त गुणो के कारण आपके प्रति वडे आकर्षित थे। आपका भी भिक्षु के प्रति वडा अनुराग था। उनसे दूर रहना आपको असह्य होता।[2] आप ग्रहण किये हुए व्रतो का सम्यक् रूप से पालन करते थे। आपका हृदय वैराग्य-भावना से ओतप्रोत था। प्रव्रज्या ग्रहण करने की भावना भी रखते थे। भिक्षु स० १८५१ का चातुर्मास पाली करने वाले थे पर आपकी भावना को वलवती करने की इच्छा से पाली मे न कर सिरियारी मे किया। आपकी वैराग्य-भावना तो दृढ थी, पर कव दीक्षा लेगे इस सवध मे निश्चित अभिमत प्रगट नही करते थे।[3] आखिर मे आप किस प्रकार दीक्षा के लिए कटिवद्ध हुए, उसका रोचक वर्णन इस प्रकार है।

सवत् १८५३ के सोजत चातुर्मास के वाद भिक्षु विहार करते-करते माहडा गाव पधारे। विविध क्षेत्रो से साधु सेवा मे उपस्थित हुए। आप (हेमराजजी) भी सिरियारी से

---

१ जय (हे० न०), १।६-९
२ जय (हे० न०), १।१०
सुवनीतपणै सुखदायीजी नरमाई हेम तणै घणी, काइ भीखू सू वहु प्रेम।
त्यारो विरह खमणो अति दोहरोजी नही सोरो सग तसू छाडणो, हीयै निरमला हेम॥
सोम मुद्रा अति प्यारीजी सुखकारी, हेम मुनीश्वरू।
३ वही, २।दो० १-२

अगीकार करवा दू ?' आपने स्वीकृति दी। भिक्षु ने पुन-पुन पूछकर आपके कहने पर पच-परमेष्ठी की साक्षी से आपको जीवनपर्यंत के लिए शीलव्रत ग्रहण करा दिया।[1]

यावज्जीवन शील ग्रहण करने के वाद आपने भिक्षु से निवेदन किया : "अब आप शीघ्र सिरियारी पधारे।" भिक्षु वोले . "अभी तो हीराजी को भेजता हू। श्रमणो का प्रति-क्रमण सीखना।"

यह सारी वात माहडे और नीवली के वीच खडे-खडे हुई। इसके वाद भिक्षु नीवली पधारे। हेमराजजी सेवा करते हुए साथ आए।

आपके पास आहार था। भिक्षु से ग्रहण करने की विनती की। भिक्षु ने व्रत निपजाया। आप वडे हर्पित हुए।[2]

आपके दीक्षा लेने का विचार इस तरह स्थिर होते ही भिक्षु ने युवाचार्य भारमलजी से कहा "अब तू निश्चित हो गया है। आगे मै था और अव तुम्हारे लिए यह हेम है। कठिन चर्चा का प्रसग उपस्थित होने पर हेम है .

भारीमाल सू भीखू कहै, हिवै थे हुवा नचीत।
आगै थारै म्हे हुता, अबै हेम अघ जीत॥
जे कोइ पाखडी थकी, पडै चरचा रो काम।
तो छै थारै हेमजी, इम कहै भीखू साम॥[3]

हेमराजजी ने निवेदन किया "मैंने शील ग्रहण किया है—यह वात लोगो मे प्रसिद्ध न करे।" भिक्षु ने कहा "मै नही करूगा।"[4]

भिक्षु ने मुनि वेणीरामजी से सारी घटना वताते हुए कहा : "हेम ने यावज्जीवन शीलव्रत ग्रहण किया है।" मुनि वेणीरामजी वहुत ही हर्पित हुए। भिक्षु की वहुत प्रशसा करते हुए कहा · "आपने गजव का काम किया, कि हेमराजजी को शील ग्रहण करा दिया। उत्तम काम हुआ है। इस दिशा मे प्रयास तो मैने भी वहुत किया, पर सफलता नही मिली।" भिक्षु वोले · "हेम ने वात लोगो मे प्रचारित करने की ना कही है।" मुनि वेणीराम वोले "आपको लोगो मे प्रचारित करने की मनाही की है, तो आप न कहे।" ऐसा कह उन्होंने यह वात भाई-वहिनो मे प्रसिद्ध कर दी। चेलावास के भाई यह सुनकर हर्पित हुए। वोले "हम लोग तो पहले से ही जानते थे कि हेमराजजी दीक्षा लेगे।"

वेणीरामजी नै कही, सगली वात विख्यात।
हेम शीलव्रत आदरचो, पिण कह्यो प्रसिद्ध न करणी वात॥
वैणीरामजी साभली, हरख्या घणा मन माय।
घणा प्रसस्या सामनै, आप कीधी वात अथाय॥

---

१. जय (हे० न०), २।१-४०
२. वही, ३।दो० १,५
३. वही, ३।दो० २,३
४. वही, ३।दो०४

शील अदरायो हेम नैं, कीधो उत्तम काम।
म्है तो खप कीधी घणी, पिण टीप न लागी ताम॥
कह्यो बात प्रसिद्ध करणी नही, तो आप प्रगट म करो बात।
इम कही नै वैणीरामजी, प्रसिध करी विख्यात॥
बाई भाई चेलावासना, सुणनैं हरषित थाय।
म्है तो पहिलाई जाणता, हेम दिख्या नेमी ताय॥[1]

३. प्रव्रज्या

इसके बाद भिक्षु सिरियारी पधार गये। हेमराजजी के बनोले निकलने लगे। दीक्षा के लिए माघ सुदी १३ शनिवार का दिन नियत हुआ। आपके भतीजे[2] ने रावले मे पुकार की "भीखनजी हेमराज को जबरदस्ती दीक्षा देने जा रहे है।" ठकुरानी ने भिक्षु को गाव में न रहने की आज्ञा दी। गाव के पच आपको साथ लेकर ठकुरानी के पास पहुंचे। आपका रूप-रग बड़ा आकर्षक था। ठकुरानी ने आप से कहा—"मैं अभी तुम्हारा विवाह कराये देती हूं।" हेमराजजी बोले—"विवाह कराने का इतना शौक हो तो गाव मे कुंवारे तो और भी बहुत है। मैं विवाह करने का त्याग कर चुका हू।" इतना कह आप वहा से उठकर चले आये। आपकी आन्तरिक वैराग्य-भावना को देखकर ठकुरानी ने भिक्षु पर लगाए हुए आदेश को रद्द करवा दिया।[3]

वैरागी बनडो वण्यो गुणधारी रे, हेम हर्ष हुसीयार कै हेम सुखकारी रे।
महा सुदी तेरस दिन भलो गुणधारी रे, दिख्या रो महुर्त्त सार कै सुखकारी रे॥
बाबा रो बेटो भाई रावले गुणधारी रे, जाय पुकार्यो ताहि कै हेम सुखकारी रे।
ठुकराणी भीखू नै कहवावियो गुणधारी रे, मत रहिजो नगरी माहि कै हेम सुखकारी रे॥
गाम रा पच भेला थई गुणधारी रे, हेम भणी लेई साथ कै हेम सुखकारी रे।
ठुकराणी पासै गया गुणधारी रे, कही दिख्या री बात हेम सुखकारी रे॥
वस्त्र गेहणा सहित देखी हेम नै आज आनदा रे, बोली ठकुराणी वाय के आज आनंदा रे।
म्हारा दोलतसिघ री सूस छै आज आनदा रे, यू को यू देसू परणाय कै आज आनदा रे॥
जब हेम जाब दीधा इसा आज आनदा रे, थारै परणावा रो पेम कै आज आनदा रे।
(तो) गाम माहि कुवारा घणा आज आनदा रे, म्हारै तो परणवा रो नेम कै आज आनदा रे॥
इम कही हेम पाछा वल्या आज आनदा रे, आय बैठा स्वाम पास कै आज आनदा रे।
गाम मे रहिवा री आगन्या आज आनंदा रे, पच लेई आया तास कै आज आनदा रे॥[4]

आपको माघ शुक्ला पूर्णिमा के बाद छह ही काय के जीवों के हनन का त्याग था। यह त्याग आपने वैराग्यपूर्वक बहुत पहले कर लिया था। पारिवारिक जनों ने विचलित करने के

१. जय (हे० न०) ३।दो ७-११
२. पिता के बडे भाई के पुत्र
३, जय (भि०-दृ०), दृ० १७९
४. जय (हे० न०), ३।३-८

लिए आपसे कहा—"फाल्गुन कृष्णा द्वितीया को वहिन का विवाह सम्पन्न कर वाद मे सयम ग्रहण करना।" आपने ऐसा करने से पहले तो इकार कर दिया, पर अन्त मे उनके दवाव से उनकी वात स्वीकार कर ली। वाद मे आप भिक्षु के पास पहुचे और सारा वृत्तात कह सुनाया। भिक्षु ने उपालभ देते हुए आपको समझाया "अरे भोले, तू अनर्थ करने जा रहा है। पारिवारिक जन व्रत भग कराने के लिए तुम्हे फदे मे डाल रहे है। एक दिन के लिए भी प्रतिज्ञा से से इधर-उधर नही होना चाहिए।"

आप सारी वात समझ गए और चेत गए। वापस आकर पारिवारिक जनो से कहा—"मै आप लोगो का कहना नही मान सकता। आप लोग मेरा व्रत भग करवाना चाहते है। मैं तो दीक्षा के लिए नियत माघ सुदी तेरस के दिन का उल्लघन नही करूगा।" यह कह फाल्गुन वदि २ को वहिन का विवाह कर दीक्षा लूगा, ऐसा लिखकर दिया था, वह रुक्का फाड डाला। लोग हस पडे। कहने लगे "इसे भीखणजी ने भरमा दिया है।"[१]

माघ शुक्ल पूनम पछै आज आनदा रे, छ काय हणवा रा त्याग कै आज आनदा रे।
हेम ने नेम पहिली हुता आज आनदा रे, कीधा आण वैराग कै आज आनदा रे॥
न्यातीला कहै वहिन परणाय नै आज आनदा रे, पछै लीजो सजम भार कै आज आनदा रे।
सावो फागण वदी वीज रो आज आनंदा रे, पिण हेम न मानै लिगार कै आज आनंदा रे॥
पाछै न्यातीला हठ कीधो घणो आज आनदा रे, जव हेम कीधो अंगीकार कै आज आनदा रे।
पूज भणी कह्यो आय नै आज आनदा रे, स्वाम निषेध्यो तिवार कै आज आनदा रे॥
रे भोला अनर्थ करे आज आनदा रे, दिवस न लघणो एक कै आज आनदा रे।
न्यातीला गोतीला अछै आज आनदा रे, ए फद माहि न्हाखै विशेष कै आज आनंदा रे॥
हेम समझ पाछा आय नै गुणधारी रे, कहै न्यातीला नै एम हेम सुखकारी रे।
हूं कह्यो न मानू केहनो गुणधारी रे, थे तो भगावो नेम हेम सुखकारी रे॥
तेरस दिन उलघू नही आज आनदा रे, थे क्यानै करो वकवाय कै आज आनंदा रे।
लोक हसी नै इम कहे आज आनदा रे, यानै भीखनजी दिया भरमाय कै आज आनदा रे॥[२]

इक्कीस दिन तक वनौले जीमते रहे। दीक्षा के अवसर पर हजारो लोग इकट्ठे हुए। आपकी दीक्षा गाव के वाहर विशाल वट-वृक्ष की छाया मे हुई। भिक्षु ने स्वमुख से महाव्रत उच्चारित कर स्वहस्त से आपको दीक्षा दी। सवत् १८५३ की माघ शुक्ला १३ वृहस्पतिवार का दिन था।

पुष्य नक्षत्र और आयुष्मान योग मे आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई।[३]

इकवीस दिवस रै आसरे आज आनदा रे, जीम्या वनोला जाण कै आज आनदा रे।
दिख्या महोच्छव दीपतो आज आनदा रे, मडिया वहु मडाण कै आज आनदा रे॥
हजारा लोक भेला हुवा आज आनदा रे, वड तलै दिख्या विचार कै आज आनदा रे।
स्वाम भीखू स्व हाथ सू आज आनदा रे, स्वमुख सजम भार कै आज आनंदा रे॥

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १७९
२. जय (हे०न०), ३।६-१४
३ जय (भि० दृ०), दृ० १७९

सवत अठारै तेपनै आज आनदा रे, माह सुदि तेरस जाण कै आज आनदा रे।
वृहस्पतिवार वखाणियै आज आनंदा रे, पुष्य नक्षत्र वलवाण कै आज आनदा रे॥
आयुष्मन जोग आयो भलो आज आनंदा रे, हरप दिख्या मुनि हेम कै आज आनंदा रे।
जय-जय-जय जन ऊचरे आज आनदा रे, पाम्या अधिको पेम के आज आनंदा रे॥[1]

दीक्षा के समय आपकी आयु २८ वर्ष की थी। आप दीक्षित हुए, उस समय गण मे भिक्षु, भारमलजी, सुखरामजी, अखैरामजी, रामजी, नेनसीजी, रामजी, नानजी, वेणीरामजी, वर्द्धमानजी, सयारामजी और गुलजी ये १२ साधु थे। आप तेरहवें हुए। उसके वाद साधुओं की संख्या कभी घटी नही। आपकी दीक्षा शासन के लिए वडी वृद्धिकर हुई।

वारै सत आगै हुता आज आनदा रे, स्वाम भीखू रै गोय कै आज आनदा रे।
हेम थया सत तेरमा आज आनदा रे, या पाछै न घटियो कोय कै आज आनंदा रे॥
वंकचूलिया मे वारता आज आनंदा रे, चतुरविध सघनी सोय कै आज आनंदा रे।
समत अठारै तेपना पछै आज आनदा रे, उदै-उदै पूजा अति होय के आज आनंदा रे॥
तेपनै वात आय मिली आज आनदा रे, हेम दिख्या वृधकार कै आज आनदा रे।
चरण समापी हेम नै आज आनदा रे, स्वामीजी कियो विहार कै आज आनदा रे॥[2]

४. शिष्य और मुनि के रूप में

आप वडे मेधावी और कुशाग्रवुद्धि थे। शिष्य के रूप मे वडे विनीत, विवेकवान और सुखकारक थे। गुरु-आज्ञा का अखडित रूप मे पालन करते थे। आप इगित और आकार को समझने वाले साधु थे। वुद्धि गम्भीर और प्रत्युत्पन्न थी। अध्ययन और अनुशीलन मे दत्तचित्त थे। साधु के रूप मे आप एक तपोपूत मनीषी संत थे। आपकी दृष्टि सदा शुद्ध आचार पालन पर रही। हृदय के निर्मल और सरल थे। महाव्रत समिति और गुप्तियो के पालन मे वड़े सावधान थे। जयाचार्य ने इस दिशा मे आपके गुणो का निम्न रूप मे चित्रण किया है :

हेम मुनिसर मोटको आ०[3], हेम वडो सुवनीत कै आ०।
विनै विवेक विचार मे आ०, जाणै रूड़ी रीत कै आ०॥
हेम हीयारा निरमला आ०, हेम सुगुर सुखदाय कै आ०।
हेम निपुण वुध आगलो आ०, हेम सरल मुनिराय कै आ०॥
हेम खिम्या गुण सोभतो आ०, गिरवो हेम गभीर कै आ०।
हेम दिसावान दीपतो आ०, हेम मेरु जिम धीर कै आ०॥
हेम सुमत ना सागरू आ०, हेम गुप्त गुण पूर कै आ०।
हेम वैराग मे झूल रह्यो आ०, सुगणो हेम सनूर कै आ०॥
हेम इर्या धुन ओपती आ०, अमृत हेम रा वैण कै आ०।
हेम गवेपणा अति घणी आ०, निरमला हेम रा नैण कै आ०॥

---

१. जय (हे० न०), ३।१५-१८
२. वही, ३।२४-२५
३. आज आनदा रे।

वस्त्र पात्र लेवै मेलवै आ०, हेम जयणा अधिकार कै आ०।
हेम पचमी सुमति मे आ०, सावधान सुखकार कै आ०॥
मन वचन काया गोपवै आ०, हेम अधिक हुसीयार कै आ०।
हेम तणा गुण देखनै आ०, पांमै जन अति प्यार कै आ०॥
हेम दया रो सागरू आ०, हेम सतवादी सूर कै आ०।
आग्या अखड अराधवा आ०, हेम गुणा भरपूर कै आ०॥
हेम शील माहि रम रह्यो आ०, वारू हेम नव वाड कै आ०।
हेम निर्ममतपणा तणो आ०, स्यु गुण कहियै सार क आ०॥
साताकारी स्वाम नै गुणधारी रे, हेम घणो हुसीयार कै आ०।
हेम जाणै अग चेष्टा गुणधारी रे, भीखू सू अति प्यार कै आ०॥
ऊंडी वुद्धि उतपात री गुणधारी रे, चरचा करवा चूप कै आ०।
सूत्र सिद्धंत सीखे मुनि गुणधारी रे, आच्छी वुधि अनूप कै आ०॥[1]

आपके सवध मे श्रावक पनजी ने लिखा है

महाव्रत पाले स्वामी मोटका, दीपावे श्री जिणजी रो धर्म रे।
ससार ना काम सामी त्यागिया, तोडे छै आठू ही कर्म रे॥
वारे सामी तप तपे, सजम सतरे प्रकार रे।
वाईस परिसा सांमी जीतिया, शील पाले नव वार रे॥
दोप वयालीस टालता, टाले वावन अणाचार रे।
सताइस गुण करी शोभता, असल पाले छै आचार रे॥
निरलोभी निरलालची, ससार ना त्यागी पिछाण रे।
प्रीत करे सामी मोक्ष सूं, एहवा छै चतुर सुजाण रे॥
पूठ दीधी छै ससार ने, मोक्ष सू सामी विचार रे।
सचित त्यागी सामी सर्वथा, अचित रा भोगणहार रे॥
सर्व स्वाद सामी त्यागिया, अधिक वैरागी छै ताम रे।
आण दियो सामी ले नही, नेहतिया न जावे तिण ठाम रे॥
कनक कामणी त्यागी खरी, तिण सू न करे परचो न प्यार रे।
पांच इन्द्री सामी वस करे, संजम पाले खड्गधार रे॥
एहवा गुण कर शोभता, असल साधु री छै चाल रे।
नर-नारी समझावता, रहै छै धर्म मे लाल रे॥
त्यारी वाणी छै अमृत सारखी, सकर दूध नी वात रे।
पिया थका तृपत हुवे, ज्यू भविक मुण मगन हुय जात रे॥
मन वचन काया कस करी, नही करे राग ने रीस रे।
जिण मारग जमावे सामी जुगत सू, ज्यू आगे हुता जगदीश रे॥[2]

---

१. जय (हे० न०) ३।२६, ३५, ३७। प्राय ऐसा ही चित्रण अन्य शब्द और छन्द मे जय (भि० ज० र०) ४८।४-११, १५-१६ मे पाया जाता है।
२ पनजी (जीवनजी गु० व०), २।१-८, ११, १२

५. सिंघाड़पति

दीक्षा के बाद आप निरन्तर चार वर्षों से अधिक समय तक भिक्षु के साथ रहे। गुरु के प्रति अनन्य भक्ति-भाव से सम्पन्न एक अन्तेवासी शिष्य के रूप में आपने भिक्षु की सदैव बड़ी तत्परता के साथ सेवा की तथा उनकी कठोर मधुर शिक्षाओं का अमृत की तरह पान किया। आपका व्यक्तित्व कठोर साधना से अत्यन्त दीप्त होकर प्रस्फुटित हुआ।

आपने चित्त की चंचलता का परिहार किया। उत्तम गुणों में रमते रहते। दोषों से डरते। शांत चित्त से आत्म-साधना करते। आपका शील निर्मल निष्कलंक था। चित्त निर्मल ध्यान में रहता। जैसे-जैसे आप सूत्र-सिद्धान्तों का अध्ययन करते गए, वैसे-वैसे आपके उत्तर गुण विकास को प्राप्त होते गए। आप तप दीप्त हो गए। आपके गुणों से मुग्ध जयाचार्य की भाव-विभोर लेखनी काव्यत्व की रसधारा में प्रवाहित हो चली। जयाचार्य ने लिखा है :

तन नी चचलता तजै, रजै उत्तम गुण स्थांन।
लजै दोष थी शांत चित, भजै अमर निरवांण॥
अमल चरण वर करण धर, निमल सील निकलंक।
विमल ध्यांन लहलीन चित, कमल जेम निरपंक॥
पढत-पढत जिम समय रस, चढत-चढत परिणांम।
उतर-उतर गुण वढत ही, मुनि हेम गुण-धाम॥
तपत ताप संवेग कर, खपत पाप संताप।
जपत जाप ध्यानेश्वरू, थिर चित आतम थाप॥[1]

आपके उक्त गुणों से प्रभावित होकर भिक्षु ने आपका पृथक् सिंघाड़ा कर दिया।

उत्पत्तिया बुद्धि आगला, स्वामी हेम सखर सुविनीत।
प्रवल बुद्धि पुन्य पोरसा, कांइ पूर्ण पूज सूं प्रीत॥
परम विनयवंत परखिया, वारू बुद्धि भारी सुविचार।
हद कियो सिंघाड़ो हेम नो, भारी ज्ञानी गुणा रा भंडार॥[2]

आप सं० १८५८ के शेष काल से सं० १९०४ जेठ सुदी २ तक सिंघाड़पति के रूप में विचरते रहे। इस बीच आपने बहुत लोकोपकार किया। जयाचार्य ने लिखा है :

हेमजी स्वामी रूडी रीत सू रे, ते सतगुरु ना सुवनीत।
घणां जीवां ने समझावता, ते चालै साधां री रीत॥
ते वखाण वाणी देवे आछी तरै रे, समझावे नर-नार।
जिन-मार्ग दीपावता रे, त्यां ने वांधा हुवै खेंवो पार॥
ते ग्राम-नगरां विचरता रे, करै घणो उपगार रे।
विने नरमाइ करै त्यां कनै रे, सूत्र री रहस्य धारे रे॥
कितरा इक नै दीक्षा दीयै रे, देवे श्रावक ना व्रत वार।
किणनेंइ सुलभ वोधी करे, ऐसा हेम स्वामी अणगार॥[3]

---

१. जय (हे० न०), ४।दो० ३-६
२ जय (भि० ज० र०), ४८।४-५
३. संत गुणमाला, १।१३-१६ तथा देखें संत गुण वर्णन, १।२, ५-७ एवं वही, ३।२

६. चातुर्मास

दीक्षा के वाद मुनि हेमराजजी चार चातुर्मास मे—स० १८५४ के खैरवा, स० १८५५ के पाली, सं० १८५६ के श्रीजीद्वार और स० १८५७ के पुर चातुर्मास मे—आचार्य भिक्षु के साथ रहे।[1]

इन वर्षो मे दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि आगमो का अध्ययन कर उन्हे कण्ठस्थ किया। भिक्षु से वहुविध ज्ञानार्जन किया। अनेक शिक्षाए धारण की। व्याख्यान सीखे। व्याख्यान देने मे कुशलता प्राप्त की। आपका व्यक्तित्व हर तरह से निखार को प्राप्त हुआ। जयाचार्य ने लिखा है—

"सीख कला गुणधारी हो, हुवा उजागर भारी हो" (हे० न० ४।५)।

भिक्षु की आज्ञा से आपने पाचवा सं० १८५८ का चातुर्मास पुर मे सत वेणीरामजी(२८) के साथ किया।

इस तरह आपके पाच चातुर्मास वडे सतो के साथ हुए।[2]

आपके आत्मिक गुण, विनयशील प्रकृति, प्रत्युत्पन्न और तीक्ष्ण वुद्धि, कठकला तथा अन्य गुणो को देखकर स० १८५८ के शेप काल मे भिक्षु ने आपको सिघाडपति कर दिया।[3]

इसके वाद ४६[4] चातुर्मास आपने सिंघाडपति के रूप मे किए।

आपके चातुर्मासो का मुख्य वर्णन जय (हे० न०) मे उपलब्ध है। प्रासगिक रूप से फुटकर वर्णन कई कृतियो मे मिलता है। जय (हे० न०) के वर्णन मे साधु-सख्या सर्वत्र उपलब्ध नही होती। इसी तरह साथ के सभी साधुओ के नाम भी नही मिलते।

संवत् क्रम से चातुर्मास :

नीचे सवत् क्रम से चातुर्मासो की तालिका प्रस्तुत की जा रही है। उक्त अशो की यथा-शक्य पूर्ति अन्य स्रोत एवं अनुमान के आधार पर करने का प्रयास किया गया है।

क्रमांक	संवत्	स्थान	उल्लिखित साधु संख्या	प्राप्त नाम
१	१८५४	खैरवा	४	१ आचार्य भिक्षु (१) २ मुनि भारमलजी (७) ३ मुनि खेतसीजी (२२) ४ मुनि हेमराजजी (३६)[5]

---

१. जय (हे० न०), ४।१-५

२ वही, ४।६

३. (क) जय (हे० न०),४। ७

गुण वुध कठकला भली, भीखू देखी भारी हो।
कियो सिंघाडो हेम नो जाण्या महा उपगारी हो॥
आप्या सत उदारी हो॥

(ख) जय (भि० ज० र०), ४८।४-५

४. जय (हे० न०) मे चातुर्मास ४५ वताए गए है "सर्व चौमासा पैताली" (६।३५)। पर कुल ५१ चातुर्मासो मे से प्रथम पाच (चार भिक्षु के साथ के और एक मुनि वेणीरामजी के साथ का) को वाद देने पर ४६ चातुर्मास होते है।

५. जय (हे० न०), ४।१

२.	१८५५ पाली	४+१	१. आचार्य भिक्षु (१)
			२. मुनि भारमलजी (७)
			३. मुनि खेतसीजी (२२)
			४. मुनि हेमराजजी (३६)
			५. मुनि उदयरामजी (३७)[1]
३.	१८५६ श्रीजीद्वार	५	१ से ५ पूर्ववत्[2]
४.	१८५७ पुर	५	१ से ५ पूर्ववत्[3]
५.	१८५८ पुर		१. मुनि मुखरामजी (६)
			२. मुनि नानजी (२६)
			३. मुनि वेणीरामजी (२८)[4]
			४. मुनि हेमराजजी (३६)
			५. मुनि ताराचन्दजी (४२)
			५. मुनि डूगरसीजी (४३)[5]

---

१. (क) जय (हे० न०), ४।२
   (ख) जय (भि० ज० र०), ३९।दो० १-२

२. जय (हे० न०), ४।३-४

३. वही, ४।५

४. वही, ४।६

५. स० १८५८ के पुर चातुर्मास में मुनि हेमराजजी आदि कितने साधु और उनके नाम क्या थे, इसका कही भी उल्लेख नही मिलता। मुनि वेणीरामजी विषयक प्राचीन चौढालिया से पता चलता है कि सं० १८५७ मे मुनि मुखजी (६), नानजी (२६) और वेणीरामजी (२८) का एक सिंघाड़ा था।

मुखरामजी स्वामी नानजी वेणीरामजी रे तीनू ई विचरता ताहि।
घणा वर्षा लग जाणज्यों, त्यांरे हेत घणो माहो मांहि॥ (२।५)

स० १८५७ के शेषकाल मे मुनि वेणीरामजी द्वारा मुनि ताराचन्दजी (४२) एवं मुनि डूगरसीजी (४३) की दीक्षा सम्पन्न हुई थी और दोनो कई वर्षो तक उनके साथ रहे।

ताराचन्दजी डुगरसी धर्म पासी, गगापुर नो वासी।
त्यां सजम लियो छे, वेणीरामजी स्वामी कनें॥
बाप नें बेटा वैरागी, दोनू छती ऋधनों त्यागी।
चेला हुवा छे भिखू ऋप ना भल भाव स्यूं॥
दोनूं वेणीरामजी कने साथे दीष्या लीधी, त्यां मणाय ने पका कीधा।
त्यांरे हीज साथे हो विचर्‌या छे, भले भाव स्यू॥ (३।१-३)

इससे फलित होता है कि सं० १८५८ के पुर चातुर्मास मे मुनि मुखजी, नानजी, वेणीरामजी, ताराचन्दजी, डूंगरसीजी—ये पाच तो थे ही। मुनि हेमराजजी का उक्त वर्ष का चातुर्मास मुनि वेणीरामजी के साथ था। अत. उक्त चातुर्मास की संत-संख्या ६ सिद्ध होती है और उनके नाम उपर्युक्त अनुसार प्रतीत होते है।

६.	१८५६	सिरियारी[1]		१ मुनि हेमराजजी (३६) २ मुनि रामजी (२३)[2] ३. मुनि जोगीदासजी (४५)[3]	
७.	१२६०	पिसांगण[4]		१ मुनि हेमराजजी (३६) २ मुनि भोपजी (४६)[5]	
८	१८६१	पाली[6]			
६.	१८६२	जेतारण[7]	४	१. मुनि सुखजी (३५) २ मुनि हेमराजजी (३६) ३. मुनि भागचन्दजी (४८) ४ मुनि जीवणजी (५१)	इसी चातुर्मास मे सथारापूर्वक स्वर्गवास
१०.	१८६३	कटालिया[8]		१ मुनि सुखजी (३५) २. मुनि भागचन्दजी (४८)[9]	

---

१. जय (हे० न०), ४।८

२ स० १८५६ मे चातुर्मास समाप्ति के वाद आपने भिक्षु के दर्शन किए, तब मुनि रामजी (२३) आपके साथ थे। दोनो ने १८५६ माघ सुदी ७ के लिखित मे हस्ताक्षर किए थे।

३. मुनि हेमराजजी का स० १८५६ का चातुर्मास सिरियारी मे था। मुनि जोगीदास का स्वर्गवास स० १८५६ के शेषकाल मे पीसागण मे मुनि हेमराजजी के समीप हुआ था। इससे फलित होता है कि १८५६ के चातुर्मास मे वे मुनि हेमराजजी के साथ थे और चातुर्मास समाप्त होने के बाद विहार कर जब मुनि हेमराजजी पीसागण पधारे तब वही उनका (मुनि जोगीदासजी का) देहान्त हुआ।

४. जय (हे० न०), ४।८

५. (क) जय (शा० वि०), १।५५, ५६

भोप गुणसठे चरणवर, छासठे कृत सथार।
साठै पीसागण मझे, हेम ऋषि पे सच।

(ख) भोप गुण वर्णन, ढाल गा० २

६. जय (हे० न०), ४।६

७. (क) जय (हे०न०), ४।१०

(ख) जी० गु० ढा०, ३।११, ४।दो० १

बडा सत सुखरामजी हेमराजजी बुधवत।
भागचन्दजी मे गुण घणा, जीवणजी तपसी सत ॥

(ग) जय (शा० वि०), ३।२ एव वार्तिक

८ जय (हे० न०) ४।१२

६. स० १८६२ एव १८६४ के चातुर्मास मे मुनि सुखजी (३५) और भागचन्दजी (४८) साथ देखे जाते है। वहुत सभव है कि स० १८६३ के चातुर्मास मे भी वे साथ रहे।

११.	१८६४ देवगढ	४	१. मुनि हेमराजजी (३६)	
			२. मुनि सुखजी (३५)	चातुर्मास के बाद स्वर्गस्थ हो गये
			३. मुनि भागचन्दजी (४८)	
			४. मुनि दीपजी (५२)[1]	
१२.	१८६५ सिरियारी[2]		१. मुनि हेमराजजी (३६)	
			२. मुनि भोपजी (४९)[3]	
१३.	१८६६ पाली[4]	७[5]	१. मुनि हेमराजजी (३६)	
			२. मुनि सामजी (२१)	
			३. मुनि रामजी (२३)[6]	
			४. मुनि भागचन्दजी (४८)	
			५ मुनि भोपजी (४९)	इसी चातुर्मास मे संथारा पूर्वक स्वर्गस्थ[7]
			६. मुनि दीपजी (५२)	
			७. मुनि जयचन्दलालजी (५५)	आसाढ १८६५ मे दीक्षित और चातुर्मास मे पृथक्[8]
			८. मुनि पीथलजी (५६)	इसी चातुर्मास मे दीक्षित
			९. मुनि सावलजी (५७)	इसी चातुर्मास मे दीक्षित और बहिर्भूत[9]

---

१. (क) जय (हे० न०), ४।१२-१३
(ख) जय (शा० वि०) १।४१ वार्तिक

२. जय (हे० न०) ४।१४

३. (क) जय (शा० वि०), १।६२
(ख) भो० गु० ढाल, गाथा १०

४. जय (हे० न०), ४।१४

५. जय(हे० दृ०), ३४। हे० दृ० ३४ के अनुसार कटालिया के जयचन्दलालजी (५५) की दीक्षा सं० १८६५ के आषाढ़ माह मे हुई थी, इसे मानने पर चातुर्मास आरभ मे मुनि जयचन्दलालजी सहित ७ सत थे।

६. सा० रा० गु०, १।९, १०
घणा वर्षां लग विचरीया रे, दोनू भायारी पूरी परतीत रे। सो०।
गामां-नगरा वीचरवा थका रे, पाली शहर चौमासो कीयो आण रे। सो०।
तिहा महीमा घणी जिन धर्म री रे लाल, त्यारै साथे छै साध सुजाण रे॥ सो०॥

७. (क) जय (हे० न०), ४।१४; १७, १८, २०, २१

१४. १८६७ खैरवा[1]

१. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि नामजी (२१)
३ मुनि रामजी (२३)
४. मुनि भागचन्दजी (४८)
५. मुनि जवानजी (५०)[2]
६. मुनि पीथलजी (५६)[3]

(ख) भो० गु०, १।१०,१८

(ग) जय (शा० वि०), १।६४-७०

८. (क) पी० गु० ढाल, १। दो० २

वश ओस हरि जात वर, वाजोली वसीवान।
संजम पाली शहर मे, छासठे साल सुजान॥

(ख) जय (हे० न०), ४।१४,१७

९ जय (शा० वि०), ३। सो० ८

सावल दीक्षा लीध रे, पाली शहरे छासठै।
आई त्रिया प्रसिद्ध रे, हाकिम भ्रष्ट करावियो॥

१. जय (हे० न०), ४।२२

२ मुनि जवानजी स० १८६१ मे आचार्य भारमलजी के हाथ मे दीक्षित हुए थे (ज० गु०, २।२)। स० १८७१ मे सिंघाड़पति कर दिये गये :

एकोतरा रै वर्ष विचारो रे, पूज कीधो है न्यारो सिंघाड़ो रे। (वही, २।५)

स० १८७२ का आपका चातुर्मास पृथक् रूप से हुआ :

भारीमाल ऋप हेमनी गु०, सेव करी वहुवास। स०।
सवत् अठारे बोहित्तरे गु०, न्यारो करायो चौमास॥ स०॥ (वही, १।१२)

स० १८६२ से स० १८७१ तक १० चातुर्मास होते है। इन चातुर्मासो म से अन्तिम पाच अर्थात् १८३७ से १८७१ तक के चातुर्मास आपने मुनि हेमराजजी के साथ किए :

भारीमालनी सेवा कीधी रे, वहु वर्ष आतम दम लीधी रे।
पाया ज्ञान तणी वहु ऋधी, हरख धरजवान ऋपि नित वदो रे॥
पछै हेम नी सेवा मे आया रे, पच वर्ष नाई सुख पाया रे।
थया वहुश्रुत अधिक सवाया, हरख धरी जवान ऋपि वंदो रे॥ (वही २।३-४)

३. स० १८६६ मे मुनि हेमराजजी का पाली चातुर्मास था। उनके साथ नामजी (२१) रामजी (२३), भागचन्दजी (४८), भोपजी (४९) और दीपजी (५२)—ये पाच सत थे। मुनि हेमराजजी अस्वस्थ हो गये, जिससे चातुर्मास के बाद विहार नही हो सका। आचार्य भारीमालजी ने मुनि भगजी (४७) और जवानजी (५०) को उनके पास भेजा। मुनि जवानजी उनके पास रह गये। मुनि भगजी और दीपजी आचार्यश्री की सेवा मे रहे। इसके बाद मुनि हेमराजजी द्वारा उक्त वर्ष के शेषकाल मे आचार्यश्री के दर्शन करने का उल्लेख नही मिलता। इससे फलित होता है कि १८६७ के चातुर्मास मे उनके और वे ही सत रहे, जितने १८६६ के शेषकाल मे थे अर्थात् उपर्युक्त छः सत रहे।

१५	१८६८	बालोतरा[1]		१. मुनि हेमराजजी (३६)	
				२. मुनि जवानजी बड़ा (५०)	
१६	१८६९	किसनगढ़[2]	४[3]	१. मुनि हेमराजजी (३६)	
				२. मुनि जवानजी बड़ा (५०)	
१७	१८७०	इन्द्रगढ़[4]	६	१. मुनि हेमराजजी (३६)	
				२. मुनि रामजी (२३)	संथारापूर्वक स्वर्गस्थ[5]
				३. मुनि जवानजी बड़ा (५०)	
				४. मुनि पीथलजी (५६)	
				५. मुनि सरूपचंदजी (६२)	
				६. मुनि जीतमलजी (६४)[6]	
१८	१८७१	पाली	६	१. मुनि हेमराजजी (३६)	
				२. मुनि नानजी (२६)	
				३. मुनि जवानजी बड़ा (५०)	
				४. मुनि पीथलजी (५६)	
				५. मुनि भीमजी (६३)	
				६. मुनि जीतमलजी (६४)[7]	
१९	१८७२	कंटालिया	६	१. मुनि हेमराजजी (३६)	
				२. मुनि पीथलजी (५६)	
				३. मुनि संतोजी (५९)	
				४. मुनि सरूपचदजी (६२)	

---

१. जय (हे० न०), ४।२२

२. वही, ४।२३

३. जय (स० न०), २।१०

हेम ऋषि चहूँ सत सू, आषाढ़ छौहड़ै आय।
उपकारी गुण आगला, दीयो चौमासो ठाय ॥

४. (क) मघवा (ज० सु०), ५।१,६५।१
(ख) जय (स० न०), ५।दो०२
(ग) जय (स० वि०), ३।दो०२
(घ) सा० रा० ढा०, २।१

५. जय (हे० न०), ५।१

६. सा० रा० ढा०, २।२१

७. (क) जय (हे० न०), ५।३
(ख) मघवा (ज० सु०), ५।८-९
(ग) जय (स० न०), ५।६
(घ) जय (स० वि०), ३।दो०२

				५. मुनि भीमजी (६३) ६ मुनि जीतमलजी (६४)[1]
२०	१८७३	सिरियारी	६	१ मुनि हेमराजजी (३६) २. मुनि पीथलजी (५६) ३. मुनि सरूपचदजी (६२) ४ मुनि भीमजी (६३) ५. मुनि जीतमलजी (६४) ६ मुनि लघु पीथलजी (७२)[2]
२१	१८७४	गोगुन्दा	९	१. मुनि हेमराजजी (३६) २. मुनि जोधराजजी (४६) ३. मुनि मोजीरामजी (५४) ४. मुनि पीथलजी (५६) ५ मुनि सरूपचदजी (६२) ६ मुनि भीमजी (६३) ७. मुनि जीतमलजी (६४) ८ मुनि लघु पीथलजी (७२)[3]

१ (क) जय (हे० न०), ५।५
(ख) मघवा (ज० सु०), ५।१२-१३
(ग) जय (स० न०), ५।१०-११
(घ) जय (स० वि०) ३।दो०५,७
तृतीय चौमासो वधू त्रिहु, हेम भणी सूपेह ।
बोहितरा सु लेकरी, छीहतरा लग एम ।
त्रिहु बधव भेला रह्या, हेम कनै धर प्रेम ।।

२. (क) जय (हे० न०), ५।६
(ख) मघवा (ज० सु०), ५।१४
(ग) जय (स० न०), ५।११
(घ) जय (स० वि०), ३।दो०५
स० १८७३ सिरियारी चातुर्मास के आरभ मे छ. साधु थे। शेषकाल मे मिगसर वदि छठ के दिन दो दीक्षाए हुई—एक रतनजी (७४) और दूसरी अमीचदजी (७५) की। इस तरह वर्ष के अत मे साधु-सख्या ८ हो गई।

३. (क) जय (हे० न०), ५।२४-२५
(ख) जय (मो० चौ०), ४।१
सवत् अठारे चिमन्तरे, हेमजीत चउमास ।
सैहर गोगुन्दे नव मुनि, अधिको धर्म उजास ।।
(ग) जय (स० न०), ५।१२

२२	१८७५	पाली		१ मुनि हेमराजजी (३६)
				२. मुनि पीथलजी (५६)
				३. मुनि सरूपचदजी (६२)
				४. मुनि भीमजी (६३)
				५. मुनि जीतमलजी (६४)
				६. मुनि रूपचदजी (६६)
				७. मुनि लघु पीथलजी (७२)[1]
२३.	१८७६	देवगढ	६	१ मुनि हेमराजजी (३६)
				२. मुनि पीथलजी (५६)
				३. मुनि सरूपचदजी (६२)
				४. मुनि भीमजी (६३)
				५. मुनि जीतमलजी (६४)[2]
२४.	१८७७	उदयपुर	८[3]	१. मुनि हेमराजजी (३६)

(घ) जय (स० वि०), ३।दो०७
(ङ) मघवा (ज० सु०), ५।१५-१६
(च) जय (शा० वि०), ३।दो०१,२गा०१,२
(छ वही, ३।४

१. (क) जय (हे० न०), ५।२७
(ख) मघवा (ज० सु०), ६।दो०१-३
(ग) जय (स० न०), ५।१३
(घ) जय (क०च०गु०), १।दो०
(ङ) जय (स० वि०), ३।दो०७
(च) जय (शा० वि०), ३।१३
(छ) जय (हे०दृ०), दृ० २०

२ (क) जय (स० न०), ६।दो०१
(ख) मघवा (ज० सु०), ६।७,८,९
(ग) जय (हे० न०), ५।२८,३४
(घ) जय (शा० वि०), ३।१४

३. (क) जय (हे० न०), ५।४६, ४८
(ख) जय (शा० वि), ४।दो० २ गा० ६, १०
(ग) मघवा (ज० सु०), ७।दो० ३ गा० १-२
(घ) जय (हे० गु०), २, ५, ६, ८, ६

पछै आपाढ विद एकम दिनै रे, हेम कीयो उदियापुर माय रे चौमासो।
अष्ट ऋष गुण शोभता हुलासो॥
सुभ चरचा वखाण मे रे हेम साचेला हेम रे सुजाणो।
सुदर इमृत बोलता रे वाचा॥

२ मुनि गुमानजी (६१)
३. मुनि भीमजी (६३)
४. मुनि जीतमलजी (६४)
५ मुनि वर्द्धमानजी (६७)
६ मुनि रतनचन्दजी (८१)[1]
७. मुनि शिवजी (८२)[2]
८. मुनि कर्मचन्दजी (८३)[3]

२५ १८७८ आमेट ९[4] १. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि पीथलजी (५६)
३. मुनि जीतमलजी (६४)
४ मुनि शिवजी (८२)

गजवी साध गुमानजी रे, भीम भगत करी अरु जीत रे सुजाणो।
भारीमाल गुरु पामीया पिछाणो ॥
त्या वृद्ध करी वर्द्धमानजी रे, तपसा करवा तत रे ए भडा।
साढा तीन मास तणा त्या रोपीया रे झडा ॥

१ मुनि रतनचन्दजी, शिवजी और कर्मचन्दजी की दीक्षा स० १८७६ के शेषकाल मे हुई थी। उन्हे साथ ले मुनि हेमराजजो गगापुर पधारे और वहा आचार्य भारीमालजी के दर्शन किए। उसके वाद का वर्णन क० गु० ढाल, गाथा ३३ मे इस प्रकार मिलता है,

भारीमाल तीनू ने तिवारो रे, सूप्या हेम भणी सुविचारो रे।
हेम परम विनीत उदारो रे ॥

इससे मुनि रतनचन्दजी का कम-से-कम प्रथम १८७७ का चातुर्मास मुनि हेमराजजी के साथ उदयपुर मे होना घटित है।

२ शिवजी के इस उदयपुर चातुर्मास से लेकर ८ चातुर्मास मुनि हेमराजजी के साथ हुए थे, ऐसा शि० गु० ढाल गा० २५ से पता चलता है

१८७७ १८७८ १८७९ १८८० १८८१ १८८२
उदेपुर आमेट पीपार मे पाली जैपुर गोघुदे रे।
१८८३ १८८४ १८८५ १८८६ १८८७
आमेटपुर पालीई वालोतरे माधोपुर मे मन सूधै रे ॥

३. मुनि कर्मचन्दजी की दीक्षा स० १८७६ मिगसर मे हुई थी। वाद के चार चातुर्मास मुनि हेमराजजी के साथ हुए थे, ऐसा क० गु० ढाल, गा० ३४ मे उल्लिखित है।

हेम पासे चौमासा च्यारो रे, पचमो छठो अवधारो रे।
ऋषि समीपे सारो रे ॥

४ (क) जय (हे० न०), ५।६१
(ख) मघवा (ज० सु०), ७।१४-१५
(ग) जय (हे० न०), ६।२८
(घ) जय (शा० वि०), ८।दो० ९, गा० १

			५. मुनि कर्मचन्दजी (८३)
			६. मुनि सतीदासजी (८४)[1]
२६.	१८७६ पीपाड	७[2]	१. मुनि हेमराजजी (३६)
			२. मुनि जीतमलजी (६४)
			३. मुनि शिवजी (८२)
			४. मुनि कर्मचन्दजी (८३)
			५. मुनि सतीदासजी (८४)[3]
२७.	१८८० पाली		१. मुनि हेमराजजी (३६)
			२. मुनि जीतमलजी (६४)
			३. मुनि शिवजी (८२)
			४. मुनि सतीदासजी (८४)[4]

---

१. (क) मुनि सतीदासजी की दीक्षा मुनि हेमराजजी के द्वारा स० १८७७ के शेपकाल मे हुई थी। स० १८७८ के इस चातुर्मास से लेकर स० १९०४ के अंतिम चातुर्मास तक मुनि सतीदासजी हेमराजजी के साथ रहे। जय (हे० न०), ५।४९-५२; वही, ६।२८।

सततरा सू चौका विचै, जाणो वर्ष अठावीस भारी।
त्रिकर्ण सेव मे लीन पणै अति, सतीदास सुखकारी ॥

(ख) शाति विलास, १०।दो० ७ :

सप्तवीस जाझो सखर, हेम तणी ऋप शांति।
सेव करी साचै मनै, भाजी मन री भ्राति ॥

(ग) जय (शा० वि०), ४।दो० २ .

सप्तवीस जाझो सखर, हेम तणी ऋप शांति।
सेव करी साचे मनै, भाजी मन री भ्राति ॥

उक्त वर्षो के बीच मे मुनि जीतमलजी का अलग सिंघाडा हो जाने से मुनि जीतमलजी और सतीदासजी चार वर्ष स० १८७८ से १८८१ तक ही साथ रहे :

च्यार वर्ष रे आसरे हेम, जीत, सतीदास।
सत वहु साथे सखर, रह्या चतुर चौमास ॥ जय (शा० वि०), ८।दो० २

२ हेम (भा० सु०), १३।१३

सवत अठारै गुणियासियै, भादरवा विद एकम अरु वार सनेसर जाणो हो लाल।
चतुर्मासो सप्त साधा तणो, भवजीवा उपगार पीपाड सेहर पिछाणो हो लाल ॥

३. (क) जय (हे० न०), ५।६३
(ख) मघवा (ज० सु०), ८।१

४. (क) जय (हे० न०), ५।६३
(ख) मघवा (ज० सु०), ८।३
(ग) जय (शा० वि०), ६।दो० २, ३, ४, ६ तथा ढाल ६।

२८. १८८१ जयपुर ७ १ मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि जीतमलजी (६४)
३. मुनि शिवजी (८२)
४. मुनि सतीदासजी (८४)[1]

२९. १८८२ गोगुदा १. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि शिवजी (८२)
३. मुनि सतीदासजी (८४)[2]

३०. १८८३ आमेट[3] १ मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि शिवजी (८२)
३ मुनि सतीदासजी (८४)
४. मुनि उत्तमचन्दजी (९०)[4]
५ मुनि उदयचन्दजी (९५)[5]

३१. १८८४ पुर[6] ७[7] १ मुनि हेमराजजी (३६)

---

१. (क) जय (हे० न०), ५।६४
(ख) मघवा (ज० सु०), ८।४
(ग) वही, १५।दो० ४
स० १८७० से १८८१ तक के १२ चातुर्मास मे मुनि जीतमलजी मुनि हेमराजजी के सिंघाडे मे रहे। मघवा (ज०सु०), ८।८
ए द्वादश चौमासा हेम पासे, जय किया सुविचार।

२ जय (हे० न०) ५।७३

३ वही, ६।१
मुनि उत्तमचन्दजी १८८२ के शेपकाल मे मुनि हेमराजजी द्वारा दीक्षित हुए थे। वे सं० १८८५ के चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी के साथ देखे जाते है (हे० न०, ६।२)। लगता है, बीच के १८८३ एव १८८४ के चातुर्मास मे भी वे मुनि हेमराजजी के साथ रहे।

४ जय (हे० न०), ६।दो० २

५ मुनि उदयचन्दजी स० १८८२ की पोह सुदी १५ के दिन आचार्य रायचन्दजी के हाथ से दीक्षित हुए थे। स० १८८३ के अपने प्रथम चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी के अंतिम चातुर्मास १९०४ तक वे उनके साथ रहे।
१ जय (हे० न०), ६।दो० २ गा० २, २६, २७, ३१
२. उ० चौ०, १।दो० १०, ११
३ वही, २।२२
उगणीसै वर्स चौका ताइ, हेम ऋपि री सेवा रे।

६. जय (हे० न०) ६।१

७ चौवीस तीर्थंकर स्तवन, ढाल १५।१६ से देखा जाता है कि १८८४ के शेपकाल मे जेठ सुदी २ वृहस्पतिवार के दिन मुनि हेमराजजी लाहवा मे थे। कुल साधु ७ थे। सं० १८८४ का उनका चातुर्मास पुर मे था। तव मे लेकर उक्त तिथि तक मुनि हेमराजजी द्वारा कोई

२. मुनि शिवजी (८२)
३. मुनि सतीदासजी (८४)
४. मुनि उत्तमचन्दजी (९०)
५. मुनि उदयचन्दजी (९५)

३२. १८८५ पाली[1] ७ + १[2] १. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि शिवजी (८२)
३. मुनि सतीदासजी (८४)
४. मुनि उत्तमचन्दजी (९०)
५. मुनि उदयचन्दजी (९५)[3]
६. मुनि मोतीजी (९६)[4] श्रावण मे दीक्षित

३३. १८८६ पीपाड़ १. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि सतीदासजी (८४)
३. मुनि दीपजी (८५)
४. मुनि उदयचन्दजी (९५)[5]

३४. १८८७ श्रीजीद्वार १. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि सतीदासजी (८४)

दीक्षा नही हुई थी। अत सं० १८८४ के चातुर्मास में साधु-सख्या वही थी, जो उक्त तिथि के दिन पायी जाती है अर्थात् ७ थी।

१. जय (हे० न०), ६।२

२ मुनि हेमराजजी रचित चौवीस तीर्थंकर स्तवन के प्रथम ढाल की २०वी गाथा इस प्रकार है

समत अठारेंसे पचीयासीजी, सुख वासी पाली सैहर मैं, आठ साध चउमास।
आसोज विद इग्यारसजी, वार सनेसर जाणीये, प्रभू तवन अभ्यास॥

यहा आसोज मे साधु सख्या ८ वताई गई है। यह मुनि मोतीजी के श्रावण मे दीक्षित होने के वाद की सख्या है। चातुर्मास के आरभ मे ७ साधु थे।

उक्त वात की पुष्टि अन्य तरह से भी होती है। स० १८८४ जेठ सुदी २ के दिन मुनि हेमराजजी ७ साधुओं से लाहवा मे थे (चउवीस तीर्थंकर स्तवन) १५।१६ :

हाजी प्रभू समत अठारै वर्स चोरास्यौं सार जो,
गुण गाया छै धर्मनाथ प्रभू तणा रे लो।
हाजी प्रभू जेठ सुध वीज वार-गुर श्रीकार जो,
सैंहर लाहवै सात साध सुखी रह्या घणा रे लो॥

उक्त मिति से लेकर आषाढ सुदी १५ तक कोई दीक्षा नही हुई, अत चातुर्मास के शुरु मे श्रावण वदि १ के दिन ७ साधु ही थे।

३. जय (हे० न०), ६।२

४. वही, ६।३

५ जय (हे० न०), ६।४

		३. मुनि दीपजी (८५)
		४. मुनि उदयचन्दजी (६५)[1]
३५.	१८८८ गोगुन्दा	१. मुनि हेमराजजी (३६)
		२ मुनि सतीदासजी (८४)
		३. मुनि दीपजी (८५)
		४. मुनि उत्तमचन्दजी (६०)
		५ मुनि उदयचन्दजी (६५)[2]
३६	१८८६ पाली[3]	१. मुनि हेमराजजी (३६)
		२. मुनि सतीदासजी (८४)
		३. मुनि उदयचन्दजी (६५)
३७.	१८६० पीपाड़[4]	१. मुनि हेमराजजी (३६)
		२. मुनि सतीदासजी (८४)
		३. मुनि उदयचन्दजी (६५)
३८.	१८६१ बालोतरा[5]	१. मुनि हेमराजजी (३६)
		२ मुनि सतीदासजी (८४)
		३ मुनि उदयचन्दजी (६५)
३६	१८६२ पाली[6]	१ मुनि हेमराजजी (३६)
		२. मुनि सतीदासजी (८४)
		३. मुनि उदयचन्दजी (६५)
४०.	१८६३ पीपाड[7]	१. मुनि हेमराजजी (३६)
		२ मुनि सतीदासजी (८४)
		३. मुनि उदयचन्दजी (६५)
४१.	१८६४ लाडनू	१. मुनि हेमराजजी (३६)
		२ मुनि सतीदासजी (८४)
		३. मुनि उदयचन्दजी (६५)
		४. मुनि रामजी (१००)[8]
४२	१८६५ पाली	१. मुनि हेमराजजी (३६)

१. ज (हे० न०), ६।५
२ वही, ६।६
३ वही, ६।७
४ वही, ६।७
५ वही, ६।८
६ वही, ६।८
७. वही, ६।६
८. वही, ६।१०

२. मुनि सतीदासजी (८४)
३. मुनि उदयचन्दजी (९५)
४ मुनि रामजी (१००)[1]

४३. १८९६ पीपाड
१. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि सतीदासजी (८४)
३. मुनि उदयचन्दजी (९५)
४. मुनि रामजी (१००)[2]

४४ १८९७ सिरियारी
१. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि सतीदासजी (८४)
३. मुनि उदयचन्दजी (९५)
४. मुनि अनोपचन्दजी (११४)[3]

४५. १८९८ पाली
१. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि सतीदासजी (८४)
३ मुनि उदयचन्दजी (९५)[4]

४६. १८९९ गोगुन्दा
१. मुनि हेमराजजी (३६)
२ मुनि भैरजी (७९)
३. मुनि सतीदासजी (८४)
४ मुनि उदयचन्दजी (९५)[5]

४७. १९०० श्रीजीद्वार
१. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि भैरजी (७९)
३. मुनि सतीदासजी (८४)
४. मुनि उदयचन्दजी (९५)[6]

४८. १९०१ पुर
१. मुनि हेमराजजी (३६)
२ मुनि सतीदासजी (८४)
३. मुनि उदयचन्दजी (९५)[7]

४९ १९०२ उदयपुर
१. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि सतीदासजी (८४)
३ मुनि उदयचन्दजी (९५)[8]

---

१ जय (हे० न०), ६।११
२. वही, ६।१२
३. वही, ६।१३
४ वही, ६।१६
५. वही, ६।१७
६. वही, ६।१८
७. वही, ६।१९
८. वही, ६।२०

५०. १९०३ श्रीजीद्वार १२ १. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि जीतमलजी (६४)
३. मुनि कर्मचन्दजी (८३)
४ मुनि सतीदासजी (८४)
५. मुनि उदयचन्दजी (९५)
६. मुनि हरखचन्दजी (१४४)[1]

५१. १९०४ आमेट १. मुनि हेमराजजी (३६)
२. मुनि कर्मचन्दजी (८३)
३. मुनि सतीदासजी (८४)
४. मुनि उदयचन्दजी (९५)
५. मुनि हरखचन्दजी (१४४)[2]

गाव क्रम से चतुर्मास :

गावों के क्रम से ५१ चातुर्मासो का विवरण इस प्रकार है :

१.	खैरवा	(मारवाड)	२	१८५४ (स्वामीजी के साथ), ६७
२.	पाली	(मारवाड)	११	१८५५ (स्वामीजी के साथ), ६१, ६६, ७१, ७५, ८०, ८५, ८६, ९२, ९५, ९८
३.	श्रीजीद्वार	(मेवाड)	४	१८५६ (स्वामीजी के साथ), ८७ १९००, १९०३
४.	पुर	(मेवाड)	४	१८५७ (स्वामीजी के साथ), १८५८ (मुनि वेणीरामजी के साथ), ८४, १९०१
५.	सिरियारी	(मारवाड)	४	१८५९, ६५, ७३, ९७
६.	पीसागण	(मारवाड)	१	१८६०
७	जैतारण	(मारवाड)	१	१८६२
८.	कटालिया	(मारवाड)	२	१८६३, ७२
९.	देवगढ	(मेवाड)	२	१८६४, ७६
१०	बालोतरा	(मारवाड)	२	१८६८, ९१
११.	कृष्णगढ	(मारवाड)	१	१८६९
१२.	इन्द्रगढ	(हाडोती)	१	१८७०
१३.	गोघुदा	(मेवाड)	४	१८७४, ८२, ८८, ९९
१४	उदयपुर	(मेवाड)	२	१८७७, १९०२

---

१. (क) जय (हे० न०), ६।२३,२४
(ख) हे० चो०, १।दो० १, ३, ४, गा० ३
(ग) मघवा (ज० सु०), ३०।१। यह मुनि हेमराजजी के साथ जय का तेरहवां चातुर्मास था-
"तेरे चोमासा हेम समीपे" मघवा (ज० सु० ६७।१३)

२. (क) जय (हे० न०), ६।२४, २७, २८, ३१
(ख) हे० चो०, १।३,६;३।२.
दोय चोमासा कीधा हेम पै
(ग) जय (शा० वि०), १०।दो० २-५

१५. आमेट (मेवाड) ३ १८७८, ८३, १६०४
१६. पीपाड (मारवाड) ५ १८७६, ८६, ६०, ६३, ६६
१७. जयपुर (ढूढाड) १ १८८१
१८. लाडनू (मारवाड) १ १८६४[1]

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि आपके ५१ चातुर्मास १८ ग्रामो मे संपन्न हुए। ३० चातुर्मास मारवाड के दस स्थानों मे, १६ चातुर्मास मेवाड के छ स्थानो मे, १ चातुर्मास हाडोती मे और १ चातुर्मास ढूढाड मे हुआ।

प्रदेश क्रम से चातुर्मास

प्रदेश क्रम से तालिका इस प्रकार बनती है :[2]

३० मारवाड (१) खैरवा २, (२) पाली ११, (३) सिरियारी ४,
(४) पीसांगण १, (५) जेतारण १, (६) कंटालिया २,
(७) बालोतरा २, (८) कृष्णगढ १, (९) पीपाड ५,
(१०) लाडनू १
१६. मेवाड (१) श्रीजीद्वार ४, (२) पुर ४, (३) देवगढ़ २,
(४) गोघुन्दा ४, (५) उदयपुर २ और (६) आमेट ३
१. हाडोती (१) इन्द्रगढ १
१. ढूढाड (१) जयपुर १

मुनि हेमराजजी की दीक्षा स० १८५३ की माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन हुई थी और देहान्त स० १९०४ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया के दिन। इस तरह आपके साधु जीवन की आयुष्य-अवधि प्राय ५२ वर्ष की होती है।[3] इस सुदीर्घ साधु-जीवन मे आपने आध्यात्मिक जगत मे

१. जय (हे० न०), ६।३३-३५—यहा प्रथम पाच चातुर्मासो को छोडकर सिघाड़पति काल के ४६ चातुर्मासो का ग्रामवार विवरण दिया है, जो इस प्रकार है :
सैहर अठारै किया चौमासा, पाली चौमासा इग्यारी।
दोय खैरवै नै दो कटाल्यै, च्यार चौमासा सरीयारी।।
पाच पीपाड नै दोय वालोतरै, तीन आमेट मझारी।
च्यार गोघूदे नै च्यार किया पुर, च्यार किया श्रीजीदुवारी।।
दोय चौमासा किया उदियापुर, दोय देवगढ न्हाली।
द्वादस सैहरा मे हेम मुनि किया, सर्व चौमासा पैताली।।

२ जय (हे० न०), ६।३७-३८
मुरधर देश मे तीस चौमासा, किया दस सैहर मझारी हो।
देश मेवाड किया उगणीस छै, सैहर मांहि सुविचारी हो।।
एक हाडोती कियो इन्द्रगढ, एक ढूढार मझारी।
ए सर्व चोमासा एकावन समचित, कीधा हेम हजारी।।[1]

३. जय (हे० न०), ११ दो० ७
अठारेसै तेपनै, हेम चरण चितधार। उगणीसै चोकै भलो, अणसण अधिक उदार।।

१ जय (हे० न०) ६।३७।३८

वडा सेवा-कार्य किया। चातुर्मास तथा शेषकाल में अपने उपदेशो द्वारा जनता मे धर्म का आलोक उद्दीप्त किया। विचार-शुद्धि और आचार-शुद्धि की भावनाए जाग्रत करते रहे। कइयों को प्रव्रजित किया। कइयो को श्रावकव्रती वनाया। अनेक सुलभ वोधि हुए। आप धर्म की विविध विधाओ का विशुद्ध ज्ञान जनता के सामने रखते रहे।

> अकावन चौमासा मझै, वहुत कियो उपगार।
> हेम ऋषी गुण आगला, आप तिरै पर तार ॥ १ ॥
> वले गामा नगरां विचरता, दियो विविध उपदेस।
> नर-नारी समझावता, मेट्या भर्म कलेस ॥ २ ॥
> केका नै, दियो साधपणो, केका नै श्रावक व्रत दीध।
> केका नै सुलभ बोधी करी, जग मे जश लीध ॥ ३ ॥
> उतपतिया वुधी अति घणी, आछी अधिक अनूप।
> दान-दया ओलखावता, सखरी भात सरूप ॥ ४ ॥
> व्रत-अव्रत मडावता, विविध जुक्ति वर न्याय।
> स्वाम भीखू पै साभल्या, तिम हिज हेम वताय ॥ ५ ॥
> चरचा करण कला घणी, दियै विविध दिष्टात।
> वलै सूत्र सिद्धात रा न्याय कर, दीपायो प्रभु नो पथ ॥ ८ ॥
> सरस कठ वांणी सरस, सरस कला सुविहाण।
> भिन्न-भिन्न करी भला, वाचै सरस वखाण ॥ १० ॥[1]

७. सिंघाड़पति काल की दीक्षाए[2]

सिंघाडपति के रूप मे आप मे कुशल नेतृत्व दीख पडता है। आप दूरदर्शी और पुरुषार्थी होने के साथ-साथ वडे निर्भीक और साहसी भी थे। वाणी वैराग्य रस से भीनी होती। उसमे आगम-सम्मत और तर्क-सगत ज्ञान रहता, जिससे वह श्रोता के हृदय को चुम्वक की तरह अपनी ओर खीन्च लेती। आपने मेवाड, मारवाड, हाडोती और ढूढाड—इन चार क्षेत्रो मे विहार किया। आपके द्वारा निम्नलिखित १८ दीक्षाए[3] सम्पन्न हुई।

१ मुनि जीवनजी (५१) की।[4] स० १८६१ के पाली चातुर्मास के वाद पुन पाली मे

---

१. जय (हे० न०), ७। दो० १-५, ८, १०

२. दीक्षाओ का यह विवरण हेम नवरसो, शान्ति विलास, मोतीजी रो चौढालियो, सरूप नवरसो, सरूप विलास, हेम दृष्टान्त, ख्यात एव दीक्षित मुनियो से सम्वन्धित कृतियो पर आधारित है।

३. श्री सोहनलाल जी वम्व और मुनि सोहनलाल जी सेठिया कृत मुनि गुण वर्णन मे दीक्षाओ की सख्या १३ वतायी गयी है। क्रमाक २,४,६ की दीक्षाओ का उल्लेख छूटा है।

४. जय (हे० न०), ४।६
पाली चौमासो इकसठे, कीधो हर्ष अथागी हो।
फागुण मे दिख्या ग्रही, जीवण जी वैरागी हो॥

आकर फाल्गुन सुदी ३ के दिन दीक्षा सम्पन्न की। इनका साधु-जीवन मात्र साढे सात महीने का रहा। इन्होने अन्त मे ३१ दिन का अनशन किया। १८ दिन का सथारा आया।[1]

२. मुनि जैचन्दजी (५५) की। स० १८६५ के आषाढ महीने मे कटालिया मे सम्पन्न। इन्होने पत्नी को छोडकर प्रव्रज्या ग्रहण की। स० १८६६ के पाली चातुर्मास मे मुनि भोपजी ने सथारा ग्रहण किया।[2] इन्होंने १० दिन उपवासी रहने का प्रत्याख्यान किया। पाच दिन जल-रहित उपवास करते रहे। छठे दिन धोवन का जल विशेष मात्रा मे पी लिया। शीत-प्रकोप मे अस्वस्थ हो गए। उपचार से ठीक नही हुए। रात्रि मे निकल गये। कटालिया अपने घर पहुंच गृहस्थ हो गये और गृहस्थावस्था मे श्रावक के व्रत पालते रहे।[3]

३. मुनि पीथलजी (५६) की। ओसवाल नाहर थे। स० १८६६ की बात है। मुनि हेमराजजी का पाली मे चातुर्मास था। हरीवाजोली के पीथलजी चारित्र-ग्रहण करने के लिए वहा आये। उनके ससुर उनका पीछा करते हुए आये और उन्हे नाना प्रकार के प्रलोभन देते हुए दीक्षा न लेने के लिए समझाते रहे। मोह दिखाते हुए खूब रोये। उस पर पीथलजी बोले—"साधुत्व ग्रहण करने तक मुझे चारो आहार का त्याग है।" उन्होंने अपनी वैराग्य-भावना का उत्कट रूप अपने ससुर के सामने रख दिया। कोई चारा न देख ससुर ने दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर पीथलजी अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने मुनि हेमराजजी से दीक्षा देने की प्रार्थना की। आपने उनकी उत्कृष्ट वैराग्य-भावना को देख कर उन्हे दीक्षा दी। पीथलजी ने पत्नी छोड़कर दीक्षा ली थी। आगे जाकर बड़े तपस्वी सत हुए।

सरीयारी वर्स पैसठे, वर्स छासठै आया हो।
प्रगट पाली सैहर मे, जाझा ठाठ जमाया हो।
सुणज्यो चित ल्याया हो ॥
पीथल हरिवाजोली थकी, चारित्र लेवा आया हो।
सुसरे लारै आयनै, विविध पणै ललचाया हो।
रुदन करत अधिकाया हो ॥
पीथल कहै सुसरा भणी, साभल तू मुझवाया हो।
साधपणो लिया विना, च्यारू आहार पचखाया हो।
मन वैराग सवाया हो ॥
सुसरै दीनी आगन्या, पीथल मन हरपाया हो।
सजम लीधो हेम पै, छाडि त्रिया व्रत ल्याया हो।
सता नै सुखदाया हो ॥[4]

---

१. जय (शा० वि०), ३।३७ दो०१,२ तथा वार्तिक
२. (क) जय (शा० वि०), १।दो०२१-२७
(ख) जय (हे० न), ४।१८-२०
३. (क) हेम दृष्टान्त, दृ० ३४
(ख) जय (शा० वि०), ३।सो०२
४. (क) जय (हे० न०), ४।१४-१७
(ख) हेम दृष्टान्त, दृ० ३४

पीथलजी ने उत्कृष्टत. षट्मासी तप किया।[1]

४. मुनि सावलसिह जी (५७) की। इनकी दीक्षा स० १८६६ के आपके पाली चातुर्मास के वाद पाली मे सम्पन्न हुई थी। इन्होने पत्नी को छोड कर दीक्षा ग्रहण की। वाद मे इनकी पत्नी दर्शन करने आयी और रुदन करने लगी। लोग वहकाकर उसे हाकिम के पास ले गए। उन्होने इनको गृहस्थ कर दिया।[2]

५. मुनि रतनचन्दजी (७४) की। मुनि हेमराजजी के स० १८७३ के सिरियारी चातुर्मास के वाद लावा से फतेचन्दजी की रतनचदजी को दीक्षा देने की विनती आई। आप घाटी पार कर मिगसर वदि ५ के दिन लावा पहुचे। मिगसर वदि छठ के दिन इनको दीक्षा दी।[3]

६ मुनि अमीचदजी (७५) की। ये गलुडा के निवासी थे। इनकी दीक्षा मुनि रतनजी (७४) के साथ ही स० १८७३ की मिगसर वदि ६ के दिन हुई। इन्होने पुत्र-कलत्री को छोड़कर दीक्षा ली।[4] ये वड़े तपस्वी साधु हुए।

७. पेमाजी (९१) की। यह मुनि रतनचदजी की पत्नी थी। उनके साथ ही मुनि हेमराजजी ने इनको भी दीक्षा दी थी। इस तरह उक्त तीनो दीक्षाए एक दिन हुई थी। आप वाद मे गण से प्रथक् हो गई थी।[5]

८. साध्वी नदूजी (९२) की। इनकी दीक्षा खारा गाव मे इनके पिताजी की आज्ञा से स० १८७३ मे हुई थी। इनको गृहस्थ के वस्त्र और गहने पहने ही दीक्षा देकर मुनि हेमराजजी ने साध्वी जोताजी (४८) को सौप दिया। साध्वी जोतांजी ने इन्हे साध्वी के कपडे पहनाकर

---

१. जय (शा० वि०), ३।६

२. (क) हेम दृष्टान्त, दृ० ३४
   (ख) जय (शा० वि०), ३।सो० ३

३. (क) जय (हे० न०), ५।७-८.

   ल्हावा थी फतेचन्दजी सोयो रे, हेम पै विनती म्हेली जोयो रे,
   रत्नजी ने दीख्या अवलोयो ॥
   घाटे चढीने ल्हावा मझारो, मिगसर विद पचम तिथि वारी,
   छठ रत्न दीक्षा अवधारो ॥

   (ख) जय (शा० वि०), ३।२०

४. (क) जय (हे० न०), ५।९-१०
   (ख) जय (अमीचन्द गुण वर्णन), ३।२

   तीहतरे गृहवास तज्यो, भवतारक हेम ऋषि नैं भज्यो।
   छाड त्रिया सुत चरण लियो ॥

५. जय (शा० वि०), ३।२०

   त्रिया सघाते रत्न लावा ना, त्रिया सुत तजी अमीचन्दो रे।
   एक दिन तिहोत्तरै दीक्षा, दीधी हेम मुनिन्दो रे॥

   श्री सोहनलालजी वम्व ने (मुनि गुण प्रभाकर मे) उक्त तीनो दीक्षाए स० १८६६ में हुई लिखी है ,पर यह ठीक नही।

प्रातिहारिक वस्त्र और गहने इनके पिता को सभाल दिये। नदूजी कुंवारी कन्या थी। इनकी सगाई तक नही हुई थी।[1]

९. मुनि रतनचन्दजी (८१) की। जाति से खीवसरा थे। इन्होने पिता, माता और पत्नी को छोडकर दीक्षा ग्रहण की थी।

१०. मुनि शिवजी (८२) की। इन्होने पत्नी को छोड़कर दीक्षा ग्रहण की थी। ये जाति से मादरेजा थे।[2]

११. मुनि कर्मचन्द (८३) की। इन्होने माता, पिता, वहिन, दादा और चाचा को छोड-कर बाल्यावस्था मे दीक्षा ग्रहण की थी।

उपर्युक्त तीनो देवगढ के निवासी थे और तीनो की दीक्षा एक ही दिन हुई थी।[3]

'सरूप नवरसो' मे इन तीनो की दीक्षा का वर्णन निम्न रूप मे मिलता है

नव साधा सू हेम ऋषि, सुरगढ मे चउमास।
तीन सत दिख्या ग्रही, अधिको धर्म उजास॥

---

१ (क) जय (शा० वि०), ४।२५ तथा वार्तिक
(ख) जय (हे० न०), ५।२१-२३
(ग) हुलास (शा० प्र०) भारीमल सती वर्णन, गा० १६०, १६१.

नदु कुवारी कन्याका दिक्षा ने थया त्यारीजी।
पिता फतैचन्दजी लावा मे अग्रेसरी तिण दीक्षा महोछव करी भारीजी॥
दिक्षा अवसर हेम पे आविया इतला मे एक वतका थाई जी।
केई धेण्या गामरा ठाकर भणी उलटी जाय भिडाई जी॥
दिक्षा ल्यै आपरी सीम मे ए कन्या अगनकुमारी जी।
सो आप भणी भार छै एहनौ इम कह्या ठाकर ततक्षिण तिण वारी जी॥
कहवायो आदमी दोडायने म्हारा गामरी सीम मझारो जी।
दिक्षा मत देज्यो साधुजी जद हेम विहार कियो तिण वारो जी॥
कने चारणा री सीम लागती हती जठै दिक्षा देवा हुवा त्यारी जी।
चारणा पिण आय मना किया दिक्षा मत द्यो म्हारी सीम मझारी जी॥
जरा कने वडा राजरी सीम थी वठै वखत टलतो जाणी जी।
गृहस्थ कपड़ा गहणा सहित नदु भणी दीक्षा हेम दिराणी जी॥
पछै सूपी जोता सती भणी जोताजी साधु रा कपडा पहराया जी।
पाछा नंदुजी रा वापने पडिहारा वस्त्र गहणा दिराया जी॥

२ सत गुण वर्णन, ७२।१.

शिवजी सत वडा सुखदायक, सूरतगढ साचो।
छिहतरे व्रत हेम समीपै, वसधारी मुनि जाचो॥

३. (क) जय (शा० वि०), ३।२६
(ख) जय (हे० न०) ५।४२-४३
(ग) मघवा (ज० सु०), ६।१५, १७,१८
(घ) शिवजी रो चोढालियो, १।दो० ४,५,६
(ङ) कर्मचन्द गुण वर्णन, ढाल दो० ३

रत्न अनै शिवजी लीयो, रमण छाड चरित्त।
कर्मचन्द दिख्या ग्रही, तजी पिता मा वित्त ॥[1]

इस वर्णन से ऐसा लगता है कि तीनो दीक्षाए चातुर्मास मे सम्पन्न हुई थी। पर सतीदास चरित्र (शान्ति विलास) मे स्पष्ट उल्लेख है कि तीनो की दीक्षा चातुर्मास के वाद मिगसर मास मे हुई थी।

चौमासो उतरया मिगसर मास, तीना ने दीक्षा दीधी तास।
रतन शिव त्रिया तजी जी ताही, कर्मचन्द छाड्या पिय माय ॥[2]

मघवा (ज० सु०) मे भी ऐसा ही वर्णन है

मृगसर मे दिक्षा त्रिहु रे. शिवजी रत्न विहु साथ।
मोहछव कराया रावजो रे, वे-वे रुपया दिया हाथ ॥
पछे तिण हिज दिन सजम लियो रे, कर्मचन्द सुकुमार।
जननी तात भगनि तजि रे, काको दादो परिवार ॥[3]

मुनि हेमराजजी का स० १८७६ का चातुर्मास देवगढ मे था। चातुर्मास समाप्ति के वाद मिगसर महीने म उक्त दीक्षाए हुई।

मुनि कर्मचन्दजी को दीक्षा लेने से रोकने के लिए उनके पिताजी ने जो प्रयास किया, उसका रोचक वर्णन इस प्रकार है

कर्मचन्दजी के पिता ने रावजी से पुकार की—"मेरे एक ही पुत्र है। मेरा कुल उठ जायेगा। कर्मचन्द को दीक्षा लेने से रोके। मुनि हेमराजजी को दीक्षा न देने दे। उन पर रोक लगावे।" रावजी ने कर्मचन्दजी को बुला भेजा। वे आये। रावजी ने कहा—"घर वाले तुम्हे रोक रहे है और उसके वावजूद तुम दीक्षा लेने का विचार कर रहे हो। तुम अपने पिता की वात पर ध्यान क्यो नही देते? तुम इकलौते पुत्र हो। तुम्हारे दीक्षा लेने से वश का नाम ही उठ जायेगा।" कर्मचन्दजी ने उत्तर दिया—"सयोगवश इकलौता पुत्र पिता के जीवन-काल में ही मर जाता है। तव नाम कहा रहता है? मै तो अन्त करण से वैराग्य-पूर्वक मोक्ष के मार्ग पर चलना चाहता हू। मेरी भावना वारह वर्षो से चल रही है। आज्ञा न मिलने से मुनि हेमराजजी दीक्षा नही दे रहे है। यदि आपने मुझ पर रोक लगाई तो आप भी शुभ काम मे अन्तराय डालने से दोप—पाप के भागी होगे। आपको शाप लगेगा।" रावजी वोले "मैने तुम्हे परखने के लिए बुलाया था। तुम्हारी ऐसी तीव्र भावना है तव तुम्हे कैसे रोक सकता हू?"

कर्मचन्दजी के पिता वाहर थे। रावजी ने आदमी भेजकर उन्हे कहलाया—"इस वालक के मस्तिष्क मे भगवान् विराजे हुए है। इसने स्वय अपना मार्ग चुना है। इसे रोकने मे वडा दोष है। मै इसे नही रोकूगा। तुम समझो, वैसा करो। साधु तुम्हारी आज्ञा विना दीक्षा देने वाले नही है। अत उनके सवध मे पुकार नही हो सकती। कर्मचन्द तुम्हारे घर का प्राणी है। रख सकते हो तो रखो।" इसके वाद रावजी ने कर्मचन्द को विदा कर दिया। साधुओ को

१ सरूप नवरसो, ६।दो० १-२
२. शान्तिविलास, ३।१५
३ मघवा (ज० सु०), ६।१५,१८

रावजी ने कहलाया—आप प्रसन्नता-पूर्वक रहे। मन मे और तरह न सोचे। आप सब माला फेरते है, उसी तरह प्रसन्नतापूर्वक सवाई फेरे। मेरी ओर से दो माला अधिक फेरे।

कर्मचन्दजी घर लौटे। ज्ञातियो ने उन्हे रोकने का भरसक प्रयत्न किया, पर वे अडिग रहे। जब उन्हे घर मे रखने का कोई चारा नही दिखाई दिया, तब पिता ने दीक्षा की आज्ञा दी। उनकी दीक्षा रत्नजी और शिवजी के साथ हुई।[1]

१२. मुनि सतीदासजी (८४) की। ये गोगुदा के निवासी थे। इनकी दीक्षा सं १८७७ के उदयपुर चातुर्मास के बाद गोगुदा मे ही वसत पचमी के दिन हुई।[2] इनके पिता का नाम बाघजी कोठारी था। वे वरल्या बोहरा कहलाते थे। माता नवलाजी, दो बहिने—नन्दुजी और गुलाबजी, बडे भाई धूलजी, छोटे भाई फौजमलजी आदि को छोडकर दीक्षा ली। उस समय इनकी अवस्था १६ वर्ष की थी।[3]

सत गुण वर्णन, ढा० ६ मे सतीदासजी का वर्णन संक्षेप मे बड़े सुन्दर रूप से किया गया है। उसे यहा उद्धृत किया जाता है

हिवै चौमासो उतर्‌यो रे, कीयो तिहा थी विहार रे अणगारा।
गोघूदै चाल्या देइ जीतरा नगारा ॥१३॥
वापजी कोठारी तिहा बसै रे, तिण रै पुत्र हुतो सतीदास रे ओ आछो।
शीलव्रत साचै मन आदर्‌यो रे जाचो ॥१४॥
तिणनै न्यातीला उपाय कीया घणा रे, घर मे राखण काज रे अनेको।
ससार नो लोभ देखावीयो विशेषो ॥१५॥
उपसर्ग त्या दीधो घणो रे, पिण सेठो रह्यो सतीदास रे सनूरो।
चारित्र लेवा मन उठीयो रे सूरो ॥१६॥
रेहतो न जाण्यो घर मझै रे, जब आज्ञा दीधी तिण वार रे सुजाणो।
दिक्षा रो मोच्छव अति घणो पिछाणो ॥१७॥
सवत अठारै सततरै रे, सुदि पांचम बुधवार रे उदास।
सतीदास सयम लीयो शोभतो रे वास ॥१८॥
चढती वय चढती कला रे, रिद्ध रमण दिधे छिटकाय रे उमगो।
हेम समीपै आदर्‌यो उचरगो ॥१९॥

---

१. कर्मचन्द गुण वर्णन, ढा० १-३१

२. (क) जय (हे० न०), ५।४६-५२
(ख) जय (शा० वि०), ३।३३

३. शान्ति विलास, ७।१५-१७ :
सोलै वरस रै आसरै।आ० सतीदास सुखकार कै। आ०
भ्रात मात भगनी तजी। आ० लिधो संयम भार कै॥ आ०
नवलाजी माता भली । आ० बहिन वे नदु गुमान कै। आ०
ज्येष्ट सहोदर धूलजी। आ० लघु फोर्जमल जाण कै॥ आ०
स्वजन अति सामठो। आ० घर माहे बहु ऋद्ध कै। आ०
व्याव मडो छिटकाय ने। आ० सध्यो चरण समृद्ध कै॥ आ०

१३. मुनि उत्तमजी (९०) की। यह दीक्षा स० १८८१ के शेपकाल मे सम्पन्न हुई थी। ये खीवाडा (मेवाड) के वासी थे। स्त्री और पुत्र को छोड़कर दीक्षा ली।[1]

१४. मुनि उदयचन्दजी (९५) की। स० १८८१ के शेपकाल मे। यह दीक्षा उदयपुर मे हुई थी।[2]

१५. मुनि मोतीजी (९६) की। स० १८८५ के पाली चातुर्मास मे श्रावण महीने मे। ये वागावास के निवासी थे।[3]

१६. मुनि उदयचन्दजी (१०६) की। इनकी दीक्षा स० १८८९ मे हुई। ये वोरावड़ के थे। वाद मे निकल गये।[4]

१७. मुनि हजारीजी (१०७) की। इनकी दीक्षा स० १८९० की मिगसर वदि २ के दिन पीपाड मे हुई। ये वही के निवासी थे।[5]

१८ मुनि हरखचन्दजी (१४४) की। ये अटाटा के निवासी थे। इन्ही की दीक्षा वही स० १९०२ के चातुर्मास के वाद हुई। इन्होने माता, पिता, भाई, वहिन को छोड़कर दीक्षा ग्रहण की।[6] इनको वस्त्र और आभूपण पहने ही दीक्षा दी गई थी। दीक्षा के वाद प्रातिहारिक वस्त्र और आभूपण गृहस्थो को दे दिए गये।[7]

---

१. जय (हे० न०), ५।७०-७१

२. वही, ५।७२

३. वही, ६।३

श्री वम्वजी ने इनकी दीक्षा सं० १८८३ की लिखी है पर वह ठीक नही।

४. ख्यात

५. इस दीक्षा का मुनि हेमराजजी के हाथ से होने का कही उल्लेख नही मिलता। हजारीजी पीपाड के थे। उनकी दीक्षा स० १८९० मिगसर वदि २ की उल्लिखित है। मुनि हेमराजजी का उस वर्प का चातुर्मास पीपाड मे था। इसमे अनुमान किया जाता है कि उनकी दीक्षा मुनि हेमराजजी के साथ से हुई थी।

६. हरख चौढालियो, १।दो० १-४.

टेकचन्द सुत दीपतो, हरखचन्द हुसीयार।
तलेसरै तीखी करी, सखरी करणी सार।।
वासी मेवाड देश नो, ग्राम अटाट्यै माय।
दीक्षा महोत्सव दीपता, कीया जनक अधिकाय।।
सोल वर्स रे आसरै, हेम ऋपि रे हाथ।
चारित्र लीयो छांडी करी, तात मात अरु भ्रात।।
उगणीसै वीयै अमल, चरण लीयो चित चग।
पणवीसै पीपाड मे, पंडित मरण प्रसग।।

७. जय (हे० न०), ६।२१-२२

विचरत-विचरत आया अट्याटे, हरपचन्द हितकारी।
मात तात भाई वैंन छांडिया, मिलिया हेम हजारी।।
गेहणा सहित चारित उचराई, पाछा दिया तिणवारी।
केवल पामी गेहणा खोल्या भरतजी, जम्बूद्वीपपणती मझारी।।

आपके संपर्क मे आए हुए अथवा आप द्वारा दीक्षित साधुओं मे से निम्न साधु कालान्तर मे सिघाडपति हुए :

१. मुनि सरूपचन्दजी (६२)। इनकी दीक्षा स० १८६९ पौष सुदी नवमी के दिन हुई थी। स० १८७६ के शेषकाल मे आचार्य भारमलजी ने अलग सिघाडा कर इनको सिंघाडपति बना दिया।[१] आपका पहला चातुर्मास ५ साधुओं से पुर मे हुआ।

२. मुनि भीमजी (६३)। इनकी दीक्षा सं० १८६९ फाल्गुन वदि ११ के दिन हुई थी। आचार्य रायचन्दजी ने सं० १८८१ मे अलग सिघाडा कर आपको सिघाडपति किया।

३ मुनि जीतमलजी (६४)। इनकी दीक्षा स० १८६९ माह वदी सप्तमी के दिन हुई थी। आचार्य रायचन्दजी ने स० १८८१ की पोह सुदी ३ के दिन पाली में अलग सिंघाडा कर आपको सिघाडपति किया, और उसी दिन आपका मेवाड़ प्रदेश के लिए विहार करा दिया। आपका प्रथम चातुर्मास स० १८८२ का गोघुदे मे था।[२] आपके साथ मुनि वर्द्धमानजी, कर्मचन्दजी और जीवराजजी को दिया।[३] आपको स० १८९३ के आषाढ महीने मे युवाचार्य पद प्रदान किया गया।[४] स० १९०८ माघ वदि १५ के दिन आप आचार्य हुए।[५]

४. मुनि कर्मचन्दजी (८३)। इनकी दीक्षा स० १८७६ के मृगसिर महीने मे देवगढ़ मे हुई। स० १९०८ मे जयाचार्य ने आपका सिघाडा किया।[६]

५ मुनि सतीदासजी (८४)। इनकी दीक्षा स० १८७७ के शेषकाल मे मुनि हेमराजजी द्वारा सम्पन्न हुई थी। उस समय इनकी आयु लगभग १६ वर्ष की थी।[७] आप २७ वर्ष तक मुनि हेमराजजी की सेवा मे रहे।[८] मुनि हेमराजजी का स० १९०४ जेठ सुदी २ के दिन स्वर्गवास हुआ। उसके बाद आचार्य रायचन्दजी ने सिंघाड़ा आपको सौप दिया।[९] आपका प्रथम चातुर्मास सं० १९०५ का पीपाड मे हुआ। उसके बाद चार चातुर्मास और हुए।[१०]

---

१ (क) जय (हे० न०), ५।४५
(ख) जय (स० ज०), ६।दो० ४, जय (स० वि०), ३।१-२
(ग) मघवा (ज० सु०), ६।दो० १; ६।१९, ७।दो० १-२

२ (क) जय (हे० न०), ५।३०
(ख) जय (भी० वि०), २।१२

३. (क) जय (रा० सु०), ८।९-१२
(ख) जय (हे० न०), ५।६८, ७३
(ग) मघवा (ज० सु०), ८।४, १०-१२

४. मघवा (ज० सु०) ढाल २२ एवं २३

५. वही, ढाल ३४, ३५

६. कर्मचन्द गुण वर्णन ढाल, दो० १, ६, ८ गा० ३८

७ शांति विलास

८. वही, १०।दो० ३

९. (क) वही, १०।दो० ४, ६
(ख) हरख चौढालिया, १।६

१०. शान्ति विलास १०।दो० ६-७

६. मुनि हरखचन्दजी (१४४)। आपने स० १९०२ मे अटाटा में मुनि हे. दीक्षा ग्रहण की थी। उनके देहान्त के बाद आप मुनि सतीदासजी के सिघाडे मे रहे देहान्त १९०९ मृगसिर मे हुआ, तब आपने जयाचार्य के दर्शन कर उन्हे पोथी-५ जयाचार्य ने कहा—"मुनि! इन पोथियो को ग्रहण करो और सिंघाडपति के रूप मे करो। इच्छा हो तो मेरे साथ रहो।" मुनि हरखचन्दजी ने आचार्यश्री के चरणो मे २ह किया और चार चातुर्मास उनके साथ किए। स० १९१३ मे जयाचार्य ने अत्यन्त ... आपका अलग सिघाडा किया। सिघाडपति रूप मे आपने १४ चातुर्मास किए।[1]

८. सिंघाड़े की विशिष्ट तपस्याएं और संथारे

आपके सिघाडे मे बडी-बडी तपस्याएं समय-समय पर होती रही। उनका विवरण प्रकार है.

१ स० १८५९ मे मुनि जोगीदासजी (४५) ने आपके सिघाडे मे चौविहार ... पूर्वक समाधि-मरण प्राप्त किया।[2] आपका सथारा पीसागण मे सम्पन्न होने का उल्लेख ... जाता है अत. उक्त वर्ष के शेपकाल मे हुआ।[3]

२. स० १८६० मे पीसागण चातुर्मास मे मुनि भोपजी (४९) ने पहले १३ दिन की तपस्या की और फिर पाच दिन की।[4]

३. स० १८६२ मे जैतारण चातुर्मास मे मुनि जीवनजी (५१) ने २२ दिन की तपस्या की। बाइसवे दिन सथारा किया। १७ दिन का सथारा आया। कुल ३९ दिन की तपस्या हुई।[5]

४. सं० १८६४ मे देवगढ चातुर्मास मे मुनि सुखजी (छोटे) (३५) ने संथारा किया। दस दिन का सथारा देवगढ मे चातुर्मास के बाद मृगसिर वदि ६ के दिन सम्पूर्ण हुआ।[6]

५. स० १८६५ के सिरियारी चातुर्मास मे भोपजी (४९) ने एक साथ त्याग कर आछ के आधार पर ६६ दिन की तपस्या की।[7]

---

१ हरख चौढालियो १।दो० २-४, ६-७, २।दो० ३, ३।१-३, ३।दो० २-३; ३।२-३

२. सत गुण वर्णन, १।१७-१९

३ जय (शा० वि०), १।२८

स० १८५९ का मुनि हेमराजजी का चातुर्मास सिरियारी मे था न कि पीसागण मे। सिरियारी चातुर्मास के बाद विहार कर पीसागण पधारे तब वहीं मुनि जोगीदासजी का सथारा पूर्ण हुआ।

४ जय (शा० वि०), १।दो० १३

५. (क) जय (हे० न०), ४।१०-११

(ख) जय (शा० वि०), ३।दो० २

६. (क) जय (हे० न०), ४।१३

(ख) जय (शा० वि०). १।२२

७. जय (शा० वि०), १।दो० १९। यहा सिरियारी मे सं० १८६५ मे उक्त तपस्या करने मात्र का उल्लेख है। उक्त वर्ष सिरियारी मे मुनि हेमराजजी का ही चातुर्मास था अत उनके समीप तपस्या की, इसमे सदेह नही।

६. सं० १८६६ मे पाली चातुर्मास में मुनि नोपजी (४६) ने ५८ दिन की (पानी के आधार पर) तपस्या की। मुनि हेमराजजी ने पारण कराया। दूसरे दिन अल्प आहार लिया। उसी दिन रात्रि में मुनि हेमराजजी के चरण पकड़कर यावज्जीवन संथारा कराने का अनुरोध किया। चार प्रहर का संथारा आया।[1]

७. सं० १८६६ के शेषकाल में मुनि सामजी (२१) ने संथारापूर्वक पण्डित-मरण प्राप्त किया।[2]

८. सं० १८७० के इन्द्रगढ चातुर्मास मे मुनि रामजी (२३) तेले के तप मे कार्तिक सुदी १० बुधवार के दिन परलोक सिधाये। चार प्रहर का संथारा आया।[3]

९. सं० १८७१ के शेषकाल में नानजी (२६) चोले की तपस्या मे दिवंगत हुए।[4] यह नैणवां की घटना है।[4]

१०. सं० १८७४ गोघुंदा चातुर्मास मे मुनि पृथ्वीराजजी (५६) ने ८२ दिन की तपस्या की। मुनि पीथलजी (७२) ने ४५ दिन, मुनि जोधराजजी (४६) ने ४६ दिन, मुनि सरूपचन्दजी (६२) ने १४ दिन और मुनि भीमराजजी[5] (६३) ने १२ दिन की तपस्या की।[6]

११. सं० १८७५ के पाली चातुर्मास में मुनि पृथ्वीराजजी (५६) ने ८३ दिन, मुनि पीथलजी (७२) ने ३६ दिन, मुनि सरूपचन्दजी (६२) और जीतमलजी (६४) ने ४२-४२ उपवास किए।[7]

१२. सं० १८७६ के देवगढ़ के चातुर्मास मे मुनि पृथ्वीराजजी (५६) ने १०६ दिन का तप किया।[8]

---

१. (क) जय (शा० वि०), १।दो० २१-२२, २७
(ख) जय (हे० न०), ४।१८-२०

२. जय (हे० न०), ४।२१

३. (क) जय (हे० न०), ५।२
(ख) जय (भि० ज० र०), ४७।दो० ३

४. (क) जय (हे० न०), ५।४
(ख) जय (भि० ज० र०) ४७।३
(ग) जय (शा० वि०), १।१६

५. सतो०, (३।२) मे मुनि भीमराजजी की तपस्या का उल्लेख नही है :
योधराज छियाली, वड पीथल किया वियांसी।
लघु पीथल तप छोड मासो, सरूपचन्द चवदै विमासी॥

६. जय (हे० न०), ५।२५

७. (क) जय (हे० न०), ५।२७
(ख) मघवा (ज० सु०), ११-३
(ग) सतो०, ३।१४

८. (क) जय (हे० न०), ५।३४
(ख) सतो०, ३।१४
(ग) मघवा (ज० सु०), ६।६

१३. स० १८७७ के उदयपुर चातुर्मास मे मुनि वर्द्धमानजी (६७) ने धोवन के आधार पर १०४ दिन की तपस्या की।[1]

१४ स० १८७८ के आमेट चातुर्मास मे मुनि पृथ्वीराजजी (५६) ने ६६ दिन की तपस्या की।[2]

१५ स० १८८५ के पाली चातुर्मास मे मुनि उदयचन्दजी (६५) ने मास-मास के तप किए। मुनि मोतीजी (६६) ने आछ आधार की छूट से ७३ दिन का तप किया।[3]

१६. स० १८८६ के पीपाड चातुर्मास मे उदयचन्दजी (६५) ने एक मास का तप किया। मुनि दीपजी (८५) ने आछ आधार से १८६ दिन का तप किया।[4]

१७ स० १८८७ के नाथद्वारा चातुर्मास मे दीपजी (८५) ने जल के आधार पर ३१ दिन का तप किया और उदयचन्दजी (६५) ने एक मास का।[5]

१८ स० १८८८ के गोघुदा चातुर्मास मे मुनि उत्तमचन्दजी (६०), उदयचन्दजी (६५) और दीपचन्दजी (८५) तीनो ने क्रमश ३४, ३७ और ४५ दिन की तपस्याए की।[6]

१९. स० १८९० के पीपाड चातुर्मास मे मुनि उदयचन्दजी (६५) ने एक मास का तप किया।[7]

२० स० १८९२ के पाली चातुर्मास मे वैयावृत्य के साथ-साथ मुनि उदयचन्दजी (६५) ने ३० दिन की तपस्या की।[8]

२१. स० १८९३ के पीपाड चातुर्मास मे वैयावृत्य के साथ-साथ उदयचन्दजी (६५) ने ४३ दिन की तपस्या की।[9]

२२. स० १८९४ के लाडनू चातुर्मास मे मुनि रामोजी (१००) ने ३० दिन की तपस्या की और वैयावृत्यी मुनि उदयचन्दजी (६५) ने जल की छूट से ३७ दिन की।[10]

२३. स० १८९५ के पाली चातुर्मास मे मुनि रामोजी (१००) ने ४१ दिन का तप किया। मुनि उदयचन्दजी (६५) ने जल की छूट से ३० दिन की तपस्या की।[11]

---

१. (क) जय (हे० न०), ५।४८
   (ख) सती०, ४।१८, १९
   (ग) मघवा (ज० सु०), ७।२
२. (क) जय (हे० न०), ५।६१
   (ख) मघवा (ज० सु०), ७।१५
३. जय (हे० न०), ६।२-३
४. वही, ६।४
५. वही, ६।५
६. वही, ६।६
७. वही, ६।७
८. वही, ६।८
९ वही, ६।९
१०. वही, ६।१०
११ वही, ६।११

२४. स० १८९६ के पीपाड चातुर्मास मे मुनि उदयचन्दजी (९५) ने जल की छूट से २० दिन की तपस्या की।[1]

२५. स० १८९७ के सिरियारी चातुर्मास मे मुनि उदयचन्दजी (९५) और मुनि अनूपचन्दजी (११४) ने जल की छूट मे क्रमश ५०-५० दिन की तपस्या की।[2]

२६ स० १८९८ में पाली चातुर्मास मे मुनि मतीदासजी (८४) ने आछ आगार मे ३१ दिन की तपस्या की और मुनि उदयचन्दजी (९५) ने २९ दिन की।[3]

२७ स० १८९९ मे गोघुदे चातुर्मास मे मुनि भैरजी (७९) ने २१ दिन और उदयचदजी (९५) ने जल की छूट से ३० दिन की तपस्या की।[4]

२८. स० १९०० मे श्रीजीद्वार चातुर्मास मे मुनि भैरजी (७९) ने २० दिन की और सेवाभावी मुनि उदयचन्दजी (९५) ने जल की छूट से ३० दिन की तपस्या की।[5]

२९ स० १९०१ मे पुर चातुर्मास मे मुनि उदयचन्दजी (९५) ने धोवन के आगार मे ७७ दिन का तप किया।[6]

३० स० १९०२ मे उदयपुर चातुर्मास मे मुनि उदयचन्दजी (९५) ने जल की छूट मे ३० दिन की तपस्या की।[7]

३१ स० १९०३ मे श्रीजीद्वार चातुर्मास मे मुनि कर्मचन्दजी (८३) ने जल की छूट मे ३० दिन की तपस्या की। मुनि उदयचन्दजी (९५) ने जल की छूट से ३० दिन की तपस्या की।[8]

३२ स० १९०४ मे आमेट चातुर्मास मे मुनि उदयचन्दजी (९५) ने जल की छूट में २ मास का तप किया।[9]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि दीर्घ तपस्याओ के अतिरिक्त आपके समीप छ सथारा हुए थे। निम्न छ साधुओ ने अनशनपूर्वक पण्डित-मरण प्राप्त किया था .

१. जोगीदासजी	(४५)	४. भोपजी	(४९)
२ जीवणजी	(५१)	५ सामजी	(२१)
३ सुखजी	(३५)	६. रामजी	(२३)[10]

---

१ जय (हे० न०), ६।१२
२. वही, ६।१३
३. वही, ६।१६
४. वही, ६।१७
५. वही, ६।१८
६. वही, ६।१९
७ वही, ६।२०
८. वही, ६।२४
९ वही, ६।२६
१० सत गुण वर्णन, १।१७, १९

पट् अणसण त्या कनै हुवा, त्यानै वैराग्य चढ्यो भरपूर।
जन्म मरण त्यारा मेटवा, उपकार कीया वडसूर॥
जोगीदास स्वामी जीवणजी, सुखजी स्वामी भोपजी जाण।
सामजी ने स्वामी रामजी, ए छहु तपसी वखाण॥

३३. मुनि उदयचन्दजी की तपस्या

मुनि उदयचन्दजी (६५) अपनी दीक्षा से लेकर मुनि हेमराजजी के देहान्त तक उनके साथ रहे। इस बीच उन्होंने तपस्या की, उसका सक्षिप्त वर्णन वर्ष-क्रम से ऊपर आ चुका है। आपके सान्निध्य मे हुई उनकी तपस्या का पूर्ण विवरण सक्षेप मे इस प्रकार है—

तपस्वी पिण तीखो घणो, तसु तप वर्णन वात।
पूरो तो किम कही सकै, सक्षेपे अवदात॥
चोथ भक्त कीधा मुनि वहुला, वलि वहु वेला तेला रे।
चोला अनै पचोला वहुला, कीधा अधिक समेला रे॥
म्हारा उदयराज नै, वारू रीत वधावो रे।
पट-पट ना वहु कीया थोकडा, दिल समता अधिकाई रे।
सात सातना तप वहु कीधा, वलि वहु करी अठाई रे।
नव-नव पिण तप दिन वहु नीका, दश-दश वली उदारो रे।
ग्यारा तप दिन कीया मुनीश्वर, पनर कीया वेवारो रे॥
तेरै मास खमण वलि तप ताजा, ग्यार उदक आगारो रे।
मास खमण वे आछ आगारे, परम तपे करि प्यारो रे॥
एक वार मुनि सोलै कीधा, वलि उगणीस उदारो रे।
एक वार कीधा चित उज्जल, ए सहु उदक आगारो रे॥
वलि इकवीस कीया चित उज्जल, तप दिन वलि तेतीसो रे।
पच तीस तप दिवस प्रवर मुनि, उदक आगार जगीसो रे॥
दोय वार सैतीस कीया मुनि, वलि अडतीस उदारो रे।
दोय वार तप दिन गुणचाली, ए पिण उदक आगारो रे॥
इकचालीस दिवस तप उज्जल, तप दिन वलि पैताली रे।
सप्त अनै चालीस कीया सुद्ध, इम आतम उजवाली रे॥
दिवस पचासज कीया दीपता, तेपन दिन वलि ताजा रे।
छप्पन दोय वार तप छाजै, सुजश नगारा जाझा रे॥
ए सहु उदक आगारै मुनिवर, कीधो तप अधिकायो रे।
परम विनीत इसातसु तप, दीपै अधिक सवायो रे॥
दोय मास मुनि आछ आगारे, तप रस प्याला पीधा रे।
धोवण पाणी तणै आगारे, दिवस सितंतर कीधा रे॥
सवत अठार नेउआ पाछै, मास मास मे सारो रे।
एक-एक मुनि कीयो थोकडो, आठा ताईं उदारो रे॥
वरस नेऊआ सू आठा लग, शीतकाल रै माह्यो रे।
चोल पटा उपरत न ओढ्यो, मुख समाधै ताह्यो रे॥
एहवो तप कीधो मुनि उत्तम, वहु कर्म निर्जरा कीधी रे।
उष्ण काल मे घणा वरस लग, आतापन पिण लीधी रे॥

शांत दांत गुणवत मुनीश्वर, शांति विनय अधिकेरो रे।
समचित सू वहु कर्म खपाया, झाली तप समसेरो रे।।
घोर तप चौथा आराना, मुनिवर नो तप सुणीयो रे।
पचम आरै उदैराज नो, प्रगट घोर तप घुणीयो रे।।
एह्वो तप काना सुणीया थी, कायर तनु कंपायो रे।
अति उचरग थकी उदयाचल, ए तप कर तन तायो रे।।
परम विनीत तपस्वी पूरा, हुआ मुनीश्वर आगै रे।
तिम हिज अधिक विनीत तपस्वी, ए उदयाचल सागै रे।।

९. जीवन-प्रसंग

चातुर्मास और शेपकाल मे हुई दीक्षाओं और तपस्याओ का वर्णन पूर्व-प्रकरण मे दिया जा चुका। यहा महत्त्वपूर्ण घटनाओ और जीवन-प्रसगो का विवरण दिया जा रहा है।

१ भक्त मयाचन्दजी

आचार्य भारमलजी वहुत सत-सतियो के साथ गोगुदा, रावलिया होते हुए सेलानरा पधारे। मुनि हेमराजजी दर्शन के लिए जा रहे थे। बीच मे नाथद्वारा आया। वहां मयाचन्दजी तलेसरा ने अर्ज की—"मेरे कपडा आया है। शुद्ध है। आप ले। आचार्य भारमलजी के पास ले जावे। वहा वहुत साधु है। खप जायेगा। आप ले जाये।" मुनि हेमराजजी वोले "रास्ते मे चोर वहुत है। छीन ले तो पोथी-पन्नो को और जोखिम हो जाय। आपका कपडा क्या काम आये ?" मयाचन्दजी ने अर्ज की "आपका एक सूत भी चला जाये तो मुझे घर मे रहने और चार आहार करने का त्याग है। आप ले।" तव मुनि हेमराजजी ने कपड़ा लिया। मयाचन्दजी स्वय वन्दोवस्त कर साथ मे सेवा मे गये और वड़े गाव तक पहुंचा कर दर्शन कर वापिस आये। वहा उनका सवध था। पहले दर्शन करके आये थे फिर भी सकोच न किया। ऐसे पक्के विनयी श्रावक थे।[1]

२. आगे चर्चा नही

मुनि हेमराजजी ने एक साधु से चर्चा मे प्रश्न पूछा। तव वह वोला "मैं तो भारमलजी का भाई हूं।" वह कुटुम्व सवध से भाई था। उसके यह कहने के वाद मुनि हेमराजजी ने उससे आगे और कुछ नही पूछा।[2]

३. सिर पर पाग नही है

मुनि हेमराजजी गृहस्थ थे, तव की वात है। एक साधु और गृहस्थ मे चर्चा हो रही थी। उसी समय हेमराजजी वहा आ गये। गृहस्थ ने कहा "ये ऐसा कहते हैं।" हेमराजजी वोले . "सिर पर पाग होती है, उसे शर्म होती है।"[3]

---

१. प्रकीर्ण-पत्र
२. प्रकीर्ण-पत्र (घटनात्मक) क्रम १२
३. प्रकीर्ण-पत्र (घटनात्मक) क्रम १३

४. कौन-सा आचार्य हो गया ?

मुनि हेमराजजी स्वामी ने आचार्य भारमलजी के केलवे मे दर्शन किये और कहा "थक गया।" आचार्य भारमलजी ने कहा "जैतपुरे क्यो नही ठहर गये ?" तव बोले : "जीतमलजी का मन न होने से नही रहे।" तव आचार्य भारमलजी बोले . "वह कौन आचार्य हो गया है ? ऐसा कह देना था कि तेरी वात मानने का भाव नही।"[१]

५. ये तो हेमराजजी हैं ?

मुनि रायचन्दजी को युवाचार्य पद दिया गया। उसके वाद उससे कुछ खलवली मची। उस समय की एक घटना इस प्रकार है

हसराजजी सचेती चित्तौड निवासी थे। आचार्य भारमलजी के सामने ही उन्होने मुनि खेतसीजी से पूछा—"युवराज पद के लिए तो आपका नाम सुन रहे थे, पर दिया गया मुनि रायचन्दजी को। यह कैसे हुआ ? तव आचार्य भारमलजी ने फरमाया—"तुम गृहस्थो को पचायत करने से क्या काम ? साधुओ की वात साधु जाने। ये तो हेमराजजी स्वामी है, वाकी तुम गृहस्थ तो ऐसे हो कि भेद डलवा दो।"

इस वात मे शामिल तो अनेक गावो के लोग थे, पर हसराजजी को अग्रणी वनाकर ऐसा कहलवाया। इस प्रसग मे आचार्य श्री ने मुनि हेमराजजी के सवध मे जो शब्द कहे—'ए तो हेमजी सहरा'—यह आपके व्यक्तित्व के विपय मे वहुत वडी आस्था की वात थी।

६ व्याख्यान सीखो

आपने दीक्षा लेने के वाद दशवैकालिक सूत्र सीखा। उसके वाद उत्तराध्ययन सूत्र सीखने लगे। आचार्य भिक्षु वोले "व्याख्यान सीखो। तुम मे कठ है। मुख्यत उपकार व्याख्यान से होता है ?"[२]

७. चार से पाच साधु

स० १८५५ का आपका चातुर्मास आचार्य भिक्षु के साथ केलवे मे था। अन्य मुनि भारमलजी और खेतसीजी थे। केलवा से आकर उदयचन्दजी ने श्रावण महीने मे भिक्षु से दीक्षा ग्रहण की। ४ के ५ सत हुए।[३]

८ काग उड गया तो उसके भाग्य

स० १८५५ मे पाली मे आप टीकमजी से चर्चा कर रहे थे। उस समय एक माहेश्वरी वोला . "चार पैसे देकर किसी ने सपेरे से सर्प छुडाया, उम मे क्या हुआ ?" टीकमजी वोले :

---

१. प्रकीर्ण-पत्र (घटनात्मक) क्रम १
२ जय (भि० दृ०), दृ० २७३
३ जय (हे० न०), ४।२
पाली वर्स पचावनै, सत चिउ मिरदारी हो।
सैहर केलवा थी आयनै, उदैराम चरण धारी हो।
सावण मास मझारी हो, भजो स्वामी हेम हजारी हो॥

"अच्छा धर्म हुआ।" माहेश्वरी बोला · "सर्प सीधा चूहे के बिल में जा घुसे तब ?"
वोले : "बिल के अन्दर चूहा न हो तब ?"

इस प्रश्नोत्तर की बात आपने भिक्षु से कही। भिक्षु वोले : "किसी पर गोली चलाई। काग उड गया। यह काग का भाग्य। उसकी आयु थी। पर गोली छो को तो पाप लग चुका। इसी तरह जिस सर्प को छुडाया, वह बिल मे गया। अन्दर चू है तो यह चूहे का भाग्य। पर सर्प को छुड़ाने वाला तो हिसा का भागीदार हुआ।" यह दृ दे कर आचार्य भिक्षु वोले : "इस तरह जवाब देना चाहिए।'

९. तुम्हे शका कैसे हुई ?

स० १८५५ के शेपकाल मे भिक्षु कांकरोली मे सैहलोतो की पोल में विराजे। मे पोलद्वार की खिडकी खोल कर भिक्षु दिशा गये। आपने पूछा : "स्वामीजी, व खिडकी खोलने मे वाधा नही ?" भिक्षु वोले "पाली का चोथजी सकलेचा दर्शन करने लिए आया था। वह वडा शकाशील व्यक्ति है। पर इसकी शका तो उसके भी नही हुई। फि तुम्हे शंका कैसे हुई ?" आप वोले "मुझे कोई शका नही, मैं तो पूछता हू।" भिक्षु वोले "तू पूछता है, तो कोई वाधा नही। यदि इसमें वाधा होती तो मैं क्यों खोलता ?"[२]

१०. चातुर्मास भर एकान्तर

स० १८५६ का आपका चातुर्मास आचार्य भिक्षु के साथ नाथद्वारा मे था। मुनि भारमलजी, खेतसीजी और आपने चातुर्मास भर एकातर किए। भिक्षु अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास करते रहे। मुनि उदयचन्दजी ने तेले तेले की तपस्या और पारण के दिन आयविल करते रहे। तपस्या के साथ भिक्षु की वैयावृत्य भी वडे भक्तिभाव से करते।[३]

११. सामुदानिक गोचरी

सवत् १८५६ नाथद्वारा मे मुनि हेमराजजी ने भिक्षु से पूछा—हम लोग श्रावको के यहा ही गोचरी जाते है। अनुक्रम से घरो मे गोचरी के लिए नही जाते। इसका क्या कारण है ? भिक्षु वोले— यहा द्वेप वहुत है, इसी से अनुक्रम से गोचरी नही करते। मुनि हेमराजजी वोले—आपकी आज्ञा हो तो मैं जाऊ ? भिक्षु वोले—भले ही जाओ। तव गोचरी करते हुए

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० २७२
२. वही, दृ० १७२
३. जय (हे० न०), ४।३-४ :

श्रीजीदुवारै छपनै, सत पच सुखकारी हो।
भारीमाल हेम सतजुगी, किया एकतर भारी हो।
च्यार मास एकधारी हो।।
उपवास आठम चवदस तणा, भीखू कीधा भारी हो।
छठ छठ आवल पारणै, उदैराम तपधारी हो।
व्यावचियो अणगारी हो।।

३. जय (भि० दृ०), दृ० १७२

मोहनगढ मे एक घर मे गये। पूछा—आहार-पानी का योग है? वाई वोली—रोटी नमक पर रखी हुई है। मेडी पर दूसरा घर था, आप वहा गोचरी गये। वाई वहुत उल्टी-सीधी वोली। वडा झगडा किया, पर रोटी दी। वहुत समय लगा। तव पहली वाली वाई ने सोचा—साधु हमारे ही लगते है। नीचे उतरने लगे, तव वाई वोली—आप आवे, आहार ले। ऐसा कह देने के लिए रोटी हाथ मे ली। तव आप वोले—वाई! तू तो कहती थी कि रोटी नमक पर पडी है। तव वाई वोली—मैने आपको तेरापथी समझा, तव वैसा कहा था। तव आप वोले—वाई! हम है तो तेरापथी ही। मन हो तो देना। तव कष्ट पाते हुए विना मन वोली—ले। वाद मे अगले घर गये। आहार पानी के योग के सवध मे पूछा, तव कहा—मुझे तेरापथियो को रोटी देने का त्याग है। आप वोले—रोटी देने का त्याग है, पानी हो तो दो। तव उठकर पानी दिया। आकर सारी वात भिक्षु से कही। भिक्षु सुनकर वहुत हर्षित हुए।[1]

१२ दाल मिलाकर कैसे लाये?

नाथद्वारा मे १६५६ मे भिक्षु को वातरोग के कारण १३ महीने तक ठहरना पडा। एक वार मुनि हेमराजजी गोचरी गये। चने और मूग की दाल को साथ देखकर भिक्षु ने पूछा "दोनो दालो को साथ किसने किया?" आप वोले "मै साथ ही लाया हू।" भिक्षु वोले. "अस्वस्थ के लिए अलग मागकर लाना तो दूर रहा, तूने दोनो को मिला क्यो दिया?" आप वोले "अनजाने मे इकट्ठी हुई।" भिक्षु ने कडा उपालम्भ दिया। आप एकान्त मे जाकर सो गये। आप उदास हो गये। भिक्षु ने आहार कर आकर पूछा—"दोप अपनी आत्मा का दिखाई दे रहा है या मेरा?" आप वोले. "दोप तो अपना ही देखता हू।" भिक्षु वोले "ठीक है। आज के वाद सचेत रहना। उठो! आहार करो।" आपने आहार किया।[2]

१३ आचार्य भिक्षु के साथ

स० १८५४ से स० १८५७ तक के चार चातुर्मासों मे आप भिक्षु के साथ रहे। आपने वहुत ज्ञान प्राप्त किया।

"सीख कला गुणधारी हो, हुआ ओजागर भारी हो।"[3]

१४ पिसांगण का चातुर्मास

आपका स० १८६० का चातुर्मास पिसांगण मे था। वहा जो उपकार हुआ, उसका उल्लेख निम्न शव्दो मे है

जिनमत थी मति जागी हो, स्वामी दुरमति दागी हो।
भजो स्वांमी हेम सोभागी हो।[4]

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० २६२
२. वही, दृ० १६६
३ जय (हे० न०), ४।५
४. वही, ४।८

१५. सं० १८६१ के शेषकाल की घटना

जीवणजी साचोर के निवासी थे। जोधपुर आये। जयमलजी के साधुओं से फिर पाली आये। श्रावकों से कहा—अच्छे साधु बताओ। श्रावकों ने कहा—मुनि यहां आयेंगे। उनसे समझना। वे अच्छे साधु हैं। आषाढ़ में मुनि हेमराजजी व० साधुओं का शुद्ध आचार देखकर जीवनजी हर्षित हुए। अनुराग हुआ। कहने लगे—दी० आप दीक्षा दें तो घर में रहने का त्याग है। बोल, थोकड़े सीखकर घर आये। घर आज्ञा देने में इन्कार किया। जीवनजी बोले—आप आज्ञा नहीं देंगे तो भी अपने जाऊंगा। सेवा में जीवन व्यतीत करूंगा। घरवालों ने उत्कट भावना देखकर आज्ञा- दिया। आज्ञापत्र के साथ जीवनजी पाली आये। मुनि हेमराजजी वरलू थे। पाली १८६१ की फाल्गुन सुदी ३ के दिन उन्हें दीक्षा दी।

इसके बाद आचार्य भारमलजी के दर्शन कर मुनि हेमराजजी ने १८६२ का चातु जैतारण किया।[1]

१६ बहुत लोग समझे

सं० १८६२ में आपका चातुर्मास जैतारण में था। इस चातुर्मास में आपके उपदेश "नर-नारी समज्या घणा"—बहुत बहिन भाई समझे। बहुत उपकार हुआ।[2]

१७. मुनि भोपजी का संथारा

मुनि भोपजी ने सं० १८५६ में आचार्य भिक्षु से दीक्षा ग्रहण की और सं० १८६६ में

---

१. जय (शा० वि०), ३। अन्तर दो०-२ वार्तिक

"जीवणजी—साचोर रा वासी, ओसवश श्री श्रीमाल। लोहड़े-साजन जीवणजी नामे। केतले काले तेरापथी साधु सुण्या। जाण्यो गुरु देख ने करणा। पछै जोधपुर आया। स्थानक मे जयमलजी रै साधा सु चर्चा कीधी। सरधा बैठी नही। ढीला जाणने मन फाट्यो। पछै पाली आया। श्रावका ने पूछ्यो—चोखा साधु बतावो। जद श्रावकां कह्यो—पूज्य भीखणजी रा साधु हेमराजजी स्वामी पाली पधारसी। ते थाने समझावसी। आपाढ मे हेमजी स्वामी पधारचा। साधां रो शुद्ध आचार देखी हरख्या। अने राग आयो। कहै दीक्षा लेस्यू। मनै घर का आज्ञा देवै अने आप दीक्षा देवो तो घर मे रहिवाना नेम छै। जाणपणो सीख ने आपरै गाव आया। घरका ने कह्यो दीक्षा लेस्यू। माता-पिता भाई कहै आज्ञा देवा नही। जव जीवणजी वोल्या—रुपिया सारा लेई जास्यूं। सेवा करस्यू। जव न्यातीला आज्ञा रो कागद लिख दीधो, पछै पाली आया। श्रावका ने कागद वंचायो। पछै खवर थया, वरलु स्यू हेमराजजी स्वामी पाली आया। सं० १८६१ रा फागण सुदी ३ जीवणजी ने दीक्षा दीधी। पछै पीपाड भारीमालजी स्वामी रा दर्शण करी, चौमासो जैतारण (१८६२ का) कियो।

२. जय (हे० न०), ४।१०

सथारा किया। इस बीच उन्होने वहुत तपस्याए की।[1]

स० १८६६ का उनका चातुर्मास आप (मुनि हेमराजजी) के साथ पाली मे था। जल के आगार से उन्होने ५८ दिन की तपस्या की। आपने स्वहस्त से उन्हे पारण कराया। दूसरे दिन अल्पाहार लिया। रात्रि के अतिम प्रहर मे आपके चरण पकड़कर वोले "मुझे सथारा करा दे।" वहुत लोग इकट्ठे हो गये। ईश्वरदासजी वैद्य ने दर्शन किए। वे नाडी के अच्छे ज्ञाता थे। नाड़ी देखकर आपसे वोले "सथारा करा दे।" आप वोले . "एक मास करा देना सरल है, पर सथारा वहुत कठिन काम है।" ईश्वरदासजी वोले "चेले का मोह मत करे। नाड़ी की चाल को देखते हुए तीन दिन से अधिक नही निकालेगे।" उनके इस प्रकार कहने पर आपने मुनि भोपजी को संथारा कराया। साढे चार प्रहर के बाद ही सथारा पूर्ण हो गया।

पाली वर्पज छ्यासठै, हेम समीप उदार।
दिवस अठावन तप भलो, उदक तणे आगार॥
हेम करायो पारणो, दूजे दिन अल्प आहार।
पग पकड्या निशि पाछली, हेम तणा तिण वार॥
कहै मुझ प्रते कराय दो, सथारो सुखकार।
लोक वहु भेला थया, जन मन करी विचार॥
ईसरदास नाहटो, नाडी तणो जे जाण।
तेह भणी वोलावियो, नाडी देख कहे वाण॥
स्वाम सथार कराय दो, हेम कहे तिण वार।
सोहरो मास करावणो, पिण दोहरो सथार॥
मोह चेला नो मत करो, वैद कहै इम वाय।
तीन दिवस उपरत ही, ए नाडी छै नाय॥
तास कहण थी हेम मुनि, पचखायो सथार।
अणसण आयो आसरो, पोहरज साढा चार॥

सथारा के अवसर पर वहुत धर्मोद्योत हुआ।[2]

१८. वालोतरा चातुर्मास

आपका स० १८६८ का वालोतरा चातुर्मास उपकार की दृष्टि से वहुत सफल रहा। उल्लेख है "हूयो उपगार भारी हो, समज्या बहु नर-नारी हो।"[3]

१९. कृष्णगढ चातुर्मास

सवत् १८६८ के पाली चातुर्मास के वाद शेपकाल मे आचार्य भारमलजी मुनि हेमराजजी और अन्य अनेक सतो[4] के साथ कृष्णगढ पधार कर नये शहर मे ठहरे। उस समय

---

१. जय (शा० वि०), १। अन्तर् दोहे १-१९
२. वही, १। अन्तर् दोहे २०-२७
३. जय (हे० न०), ४।२२
४. श्रावक दृष्टान्त, दृ० १५ मे १० साधुओ का उल्लेख।

चर्चा के लिए अन्य सम्प्रदायों के ३५ साधु बगीचे में इकट्ठे हुए।[1] आचार्य भार खेतसीजी, हेमराजजी और रायचन्दजी आदि साधुओं के साथ चर्चा हेतु वहां गये।[2] '? जीव है या अजीव' विषय पर चर्चा चली। आचार्य भारमलजी जवाब दे रहे थे, त' हो-हल्ला कर उठ खड़े हुए।

आचार्यश्री ने आपका सं० १८६६ का चातुर्मास माधोपुर का निश्चित किया ' स्वयं चातुर्मास के लिए जयपुर पधारे।

आपने माधोपुर की ओर विहार किया। कई कोस[3] जा चुकने पर बनास नदी ? गई। यह रुकावट देख मन में विचार किया—कृष्णगढ में उन साधुओं ने गुटबन्दी कर ? हो-हल्ला मचा दिया। वहीं चातुर्मास क्यों न किया जाय? ऐसा विचार कर वे कृष्ण॰ . लौट आये। आषाढ महीना प्रायः शेष होने पर था तब वहां पहुंचे और वहीं सं० १८६६ . चातुर्मास कर दिया। द्वेपियों के क्रोध का ठिकाना न रहा। आपके पास आ अंट-संट बोलने लगे—जब हमारे पंडित संत यहां से विहार कर चुके हैं तब आप छल कर यहां चातुर्मास करने आये हैं। यहां से तुरन्त विहार कर दें अन्यथा आपके पात्र चौहट्टे में ठोकरें खायेंगे। क्षमासिन्धु मुनि हेमराज जी शान्त रहे। शहर में ठहरने की बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई।[4]

एक दूकान दो जनों के साझे की थी। उनमें झगड़ा था। उनकी आज्ञा से वहां ठहरे। सम्मुख धूप आती, पर कष्ट की कोई परवाह नहीं थी। धीरे-धीरे रात्रि में अनेक लोग व्याख्यान सुनने आने लगे। संवत्सरी पर एक भी पौषध नहीं हुआ। पर लोग धीरे-धीरे समझने लगे। दीवाली पर पांच पौषध हुए।

जयाचार्य ने इस घटना का वर्णन निम्न शब्दों में किया है :

कृष्णगढ आया वही, भारीमाल नैं हेम। बहु मुनि थकी पधारीया, सेव करी धर प्रेम॥
भेषधारी तिण अवसरे, करण कदाग्रह ताहि। जणा पैंतीस रै आसरै, आया बगीची मांहि॥
भारीमाल नैं खेतसी, हेम अनैं ऋपिराय। आदि बगीची आवीया, चरचा करवा तांय॥
आश्रव नी चरचा थई, भारीमाल दे जाब। भेषधारी हाको करी, उठ्या तुरत सताब॥
झूठो ही गिलो करी, आया जिण दिश जाय। संता समभावे करी, सह्यो परिसह ताय॥
वर चौमासो हेम नैं, सैहर माधोपुर सार। आप भलावी आवीया, जयपुर सैहर मझार॥
हेम माधोपुर नी दिशा, विहार कीयो सुविमास। घणा कोश रै ऊपरै, आवी नदी बनास॥
नदी देख मन चिंतव्यो, हरिगढ माहि प्रसिद्ध। झूठा रे झूठा सही, इण विध गिलो कीध॥
तो हिव तिण हीज सैहर में, चौमासो द्यूं ठाय। इम चिंतव आया वही, कृष्णगढ रे माय॥

---

१. श्रावक दृष्टांत, दृ० १५ के अनुसार ३५ साधुओं में नानगजी, निहालजी, उगरजी, अमरसिंहजी आदि साधु थे।
२. वही, दृ० १५ में २ साधुओं से पधारने का उल्लेख है, पर वह गलत लग रहा है।
३. वही, दृ० १५ में २२ कोस का उल्लेख है।
४. वही, दृ० १५ में इस संबंध में निम्न उल्लेख है : अनुमति मांगकर एक हाट में ठहरे। विद्वेपियों ने मालिक पर दबाव डाला। उसे हाट खाली करवाने के लिए बाध्य किया। दूसरी हाट माग कर ठहरे, तब वहां सजीव मिट्टी डलवा दी। बाद में उम्मेदमलजी सरावगी की हाट में ठहरे।

हेम ऋषि चिहुं सत सू, आसाढ छैहडे आय । उपगारी गुण आगला, दीयौ चौमासो ठाय ।।
भेषधारी तिण अवसरै, क्रोध चढ्या अधिकाय । हेम समीपै आय नै, अगल डगल कहैवाय ।।
पडित साधु माहरा, विहार करि गया तास । थे छल करने आवीया, इहा करवा चउमास ।।
के तो विहार इहा थकी, परहो कीजो ताहि । नही तर पात्रा थाहरा, रुलसी चौहटा माहि ।।
हेम क्षमा रा सागरू, गिणत न राखै काय । जायगा ऊतरवा तणी, दुर्लभ सैहर रै मांय ।।
दुकान दोय जणां तणी, झगडो माहो माहि । आज्ञा ले तिण हाट मे, कीयो चौमासो ताहि ।।
स्हामो आवै तावडो, सह्यो कष्ट अधिकाय । बहुजन वृन्द सुणै सही, देशना निशा माय ।।
सवछरी नो एक ही, पोसह न हुवो कोय । दीवाली ना दीपता, पोसह पच सुजोय ।।[1]

इस चातुर्मास के बाद इस क्षेत्र की नीव लगी ।

२०. जयपुर में आचार्यश्री के पास

आचार्य भारमलजी स० १८६९ मे अस्वस्थता के कारण चातुर्मास के बाद फाल्गुन तक जयपुर विराजे । वही आप (मुनि हेमराजजी) ने आचार्यश्री के दर्शन किए । आचार्यश्री ने सरूपचन्द जी को पौष वदि ९ के दिन मोहनवाडी मे दीक्षा दी । अपूर्व दीक्षा महोत्सव हुआ । जीतमलजी को दीक्षा देने के लिए ऋषि रायचन्दजी को भेजा । माह वदि ७ के दिन दीक्षा सम्पन्न हुई । फाल्गुन वदि ११ के दिन माता कल्लूजी सहित भीमजी को आचार्यश्री ने दीक्षित किया । इस तरह डेढ महीने मे चारो (माता सहित तीन भाई) की दीक्षा सम्पन्न हुई ।[2] मुनि हेमराजजी इस अवधि मे आचार्यश्री के साथ जयपुर मे थे ।

२१. इन्द्रगढ चातुर्मास

माघ वदि ७ स० १८६९ के दिन मुनि जीतमलजी की दीक्षा के बाद आचार्य भारमलजी ने जयपुर से विहार किया । अस्वस्थता दूर हो चुकी थी । नवदीक्षित मुनि सरूपचन्दजी और जीतमलजी को आपने मुनि हेमराजजी को सौपा ।

जयपुर से आचार्यश्री माधोपुर पधारे । आप (मुनि हेमराजजी) भी कोटा, बूदी होते हुए माधोपुर पधारे । आचार्यश्री ने आपका चातुर्मास इन्द्रगढ का फरमाया ।

मुनि सरूपचन्दजी और जीतमलजी आपके पास पढने लगे ।

ताम स्वाम भारीमालजी, विहु वधव नै जाण कै ।
सूंप्या हेम ऋषि भणी, परम विनीत पिछाण कै ।।
अति उपगार करी गणि, कारण मिटीया ताय ।
विहार करी जयपुर थकी, माधोपुर मे आय ।।१।।
हेम कोटा थी आवीया, भारीमाल रै पास ।
गणपति नी आज्ञा थकी, इन्द्रगढ चउमास ।।२।।

---

१. जय (स० न०), २।१-१७ । तथा देखिए श्रावक दृष्टान्त, पृष्ठ १५
२. वही ,४।२४-३०

भारीमाल पै भीम ऋषि, तसु वधव जे दोय।
हेम ऋषि पासै भणै, अमल चित्त अवलोय।।४।।[1]

इन्द्रगढ चातुर्मास मे मुनि सरूपचन्दजी और जीतमलजी आपके अनुशासन ज्ञानाभ्यास करते। "जीत सरूप मुनि हेम पे, करता ज्ञान अभ्यास"[2], "तत्त्वज्ञान जप उद्यम करत अपार"[3] आदि उल्लेख मुनि हेमराजजी की ज्ञान-दान की महिमा को करते है।

२२. आचाराग का अध्ययन

मुनि हेमराजजी के स० १८७४ के गोगुन्दा चातुर्मास मे मुनि सरूपचन्दजी, व जीतमलजी तीनो भाई उनके साथ थे। तीनों समय व्याख्यान होता था। वहुत लोग वोधित हुए। सवत्सरी पर्व के दिन भाइयो मे १२७ पौषध हुए। वाइयो मे भी वहुत पौषध तप थोकडे हुए।

मुनि हेमराजजी, सरूपचन्दजी, जीतमलजी, मोजीरामजी ने द्वितीय आचारांग सीखा इस चातुर्मास मे सतीदासजी श्रावक तीनो समय व्याख्यान सुनते रहे। उन्होने अनेक प्रकार वोल थोकडे सीखे। न्याययुक्त चर्चाए धारण की। शील व्रत ग्रहण किया। और भी त्याग, प्रत्याख्यान अगीकार किए। वे नित्य सामायिक और प्रतिक्रमण करते। उनके मन मे तीव्र वैराग्य प्रस्फुटित हुआ। दीक्षा लेने की भावना जागृत हुई।[4]

इस विषय मे जयाचार्य ने लिखा है :

चौमास माहि कर चिमत्कार, हेम कियो तिहा थी विहार।
श्रावक धर्म पालै सतीदास, अति चारित लेवा हुलास ।।सु०।।[5]

२३. एक मास विगय का त्याग

स० १८७४ के गोगुदा चातुर्मास मे आप (मुनि हेमराजजी) के साथ मे कई संत उग्र प्रकृति के थे। आपने सतो से कहा—यदि गृहस्थो के सुनते हुए आपस मे तेजी से वोलेगे और गृहस्थ उस दोप को वतावेगे तो परस्पर इस प्रकार जोर से वात करने वाले साधुओं को एक मास तक छहों विगयो का त्याग करना होगा। एक वार दो संत तेजी से वोल रहे थे। मोतीजी नामक एक दीक्षार्थी श्रावक ने सुन लिया और मुनि हेमराजजी से इस वात की

---

१. जय (स० न०), ४।१४; ५।दो० १-२,४
२. मघवा (ज० सु०), ५।दो०५
३. वही, ५।२
४. (क) शान्ति विलास, ३।दो० १-४, गा० १-६,८
   (ख) जय (हे० न०), ५।२६
   (ग) मघवा (ज० सु०), ५।१६ .
   त्रिहुं वंधव भेला तिहां हो मु०, जीत सरूप सुजोय।
   द्वितीय श्रुतस्कध धुर अग नो हो मु०, भण्या हर्ष मन होय के ।।
५. शान्ति विलास, ३।११

शिकायत की। मुनि हेमराजजी ने दोनो सतो को प्रेमपूर्वक समझाकर एक मास के लिए छहो विगय त्याग करने को प्रेरित किया। इस घटना का वर्णन जयाचार्य ने निम्न शब्दों में किया है.

समत अठारे चीमतरे, हेम जीत चऊमास।
सैहर गोवंदै नव मुनि, अधिको धर्म उजास॥
मोती दर्शण कारणै, आयो छै तिहां चाल।
हेम तणा दर्शण करी, तन मन हुओ खुशाल॥
करडी प्रकृति रा धणी, देख्या सत जिवार।
तिण चऊमासै मुनि भणी, हेम कहै सुविचार॥
माहोमाहि उतावला, गृहस्थ सुणता बोले एह।
तेह तणो जे खूचणो, कोई गृहस्थ काडेह॥
ते दोनूइ साधां तणा, एक मास लग एथ।
छऊ विगेरा त्याग छै, रहिजो अधिक सचेत॥
तब मोती दर्शण कीया, एक दिवस अवलोय।
बे साधा ने उतावला, देख्या बोलता सोय॥
हेम भणी आवी कह्यो, तब विहु मुनि नै हेम।
एक मास छऊ विगय नै, छोडावी धर प्रेम॥[1]

२४ घुटने का गोला उतरा

स० १८७५ के पाली चातुर्मास मे आपके साथ के मुनि जीतमलजी ने अभिग्रह किया—"आचार्यश्री के दर्शन करू, तब तक के लिए पाच विगय का त्याग है।"[2]

इस अभिग्रह के ग्रहण करने के १३ महीने बाद ही दर्शन हो सके। इतने महीनों तक सर्व विगय का परिहार रखा। घटना इस प्रकार घटी ·

पाली चातुर्मास के बाद विहार कर मुनि हेमराजजी देवगढ पधारे। पचमी से वापिस आते समय अचानक गाय ने चोट लगा दी। घुटने का गोला उतर गया। साधु कबल की झोली मे उठाकर आपको शहर मे लाए। वैद्य के बताये अनुसार सरूपचन्दजी ने पैर सीधा कर गोला बैठा दिया। पीडा देखकर करुणावश पैर को ढीला छोड दिया। इससे कुछ कसर रह गई। उक्त कारण से नौ महीने देवगढ मे रुकना पडा। विहार न हो सकने के कारण चातुर्मास भी देवगढ मे किया। इस तरह १३ महीने दर्शन नही हो पाये।[3]

उक्त चातुर्मास का वर्णन उपस्थित करते हुए आचार्य मघवा ने लिखा है

किंचित कसर तिण सू रही, सुरगढ हुवो चोमास।
नव मास आसरे रहिणो हुवो रे, थयो अति धर्म उजास॥

---

१. मोतीचन्दजी रो पचढालियो, ४।१-७

२. मघवा (ज० सु०), ६।१

पाली शहर मे जय कियो रे, अभिग्रह एह उदार।
दर्शण किया विण पूज्य ना रे, पच विगय परिहार॥

३. वही, ६।१-७

वर्ष छिहतरे हेमनो रे, नव श्रमण संग चौमास।
जय आदि त्रिहु वधव तदा रे, करे तप ग्यान प्रकाश ॥
इक सौ पट् दिन आछ नो रे, पीथल तप सुविचार।
वलि सुधारस वरषती रे, हेम वाणी सजल जलधार ॥
गुण वैराग्य पाया घणा रे, एक साथे सुविचार।
त्याग किया घर मे रहिवा तणा रे, पच जणा धर प्यार ॥[1]

२५ तीन दीक्षाओ का वृत्तान्त

आप (मुनि हेमराजजी) के उपदेश से पाच व्यक्तियो की दीक्षा लेने की पाचो ने यावज्जीवन शीलव्रत ग्रहण किया। एक वर्प के वाद घर मे रहने, घर की र और व्यापार करने का त्याग किया।[2]

यह बात शहर मे फैली, तव तहलका मच गया। द्वेष जाग उठा। सतों पर कटु वच प्रहार किया जाने लगा। सतो ने सब समभाव से सहन किया। रावजी से पुकार की गई, उन्होने रोक लगाने से इन्कार कर दिया। ज्ञातियो के परीपह से दो जन विचलित हो रत्नजी, शिवजी और कर्मचन्दजी दृढ रहे।

सुण वैराग्य पाया घणा रे, एक साथे सुविचार।
त्याग किया घर मे रहिवा तणा रे, पच जणा घर प्यार ॥सु॰।
ए बात शहर मे विस्तरी रे, तव लागु हुआ वहु लोग।
कटुक वचन ना मुनि तदा रे, परिसह सह्या शुभ योग ॥सु॰॥
द्वेषी लोका रावजी कने रे, किधी विविध प्रकार।
पिण रावजी कह्यो लोका भणी रे, हु तो नही वरजू लिगार ॥सु॰॥
न्यातीला ना परिसह थकी रे, तीन सेठा रह्या ताम।
शिवजी रत्न कर्मचन्दजी रे, रह्या अति दृढ परिणाम ॥सु॰॥[3]

तीनो को ही अभिभावकों की ओर से दीक्षा की आज्ञा वडे कष्ट से प्राप्त हुई। रत्नजी और शिवजी को पहले प्राप्त हो गई। दोनों का जुलूस वडे ठाट-बाट से निकला। दोनो अश्व पर आरूढ थे। आगे गज और वाजे थे। गोकुलदासजी राव ने रतनचन्दजी और शिवजी के हाथ मे दो-दो रुपये मांगलीक रूप मे दिए और कहा—यह मेरी ओर से वोहनी है। पताशे बांटना। साधु-चरित्र का अच्छी तरह से पालन करना। इस तरह रावजी ने दीक्षा-महोत्सव किया।[4]

कर्मचन्दजी को उनके पितामह और पिता दीक्षा की आज्ञा नही दे रहे थे। पितामह ने मुनि हेमराजजी को दीक्षा न देने की विनती की। आप बोले—तुम्हारी आज्ञा विना मै दीक्षा

---

१. मघवा (ज॰ सु॰), ६।-१०
२. (क) जय (हे॰ न॰), ५।३५-३६
   (ख) मघवा (ज॰ सु॰), ६।१०
३ मघवा (ज॰ सु॰), ६।१०-१२,१४
४. कर्मचन्द गुण वर्णन ढा॰, दो॰ ३।७

कैसे दूगा ? पितामह ने कर्मचन्दजी की दीक्षा लेने की भावना को कुचलने के लिए कई उपाय किए, पर वे विचलित नही हुए। पिता ने रावजी से पुकार की "मेरे एक ही पुत्र है। उसके दीक्षा लेने से मेरा वश ही उठ जायेगा। उसे दीक्षा से रोके। पितामह ने भी पुकार की। रावजी गोपालदासजी ने कर्मचन्दजी को बुलाकर बहुत समझाया। कर्मचन्दजी बोले—आप मुझे दीक्षा से न रोके। मै वैराग्य भावना से दीक्षा ले रहा हू। आपने मुझे जबरदस्ती रोका, तो आपको शाप लगेगा। रावजी बोले—मै तुम्हे नही रोकूगा। जबरदस्ती रोकना महापाप है। ऐसा कह उन्हे विदा किया। बोले—इसकी गुद्दी मे भगवान विराजमान हुए हैं। दादा को बुलाकर कहा—कर्मचन्द तुम्हारा आदमी है। समझा सको तो समझा लो, तुम साधुओ को कुछ नही कह सकते। यदि तुमने कुछ कहा तो मै तुम्हे समझ लूगा। साधुओ का कोई दोष नही है। वे तुम्हारी आज्ञा बिना दीक्षा देने वाले नही है। इसके बाद रावजी ने हेमराजजी स्वामी से कहलवाया—आप खुशी से विराजे। सदा माला फेरते है, उससे मेरे नाम की दो माला अधिक फेरे। दादा बडा विलाप करने लगा। पर कर्मचन्दजी ने उनकी एक भी बात नही मानी। ऐसी तीव्र भावना को देखकर आखिर विवेक जागा और दादा ने दीक्षा की आज्ञा दी।

रावजी ने कर्मचन्दजी को शकुन रूप मे दो रुपये दिए और बोले—इनके पताशे बटा देना। सयम का भली भाति पालन करना।

दीक्षा महोत्सव मे रावजी ने लवाजमा भेजा और बडे उत्सव के वातावरण मे मुनि हेमराजजी ने रतनचन्दजी, शिवजी और कर्मचन्दजी को एक साथ दीक्षा दी।

जयाचार्य ने इस रोचक प्रसग को निम्न रूप मे उपस्थित किया है·

करमचन्दजी वासी देवगढ तणा, ओसवाल पोकरणा जेह।
दिक्षा ने त्यारी थया, पिण दादो आज्ञा नही देह॥
दादो हेम समीपै आयनै कहै थारा नाम री माला फेराय।
बार वरस थई गया मुझ पोता ने दिक्षा मते दिवाय॥
जरै हेम पाछो-फुरमावियो बारा वरस थी आवो फलत।
सो थारो भजन पिण सफलो थयो पिणे म्हे तो थारी-
आज्ञा विना तो दिक्षा न दियत॥
अनेक उपाय किया दादै कर्मचन्दजी ने राखवा
अते रावजी गोपालदासजी ने करी पुकार।
जब रावजी कर्मचन्द ने बोलाय. ने अति समझाव्यो तिणवार॥
कर्मचन्दजी जवाब पाछा करी कह्या रावजी ने मत वरजो आप।
वरजोला तो भक्ति भगवान री करवा उठ्या तणी
सतीपालो सो लागैला आपनैं सराप॥
जब रावजी कहै म्हे तो वरजा नही, वरजा रो मोटो है पाप।
इम कही सीख दीधी परी, कहै इणरी गुदी पर भगवान विराज्या आप।
रावजी कहै दादा भणी, म्हां तो गगाजी जावा री त्यारी कराय।
थारो मिनख है जिणने रूडी रीत सू, समझावणी आवै तिम समझाय॥
पण साधा ने तो काई कहज्यो मती, कहोला तो हू समझूला आय।
साधां मे दोष अछै नही, थारी आज्ञा विना तो दिक्षा न दिराय॥

पछै रावजी हेम स्वामी ने कहावियो, आप खुशी थका विराज्या रहो
सदा माला फेरो तिण थकी, दोय माला अधिकी फेरज्यो रावजी रै
पछै दादो मोह विलाप कियो घणो, पिण कर्मचन्दजी न मानी
जरै आज्ञा दादै दीधी परी, आणी चित्त विवेक
पछै रावजी कर्मचन्दजी भणी, सुकन रूप रुपया दोय दिराय
कहै एहनी पतासी बाटज्यो, जोग चोखो पालज्यो इम भोलावण दिराय।
दिक्षा महोछव मे रावजी, लवाजमो मेलियो।
वली उच्छव अधिक कराय, रतनजी शिवजी कर्मचन्दजी।
ए त्रिहु दिक्षा संग थाय॥[1]

'हेम नवरसो' मे तीनो की दीक्षा का समुच्चय-वर्णन निम्न प्रकार मिलता है :

तिहा थयो उपगार सवायो रे, विविध उपदेश दे मुनिरायो रे।
पाचारा परिणाम चढायो॥
जावजीव सील अदरायो रे, वर्स उपरंत त्याग करायो रे।
घर की रोटी व्यापार छोडायो॥
द्वेषी करवा लागा हाहाकारो रे, रावजी कनै कीधी पुकारो रे।
त्या कह्यो हू तो न वरजू लिगारो॥
साधा नै रावजी कहिवायो रे खुसी थका सहेजो सैहर माह्यो रे।
पिण आप मन मे म आणजो कायो॥
रह्या तीन जणा दिढ सारो रे, त्यातीला हूवा काया निवारो रे।
जव आग्या दीधी श्रीकारो॥
रावजी दिख्या महोच्छव करायो रे, दो-दो रुपया दिया कर माह्यो रे।
म्हारी तरफ सू पतासी वंटायो॥
चोखो पालजो जोग श्री कारो रे, गोकलदासजी रा वैण धारो रे।
हेम दीधो है सजम भारो॥[2]

देवगढ चातुर्मास के आरभ मे ९ सत थे। मार्गशीर्ष मे उक्त तीन दीक्षाओ के सपन्न होने से देवगढ से विहार किया, तव साधुओं की सख्या १२ थी।

नव साधा स् हेम ऋषि, 'सुरगढ' मे चउमास।
तीन सत दिख्या ग्रही, अधिको धर्म उजास॥[3]

मुनि हेमराजजी आदि वारह साधुओ ने देवगढ से विहार कर गगापुर मे आचार्यश्री के दर्शन किए। तेरह महीनो के वाद मुनि जीतमलजी का अभिग्रह पूरा हुआ।

ए तीनू नें दीक्षा देई करी रे, द्वादस मुनि सुजाण।
हेम जीत आदि भारीमाल ना, दर्शन किया गगापुर आय॥सु०॥

---

१. कर्मचन्दजी की ढाल, १६९-१८०
२. जय (हे० न०), ५।३५-४१। तथा देखिए
मघवा (ज० मु०), ६।१५-१८
३. जय (स० न०), ६।दो०१

त्याग इक विगय उपरत नु रे, रह्यो तेरे मास उन्मान।
दर्शन कर्या अभिग्रह फल्यो रे, लघु वय दृढमन जाण।।सु०।।[1]

आचार्यश्री अत्यन्त हर्षित हुए और मुनि हेमराजजी की प्रशसा की

१. बारह साधा सु हेम ऋषि, गणपति दर्शन कीध।
स्वाम प्रशसा करे तदा वर उपगारी प्रसिद्ध।।[2]
२ पछै आया भारीमाल जी पास, भारीमाल जी हुवा हुलास।
जाण्या हेम नै महायशधारी, उग्रगामी अधिक उपगारी।।[3]

२६. मुनि सरूपचन्दजी का सिघाडा

सवत् १८७६ शेषकाल मे मार्गशीर्ष मास के बाद की घटना है। आचार्य भारमलजी ने अति प्रसन्न मन से मुनि सरूपचन्द जी का सिघाडा किया। मुनि सरूपचन्दजी ने निवेदन किया—स्वामीनाथ! मेरा मन मुनि हेमराजजी की सेवा मे रहने का है। आचार्यश्री ने सरूपचन्द जी से कहा—तुम्हे हेमजी से बोलने का त्याग है। मुनि हेमराजजी से बोले—तुम्हे भी सरूप से बोलने का त्याग है। मुनि जीतमलजी सरूपचन्दजी से बोले—गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य करे। सरूपचन्दजी ने आचार्य श्री की आज्ञा को शिरोधार्य किया।

भारीमाल स्वामी तदा, वारू करी विचार, अति प्रसन्न चित्त सू कियो, सरूप नो सिघाड।
सरूप भाषै स्वामजी, निसुणो मुझ अरदास, हेम सेव करवा तणो, मो मन अधिक उल्हास।।
भारीमाल कहै हेम थी, बोलण रा पचखाण, हेम भणी पिण त्याग ए, स्वाम कराया जाण।
भाषै जीत सरूप ने, पूज्य तणी ए आण, अगीकार कीजै सखर, लीजै सत सुजाण।।
ताम सरूप अगीकरी, स्वाम आण सुखकार, इम चित प्रसन्न थी कियो, सरूप नो सिघाड।।[4]

इस तरह बडे आग्रह और प्रसन्न मन से आचार्य भारमलजी ने मुनि सरूपचदजी का अलग सिघाडा कर पाच सतो से उनका स० १८७७ का चातुर्मास पुर (मेवाड) का फरमाया और मुनि हेमराजजी का ८ सतो से उदयपुर का।

सरूप सहित मुनि पच वे, आणी अधिक हुलास।
अति आग्रह करी भोलावियो, पुर मे प्रगट चोमास।।
हेम भणी उदयापुरे, चतुर्मास सुविचार।
जय आदि मुनि अष्ट सग, करावियो गुणकार।।[5]

२७ अपने प्रत्याख्यान प्रकट कर दो

मुनि हेमराजजी कुछ दिन आचार्यश्री की सेवा मे रहकर विहार कर विचरते हुए गोगुन्दा पधारे। तीनो वक्त व्याख्यान होता था। ग्रीष्म के दिन थे।

---

१ मघवा (ज० सु०), ६।१६-२०
२ जय (म० न०), ६।दो०३
३. शान्ति विलास, ३।१६
४. जय (स० न०), ६।दो०४। तथा देखिए मघवा (ज० सु०), ७।दो०१-२
५ मघवा (ज० सु०), ७।दो०२-३

सतीदासजी के परिणाम अडिग थे। वे नियमपूर्वक व्याख्यान सुनते। आप (मुनि हेमराजजी) और मुनि जीतमलजी ने सतीदासजी से कहा—तुम्हे शील और व्यापार न करने के व्रतों को प्रकट कर देना चाहिए।

एक दिन रात्रि मे आप व्याख्यान दे रहे थे। मुनि जीतमलजी ने सतीदासजी से कहा—तुम अपने व्रत स्वय ही प्रकट कर दो। सतीदासजी तुरन्त ही उठे और जनवृन्द के वीच उच्च स्वर से वोले—मुझे व्यापार करने और कुशील सेवन का यावज्जीवन प्रत्याख्यान है।

इस अवसर पर आप (मुनि हेमराजजी) ने शील की महत्ता पर वड़ा प्रकाश डाला।

विहार करी ने विचरता शहर गोघुदे स्वाम।
उष्णकाल मे आविया धर्म मूर्त गुणधाम ॥
नर नारी हरष्या घणा त्रिहू टंक वखाण ताम।
निसुणै वाणी निर्मली शाति अमित परिणाम ॥
शील प्रकट करनो सही, विणज करण रो नेम।
सतीदास जी ने कहै जीत ने ऋषि हेम ॥
सतीदासजी तिण समै स्वाम सील दिलधारी।
सुखकारी वयण सुहाया हो लाल ॥
पिण सरम लज्या अति सुदरु नेम प्रगट करवानो।
अति कठिन पणै अधिकाया हो लाल ॥
कचण ऋषि निशनै समै सरस वखाण सुणावै।
भल भावै भिन २ मेवा हो लाल ॥
जीत कहै सतीदासजी ने, नेम प्रगट झट कीजै।
यश लीजै तु स्वयमेवा हो लाल ॥
जीत वचन सुण उठीयो, वहु जन वृन्द सुणता।
ऊचै स्वर शब्द उचारै हो लाल ॥
विणज करण नै कुशील नो जाव जीव लग जाण।
पचक्खाण अछै एह माहरै हो लाल ॥
इम कही मही वेठो तदा, तिह समै हेम मुनिरायो।
सुखदायो शील दिढायो हो लाल ॥
साचो है शील ससार मै, विमल निमल ए गाथा।
मुखदाता कलश चढायो हो लाल ॥[1]

गोगुन्दा मे एक मास रहकर वहा से विहार कर आप वड़ी रावलिया पधारे[2] और वहाँ से उदयपुर चातुर्मास के लिए प्रस्थान किया।

---

१. शान्ति विलास, ४।दो० ३-५, गा० १-७

२. वही, ४।८

मास एक रही महामुनि, वड़ी रावलिया आया,
सुखदाया हेम मवायो लाल ॥

२८. उदयपुर में

स० १८७६ के आचार्य भारमलजी के पुर चातुर्मास मे उदयपुर के महाराणा की उदयपुर पधारने के लिए विनती आयी। आचार्यश्री ने विनती स्वीकार की। चातुर्मास समाप्त होने के बाद विहार करते-करते काकरोली पधारे। आचार्यश्री ने मुनि हेमराजजी, रायचन्दजी आदि १३ सतो को उदयपुर भेजा। वहा वडा उपकार हुआ। मुनि हेमराजजी आदि एक महीना वहा रहे। बाद मे गोगुन्दा, रावलिया होते हुए आचार्यश्री के पास पहुचे।

छिहतरे वर्ष पुर मझें, भारीमाल रिपराय।
आई हिन्दुपति नी विनती, करी घणी नरमाय॥
उदयापुर पधारिये, दुनिया साह्मो देप।
दुष्ट साह्मो नही देखिये, क्रिपा करो विशेष॥
सामी मानी वींणती, चौमासो उतरिया सोय।
विचरत-विचरत आविया, सहर काकरोली जोय॥
हेम रिप रायचन्दजी, तेरे साध तिवार।
पूज हुकम सू आविया, उदयापुर सेहर मझार॥
उदयापुर आये नम्यो, हिन्दुपति हरप सहीत।
उपगार हुवो त्या अति घणो, जाणे चौथा आरानी रीत॥
एक मास रहि उदियापुर मे, गोघूदे रावलिया कर उपगार।
सूखे समाधे साधजी, भेट्या भारीमाल अणगार॥[1]

२९. उदयपुर चातुर्मास

उदयपुर के दीवान भीमसिहजी की विनती पर आचार्य भारमलजी ने स० १८७७ का मुनि हेमराजजी का चातुर्मास उदयपुर का फरमाया। आप (मुनि हेमराजजी) और जीतमलजी आचार्य श्री के इस आदेश से वडे प्रसन्न हुए और आठ सतो से वहा पधारे।

उदयपुर के महाराणा 'हिन्दूपति' असवारी (जुलूस) से आकर हाथ जोडकर वदना किया करते।

दीवान भीमसिहजी ने चातुर्मास भर अति भक्तिभाव से सेवा की। उदयपुर मे तप, जप, ज्ञान की त्रिवेणी वहने लगी।

मुनि वर्धमानजी ने १०४ दिन की तपस्या की। इस तरह वडा उपकार हुआ।

उदियापुर अडसी तणो, दीपै भीम दिवाण।
तास विनती तिण समैं, आई तेह पिछाण॥
भारीमाल भलावियो, सखर चोमासो सार।
उदियापुर आणद सु, करो हेम गुणकार॥
हेम जीत सुण हरखिया, विहार करी सुखवासो।
उदियापुर कियो चोमासो हो लाल॥
अष्ट ऋषि गुण आगला, तप जप ज्ञान अभ्यासो।
काई अधिको धर्म उजासो हो लाल॥

---

१ हेम (भा० च०), ५।दो० ४-६

सखरो वर्ष सततरो वृद्धमान तप कीधो।
यश लीधो धर्म विहमी हो लाल॥
दिन एक सो च्यार किया भला, धोवण पाणी आगारे।
काई चास आछ अन्न छडी हो लाल॥
हिंदुपति हद रीत सु, असवारी मे आणद।
कर जोडी हेम नै वंदे हो लाल॥
नित्य प्रति मेवा निर्मली, भीमसिघ दिवाणो।
महाराणो मुनि मुख कदै हो लाल॥
धर्म उद्योत हुवो घणो, भारीमाल पून्य नीरा।
शिष्य नोको हेम हजारी हो लाल॥
तारन मुद्रा देखी करी, चिमत्कार जन पाया।
मन भाया अधिक उदारी हो लाल॥[1]

महाराणा को वडा हर्ष हुआ। दीवान भीमसिहजी ने चातुर्मास भर अतिशय भक्ति-भाव से सेवा की। वे भक्ति-भाव से वदना नमस्कार करते।

उदियापुर धर्म उजासो रे, सततरे कियो चौमासो रे।
हिन्दूपति हूवो अधिक हुलासो॥
भीमसीघ भगत हद कीधी रे, नमस्कार वंदणा प्रसिधी रे,।
तिण सूं हुई घणी धर्म वृधी॥[2]

आचार्य मघवा ने लिखा है

धर्म उद्योत हुवो अति सखरो, असवारी माही अमदे।
राणा भीमसिघजी हेम आदि ने, वार वार करे नमस्कार आनदे॥
ए तो हेमराज मुनिराया रे, भविक जीव मन भाया।
ज्यारे सग जीत सुखदाया रे, जाझा झड जमाया॥
असवारी नो असक घणु जसु, मुनि देखी हर्ष अपारो।
इहा भला पधार्‍या भला पधार्‍या, इम कहे वार वारो॥ए०॥[3]

महाराणा वडे प्रसन्न रहे। भीमसिहजी भक्तिभावपूर्वक अपने अनोखे ढग से नित्य-प्रति वदना करते रहे।[4]

३०. सतीदासजी की प्रतिज्ञा और दीक्षा

सवत् १८७७ के उदयपुर चातुर्मास के वाद मुनि हेमराजजी ने मुनि जीतमलजी आदि के साथ गोगुन्दा की ओर विहार किया। मार्गशीर्ष महीने मे वहा पहुचे। सतीदासजी ने मुनि

---

१. शान्ति विलास ढा० ४।दो० १,२ . गा० १६-२३। तथा देखिए, मघवा (ज० सु०), ७।१-४
२ जय (हे० न०), ५।४६-४७
३. मघवा (ज० सु०), ७।३-४
४. जय (हे० न०), ५।४६-४७

जीतमलजी से दीक्षा की अनुमति न मिलने तक पगडी धारण करने का त्याग किया।

कल्प तक रहकर वहा से विहार कर मुनि हेमराजजी वडी रावलिया पधारे।

इतलै मृगशिर मास मे रे लाल, हेम ऋषि सग जीत।
गोघुदे आया गुणी रे लाल, परम धरम सु प्रीत॥
हलुकर्मी अति हरपिया रे लाल, वाण सुणी विकसत।
सतीदासजी ने तिण समै रे लाल, आयो वैराग्य अत्यन्त॥
आज्ञा आवै ज्यां लगै रे लाल, पाग तणा पच्चक्खाण।
जीत कराया जुगत सु रे लाल, सखर पणै सुविहाण॥
काल कल्पतो रही करी रे लाल, विहार कियो तिणवार।
वडी रावलिया पधारिया रे लाल, हेम खेम करतार॥[1]

वहुत छोटी आयु से ही सतीदासजी के मन मे वैराग्य की भावना जागृत थी। उन्होने कई प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये। विवाह करने का त्याग कर दिया। जब यह बात प्रकट हुई, तो घरवालो को वडा क्षोभ हुआ।

सतीदासजी को कच्चा जल ग्रहण करने का त्याग था। माता ने एक बार भोजन के बाद पाच घटे तक उन्हे पक्का जल नही दिया। सचित्त पानी पिलाने की चेष्टा की, पर उन्होने अपने प्रत्याख्यान को नही तोडा।

एक दिन सतीदासजी की माता ने क्रोध के वश हो कहा—तुम विवाह नही करोगे तो मैं कुए मे गिरकर प्राण दे दूगी। सतीदासजी घबराये और कही अनिष्ट न हो जाय, इस आशका से मन न होते हुए भी विवाह करना स्वीकार कर लिया। देरी न करने के इरादे से मुहूर्त दिखा कर विवाह के लिए नजदीक दिन नियत कर लिया गया। सध्या समय वे कुछ लोगो के बीच बैठे, तब चर्चा सुनी कि त्याग भग करने वाले को इहलोक-परलोक दोनो मे कैसी दुर्गति होती है। वे सजग हुए। एक बनौला हो चुका था। उन्होने विवाह करने से इन्कार कर दिया। उनके श्वसुर उपस्थित हुए। उन्होने कहा—सतीदासजी दीक्षा न लेने का वचन देगे, तब ही मै अपनी पुत्री का विवाह उनके साथ करूगा, अन्यथा नही। गाव के पच इकट्ठे हुए। सतीदासजी ने पचो से निवेदन किया—मुझे दीक्षा की आज्ञा दिलवा दे। मै विवाह नही करूगा। पचो मे इकलिगदासजी नामक एक पच थे। वे सतीदासजी के वहनोई होते थे। वे सब पचो को लेकर सतीदासजी के घर आये। अन्य भी काफी लोग इकट्ठे हो गये। पचो ने सतीदासजी से पूछा—तुम्हारी इच्छा सयम लेने की है या विवाह करने की? विनम्र और लज्जालु प्रकृति के कारण वे चुप रहे। दुवारा पूछने पर भी वे मौन रहे। इकलिगदासजी ने उनकी पीठ थपथपाते हुए कहा—जैसी इच्छा हो, कह क्यो नही देते? पुन पूछने पर सतीदासजी ने उत्तर दिया—मै विवाह करना नही चाहता। मेरी इच्छा सयम ग्रहण करने की है। इकलिगदासजी ने कहा—सारे सयोग सुलभ होने पर भी जब सयम लेने की इच्छा है तो जबरदस्ती विवाह करने से क्या होगा? सतीदासजी के वडे भाई फूलजी को सबोधित कर कहा—जब विवाह करेगे ही नही, तब उन्हे घर मे रखकर क्या करेगे? हृदय को मजबूत कर दीक्षा की आज्ञा दे देनी चाहिए। सारी स्थिति समझकर घर वालो ने आज्ञा-पत्र लिख

१ शान्ति विलास, ढा० ५।६-९

कर दे दिया। इकलिंगदासजी आज्ञा-पत्र लेकर रावलिया गये और मुनि जीतमलजी को दिखलाया और गोगुन्दा पधार कर सतीदासजी को दीक्षा की। मुनि हेमराजजी साधुओ की मडली के साथ गोगुन्दा पधारे। वहा वसन्त बुधवार के दिन हजारो की उपस्थिति मे आम्र वृक्ष की छाया मे सतीदासजी को दीक्ष की गई।

कागद ले एकलिग रावलिया आविया ललना।
हेम जीत सुणी ताम घणा हरपाविया ललना॥
शहर गोघुन्दा नी सही, सखर विनती सार।
कीधी बे कर जोड नै, आछी रीत उदार॥
सता ना परिवार से, हेम ऋपि हद वेश।
गोघुदै आया गुणी, दे रूडो उपदेश॥
लोक हजारा आसरे आ०, बहु ग्राम ना आण के, आ०।
आय मिल्या तिण अवसरे आ०, दिक्षा महोछव जाण के, आ०॥
हेम ऋपि निज हात से आ०, वस्त पचमी बुधवार के, आ०।
अब वृक्ष तल आयनै आ०, संयम दीधो सार के, आ०॥
सोलै बरस रै आसरै आ०, सतीदास सुखकार के, आ०।
भ्रात मात भगनी तजी आ०, लीधो सयम भार के,[1] आ०॥

मुनि हेमराजजी को सतीदासजी की दीक्षा से अपार हर्ष हुआ :

हेम ऋषि तिण अवसरे आ०, पाम्या हर्ष अपार, आ०।
दिक्षा दे सतीदास नै आ०, विहार कियो तिणवार,[2] आ०॥

३१. राजनगर में आचार्यश्री के दर्शन

गोगुन्दा से विहार कर मुनि हेमराजजी ने जीतमलजी आदि साधुओ के साथ राजनगर आकर आचार्य श्री के दर्शन किये। वडे भक्ति-भाव से वदना की। सतीदासजी को पैरो लगाया। आचार्यश्री अत्यन्त हर्पित हुए। सात दिनों के वाद उन्होंने सतीदासजी को बड़ी दीक्षा दी।

तिण काले भारीमालजी, राजनगर शुभ रीत।
विचरै आतम भावता, साथ बहु साधु विनीत॥
सयम दे सतीदास ने, हेम जीत मुनि आदि।
भारीमाल पे आविया, पाम्या परम समाध॥
परम पूजनै देखने, पाम्या अधिको पेम।
लुल-लुल ने लटका करे, हरप सवायो हेम॥

---

१ शान्ति विलास, ६।२१; ७। दो० २,५ गा० १३-१५। तथा देखें :
(क) जय (हे० न०), ५।५०-५२
(ख) मघवा (ज० सु०), ७।५-८
२. शान्ति विलास, ७।२२

सतीदासजी नै सही, दिया पगा लगाय।
भारीमाल हर्ष्या घणा, कह्यो कठा लग जाय॥
सात दिवस वित्या पछे, वारो वार सुन्हाल।
वडी दिक्षा सतीदास ने, दीधी भारीमाल॥
पूज तणी आज्ञा थकी, हेम सग सतीदास।
सखर समय रस सीखतो, वारू ग्यान अभ्यास॥[1]

३२. युवाचार्य की नियुक्ति

उस समय राजनगर मे आचार्य भारमलजी के साथ मुनि खेतसीजी, जीवोजी आदि अनेक साधु थे। साध्विया भी वहुत थी। आचार्यश्री की अस्वस्थता के कारण वहा अनेक साधु-साध्वियो की उपस्थिति हो गई। अवसर देखकर मुनि हेमराजजी ने वडे ही भक्ति-भाव से मुनि रायचन्दजी को 'पाट' देने की विनती की। उसका वर्णन निम्न शब्दो मे मिलता है

वडागाम सू विहार करी ने, हेम जीत आदि गुणरासो।
राजनगर गणि भारीमाल रा, दर्शन किया हुलासो॥
भारीमाल तनु कारण जाणी, वहु सत मिल्या तिहा आणी।
गणपति नी मरजी ओलख, ऋषि हेम वदे इम वाणी॥
प्रगट पाट ऋषिराय शशी ने, महर करीने दीजे।
म्हारी तरफ सू आप मन माही, किंचित फिकर न कीजे॥
डावी जीमणी आख दोनू मे, नहि है फरक लिगारो।
तिम आप तणे ऋषिराय अने हू, सरीखा वेहू सुविचारो॥[2]

मुनि हेमराजजी का यह अनुरोध सुनकर आचार्यश्री वडे ही हर्पित हुए। मुनि हेमराजजी ऐसे विनीत और नीतिवान सत थे। मुनि रायचन्दजी को युवाचार्य घोपित कर आचार्य श्री ने स० १८७८ का मुनि हेमराजजी का चातुर्मास ९ सतो से आमेट का फरमाया।

हेम वयण वर रयण सम सुण, गणपति हर्प सुपाया।
परम विनीत सु नीतवंत हद, जाण्या हेम सवाया॥
तव पद युवराज दियो ऋषिराय ने, हेम भणी सुविमासो।
नव संता स्यु स्वाम भोलायो, शहर आमेट चोमासो॥[3]

३३. आचार्य रायचन्दजी की आज्ञा से प्रथम चातुर्मास

सवत् १८७८ मे आचार्य भारमलजी का चातुर्मास १३ सतो से केलवा मे था। वहां आचार्य श्री के कुछ अस्वस्थता हुई। चातुर्मास के वाद वहा वहुत साधु-साध्विया आचार्यश्री के

---

१. शान्ति विलास, ८। दो० १-२, ४-८
२. मघवा (ज० सु०), ७।९-१२
३ वही, ७।१३-१४

दर्शन के लिए आए। उधर १८७८ के आमेट चातुर्मास के बाद विहार कर मुनि हेमराजजी आदि भी दर्शनार्थ केलवे पधारे।

आचार्यश्री नित्य एक प्रहर साधु-साध्वियों को शिक्षा देते। एक दिन शिक्षा दी :

> खेतसीजी हेमजी भणी, पूछीनें दियो पाट।
> ब्रह्मचारी रिप रायचन्दनें थिरकर राखज्यो थाट॥
> वडा साधां री आगन्या, आछी रीत अराध।
> चतुर विचक्षण अति घणो, चित मे कीजे समाध॥[1]

कुछ दिनों के बाद मुनि हेमराजजी का विहार कराते हुए कहा : "इसी प्रदेश मे उपकार करो।"[2]

स० १८७८ माघ वदि ३ के दिन आचार्य भारमलजी का राजनगर मे संथारा पूर्वक स्वर्गवास हो गया।[3] माघ वदि ६ के दिन मुनि रायचन्दजी आचार्य के रूप मे पाट विराजे।[4]

मुनि हेमराजजी ने आचार्य रायचन्दजी की आज्ञा से स० १८७९ का चातुर्मास पीपाड मे सम्पन्न किया।[5] इस चातुर्मास में मुनि जीतमलजी ने बहुत ज्ञानाभ्यास किया।

> अहोनिशि कर तसु अधिक उद्यम, समय अर्थ सुविचार।
> वखाण वाणी अरु करण चरचा, हुआ अधिक हुशियार॥[6]

३४ स० १८८०-८१ का चातुर्मास

स० १८८० के मुनि हेमराजजी के पाली चातुर्मास के सबध मे उल्लेख है

> असीये वर्ष चउमास पाली, जय हेम मुनिवर सग।
> ग्यान क्रिया अति करत उत्तम, विमल जल जिम गग॥[7]

स० १८८१ के आपके जयपुर चातुर्मास मे आपके अनुशासन मे जीतमलजी की ज्ञानाराधना के सबध मे निम्न वर्णन मिलता है

> हेम सग चोमास जयपुर, इक्यासीए अवधार।
> तिहा सीख्या विद्या पवर व्याकरण, धुर वृति अर्थ विचार॥
> सीखतो व्याकरण एक श्रावक, सूत्र अर्थ साधन का सार।
> ते साधन का सभलाता जय, सुण-सुण लीधी धार॥
> धुर वृति कठकर अर्थ धार्‌या, देव शब्दादि पत्र लिखेह।

---

१. हेम (भा० सु०), ७।दो० ३,४। तथा गा० १-११; ८।दो० ३ तथा मघवा (ज० सु०), ७।१५-१६
२. मघवा (ज० सु०), ८।सो० १
३. वही, ८।सो० २-३
४. वही, ८।यतनी १
५. वही, ८।१
६. वही, ८।२
७. वही, ८।३

तेह विषै सूत्र लागै तेह सीखी ने, आपरे वश्य करेह।
ऐसी जय बुद्धि उत्पति अत्यत, अत्यंत बुद्धि वलि पुन्य अतिशय धारण शक्ति महत ॥
इम जयपुर मे कियो ज्ञान उद्यम, वलि जप तप विविध प्रकार।
वलि घणा जीवा ने प्रतिवोधने रे, कियो तिहा थी विहार ॥
ऐसा ऋषि जीता जयकार ॥[1]

३५ वारह चातुर्मास में साथ

सं० १८७० से १८८१ तक के वारह चातुर्मासो मे मुनि जीतमलजी मुनि हेमराजजी के सिघाडे मे रहे। इन वारह वर्षो मे उन्हे आपसे जो उपलब्धि हुई, उसका वर्णन निम्न शब्दो मे प्राप्त है

ए द्वादश चोमासा हेम पासे, जय किया सुविचार।
वहु समय धारण अतिहि खपकर, हेम कराइ विविध प्रकार ॥
वलि व्याख्यान हेतु युक्ति वहु विध, कला अनेक उदार।
चरचा करणरी चातुरी अति, सीखाई सुविचार ॥[2]

३६ सतीदासजी की सेवा में

स० १८८१ के जयपुर चातुर्मास के वाद आपने पाली मे पौष महीने मे आचार्यश्री के दर्शन किए। स० १८८१ पौष शुक्ला ३ के दिन आचार्यश्री ने मुनि जीतमलजी का सिघाडा कर उसी दिन उनका अलग विहार करा उन्हे मेवाड प्रदेश मे भेजा।[3]

आचार्यश्री ने मुनि सतीदासजी को आप (मुनि हेमराजजी) के साथ प्रमुख सत के रूप मे रखा। सतीदासजी वड़े ही विनय के साथ आपका वैयावृत्त्य करते रहे। आपको वडी चित्त-समाधि पहुचाई। व्याख्यान भी देते।

सवत अठारे इक्यासिये, पोष शुक्ल तिथ तीज।
कियो सिघाडो जीतनो, आप्या सत सुचीज ॥
सतीदासजी नै सखर, जाणी अधिक सुजाण।
हेम तणै मुख आगलै, थाप्यो अगिवाण ॥
हेम भणी हर रीत सु, सखर चित सुसमाध।
उपजाई विध विध करी, आणी अति अह्लाद ॥
सरस कठ वाणी सरस, सरस कला सुविहाण।
हेम समीपै शाति ऋषि, वाचै सरस वखाण ॥[4]

---

१. मघवा (ज० सु०), ८।४-७
२ वही, ८।८-९
३ जय (ऋ० रा० सु०), ८।११-१२
४. शान्ति विलास, ९।दो० ३-६

३७. उदयचन्दजी की दीक्षा में हाथ

मुनि उदयचन्दजी[1] (६५) की दीक्षा सं० १८८२ की पौष सुदी १५ रायचन्दजी के हाथ से हुई थी। उनमे वैराग्य भावना उत्पन्न कर उन्हे दीक्षा करने मे मुनि हेमराजजी का हाथ रहा। इसका रोचक वर्णन जयाचार्य ने किया है :

अल्प कर्म तिण कारणे, उदयचन्द नै आण।
हेमराजजी महामुनि, मिलिया भाग्य प्रमाण ॥
वर वैराग्य वधावीयो, विविध प्रकार विशाल।
जाण पासिया ऊपरै, रग लागो ततकाल ॥
लागा झाडा ग्यान 'रा, भांगा कर्म कपाट।
तागा ताता जोटवा, उदय उमग शिववार ॥
हेम सुधा वच सांभली, थयो दिख्या नै त्यार।
आणंद सू ले आगन्या, महोछव मंड्या अपार ॥
घणा दिवस जीम्यो गुणी, पवर वनोला पेख।
वैरागी वनडो वण्यो, उदयचन्द सुविशेष ॥
दिख्या महोछव दीपता, वर्स वीस उनमान।
जग झूठो जाणी करी, चरण हरख चित्त आण ॥
समत अठारै वयासियै, पोह सुदि पूनम सार।
राय ऋषि रा हाथ सू, लीधो संयम भार ॥
हेमराजजी स्वाम नै, सूप्या गणि ऋपराय।
विनयवत गुणवत अति, गण मे सोय सवाय ॥

३८. मुनि उदयचन्दजी का निर्माण

मुनि उदयचन्दजी (६५) दीक्षा के बाद आप (मुनि हेमराजजी) के देहान्त तक आपकी सेवा मे रहे। आपके सान्निध्य से उनके व्यक्तित्व का बडा भव्य निर्माण हुआ। जयाचार्य ने लिखा है .

ठाम-ठाम सूत्रा रै माह्यो, जश हेतू विनय कहायो।
तिण सू विनय थकी जश वाधै, वलि अविचल शिव सुख साधै ॥

---

१. उदयचन्द चोढालियो, १-दो० ४-११। उसी कृति (१।दो० १-३) मे आपका परिचय इस रूप मे प्राप्त है :
देश मेवाडै दीपतो, सैहर गोघूंदो सोय।
हेमो साह वसै तिहा, ओसवस अवलोय ॥
मालू मूंहता जाति तसु, तास कुसला नार।
तीन पुत्र तेहने थया, विचेट अधिक उदार ॥
जेष्ट एकलिंगदासजी, उदयचन्दजी आप।
अमरचन्दजी तीसरो, स्थिर भिक्षुगण स्थाप ॥

छदो रुध्या रा अै फल जाणी, ओ तो देखो उदय गुण खाणी।
ओ तो चालै वडा रै अभिप्रायो, तिण सू रीझ्या सुगुरु सवायो ।।
सुगुरु रीझ्यो अधिक गुण आया, सीख सुमति सुधारस पाया।
सीख पाया उज्जल ध्यान, ध्याया तिण सु वहुला कर्म खपाया ।।
वहुकर्म क्षये तसु जीवो, ओ तो ऊजल हूओ अतीवो।
ओ तो जीव उज्जल थी साधी, तप विनय थकी रुचि वाधी ।।
रुचि वाध्या सुगुरु ले आणा, अै तो तप करवा मडाणा।
मड्यो तप करवा अति भारी, ओ तो उदयराज अधिकारी ।।[1]

हेम ऋषि रा संग सू, वाध्या गुण मणि हेम।
उदयराज रा घट मझे, हेम वधायो खेम ।।
हेम सुधारस सारिखो, हेम सांचलो हेम।
हेम तणा गुण सभर्‌या, पामै अधिको प्रेम ।।
हेम सुमति ना सागरू, हेम क्षमा भरपूर।
हेम सील नो घर सही, सपरो हेम सनूर ।।
हेम ग्यान नो पीजरो, हेम ध्यान गलतान।
हेम मान मद निर्दली, हेम शान्ति असमान ।।
हेम सवेग रसे भर्‌यो, हेम सुमति दातार।
कहा कहियै गुण हेम ना, शासण नो सिणगार ।।
हेम स्थभ शासण तणो, सुपनै मुद्रा हेम।
मूर्ति देख सुहामणी, पामै तन मन प्रेम ।।
एहवा हेम मुनिद नै, रीझाया अधिकाय।
विनय करी गुण वाधिया, उदयराज घट माहि ।।[2]

३९. स्तवन-रचना

मुनि हेमराजजी के पैर मे दर्द रहने लगा था। उनके द्वारा रचित 'चउवीस तीर्थकर स्तवन' मे शातिनाथ स्तवन की रचना स० १८८४ मार्गशीर्ष वदि १४ रविवार की है।[3] उसमे आपने लिखा है

नमौ नमौ श्री सति जिणेसर, मन वचन सुध काया जी।
तीन लोक रै मस्तक वैठा, अजर अमर सुख पाया जी ।।
पग दुखता पुर सैहर मे, तिवन कीयौ ए ताजो जी।
उसभ कर्म अलगा होसी, चट दे होसी साजो जी ।।[4]

---

१ उदयचन्द चौढालियो, १।२३-३२
२. वही, २।दो० ४-१०
३. वही, १६।१८
४. वही, १६।१६-१७

सं० १८९० मे मुनि जीतमलजी का चातुर्मास वालोतरा मे था। शेपकाल मे विहार करते-करते काणाण पहुंचे। इन दिनो मुनि जीतमलजी एकान्तर किया करते थे। वहां वैशाख सुदी ३ को पहुचे। उस दिन उपवास था। ८ कोस का विहार कर गाम को पहुचे। मुनि हेमराजजी वही विराजते थे, उनके दर्शन किए।[1]

स० १८९२ का जीतमलजी का चातुर्मास लाडनू हुआ। शेपकाल मे मुनि जीतमलजी ने मेडता मे मुनि हेमराजजी के दर्शन कर २८ रात्रि की सेवा की। उसके वाद फिर कालू मे दर्शन किए।[2]

४०. नेत्र-नश्तर

स० १८९७ के सिरियारी चातुर्मास मे सिघी भोपजी और उनके पुत्र गम्भीरचन्दजी दर्शन करने आये। इसी समय नश्तरी (चिकित्सक) वैद्य आणंदरामजी आये। मुनि हेमराजजी की दोनो आखो मे मोतियाविन्द हो गया था। सिघीजी और वैद्य दोनो ने निवेदन किया—आखो मे कारी करा ले, आखो से दीखने लगेगा। मुनि हेमराजजी ने कहा—हम गृहस्थ मे कारी नही करा सकते। आप वतायेगे, उस तरह साधु कारी कर देंगे। भोपजी ने कहा—मुनि सतीदासजी से कारी करा ले, विधि वैद्य वता देगे। कारी करने की वात निश्चित हुई। वैद्य आया। औजार निकाले। आपको ताड़ते देर न लगी कि वैद्य नश्तर करना चाहते हैं हालांकि कह रहे है कि सतीदासजी नश्तर कर दे। आपने नश्तर कराने से इन्कार कर दिया।

> हेम तदा मन जाणीयो, वेद तणा परिणाम हो।
> मोनै कारी करवा तणा, ते नही कल्पै ताम हो॥
> दृढ परिणाम महाराज रा, निरमल चारित्र नी नीत हो।
> मतो मेट कीयो तिण समै, सयम तप सं प्रीत हो॥[3]

चातुर्मास के वाद सिरियारी से विहार हुआ। मुनि जीतमलजी ने मेवाड से आकर दर्शन किये। उनके साथ मुनि हिन्दूजी भी थे। मुनि हेमराजजी वापस सिरियारी पधारे। वहुत संत इकट्ठे हो गये। उस समय दो चतुर वैद्य—आणदरामजी और रूपचन्दजी दर्शन के लिए आये। वोले· "नश्तर कराने से आखे ठीक हो जायेगी। नश्तर करा ले। हम रुपये-पैसे कुछ नही लेंगे।" मुनि हेमराजजी ने कहा : "गृहस्थ के हाथ से कारी कराना नही कल्पता।" मुनि हिन्दूजी वोले : "आप लोग वतावेगे, उस तरह से मैं नश्तर कर दूगा।" आपने इस वात पर नश्तर कराना स्वीकार किया। वैद्यो ने औजार वाहर निकाले और स्वय कारी करने की तैयारी करने लगे। मुनि हिन्दूजी वोले : "औजार मुझे दे दे। विधि वता दे। गिचपिच वात न करे।" वैद्य औजार देने को राजी नही हुए। मुनि हिन्दूजी वोले . "मै आप लोगो को हाथ नही लगाने दूगा। वात हुई है उसके अनुसार विधि वता दे। आप औजार देगे तो कारी कर दूगा। नही तो हम लोग सेवा करते ही है। दूसरी वात न सोचे।" आखिर वैद्यो ने औजार दे दिये। मुनि

---

१. मघवा (ज० सु०) २०।१०
२. वही, २२।१३-१५
३. जय (हे० चो०) १।७-८

हिन्दूजी ने नश्तर किया। आखो से दीखने लगा । आखें, नासिका और कान बता दिये। वैद्यो ने मुनि हिन्दूजी की वडी प्रशसा की।[1]

मोतिया-विन्द प्राय पौने चार वर्ष रहा। वैशाख वदि ६ स० १८९७ के दिन आखे ठीक हुई। मुनि जीतमलजी ने लिखा है .

नीत भली स्वामी हेमनी, ग्रहस्थ पासै कारी न कराय कै।
मिच्छामि दुक्कड पाया नही, कोइ सक म राखज्यो काम कै ॥[2]

नजला का रोग ३¾ वर्ष लगभग रहा।[3]

जिस समय मुनि हेमराजजी के मोतियाविद था, आचार्य ऋषि रायचन्दजी ने उन्हे चन्द्रप्रज्ञप्ति की गाथाओ की एक वर्ष तक आवृत्ति करने की आज्ञा दी जिसे उन्होने विनयपूर्वक स्वीकार किया। आचार्यपाद के आदेशानुसार मुनि हेमराजजी ने एक वर्ष तक चन्द्रप्रज्ञप्ति की गाथाओं की आवृत्ति की। एक वर्ष वाद उनके नेत्रो को पुन ज्योति प्राप्त हो गयी। इस पर मुनि जीतमलजी ने लिखा है

पूज कह्यो स्वामी हेम नै,गाथा चन्दपन्नती नी सार कै।
एक वर्स गुणवी सदा, पूज वचन जयकार कै ॥
हेम मान्यो पूज बचन नै, गुणी चन्दपन्नती नी गाह कै।
वर्स जाजैरो फल्यो सही, ए पूज वचन वाह-वाह कै ॥
भिखू पट भारीमालजी, तीजै पाट ऋषीराय कै।
तास प्रसादै हेमना, नेत्र खुल्या सुखदाय कै ॥[4]

४१. साध्वी गगाजी का सथारा

सवत् १९०२ आपाढ महीने की वात है। गगाजी (१५९।३-५९) चित्तौड की साध्वी थी। आप बड़ी तपस्विनी थी। आपने पाच मासखमण किये। विहार करते-करते आप नाथद्वारा पहुची। वहां आपके कुछ अस्वस्थता हो गई। आपने चौले की तपस्या की। फिर क्रमश. उपवास वेला किया। वाद मे तेला शुरू किया। साधु-साध्वियो और श्रावको से कहने लगी कि मुझे सथारा करावे। तेले के तीसरे दिन मुनि हेमराजजी और जीतमलजी से सथारा कराने का अनुरोध किया। मुनि हेमराजजी ने आपको सथारा कराया। १५ प्रहर का तिविहार और तीन प्रहर का चौविहार सथारा आया। १९०२ आपाढ सुदी ७ के दिन सथारा सम्पन्न हुआ। पूरा विवरण इस प्रकार है

परिग्रह हजारा नो तज्यो, लीधो संयम भारोजी।
छट्ठ अट्ठमादिक तप वहु, कीधो विविध प्रकारो जी ॥

---

१. जय (हे० चो०), ढा० २, ३
२. वही, ४।१३
३. वही, ६।१३-१४
४. वही, ४।१०-१२

मासखमण पांच जुवा जुवा, निरमल चित सूं ठायाजी।
काइ गामा नगरा विचरता, श्रीजीद्वारे आया जी॥
कारण कायक ऊपनो, चोलो कीधो चोम्बो जी।
काई पारणो कर वले पचखियो, चोथ भक्त निर्दोषो जी॥
चौथ भक्त रे पारणै, छट्ठ भक्त श्रीकारो जी।
काइ छट्ठ भक्त रै पारणै, अट्ठम भक्त उदारो जी॥
साध सती श्रावकां भणी, कहै सथारो मानै करावो जी।
अट्ठभक्त दिन तीसरे, चढिया अधिका भावो जी॥
काइ हेम जीत ऋषि नै कहै, सथारो मोनै करावो जी।
हेम जीत ऋषि हर्ष सू. अणसण सती नै कराया जी॥
मन उचरग हीयै सती, स्थिर चित अणसण ठाया जी।
महाव्रत फेर आरोपीया, आलोवण कर समझावै जी॥
काइ हेम जीत ऋषि आदि दे, विविध प्रणाम चढावै जी।
अणसण पनरै पोहर आय रे, तीन पोहर चउविहारो जी॥
सात वरस रे ऊपरे, पाल्यो सयम भारो जी।
सवत उगणीशै वीए वर्ष, सातम सुदि आषाढो जी॥
काइ परलोके पहुती सती, राख्यो सयम तप रो गोठो जी॥[1]

४२. दृष्टान्त लिखाये

सवत् १९०३ के श्रीजीद्वार के चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी ने जयाचार्य को आचार्य भिक्षु के दृष्टान्त लिखाये थे। आचार्य मघवा ने इसका वर्णन निम्न रूप मे किया है ·

सवत उगणीसे वर्ष तीये, श्रीजीद्वारे स्वाम।
हेमराज मुनि संग चौमासो, द्वादश मुनि गुणधाम।
सुगणा जवर गुणी जय स्वाम॥
जवर गुणी जय स्वाम, ज्यारा नित्य करिये गुणग्राम।
तो लहे अविचल सुख आराम, वारू चितामणी सम नाम॥
तिहा श्री भिक्षु महामुनिदना, दृष्टात अति अभिराम।
हेम ऋषि रे हिवे धारणा, ते निशि याद करावे ताम॥
हेम ऋषि रे पास जय दिन रा, लिखीया पत्र मझार।
अति सुदर अक्षर सुघड पणोवर, वचन कला सुविचार॥
जय मुनि उद्यम करी चौमासे, चीज करी हद त्यार।
समण सत्या रे काम आवे वहु, सुण पावे जन चमत्कार॥[2]

इसके पूर्व मुनि जीतमलजी ने स्वय लिखा है

समत उगणीसै तीयै चौमासो, कीधो है श्रीजीदुवारी।
हेम जीत आदि बारा साधा थी, वरत्या है जय जयकारी॥

१. साध्वी गगाजी गुण वर्णन, २३।३-१२
२. मघवा (ज० सु०), ३०।१-४

विविध हेतु न्याय जुक्ति वर, भीखू रा दिष्टत भारी।
जीत लिख्या स्वामी हेम लिखाया, और ही विविध प्रकारी॥[1]

४३. सिणगाराजी का सथारा

साध्वी सिणगाराजी(१९०।३-९०) स० १९०३ के शेपकाल मे धोइदा पधारी। वही अस्वस्थ हो गई। मुनि हेमराजजी कोठार्‌या विराज रहे थे। वहा से विहार कर धोइदा पधारे। साध्वी सिणगाराजी की तीव्र भावना देख उन्हे सथारा कराया।

स्वामी हेम विराज्या कोठार्‌यै गामो, ततखिण पहुचावी खवर तामो।
शीघ्र विहार कर दर्शण दिया आणी, धिन-धिन सती सिणगारा स्याणी॥
परिणाम अधिक चढाया हेम, सिणगार सती पामी खेम।
मुनिवाणी सुणी हिय हरखाणी, धिन-धिन सती सिणगारा स्याणी॥
स्वामी हेम करायो सथारो, धिन-धिन सतीनो अवतारो।
सावचेत अणसण कर हुलसाणी, धिन-धिन सिणगारा स्याणी॥
भाग्य प्रमाणै जोग मिल्यौ नीको, स्वामी हेम चढायो जश टीको।
एहवो जोग विरला रे मिलै आणी, धिन-धिन सती सिणगारा स्याणी॥
ज्यारै भाग्य दिशा होवै भारी, जशवत उत्तम जे नर-नारी।
त्यारै ऐसो जोग मिलै आणी, धिन-धिन सती सिणगारा स्याणी॥
परिणाम चढाया सथारा महिमा, सती वाण सुणी वहु सुख पायौ।
चिमत्कार पाया भव प्राणी, धिन-धिन सती सिणगारा स्याणी॥[2]

आपका सथारा स० १९०३ की पौप वदि २ को सम्पन्न हुआ।

उगणीसै तीए समै रे, हेम हाथ सथार।
माय सिणगारा महासती, कर गइ खेवो पार॥[3]

४४. मुनि दीपजी साथ में

स० १९०४ के श्रीजीद्वार चातुर्मास के वाद आचार्य रायचन्दजी धोइन्दा पधारे थे। मुनि हेमराजजी भी साथ थे। वहा दीपजी वैरागी ने माता और भाई को छोडकर आचार्यश्री से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के वाद आचार्यश्री ने मुनि दीपजी को आप (मुनि हेमराजजी) को सौप दिया। मुनि दीपजी विनयी और विवेकी थे। आप अनुकूल वर्तन कर उन्हे हर तरह से सुख पहुचाते थे।

दीप धीग वैरागियो, छाडी माता भ्रात।
दिख्या महोच्छव वहु थया चरण दियो ऋपराय॥

---

१ जय (हे० न०), ६।२३,२५
२ सिणगाराजी गुण वर्णन, ढा० ६।१४
३ हरखूजी की ढाल, गा० ६

सूंप्या स्वामी हेम नै, दीप हेम हितकार।
विनय विवेक विचार मे, स्वामी नै सुखकार ॥[1]

४५. खड़े-खड़े प्रतिक्रमण

हेमराजजी स्वामी काफी वृद्ध हो चुकने पर भी खडे होकर प्रतिक्रमण किया करते थे। आपका देहान्त स० १६०४ की ज्येष्ठ सुदी २ के दिन हुआ। जेठ वदि १२ तक आपने इसी तरह प्रतिक्रमण किया

जाझा एकावन वरस आसरै हो०, विचर्या हेम सपेख।
वृध पणै पिण स्वामजी काई, कियो ऊभो पडिकमणो विसेप ॥
जेठ विद वारस तांइ सामजी हो०, उभो पडिकंमणो कीध।
उदमी कर्म काटण तणा काई, जग माहि जस लीध ॥[2]

४६. भूकंप क्यों होता है ?

स० १६०४ की जेठ वदि १४ के दिन की वात है। मुनि जीतमलंजी ने मुनि हेमराजजी से पूछा · "स० १८६० की भादवा सुदी १३ के दिन स्वामी जी देवलोक हुए थे और १४ के दिन भूकम्प हुआ। जेठ वदि अष्टमी के दिन भूकम्प हुआ है. उसका क्या कारण है?" मुनि हेमराजजी ने उत्तर दिया : "जवरदस्त सत के देहान्त होने के पूर्व अथवा पश्चात् भूकम्प होता है।"

जीत कहै साठे वरस, भाद्रवा सुदि तेरस।
भीखू ऋष परभव गया, भू धूजी चवदस ॥
जेठ विद अष्टमी निशा, महि धूजी तिण वार।
कारण पूछ्यो जीत ऋष, बोल्या हेम तिवार ॥
जवर सत चल्या पछे, धरती धूजै सोय।
अथवा भू धूजै प्रथम, इम बोल्या अवलोय ॥[3]

४७. सिरदाराजी को शिक्षा

स० १६०४ की जेठ वदि १४ के दिन सती सिरदाराजी ने सिरियारी मे मुनि हेमराजजी के दर्शन किये। उस समय आपने सती को शिक्षा दी

चवदस दिन स्वामी हेमना हो, सरदारा जी दरसण कीध।
हेम वाता करी आणद सू हो, सीख अमोलक दीध ॥
हेमनो सुजस घणो ॥
विहार पाछिला पोहरनो हो, घणो न करणो कोय।
वले साथ विना करणो नही हो, दीधी सिखामण दोय ॥[4]

---

१ जय (हे० न०) ढा० ८,दो०५-६
२. वही, ८।१६-२०
३. वही, ६।दो०३-५
४. वही,६।१-२

४८. व्याख्यान करो

स० १९०४ जेठ वदि १५ की वात है। मुनि हेमराजजी अस्वस्थ थे। रात्रि व्याख्यान के समय किसी ने कहा "जव आप अस्वस्थ है, तो रात्रि मे व्याख्यान की क्या आवश्यकता है ?" तव आप वोले · "व्याख्यान तो होना ही चाहिए। मैं अस्वस्थ हू तो क्या ?" फिर मुनि जीतमल जी से वोले "जा, तू व्याख्यान शुरू कर।" जव उन्होने व्याख्यान शुरू किया, तव आपने मुनि सतीदासजी को कण्ठ मिलाने के लिए भेजा।

वखाण री वेला किण ही कह्यो हो, जो स्वामी जी रे खेद है सोय।
कारण काई वखाण नो हो, जव हेम वोल्या अवलोय॥
ऋप जीत भणी स्वामी इम कहै हो, माड तू वेगो वखाण।
वखाण तो चाहिजै सही हो, इण मे कारण काई जाण॥
ऋषी जीत वखाण माड्यो तदा हो, सतीदासजी नै मेल्या जान।
कठ मिलावा कारणै हो, स्वामी इसा सावधान॥[1]

४९. स्फुट घटनाएं

अस्खलित व्याख्यान कठस्थ नही एक वार मुनि वेणीरामजी ने भिक्षु से कहा—हेमजी को अस्खलित पूरा व्याख्यान कण्ठस्थ नही होता। वे जोडते जाते है और व्याख्यान देते जाते है। भिक्षु वोले—केवली सूत्रव्यतिरिक्त ही होता है। उनके सूत्र से काम नही होता।[2]

कृषक भी सरार (ऊमरा) सीधी निकालता है मुनि हेमराजजी लिखा करते थे। लिखा हुआ पन्ना भिक्षु को दिखाया। पक्तिया टेढी देखकर भिक्षु वोले—कृषक हल चलाता है वह भी ऊमरा सीधा निकालता है। तुमने पक्तिया टेढी क्यो लिखी है ? पक्ति सीधी लिखनी चाहिए। मुनि हेमराजजी वोले—तहत् स्वामीनाथ ![3]

काचरियों के लिए विवाह नही रुकता मुनि हेमराजजी दीक्षा लेने लगे, तव किसी गृहस्थ ने कहा—हेमजी दीक्षा लेने को तो तैयार हुए है, पर उनके तमाखू का व्यसन है। भिक्षु वोले—काचरियो के कारण क्या कभी कोई विवाह रुका है ?[4]

उठा कर लाए सवत् १८५५ के पाली चातुर्मास मे मुनि खेतसीजी अस्वस्थ हो गये। रात्रि मे उल्टी और दस्त लगने लगे। रास्ते मे गिर गये। भिक्षु ने मुनि हेमराजजी को जगाया और दोनो मिलकर उन्हे उठाकर अन्दर लाये। भिक्षु वोले—ससार की माया कितनी कच्ची है। खेतसीजी जैसे की यह हालत हो गई। मुनि खेतसीजी को सुलाकर नई पछेवडी निकालकर ओढाई।[5]

आज तो थकान वहुत आई पुर से विहार कर भीलवाडा जाते हुए मार्ग मे मुनि

---

१ जय (हे०न०), ९।२५-२७
२. जय (भि० दृ०), दृ०१५९
३ वही, दृ०२१७
४ वही, दृ०२३७
५. वही, दृ०२५३

हमराजजी को थकावट महसूस हुई। चन्द्रभानजी चौधरी से कहा—आज थकावट बहुत हुई। चन्द्रभानजी बोले—भिक्षु कहते थे, प्रदेशो मे कष्टानुभव हुए विना निर्जरा नही होती।[1]

हमने तो थाली के दो टुकड़े नहीं किये · किसी ने कहा—भीखणजी घर मे थे तव जव भाई-भाई जुदा हुए तव थाली को ओखल मे डालकर उसके दो टुकडे कर आधी-आधी ली। मुनि हेमराजजी ने भिक्षु से पूछा—क्या यह बात सत्य है? भिक्षु बोले—हम ऐसे भोले नही थे कि पहले ही रुपये को पौना करे। हम लोगो ने तो ऐसा नही किया। रुघनाथजी के गुरु भूधरजी घर मे थे तव ऊट को ही मार डाला। धाडा पडा तव सोचा, कपडा भी ले जायगे और ऊट भी। ऐसा विचार कर तलवार से ऊट की फीचे काट डाली। गृहस्थावस्था की क्या वात? बाकी हम लोगो ने तो घर मे रहते थाली के टुकडे नही किये।[2]

इनका भी टोला हो जाता मुनि हेमराजजी ने भिक्षु से कहा—तिलोकचन्दजी, चन्द्रभाणजी, सतोपचन्दजी, शिवरामदासजी आदि अलग-अलग फिरते है। सव इकट्ठे हो साथ रहे तो उनका भी टोला हो जाय। भिक्षु बोले—ऐसी करामात होती तो यहा से क्यो जाते? यहा क्या दु ख था?[3]

पछेवड़ी लम्बी लगती है पादू ने एक भाई ने कहा—मुनि हेमराजजी की पछेवडी लम्वी मालूम देती है। भिक्षु ने लम्बाई और चौडाई की ओर से नापकर दिखाई। वह ठीक निकली। भिक्षु ने उसे कहा—चार अगुल कपडे के लिए अपना साधुपना खोवे, क्या हम लोगो को ऐसा भोला समझा है? तुम्हे इतनी ही प्रतीत न हो तो रास्ते मे हम कच्चा जल पीवे तो तुम लोगो को क्या पता चले? उस भाई ने हाथ जोडकर कहा—मेरी भूल हुई।[4]

ढीले थे, कड़े होते-होते होंगे गुमानजी के साधु पेमजी मुनि हेमराजजी से वोले—हेमजी! तीन तूम्वे अधिक थे, उन्हे आज फोड डाला। मुनि हेमराजजी वोले—उनमे निकल कर नई दीक्षा लिये तो वहुत दिन हो गये, फिर तीन अधिक तूंम्वे आज परठे, ऐसा कैसे कह रहे है? पेमजी वोले—ढीले थे तो कडे होते-होते होगे। मुनि हेमराजजी ने यह वात आकर भिक्षु से कही। भिक्षु वोले—तुमने ऐसा क्यो नही कहा—किसी ने जीवन-पर्यन्त शील ग्रहण किया। छ महीने के वाद कहा—एक स्त्री हमने छोड दी। तब किसी ने कहा—आपको शील ग्रहण किये हुए तो वहुत महीने हो गये। तव उसने कहा—ढीले थे तो कडे होते-होते होगे।[5]

१०. दिव्य आकर्षक मूर्ति

आपका व्यक्तित्व वहुत ही आकर्षक था। सुन्दर इतने थे कि दीक्षा के पूर्व आपको देखते ही ठकुरानी ने कहा—"मै इनका विवाह तुरन्त करा देती हू।"[6] आपकी मुख-मुद्रा शाति और

---

१. जय (भि० दृ०), दृ०१२०
२. वही, दृ०१०४
३. वही, दृ०८३
४. वही, दृ०७७
५. वही, दृ० ६
६ देखिए 'प्रव्रज्या' प्रकरण

गभीर थी। चेहरे की छटा मनोहर थी। चेहरे पर ज्ञान-गरिमा की प्रखर दीप्ति और सौम्यता थी। बडे प्रियदर्शी थे।[1] गति गजमथर थी। जयाचार्य लिखते है

१. सुरत हेमजी सोहती आनदा रे, अतिसयकारी ऐन कै आनदा रे।
मनहर मुद्रा पेखतो गुणधारी रे, चित मे पामै चैन के आनदा रे ॥[2]

२. हेम दिसावान दीपतौ, मुनि हेम मोटो महाभाग।
हेम उजागर ओपतौ, वर हेम हीये वैराग ॥[3]

आखे ज्योतिर्मय और शीतल थी। शब्द गभीर और गुजायमान थे

शीतल नयण सुहामणा रे, गहर गभीर गुजास रे। ए गाजै।
जुगता खिम्या शोभता विराजै ॥[4]

वाणी वडी मधुर थी। उसमे ओज और तेज होने पर भी कटुता का लवलेश भी नही होता था

वाणी अमृत सम वागर रे, जाणै क्षीर समुद्र नो नीर ॥[5]

चर्चा-वार्ता के समय भी उत्तेजित नही देखे जाते थे। हिम की तरह शीतल रहते थे। क्षमाशील थे .

१ सूत्र चरचा वखाण मै रे, हेम साचेला हेम रे। ए आछा।
सुन्दर अमृत बोलता रे वाचा ॥[6]

२. गहर गभीर सुरगिरि सा, खिम्यादान महाभारी।
उपसम रसनो स्वाद तुम लीनो कर्म काटण सिरदारी ॥[7]

आपके व्यक्तित्व का वहिर्पक्ष ही इतना आकर्षक न था, अन्तर्पक्ष भी उतना ही समृद्ध और प्रभावशाली था। आप गुणो के भण्डार थे

भजो हेम गुणधारी हो ॥[8]
हेम गुणा रो पोरसो रे, याद करै नर नार हो लाल ॥[9]

आपके गुणो का स्मरण कर जयाचार्य भाव-विभोर हो कहते है

हेम साचेला हेम ए, त्यारै परम चरण स्यू प्रेम ए।
निमल विमल तसू नेम ए, हद स्वाम भजो मुनि हेम ए ॥

---

१. जय (हे० न०), १।१
सौम्य मुद्रा हद प्यारीजी, सुखकारी हेम मुनीश्वरू ।
२. वही, ३।३६
३. जय (भि० ज० र०), ४८।७
४. सत गुण वर्णन, ६।७
५. वही, १।६
६. वही, ६।६
७. वही, २।५
८. जय (हे० न०), ४।१
९. वही, ७।२९

ज्ञान ध्यान गलतान ए, वलि क्षमा सूरा गुण खान ए।
जन भजन करै जिन जेम ए, हद स्वाम भजो मुनि हेम ए।।
गुण सागर हेम गभीर ए, वारु कर्म काटण वडवीर ए।
ज्या रै सदा कुशल ने खेम ए, हद स्वाम भजो मुनि हेम ए।।[1]

आप ऐसे थे जिनके गुण वर्णन से तीर्थकर गोत्र तक का बंध हो सकता है :

भिखू स्वामी रा शासण मझै, चितामणि रत्न समान। सुग्यानी रे।
स्वामी हेम गुणकर सोभता, गुण रत्ना री खान। सुग्यानी रे।।

तपवन्त गुणवन्त खपवन्त, जपवन्त क्षमावन्त जाण।
तेजवन्त दयावन्त जाणज्यो, लज्जावन्त मतिवन्त वखाण।।
शर्मवन्त क्षमावन्त दयावन्त, ममवन्त ने महिमावन्त।
वैराग्यवन्त धैर्यवन्त वखाण जो, विनयवन्त ने वचनमहत।।
वारे भेदे तप तपै, सतरै भेदे सयम भार।
दश विध यती धर्म सहीत छै, भरत खेत्र मे सार।।
गुणवन्त ना गुण गावता, तीर्थकर गोत वधाय।
सका हुवै तो देखल्यो, ज्ञाता सूत्र रे माहि।।
इत्यादिक गुणा रा भडार छै, कर्म करै चकचूर।
आश्रव द्वार रोक्या सवर द्वार सू, वैराग करै भरपूर।।[2]

आपके जीवन प्रसग आपके उक्त गुणो की अमर साक्षी है।

११. दीर्घ स्वस्थ जीवन

आपका साधुकालीन जीवन प्राय. ५१ वर्ष का रहा। आपका संयमी जीवन भिक्षु से भी नौ वर्ष अधिक रहा। इस सुदीर्घ मुनि-जीवन मे आप प्राय स्वस्थ रहे।

स० १८६६ का आपका चातुर्मास पाली मे था। उस समय आप कुछ अस्वस्थ हुए और उसी कारण चातुर्मास के वाद विहार नही हो पाया। सभवत. यह आपकी पहली अस्वस्थता थी।[3]

सवत् १८७५ के पाली चातुर्मास के वाद आप देवगढ पधारे। एक दिन दिशा से वापस आते समय अचानक गाय ने चोट लगा दी, जिससे आपके घुटने का गोला उतर गया। कम्बल मे सुलाकर अन्य साधु आपको शहर मे ले आये। दिल्ली के वैद्य मंगनीरामजी ने मुनियो को उपचार वतलाया। उस उपचार से घुटने का गोला ठीक स्थान पर आ गया। इस चोट के कारण आपको नौ मास तक देवगढ मे ही रुक जाना पडा। स० १८७६ का चातुर्मास आपने वही किया।

---

१ संत गुण वर्णन, ४।१-३
२. वही, १।१, ३, ४, १०-१२
३. हेम दृष्टांत, दृ० ३४

विचरत-विचरत मुनिरायो रे, आया सैहर देवगढ माह्यो रे।
इतलै कुंण विरतत थायो ॥२८॥
दिशा थी पाछा आवत पांणो रे, गाय लगाई अचाणो रे।
तिण सू गोड रो गटो टलांणो ॥२९॥
कावला मे घाली मुनिराया रे, हेम नै सैहर मे लेई आया रे।
स्वामी ना परिणाम सवाया ॥३०॥
मगनीराम वैद दली वालो रे, साधा जाय कह्यो सुविसालो रे।
वैद सुणनै आयो ततकालो ॥३१॥
निरवद भापा थी साध जणावै रे, तिण मे दोप अणहुतो बतावै रे।
तिणनै दर्शण मोह धकावै ॥३२॥
वैद निपुण उपचार वतायो रे, तिण सू गटो ठिकाणै आयो रे।
चौमासा पहिला ए सहू थायो ॥३३॥
त्यां रह्या आसरै नवमासो रे, वर्स छिहतरे चउमासो रे।
पीथल एक सौ पट तप रासो ॥३४॥[1]

आपके करीव पौने चार वर्ष तक मोतियाबिन्द रहा। इससे आखो की रोशनी जाती रही, जिससे दीखना वन्द हो गया। सवत् १८९७ के शेषकाल मे वैशाख महीने मे मुनि हिन्दूजी ने सिरियारी मे आपके नेत्रो की कारी की जिससे पुन ज्योति प्रकट हो गई और आपको दिखाई देने लगा।

तिण हिज गाम वेसाख मे नेत्ररी, कीधी हीन्दू सत कारी।
तेहनो विस्तार विसेप पणै सहू, है चौढाल्या मझारी॥
पुणाच्यार वर्स रे आसरै रह्यो निजलारो रोग तिवारी।
पुण्य प्रवल स्वामी हेम तणा तिण स्यू, नेत्र खुल्या ततसारी॥[2]

१२. अन्तिम विहार

आपका अन्तिम सवत् १९०४ का चातुर्मास आमेट मे था। चातुर्मास की समाप्ति के वाद आप काकरोली पधारे। वहा आपने आचार्य रायचन्दजी के दर्शन किये, और फिर उन्ही के साथ धोडदे गाव पधारे। वहा से अलग विहार कर श्रावको की विशेप विनती से आप श्रीजीद्वार पधारे और वहा एक महीने तक रहे। फिर सिसोदा, काकरोली और तासोल होते हुए केलवा पधारे। मुनि जीतमलजी ने जयपुर चातुर्मास कर भिलाडे होते हुए यही आपके दर्शन किये। १३ दिन सेवा मे रहे फिर मारवाड़ की ओर विहार किया।

केलवा से विहार कर आप लाहवा होते हुए आमेट पधारे। आपका विचार मारवाड़ मे जाने का था। साधु और श्रावको ने आपको वहुत रोका पर आपने अपना विचार नही छोडा, और विहार कर एक रात कमेरी रहे और दो रात कुवाथल। फिर वहा से दोलोजी के

---

१. जय (हे० न०), ५।२८-३४
२. वही, ६।१४-१५

खेडा होते हुए देवगढ पधारे। तीव्र उष्णकाल आ गया था। फिर भी मारवाड जाने का विचार आपने नही छोडा। श्रीजीद्वार के प्रसिद्ध श्रावक मयाचन्दजी के पुत्र फोजमलजी ने आपके दर्शन किये और आपसे रुकने की अर्ज की तव आप वोले—"पता नही हम मारवाड़ कही काल के खीचे हुए तो नही जा रहे है—"काल रा खाच्यां जावा अछा, काई ते पिण खवर न काय।" आप सात रात देवगढ रहे। इसके वाद पिपली होते हुए फुलोज पधारे। सुखपूर्वक घाटी उतरे। वीच मे विशेष विश्राम नही लिया। साय का प्रतिक्रमण खडे होकर किया और रात मे वही रहे। वहा से आप सिरियारी पधारे। उस दिन जेठ वदि चौथ का दिन था।

आपके सिरियारी पधारने से आस-पास के क्षेत्रो मे विचरते हुए साधु-साध्वियो को वडा हर्ष हुआ। सिरियारी के लोग अत्यत प्रसन्न हुए। पाली के अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने आकर आपके दर्शन किये।[1]

१३. अन्तिम सप्ताह

ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी तक आप पूर्णत स्वस्थ रहे और उस दिन आपने खडे-खड़े ही प्रतिक्रमण किया था

जेठ विद वारस ताई, सामजी हो० उभो पडिकमणो कीध।
उदमी कर्म काटणतणा काई, जग माहि जस लीध॥[2]

जेठ वदि तेरस के दिन आपको कुछ श्वास का प्रकोप हुआ। चौदस के दिन दिशा-शौच-निवृत्ति के लिए आप गाव के वाहर पधारे। इसी दिन मुनि जीतमलजी ने आपके दर्शन किये। साता पूछने पर वोले "श्वास की थोडी तकलीफ है। विशेप नही है।" उस दिन आप मुनि जीतमलजी से धर्म ध्यान और सघ समुदाय के सवध मे वार्तालाप करते रहे।[3]

इसी दिन सती सरदाराजी ने भी आपके दर्शन किए। आपने वडे हर्प के साथ उनसे वातचीत की और उन्हे शिक्षाए दी। कहा—पिछले प्रहर का विहार अधिक नही करना चाहिए। साथ के विना भी नही करना चाहिए। फिर वोले . "कही जीतमल मुझे इस रुग्णावस्था मे छोड़कर चला गया तो मेरे मन मे पूरा विचार हो जायेगा। अत तुमसे कह रहा हूं।" सती सरदाराजी बोली "आप कोई शका न करे। आपको इस अवस्था मे छोडकर जायेगे, ऐसा नही लगता।" इसके वाद सती सरदाराजी ने आपको पछेवडी दी। आपने कहा : "तुम्हारे हाथ से यह अन्तिम पछेवडी लेता हू।"

इस तरह आपको दिन मे चैन रहा, पर रात्रि मे श्वास विशेप रूप से उठने लगा। अमावस के प्रात फिर साता हुई। सुवह सती सरदाराजी विहार करने लगी, तव आपने वार-वार मना किया। वोले · "ऐसी अवस्था मे एक रात्रि से अधिक रहने मे भी वाधा नही है।" फिर विचार कर वोले "यदि तुम्हारा मन रहने का न हो तो पुन. एक वार दर्शन करना। दूज के दिन जल्दी आना।" ऐसा कह विहार की अनुमति दी।[4]

---

१. जय (हे० न०), ८।दो० १, ४, ७, १-१८
२. वही, ८।२०
३ वही, ८।२१-२३, वही, ९।दो० १-२
४. वही, ९।१, ३-७

सुवह के भोजन मे आपने दो फुलके खाये और शाम के आहार मे एक फुलका। रात्रि मे पुनः श्वास का प्रकोप वढ गया।[1]

प्रतिपदा के प्रात फिर साता हुई। इन दिनो आचार्य ऋपिराय चिरपटिया मे थे। वही आपकी अस्वस्थता का समाचार आचार्यश्री को प्राप्त हुआ। प्रतिपदा के दिन आपने कपूरजी मुनि को मुनि हेमराजजी के पास भेजा। उन्होने सुवह दर्शन किये। आचार्यश्री के सुख-साता के समाचार सुनकर मुनि हेमराजजी वडे हर्पित हुए। दिन सवा पहर लगभग चढा होगा, तव आप मुनि जीतमलजी से आनदपूर्वक वाते करने लगे। आप नि शक थे। चित्त शात था। उस दिन आपने कहा—"आहार करने का भाव नही है। इससे श्वास वढ जाता है।" परन्तु मुनि जीतमलजी के विशेप अनुरोध पर आपने एक लूखे फुलके का आहार किया।

तीसरे प्रहर आप मुनि कपूरजी से वोले "शीघ्र जाओ और आचार्यश्री को आज ही दर्शन देने को कहो। यदि आज न पधार सके तो कल प्रहर दिन वीतने के पूर्व दर्शन दे। देर न करे। कही उनके मन की मन मे न रह जाय।" इसके वाद श्वास का प्रकोप वढ गया। कुछ देर वेदना रही। चौथे प्रहर कुछ साता हुई और फिर शासन सवधी वाते करने लगे। शाम को आहार का त्याग कर दिया। सायकाल को अपने मुख से शव्दोच्चार करते हुए वैठे-वैठे प्रतिक्रमण किया। रात्रि मे मुनि जीतमलजी से व्याख्यान दिलवाया। मुनि सतीदासजी को कण्ठ मिलाने के लिए भेजा। इस तरह की सावचेती रही।[2]

रात्रि के अन्तिम प्रहर मे मुनि सतीदासजी और उदयचन्दजी ने आपको मुनि जीतमलजी रचित चौवीसी की चौदह ढाले सुनाई। वाद मे आप फिर नाना तरह की वैराग्य की वाते सतो से करने लगे।

मुनि जीतमलजी ने विचार किया. "आयु का क्या भरोसा? अभी कोई शका नही, फिर भी 'मिच्छामि दुक्कड' तो दिला देना ही अच्छा है।" ऐसा सोचकर उन्होने व्रत उच्चारित करवाये और 'मिच्छामि दुक्कड' दिलवाया। आपने वड़े प्रसन्न मन और वडी सावधानी के साथ आलोचना की। उस समय का चित्र इस प्रकार अकित है -[3]

ऋपि जीत मन मे विचारियो हो, आउखा री तो खवर न काय।
हिवडा तो वैहम दीसै नही हो, तो पिण वरत देउ उचराय॥
इम चितव जीत वोलिया हो, आपरै ईर्या सुमत रै माहि।
कोइ अतिचार लागवो हुवै हो, मिच्छामि दुक्कड ताहि॥
ऊची तिरछी दिष्ट जोई हुवै हो, चालता करी हुवै वात।
इत्यादिक खामी तणो हो, मिच्छामि दुक्कड साख्यात॥
इम हिज भाषा सुमति मे हो, वोल्या हुवै विना विचार।
करडो काठो वचन वोल्यो हुवै हो, तो मिच्छामि दुक्कड सार॥

---

१. जय (हे० न०), ६।दो० ६, ७, ८
२. वही, ६।दो० ८, ११, १३, १८-२७
३. वही, ६।२८, ३०

क्रोध मान माया लोभ सू हो, हांम भयकर सोय।
जे कोइ वचन काढ्यो हुवै हो, मिच्छामि दुक्कडं जोय ।।
हेम पिण निज मुख सू कहै हो, ऊंचे शब्द उचार।
मिच्छामि दुक्कड माहरे हो, एहवा सावधान गुणधार ।।
इम पाचूइ भेद मे हो, लागो हुवै अतिचार।
मिच्छामि दुक्कड तेहनो हो, कह्या जुजूवा भेद उचार ।।
मन वचन काया गुपत मे हो, लागो हुवै अतिचार।
जूजूआ भेद करी कह्या हो, मिच्छामि दुक्कडं विचार ।।
प्रथम महाव्रत नै विषै हो, लागो हुवै अतिचार।
जो हिंस्या लागी हुवै आपरै हो, मिच्छामि दुक्कड उदार ।।
गया काल रो मिच्छामि दुक्कड हो, तस थावर नी कोइ घात।
पचखाण आगमिया काल मे हो, त्रिविधे-त्रिविधे विख्यात ।।
इम छहुइ व्रत मझै हो, अतिचार जुवा-जुवा जाण।
गया कालरो मिच्छामि दुक्कड हो, आगमियै काल पचखांण ।।
छहु व्रतना अतिचार मझै हो, हेम बोलै ऊंचै स्वर वांण।
म्हारै गए काल रो मिच्छामि दुक्कडं हो, आगमिया काल रा पचखांण ।।
पाप अठारा आलोविया हो, जुदा-जुदा ले नांम।
पचखाण आगमिया काल मे हो, त्रिविध-त्रिविध कर ताम ।।
इण रीत महाव्रत आरोपिया हो, आलोवणा अधिकार।
भागवली हेम महामुनि हो, योग मिल्यो श्रीकार ।।[1]

इसके वाद मुनि जीतमलजी ने स्थानाग, उत्तराध्ययन आदि सूत्रो के पाठ सुनाते हुए आपके परिणामो को वैराग्य-भावना मे ऐसा तल्लीन किया कि आपकी आत्मा आनन्द-विभोर हो उठी। "मृत्यु महोत्सव है" इस वात को वडे मार्मिक ढग से रखा और उसके वाद आपका गुणवाद किया।[2]

अव तक प्रतिक्रमण का समय आ चुका था। मुनि सतीदासजी प्रतिक्रमण की आज्ञा मागने लगे, तव आप वोले "निद्रा आ रही है।" सतीदासजी वोले : "लेटकर निद्रा ले।" आप वोले "प्रतिक्रमण करना है।" सतीदासजी वोले : "आप अस्वस्थ है, ऐसी स्थिति मे प्रतिक्रमण न करे तो कोई वात नही।" आप वोले · "प्रतिक्रमण तो करना ही है, इसमे अस्वस्थता का क्या प्रश्न ?" इसके वाद उच्च स्वर से पाठोच्चार करते हुए आपने वैठे-वैठे प्रतिक्रमण किया।

पडिकमणा री वेला आविया हो, स्वामी आगन्या मागी सोय।
ऋष सतीदास नै इम कहै हो, निद्रा आवै छै मोय ।।
ऋषि सतीदास कहै सोय नै हो, निंद्रा लीजै स्वांम।
जव हेम मुनीश्वर इम कहै हो, पडिकमणो करणो छै ताम ।।

---

१. जय (हि० न०), ९।३१-४४
२. वही, ९।४७, ५२, ६५, ७५-७७

जब सतीदासजी कहै आप रै हो, कारण सरीर रै मांय।
कारण मै अटकै नही हो, जब हेम बोल्या इमवाय।।
पडिकमणो तो करणो सही हो, इण मे कारण काई होय।
इम कही पडिकमणो बैठा कर्‌यो हो, ऊचै सुर अवलोय।।[1]

१४. महाप्रयाण

संतो ने प्रतिलेखन किया। मुनि मोतीजी दिशा जाने की आज्ञा लेने के लिएआये। आपने उनके मस्तक पर अपना हाथ रखा। संतो ने पूछा : "साता है तो?" आपने आह्लादपूर्वक उच्च स्वर मे उत्तर दिया "देव, गुरु के प्रताप से साता है।"

फिर आप बाजौट से नीचे उतर दिशा पधारे। सभी सत उपस्थित थे। किसी ने श्वास की औषधि बताई थी। उसको कई सत घिस रहे थे। मुनि जीतमलजी सतीदासजी आदि सतो से बोले . "हम लोग दिशा से वापिस आकर औषध देगे।" ऐसा कह पछेवडी (ऊपर का कपडा) पहन रजोहरण ले दिशा जाने को प्रस्तुत हुए। उस समय मुनि जीतमलजी के मन मे आया "यदि कही श्वास बढ गया तो? अच्छा हो आप निपट ले, तब औषधि देकर ही दिशा जाए।" ऐसा विचार कर वे ठहर गए। आप (मुनि हेमराजजी) दिशा से निवृत्त हो बाजौट पर बैठे। शरीर मे अत्यन्त पसीना आ गया। हाथ के इशारे से अफीम मागी। मुनि जीतमलजी ने अफीम दी। आप मुह मे रख उसे चूसने लगे। इतने मे पुद्‌गलो की शक्ति क्षीण होती हुई दिखाई दी।

अवसर देख मुनि जीतमलजी ने अनशन ग्रहण कराया। आपने शुद्ध विवेकपूर्वक उसे ग्रहण किया। मुनि जीतमलजी बोले "स्वामी! आपको अरिहत, सिद्ध, साधु और धर्म इन चारो शरणों का आधार है।" इसके बाद अनेक वैराग्य की बाते कही। तदनन्तर चारो आहार का त्याग कराया। फिर शरणो का आधार दिलाया।

इस प्रकार एक घडी का समय बीत गया। आप मुनि सतीदासजी और कर्मचन्दजी के हाथो के सहारे बैठे हुए थे। इसी दिशा मे आपने समाधि-मरण को प्राप्त किया। साधुओ ने शरीर-व्युत्सर्ग कर कायोत्सर्ग और ध्यान किया। सब सतो ने उस दिन उपवास किया। नाथू वैरागी ने मुनिश्री की देह को अपनी रक्षा मे लिया।

इस तरह आपका स्वर्गवास आपकी जन्मभूमि सिरियारी में ही स० १९०४ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया शनिवार के दिन हुआ। करीब दो मुहूर्त्त दिन चढ चुका था।[2]

उस दिन वहां साठ से अधिक साधु-साध्विया एकत्रित हो गए। आचार्य ऋषिराय आपके स्वर्गवास होने के दो मुहूर्त बाद पहुचे। मुनि हेमराजजी के प्राणशून्य शरीर को देखकर अथाह विरह वेदना हुई। बोले "भिक्षु, भारमलजी, खेतसीजी के देहान्त से इतनी करारी चोट नही लगी जितनी आज लगी है।"[3]

मुनि जीतमलजी ने इस घटना को इस प्रकार पद्य-बद्ध किया है :

---

१. जय (हे० न०), ६।७९-८२
२. वही, ६।८३-९९
३. वही, ६।१०७

आसरै दोय मुहूर्त्त पछै हो, आया पूज ऋषराय।
हेम सरीर देखी करी हो, उपनों विरह अथाय॥
भीखू भारीमाल सनजुगी चल्या हो, जद उमटी करड़ी लागी नांय।
पिण हिवड़ा करड़ो लागो घणो हो, इम बोल्या ऋषराय॥[1]

१५. कुछ विचित्र संयोग

आप (मुनि हेमराजजी) सिरियारी मे ही जन्मे, सिरियारी में ही प्रव्रजित हुए, सिरियारी मे ही उन्हे आखो की ज्योति पुन. प्राप्त हुई और सिरियारी मे ही उन्होंने संथारा किया

सरीयारी मे जनमिया, सरीयारी व्रत धार।
सरीयारी नेत्र खुल्या, सरीयारी संथार॥[2]

आपका जन्म माघ महीने मे हुआ था और माघ महीने मे ही आपने दीक्षा ली। शुक्ल पक्ष मे जन्म हुआ और दीक्षा भी शुक्ल पक्ष मे हुई। जन्म त्रयोदशी को हुआ और दीक्षा भी त्रयोदशी को। पुष्य नक्षत्र मे जन्मे और पुष्य नक्षत्र मे ही दीक्षा हुई। आयुष्मान योग मे जन्मे, आयुष्मान योग मे ही दीक्षा हुई।

भगवान् महावीर उत्तरा फाल्गुनी मे जन्मे थे और उत्तरा फाल्गुनी मे ही उन्होंने दीक्षा ली थी। वैसे ही आपके भी पुष्य नक्षत्र का योग मिला :

महा महीने हेम जनमिया आ०, महा महीने व्रतधार कै आ०।
सुकल पख नो जनम थो आ०, सुदि पख दिख्या धार कै आ०॥
जनम थयो तिथि त्रयोदशी आ०, तेरस दिख्या तार कै आ०।
पुष्य नखत्र मे जनमिया आ०, पुष्य मे दिख्या प्रकास कै आ०॥
जोग आयुष्मन जनम मे आ०, दिख्या आयुष्मन देख कै आ०।
भागवली हेम महामुनि आ०, मिलायो योग विशेष कै आ०॥
उत्तर फालगुणी मे जनमिया आ०, भगवत श्री वरधमांन कै आ०।
दिख्या उत्रा फालगुणी मझै आ०, ज्यू यारै मिल्यो पुष्य आण कै आ०॥[3]

हुलास 'शासन प्रभाकर' मे लिखा है :

वलि थया सत छतीशमा रे हेम ऋषि गुणखांण।
तीन कल्याणक तेहना रे लाल, पुष्य नक्षत्रे आयुष्मान योगे जांण॥
अठारै गुणतीशै सुदि माह नी रे, तेरस जन्म पुष्य ऋष्य।
शुक्रवार वर शोभतो रे लाल, आयुष्मान योग प्रतक्ष॥
दिख्या अठारै तेपने रे, माघ सुदि तेरस गुरुवार।
पुष्य नक्षत्र आयुष्मान योग मे रे लाल, भिक्षु स्वाम हस्त सुखकार॥

---

१. जय (हे० न०) ६।१०५-१०६
२. वही, १। दो० ८
३. वही, ३।१६-२२

१६. सबसे बड़ी देन : विद्यादान

मुनि जीतमल जी के विद्या गुरु

आप (मुनि हेमराजजी) की सबसे बडी देन है—आपका विद्यादान। आप मुनि जीतमलजी के विद्यागुरु थे, जो बाद मे चतुर्थ आचार्य हुए। उनकी दीक्षा आचार्य भारमलजी के समय मे ऋषिराय के कर-कमलो से स० १८६९ की माघ बदि ७ के दिन जयपुर मे सम्पन्न हुई। दीक्षा के बाद उन्हे आपको सौप दिया गया था। मुनि जीतमलजी कृतज्ञता की भाषा मे स्वय लिखते है .

सयम देई सूपीया, हेम भणी तिण वारी हो।
हेम भणाय पका किया, विद्यादान दातारी हो॥
ज्यारी बहु बलिहारी हो॥[1]

इसके बाद मुनि जीतमलजी के बारह चातुर्मास स० १८७० से लेकर १८८१ तक के आपके साथ हुए। बाद मे स० १९०३ का चातुर्मास भी साथ मे हुआ। इन तेरह चातुर्मासो मे आपने उन्हे भरपूर ज्ञान-दान दिया। मुनि जीतमलजी ने कहा है ·

तेरा चौमासा बहु खप करनै, सूत्रादि अर्थ उदारी।
विविध कला सिखाई जीत नै, हेम इसा उपगारी॥[2]

इस ज्ञान-दान की चर्चा करते हुए वे पुन लिखते है

मुनिवर रे हू तो बिदु समान थो रे, तुम कियो सिधु समान हो लाल।
तुम गुण कबहू न वीसरू रे, निश दिन धरू तुझ ध्यान हो लाल॥
मुनिवर रे जीत तणी जय थे करी रे, विद्यादिक विस्तार हो लाल।
निपुण कियो सतीदास नै रे, वले अवर सत अधिकार हो लाल॥[3]

अन्यत्र लिखते है

म्हा सू उपगार कीयो भारी, ज्ञान चरण दायक आप धारी।
कला सीख अकल शुभ सारी, सीखाई अधिक उदारी॥[4]

आपका समग्र जीवन एक चलता-फिरता महाविद्यालय था। इसका कुछ आभास निम्नलिखित घटनाओ से प्राप्त होगा

मुनि सरूपचदजी को ज्ञान-दान

स० १८७१ का आप (मुनि हेमराजजी) का चातुर्मास पाली मे था। उल्लेख है कि

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), ६।६। तथा—जय (हे० न०)[1] ४।२९
चरण समापी आपिया, हेम नैं तिण वारी हो।
हेम पढाय पका किया, सामी पारस भारी हो।
ज्यारी हू बलिहारो हो॥

२. जय (हे० न०), ६।३२

३. वही, ७।२१, २३

४. सत गुण वर्णन, ३।५

मुनि भीमराजजी और जीतमलजी आपके पास ज्ञानार्जन करते थे।[1] सं० १८७१ के शेषकाल मे आचार्य श्री भारमलजी ने मुनि सरूपचन्दजी को भी ज्ञान-प्राप्ति के लिए आपको सौप दिया।[2] तभी से वे भी आपके पास ज्ञानार्जन करने लगे। स० १८७४ के गोगुन्दा चातुर्मास मे सरूपचन्दजी ने दूसरा आचाराग सीखा। मुनि हेमराजजी ने प्रसन्न हो मुनि सरूपचन्दजी को और भी वहुत ज्ञान-दान किया ·

तीजो चौमासो कटालीयै, हेम ऋषि रै पास हो।
सैहर सरियारी ने विषै तुर्य तिमतरे वास हो॥
सैहर गोगूदै चिमतरै, हेम कने हितकार हो।
दूजा आचाराग सीखायो, अह निश उद्यम अपार हो॥
मुरधर देश विषै कीयो, पचितरै पाली सैहर हो।
छिहतरै देवगढ विषै, परम हेम नी मैहर हो॥
लिषणो पढणो वाचणो, चित्त चरचा नी चूप हो।
विनय वैयावच्च करण मे, अति उजमाल अनूप हो॥
अधिक रीझाया हेम ने, सखर साचवी सेव हो।
झीणी रहिस्य सिद्धान्त नी, सीखाइ स्वमेव हो॥[3]

उल्लेख है कि स० १८७४ के आपके गोगुन्दा चातुर्मास मे मुनि सरूपचन्दजी के साथ मुनि जीतमलजी और मोजीरामजी ने भी दूसरा आचारांग सीखा था ·

हेम सरूप जीत मोजीराम, सीख्या दूजो आचाराग ताम।[4]

आचार्य श्री ने स० १८७६ के शेषकाल मे मुनि सरूपचन्दजी का अलग सिघाडा कर दिया। इन्द्रगढ, कटालिया, सिरियारी, गोगुन्दा, पाली और देवगढ के क्रमश. १८७० एव स० १८७२ से १८७६ तक के ६ चातुर्मास उन्होने आपके सान्निध्य मे बिताये और प्रभूत ज्ञानार्जन किया। आपका कैसा विकास हुआ, इसका परिचय निम्न उल्लेख से प्राप्त होगा :

कला घणी चरचा तणी, अन्य मति ने आप हो।
वध करै इक बोल मे, साधीर्यता चित्त स्थाप हो॥[5]

मुनि सतीदासजी का शिक्षण :

मुनि सरूपचन्दजी और जीतमलजी की तरह ही आपने मुनि सतीदासजी को भी

---

१. जय (स० न०), ५।६
भीम जीत ऋषि हेम पै, पाली सैहर प्रकाश हो।
२. वही, ५।१०
पभणै भारीमालजी, ए त्रिहुं वंधव ताम हो।
हेम समीपै भेला रहो, इम कहि सूप्या आम हो॥
३. वही, ५।११-१५
४. शान्ति विलास, ३।४
५. जय (स० न०), ५।१८

बहुत ज्ञान दान-दिया। स० १८७७ के उदयपुर चातुर्मास के बाद शेषकाल मे मुनि सतीदासजी को सोलह वर्ष की अवस्था मे आपने दीक्षा प्रदान की, तभी से पूज्य आचार्य भारमलजी की आज्ञा से सतीदासजी मुनि हेमराजजी के चरणो मे ज्ञान-ध्यान का अभ्यास करने लगे। उन्होंने क्या क्या सीखा इसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

पुज्य तणी आज्ञा थकी, हेम सग सतीदास।
सखर समय रस सीखतो, वारू ज्ञान अभ्यास ॥

आवसग दसवैकालिक आमो रे, उत्तराध्ययन वृहत्कल्प तामो रे।
च्यारू सूत्र सीख्या अभिरामो ॥
सूत्रनी हुडी सिख्या सुचगो रे, तीन सो पट् वोल अभगो रे।
रग्या सवेग नै रस रगो ॥
वलि सीख्या अनेक वखाणो रे, सूत्र वाच्या सरस सुविहाणो रे।
झीणी चरचा तणा हुवा जाणो ॥[1]

आप और सतीदासजी ज्ञान के क्षेत्र मे वडे ओत-प्रोत होकर रहते थे। सतीदासजी आपको विविध सूत्र सुनाते। आप उन्हे विविध रहस्य वताते हुए ज्ञान-दान देते

सखर समय सुणवा तणो, हेम तणो दिल वाध हो।
सूत्र अनेक सुणाय नै, ते उपजाई समाध हो ॥
सुप्रसन्न किया स्वामी हेम नै, सखर पमायो सतोष हो।
झीणी रहिसा अति जुगत सु, हेम सिखाई निरदोप हो ॥
सूत्र वतीस वचाविया, सूक्ष्म चरचा नी सघ हो।
हेम ऋषि थाने हेत सै, प्रगट सिखाई प्रवन्ध हो ॥
सखर पढाया थानै शोभता, हेम ऋषि हद रीत हो।
भाजन जाण भणाविया, वलि जाण्या घणा सुविनीत हो ॥
परम भाजन थानै परखिया, सखर प्रकृति सुखकार हो।
अधिक विनय गुण आगला, तिण सु हेम भणाया थानै सार हो ॥[2]

मुनि मोतीचदजी का शिक्षण-प्रसग

इस प्रसग मे मुनि मोतीजी के शिक्षण की कथा वडी रोचक है। सीही ग्राम के मोतीजी दीक्षा का निश्चय कर दक्षिण से तीन सौ कोस नगे पैरो चलकर पाली आये तथा आचार्य भारमलजी के दर्शन कर दीक्षा लेने की भावना निवेदित की। रात्रि पर्यन्त पाली रहकर प्रात वहां से चलकर सीही ग्राम अपने माता-पिता के पास आये। आचार्य भारमलजी ने मोतीजी को दीक्षा देने हेतु आप (मुनि हेमराजजी) को जीतमलजी आदि सन्तो के साथ भेजा। आप मोतीजी के घर के वाहर की चौकी पर उतरे। मोतीजी की भुवाजी ने अनाप-शनाप वकना शुरू किया, लेकिन मुनि हेमराजजी शान्त रहे।

---

१. शान्तिविलास, ८। दो० ७, गा० १९-२१
२ वही, ९।७-१०,१३

आप मोतीजी को तात्त्विक ज्ञान सिखाने लगे। बाद मे आप खीवाडा चले आये, जो सीही ग्राम से एक कोस दूर था। मोतीजी वहां भी दर्शन करने जाते, तब आप उन्हे विविध ज्ञान देते। स० १८७४ मे आपका चातुर्मास जीतमलजी आदि सतों के साथ गोगुन्दा हुआ। मोतीजी वहा दर्शन करने गये और कई दिन रहे। आपने वहा भी शिक्षण जारी रखा। इस तरह मोतीजी के ज्ञान-विकास मे मुनि हेमराजजी का बडा हाथ था। श्रीमद् जयाचार्य ने इस घटना का वर्णन निम्न रूप मे किया है

आसरै कोस तीन सौ इह विध, आयौ पाली माह्यो।
तिहा भारीमालजी आदि सता रा, दर्शण मोती पायो रे॥
सौलै वर्ष आसरै वय तसु, दिल में अति वैरागो।
कहै हू दिक्षा लेसू स्वामी, घर रहिवा मन भागो रे॥[1]
भारीमालजी तिण समय, वारू करी विचार।
दिक्षा देवा म्हेलीया, हेम तणी तिणवार॥
हेम जीत मुनि आदि दे, आया सीहवा ग्राम।
मोती रे घर चौतरो, तिहां उतरीया ताम॥
तब भुआ आवी करी, अगल डगल बहु वाय।
उतावली बोली घणी, पण हेम तणे न तमाय॥
मोती ने सीखावीयो, जाणपणो बहु ताहि।
पछै खीमारे आवीया, हेम महा मुनि राय॥
तिहा हेमरा दर्शन काज, ओ तो आवे मोती समाज।
तिणरा मन माहि हरष अतंतो, मोती अधिक जाणपणो सीखंतो॥[2]
समत अठारे चौमतरे, हेम जीत चउमास॥
सैहर गोघदै नव मुनि, अधिको धर्म उजास॥
मोती दर्शण कारणै, आयो छे तिहा चाल।
हेम तणा दर्शण करी, तन मन हुओ खुसाल॥[3]

मुनि हरखचदजो का शिक्षण

मुनि हरखचन्दजी (१४४) ने स० १९०२ के शेषकाल मे आप (मुनि हेमराजजी), से दीक्षा ग्रहण की थी, तब से वे आपके स्वर्गवास सं० १९०४ जेठ सुदी २ तक आपके साथ रहे। इस अवधि मे आपके चरणो मे रहकर उन्होने जो ज्ञानार्जन किया, उसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है

ऋषिराय तणी आज्ञा थकी जशधारी रे, हेम ऋषि रै पास।
चित अनुकेडै चालता, वारु विनय अभ्यास॥

---

१. मोतीचन्दजी रो पचढालियो, १।२७-२८
२ वही, २। दो० १-४, गा० २
३. वही, ४। १-२, ८

रूडी रीत रीझावीया जशधारी रे, हेम भणी हरखेण।
प्रसन थया प्राप्ति करै, समय रहिस श्रमेण ॥
दशवैकालिक सीखीयो जशधारी रे, आवसग सुविशेप।
वर अनुयोगज द्वार ही, वलि उत्तराध्यैन सुदेश ॥[1]

१७. गुणोपपेत व्यक्तित्व

मुनि हेमराजजी एक वाके सन्त थे। उनकी कुशाग्र बुद्धि और निर्भीक प्रकृति उनके चर्चावादी रूप को साकार करती है और इगिताकार विज्ञता उनके विनीत शिष्यत्व को। उनकी असीम करुणा ने जयाचार्य के शब्दो मे उन्हे गरीब-निवाज और दीनदयाल वना दिया, तो उनके विद्यानुराग ने ज्ञान का महोदधि। उनके सत्यप्रेम ने उन्हे सम्यक्त्व का योद्धा वना दिया और उनकी सहज ऋजुता ने उनके वीतरागत्व को सयम का नवनवोन्मेप दिया। स्वाध्याय की तलहीन गहराई से विनय की असीम ऊचाइयो तक, अनुशासन की वज्रादपि कठोराणि की भूमिका से अनुकम्पा की कुसुमादपि कोमल मन स्थिति तक, प्याज के छिलको की तरह उनके व्यक्तित्व को वैविध्य के अनन्त आयामो ने आदृत किया है। इसीलिए उनके व्यक्तित्व को अरिहत और चिन्तामणि से उपमित करने पर भी अनन्त जयाचार्य नेति-नेति की भूमिका मे पहुच जाते है। उनका व्यक्तित्व एक ऐसी विराट देवमूर्ति को साकार करता है जिसका मस्तक आकाश की असीम ऊचाइयो मे स्थित हो और पैर पाताल की अतल गहराइयो मे।

मुनि हेमराजजी का व्यक्तित्व एक ऐसी ही प्रतिभा को साकार करता है जिसमे मानवीयता की सपूर्ण सीमाए मूर्तिमान् होती हो। असाधारण मनीपा के साथ अपरिसीम विनय का समन्वय, तप पूत साधना के साथ प्रखर वौद्धिकता का आलोक, सागर गभीर व्यक्तित्व मे शिशुवत् आर्जव का समावेश—ये मुनि हेमजी के व्यक्तित्व की अनुपम आलोक-रेखाए है जिनसे तेरापथ का ही नही अपितु जैनत्व का इतिहास भी आलोकित है, और शताब्दियो तक रहेगा। तेरापथ शासन के इतिहास मे तो उनका स्मरण एक आलोक-मणि के रूप मे किया जाता रहेगा। जयाचार्य ने उनके व्यक्तित्व पर वहुविध प्रकाश डाला है, जिसका एक उदाहरण दृष्टव्य है

मुनिवर रे उपशम रस मे रम रह्या रे, विविध गुणा नी खान हो लाल।
एकत कर्म काटण भणी रे, सवेग रस गलतान हो लाल ॥
मु० साम गुणा रा सागरू रे, गिरवो अति गभीर हो लाल।
ओजागर गुण आगलो रे, मेरू तणी पर धीर हो लाल ॥
मु० कठण वचन कहिवा तणो रे, जाणक कीधो नेम हो लाल।
वहुल पणै नहीं वागरचो रे, वचनामृत सू पेम हो लाल ॥
मु० विविध कठण वच साभली रे, ज्या रे मन मे नही तमाय हो लाल।
तन मन वच मुनि वस किया रे, ए तप अधिको अथाय हो लाल ॥
मु० चौथे आरै साभल्या रे, खिम्या सूरा अरिहत हो लाल।
विरला पाचमै काल मे रे, हेम सरीखा सत हो लाल ॥

---

१. हरख चौढालियो, १।३-५

मु० निरलोभी मुनि निरमला रे, आर्जव निरहंकार हो लाल।
हलका कर्म उपधि करी रे, सत वच महा सुखकार हो लाल ॥
मु० सजम मे सूरा घणा रे, वर तप विविध प्रकार हो लाल।
उपधि अन्नादिक मुनि भणी रे, दिल रो हेम दातार हो लाल ॥
मु० इर्या धुन अति ओपती रे, जाणँ चाल्यो गजराज हो लाल।
गुण मूरत गमती घणी रे, प्रत्यख भवदधि पाज हो लाल ॥
मु० आप गुणा रा आगरू रे, किम कहियै मुख एक हो लाल।
ऊडी तुझ आलोचना रे, वारूं तुझ विवेक हो लाल ॥
मु० साज घणा सता भणी रे, तैं दीधो अधिकार हो लाल।
गणवच्छल गणवाल हो रे, समरे तीरथ च्यार हो लाल ॥
मु० सुखदाई सहु गण भणी रे, कर्म काटण तू सूर हो लाल।
तन मन रज्यो आप सू रे, तूं मुझ आसापूर हो लाल ॥[1]

वडे कालूजी (१६३) ने आपके व्यक्तित्व की झांकी चन्द शब्दों मे वड़े मार्मिक रूप मे उपस्थित की है। वे लिखते है

"भण्या-गुण्या, वडा पडित, वेरागी, धीरजवान, चरचावादी, उत्पतिया बुद्ध घणी, वडा वनीत, वडभागी, सासण मै धोरी, भिक्षु रा परम भक्त, सिघाडाधारी, सुमति गुप्त वडा सचेत, वडा दिसावान, भाग्यवान, गयद सी चाल, मिथ्या मत साल, गहर गभीर। वंकचुलीया मै कह्यो स० १८५३ पछै समण सघ नी उदै २ पूजा हुसी सो ५३ तांइ तो वारे सत हुता हेम १३ मा हुवा जठा पछै घटीयौ नही। वडा नामी, थिवर उपाध्याय सरिखा, सासण रा स्थभ समान हुवा। घणा नै दिक्षा दीधी। श्रावक श्रावका घणा कीया। वड़ा उपकारी, जशकर्मी जीत्र छा। तपसा पण मोकली करी। उपवास वेला तेला तो घणा घणा कीया। चोला पचोला घणी वार कीया। ६।८ कीया। विगे रा त्याग वार २ कर वोकर्या। उभा काउसग। सीयाला मै चोलपटा उपरत न ओढणो, घणा वरस ताइ एक पछैवडी उपरंत न ओढणी, आतापणा पिण लीधी और पिण सवेग घणौ"[2]

जयाचार्य रचित सत गुणमाला कृति मे प्राय: सभी ढालो मे आपका गुणकीर्तन प्राप्त है। कुछ ढालो के उद्धरण पहले दिये जा चुके है।

एक ढाल मे लिखा है .

हेम मुनि आदि विचरे साप्रत काल के, ऋषराय तणी आणा मझै जी।
त्या सत सत्या नो जाप जपो गुणमाल के, ए गुण गाया गुणवत ना जी ॥[3]

विघ्नहरण की एक ढाल मे आपका कीर्तन प्रथम तीन आचार्यो की पक्ति मे प्राप्त है·

भिक्षु भारीमाल ऋपराया, सतजुगी हेम सुखदाया।
सासण सिणगार सुहाया रे, गुण गाया महापुरुषा तणा ॥[4]

---

१. जय (हे० न०), ७।१०-१६, १८, २४, २६-२७
२. ख्यात, क्रम ३६। इसी का पद्यानुवाद हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २३१-२३८ मे प्राप्त है।
३. सत गुणमाला, ४।३६
४. वही, ५।१

अन्य एक ढाल मे मुनि खेतसीजी और आपका सयुक्त गुणकीर्तन निम्न रूप मे मिलता है .

सतयुगी स्वाम साक्षात सतयुग जिसा, हेमाचल सारिखा हेम जाणो।
गण मांहे स्थंभ सम सत दोनू गुणी, पाखड पेमाल करता पिछाणो॥
सागर जेम गभीर गिरवा घणा, पर पीड जाणे ने प्रवीण पूरा।
अतिशय व्रत शोभे ज्यू हाथीया, खिम्या करवा भणी खेत सूरा॥
परम सुवनीत मुरजी देखे पूज्य नी, सतयुगी हेम कहे स्याम सुणीजे।
पदवी निज आपीये स्थिर कर स्थापीये, ब्रह्मचारी भणी पाट दीजे॥
सतजुगी हेम नो वचन सुण स्वामजी, जाण सुवनीत मन हर्ष थायो।
पाट दीयो रायचन्दजी स्वाम ने, जगत मे जेहनो यश छायो॥[1]

अन्य विघ्नहरण की ढाल मे आपका नाम-स्मरण निम्न रूप मे आया है

भिक्षु भारीमाल ऋषिरायजी, खेतसीजी सुखकारी हो।
हेम हजारी आदि दे, सकल सत सुविचारी हो॥
प्रणमू हर्ष अपारी हो, अ० भी० रा० शि० को उदारी हो।
धर्ममूर्ति धुन प्यारी हो, विघ्नहरण वृद्धिकारी हो॥
सुख सपति दातारी हो, भजो मुनि गुणा रा भडारी हो॥[2]

अन्य विघ्नहरण की ढाल मे आपका स्मरण इस प्रकार है

मुणिन्द मोरा, सम दम उदधि सुहाय।
हेम हजारी भारी रे, स्वामी मोरा॥
गुण रता रे मोरा स्वाम॥॥[3]

१. आजीवन ब्रह्मचारी

वताया जा चुका है कि आपने १५ वर्ष की अवस्था मे परनारी का त्याग कर दिया था।[4] स० १८५३ के शेप काल मे लगभग २४॥ वर्ष की अवस्था मे आपने यावज्जीवन शीलव्रत धारण किया। इस तरह आप दीक्षित हुए तव वाल ब्रह्मचारी थे।

जावजीव आदर लै, सुध शील सुचगो रे, विहू कर जोड लै आणो उछरगो रे॥
तव स्वामी खेतसी, कहै वात अमामी रे, तू हाथ जोड लै, वार-वार कहै स्वामी रे॥
सतजुगी नी वाण सुण, हेम जोड्या हाथो रे, तव पूछै वली, भीखू स्वामी नाथो रे॥
शील अदराय देउं, पूछ्यो वारवारो रे, भीखू गुरु भला, तसु उडो विचारो रे॥
तव हेम वोलिया, शील अदराय देवो रे, त्याग कराविया, स्वामी स्वयमेवो रे॥
पच पदा री साख कर पचखाण कराया रे, व्रत जाव जीवरो मन हरष धराया रे॥[5]

आपकी ब्रह्मचर्य की अखण्ड साधना की जयाचार्य ने जगह-जगह प्रशसा की है।[6] वे लिखते है

१. सत गुण माला, ६।४-७
२. वही, ८।१
३. मुणिन्द मोरा की ढाल गा० ७
४. जय (हे० न०), १।६
५. वही, २।३२-३७
६. वही, ३।३४, जय (भि० ज० र०), ४८।६, सत गुण वर्णन ढाल, १।८

मुनिवर रे स्त्रीयादिक ना सग नै रे, जाण्या विषफल जेम हो लाल।
हास कतोहल नै हणी रे, हीयै निरमला हेम हो लाल॥
मु० सील धर्‍यो नववाड सू रे, धुर वाला ब्रह्मचार हो लाल।
ए तप उतकृष्टो घणो रे, सुरपति प्रणमै सार हो लाल॥
मु० घोर ब्रह्म मुनि हेम नो रे, स्यू कहियै वहु वार हो लाल।
अखिल व्रत उचरग सू रे, पाल्यो अधिक उदार हो लाल॥[1]

२. वैराग्य के मूर्त रूप

आपको वैराग्य की बाते बडी अच्छी लगती थी —"वैराग्य नी वाता थकी हो, हेम तणे अति प्रति।"[2] अन्तिम दिन के प्रात काल जब मुनि जीतमलजी ने कहा कि मृत्यु एक महोत्सव है, तब आपने पूछा—"मृत्यु महोत्सव कैसे ?" इस प्रकार परस्पर जो वार्तालाप आगे वढा वह गुरु और शिष्य दोनो की वैराग्य वृत्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। यह वार्तालाप विषय और साहित्य की दृष्टि से जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही वैराग्य दृष्टि से अभिरुचिपूर्ण भी। वार्तालाप नीचे दिया जाता है

ए मरण छै सो तो महोच्छव अछै हो, छूटै असुच तन एह।
सोच करै किण वात रो हो, आछी वस्त तो नही जेह॥
आगै असख्याता काल मे हो, इसा कष्ट तणो नही काम।
नीव लागै सिवपुर तणी हो, तिण स्यू मृत्यु महोच्छव अभिराम॥
जब हेम हरप धर पूछियो हो, मृत्यु महोच्छव है ताम।
जीत कहै मृत्यु महोच्छव सही हो, पिडत मरण सकाम॥
ए शरीर विणसै हिवै हो, इण रो तो इचरज नाय।
इता वरस तांई ए तन रह्यो हो, तिण रो इचरज कहिवाय॥
देस-देस तणा आयनै हो, लाख मनुष्य भेला हुआ जाण।
ते मेलो मास रहीनै वीखरयो हो, गया आपरै ठिकाण॥
ते मनुष्य विखरिया तेहनो हो, इचरज नही छै लिगार।
एक मास भेला रह्या हो, ते इचरज अवधार॥
ज्यू अनता परमाणु भेला थयी हो, शरीर वध्यो छै एह।
इता वरस पुद्‌गल रह्या हो, हिवै विणसै छै तेह॥
पुद्‌गल रो गलण मलण स्वभाव छै हो, ते विणसै तिण रो अचरज नाय।
पिण इतरा वरस पुदगल रहया हो, ते इचरज कहिवाय॥
तिण कारण तन छूटै तेहनो हो, सोच नही छै लिगार।[3]

मुनि जीतमलजी की इन वैराग्यपूर्ण बातो को सुनकर मुनि हेमराजजी अन्त चेतना से सरावोर हो गये और बोले "सतीदास ! इन अद्भुत वैराग्य की बातो को सुनो।"

इत्यादिक घणी वाता सुणी हो, हेम पाया वैराग अपार॥

---

१ जय (हे० न०), ७।८, ९,१७
२. वही, ९।७८
३. वही, ९।६३-७१

घणो हरष धरी नै इम कहै हो, सुण-सुण रे सतीदास।
साभल वैराग री वारता हो, वलि कहै जीत नै विमास॥[1]

मुनि जीतमलजी ने इसके बाद "सुचिन्ना कम्मा सुचिन्ना फला, दुचिन्ना कम्मा दुचिन्ना फला"—आगम के ये वाक्य वतलाकर इस बात का विश्लेपण किया कि अच्छे कर्मो का फल अच्छा होता है और बुरे कर्मो का बुरा। यह सुनकर मुनि हेमराजजी बोले—"जयपुर का अमुक श्रावक यह बात कहा करता था। जीतमल, देखो गृहस्थ भी कितने समझदार होते है! कितना गहरा चिन्तन था!"

"सुचिन्ना कम्मा सुचिन्ना फला" हो, भली करणी रा भला फल होय।
"दुचिन्ना कम्मा दुचिन्ना फला" हो, भूडी करणी रा भूडा फल जोय॥
इम सुण हेम बोल्या तदा हो, इम तो कहितो जैपुर वालो जाण।
देख जीतमल गृहस्थ स्याणा हो, किसी विचारणा पिछाण॥[2]

३. तपस्वी जीवन

आपका जीवन वडा तपस्वी था। स० १८५६ के श्रीजीद्वार चातुर्मास मे आप भिक्षु के साथ थे। आपने चातुर्मास भर एकान्तर तपस्या की।[3] आपके तपस्वी जीवन की झाकी मुनि जीतमलजी के शब्दो मे इस प्रकार है

मुनिवर रे वास वेला वहुला किया रे, तेला चोला तत सार हो लाल।
पांच-पाच ना थोकडा रे, कीधा वहुली वार हो लाल।
हेम ऋषी भजियै सदा रे॥
मु० षट दिन कीधा खत सू रे, पूरो तप सू प्यार हो लाल।
आठ किया उछरग सू रे, हेम वडो गुणधार हो लाल॥
मु० रस नो त्याग कियो ऋषी रे, वहु विगै तणो परिहार हो लाल।
हेम वैराग सु देखनै रे, पामै अधिको प्यार हो लाल॥
मु० सीतकाल वहु सी खम्यो रे, एक पछेवडी परिहार हो लाल।
घणा वर्सा लग जाणज्यो रे, हेम गुणा रा भडार हो लाल॥
मु० उभा काउसग आदरचो रे, सीतकाल मे सोय हो लाल।
पछेवडी छाडी करी रे, वहु कष्ट सह्यो अवलोय हो लाल॥
मु० सजाय करवा स्वामजी रे, तन मन इधिको प्यार हो लाल।
दिवस रात्रि मे हेम नो रे, योहिज ऊदम सार हो लाल॥
काउसग मुद्रा थापनै रे, ध्यान सुधारस लीन हो लाल।
नित प्रत ऊदम अति घणो रे, मुगत साहमी धुन कीन हो लाल॥[4]

---

१ जय (हे० न०), ६।७१-७२
२. वही, ६।७३-७४
३ जय (हे० न०), ४।३
४. वही, ७।१-७
सेठिया (मुनि गुण वर्णन) पृ० १६ पर लिखा है "पाच तक तपस्या की" पर ऐसा लिखना गलत है। उपर्युक्त वर्णन के अनुसार आपने पाच का थोकडा वहुत वार किया। उत्कृष्ट मे आठ की तपस्या की थी।

४. विद्या रसिक

मुनि हेमराजजी अतीव विद्यारसिक थे। जीवन के अन्तिम क्षणों तक भी अध्ययन अनुशीलन की यह वृत्ति उनमे जागृत रही। इस तरह आप आजीवन विद्यार्थी के रूप में देखे जाते हैं। मुनि हेमराजजी का स० १८७४ का चातुर्मास ६ संतो से गोगुन्दा मे था। मुनि जीतमलजी साथ थे।[1] यहा आप, सरूपचन्दजी, जीतमलजी, मौजीरामजी ने द्वितीय आचारांग सीखा।[2]

स० १८७७ के उदयपुर चातुर्मास के बाद आप गोगुन्दा होते हुए वडी रावल्यां पधारे। मुनि जीतमलजी आदि सत साथ थे। उस समय आपने उनके साथ पन्नवणा सूत्र सीखना प्रारभ किया

तिण काले कचन ऋषि, जीत सग जयकार।
सूत्र पन्नवणा सीखता, वारू वृद्धि विस्तार॥[3]

मुनि सतीदासजी की दीक्षा के वाद आप किस तरह उनसे सूत्र सुना करते थे, उसका उल्लेख इस रूप मे मिलता है

सखर समय सुणवा तणो, हेम तणो दिल वाध हो।
सूत्र अनेक सुणाय नै, ते उपजाई समाध हो॥[4]

आपके जीवन की अन्तिम रात्रि के अन्तिम प्रहर में मुनि सतीदासजी एवं उदयचन्दजी ने मुनि जीतमलजी द्वारा रचित चौबीसी की चौदह ढाले सुनाई। आप हर्ष-विभोर हो उठे। आपने अभिग्रह किया कि यदि स्वस्थ हुआ तो मैं चौबीसी कठस्थ करूगा :

पाछिली निशा स्वामी भणी हो, सतीदासजी नै उदयचन्द।
चवदै ढाला चोवीसी तणी हो, सुणाई अधिक आणंद॥
हेम पोतै अभिग्रहो कियो हो, कारण मिटिया ताम।
म्हे पिण चोइसी मूहढै करां हो, एहवा वैरागी स्वांम॥[5]

५. चर्चावादी

यह बताया जा चुका है कि आप किस तरह वाल्यावस्था से ही प्रत्युत्पन्नमति थे और किस तरह गृहस्थावस्था मे भी दुर्धर्ष चर्चावादी थे।[6] आपकी धर्म-चर्चा करने मे बडी रुचि थी ·

ऊडी वुद्धि उतपात नी गु०, चरचा करवा चूप कै।
सूत्र सिद्धत सीखै मुनि गु०, आछी वुधि अनूप कै॥[7]

---

१. शान्ति विलास, ३। दो० १-२
२. वही, ३।४ :
हेम सरूप जीत मोजीराम, सीख्या दूजो आचाराग ताम।
३ शान्ति विलास, ७।दो० ३
४ वही, ६।७
५. जय (हे० न०), ६।२८-२६
६. देखिए पृ० २८४-८५
७. जय (हे० न०), ३।३७

आप बड़े चतुर और कुशल थे। ज्ञान-गभीरता, सौम्य मुखमुद्रा और शान्त वाणी आपकी बड़ी विशेषता थी। मिथ्यात्व रूपी व्याधि को हरने मे आप एक कुशल वैद्य की प्रवीणता रखते थे। चर्चा मे आप इतने दुर्जय थे कि आपका नाम सुनते ही प्रतिपक्षी के दिल मे धड़कन उत्पन्न हो जाती थी। आपकी वाणी मे चमत्कार और वडा प्रभाव था। आप बडे हाजिर-जवाब थे। दृष्टान्तो द्वारा समझाने की बड़ी क्षमता थी। हेतु, युक्ति और आगम-न्याय द्वारा बात को सप्रमाण प्रभावशाली रूप मे उपस्थित करने की वडी कला थी :

कला चुतराई देखता, पांमै जन बहु प्यार।
अन्यमती स्वमती साभलै, ते पिण लहै चिमतकार॥
मिथ्यात रोग मेटण भणी, हेम वैद हद जाण।
घणां जीवा नै काढिया, पाखड मत सू ताण॥
चरचा करण कला घणी, दियै विविध दिष्टात।
वलै सूत्र सिद्धत रा न्याय कर, दीपायो प्रभु नो पथ॥
घणा भेख धारचा सू चरचा करी, कीधा कष्ट अथाय।
हेम तणा नाम साभल्या, धडक पडै मन माय॥[1]

आप चर्चा करने मे अतीव प्रबल थे। गधहस्ती की तरह प्रतापी थे। आप की इतनी धाक थी कि जहां जाते, प्रतिपक्षियो मे सन्नाटा छा जाता :

भागवली भीक्खू तणै, शिष हेम हुवा वृद्धिकार।
पाखडी पग माडै नही, पडै हेम नी धाक अपार॥
भीक्खू भारीमाल ऋषराय रे, वरतारा मे हेम वदीत।
चरचावादी सूरमा, लिया घणा पाखण्डया नै जीत॥[2]

इस विषय मे कहा गया है

जाव देवा समरथ पिछाणजो, प्रश्ना रा अनेक प्रकार।
अन्य तीर्थी पूछे तेहनै, स्वामी जाव देवै तत सार॥
अणसमजु नै समजाय नै, मारग आणै ठाय।
अन्य मती ने जाव देवा समरथ छै, जीवादिक नव तत्त्व बताय॥
छव द्रव्य ने नव तत्त्व तणां, लडी बधी कायस्थित जाण।
बासठीयादिक बोल थोकडा, न्यारा-न्यारा कीधा पिछाण॥[3]

चर्चा मे पेश न आती, तब द्वेष और क्रोधवश लोगो को भड़का कर पीछे लगा दिया जाता। आप शान्त गभीर रहते। बड़े क्षमाशील थे।

ते चर्चा मे कष्ट ह्वै तरै, रीस करै कुड जाय।
द्वेष रै वस श्रावका भणी, लगावै ते करे बकवाय॥

---

१ जय (हे० न०), ७। दो० ६-६

२ जय (भि० ज० र०), ४८।१४, १६

३. सत गुण वर्णन, १।५-७

जब हेमजी स्वाम क्षमा करे, त्यां रो जोर न चालै कोय।
बोलै ते गिणत राखै नही, सूत्रा साहमो जोय॥[1]

आपके इस गुण की प्रशसा इस रूप मे प्राप्त है .

गहर गभीर सुर गिरि सा, खिम्यावान महाभारी।
उपसम रस नो स्वाद तुम लीनो, कर्म काटण सिरदारी॥[2]

गृहस्थावस्था एव साधु-जीवन की कुछ चर्चाओ का सकलन अन्त में दिया गया है।

६. सुविनीत, निस्पृह और निरभिमानी सन्त

आप के सम्बन्ध मे 'हेम सखर सुविनीत', 'परम विनयवन्त', 'हेम जाणे अगचेष्टा', 'हेम निर्मल हिया तणा' आदि विशेषणो का प्रयोग मिलता है। जयाचार्य ने लिखा है कि आप आचार्यो की आज्ञा का अखण्ड रूप से पालन करते थे। किसी तरह मान-अभिमान की भावना नही रखते थे। इस विपय मे आप वडे आत्मजित् थे।

मुनिवर रे अखड आचार्य आगन्या रे, ते पाली एक धार हो लाल।
मान मेट मन वस किया रे, नित कीजै नमसकार हो लाल॥[3]

यहा हम मुनि हेमराजजी के गुणो पर प्रकाश डालने हेतु कुछ घटनाओं का उल्लेख कर रहे है।

१ प्रत्येक चातुर्मास उतरने के बाद मुनि हेमराजजी द्वितीय आचार्य भारमलजी के दर्शन करने आया करते थे .

सहु चोमासा उतरचा दर्शन करण आवे हेम हो।
सरूप स्वाम भारीमालजी करै व्यावच धर प्रेम हो॥[4]

२. स० १८७७ के उदयपुर चौमासे के वाद आपने सन्तो के साथ राजनगर मे आचार्य भारमलजी के दर्शन किये। आचार्यश्री के शरीर मे अधिक असाता थी इससे अनेक सन्त वहा एकत्रित हुए। आचार्यश्री ने युवराज पदवी के लिए दो नाम लिख रखे थे—एक मुनि खेतसीजी का तथा दूसरा ऋषि रायचन्दजी का। मुनि जीतमलजी ने एक ही नाम के लिए विनती की। आचार्यश्री आपके मन की प्रतिक्रिया जानने के इच्छुक थे। इस परिस्थिति को आपने किस प्रकार परिष्कृत किया, उसका वर्णन इस प्रकार मिलता है :

भारीमाल तनु कारण जाणी, बहु सत मिल्या तिहा आणी।
गणपति नी मरजी ओलख, ऋषि हेम वदे इम वाणी॥
प्रगट पाट ऋषराय शशी ने, महर करी ने दीजे।
म्हारी तरफ नु आप मन माही, किचित फिकर न कीजे॥
डावी जीमणी आख दोनु मे, नहि है फरक लिगारो।
तिम आप तणे ऋषराय अने हू, सरीखा वेहु सुविचारो॥

---

१ सत गुण वर्णन, १।१४-१५
२ वही, २।५
३ जय(हे० न०), ७।२५
४ जय (स० न०), ५।१६

हेम वयण वर रयण समा सुण, गणपति हर्ष सुपाया।
परम विनीत रु नीतवद हद, जाण्या हेम सवाया।।
तव पद युवराज दियो ऋषिराय ने, हेम भणी सु विमासो।
नव सता स्यू स्याम भोलायो, शहर आमेट चोमासो ।।[1]

मुनि हेमराजजी कितने विनयी और नीति के निर्मल थे, यह इस घटना से स्वय प्रकट होता है। उस समय की आचार्यश्री की प्रतिक्रिया का उल्लेख करते हुए मुनि जीतमलजी ने लिखा है :

हेम वाणी सुणी पूज हरष्या रे, यानै तन मन सुविनीत परख्या रे।
निकलक हेम इम निरख्या।।
एहवा हेम सुवनीत गभीरा रे, ए तो मेरु तणी पर धीरा रे।
हेम निमल अमोलक हीरा।।[2]

३. स० १८८४ का चातुर्मास पेटलावद मे व्यतीत कर आचार्य ऋषिराय पुर पधारे। दीक्षा मे वडे होते हुए भी आप अनेक श्रावक-श्राविकाओ के वृन्द के साथ आचार्यश्री के सम्मुख पधारे।

पुर मे पधारता पूज्यजी रे, तिहा दिण्या वडा मुनि हेम।
वहु वाया भाया ना वृन्द स्यू रे, पूज्य स्हामा आया धर प्रेम।।[3]

मुनि हेमराजजी प्रतिक्रमण मे स्वय ही आलोचना ले लिया करते थे। आचार्यश्री ने मुनि जीतमलजी से कहा—"आलोचना गणी से लेनी चाहिए। जव तक हेमराजजी को सहमत नही करोगे, तुम्हे चारो आहारो का त्याग है।" मुनि जीतमलजी ने यह वात आपसे अर्ज की। आपने यह बात तुरन्त स्वीकार की और तव से आचार्यश्री से आलोचना लेने लगे। वास्तव मे बात यह थी कि उस समय तक इस प्रश्न की चोलना—चर्चा ही नही हुई थी। यह घटना भी स० १८८४ मे पुर मे घटित है।

पुर मे आया घणे हगाम, तठा ताइ चोलणा न हुइ ताम।
तिण सू पडिक्कमणे माहि मुनि हेम, निज मते आलोयण ले तेम।।
जद जय ने कह्य ऋषिराय, आलोयण लेणी गणी कने ताय।
हेमने आरे किया विण इण जाग, तुझ ने च्यारू आहार ना त्याग।।
जद ऋषि जीत अर्ज करी जाय, हेम ने आरे कराया ताय।
तिण पछै हेम मुनिराय, आलोयण करता पूज्य पे आय।।[4]

आप आचार्य भिक्षु और भारमलजी के प्रति जैसा वहुमान रखते रहे, वैसा ही आपने तृतीय आचार्य ऋषिराय के प्रति रखा।

खेतसीजी ने हेम ऋप, वडा संत सुवदीत।
अखड आणा माने सहु, परम पूज्य सू पीत।।[5]

---

१. मघवा (ज० सु०), ७।१०-१४। तथा जय (ऋ० रा० सु०),७।१७; जय(हे० न०), ५।५४-६०
२. जय (हे० न०), ५।५८-५९। तथा जय (ऋ० रा० सु०), ७।५-६
३. मघवा (ज० सु०), ११।१६
४ वही, ११। यतनी १-३
५. जय (ऋ० रा० सु०), ८। दु० ३

७. क्षमाशील

आप मे शान्ति का गुण उच्च कोटि का था। ऐसे लोग भी होते, जो ता र
उत्त र न दे पाने पर क्रोधवश आपे से बाहर हो जाते और गाली-गलौज करने ल
समय आप बडे शान्त भाव से यह सब सहन करते। इसीलिए आपको क्षमाशूर कहा

हेम मुनि सुवनीत भला ते, प्रसिद्ध लोक वदीता।
त्या क्षात तणो गहणो शुद्ध पहिर्यो, पाखडीया नैं जीता रे ॥
ते क्षमता करता पाखड डरता, केइ लडता पाखड पापी।
जब हेम क्षमा सू प्रेम लगावैं, त्यारे दिल मे सुमता व्यापी रे ॥[1]

१८. आचार्यों के बहुमान के पात्र

आपने तीन आचार्य—आचार्य भिक्षु, आचार्य भारमलजी एवं आचार्य ऋषि
के युग देखे थे। आपको सभी का स्नेह एव बहुमान प्राप्त हुआ। चतुर्थ आचार्य
के तो आप विद्या गुरु ही रहे। उन्हे युवराज पद आपके जीवन-काल में ही प्राप्त हो गया था

आपने प्रतिक्रमण सीखना प्रारम्भ किया, तभी भिक्षु ने भारमलजी से कहा
"अब तुम निश्चिन्त हो। पहले तुम्हारे लिए मै था, अब सर्वजयी हेम है।"[2] आपके र
की गरिमा को प्रकट करने वाले भिक्षु के ये उदात्त उद्गार उनके हृदय मे आपके प्रति
रहे हुए आकर्षण और प्रभाव का स्पष्ट चित्र खींच देते है। भिक्षु ने आप में एक महान्
ओजस्वी आत्मा का आलोक देखा था।

एक बार ज्येष्ठ सन्त वेणीरामजी ने भिक्षु से कहा : "हेमराजजी को व्याख्यान
अस्खलित रूप से कठस्थ नही रहते। वे जोड़ते जाते है और व्याख्यान देते जाते है।" भिक्षु
बोले : "केवली सूत्र-व्यतिरिक्त ही होते हे। उनके सूत्र से प्रयोजन नही होता।"[3] भिक्षु के
इस उत्तर मे आपकी ज्ञान-गरिमा के विषय मे एक अत्यन्त उदात्त प्रशस्ति सन्निहित है।

स० १८६६ का आपका चातुर्मास पाली मे था। अस्वस्थ हो जाने से चातुर्मास के बाद
विहार नही कर पाये। आचार्य भारमलजी ने मुनि भगजी और जवानजी को आपकी सेवा मे
भेजा। बाद मे स्वयं पधारे। मुनि खेतसीजी आदि अनेक साधु और हीरांजी आदि अनेक
आर्याएं साथ थे। बहुत उपचार कराने पर आप स्वस्थ हुए और विहार किया। थाहमावास
पधारने का समाचार मिलने पर ही आचार्यश्री ने आहार कर रोयट की ओर विहार किया।[4]

स० १८७५ के काकरोली चातुर्मास के बाद शेषकाल मे आचार्य भारमलजी उदयपुर
पधारे थे। लोगो के बहकाने से उदयपुर के महाराणा भीमसिंहजी ने आचार्य भारमलजी को
उदयपुर में न रहने का हुक्म दे दिया। बाद मे उनको अपनी महती भूल महसूस हुई और

---

१. भारीमाल गणि गुण वर्णन, ३।७,८
२. जय (हे० न०), ३।२
३. जय (भि० दृ०), १५६
४. हेम दृष्टान्त, दृ०३४

उन्होंने आचार्यश्री को उदयपुर पधारने की दो बार विनती की।

सं० १८७६ के पुर चातुर्मास मे उदयपुर पधारने की विनम्र विनती आई। आचार्यश्री स्वय तो नही पधारे, पर राणाजी की विनती स्वीकार कर मुनि हेमराजजी को १२ सन्तों के साथ वहा भेजा। इस अवसर पर ऋषिराय (भावी तृतीय आचार्य) भी आपके साथ थे। आप एक महीने उदयपुर ठहरे। वडा उपकार हुआ। राणाजी ने पधार कर आपकी वदना की।

छिहतरे पुर छाजता, भारीमाल ऋषराय।
आई हिन्दूपतिनी वीणती, करी घणी नरमाय॥
उदियापुर पधारियै, दुनिया साहमो देख।
दुष्ट साहमो नही देखिये, क्रिपा करो विसेख॥
सामी मानी वीणती, चोमासो उतरिया सोय।
विचरत २ आविया, सेहर काकडोली जोय॥
हेम ऋषि रायचदजी, तेरे साध तिवार।
पूज हुकम सू आविया, उदियापुर सेहर मझार॥
उदियापुर आए नम्यो, हिन्दूपति हरष सहीत।
उपकार हुओ त्या अति घणो, सागै चोथा आरा री रीत॥[1]

इसका कुछ और स्पष्ट वर्णन निम्न रूप मे मिलता है

सवत अठारै छिहतरै रे, फाल्गुण तेरस दिन सारो रे।
उदियापुर मे आविया पिछाणो॥
तेरे साधा सू पधारीया रे, हेम ऋषि रायचद रे मुणंद।
घणा जीवा रा ज्या मेटिया रे फद॥
हिदुपति सुण हरषित थयो रे, असवारी कीधी तिणवार रे आणदे।
साध सनमुख आय ने वदै॥
गुणग्राम करै मुख सू घणा रे, जब इचरज हुवा बहु लोक रे विशेषी।
धर्म द्वेपी पिण इचरज थया देखी॥[2]

स० १८७७ का मुनि हेमराजजी का चातुर्मास आचार्यश्री ने उदयपुर का फरमा दिया। सात सन्तो सहित आप वहा पधारे।

उदियापुर धर्म उजासो रे, सततरे कियो चौमासो रे।
हिन्दुपति हूयो अधिक हुलासो॥[3]

आचार्य भारमलजी ने आपको भेजना अपने पधारने के बराबर ही समझा।

आचार्य भारमलजी ने स० १८७७ के शेष काल मे ऋषिराय को युवाचार्य की पदवी दी। उसके पहले आपकी भावना को जान लिया था।

---

१. हेम (भा० च०), ५।दो०४-८
२. सत गुण वर्णन, ६।१-३
३. जय (हे० न०), ५।४६

खेतसी हेमजी भणी, पूछे नै दियो पाट।
ब्रह्मचारी ऋप रायचंद ने, थिरकार राखजो थाट ॥[1]

स० १८८१ के शेषकाल मे आचार्य ऋपिरायजी ने आपके लिए आहार के वटवारे का नियम उठा दिया।

हेम ना चित मे अहलादो रे, ऋपराय उपाई समाधो रे।
टाली विविध प्रकार नी व्याधो ॥
जीत विनती करी कर जोड़ी रे, वहु भक्ति करी मांन मोडी रे।
पूज हेम तणी पांती छोडी ॥[2]

यह भी महती कृपा और वहुमान का द्योतक है।

स० १९०४ के आमेट चातुर्मास के वाद जव आप कांकरोली पधार रहे थे तव ऋषिरायजी स्वय वहु सन्तों के साथ आपकी अगवानी के लिए गये और हाथ ... वडे भक्तिभाव से आपकी वदना की।

चरम चौमासो उतर्‌यो, विहार कर्‌यो तिण वार।
विचरत-विचरत आविया, कांकडोली सैहर मझार ॥
परम पूज सुण हरपिया, संत घणा ले संग।
साहमा आया हेम रै, उपनो अधिक उमंग ॥
वे कर जोडी वदना, देखै वहु जनव्रंद।
नरनारी हरष्या घणा, पाम्या अधिक आणद ॥[3]

आचार्यश्री देहान्त के पूर्व नही पहुच सके। दो मुहूर्त वाद मे पहुंचने पर उन्होंने जो उद्‌गार व्यक्त किये वे दिये जा चुके है। मुनि हेमराजजी के स्वर्गवास से गण की अपूर्तिकर क्षति मानी गई।

स्वर्गवास के वाद आचार्यश्री ने मुनि जीतमलजी को 'हेम नवरसो' लिखने का आदेश दिया।

परम पूज जीत नै कह्यो हो, करो नवरसो सार।
इम पूज तणी आज्ञा थकी हो, जोड्‌यो हेम नवरसो उदार ॥[4]

स० १९०४ की जेठ वदि २ के प्रात.काल मुनि हेमराजजी का देहान्त हुआ। उसी दिन प्रात.काल युवाचार्य जीतमलजी ने अपने विद्यागुरु के सम्मुख उनकी यशकीर्ति करते हुए निम्न उद्‌गार व्यक्त किये थे

वले जीत कहै स्वामी हेम नै हो, आप वडा गुणवान।
भारी खिम्या गुण आपरो हो, आप वडा धीर्यवान ॥
निरलोभपणो भलो आपरो हो, आप भला सरल सुखकार।
वले निरअहंकार पणो भलो हो, भलो व्रह्मचर्य उदार ॥

---

१ हेम (भा० च०), ८।६
२. जय (हे० न०), ५।६७,६९
३. वही, ८।दो०१-३
४. जय (हे० न०), ९।११४

सत्य प्रग्या भली आपरी हो, वडा ओजागर आप।
परभव री खरच्या पलै वाधी भली हो, मेट्या घणा रा सताप ॥[1]

हेम नवरसो मे युवाचार्य जीतमलजी ने लिखा ·

उपसम खम दम सील मे हो, हेम सरीसा सत।
चौथे आरै पिण विरला होसी हो, साध महा गुणवत ॥
नाम हेम रो साभली हो, पामै मन अहलाद।
विविध वैराग री वात मे हो, हेम आवैला याद ॥
विरहो पड्यो स्वामी हेम रो हो, दोरी लागी अथाय।
कै मन जाणै माहिरो हो, कै जाणै जिन राय ॥
हेम जिसा मुझ किम मिलै हो, इण भव एहवा सत।
दिसावान गुण आगला हो, मोटा हेम महत ॥[2]

आचार्य भारमलजी एव आचार्य ऋषिराय ने इस वात का हमेशा ध्यान रखा कि आपकी सेवा मे किसी प्रकार की कमी न रह पाये। आपके साथ सदा अच्छे सत रखे गये।

मुनि सरूपचन्दजी की स० १८६९ के शेपकाल मे दीक्षा हुई। स० १८७१ के चातुर्मास को छोडकर स० १८७६ तक वे आपकी सेवा मे रहे। इस तरह लगभग ७ वर्ष तक वे वडे दत्तचित्त से आपकी वैयावृत्य करते रहे।

स० १८७७ के शेप काल से स० १९०४ तक अर्थात् देहावसान तक आपको मुनि सतीदासजी की सेवा प्राप्त हुई। उन्होने वडे सच्चे मन से लगभग २८ वर्ष सेवा की, विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की।

सेव करी साचै मनै हो, सतीदास सुखकार।
चित समाधि दीधी घणी हो, व्यावच विविध प्रकार ॥[3]

इस सम्वन्ध मे मुनि जीतमलजी ने लिखा है

सततरा सू चोका विचै जाणो, वर्स अठावीस भारी।
त्रिकर्ण सेव मे लीन पणै अति, सतीदास सुखकारी ॥
सोम्य प्रकृति अति पुण्य सरोवर, सुवनीता सिरदारी।
एहवा सतीदास मिलिया हेम नै, पूरव पुण्य प्रकारी ॥
चालण वोलण कारज मे, अन्न पान वस्त्रादिक विसाली।
विविध साता उपजाई सतीदासजी, प्रीत भली पर पाली ॥[4]

मुनि हेमराजजी को प्राय २७ वर्षो तक मुनि सतीदासजी की सेवा प्राप्त हुई। अन्त समय मे आपने वडा सहारा पहुचाया।

---

१. जय (हे० न०), ६।७५-७७
२ वही, ६।१०१-१०४
३. वही, ६।११३
४. वही, ६।२८-३०

सप्त विस झाझा सखर, हेम तणी ऋषि शांति।
सेवा करि साचै मनै, भाजी मन री भ्रांति ॥
अन्त समय सीधो सखर, अधिको संजम माज।
शांति ऋषीश्वर सूरमा, सुविनीता सिरताज ॥[1]

स० १८८३ के आमेट चातुर्मास से लेकर अन्तिम स० १९०४ के आमेट तक २२ वर्षो मे आचार्य ऋषिराय द्वारा दीक्षित सन्त उदयचन्दजी (छोटे) सेवा मे रहे। उग्र तप करने के साथ-साथ मुनि हेमराजजी की बड़ी सेवा करते रहे। के लिए हनुमान् थे, वैसे ही उदयचन्दजी मुनि आपके लिए थे।

लघु उदैचद गुण आगलो, दिख्या दीधी ऋपराय।
हेम हजूरी विनय गुण, तपसी महा सुखदाय ॥
राम तणै मुख आगला हणुमत, सेवग महा सुखकारी।
हेम तणै मुख आगला उदैचद, पूरो है प्रतीतकारी ॥[2]

मुनि उदयचन्दजी की तरह ही मुनि हरखचन्दजी की भी सेवा आपको प्राप्त थी। स० १९०२ के शेष काल मे आपकी दीक्षा हुई थी। तब से अन्त तक सेवा में रहे।

हरष उदयचद सेव करी हद, सांमी नै साताकारी।
सत विनयवंत मिलिया हेम नै, भाग दिशा अति भारी ॥[3]

१९. विशिष्ट चर्चा-वार्ता

१. साधु-जीवन की चर्चाएं

१. सं० १८५५ के वर्ष भिक्षु, भारमलजी, खेतसीजी और हेमराजजी चार संतों ने पाली में चातुर्मास किया। श्रावण मास मे केलवा के उदयरामजी चपलोत ने पाली आकर दीक्षा अगीकार की। उन्हे मिलाकर पाच सत हो गए। एक दिन मुनि हेमराजजी और उदयरामजी लोटो के मुहल्ले मे आहार गवेपणार्थ गए, तव मुकनोजी दाती ने कहा : "अपने गुरु से कहे कि टीकमजी के साथ चर्चा करे।" मुनि हेमराजजी बोले कि यदि टीकमजी का विचार हो तो वे मुझसे ही चर्चा करे। मुकनोजी ने पूछा : "तव क्या आप टीकमजी से चर्चा करने को तैयार है?" आपने कहा . "करने का भाव है।" आप गोचरी कर मुहल्ले की नुक्कड़ पर आये तो देखा कि टीकमजी काफी लोगो के साथ वहा उपस्थित है। आपको देखते ही टीकमजी ने पूछा : "हेमराजजी ! मुझसे चर्चा करेगे?" आप बोले "आपकी इच्छा हो तो करने का विचार है।" यह कहकर तुरन्त चर्चा आरम्भ करते हुए आपने पूछा : "नव पदार्थ मे सावद्य कितने और निरवद्य कितने है?" टीकमजी ने उत्तर दिया : "जीव और आश्रव दोनों सावद्य भी है तथा निरवद्य भी। अजीव, पाप, पुण्य, वध सावद्य भी नही तथा निरवद्य भी नही। सवर और निर्जरा निरवद्य है।"

ऐसी टीकमजी की मान्यता नही थी लेकिन उन्हे भिक्षु कृत तेरह द्वार कठस्थ थे, अत

---

१. शान्ति विलास, १०।दो०२,४
२. जय (हे० न०), ६।दो०२, गाथा २७
३. वही, ६।३१

पीछा छुडाने के लिए उक्त उत्तर दे दिया। आप बोले · "आश्रव जीव है या अजीव ?" टीकमजी ने उत्तर दिया "आश्रव अजीव है।" आपने कहा "इधर आप आश्रव को अजीव कहते है, उधर आपने आश्रव को सावद्य और निरवद्य दोनो वताया। अजीव को आप सावद्य या निरवद्य दोनो नही मानते तव आपकी दृष्टि से आश्रव अजीव नही ठहरता।"

टीकमजी उत्तर देने मे असमर्थ हुए। फिर भी वे वोले . "मै जो कहता हू वह भगवती सूत्र मे है।" तव नायकविजय उपाश्रय से भगवती सूत्र ले आए। टीकमजी ने उसके वारहवे शतक के पाचवे उद्देशक मे आशा, तृष्णा, रुद्र, चण्ड आदि के वर्णादि सम्वन्धित पाठ निकाले। आपने कहा "आपने जो पहले कहा था कि आश्रव सावद्य और निरवद्य दोनो है, आश्रव अजीव है, तत्सम्वन्धित पाठ निकाले।" टीकमजी कोई पाठ नही निकाल सके। फिर नायकविजय आपको उपाश्रय ले गए। मुनि हेमराजजी पूर्व दिशा की ओर मुह कर वैठे तथा टीकमजी पश्चिम की ओर मुह कर। लोगो ने कहा—पिछली चर्चा तो हमारी समझ मे नही आती अत दूसरी चर्चा करे। लोग काफी सख्या मे एकत्रित हो गए थे। टीकमजी ने कहा "दूसरे विषय पर चर्चा करे।" मुनि हेमराजजी वोले "पहले पिछली चर्चा का तो जवाव दीजिए।" अनेक वार यह वात कही, पर टीकमजी चुप रहे।

२. फिर टीकमजी ने कहा "भगवान ने गोशालक को वचाया। उसमे क्या हुआ ?" मुनि हेमराजजी ने कहा जो सूत्रो मे लिखा है वही फल सही है। टीकमजी ने तव भगवती सूत्र का पाठ निकाला। अनुकम्पा के हेतु गोशालक को वचाया—इस पाठ का अर्थ टीकमजी ने नही पढा। तव नायकविजय ने कहा—लाओ, मै पढ देता हू। यह कहकर वह पन्ने ले पढने लगे। उसमे आया कि भगवान ने गोशालक को सराग भाव के कारण, दया के एकरस भाव के कारण वचाया। वीतराग भाव से लव्धि मे अनुपजीवकत्व के कारण ही उन्होने सर्वानुभूति व सुनक्षत्र मुनि का सरक्षण नही किया। तव मुनि हेमराजजी वोले "यहा तो गोशालक को वचाया उसे सराग भाव कहा है।" यतिजी ने भी उसका समर्थन करते हुए कहा "यहा तो सराग भाव से वचाया, यही उल्लिखित है।" टीकमजी ने कहा "भगवान ने तपस्या की, वह भी सराग भाव से ही की थी।" मुनि हेमराजजी ने कहा "तपस्या सराग भाव कहा है ? तपस्या तो क्षयोपशम भाव है, वीतरागत्व का नमूना है।" टीकमजी उत्तर देने मे असमर्थ रहे।

३. कस्तूरमलजी जालोरी ने प्रश्न किया कि मूगो की कोठी भरी हो। उसमे वहुत जीव पड़ जाए तो क्या करना चाहिए ? टीकमजी ने कहा "जीवो को शाला मे पृथक् रख देना चाहिए।" फिर हेमराजजी से पूछा "आप क्या कहते है।" मुनि हेमराजजी ने कहा "हमारे विचार से तो कोठी के हाथ ही नही लगाना चाहिए, मूगो का हाथ से सस्पर्श भी नही करना चाहिए।" यह कहकर "द्रव्य लाय लागी भावे लाय लागी—" इस ढाल को अनेक गाथाए कही। उसमे एक गाथा मे कहा था कि कुए से अथवा आग से निकालना इहलौकिक उपकार है। लोग वोले . "भीखनजी उपकार मानते है।" मुनि हेमराजजी वोले "सासारिक उपकार मानते है।" तव लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इतने मे चतरोजी शाह ने आकर कहा · "चर्चा अच्छी रही। परस्पर प्रेम रहा। अव वापस पधारे।" मुनि हेमराजजी ने लौटकर सारी वात भिक्षु से कही। सुनकर भिक्षु अत्यन्त प्रसन्न हुए। भिक्षु ने यह चर्चा कागज पर उतार ली।[1]

१. हेम दृष्टान्त, दृ० ८

४. स० १८५५ के पाली चातुर्मास की बात है। मुनि हेमराजजी बाहर प
वहा टीकमजी मिले। बोले "आप मे अनुकम्पा नही, आप जीव नही बचाते।"
दिया "हमारी अनुकम्पा अत्यन्त गहरी है। भगवान के द्वारा प्ररूपित रीति से
देते है। आप कहते हैं कि आप जीवो को बचाते हैं तो यह हरियाली उगी हुई
आकर खाने लगे तो आप छुडावेंगे या नही।" टीकमजी उत्तर न दे पाये। मुस्करा
"आपकी मान्यता आपके पास और हमारी मान्यता हमारे पास।" ऐसा कह तुरन्त

५ जोधपुर मे कुछ साध्वियो से मुनि हेमराजजी ने पूछा : "आप किनके टोले
क्रुद्ध होकर बोली' "तुम्हारे गुरु का मस्तक मूंडा, उनके टोले की है।" आप विनोदपूर्व
"हमारे गुरु का मस्तक तो नाई ने मूडा था, सो आप नाई के टोले की है क्या ?"[२]

६ स० १८७६ मे रुघनाथजी के साधुओ ने मुनि हेमराजजी से नाथद्वारा मे कहा
हम लोगों पर स्थानक मे रहने का दोष मंढते हैं, पर भारमलजी का देहान्त होने पर
श्रावको द्वारा अर्थी (माडी) तैयार कराई गई जिसमे ग्यारह सौ रुपये लगाये गए।
आपको कितना पाप लगा!" आप बोले' "उनको तो श्रावकों द्वारा देहान्त के बाद
बैठाया गया था। अत' उसका पाप संतो को नही लग सकता। लेकिन आप लोग तो
जीवित अवस्था मे ही स्थानको मे बैठे है।"[३]

७. बीलावास मे एक देहरापथी बोला' "हिसा के विना धर्म होता हो तो बतावे।" ३
बोले' "आप यहा बैठे हैं। बैठे-बैठे ही आप वैराग्यपूर्वक यावज्जीवन हरियाली का ?
कर दे तो धर्म हुआ कि नही।" उसने कहा . "यह तो हुआ।" आप बोले . "क्या इसमे
हिंसा हुई ? इस प्रकार हिसा विना धर्म होता है। हिसा से धर्म होना तो दूर रहा, धर्म उठ ज
है। कोई साधु को आया देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ और आहारादिक देने को उठा। हर्षपूर्वक
आने लगा कि अन्न के एक दाने पर पैर लग गया तो वह आहार साधु नही लेगा। श्रावक की
इतनी हिसा मात्र से वह धर्म नही कर पाया।"[४]

८ पाली मे सवेगियो के श्रावक बोले : "भावी तीर्थकर वन्दनीय होता है।"

मुनि हेमराजजी बोले' "प्रतिमा निर्मित कराने के लिए आप पत्थर लावे, उस पत्थर
की प्रतिमा बनने वाली है, आप उस पत्थर को वन्दना करेंगे या नही ? वे लोग उत्तर देने मे
असमर्थ रहे। मुनि हेमराजजी बोले' "प्रतिमा बन गई हो लेकिन उसकी प्रतिष्ठा न हुई हो तो
भी उसकी वन्दना नही करते। प्रतिमा की प्रतिष्ठा न होने से पहले तक उसमे कोई गुण न था
फिर प्रतिष्ठा होने पर उसमे कौन-सा क्या गुण आ गया ? तीर्थकर का जीव नरकादिक मे पड़ा
हो अथवा गर्भ मे हो, उसकी तो वन्दना करते है और जो पत्थर लाया गया उसकी प्रतिमा
बनाई, केवल प्रतिष्ठा नही हुई, उसकी वन्दना क्यो नही करते ? आपकी दृष्टि से यह अन्तर
क्यो ? जब आप जिन प्रतिमा को जिनके समान ही मानते है तो यह अन्तर क्यो ?"[५]

---

१. हेम दृष्टान्त, दृ० ९
२. वही, दृ० १०
३. वही, दृ० ११
४ वही, दृ० १२
५. वही, दृ० १३

९. मुनि हेमराजजी आहार गवेषणार्थ पधारे। एक घर मे आहार ले रहे थे कि दूसरे घर वाली ने अपने घर का दरवाजा खोल दिया। उससे पूछने पर उत्तर दिया "कपाट नही खोले है।" कपाट की साकल हिलते देखकर आपने कहा "ऐसा लगता है कि कपाट आपने अभी खोला है। इसी से यह साकल हिल रही है।" तव वह वोली . "आप तो इस तरह वहुत करते है, दूसरे तो ऐसा नही करते।" आपने उत्तर दिया "हम लोगो के लिए अकल्प्य आहार लेना वर्जित है।"[१]

मुनि हेमराजजी आहार गवेषणार्थ पधारे। एक वहन ने दरवाजा खोला और वोली "धागा कात रही थी, अत रूई की पूनियो (वत्तियो) के लिए खोला है, आपके लिए नही।" आपने उसका कतिया देखा। अन्दर काफी पूनिया थी। अत वोले "वहन, तू कह रही थी कि पूनिया लाने के लिए दरवाजा खोला है, लेकिन पूनिया तो इसमे काफी दिखाई दे रही है।" यह कहने से वह लज्जित हो गई।"[२]

१०. सिहवास मे माना खेतावत से मुनि हेमराजजी वोले "रात्रि-भोजन का त्याग करो।" उसने कहा . "रात्रि का त्याग करने से चन्द्रमा रुष्ट हो जाता है तथा दिन का त्याग करने से सूर्य।" मुनि हेमराजजी ने कहा "तव अमावस्या की रात्रि का त्याग करे।" वह वोला "ठीक है, करा दे।"[३]

११. चेलावास मे हीरजी यति उलटी-पुलटी चर्चा करते थे। मुनि हेमराजजी उनसे वोले "यदि आपको राजाजी आज्ञा दे कि जी मे आए सो करो तो क्या करेगे ?" हीरजी वोले "एक भी ढूढिया को न छोडू। सवको अपने हाथ से मार डालू।" मुनि हेमराजजी वोले "हमे तो टाल ही देगे क्योकि अपने मे तो प्रेम है।" तव हीरजी वोले . "सवसे पहले तो तुम्हे ही मारूगा।" तव मुनि हेमराजजी वोले "तुम्हारे ये मनोरथ तो पूरे होते प्रतीत नही होते। निरर्थक खोटी भावना क्यो ?"[४]

१२ जोधपुर मे किसी ने पूछा . "विजयसिहजी ने डुग्गी पिटवाई, उसमे क्या हुआ ?" मुनि हेमराजजी वोले "मानसिहजी जलधरनाथजी की पूजा करते है, उसमे क्या हुआ मानते है ?"[५]

१३ सिरियारी मे एक अन्यमती साधु ने पूछा · "भीखनजी ने एक पक्ति लिखी है—'साध नै श्रावक रत्ना री माला, एक मोटी दूजी नान्ही रे। गुण गुथ्या च्यारा तीर्थ ना, इविरत रह गई कानी रे ॥' सो अविरत वायी ओर रही या दायी ओर ?" मुनि हेमराजजी वोले "जीव के असख्यात प्रदेशो मे ही अविरति है और असंख्यात प्रदेशो मे ही विरति है। गुण अलग-अलग है। अविरति पाच व्रतो से पृथक् है। इस अपेक्षा से वह अलग है।"[६]

१४. स० १८७५ मे पाली मे मुनि हेमराजजी आहार गवेषणार्थ गये। सवेगी रूपविजयजी ने उपाश्रय की खिडकी से आवाज दी · "हेम ऋषि ! आओ चर्चा करे।" तव आप वैठे।

---

१. हेम दृष्टान्त, दृ० १४
२ वही, दृ० १५
३. वही, दृ० १६
४. वही, दृ० १७
५. वही, दृ० १८
६. वही, दृ० १९

संवेगियों की श्रद्धा के अनेक लोग एकत्रित हुए। रूपविजयजी बोले : "मुखवरि...
बाधते है ?" आप बोले : "दया हेतु।" रूपविजयजी बोले : "किसकी दया के लि...
कहा "वायु काय की दया के लिए ?" रूपविजयजी ने प्रश्न किया : "वायुकाय
शरीर चौस्पर्शी है या अष्ट स्पर्शी ?" आपने कहा : "अष्ट स्पर्शी।" उन्होंने पूछा :
पुद्गल चौस्पर्शी है या अष्टस्पर्शी ?" आपने उत्तर दिया : "भाषा के पुद्गल चतु:स...
रूपविजयजी बोले "जब भाषा के पुद्गल चतु:स्पर्शी हैं तब उनमे अष्टस्पर्शी वायुका...
का हनन कैसे होगा ? रूई की पूनी गिरने से भैंस कैसे मर जायेगी ?" आपने कहा
गिरने से तो भैंस नही मरती, लेकिन सौ मन की शिला गिरने पर तो मरेगी ही। उस
भाषा बोलने से जो नया अष्टस्पर्शी अचित्त वायु उठता है, उस वायु से वायुकाय के
हनन होता है।" रूपविजयजी बोले · "यो जीव मरते हैं तो वस्त्र तीन स्थानों पर
चाहिए—वस्तिप्रदेश, मुह और नासिका के।" आप बोले . "वस्ति प्रदेश के संदर्भ मे जो क...
है, वह ऋषियो ने प्ररुपित किया है तथा नाक से छीक आने पर भी सामने हाथ देना
है। "छीएण जभाइएण...वायनिसग्गेण' यह पाठ सूत्र मे आया है कि नही ?" तब ...
ने कहा "आया तो है।"

इस तरह चर्चा मे रूपविजयजी परास्त हो फिर बोले . "जीव तो मारने से मरता न...
जलाने से जलता नही, काटने से कटता नही। अत प्राणी मरने से हिंसा कैसे लगेगी ?" अ...
बोले "आधाकर्मी वस्तु के सेवन से छ: काय की हिंसा का बंध बताया गया है तथा दोष ...
वस्तु के सेवन से मुनि को छ काय के प्रति दयावान कहा गया है। यदि जीव मारने से ...
मरता तो आधाकर्मी भोगने वाला छ काय का हन्ता क्यो कहा गया ?" यहां फिर रूपविजय
को चुप होना पडा। फिर आप बोले "यदि आप खुले मुह बोलने से जीवों का ...
नही मानते तो मुखवस्त्रिका क्यो धारण करते है ?" रूपविजयजी बोले · "हम तो वाचन-
शुद्धि के लिए मुखवस्त्रिका रखते हे।" आप बोले . "तब वाचन-शुद्धि अधूरी क्यो ? कभी तो
मुखवस्त्रिका मुह के आगे रहती है तथा कभी नही रहती, खुले मुह बोलते है। सो वाचन-शुद्धि
भी तो पूरी नही रही।" रूपविजयजी चुप हुए। आप पुन. बोले . "गौतम ने पूछा—इन्द्र भाषा
बोलता है, वह सावद्य होती है या निरवद्य ? भगवान बोले—इन्द्र खुले मुह बोलता है तो सावद्य
तथा मुह के आगे हाथ या वस्त्र देकर बोलता है तो निरवद्य। भगवती सूत्र मे यह बात कही
है या नही ?" तब रूपविजयजी बोले · "कही तो है।" पुन आपने पूछा : "नव पदार्थ में जीव
कितने तथा अजीव कितने ? नवतत्त्व किन्हे कहा जाता है ? नव पदार्थ किन्हे कहा जाता है ?"
तब रूपविजयजी बोले : "यह क्या प्रश्न है ? धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय—ये तो
पुद्गल है।" तब मुनि हेमराजजी बोले 'मिच्छामि दुक्कड' ले। आपने धर्मास्तिकाय और
अधर्मास्तिकाय को पुद्गल कहा है। लेकिन पुद्गल तो रूपी होते हे जब कि ये अरूपी है।"
फिर रूपविजयजी बोले "काल जीव तथा अजीव दोनो ही है।" आप बोले "दूसरा 'मिच्छामि
दुक्कड़ु ले। काल जीव-अजीव दोनो कहा गया है। वह जीव-अजीव सब पर वर्तन करता है
लेकिन स्वय अजीव ही है।" तब रूपविजयजी क्रोधित हो गये। उनके हाथ कापने लगे। मुनि
हेमराजजी बोले—"आपके हाथ क्यो कापते है ? हाथ तो चार प्रकार से कापते है—कपन वायु
से, क्रोध के वश, विषय की प्रेरणा से तथा चर्चा मे पराजित होने से।" तब वे अत्यत क्रोधित
हुए। बहुत लोग इकट्ठे हो गये। इतने मे तेरापंथी श्रावक भी आ गए। खेरवा के श्रावक

माईदासजी ने मुनि हेमराजजी से कहा—"अव आप उठे।" तव मुनि हेमराजजी उठने लगे, लेकिन रूपविजयजी ने पल्ला पकड़ लिया। वोले चर्चा करे। आप वोले "पिछले 'मिच्छामि दुक्कड' ले, फिर खूब चर्चा करेंगे।" रूपविजयजी ने कहा फिर लूगा। आप वोले · "आप अपने को पडित समझते है लेकिन चौदहपूर्व धारी भी वचन मे स्खलित हो जाते हैं सो इस आनाकानी का क्या कारण है? अत आप 'मिच्छामि दुक्कड' ले लीजिए।" रूपविजयजी वोले . "आपके साथ ही लूगा। आपने कहा जो वचन मे चूक करता है, उसके लिए इस प्रायश्चित का विधान है या चूक न करे उसके लिए? आप वचन मे चूके अत. आपको 'मिच्छामि दुक्कड' का प्रायश्चित्त आता है। मै नही चूका तव मुझे यह किस दृष्टि से आयेगा?" फिर भी रूपविजयजी ने 'मिच्छामि दुक्कडं' नही लिया। तव पुन उठने लगे तो रूपविजयजी ने रजोहरण पकड लिया। तव आप वोले "आपको तो हमने क्षमाशील सुना था, आप यह क्या करते है?" तो फिर वोले "जाओ मत, चर्चा करो।" आप वोले . "पिछले 'मिच्छामि दुक्कड' लेने पर ही चर्चा होगी।" तव अत्यत रोप करने लगे। आप वोले "आप कहे तो हम जावे।" तव रूपविजयजी कहने लगे "तुम असयतियो को हम जाने के लिए क्यो कहेगे?" आप वोले "हमे असयती मानते है तो आने के लिए क्यो कहा—'हेम ऋषि आओ' यह क्यो कहा? इस दृष्टि से आप पर तीसरा 'मिच्छामि दुक्कड' भी आता है।" इसके वाद ठिकाने मे आये।[1]

१५. पीपाड मे एक व्यक्ति से कहा—सच्ची श्रद्धा धारो, गुरु धारण करो। उपदेश देने के वाद मुनि हेमराजजी ने उसे पुन ऐसा कहा। वह वोला . मैंने इतने वर्ष नो काट दिये, अव आत्मा के कालिख क्यों लगाऊ? आप वोले "सच्चे धर्म, देव और गुरु की उपासना मे कालिख मिटती है, लगती नही।"[2]

१६. आमेट मे टीकमजी के चेले जेठमलजी थे। उनसे वात करते हुए मुनि हेमराजजी वोले · "कलाल के यहा से पानी लाने का त्याग करे।" जेठमलजी वोले : "त्याग है।" ठिकाने जाने पर यह वात मालूम हुई, तव टीकमजी वोले "ये त्याग क्यो किये?" जेठमलजी वापस आकर वोले "हेमराजजी, मेरे मेवाड मे तो त्याग है, पर मारवाड़ मे कोई त्याग नही है।" मुनि हेमराजजी वोले "इस दृष्टि से तो आपने शील आदि के जो प्रत्याख्यान किये हैं वे सव भी मेवाड मे ही लागू रहते है, मारवाड मे नही। पहले त्याग करते समय आपने आगार नही रखा। अव उस त्याग को भग नही करना चाहिए।" वाद मे टीकमजी मिले तो वोले . "हेमजी, छलपूर्वक त्याग नही कराने चाहिए।" आप वोले · "कलाल के घर के पानी का त्याग किया मो अच्छा काम किया है। त्याग समझ-वूझ कर किए हैं। अव वह त्याग क्यो भग कराते है?"[3]

१७. सरवाड के वाहर नानगजी के शिष्य हीरालालजी मिले। उन्होने पूछा—"नव पदार्थ मे अस्ति भाव कितने, नास्ति भाव कितने, अस्ति-नास्ति भाव कितने है?" मुनि हेमराजजी वोले · "इसका उत्तर मैं दे रहा हू, लेकिन अगर आप कहेगे कि यह उत्तर ठीक नही हुआ तो सूत्र दिखाने होगे।" हीरालालजी वोले . "आप कहते है कि साधु को किवाड नही जडना चाहिए, यह तथा अनेक अन्य वोल क्या सव सूत्रो मे उल्लिखित है?" आप वोले . "हम जो किवाड जडने

---

१ हेम दृष्टान्त, दृ० २०
२ वही, दृ० २२
३. वही, दृ० ३२

का निषेध करते है सो सूत्र मे निकालकर दिखा सकते है।" हीरालालजी बोले : "आप सूत्र में क्या वताएगे ? अतीत में अनन्त साधुओं ने किवाड जडे है, वर्तमान काल मे भी अनन्त साधु-किवाड जडते है तथा आगामी काल मे अनन्त साधु किवाड़ जडेंगे।" आप वोले "आप कहते है कि अतीत मे अनन्त साधुओं ने किवाड जडे है सो आप सरीखे अनन्त साधुओं ने जडे होंगे और आगामी काल मे भी अनन्त जडेगे ही। लेकिन आपने कहा कि वर्तमान काल मे अनन्त साधु जडते है सो वर्तमान काल मे तो मनुष्य ही अनन्त नही है, सो वर्तमान काल में अनन्त साधु किवाड कैसे जडेगे? इस मिथ्या बात के लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' स्वीकार कीजिए। हीरालालजी ने कहा—'मिच्छामि दुक्कडं' तो आपके आता है, आप ही लें। आप वोले—'मिच्छामि दुक्कड' आता तो आपके है, और नाम हमारा लेते है सो यह 'उलटा चोर कोतवाल को डाटे' ऐसी बात हो गई।

हीरालालजी अंट-सट वोलकर चलते वने। स्थानक में आकर बोले : "मै तेरापंथियो से चर्चा करने के लिए बाजार जाता हू।" माडलगढ के सदाराम मोहता बोले : "आप चर्चा करने न जावे।" बार-बार कहने पर भी वे न माने। सदारामजी बोले "उनसे चर्चा करने जाते है तो पहले मेरे द्वारा पूछे प्रश्नों के उत्तर दे।" उन्होंने पूछा : "धर्म भगवान की आज्ञा मे है या आज्ञा से बाहर ?" हीरालालजी बोले : "आज्ञा में।" सदारामजी बोले : "पैर मजबूत रखना।" यह कहकर भोजन करने घर चले गये। पीछे हीरालालजी आकर बोले : "मोहताजी ! धर्म आज्ञा के भीतर भी है तथा बाहर भी।" सदारामजी बोले : "तेरापथियों से ऐसी चर्चा करते तो कैसे लगते ?"[1]

२. गृहस्थ अवस्था की चर्चाए

दोष से साधुत्व खण्डित कैसे ?

एक वार आप भीमजी काछेडे के साथ भीलोडा मे एक साधु के पास गये। साधु ने पूछा "किस गाव के है ?" भीमजी बोले . "सिरियारी के।" फिर पूछा . "गुरु कौन है ?" उत्तर दिया : "भीखनजी के साधु। लेकिन दूसरो के यहा भी जाते है। वहां जयमलजी के टोले की साध्विया है, उनके पास भी जाते है।" उन्होंने हेमराजजी से पूछा "तुम्हारे गुरु कौन है ?" आपने विना लाग-लपेट के उत्तर दिया "हमारे गुरु पूज्यश्री भीखनजी स्वामी है।" साधु बोले : "इतने तडाक से बोलते हो तो क्या चर्चा करने का मन है ?" आप बोले . "मन हो तो भले ही करे।" साधु बोले . "भीखनजी कहते है कि थोडा दोष करने से ही साधुत्व खडित हो जाता है। यह बात तर्क सगत नही।" दृष्टान्त दिया—एक साहूकार के प्रदेशी माल से भरे हुए जहाज आये। ४८ कोठरियो मे अलग-अलग माल भरा हुआ था। एक याचक आया और साहूकार का यश गाने लगा। साहूकार ने प्रसन्न हो ४८ कोठरियो की चाविया सामने रख दी और कहा—एक चावी उठा लो। उस कोठरी मे माल निकले वह तुम्हारा। उसने एक चावी उठा ली। कोठरी खोली तो देखा कि वह रस्सियो से भरी है। उसने जाकर साहूकार से कहा . 'यह कोठरी तो रस्सियो से भरी हुई निकल आई। मेरे भाग्य मे तो रस्सिया ही है।' तब साहूकार ने गुमाश्ते से

---

१. हेम दृष्टान्त, दृ० ३३

पूछा 'इन रस्सियो की क्या कीमत लगी है।' गुमाश्ते ने खाता देखकर वताया—"४८ हजार रुपये लगे है। रस्सिया जहाज के लगर डालने की थी।" साहूकार ने उसे ४८ हजार नकद दिला दिए। यह दृष्टान्त देकर साधु वोले "उन रस्सियो के ही ४८ हजार रुपये आये तो सारा माल तो लाखो रुपयो का था। जहाज के माल के समान साधुत्व है। वह रस्सियो जितने दोष से रिक्त कैसे होगा?" हेमराजजी वोले · "८१ तख्तो का जहाज था। वीच का तख्ता नही था। वैठने वाले भोले भाले थे। माल भरकर वैठ गये। सोचा ४० तख्ते एक तरफ है और ४० दूसरी तरफ। वीच का एक ही तख्ता तो नही है, उससे क्या होगा? यह सोचकर जहाज चला दिया। समुद्र के वीच जहाज डूब गया। इसी तरह जो एक दोप की भी स्थापना करता है उसका साधुत्व नही टिकता।" साधु निरुत्तर हो गये। फिर वोले "एक साहूकार ने हवेली वनाई। हजारो रुपये लगाये। वर्पा ऋतु मे कही से जल चूने लगा तो क्या हवेली ही गिर गई? "थोडे से दोप सेवन से साधुत्व कैसे चल जायेगा?" आपने उत्तर मे कहा "हवेली तो आपने कहा वैसी ही भारी थी पर नीव गोवर के ऊपलो की थी। वहुत वर्पा हुई। परिणामत कच्ची हवेली ढह गयी। इसी प्रकार साधुत्व धारण किया पर श्रद्धा रूपी नीव कच्ची होने पर, दृढ न होने पर दोप की स्थापना करे, दोष को दोप न समझे, उसमे सम्यक् साधुत्व थोडी देर के लिए भी नही रह सकता।"

इसके वाद आपने वही सामायिक की और मधुर स्वर से 'दया भगवती' की ढाल गाई। उनके श्रावक सुनकर अत्यत प्रसन्न हुए। उन्होने पूछा "यह ढाल किसकी है?" आपने कहा · "स्वामी भीखनजी की।" लोग वोले "ऐसी श्रद्धा भीखनजी की है क्या? यहा भीखनजी आये। १५ दिन ठहरे। हम लोग तो उनके समीप भी नही गये।" दूसरे दिन वहा सामायिक करने आए तव वहा सामायिक करने से उन्हे रोक दिया। वाजार मे आकर सामायिक की। नन्दन मणियारा का व्याख्यान सुनाने लगे। वहुत लोगो ने सुना। वडे प्रसन्न हुए। सोचने लगे— भीखनजी के श्रावक ऐसे है तव उन के साधुओ का तो कहना ही क्या है। चार व्यक्तियो ने गुरु-धारणा ली। आप सिरियारी लौटे।[1]

सामायिक जीव या अजीव?

गृहस्थावस्था मे मुनि हेमराजजी को अन्य तीर्थियो से पहले वोलने का त्याग था। एक वार आप स्थानक मे गये, और वहा चुपचाप वैठ गये। आपसे पूछा · "आप कहा के है?" आपने उत्तर दिया "सिरियारी का।" आपने पूछा "सामायिक जीव है या अजीव?" उत्तर मिला "भीखनजी के श्रावक से चर्चा करने की मनाही है।" वीच मे दूसरी वात चलाकर आपने पूछा "यह रजोहरण जीव है या अजीव?" उत्तर मिला "रजोहरण अजीव है। क्या मै इतना भी नही जानता?" आपने कहा . "आप कहते थे कि भीखनजी के श्रावक से चर्चा करने की मनाही है। पर आप तो खुलकर चर्चा करने लगे है। सरल प्रश्न का उत्तर दे दिया। कठिन प्रश्न का उत्तर नही दे पाने पर कह दिया कि चर्चा करने की गुरु की आज्ञा नही।"[2]

. हेम दृष्टान्त, दृ० २१
२. वही, दृ० २१

आप बोले : "मेरा पाप टालने के लिए बताया कि मकोड़े के मोह वश ?" वे साधु बोले : "आपका पाप टालने के लिए ही बताया है। यह सोचकर आपके पाप लग जायेगा, बताया है।" आपने उस साधु को पूछा : "आपने क्या सोचकर मुझे यह मकोड़ा बताया है ?" वे बोले : "मैंने तो यह सोचकर ही बताया है कि बेचारा मकोड़ा मर जायेगा।" आपने प्रश्न करने वाले साधु से कहा : "आप दूसरे के लिए झूठ बोलते हैं ? आप कहते हैं कि तुम्हारा पाप टालने के लिए बताया है जबकि वे कहते हैं कि मकोड़े को बचाने के लिए बताया है ?"[1]

संथारा करेंगे

एक पुष्करणा ब्राह्मण ने आपसे कहा "आप भीखनजी के श्रावक हैं। बिना अन्न मरेंगे।" आप बोले "हम भीखनजी के श्रावक हैं। अन्त में संथारा करेंगे। ठीक ही है कि अन्त में हम बिना अन्न मरेंगे।"[2]

भगेड़ी को उपदेश

गृहवास काल में आपका रतनजी भलगट के साथ साझेदारी में काम था। रतनजी धर्म की बात समझते नहीं थे। भाग पीते थे। आप उन्हें उपदेश दिये, समझाये बिना नहीं रहते। हेमराजजी जाति में आछा बागरेचा थे। रतनजी की जाति भलगट थी। दोनों की उक्त प्रकृति को देखकर एक सेवक कवि ने कहा :

जोडी तो जुगती मिली, हेमो नै रत्नेश।
भलगट झिकोलै भांगरी, आछौ दे उपदेश ॥[3]

२०. साहित्य-सृष्टि

आपकी साहित्यिक अभिरुचि बड़ी उच्च कोटि की थी। आप सहज ज्ञानी और आध्यात्मिक कवि थे। आप द्वारा रचित कुछ कृतियां ही उपलब्ध हैं। पर जो हैं वे ही आपकी असाधारण साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दे देती हैं। आपकी प्राप्त कृतियों का परिचय नीचे दिया जा रहा है :

१ भिक्खू गुण सज्झाय

प्रश्न व्याकरण सूत्र में श्रमण कैसा होता है, इस विषय की चर्चा करते हुए ३० उपमाएँ दी हैं। प्रस्तुत कृति में इन उपमाओं की व्याख्या करते हुए लिखा है—आचार्य भिक्षु श्रमण के लिए प्रतिपादित ३० उपमाओं द्वारा व्यक्त गुणों से भी अधिक गुणी थे—

ए तीस ओपमा सहीत गुण ओलखी रे, आदरमी अति उछरंग।
सतरैं भेदैं संजम सुध पालसैं रे, करसी कर्मा सूं जंग॥

---

१. हेम दृष्टांत, दृ० ७
२. वही, दृ० ४
३. वही, दृ० २३

यां सू पिण गुण अति घणा रे, भीखू पै भरपूर।
त्या नै वार वार वदणा करा. रे, ज्यू कट जाए कर्म करूर ।।

यह सज्झाय स० १८५६ की फाल्गुण वदि ८, वुधवार के दिन सिरियारी (मारवाड) मे रचित है

समत अठारै छपना वर्स मै रे, फाल्गुण विद आठम वुधवार।
ए गुण गाया भीखू तणा रे, श्रीजीदुवारा सैहर मज्झार ।।

इस कृति की एक प्रतिलिपि, जो मुनि हरखचन्दजी द्वारा स० १९५० मे लिखी गई है, के अन्त मे 'लिपतु रिप हेम' ऐसा उल्लेख है। इससे जाना जाता है कि यह सज्झाय मुनि हेमराजजी द्वारा रचित है। इसमे ६ दोहे और ३५ गाथाए है। यह 'खिण लाखिणी जाय'— इस राग मे गेय है

प्रारभिक ४ मागलिक दोहो मे पच परमेष्ठी के गुणो का स्मरण करते हुए उन्हे नित्य नमस्कार करने का उपदेश है। दोहे वहुत ही सुन्दर है '

वीर वडा वर्द्धमानजी, महावीर मतिवत।
मुक्ति गया मोटा मुनि, कर कर्मा रो अत ।।
सिद्ध हुआ ते सासता, अचल अखे आराम।
जनम जरा मरण मेटीया, सकल समारचा काम ।।
छतीस गुणा कर सोभता, आचार्य अति तेज।
सूत्र न्याय शुद्ध थापवा, दे दिष्टत कहेज ।।
चौथे पद नित समरियै, उपाध्याय अणगार।
सकल साधु पद पाचमै, नित नमीयै नर नार ।।

सज्झाय मे उपमाओं की व्याख्या अति स्पष्ट और सुन्दर रूप से की गई है। इस विपय की यह कृति अनोखी है। उदाहरण स्वरूप कासी, शख और कूर्म की उपमाओ से सम्वन्धित गाथाए इस प्रकार है

कासी जल नही भेदै जिम तज्यो रे, सनेह सहित सर्व राग।
ज्यू चिंता छोडी पाछिल परवार री रे, ज्यू काचली तजै कालो नाग ।।
भीखू गुणा रा भडार।
शख पचायण शोभतो रे, रग कर नही रे रगाय।
ज्यू कामभोग ससार ना रे, त्यारी साधु रे नही चाय ।।
भीखू गुणा रा भडार ।।
कछवो काया सकोचनै रे, रूडा राखे जतन।
ज्यू पाचु इद्रया गोपवै गिरवा मुनि रे, राग द्वेष रहित राखे मन ।।
भीखू गुणा रा भडार ।।

कृति अत्यन्त मधुर, हृदयग्राही एव उपदेशपूर्ण है। जयाचार्य द्वारा उपदेश रत्न कथाकोष मे सग्रहीत है।

२ वीस वहरमान सदा सासता की ढाल

तेरापथ आचार्य चरितावलि के द्वितीय खंड की भूमिका (पृ० ३) मे लेखक द्वारा इस ढाल को मुनि हेमराजजी की कृति वतलाया गया था। वाद मे तेरापथ आचार्य चरितावलि, प्रथम खंड की भूमिका (पृ० २६) मे लेखक द्वारा लिखा गया था—" 'वीस वहरमान की ढाल', जो कि स० १८५६ के चातुर्मास मे रचित है, सभवत. आप (मुनि वेणीरामजी) की ही कृति है। इस ढाल को 'तेरापथ आचार्य चरितावलि' के द्वितीय खड मे मुनि हेमराजजी द्वारा रचित वतलाया गया था, वह भूल है। कारण यह है कि सं० १८५६ मे मुनि हेमराजजी का चातुर्मास पीसागण मे नही था, जहां यह ढाल रची गयी थी।" पर वास्तव मे यह दूसरा अभिमत ही गलत है। यह कृति मुनि वेणीरामजी कृत नही, मुनि हेमराजजी कृत ही है। इस कृति का अन्तिम पद निम्न प्रकार है

समत अठारे वरस गुणसठे अपाढ कहीजे मासो।
गुण गाया छे पाच पदा रा, पीसागण चौमासो॥

आप (मुनि हेमराजजी) का स० १८६० का चातुर्मास पीसागण का निर्धारित था। आप कुछ समय पूर्व आपाढ मे ही वहा पहुच गए थे और इसी महीने मे इस कृति की रचना की थी। 'पीसागण चौमासो'—यह स० १८५६ के चातुर्मास का सूचक चरण नही, आगामी स० १८६० के चातुर्मास का सूचक है जो श्रावण वदि १, १८६० के दिन से पीसांगण मे प्रारम्भ होने जा रहा था।

इस कृति मे नमस्कार मत्र के पाच पदो के लक्षणो को वताते हुए उनको भाव-विभोर होकर नमस्कार किया गया है और वैसा करने की प्रेरणा दी है। इसकी पहली गाथा इस प्रकार है

वीस वेहरमान सदा सासता, जिगन पदे परमाण।
सो साठ ने नित नित वदिये, उत्कृष्टै पद आणं॥
भवियण नमो अरिहताण, नमो सिध निरवाण।
मन सुध करने भजीये भगवत, ते पामे किल्याण॥
भवियण नमो अरिहताण, नमो सिध निरवाण॥

यह ढाल महोत्सवो के अवसर पर अन्तिम मगलाचरण के रूप मे गायी जाती रही है। उसका गण मे वही स्थान रहता आया है जो कवीन्द्र रवीन्द्र के 'जन गण मन अधिनायक' का भारत के राष्ट्रीय-जीवन मे है।

ढाल वहुत ही मधुर रागिनी मे ग्रथित है। गाने पर उसका घोष गभीर मेघ-गर्जन की तरह सारे वायु-मंडल मे छा जाता है और मन को अभिनव भक्ति-भाव से प्लावित कर देता है।

इसकी पाचवी गाथा है

नाम थापना द्रव निखेपो, चोथो भाव पिछाण।
भाव भगवत ने नित नित नमीये, ते पामे किल्याणं॥
भवियण नमो अरिहताण, नमो सिध निरवाण।
मन सुध करने भजीये भगवत, ते पामे किल्याण॥
भवियण नमो अरिहताण, नमो सिध निरवाणं॥

इस गाथा मे आपने शुद्ध मन से भाव-पूजा का प्रतिपादन किया है।

सारी कृति अपूर्व भक्ति रस से परिपूर्ण है और शांत रस की एक लहर-सी उत्पन्न कर देती है। "णमो अरिहताणं, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्व साहूण"—यह जैनो का नमस्कार मत्र है। इस मत्र के अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—इन पाच परमेष्ठियो की विशेषताओ का इस कृति द्वारा अच्छा बोध प्राप्त होता है। ज्ञान-वर्धक होने के साथ-साथ यह कृति गायक को भक्ति-भाव से परिप्लावित कर देती है।

३. भिक्खु चरित्र

इस कृति मे तेरह ढाले है जिनमे कुल ६० दोहे और १६७ गाथाए है।

पूरा विवरण इस प्रकार है

ढाल	दोहा	गाथा
१	९	१७
२	२	२१
३	६	१५
४	६	१२
५	५	१३
६	५	१४
७	४	२१
८	४	१२
९	५	१३
१०	३	१७
११	५	९
१२	२	१२
१३	४	२१
	६०	१६७

आचार्य भिक्षु के जीवन मे तेरह की सख्या का विशेप महत्त्व रहा। उनका जन्म १७८३ की आपाढ शुक्ला त्रयोदशी और स्वर्गवास स० १८६० की भाद्र शुक्ला त्रयोदशी मगलवार के दिन हुआ। सम्प्रदाय के नाम स्थापना के समय अनुरागी श्रावक और साधु दोनो की सख्या तेरह-तेरह ही थी। सम्प्रदाय का नाम भी 'तेरह' की सख्या के आधार पर तेरापथ पडा। राजस्थानी 'तेरा' शव्द तेरह का पर्यायवाची है।

उक्त १३ ढाले भिन्न-भिन्न देशी रागिनियो मे है। आप कठकला मे प्रवीण थे। आपकी वाणी मे वडा मिठास था। आपकी यह कृति भी श्रुति-मधुर, भक्ति-भाव से ओतप्रोत तथा उच्च प्रमोद-भावना और काव्य-रस से परिपूर्ण है। वर्णन जितना स्वाभाविक है उतना ही प्रामाणिक है। भिक्षु-विषयक बाद की कृतिया इस कृति की शैली, भावाभिव्यक्ति और घटना-वर्णन से प्रभावित है, इसमे सदेह नही।

पहली ढाल मे भिक्षु के जीवन की जन्म से देहावसान तक की मुख्य-मुख्य घटनाओ का

सिंहावलोकन है और फिर सक्षेप मे भिक्षु की कुछ विशेपताओ का वर्णन। दूसरी ढाल मे आचार्य रुघनाथजी से अलग होने पर भिक्षु को कैसी कठिनाइयो का सामना करना पड़ा था, उनका रोमाचकारी वर्णन है। इन वाधा रूपी वादलो को भिक्षु ने अपने तपोतेज से किस प्रकार तितर-वितर कर डाला था, इसका यहा वडा ही सुन्दर वर्णन है ·

रावण रूप किया घणा रे, वहो रूपणी देवी वोलाय रे।भविक जन।
पिण लछमण रा वाण-सू रे लाल, रूप गया विललाय रे॥भ०॥
ज्यू सुध साधा सू भडकाया लोका तणी रे, या री सगत म करज्यो कोय रे।भ०।
पिण पूज सुत्र न्याय ग्यान वाण सू रे लाल, भ्रम भाग्यो घणा रो जोय रे॥भ०॥
चक्रव्रत चढे देश साधवा रे, आण फेरे छ खण्ड मे आय रे।भ०।
ज्यू भीखनजी रिप विचर्या जठे रे लाल, अरिहत आगन्या दीधी उलखाय रे॥भ०॥

(२।१८-२०)

तीसरी ढाल के प्रारम्भिक दोहों मे भिक्षु की साहित्यिक साधना का सक्षिप्त विवरण देते हुए उन्होने विचार जगत मे किस तरह से विजय प्राप्त की, इसका हृदयग्राही वर्णन है। चौथी ढाल का भी प्राय यही विपय है। पाचवी ढाल मे भिक्षु के चरम विहार का वर्णन है। भिक्षु सिरियारी पधारे, तव उनके साथ जो सत थे, उन सतो का नामोल्लेख भी यहा प्राप्त है। छठी ढाल मे भिक्षु की रुग्णता और उनकी आत्म-आलोचना का वर्णन है। सातवी ढाल मे उन्होने चतुर्विध सघ को जो चरम उपदेश दिया, उसका वर्णन है। आठवी ढाल मे भिक्षु के सलेपणा सथारे का वर्णन है। नवी ढाल मे भिक्षु के सथारे की जो प्रतिक्रिया चारो ओर हुई उसका वर्णन है। दसवी ढाल मे उन के सथारे की सिद्धि का वर्णन है। ग्यारहवी ढाल मे भिक्षु के देहान्त के वाद जनता मे जो धर्म-ध्यान हुआ उसका उल्लेख है। वारहवी ढाल मे भिक्षु ने जो उपकार किया उसका वर्णन है। तेरहवी ढाल मे भिक्षु के चातुर्मासों का वर्णन है। उन्होने कितनी प्रव्रज्याए दी उसका भी वहा उल्लेख है।

इस कृति का समाप्ति दिवस स० १८६० माघ शुक्ला नवमी शनिवार है। यह सिरियारी की उसी पक्की हाट मे रचित है, जहा भिक्षु ने संथारा किया और समाधिपूर्वक देवलोक पधारे। इसका उल्लेख तेरहवी ढाल की २०वी गाथा मे इस प्रकार है :

जोड कीधी सरीयारी सेहर मे, पके हाट विचार हो।मु०।
समत अठारे साठे समे, माहा सुदि नवमी सनिसर वार हो।मु०।

४. वीर-चरित्र

श्रावक पनजी कृत एक कृति से पता चलता है कि आपने उक्त व्याख्यान रचा। उन्होने लिखा है·

त्यां मे कला चतुराई छै अति घणी, किम कहू वुद्ध रो परमाण रे।
सूत्रा मा सू सामी जोय ने, कीधो वीर चरित वखाण रे॥
तिण मे भाव ने भेद छै अति घणा, सुणियां ही उपजे वैराग रे।
सूस वरत लेवे आकरा, तिण सू पामै छै सुख अथाग रे॥[1]

---

१. मुनि जीवणजी गुण वर्णन ढाल, २।६-१०

यह एक विशाल काव्य-कृति है, जिसमे भिन्न-भिन्न रागिनियों मे ग्रथित ४२ ढाले है। इन ढालो की दोहा सख्या २२० एव गाथा सख्या ८३७ है। इस तरह यह कृति कुल १०५७ पद प्रमाण विस्तृत है।

अन्तिम गाथा से पता चलता है कि यह कृति स० १८६१ कार्तिक वदि ९ शनिवार के दिन पाली मे सम्पूर्ण हुई थी।

इस कृति का मुख्य हेतु जन-प्रवोध रहा। प्रारम्भिक छह ढालो मे भगवान महावीर के मुख्य २७ पूर्व भवो का वर्णन है और ७वी ढाल से भगवान महावीर का चरित्र प्रारम्भ होता है।

कृति के पूर्व भाग का मुख्य आधार कल्पसूत्र की टीका मे समाहित पूर्व भवो का कथा-साहित्य है। वाद की जीवनी का आधार आचाराग, भगवती सूत्र आदि आगम ग्रथ तथा उनके व्याख्या ग्रथ है।

राजस्थानी साहित्य मे भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित पद्य-कृतियो मे विषय-विस्तार एव गाभीर्य की दृष्टि से यह कृति अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

पूर्व भवो के वर्णन के वाद गर्भ मे आगमन से लेकर निर्वाण-प्राप्ति तक की एक-एक घटना का अति सूक्ष्म वर्णन कृति मे प्राप्त है। प्रसगवश महाव्रत और उनकी भावनाओ का भी वडा गभीर वर्णन कृति मे समाहित है। इन्द्रभूति आदि से हुई तात्त्विक चर्चा का मार्मिक रोचक वर्णन पाया जाता है।

यह कृति अपने-आप मे भगवान महावीर के सम्पूर्ण जीवन का एक अच्छा कोष-सा है।

५ मगल स्वरूप ढाल

जयाचार्य के उपदेश-रत्न कथा कोश मे चार ढाले प्राप्त है, जिनमे से पहली मे अरिहत मगल एव वाकी तीन मे सिद्ध मगल के स्वरूप का आगमो के आधार पर विवेचन है। चारो ही ढाले गेय हैं।

पहली ढाल मे १३, दूसरी मे १७, तीसरी मे १६ एव चौथी मे १५ गाथाए है।

अन्तिम ढाल की अन्तिम गाथा से पता चलता है कि यह कृति स० १८६९ मे जयपुर मे रची गयी थी।

ये ढाले मुनि हेमराजजी द्वारा रचित प्रतीत हो रही है। उस वर्ष का आचार्य भारमलजी का चातुर्मास जयपुर मे था। वे अस्वस्थता के कारण चातुर्मास के वाद फाल्गुन तक वही विराजे थे। स० १८६९ के कृष्णगढ चातुर्मास के वाद मुनि हेमराजजी न आपके जयपुर मे दर्शन किए। फाल्गुन मे आप वहीं देखे जाते है। ये ढाले इसी प्रवास मे रचित प्रतीन होती है। ढाले अत्यन्त सरस,होने के साथ-साथ अपने विषय को अत्यन्त सुन्दर ढग से प्रतिपादित करती है। उदाहरण स्वरूप सिद्ध के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए लिखा है

> दग्ध बीज जिम धरती वायो, नही म्हेलै अकूर जी।
> तिम सिद्धा ए जन्म मरण री, उत्पति कीधी दूर जी ॥
> जरा मरण रो नाको नाही, नही गुणठाणा जोग जी।
> केवलज्ञान नै केवलदर्शन, करै दोय उपयोग जी ॥

आपकी मौसी रूपांजी बड़ी रावलियां में ही व्याही गई थी। उन्होंने पुत्र और पति को छोडकर स० १८४८ मे भागवती दीक्षा ग्रहण की थी। आपके सम्बन्ध में एक रोचक घटना का उल्लेख मिलता है। विवाहित होने पर भी आपमे वैराग्य उत्पन्न हुआ और दीक्षित होने का भाव आया। आपके पति आज्ञा नही देते थे। दीक्षा के विचार मे पराङ्मुख करने हेतु आपको अनेक कष्ट दिये गए। आपके पैर मे खोड़ा डाल दिया गया। आपको २१ दिन तक इसी स्थिति मे रहना पडा, तथापि आप अडिग रही। चमत्कार ऐसा हुआ कि २१वें दिन खोड़ा स्वतः टूट गया। इससे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अतः पति ने भी दीक्षा की अनुमति दे दी। आप लब्ध-प्रतिष्ठ साध्वी हुई। सं० १८५७ मे आपने संथारा कर पण्डित-मरण प्राप्त किया था।[1][2]

सस्कार और वैराग्य

मुनि खेतसीजी के प्रसंग से चतुरोजी एव खुसालांजी ने धर्म-बोध प्राप्त किया। धर्म के प्रति उनके हृदय में अत्यन्त प्रेम और प्रीति जागृत हुई और वह बढ़ती गई। इस तरह बालक राय-चन्दजी मातृकुल एवं पितृकुल दोनों ओर से धार्मिक सस्कारों को पा सके थे। जयाचार्य ने लिखा है—जिस घर के सस्कारों मे धर्म होता है, वहा बालक भी धर्म समझने लगता है। जिस बालक के कर्मो का क्षयोपशम होता है, उसमे स्वतः ही समझ उत्पन्न हो जाती है।

गोगुन्दा और रावलिया मे सन्त-सतियों का बहुत आवागमन होता रहता था। आचार्य भिक्षु भी उधर विचरते रहते थे। इस तरह उस क्षेत्र मे धर्म की अति वृद्धि हुई। एक लौकिक कहावत मे साधु को नदी की उपमा दी गई है, जो भुजग की चाल से चलती है और जिस क्षेत्र से होकर बहती है, उसे निहाल कर देती है। सन्तों के आवागमन से गोगुन्दा और रावलियां क्षेत्र धार्मिक दृष्टि से सर-सब्ज हुए।

सं० १८५२ में बरजूजी, बिजांजी एवं बनाजी—तीनों ने आचार्य भिक्षु से एक साथ संयम ग्रहण किया। दीक्षा के तीन वर्ष बाद ही भिक्षु ने साध्वी बरजूजी को सिंघाड़पति कर दिया। साध्वी बरजूजी के विषय मे कहा गया है—"शील तणो घर महासती, सूत्र सिद्धन्त सुबोल।" अर्थात बरजूजी महासती, शील की आगार और सूत्र-सिद्धान्त की बड़ी जानकार थी। भिक्षु ने उनका सम्मान बढ़ाया। एक बार बरजूजी सतियो के साथ ग्रामानुग्राम विहार करती हुई बड़ी रावलियां पधारी। उनकी सुन्दर देशना एव उपदेश से अनेक लोग प्रभावित और सुलभ-बोधि हुए। बरजूजी ने खुसालांजी एवं रायचन्दजी पर विशेष परिश्रम किया और उनमे वैराग्य भावना का संचार किया। दोनों का मन संसार से विरक्त हुआ और वे दीक्षा लेने को उद्यत हुए।

आज्ञा और दीक्षा

माता और पुत्र दोनो ने अपने विचार घरवालो के सामने रखे। उनको घर में रखने के

---

१. आपकी दीक्षा सं० १८५२ की लिखी मिलती है। देखें—जय (भि० ज० र०), ५।२५। अन्यत्र लेख है कि इनका संयम-पर्याय नौ वर्ष का था। देखे—जय (शा० वि०), २।१८। इसमें सब एकमत हैं कि इनका संथारा सं० १८५७ में हुआ था। इस हिसाब से इनकी दीक्षा सं० १८४८ मे होनी चाहिए।

२. आचार्य भिक्षु : धर्म परिवार, साध्वी प्रकरण-३७

लिए अनेक प्रयत्न किए गए, परन्तु दोनो ही तीव्र वैरागी थे। उनका मन घर मे कैसे रचता? वालक वय मे ही रायचन्दजी अत्यन्त बुद्धिमान थे। उनकी मति वडी निर्मल थी। सम्पूर्ण चारित्र के प्रति उनके हृदय मे प्रीति का संचार हो चुका था। उन्होने ज्ञातियो को वडे ही युक्तियुक्त उत्तर दिए। उनकी ऐसी वैराग्य-भावना से परास्त होकर पारिवारिक जनो ने अन्त मे उन्हे दीक्षा लेने की आज्ञा दी।

आपके प्रति पारिवारिक जनो का प्रगाढ मोह था, पर आपके हृदय मे तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो चुका था। जयाचार्य ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है

सुत रायचन्द सुहामणो रे लाल, मात खुसाला मा हेत रे।
वात काढी दिक्षा तणी रे लाल, पिण न्यातीला सू मोह अत्यन्त रे॥
घर माहे राखण भणी रे लाल, किया अनेक उपाय रे।
दोनू वैरागी दीपता रे लाल, किम राचे घर माहि रे॥
वालक वय बुद्धि आगलो रे लाल, रायचन्द सुद्ध रीत रे।
जाव दिया अति जुक्ति सू रे लाल, पूरण चरण सू प्रीत रे॥
ज्यारे मोहकर्म पतलो पड्यो रे लाल, उग्रभागी दीसावान रे।
ते किम राचे कामभोग मे रे लाल, सवेग रम गलतान रे॥
न्यातीला काया हुवा रे लाल, आग्या दीधी तिण वार रे।
पुत्र सहित माता भणी रे लाल, सजम लेवा सार रे॥[1]

इसके वाद माता और पुत्र को दीक्षा देने के लिए आचार्य भिक्षु वडी रावलिया पधारे। शाह चतुरोजी ने वड़े ही उल्लास से दीक्षा महोत्सव किया। दोनो को हथिनी के हौदे पर वैठाकर अभिनिष्क्रमण-जुलूस निकाला। भिक्षु ने माता और पुत्र को आम्र वृक्ष की छाया मे दीक्षा दी। वह स० १८५७ की चैत्री पूर्णिमा का दिन था।

प्रसिद्ध है

सात वर्ष मे समकित पाई, दश मे दर्शाई।
इग्यारमा रे अध वीच मे, दीक्षा हद आई॥[2]

ऋषिराय को सात वर्ष की आयु मे सम्यक्त्व का स्पर्श हुआ। दशवे वर्ष मे दीक्षा की भावना प्रकाश मे आयी। साढे दस वर्ष की अवस्था मे उन्होने दीक्षा ग्रहण की।

---

१ जय (ऋ०रा० सु०), २।४-८

२ (क) जय (भि० ज० र०), ४६।४,६

प्रवल बुद्धि गुण पुण्य पेखनै, पर्म पूज फरमायौ।
पद-लायक ए पुन्य पोरसौ, वचनामृत वरसायौ॥
पाट तीजै आगुच परूप्या, स्वाम वचन सुखदाया॥
जम्वू स्वाम जैसा जैवन्ता, जाझा ठाठ जमाया॥

(ख) जय (लघु भि० ज० र०), ५। दो० १०

सतावनै सजम लीयौ, भिक्षु वुद्धि अमद।
पट लायक परख्यौ प्रगट, हस्तमुपी नृपचन्द॥

होनहार विरवान

जैसा कि हम कह आए हैं, आचार्य भिक्षु मनुष्यों के बडे पारखी थे। वे एक ही दृष्टि में मनुष्य की कीमत आंक लेते थे। उन्होंने अपनी दृष्टि मे जिसे ऊंचा चढाया, जिसकी कीमत ऊंची आंकी, वह भविष्य मे उतना ही महान् निकला। उन्होंने बालक ऋषिराय की दीक्षा सम्पन्न होते ही उनकी बुद्धिमत्ता, गुण और पुण्य-शीलता देखकर कहा था—"यह बालक आचार्य-पद के योग्य प्रतीत होता है।" उनकी वाणी अक्षरश सत्य निकली। उनके आशीर्वाद-सूचक इन वचनो ने ऋषिराय को महानतम बना दिया।

ऋषिराय की प्रकृति सरल तथा गुरु के प्रति अनन्य भक्ति-भाव से ओतप्रोत थी। उनके चेहरे पर एक प्रकाश-सा छाया रहता था, एक ज्योत्स्ना सी हंसती रहती थी। आचार्य भिक्षु भी इस ओजस्वी मुख-मण्डल वाले बालक को 'ऋषि' या 'ब्रह्मचारी' नाम से पुकारते थे।

आचार्य भिक्षु का महाप्रयाण सं० १८६० की भाद्र सुदी १३ को हुआ था। भाद्र सुदी ४ को उन्होंने अनुमान से अपनी आयुष्य-अवधि लम्बी न जानकर साधुओं को अन्तिम शिक्षा दी। उनका विचार धीरे-धीरे अन्न त्याग कर समाधि-मरण प्राप्त करने का था। उस समय उन्होंने बालक संत ऋषिराय को शिक्षा दी—"तुम अभी बालक हो। मेरे प्रति मोह-भाव मत लाना।" ऋषिरायजी प्रौढता से बोले; "स्वामीजी! आप तो संथारा के द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण कर रहे हैं, फिर मैं क्यों मोह करने लगा?"[1]

उनकी अवस्था चौदह वर्ष से कुछ ही अधिक थी। इस अल्प-वयस्क संत के हृदय मे कितना वैराग्य-भाव था—यह इस घटना से स्पष्ट प्रकट होता है। आचार्य भिक्षु जैसे महान् प्रतिपालक गुरु के अवसान की घडी सामने दिखाई दे और चौदह वर्ष का बालक संत मोह न लाने की आत्म-साक्षी दे, यह तो एक संस्कारी जितेन्द्रिय पुरुष की ही बात है। मोह—चिन्ता—तो उसके लिए की जा सकती है जो धर्मोपार्जन न करके खाली हाथ जाय, परन्तु जो यहां से प्रचुर सम्पत्ति सहित परलोक-यात्रा कर रहा हो, उसके लिए चिन्ता क्यो?—यही ऋषिराय के चिन्तन का सार था।

भाद्र शुक्ला द्वादशी की बात है। आचार्य भिक्षु के दो दिन का उपवास था। वे विश्राम में सोए हुए थे। वे संथारे के लिए अपनी आत्मा को तोल चुके थे और केवल अवसर की प्रतीक्षा में थे। उस समय ऋषिराय ने आचार्य भिक्षु के पास आकर दर्शन देने का अनुरोध किया।

भिक्षु ने नेत्र खोलकर, उनकी ओर दृष्टिपात करके, उनके मस्तक पर हाथ धरकर, आशीर्वाद सूचित किया। बाह्य चिह्नों से ऋषिराय ने जान लिया कि उनका शरीर निर्बल होता जा रहा है। उन्होंने आचार्य-प्रवर को संथारे के लिए सजग करने के अभिप्राय से कहा—"स्वामी! नाथ! अब बल क्षीण पडता जा रहा है।" भिक्षु पहले से ही सजग थे। वे उठ बैठे और भारमलजी, खेतसीजी आदि संतों को बुलाकर सिद्धो को नमस्कार कर सबके सामने उच्च

---

१ जय (भि० ज० र०), ५६।७-८

रायचन्द ब्रह्मचारी नैं जांणो जी, सीख दे शोभती।
तू बालक छै बुद्धिमानो जी, मोह कीजै मती॥
ब्रह्मचारी कहै वाणो जी, शुद्ध वच सुंदरू।
आप करो जन्म रो किल्याणो जी, हूं मोह किम करू॥

स्वर से सथारा (यावज्जीवन तीन आहारो का त्याग) ग्रहण कर लिया।[1]

वाल्यावस्था मे भी ऋषिराय का उपयोग कितना तीक्ष्ण था! उन्होने ठीक समय पर भिक्षु को सचेत कर दिया। बालक सत के सहयोग से भिक्षु को सात पहर का सथारा आया। उनके उपदेशानुसार आपने मोह-भाव को किस तरह जीत लिया, यह इस घटना से स्पष्ट प्रकट होता है। आपकी बुद्धि, आपका विवेक बड़ा चमत्कारपूर्ण था।

आचार्य भिक्षु अपने पीछे एक-से-एक गुणवान और मेधावी सतौ को छोड गए थे। आचार्य भारमलजी के लिए समस्या हो गई थी कि वे तृतीय आचार्य किसे चुने? खेतसीजी, हेमराजजी, ऋषिरायजी तीनो ही आचार्य-पद के योग्य थे। एक वार सन्तो ने उनसे प्रार्थना की कि वे युवाचार्य का नाम निर्धारित कर दे। तव उनके मुख से शब्द निकले—"रायचन्द अभी वालक है।" ऋपिराय के कानो मे ये शब्द पडे। वे हाथ जोडकर बोले· "भावी आचार्य किसे स्थापित करे, यह आपकी मर्जी है, परन्तु मुझे वालक देखकर अपने मन मे कोई चिन्ता न रक्खे।" वालक सत के इन स्वाभिमानपूर्ण ओजस्वी शब्दो ने आचार्य भारमलजी को चिन्ता-मुक्त कर दिया। वाल्यावस्था होते हुए भी ऋषिराय जिन-शासन के महान् भार को वहन करने की क्षमता रखते थे। आचार्य भिक्षु और भारमलजी के एक-एक शिष्य मे यह हिम्मत होनी चाहिए, यह आपने अपने वीरोचित उत्तर से प्रकट कर दिया। पाठक यह न समझ ले कि ऋषिराय स्वय को अन्य साधुओ की अपेक्षा अधिक योग्य मानते थे और वे आचार्य वनने के इच्छुक थे। उनके कथन का साराश यही था कि तेरापथ सम्प्रदाय का एक छोटा-सा साधु भी गुरु-कृपा से महान शासन-भार को सम्यक्तया सचालित कर सकता है।

प्रथम शिष्य

आचार्य भारमलजी ने स० १८६९ का चातुर्मास जयपुर मे किया। इसके पूर्व आचार्य

---

१. जय (भि० ज० र०), ५९।७-१३

वारस दिन वेलौ कियौ पूज, तीन आहार तणा किया त्यागो।
सखर सथारो कर्ण सू स्वामी नौ, वारु चढतौ वैरागो॥
सामली हाट सू उठ मुनीश्वर, चलिया चलिया आयो।
पकी हाट नै पका मुनीश्वर, पकौ संथारौ सुहायौ॥
सयण शिष्या कीधौ सुखदाई, वारू पूज लियौ विसरामो।
इतलै ऋष रायचन्दजी आपने, रूडा वचन वदै अभिरामो॥
स्वामी कृपा कीजै दर्शन दीजियै, वदै ब्रह्मचारीजी विख्यातो।
पूज स्हामु जोवै नेत्र खोलनै, हद मस्तक दीधौ हाथो॥
पूज नै कहै प्राक्रम हीण पडिया, ऋषराय तणी सुण वायो।
भिक्खु पहिला तन तोल त्यारी था, सुण सिह ज्यू उठ्या मुनिरायो॥
भिक्खु कहै वोलावौ भारीमाल नै, वले खेतसीजी नै विचारो।
याद करताई संत दोनूइ, झट आय ऊभा है तिवारो॥
नमोथुणो कियौ अरिहत सिद्धा ने, तीखै वच वोल्या तामो।
वहु नर-नारी सुणता नै देखता, सथारौ पचख्यौ भिक्खु स्वामो॥

भिक्षु स० १८४८ मे जयपुर पधारे थे। २२ रात्रि विराजे थे। उस समय हरचन्दलालजी लाला आदि कुछ ही व्यक्ति समझे थे, आप २२ वर्ष वाद पधारे। जनता को वडा हर्ष हुआ। बहुत लोग प्रतिबुद्ध हुए। जयपुर मे आपको अत्यत व्रण-वेदना उत्पन्न हुई। इससे आपको वहां फाल्गुन तक विराजना पडा। उसी समय आपने सरूपजी, भीमजी, जीतमलजी और उनकी माताजी कलूजी को समझाकर दीक्षा के लिए तैयार किया।

साध्वी अजबूजी, सरूपजी आदि की भुआ थी। आपने स० १८४४ मे दीक्षा ग्रहण की थी। आपके उपदेश से डेढ महीने के अन्दर दीक्षा लेने का प्रण सरूपचन्दजी ने लिया। पौष सुदी ६ के दिन आचार्य भारमलजी ने उनको मोहनबाडी मे दीक्षा दी। जीतमलजी को दीक्षा देने के लिए आचार्य भारमलजी ने सन्त ऋषिराय को भेजा। उन्होने माह वदि ७ के दिन जीतमलजी को दीक्षा दी।

इसके बाद फाल्गुन वदि ११ के दिन आचार्य भारमलजी ने माता कलूजी और भीमजी को दीक्षा दे जयपुर से विहार किया।[1]

इस तरह मुनि जीतमलजी सत ऋषिराय के प्रथम स्वहस्त-दीक्षित शिष्य थे[2] और आगे जाकर वे चतुर्थ आचार्य हुए।

जय ने वालक वय मे जाण ने, पूज्य भारीमालजी करी सुविचार क।
ऋषिराय भणी तव मोकल्या, जय ने चरण देवा जयकार क॥
जिम सिज्झभव ने प्रतिबोधवा, जबु स्वामी हे मेल्या प्रभव अणगार क।
तिम भारीमाल ऋपिराय ने, एहवो जोग स्वत ही मिलीयो श्रीकार क॥
माह विद सातम शुभ दिने, घाट दरवाजे पूर्व दिशि माह क।
बड वृक्ष तले ऋपिरायजी, सामायिक चरण दियो सुखदाय क॥
अति दिशावान पुन्यवत घणा, हस्त मुखी, नृप इन्दु मुनिद क।
ज्यारे प्रथम शिष्य जय कारीया, हुवा हे जय अति सुखकद क॥

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), ६।१-१३

२ वही, ६।८, ११-१३

दीक्षा देवा जीत ने, भारीमाल सुविचारी हो।
मेहल्या ऋप रायचन्द ने, माह विद सातम धारी हो॥
स्वाम विचारणा भारी हो॥
प्रथम शिप ऋपिराय जी, स्व हथ वयण उचारी हो।
जीत भणी किधो सही, जोग मिल्यो तत सारी हो॥
अकस्मात अवधारी हो॥
पूर्व पुन्य प्रवल हुवे, भाग्य दिसा हुवे भारी हो।
आपेइ जोग आयि मिलै, प्रत्यक्ष पेखो विचारी हो॥
अन्तर आख उघाडी हो॥
छठी ढाल विपे कह्यो, ऋपिरायजी भारी हो।
दिक्षा दिधी जीत ने, वायो रुंख विचारी हो॥
आगल फल विस्तारी हो॥

स्वकर सिच्या तरु तणी, जग मे हे हुवे अति प्रतिपाल क।
तिम ऋषिराय अकुर ए वाहियो, होसी आगल हे फल फूल विशाल क ॥[1]

माता खुशालाजी रा सथारा

आचार्य भिक्षु ने साध्वी खुसालाजी को साध्वी वरजूजी के सिघाड़े मे रखा, और तीन चौमासे अपने साथ करवाये।[2] आपने स० १८६७ मे सथारा ठा दिया।[3] आठ प्रहर का सथारा आया।

पुरानी ख्यात मे लिखा है—"विनय ना गुण थी शोभा धणी लीधी। १५ दिना री तपस्या मे सथारो किधो। ८ पोहर सथारो आयो।"

आप भाई मुनि खेतसी (सत्ययुगी), पुत्र सत ऋषिराय और छोटी वहिन साध्वी रूपाजी को शासन मे छोडकर देवलोक सिधारी।

गृहस्थावस्था मे आप हर प्रकार से सुखी थी। भरे-पूरे सपन्न परिवार का सुख आपको उपलब्ध था। इस तरह आपने सुखी अवस्था मे सयम ग्रहण किया। सयमी अवस्था मे भी आपने सुखपूर्वक चारित्र का पालन किया। अन्त मे सथारा कर सुखपूर्वक काल प्राप्त किया। जयाचार्य ने लिखा है·

सुख माहे चारित्र आदरयो मुनिन्द मोरा, सुखे सुखे चरण पाल हो।
सयती सुख माहे छता मुनिन्द मोरा, सुखे सुखे कियो काल हो॥[4]

युवाचार्य पद-प्राप्ति[5]

आचार्य भारमलजी का स० १८७७ का चातुर्मास श्रीजीद्वार मे था। वहा से विहार कर सिहार, कोठार्‍या, गुडला, कुठवा, सिसोदा होते हुए वे कांकरोली पधारे। काकरोली एक महीने विराज कर वे राजनगर पधारे। साथ मे वहुत साधुओ का परिवार था। वहां दर्शन करने के लिए वहुत साधु-साध्विया आए। ३८ साधु एकत्रित हो गए। आचार्यश्री ने कई सिंघाड़ो को वहा से विहार कराया।[6]

राजनगर मे विराजते-विराजते ही आचार्यश्री के कुछ असाता उत्पन्न हुई। उपचार शुरू किया।

---

१. मघवा (ज० सु०), ४।१२-१६

२ जय (ऋ० रा० सु०), ५।६
महा भाग्यवान महासती मुनिन्द मोरा, भिक्षु तथा भारीमाल हो।
तीन चौमासा भेला कराविया मुनिन्द मोरा, गुणनिष्पन्न नाम खुपाल हो॥

३ वही, ५।१०
समत अठारेसे सतसठे मुनिन्द मोरा, पन्द्रह दिन तपस्या प्रधान हो।
पंदर मांहै सथारो कियो मुनिन्द मोरा, आयो आठ पोहर उनमान हो॥

४. वही, ५।१०

५ विस्तृत विवरण के लिए देखिए—पृ० ७१-७४

६. हेम (भा० च०), ५।१-७

मुनि हेमराजजी ने सं० १८७७ के अपने उदयपुर चातुर्मास के वाद वसत पचमी के दिन गोघुदा मे सतीदासजी को दीक्षा दी और उन्हे साथ ले आचार्यश्री के दर्शन किए।[1]

एक वर्णन से ऐसा लगता है—जैसे दर्शन कर उन्होने पुन विहार किया और वाद मे आचार्य श्री की अस्वस्थता का समाचार पाकर उन्होने पुन दर्शन किए। अन्य वहुत साधु भी अस्वस्थता का समाचार सुनकर आए।[2]

दूसरा वर्णन स्पष्ट रूप से कहता है कि वसंत पचमी को दीक्षा देकर गोघुंदा से विहार कर मुनि हेमराजजी ने राजनगर मे आचार्यश्री के दर्शन किए, तथा और भी वहुत सत एकत्रित हुए।[3]

आचार्यश्री रुग्णता का यही अवसर था जवकि उनकी दृष्टि को समझकर मुनि हेमराजजी ने मुनि रायचन्दजी को पाट देने की विनती की थी।[4] ऐसी ही विनती मुनि खेतसीजी (सतजुगी) ने भी की। दोनो द्वारा विनती किए जाने का उल्लेख इस प्रकार मिलता है .

सतजुगी हेम वयण वदीजे रे, रायचन्दजी ने पाट दिजे रे।
म्हारी तरफ सू चिन्ता न कीजै ॥[5]

इस तरह इसमे सदेह नही कि विनती करने की यह घटना राजनगर मे ही घटी, जहां आचार्यश्री की अस्वस्थता का समाचार सुनकर वहुत साधु एकत्रित हुए थे।

मुनि हेमराजजी ने गोघुदा से स० १८७७ की माघ सुदी ५ (वसत पचमी) के वाद विहार कर आचार्यश्री के दर्शन किए थे। अत उक्त घटना उसके पहले की नहीं हो सकती।

---

१ जय (हे० न०), ५।४९-५३

२ वही, ५।५२-५५

वस्ती पचमी दीख्या लीधी रे, प्रीत पय जल जेम प्रसिद्धि रे।
जावजीव ताई सेवा कीधी ॥
भारीमाल रा दर्शण कीधा रे, वचनामृत प्याला पीधा रे।
जव वछित कारज सिधा ॥
तिणहिज वर्ष पूज्य तन जाणी रे, काई वेदन अधिक जणाणी रे।
हेम आदि मिल्या सत आणी ॥

३. मघवा (ज० सु०), ७।७, ९, १०

सोले वर्ष नी वय अति सुन्दर, वहु ऋद्ध जात कोठारी।
वसत पचमी घणे हगामे, चरण लियो सुखकारी ॥
वडा गाम मू विहार करी ने, हेम जीत आदि गुणरासो।
राजनगर गणि भारीमाल रा, दर्शन किया हुलासो ॥
भारीमाल तनु कारण जाणी, वहु संत मिल्या तिहा आणी।

४. (क) जय (हे० न०), ५।५५-५७, (पृ० ७२ पर उद्धृत)
(ख) मघवा (ज० सु०), ७।१०-१२

५. जय (ऋ० रा० सु०), ७।४। तथा देखिए—जिन शासन महिमा, ३।४-७, ऋपराय पच-ढालियो, २।१-२

आचार्य भारमलजी ने २२ ठाणो से राजनगर से विहार किया और स० १८७७ की फाल्गुन सुदी १३ को केलवा पधारे।

अत उक्त घटना उसके वाद की नही हो सकती। इस तरह उक्त घटना माघ सुदी ५ और फाल्गुन सुदी १३ के वीच की है।

स० १८७७ वैशाख वदि ९ वृहस्पतिवार का लिखित कर मुनि ऋपिराय को युवाचार्य घोषित किया, जिसमे लिखा है "सर्व साधु-साध्वी रायचन्दजी री आगन्या माहे चालण्ये।"

युवाचार्य पद देने की इस घटना की ओर सकेत कर ही कवि हसराजजी ने लिखा है .

साध साध्वी श्रावक श्राविका, सव लोगा साखीक।
रायचंद गादी को मालिक भारीमाल भाखी॥
कोल वचन तो किया केलवे, शुभ वेला साधी।
राजनगर मे रायचन्दजी, गुरु वैठा गादीक॥[1]

विवरण पत्रिका (अक्टूवर-नवम्वर, १९४६ वर्प ७ सख्या ८-९) मे प्रकाशित लेखक के "श्रीमद् आचार्य रायचन्दजी स्वामी" शीर्षक लेख (पृ० ८१) मे उक्त घटना का वर्णन निम्न रूप मे उल्लिखित हुआ था

"स० १८७७ का चातुर्मास शेप हो चुका था। वसत पचमी का दिन था। आचार्य भारीमालजी के विशेष कारण (रोग-प्रकोप) हुआ। यह सुन हेमराजजी महाराज ने कहलाया— "संत रायचन्द वडा गुणवान् है। उसे पट्टधर नियुक्त करे।"···हेमराजजी महाराज के इन वचनो को सुनकर आचार्य भारीमालजी ने उसी साल वसत पचमी के दिन सोजत मे रायचन्दजी को भावी पट्टधर घोपित कर दिया।"

उक्त उल्लेख भ्रातिपूर्ण और निराधार है। प्रस्तुत वर्णन ही प्रामाणिक है।

युवाचार्य पद देने की घटना के विपय मे 'तेरापथ का इतिहास' ग्रथ मे लिखा है

"नियमत आवश्यक न होते हुए भी (आचार्य भारमलजी) को सघ के कुछ अनन्य भक्त साधुओ से इस विषय मे परामर्श कर लेने की आवश्यकता महसूस की। हेमराजजी स्वामी और खेतसीजी स्वामी को वुलाकर उन्होने अपने विचार उनके सामने रखे, तथा इस विपय मे उनकी राय जाननी चाही। साथ ही तद्विषयक निर्णय पर भावी प्रतिक्रिया का भी विचार किया।"[2]

पर इस तरह परामर्श करने की घटना का उल्लेख किसी भी ग्रथ मे प्राप्त नही है।

शासन प्रभाकर मे कथन है

सुविनीता सिर सेहरा, सत सती प्रतिपाल।
जाणी युवपद् थापियो, अठारै छियतरै भारीमाल॥

पर १८७६ मे युवाचार्य पद प्रदान करने की घटना किसी भी प्रमाण से सिद्ध नही होती। अत पूर्व लिखित कथन गलत है।

---

१. आचार्य ऋपिराय विपयक ढाल, गा० ४, ५
२ तेरापथ का इतिहास, पृ० १७२

आचार्य भारमलजी का देहावसान माह वदि ८ स० १८७८ को हुआ था।[1] माह वदि ९ के दिन राजनगर मे ऋषिराय ने धर्म संघ के तृतीय अधिपति के रूप मे आचार्य-पद-भार सम्हाला। उस समय सघ मे ३५ सत तथा ४१ साध्वियां थी।

सत पैतिस चरण खुसालो रे, इकतालीस श्रमणी सुद्ध चालो रे।
मेली परभव पौहता भारीमालो ॥[2]

अन्तिम समय मे आचार्य भारमलजी को सथारा मुनि खेतसीजी और आप द्वारा कराया गया।[3] उस समय युवाचार्य ऋषिराय आचार्यश्री के पास बैठे रहे और तीन प्रहर तक सेवा करते रहे।[4]

चातुर्मास

मुनि-काल के चातुर्मास

जैसा कि बताया जा चुका है, आपकी दीक्षा स० १८५७ की चैत्र की पूर्णिमा को हुई थी। आपने प्रथम तीन चातुर्मास आचार्य भिक्षु के साथ किए। तत्पश्चात् अठारह चातुर्मास आचार्य भारमलजी के साथ किए।[5] इन इक्कीस चातुर्मासो का विवरण निम्न प्रकार है

१. स० १८५८ केलवा (मेवाड)
२. " १८५९ पाली (मारवाड)
३. " १८६० सिरियारी "
४. " १८६१ पीसागण "
५. " १८६२ पाली "
६. " १८६३ खेरवा "
७ " १८६४ केलवा (मेवाड)
८. " १८६५ श्रीजीद्वार "
९. " १८६६ आमेट "
१०. " १८६७ वालोतरा (मारवाड)
११. " १८६८ पाली (मारवाड)
१२. स० १८६९ जयपुर (ढूढाड)
१३ " १८७० सवाई माधोपुर "
१४ " १८७१ बोरावड़ (मारवाड)
१५. " १८७२ सिरियारी "
१६. " १८७३ पाली "
१७. " १८७४ श्रीजीद्वार (मेवाड़)
१८. " १८७५ काकरोली "
१९. " १८७६ पुर "
२०. " १८७७ श्रीजीद्वार "
२१. " १८७८ केलवा "

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), ७।८
अठतरे वर्ष माघ मासो रे, कृष्ण पक्ष आठम तिथि तासो रे।
राजनगर माहे सुविमासो ॥
२. वही, ७।१३। साध्विया ४२ थी। देखिए—पृ० ८७
३. देखिए पृ० ८०, अनु० ३
४ वही, पृ० ८०, अनु० ३
५ जय (रा० सु०), ८।दु० ५
भिक्षु ऋष भेला किया, तीन चौमासा ताम।
भारीमाल साथे भला, अष्टादश चौमास ॥

आचार्य-काल के चातुर्मास

आचार्य होने के बाद आपने तीस चातुर्मास किए, उनका विवरण इस प्रकार है :

सं०	स्थान		सं०	स्थान	
१८७९	पाली	(मारवाड़)	१८९४	श्रीजीद्वार	(मेवाड)
१८८०	जयपुर	(ढूंढाड)	१८९५	उदयपुर	(")
१८८१	पीपाड	(मारवाड)	१८९६	पाली	(मारवाड़)
१८८२	पाली	(")	१८९७	जयपुर	(ढूंढाड़)
१८८३	उदयपुर	(मेवाड)	१८९८	लाडनूं	(मारवाड)
१८८४	पेटलावद	(मालवा)	१८९९	वीदासर	(थली)
१८८५	श्रीजीद्वार	(मेवाड)	१९००	जयपुर	(ढूंढाड़)
१८८६	पाली	(मारवाड)	१९०१	श्रीजीद्वार	(मेवाड)
१८८७	वीदासर	(थली)	१९०२	पाली	(मारवाड़)
१८८८	श्रीजीद्वार	(मेवाड)	१९०३	जयपुर	(ढूंढाड)
१८८९	उदयपुर	(")	१९०४	श्रीजीद्वार	(मेवाड)
१८९०	पाली	(मारवाड)	१९०५	पाली	(मारवाड)
१८९१	गोगुदा	(मेवाड़)	१९०६	लाडनूं	(")
१८९२	जयपुर	(ढूंढाड)	१९०७	जयपुर	(ढूंढाड़)
१८९३	पाली	(मारवाड)	१९०८	उदयपुर	(मेवाड)

आचार्य भिक्षु के साथ तीन, आचार्य भारमलजी के साथ अठारह एव आचार्य-काल मे तीस—इस तरह कुल इक्यावन चातुर्मास आपने किए, उनका प्रदेश-क्रम मे विवरण इस प्रकार है[1] :

चातुर्मास प्रदेश-क्रम

प्रदेश	स्थान	संख्या	वर्ष
१. मारवाड २१	१. पाली	१२	१८५९, ६२, ६८, ७३, ७९, ८२, ८६, ९०, ९३, ९६, १९०२, १९०५
	२. सिरियारी	२	१८६०, ७२
	३. पीसागण	१	१८६१
	४. खेरवा	१	१८६३
	५. वालोतरा	१	१८६७
	६. वोरावड	१	१८७१
	७. पीपाड़	१	१८८१
	८. लाडनूं	२	१८९८, १९०६

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), १३।३२ :
तीन चौमासा भिक्षु साथे कीया, भारीमाल पे अठार।
तीस चौमासा आचार्य पद मझै, सर्व चौमासा इकावन सार॥

२ ढूढाड	८	९ जयपुर	७	१८६९, ८०, ९२, ९७, १९००, १९०३, १९०७
		१०. स० माधोपुर	१	१८७०
३. मेवाड	१९ :	११. केलवा	३	१८५८, ६४, ७८
		१२. श्रीजीद्वार	८	१८६५, ७४, ७७, ८५, ८८, ९४, १९०१, १९०४
		१३ आमेट	१	१८६६
		१४ कांकरोली	१	१८७५
		१५. पुर	१	१८७६
		१६ उदयपुर	४	१८८३, ८९, ९५, १९०८
		१७. गोगुदा	१	१८९१
४. मालवा	१	१८. पेटलावद	१	१८८४
५. थली	२	१९. बीदासर	२	१८८७, ९९[1]
५	५१	१९		

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि आपने पाच प्रदेशो के १९ स्थानो मे ५१ चातुर्मास किए।

आपके आचार्य-काल के चातुर्मासो का विवरण देने के वाद जयाचार्य ने लिखा है

भिक्षु भारीमाल चलीयां पछे, तीस चौमासा हो स्वामी किया तत सार।
इकवीस चौमासा आगे कीया, सर्व चौमासा हो इकावन सुखकार॥
शेष काल उपगार कीयो घणो, वहु जीवाने हो दीयो सयम भार।
देश व्रत धारी कीया दीपता, सुलभवोधी हो किया वहु नरनार॥
खिम्यावान गभीर धीर घणा, वहुश्रुति हो नीत निपुण पुन्यवान।
धर्म उद्योत करण उद्यमी घणा, दिशा भारी हो भाग्यवली गुणखान॥
परम पूज्य गुण पुन्य पोरसो, जशधारी हो गुण गावे नरनार॥[2]

अन्तिम विहार

स० १९०८ के उदयपुर चातुर्मास की सम्पूर्ति के वाद के शेषकाल की आपकी यात्रा विस्तृत और वहुत महत्त्वपूर्ण रही।

उदयपुर से विहार कर वेदले होते हुए आप गोघुदा पधारे। फिर नवै गाव पधार कर वापिस गोघुदा आये, और २७ दिन रहे। वहा आपने एक वाई को दीक्षा दी। दीक्षा दे उसी दिन वहा से विहार कर एक रात सेवयल रहे। वहा से वडी रावलिया पधारे। वहा २२ दिन रहे। फिर छोटी रावलिया पधारे। वहा पाच रात्रि रह, नानसमा गाव पधारे। वहा आपने निर्मल चित्त से आलोचना की और विविध प्रकार की शिक्षा दी। वहा १० रात्रि रह कर माघ

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), १३।३६-३७
२. वही, ११।१४-१६, १७

वदि १२ के दिन छोटी रावलिया पधारे। आपके जीवन का यही विश्राम अन्तिम विश्राम था।

हिवे चौमासो उतरचो, विहार कियो तिणवार।
शक्ति अधिक स्वामी तणी, मन औछाह अपार॥
छेहला-छेहला ग्राम फरसता, छेहलाई करता विहार।
किहा दर्शण दिया पूज्यजी, ते सुणजो विस्तार॥
विहार कीयो उदयपुर थकी होजी, वेदले होय तिवार।
विचरत विचरत आविया, काइ गोघुदा शहर मझार॥
नवै ग्राम दर्शण देइ करी, होजी पाछा आया ऋषराय।
दिवस सतावीस आसरे, रहचा गोघुदा माय॥
एक बाई ने तिहा स्वामीजी, होजी दीधो सजम भार।
वर उपगार करी तदा, तिण हिज दिन कीयो विहार॥
विहार कर गोघुदा थकी, होजी रहचा सेवयल राय।
बडी रावलीया पधारीया, होजी दर्शन दिया स्वामीनाथ॥
बीवीन दिन रे आसरे, रहचा वडी रावलीया स्वाम।
विहारी करी ने पधारीया, काई छोटी रावलीया ताम॥
पाच रात्रि रहचा आसरे, होजी छोटी रावलीया मझार।
नानसमे गाव पधारीया, काई पूज्य परम दयाल॥
आलोवण चित उजले, होजी स्वाम करी सुविहाण।
सीक्षा विविध दीधी सही, कोई सखरी रीत सुजाण॥
दश रात्रि रे आसरे, होजी नानसमे रह्या ताहि।
माहा विद वारस पाछा आविया, काई छोटी रावलीया माँहि॥[1]

महा प्रयाण

स० १९०८ के चातुर्मास के बाद आपने उक्त विस्तृत यात्रा की। शरीर मे अच्छी शक्ति थी। मन मे बडा उत्साह था। छोटी रावलियाँ मे कुछ खासी की शिकायत रहने लगी, पर वेदना सहन करने मे साहसी होने से इसकी कुछ परवाह नही की। माघ चतुर्दशी के दिन दोनो वक्त बाहर पचमी पधारे। कुछ श्वास का प्रकोप दिखाई दिया। सायकाल थोडा सा उष्ण आहार लिया, तथा प्रतिक्रमण भी बैठे बैठे ही किया। विशेप रोग भी दिखाई नही दे रहा था। प्रतिक्रमण के पश्चात् सोने की इच्छा से साधुओ से पूजणी मागी और पजणी से पूज कर आपने शयन किया। उसी समय आपको पसीना आया। सोने पर श्वास और बढ़ गया। बोले—"आज से पूर्व सोने पर श्वास इस प्रकार कभी नही बढ़ा।" तत्काल उठ बैठे। सन्तो ने पीठ के सहारा लगा रक्खा था। इस प्रकार बैठे-बैठे ही थोड़े समय मे देहान्त हो गया। किसी ने नही समझा था कि अवसान की घडी इतनी समीप है।

कदेहिक २ खास रो, होजी कारण हूतो तन माहि।
पिण स्वाम साहसिक वेदन मझे, तिण सू खातर न आणे काय॥

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), १३।१-८

माह विद चवदग रे दिन, होजी विहूं टंक मे ऋषराय।
दिसा पधारया गांम बारणे, तन माहे स्याग तगाग॥
आथण रा उन्हों कीयो, होजी अल्प आहार स्यामीनाथ।
पछे संध्या पडिकमणो, कीयो बैठा थका विख्यात॥
खेद विशेष शरीर मे, होजी दीसे नही तिण वार।
आयु अचित्यो आवियो, काई आश्चर्य ए अधिकार॥
पडिकमणो कीधो मुखे, होजी परम पूज्य गुणधार।
स्वाम परिणाम सुवा तणा, काई जाग्यां पूजण तिण वार॥
स्वाम कहे साधा भणी, होजी पूजणी आपो मोय।
साधा सूपी जब पूजणी, काई पूंजण काजे जोय॥
पूजणी लेई जयणा करी, होजी सूता पूज्य ऋषराय।
परसेवो तब वाधियो, काई तिण अवसर रे माय॥
स्वास अधिक सूता वध्यो, होजी बैठा थया तिण वार।
आज पहिला सूता स्वास न चढ्यो, इम बोल्या वचन विचार॥
सत पूठै बैठा सही, होजी बैठा छता ऋषराय।
परभव माहे पागर्या, काई किंचित वेला माही॥
खेद विशेष पाया नही, होजी पूरा पुन्याईवान।
किण ही ने खवर पडी नही, काई आज अछे अवसान॥[1]

साधुओ ने शरीर का व्युत्सर्ग कर कायोत्सर्ग किया। सन्नाटा छा गया। लोग मर्माहत वुए।

जयाचार्य लिखते है

धिग-धिग एह ससार ने, होजी काल सू जोर न कोय।
ऋषरायजी सा महापुरुष था, सो परभव पोहता सोय॥
जशकर्मी या जीवडा, होजी सुजश करे ससार।
वलभ तीर्थ च्यार ने, काइ याद करे नरनार॥
काल गया ऋषरायजी, होजी जाण लीयो मुनिराय।
शरीर ने वोसिराय ने, काई काउसग दीधो ठाय॥
स्वाम मरण निसुणी करी, वहु नर-नार्या रे ताहि।
करडी लागी अति घणी, काइ जाण रह्या जिनराय॥[2]

चरम महोत्सव

आपके देहावसान का सनसनी पूर्ण समाचार हाथोहाथ नानसमा, वड़ी रावलिया, नया शहर, गोघूदा आदि गावो मे रात्रि मे ही पहुच गया। वहुत लोग इकट्ठे हो गये।

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), १३।६-१७,२०
२. वही, १३।१६,२१,२५,२६

तेरह खण्डी मडी बनायी गयी, जो देव विमान की तरह लग रही थी।

हजारो नर नारी इकट्ठे हो गये। अनेक तरह के वाद्य यत्र बजाते हुए चरमोत्सव बनाया जा रहा था। सैकडो रुपयो की उछाल की गई। चदन और पीपल के काठ से दाह-सस्कार किया गया।[1]

समाचारो का ताता

श्रीजीद्वार से आचार्य ऋषराय के स्वर्गवास का समाचार लेकर एक काशीद पाली मे आया। पाली से बोलोतरा काशीद भेजा। वहा से बाघावास समाचार भेजा।

मुनि सतीदासजी के पास यह समाचार माघ सुदी ७ के दिन पहुचा। समाचार कष्टप्रद था। पर समभाव से सहन किया। लोगस्स का ध्यान कर कायोत्सर्ग किया। उस दिन तिविहार उपवास किया।[2]

स० १९०८ का युवाचार्य जय का चातुर्मास बीदासर मे था। चातुर्मास के बाद विहार कर लाडनू पधारे। वहा से माह वदि मे पुन: विदासर पधारे। मही माघ सुदी ८ के दिन मेवाड से उक्त समाचार मिला। समाचार सुनकर चारो तीर्थ मे सन्नाटा छा गया। युवाचार्य श्री एव अन्य मुनियो ने उस दिन उपवास रक्खा।[3]

उपसंहार

आचार्य ऋषिराय का स्वर्गवास स० १९०८ मे माघ वदि १४ के दिन मुहूर्त रात्रि व्यतीत होने के उपरात उनकी जन्मभूमि के समीप छोटी रावलिया मे हुआ।[4]

आप लगभग ११ वर्ष तक गृहस्थावास मे रहे। ५१ वर्ष सयम का पालन किया। ३० वर्ष आचार्य-पद को सुशोभित किया। स्वर्गवास के समय आपकी आयु लगभग ६२ वर्ष की थी।

आपके तीस वर्ष के शासन-काल मे शासन की अत्यन्त वृद्धि और उन्नति हुई। अनेक लोगो को प्रतिबोधित किया।[5] अनेक दीक्षाएँ हुई। नये क्षेत्रो मे धर्म-प्रचार का कार्य हुआ।

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), १३।२७-३०
२. शान्ति विलास (सतीदास चरित्र), ११।दो०१-६,८,९
३. मघवा (ज०सु०), ३४।२७-३०
४. जय (ऋ०रा०सु०), १३।१८

सवत् उगणीसै आठे सही, होजी माह विद चवदस थाय।
आसरे मुहुर्त रात्रि गया छता, पोहता परभव माहि॥

५. वही, १३।३८, ३९

वर्ष इग्यारे आसरे, रह्या गृहस्थावास।
सयम पाल्यो इकावन वर्ष आसरे, आचार्य पद रह्या तीस वर्ष॥
वर्ष आउखो बासठ वर्ष आसरे, पाल्यो पूज्य महाराज।
घणा जीवा ने प्रतिबोधिया, कीधा आतम काज॥

शासन-काल की विशेषताएं

आचार्य भिक्षु के शासन-काल मे ४८ साधु एव ५६ साध्वियों की—कुल १०४ दीक्षाए हुई।

आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे ३८ साधु एव ४४ साध्वियो की—कुल ८२ दीक्षाए हुई।

आचार्य ऋषिराय के शासन-काल मे ७७ साधु एव १६८ साध्वियो[1] की—कुल २४५ दीक्षाए हुई।

क्षेत्र की अपेक्षा आपने दो नए प्रदेश थली और मालवा मे चातुर्मास किए। थली प्रदेश मे धर्म-प्रसार का कार्य आपके द्वारा ही हुआ। गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ की यात्रा भी सर्वप्रथम आप ही ने की। मेवाड़ मे उदयपुर और गोघुदा मे पूर्वाचार्यो के चातुर्मास नही हुए थे। आपने उदयपुर मे ४ और गोगुन्दा मे १ चातुर्मास किया। मारवाड़ मे लाडनू मे पूर्वाचार्यो का कोई चातुर्मास नही हुआ। आपने २ चातुर्मास किए।

आचार्य भिक्षु के युग मे एक भी कुवारी कन्या की दीक्षा नही हुई। आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे ऐसी दीक्षा केवल एक हुई। आपके शासन-काल मे कुवारी कन्याओ की १० दीक्षाएँ हुई।

प्रथम दो आचार्यो के शासन-काल मे एक भी पट्मासी तप नही हुआ। आपके शासन-काल मे आठ पट्मासी तप हुए। मुनि वर्धमानजी, पीथलजी, मोतीजी, दीपजी, कोदरजी और शिवजी ने एक-एक पट्मासी की। मुनि हीरजी ने दो पट्मासी की। इस प्रकार आठ पट्मासिया हुई।[2]

जयाचार्य ने लिखा है:

> श्रमण सत्यारी सपदा रे, आतो दिन दिन अधिकी थाय रे।
> स्त्री भरतार जोडे दीक्षा रे, वले माता पुत्र नी जोड रे॥
> माय ने वले पुत्री का रे, दीक्षा जुगल बंधव धर कोड रे।
> चरण कुवारी कन्यका रे, भारीमाल वरतारे एक रे॥
> राय ऋषि रे दश थई रे, ए तो स्वाम प्रसादे देस रे॥
> भिक्षु भारीमाल वरतार मे रे, तप पट्मासी हुवो नाहि रे।
> रायऋषि वरतार मे रे, अष्ट षटमासी अधिकाय रे॥[3]

---

१. लघु (ऋ० रा० सु०) ५।१७ मे साधुओ की दीक्षा ७८ उल्लिखित है। मुद्रित रायचन्दजी रो वखाण (१३-२३) मे साध्वियो की दीक्षा १३४ उल्लिखित है। पर दोनो अशुद्ध है।

२. जय (ऋ०रा०सु०), १२।१२ :

बृद्धमान पीथल मोती दीपजी, कोदर शिवजी किया षट्मास।
बे वार छमासी करी हीरजी, ऋषराय वरतारे विमास॥

३ रायचन्द गणि गुण वर्णन ६।७-१०

विशिष्ट तपस्याएं

आचार्य ऋषिराय के युग मे हुई विशिष्ट तपस्याओ का सकलन स्व० श्री सतोपचन्दजी बरड़िया ने किया है। वे तालिकाएँ नीचे दी जा रही है।

आचार्य ऋषिराय युगीन साधुओ की १५ से ऊपर की तपस्याओ का विवरण

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्रम	दीक्षा और ख्यात क्रमाक	साधु नाम स्थान काल	पट्-मासी तप व ऊपर	पाच मासी व ऊपर	चार मासी व ऊपर	तीन मासी व ऊपर	दो मासी व ऊपर	खास खामण व ऊपर	१५ दिन व ऊपर
१.	१(८८)	पुजोजी (उज्जैन)[1] (१८८१-१९१३)	—	—	—	—	—	३०,३२/२ ३३	१५,१६,१७ १८,१९,२० २१,२२.
२.	२(८९)	कोदरजी (वडनगर)[2] (१८८१-१८९६)	१८१	—	—	९४ १०१	६०	३०,३२	२०,२२,२५
३.	३(९०)	ऊतमोजी (खीवाडा) (१८८१-१९०९)	—	—	—	—	—	३०,३४	—
४.	८(९५)	उदयरामजी (गोगुदा) (१८८२-१९२२)	—	—	—	—	६० (आ) ६५, ७७ (पानी)	३०/१३(पा) ३०/२ (आ) ३३,३५ ३७/२,३८ ३९/२,४० १,४५,४७, ५०,५३,५६/२ पा आ से	१५/२ १६,१९,२१
५.	९(९६)	मोतीजी (वाघावास) (१८८५-१९३०)	पट मामी	—	—	—	७६ आ०		
६.	१२(९९)	माणकजी (ताल) (१८८५-१९२५)	—	—	—	९०/५	७५/३ ७६		
७.	१३(१००)	रामोजी (गुदौच) (१८८८-१९१९)	—	—	—	—	—	३०/११,४१/२ ४२,४५	

१. ५ से २२ तक लडी मुनी (ख्यात)

२. कुल तपस्या के दिन ३००२ (८ वर्ष, ४ माह, २ दिन)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१६.	४८(१३५)	वीजराजजी (वाजोली)[1] (१९०१-१९४७)	—	—	—	—	—	—	१५
१७.	५८(१४५)	खूबचन्दजी (ताल) (१९०२-१९२३)	१९३	—	—	—	८५ ७५/२	३१,३७, ४१,४७,५२	—
१८.	६०(१४७)	चिमनजी (सूरवाल) (१९०३-१९५४)	—	—	—	—	—	३१,३५	—
१९.	६२(१४९)	दीपचन्दजी (धोइन्दा) (१९०४-१९४४)	—	—	—	९५ (आ)	६१ (आ)	३१/५आ. ३६/८आ ३६ (पा.)	१५,१८ २२ (सर्व पानी से)
		योग	८	—	—	१३	१८	१०१	६२

१. १ से १३ तक तप बहुत।

आचार्य ऋषिराय युगीन साध्वियों की १५ से ऊपर की तपस्याओं का विवरण

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्रम स०	दीक्षा और ख्यात क्रम	साध्वी नाम, स्थान, काल	पट्मासी तप व ऊपर	पाच मासी व ऊपर	चार मासी व ऊपर	तीन मासी व ऊपर	दो मासी व ऊपर	मास खमण व ऊपर	१५ दिन व ऊपर
१	२(१०२)	सगतूजी (आमेट) (१८७६-१९१५)	—	—	—	—	—	३०, ३४, ४०, ५४	५५, ७०
२.	६(१०६)	मायाजी (१८७६-१९१८)	—	—	—	—	—	३०	—
३.	२२(१२२)	मलुकाजी (श्रावगी)[1] देह (१८८७-१९३१)	२ पट्मासी	—	२	—	—	३०/२, ३२, ३५, ४१, ४५	—
४.	२४(१२४)	गेनाजी (लाडनू) (१८८७-१९३७)	१	—	३	—	—	मास खमण बहुत किए	—
५.	२५(१२५)	मोताजी (बीकानेर) (१८८७-१९२५)	—	—	—	—	—	—	२१
६.	४५(१४५)	महलापकवरजी[2] (किशनगढ) (१८९२-१९३६)	—	—	—	—	—	—	१५, २१
७	६३(१६३)	उमेदाजी (पीसागण) श्रावगी गगवाल (१८९५-१९४१)	—	—	—	—	—	३०/९.३१	१५/२
८.	७३(१७३)	फतुजी (लाडनू) (१८९७)	—	—	—	—	—	३७, ४०	—
९.	९०(१९०)	सिणगाराजी (सुजानगढ) (१८९९-१९०३)	—	—	—	—	—	३०, ४०, (आ) ३० (पा)	—
१०.	९५(१९५)	मानकंवरजी (१८९९-१९०४)	—	—	—	—	—	—	२१
११.	१०९(२०९)	हस्तूजी (चीवर) (१९०१-१९१२)	१९३	—	—	—	१	मास खमण डेट म स	—
१२.	११७(२१७)	कुनणांजी[3] (वाजोली)	—	—	—	—	—	—	१५,१६,

१ घोर तपस्विनी, ११, १३ तथा २०/२ एव ४ मासी, ६ मासी छोडसव पानी के आगार से।

२ १५ तक लडी की। नीचे का तप खूब किया। वर्षी तप दो वर्ष एकान्तर किया। तीर्थंकरो की ओली के २४ उपवास किए। ऋषभदेवजी का उपवास किया।

३ १६ तक लडी।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१३.	१२०(२२०)	रभाजी (पदराडा)[1] (१९०१-१९४३)	पट-मासी ६।मासी ६।।मासी १९८ दिन	—	१४२	—	६३	३१ (पा), ३१ (आ), ३०/२, ४६, ५३	१५,१६, २१, २८ (पा)१५/२ १८, १९, २०, २२, २९
१४.	१२४(२२४)	रामाजी(सूरवाल) (१९०२-१९४५)	—	—	—	—	—	४५	१५, १६, १७, १८, १९, २०, २१
१५	१३५(२३५)	पन्नाजी(माधोपुर)[2] (सूरवाल) (१९०३)	—	—	—	—	—	—	१५/२, १६/४
१६.	१४२(२४२)	कुनणाजी (पाली) (१९०५-१९१२)	—	—	—	—	—	—	१६
१७.	१४९(२४९)	दोलाजी (मला-वावडी)[3] (१९०६)	—	—	—	—	—	३३	१५, १६, १९, २०, २२
१८.	१५७(२५७)	ऊमाजी (राजलदेसर) (१९०७-१९२१)	—	—	—	—	—	—	१५, १६, १७, १८, १९, २०
१९.	१५९(२५९)	वखतावरजी[4] (देशनोक) (१९०७-१९५२)	—	—	—	—	—	३०/२	१५, १७/२
२०.	१६४(२६४)	सुन्दरजी[5] (नाथद्वारा) (१९०७)	१८०/३ १८४/१	१५७	१२०	—	—	३०, ३३, ४५	१५/२,१६ १८, २५, २८
		योग	११	१	७	--	२	४४	५५

१. ६ से २१ तक लडी। नीचे की तपस्या बहुत।

२. नीचे का तप बहुत।

३ नीचे का तप बहुत। सावण भादवा में १२ वर्ष तक एकान्तर तप। २० तक लडी।

४. नीचे का तप बहुत।

५. नीचे का तप बहुत।

जीवन-प्रसंग

जैसा कि बताया जा चुका है, आप सं० १८७८ की माघ कृष्णा नवमी के दिन पाट विराजे थे। सं० १८७९ से लेकर १९०८ तक ३० चातुर्मास आपने आचार्य के रूप में किए। नीचे चातुर्मास एवं शेषकाल की घटनाओं का विवरण दिया जा रहा है।

१ सं० १८७९

सं० १८७९ का पाली (मारवाड) का चातुर्मास आपके आचार्य-काल का प्रथम चातुर्मास था। बहुत उपकार हुआ।[1]

चातुर्मास समाप्त होने पर मिगसर वदि १ के दिन आचार्यश्री ने पाली से विहार किया।

मुनि खेतसीजी के असाता उत्पन्न हुई, पर वे स्थानापन्न नहीं हुए। आचार्यश्री क्रमशः विहार करते हुए उनके साथ जयपुर पधारे। लाला हरचन्दजी एवं अन्य लोग बहुत हर्षित हुए।[2]

२. सं० १८८०

सं० १८८० के जयपुर (ढूंढाड) चातुर्मास में अनेक स्त्री पुरुष प्रतिबोधित हुए। बहुत धर्मोद्योत हुआ। मारवाड, मेवाड, ढूंढाड़, मालवा और हाडोती के बहुत से लोग दर्शनार्थ आए।

मुनि वर्द्धमानजी ने जल के आगार से ४३ दिन का उपवास किया।[3]

इस चातुर्मास का विस्तृत सुन्दर वर्णन निम्न शब्दों में प्राप्त है :

> असिये चौमासो जयपुर रे, सतयुगी रिष रायचन्द रे।
> सन्त घणा थी समोसर्या रे, मेटण भवभव फन्द रे॥
> उपगार हुवो तिहा अति घणो रे, समझ्या घणा नरनार रे।
> धरम उद्योत हुवो घणो रे, जयपुर सहर मझार रे॥

---

१ जय (ऋ० रा० सु०), ८।१

समत अठारे गुण्यासीये रे, पाली सहर मझार।
प्रथम चोमासो पिछाणज्यो रे, अधिक कियो उपगार॥

२ जय (खे० च०), १०।६-८

कायक असाता उपनी रे, गिनत न राखे मुनीराय रे।
सहे समभावे स्वामी सतजुगी रे, क्या ही न बैठा ठाणाय रे॥
विचरत विचरत आवीया रे, सहर जयपुर सुखवास रे।
लाला हरचन्द आद परखदा रे, पाम्या है परम हुलास रे॥
दरसन करने हरख्या घणा रे, जाणी अमोलक जिहाज रे।
उत्तम पुरुष गुण आगला रे, प्रत्यक्ष भवोदधि पाज रे॥

३. जय (ऋ० रा० सु०), ८।२-५

उष्ण उदक ना आधार थी रे, तपस्या करी है वर्धमान रे।
दिव तयालिस वदीता रे, इधिक अनोपम जाण रे॥[1]

मुरधर ने मेवाड मांही, मालव देश उदार।
हाडोती ढूढाड ना, आया वहु नरनार॥
दर्शन करी दयाल ना, लोग सयकडा सोय।
जाणक मैलो मडियो, हरष घणो मन होय॥
प्रभु पूज ऋषरायजी, सतयुगी सरीषा सत।
तसु वचनामृत सामली, उपनो इधक उमग॥
त्याग वयराग वध्यो घणो, पाया जन चिमत्कार॥[2]

चातुर्मास समाप्ति के वाद जयपुर से विहार कर आचार्यश्री मुनि खेतसीजी के साथ हरिदुर्ग पधारे। वहा से कृष्णगढ, रूपनगर होते हुए वोरावड पधारे।[3]

वहा सैकडो लोगो ने हर्षोत्फुल्ल होकर हाथ जोडकर वन्दना-नमस्कार किया।

मगलसिहजी राठौड वडे ठाट-वाट से वन्दन करने आए।[4]

साधु-साध्वियो के ५४ ठाणे दर्शनार्थ एकत्रित हुए

चार तीरथ ना थाट हो, दर्शन करवा सत सत्या वहु आवीया रे लो।
होय रह्यो गहघाट, स्वाम दिदार देखता परम सुख पामीया रे लो॥[5]

वोरावड से आपने २४ साधु-साध्वियो के साथ विहार किया।[6]

चातुर्मास-समाप्ति के वाद आचार्यश्री विहार करते हुए पीपाड पधारे। मुनि खेतसीजी साथ थे। उन्होने पूर्ण जागृत अवस्था मे सथारा ग्रहण किया। आचार्य ऋपिराय ने उनको सथारा ग्रहण कराया और वहुत सहारा दिया। अन्त समय मे आचार्यश्री ने मुनि खेतसीजी की वहुत सेवा की।

हिव चोमासो उतर्‌यो रे, विचरत विचरत ताय।
शहर पीपाड पधारिया रे, सतजुगी स्वाम ऋपराय॥
स्वाम सतजुगी तिण समे रे, सार्‌या आतम काज।
सथारो सावचेत मे रे, अदरायो ऋपराय॥
सखरो साहज दियो सही रे, स्वाम खेतसी सार।
ऋपराय सेव हद साचवी रे, अत समै अवधार॥[7]

---

१. जय (खे० च०), १०।६-११

२ वही, ११।दो० २-५

३ वही, ११।१-२

४. वही, ११।४

मगलसिंह राठौर हो, सतजुगी पूज पधार्‌या, सुण हरप पायो वली रे लो।
वन्दे वे कर जोड हो, मोटे मडान करी रे वदन आवीयो रे लो॥

५. वही, ११।६

६. वही, ११।८

७. जय (ऋ० रा सु०), ८।६-८

३. सं० १८८१

सं० १८८१ के पीपाड चातुर्मास[1] के वाद आचार्यश्री पाली पधारे।

मुनि हेमराजजी का इस वर्ष का चातुर्मास जयपुर मे था। मुनि जीतमलजी साथ थे। दोनो ने चातुर्मास के वाद विहार कर पौष वदि १३ के दिन पाली मे आचार्यश्री के दर्शन किए। पौष सुदी ३ के दिन आचार्य ऋषिराय ने मुनि जीतमलजी का सिंघाडा कर उन्हे मुनि वर्धमानजी, कर्मचन्दजी और जीवराजजी को साथ दे उसी दिन मेवाड़ भेजा

विचरत विचरत पोप मासे, विद तेरस सुविचार।
पाली शहर मे पूज्यना रे, कीया दर्शन गुणकार॥
विनय विवेक गुण वहु विलोकी, वली विद्या वुद्धि विचार।
अति धीर वीर गभीर देखी, राय शशी गणधार॥
कियो सिघाडो जय तणो रे, पोह सित तीज उदार।
आप सहित चिहु सत सखरा, सूप्या गणि श्रीकार॥[2]
सिघाडो करि जय तणो, तिणहिज दिन सुविचार।
परम कृपा करी पूज्य जी, तुरत करायो विहार॥
चिहु ठाणे चित चूप सूं, तीज तणो दिन तत।
खेरकारी वर खेरने, शहर रह्या जय सत॥[3]
हेम जीत जैपुर मझै रे, तिण हिज वर्ष चौमास।
पौस मास पाली मे भेला थया रे, ऋपराय हेम गुण रास॥
सत च्यार च्यार सू सोभता रे, सिघाडो सुखकार।
जीत तणो अति उमग सू रे, ऋपराय कियो सुविचार॥
जीत अने वृद्धमानजी रे, कर्मचन्द ने इकतार।
जीवराज साध गुणी रे, या ने मेल्या देश मेवाड॥[4]

४ स० १८८२

स० १८८२ के पाली चातुर्मास मे बहुत उपकार हुआ।[5]

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), ८।६
शहर पीपाड माह सही रे, इक्यासीये अवधार।
चौमासो धर चूप सू रे, कीयो घणो उपगार॥
२. मघवा (ज० सु०), ८।१०-१२
३. वही, ६।दो० १, २
४. जय (ऋ० रा० सु०), ८।१०-१२
५. वही, ८।सो० १ :
वयासीये वरस सार रे, प्रगट पाली शहर मे।
चौमासो सुखकार रे, त्यां उपगार कियो घणो॥

शेपकाल मे मुनि जीतमलजी ने आचार्यश्री के दर्शन कर वहुत दिन सेवा की।[1]

जेठ मास मे आचार्य ऋषिराय ने तीन साधुओ को एक साथ पट्मासी तप का त्याग कराया।[2]

इस वर्ष का मुनि सरूपचन्दजी का पाच ठाणों से उज्जैन मे चातुर्मास था। वहा उन्होंने ३ दीक्षाएं दी। कोदरजी को दीक्षा लेने का आज्ञा-पत्र प्राप्त हुआ। आठ ठाणा से श्रीजीद्वार पधारे, जहा मुनि जीतमलजी पधारे हुए थे। वहा से विहार कर दोनो भाइयो ने १२ ठाणो से आचार्यश्री के मारवाड़ प्रदेश मे दर्शन किए, और उनकी सेवा मे रहे।

वाद मे आचार्यश्री कटालिया पधारे। वहा वैशाखी पूनम के दिन कोदरजी ने दर्शन किए। उन्हे आचार्यश्री ने जेठ वदि २ के दिन दीक्षा दी।

आचार्यश्री ने यहा मुनि भीमराजजी का सिंघाडा किया। मुनि भीमजी, कोदरजी और भवानजी तीन ठाणा का माढा चातुर्मास फरमाया।

मुनि जीतमलजी का चार ठाणा से उदयपुर चातुर्मास कराया।

सरूपचन्द जय आदि दे काई, द्वादश मुनि गुणधार।
विचरत विचरत आविया काई, मरुधर देश मझार॥
तिहा परम पूज्य दर्शन किया काई, हुवो अधिक आनन्द।
पछे भिक्षु नगर कटालिये काई, समवसर्या नृपचन्द॥
जय सरूप आदि सेवा करे काई, तिहा दिक्षा री दिल धार।
वैशाखी पूनम दिन आवियो काई, कोदरजी सुविचार॥
जेठ वदि वीज कोदर भणी काई, दिक्षा दी ऋपिराय।
तिहा कर्यो सिघाडो भीम नु काई, तीन सता सू ताहि॥
भीम अने कोदर भलो काई, भवान मेसरी जात।
ए तीनू माढा मझे काई, कर्यो चोमास विख्यात॥
चिहु ठाणे ऋपि जीत नो, करायो उदयापुर चोमास।
सग वर्द्धमान तपसी भलो, वृद्ध जीव हिन्दु गुण रास॥[3]

मुनि हेमराजजी का स० १८८१ का चातुर्मास जयपुर मे था। चातुर्मास के वाद वहां से विहार कर आपने आचार्यश्री के दर्शन किए।[4]

---

१. मघवा (ज० सु०), १०।२७.
तिम पुन्यवान जय महामुनि काई, विचरत ही स्वमेव।
ऋपिराय तणा दर्शन करी काई, घणा दिवस करी सेव॥

२. सेठिया सप्त सुमन, सुमन १

३ मघवा (ज० सु०), १०।१-६। तथा देखे—सरूप नवरसो, ६।१३-१७

४. जय (हे० न०), ५।६४
इक्यासीये जयपुर जाणी रे, चौमासो उतरिया पिछाणी रे।
ऋपराय थकी मिलिया आणी॥

५ सं० १८८३

स० १८८३ का आचार्यश्री का उदयपुर चातुर्मास सानन्द सपन्न हुआ ।[1] श्रीजीद्वार का स० १८८३ का चातुर्मास सपन्न कर शेपकाल मे मुनि जीतमलजी ने आचार्यश्री के दर्शन किए ।[2]

जिन तीन सतो को षट्मासी तप कराया था, उनके तप की सम्पूर्ति पर आचार्यश्री स्वय पधारे और अपने हाथ से पारण कराया ।[3]

आचार्य श्री एव मुनि जीतमलजी आदि ने ५४ ठाणा से मालवा प्रदेश की ओर विहार किया । खाचरोद पधारे जहा एक सवेगी से चर्चा कर मुनि जीतमलजी ने उन्हे निरुत्तर किया ।[4] वहा से रतलाम पधारे । वहा अन्य सम्प्रदाय के साधु रविमलजी से चर्चा करने के लिए मुनि जीतमलजी को भेजा । 'कटकवोदिया' के विपय पर चर्चा हुई । मुनि जीतमलजी को साधु रविमलजी उत्तर नही दे पाए ।[5]

वाद मे आचार्य श्री उज्जैन पधारे । वहा आचार्यश्री की आज्ञा मे मुनि जीतमलजी ने बाईस सम्प्रदाय के मुनि शोभाचन्दजी से चर्चा की । उनका कहना था कि भगवान महावीर ने गोशालक को दीक्षा नही दी । मुनि जीतमलजी ने विषय का प्रतिपादन करते हुए कहा

> तिण कह्यो गोशाला भणी रे, प्रभु दीक्षा नही दीध ।
> जय कहे भगवती सूत्र मे रे, पाठ पनरम शतक प्रसिद्ध ।।
> श्रवानुभूति मुनिवर कह्यो रे, हे गोशाला तुझ ने जोय ।
> भगवत हिज प्रवर्ज्या दीवी रे, प्रभु हिज मुड्यो तोय ।।
> भगवत हिज शिष्यपणे कियो रे, भगवत सिखायो सार ।
> भगवत हिज जे तुझ प्रते रे, वहुश्रुति कीयो धार ।।
> इम हिज बीजी वार उचर्यो रे, सुनक्षत्र मुनि सुविचार ।
> अने तीजी वार प्रभु पोते कह्यो रे, हे गोशाला तुझ प्रति धार ।।
> म्है प्रवर्ज्या दीधी सही रे, जाव वहुश्रुत कीयो तोय ।
> इम ठाम ठाम पनरम शतक मे रे, दिक्षा दीधी कही अवलोय ।।[6]

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), ८।सो० २
तयासीये वर्ष धार रे, उदैपुर आनन्द सू ।
वारू जस विस्तार रे, चउमासो चित चाहि सु ।।

२ मघवा (ज० सु०), १०।२८
जय श्रीजीदुवारे तियासीए, कियो चिहु ठाणे चोमास ।
तिहा थी विहार करी ऋषिराय ना, किया दर्शन आन हुलास ।।

३ सेठिया सप्त सुमन, सुमन १

४. मघवा (ज० सु०), ११।दो० १,२

५. वही, ११।१, २,३

६ वही, ११।६-१०

जयाचार्य के उत्तर को सुनकर मुनि शोभाचन्दजी निरुत्तर हुए।

बाद मे आचार्य ऋषिराय नालोई, रतलाम, झाबुआ आदि स्थानो मे विचरण करते हुए वडनगर पधारे, वहां से पेटलावद पधारे।[1]

६ सं० १८८४

स० १८८४ के पेटलावद चातुर्मास मे मुनि जीतमलजी आदि ८ साधु साथ थे। वहां मुनि जीतमलजी ने आछ के आगार से १५ दिन की तपस्या की। मुनि कोदरजी ने आछ के आगार से षट्मासी तप किया।

इस तरह मालव प्रदेश मे बहुत उपकार कर पधारते समय मदसोर मे जीतमलजी का पुन सिंघाड़ा किया और आप मेवाड मे पधार गए।[2]

ऋषराय जीव सग जाय, पटलावद मे पिछाण।
चौरासिय वर्ष कियो चौमास, अधिको थयो धर्म नो उजास॥[3]
तिहा पनर दिवस तप जय कीयो रे, आछ आगार उदार।
वलि कोदर तप कियो आकारो रे, षटमासी आछ आगार॥
इम मालव देश माहि हुवा रे, अधिक सुधर्म उद्योत।
गाम नगर पुर विचरता रे, भवि प्रगट करे ग्यान ज्योत॥
हिवे मालव देश थकि आवता रे, मदसोर शहर ऋषिराय।
पाछो कीयो सिघाडो जय तणो रे, आया देश-मेवाड रे माहि॥[4]

मेवाड मे प्रवेश कर आप पुर पधार रहे थे, तब मुनि हेमराजजी बहुत बाइयो और भाइयो के वृन्द के साथ आचार्यश्री के सामने गए।

पुर मे पधारता पूज्यजी रे, तिहा दिष्या वडा मुनि हेम।
वहु बाया माया ना वृन्द स्यू रे, पूज्य स्हामा आया धर प्रेम॥[5]

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), ६।१, २
चोपन ठाणा सू पूज्य पधार्‌या, मालवा मे वहु जन तार्‌या।
जिन धर्म नो थयो उद्योत, घाली घण घट ग्यानी जोत॥
खाचरोद उजीण नोलाई, रतलाम झाबू आया ही।
धर्म चरचा तणी अधिकाई, दीया जीत रा डका वजाई॥

२ (क) जय (रा० सु०), ६।३-४
(ख) मघवा (ज० सु०), ११।१२-१५

३. जय (ऋ० रा० सु०), ६।३। तथा देखे—मघवा (ज० सु०), ११।१२

४. मघवा (ज० सु०), ११।१३-१५। तथा देखे—जय (ऋ० रा० सु०), ६।४

५. मघवा (ज० सु०), ११।१६

७. स० १८८५

सवत् १८८५ का श्रीजीद्वार का चातुर्मास[1] सफलतापूर्वक सपन्न कर आचार्यश्री ने वहा से सुखपूर्वक विहार किया।

जयपुर चातुर्मास के पश्चात् मुनि जीतमलजी ने वहा से विहार कर कृष्णगढ, अजमेर होते हुए आचार्यश्री के दर्शन किये तथा जयपुर और उसके वाद के उपकार का वृत्तान्त वताया। सुनकर आचार्य प्रवर वहुत हर्पित हुए।[2]

मुनि सरूपचन्दजी, भीमजी और जीतमलजी की माता कलूजी वडी तपस्विनी थी। उनके कुछ खासी की शिकायत रहने लगी। उन्होंने आग्रहपूर्वक निवेदन कर आचार्यश्री से सलेखना तप करने की आज्ञा प्राप्त की।[3]

आचार्यश्री मुनि जीतमलजी के साथ विहार करते-करते जोधपुर पधारे। वहा आपाढ महीने मे रत्न जी के टोले के मुनि कनीरामजी से महामन्दिर मे वहु-जन-समुदाय मे चर्चा हुई। चर्चा के विषय—चश्मा, दान, दया, भगवान् महावीर मे छद्मस्थ अवस्था मे छह लेश्या आदि रहे। मुनि कनीरामजी निरुत्तर हुए। मध्यस्थ सभुदासजी ने कनीरामजी को निरुत्तर घोपित कर दिया।

आचार्य श्री ने मुनि जीतमलजी का स० १८८६ का चातुर्मास जोधपुर का फरमाया। स्वय ने चातुर्मास के लिए पाली की ओर प्रस्थान किया।[4]

८. स० १८८६

स० १८८६ के पाली चातुर्मास मे ताराचन्दजी लाला आदि जयपुर के वहुत लोग दर्शन करने आए।[5] धर्म का वडा उद्योत हुआ।

साध्वी कलूजी को दर्शन

चातुर्मास के वाद मिगसर महीने मे खेरवे पधार कर आचार्यश्री ने साध्वी कलूजी को दर्शन दिया। मुनि सरूपचन्दजी, भीमराजजी एव जीतमलजी भी पधार गए। ४३ ठाणा हो

---

१. जय (ऋ०रा०सु०), ६।५ ·
पीच्यासीये चौमासो सुखकार,
स्वामी किधो है श्रीजीद्वार।

२. मघवा (ज०सु०), १२।१७

३. कलूजी गुण वर्णन, ६।१३

४. मघवा (ज०सु०), १२।८-१३

५ जय (ऋ०रा०सु०), ६।५,६ .
छयासीय पाली जश छायो, रूढा रायचन्द ऋषरायो।
जयनगर ना वहु नर नार, आया वदन काज विचार।
ताराचन्द लाला आदि ताय, जाणे मेल्यो मड्यो अधिकाय॥

गए।[1]

साध्वी कलूजी बडी तपस्विनी थी। १६ वर्ष मे विविध प्रकार की तपस्या कर रही थी। शरीर को कृश कर लिया। वाद मे आचार्य ऋषिराय से सलेखना की आज्ञा मागी। आचार्य श्री ने कहा—"शक्ति रहते हुए सलेखना करने की उतावल न करे।" साध्वी वोली—"तप करने की मन मे उमग है। परिणाम तीव्र है। अत सलेखना की आज्ञा प्रदान करे।" इस तरह अत्यन्त आग्रहपूर्ण विनती पर आचार्यश्री ने सलेखना करने की आज्ञा प्रदान की।[2] यह स० १८८५ के शेषकाल की घटना है।

आपने सलेखना करते हुए उत्कट तप किया। शरीर सुखा लिया। अव आचार्य ऋषिराय पधारे, तव दर्शन कर अति हर्षित हुई। आचार्यश्री प्रतिदिन वडी कृपा के साथ दर्शन देने पधारते, और नाना प्रकार की अमृतमय शिक्षा देते।

आचार्य ऋषिराय २५ दिन तक विराजे। फिर साधु भीमराजजी को वही रख विहार किया।

---

१. मघवा (ज०सु०), १३।दो०२,३

शहर खेरवे कलू भणी, दर्शन दिया ऋषिराय।
त्रिहु सुत पिण तिहा आविया, तयालीस ठाणा थया ताहि।
तिण अवसर कालू सती, करे सलेपण सार।

२ (क) वही, १३।दो०५-७.

इम सोले वर्ष माहे सती, तप करी तनु कृष कीध।
हिये सलेषणा नी पूज्य पे, आग्या लिए प्रसिद्ध ॥
पूज्य कहे छती शक्ति मे, ऊतावल करो केम।
सती कहे म्हारो मन उठीयो, म्हारे तप करवा अति प्रेम ॥
अति हठ करि गणपति कने, आज्ञा ले तिहवार।

(ख) साध्वी कलूजी गुण वर्णन, २।६-१३

पाचू इदी सुध परवडी जी, आख्या री ज्योति उदार।
कारण कायक खासनो जी, विध सू कीयो ताम विचार ॥
सीरे मुज करणी सलेखना जी, स्वाम आज्ञा लेइ सार।
पहिला तोलू परिणाम नै जी, वात काढू मुख वार ॥
इम चितवै करै उणोदरी जी, परख्या निज स्थिर परिणाम।
तन वस जाण हर्पी तदा जी, आयो वैराग अमाम ॥
पद प्रणमी कहै पूज्य ने जी, मुरजी होवै महाराज।
तपस्या करी मन ताय नै जी, करणो आतम नो काज ॥
स्वाम कहै छती शक्ति मे जी, इतनी उतावल काय।
विहार करै सुखै विचरीयै जी, जनपद देश रे माय ॥
सती कहै शूरापणै जी, तप नी हूस मुज मन माय।
तीखा परिणाम तिण कारणै जी, महर कीजै मुनिराय ॥
प्रवर आज्ञा लीधी पूज्य नी जी, विनय करी वारवार।

थली यात्रा

मुनि सरूपचन्दजी और जीतमलजी को साथ ले आचार्यश्री ने थली की ओर प्रस्थान किया।[1] बहुत साधु साथ थे। साध्वियां भी बहुत थी। वहा पधार कर बहुत उपकार किया।[2]

मुनि सरूपचन्दजी का स० १८८७ का चातुर्मास रिणी कराया। मुनि जीतमलजी का चातुर्मास चूरू का फरमाया। रतनगढ तथा अन्य गाव के लिए श्रमणियो के चातुर्मास निर्धारित किये।[3]

९. स० १८८७

आचार्य श्री ने सं० १८८७ का चातुर्मास बीदासर किया।[4] उसके पीछे की घटना इस प्रकार है.

बीदासर के भाइयो ने आचार्यश्री से थली पधारने का निवेदन किया था। आचार्य श्री ने दो साधुओ को भेजा। वापिस आकर उन्होंने निवेदन किया—सचाई सादगी, और सगठन की विशेपता है। छाछ-रोटी की कमी नही। धर्म-भावना अच्छी है। उपकार की संभावना है।[5] इसी भूमिका मे आचार्यश्री ने थली पधार कर बीदासर मे चातुर्मास किया, तथा साधु और साध्वियो के कई जगह चातुर्मास कराए।[6]

---

१ मघवा (ज०सु०), १३।१-४ :

इम तप करीने सती ताय, खखरभूत करी निज काय।
हिवे छियासिये मृगसर माय, दर्शन दिया गणि ऋषिराय ॥
जय सरूप भीम पिण आया, गणि दर्शन करि हुलसाया।
मात कलू जी तिह वार, दर्शण करि लह्यो हर्ष अपार ॥
गणि नित्य दर्शन दे धर चूप, सीख दिए अमृत रस कूप।
वलि जय आदि अमृत वर्षावे, सती सुण अति हुलसावे ॥
दिवस पचीस रही गणिराय, विहार कियो थली दिशि ताय।
जय सरूप गणाधिप साथ, राख्या भीम ने तिहां विख्यात ॥

२ जय (ऋ०रा०सु०), ९-७

पछे थली देश मे पधार्या, बहु जीवारा ससय निवार्या।
सरूप जीत आदि साथ जाणी, बहु साधविया पहिछाणी ॥

३. वही, ९।८-९

शहर बिदासर माहे चोमासो, वर्ष सित्यासीये सुविमासो।
जीत ने चुरू शहर भोलायो, सरूपचन्द ने रीणी पठायो ॥
रतनगढ ई शहर ऋपरायो, और गामा श्रमणी ने करायो।
सर्व गामा मे उपगार घणा, समझ्या तिहा नर नार ॥

४. वही, ९।८

५. (क) सप्त सुमन, सुमन १
(ख) ऐतिहासिक सुमन सन्दोह, भाग ५, पृ० १०६

६. जय (ऋ०रा०सु०), ९।७ पा० टि० ४ मे उद्धृत।

रीणी, चूरू, रतनगढ़ आदि सभी गावो मे बहुत उपकार हुआ

वर्ष सीत्यासीये सुखकार, हुवो धर्म उद्योत अपार।
थया थली देश मे थाट, चार तीर्थ तणा गहघाट ॥[1]

१० स० १८८८

श्रीजीद्वार के स० १८८८ के चातुर्मास के बाद शेषकाल मे आचार्यश्री मेवाड मे ही विचरण कर रहे थे।[2]

हरियाणा प्रदेश के मुमनचन्दजी और गुलहजारीजी ने मुनि जीतमलजी को दिल्ली पधारने की विनती की। उनकी विनती पर ध्यान देकर मुनि जीतमलजी ने आचार्यश्री की आज्ञा प्राप्त करने के लिए तपस्वी मुनि कोदरजी को मेवाड भेजा। यह मिगसर वदि की वात है। आचार्यश्री ने आज्ञा प्रदान की। मुनि कोदरजी दिल्ली की ओर विहार की आज्ञा ले मुनि जीतमलजी के पास बिसाऊ पहुचे।[3]

११. स० १८८९

स० १८८९ का चातुर्मास उदयपुर मे सम्पन्न कर विहार करते हुए आचार्यश्री राव-लिया पधारे।

मुनि जीतमलजी का चातुर्मास दिल्ली मे था। चातुर्मास के वाद दिल्ली से विहार कर मुनि जीतमलजी जयपुर होते हुए मेवाड मे गोगुदा पधारे। पौष महीने मे रावलिया मे आचार्य-श्री के दर्शन किए। आचार्यश्री को दिल्ली के उपकार की सारी वात वताई। वृत्तान्त सुन आचार्यश्री अत्यन्त आनन्दित हुए।

गुजरात यात्रा

आचार्यश्री ने चिन्तन कर फरमाया—अव गुजरात जाना है।[4]

---

१. ऋ० जय (रा०सु०), ९।१०

२ वही, ९।११
अठ्यासीये वर्ष अवधार, चौमासो कीयो श्रीजीदुवार।

३. मघवा (ज०सु०), १५।५-७,९

४. वही, १९।दो०१-४
मुनि छ सगे विहार करि, मृगसर विद पक्ष माहि।
तेरस दिन जयपुर मझे, आया जय मुनिराय॥
रात्रि अठारे त्या रही, देश मेवाडे आय।
शहर गोगुन्दे स्वाम ना, वलि रावलियां माह॥
दर्शन करि हर्षित हुवा, दिल्ली नो अवदात।
जिम उपगार कियो जिका, कही यथार्थ वात॥
सुण आनन्द लही कह्यो, ऋषिराय वचन अभिराम।
हिके जाणो गुजरात मे, जद अर्ज करी जय स्वाम॥

दो वर्ष से मुनि हेमराजजी के दर्शन नही हुए थे, अतः मुनि जीतमलजी ने विनती की कि आपकी आज्ञा हो तो मारवाड जाकर हेमराजजी के दर्शन कर शीघ्रता से लौट आपके साथ हो जाऊ। आचार्य ऋषिराय ने आज्ञा दी। सिरियारी मे मुनि हेमराजजी की १० दिन तक सेवा कर वापिस लौट कर मुनि जीतमलजी गोगुदे पहुचे।

वही से ऋषिराय ने मुनि सरूपचन्दजी को पुस्तके सम्हला कर १० सन्तो के साथ गुजरात की ओर विहार किया था। वहां से दो भाई मुनि जीतमलजी की सेवा मे साथ हो गए। छह मुनियो के साथ वहा से विहार कर आप झाड़ोल आए। वहां मुनि राममुखजी ने साथे लेने की विनती की। इस तरह सात सन्तो के साथ आपने गुजरात की ओर प्रस्थान किया और अहमदावाद पहुचे। उसी दिन आचार्यश्री ने अहमदावाद से सानन्द के लिए प्रस्थान किया था। अहमदावाद एक रात्रि विराज कर मुनि जीतमलजी ने दूसरे दिन सानन्द में आचार्यश्री के दर्शन किए। वहा पुरुषोत्तम जी पारख द्वारा समझाई हुई झवू वाई थी। वहा आचार्य ऋषिराय चार रात्रि पर्यन्त विराजे।

सौराष्ट्र मे

वहा से नीवडी पधारे। वहा भी पुरुषोत्तमजी के समझाए हुए तेरह श्रावक थे। वहा दस रात्रि पर्यन्त विराज उपकार कर आचार्यश्री वढवाण पधारे। वहां दरियापुरी शकर ऋषि ने ठहरने के लिए आग्रहपूर्ण अनुरोध किया। आचार्यश्री वोले—"मुझे कच्छ जाना है। रण मे जल भर जाने पर पार होना सम्भव नही होगा।" इस तरह एक रात्रि विराज कर ध्रांग्ध्रा पधारे। वहा से रण पार कर कच्छ पहुचे।

कच्छ में

वहां वागड मे वेला पधारे। वहा लोगो मे टीकम डोसी का श्रद्धान था। वहां दस रात्रि विराज कर अनेक लोगो को समझाया। फिर अजार होते हुए मदरा पधारे। वहां जेठा भाई टीकमजी की श्रद्धा मे थे। उन्होने वडी ही भक्ति की। वहां दिन-रात्रि ठहर कर माडवी वन्दर पधारे। वहा पुरुषोत्तमजी के समझाए हुए अनेक श्रावक थे। वहा अनेक प्रकार की चर्चा-वार्ता हुई। अन्य सम्प्रदायो के अनेक लोग भी आते और व्याख्यानादि सुनते। चातुर्मास की वड़े आग्रह से विनती की गई, पर आचार्यश्री का ध्यान मारवाड़ प्रदेश मे चातुर्मास करने का होने से विनती स्वीकार न की जा सकी। वहा छह रात्रिपर्यन्त विराजे। मांडवी वन्दर समुद्र के समीप सुहावना नगर है।

मरुधरा की ओर

वहा से विहार कर आचार्यश्री ने मरुधरा की दिशा पकडी और विहार करते-करते आडेसर पहुचे।

वेला के भाइयो को मालूम पडा, तव आकर चातुर्मास की अर्ज की। तव कर्मचन्दजी, मोतीजी एव कृष्णचन्दजी को वेले मे चातुर्मास के लिए वही छोड़ दिया, और ईश्वरजी आदि तीन सन्तो को गुजरात मे वीरमगाव चातुर्मास के लिए छोड़ दिया।

आचार्यश्री पाली पधार गए। मुनि जीतमलजी का १८९० का चातुर्मास वालोतरा का फरमाया।[1]

---

१. मघवा (ज०सु०), १९।६-१३

१२ सं० १८९०

सं० १८९० का चातुर्मास पाली मे कर आचार्यश्री काठा की कोर पधारे।

मुनि जीतमलजी का चातुर्मास वालोतरा मे था।[1] चातुर्मास समाप्ति के वाद फलौदी होते हुए काठा की कोर पधारे और वहा आचार्यश्री के दर्शन कर परमानन्द की अनुभूति की।

आचार्य ऋषिराय को सूत्रो के सकलन मे वडी अभिरुचि थी। ऋषिराय काठा की कोर मे विराजमान थे। उन्हे पता चला कि जयपुर मे श्री मालीरामजी लूनिया के पास चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र की प्रति है। उन्होने सन्तो से फरमाया "कोई सत वहा जाकर चन्द्र प्रज्ञप्ति ले आये तो उसकी प्रतिलिपि तैयार करवा ले।" तपस्वी सत कोदरजी तैयार हुए। वोले—"मुनि जीतमलजी के साथ छठे साधु के रूप मे भेजे तो मैं ले आऊ। आचार्य ऋषिराय ने उन्हे तुरत इस कार्य के लिए जयपुर भेजा

श्री ऋषिराय माहराज कह्यो तव, लुणीया मालीराम कने ताह्यो रे।
चदपन्नती हे जयपुर मे, कोइ ल्यावो तो लेवा लिखायो रे॥
जय कोदर कह्यू छठो जय पास, मेलो मुझ तो हु ल्यावू तिहा जायो रे।
गणपति तुरत दीधी तव आज्ञा, तपस्वी कोदर जैपुर कानी रे॥
विहार कियो चित्त हर्ष लह्यो अति, मन चिंतित काम थयु जानी रे।[2]

इसके वाद आचार्यश्री पाली पधारे। मुनि जीतमलजी साथ थे, वहा से आचार्यश्री ने मेवाड़ की ओर प्रस्थान किया। मुनि जीतमलजी का चातुर्मास फलौदी निर्धारित किया।[3]

१३ स० १८९१

स० १८९१ के आचार्यश्री के गोघुदा चातुर्मास मे वहुत उपकार हुआ।[4]

स० १८९१ के फलौदी चातुर्मास की समाप्ति के वाद मुनि जीतमलजी लाडनू पधारे। उस समय लाडनू मे कई भाइयो के चन्द्रभाणजी की श्रद्धा थी। मुनि जीतमलजी ने लालचन्दजी पाटणी आदि को समझाया। वे समझ गये और वोले—आप हमे अगले चातुर्मास की वदना करावे, तो हम चन्द्रभाणजी की श्रद्धा को छोड दे। मुनि जीतमलजी ने यह कहते हुए कि आचार्यश्री की आज्ञा की वात अलग है, उन्हे चातुर्मास की वदना कराई। तव उन्होने पुरानी श्रद्धा छोड दी।[5]

---

१ जय (ऋ०रा०सु०), ९।१५

वाव होय पाली चौमास, वर्ष नेउआणो सुविमास।
जीत ने वालोतरे भोलायो, इसडा उदमी पूज्य ऋपरायो॥

२. मघवा (ज० सु०), २०।५-७

३. वही, २०।८

४. जय (रा०सु०), १०।दो १

५. मघवा (ज०सु०), २१।२-४

लालचन्द जी पाटणी आदि, जिके श्रद्धता था त्याने साध।
ते भाया ने जय गुणधाम, समझाया विविध पर ताम॥

लाडनूं से प्रस्थान कर विहार करते हुए मुनि जीतमलजी बोरावड़ पहुचे। लाडनूं चातुर्मास करने के लिए आचार्यश्री की आज्ञा मगवाई। आचार्यश्री ने निवेदन स्वीकार कर आपका चातुर्मास लाडनू का घोपित किया। आपने लाडनू पधार कर स० १८९२ का चातुर्मास वही किया।[1]

१४ सं० १८९२

स० १८९२ के जयपुर चातुर्मास के वाद आचार्यश्री हरिदुर्ग पधारे।[2] वहा मुनि जीतमलजी ने आचार्यश्री के दर्शन किए और वोरावड पधार गए। वोरावड़ से वापिस आ आचार्यश्री के साथ १९ रात्रिपर्यन्त रहे। फिर जयपुर पधारे। वहां से विहार करते हुए दो सन्तो के साथ पुन खेरवा मे आचार्य श्री के दर्शन किए।[3]

मुनि अमीचन्दजी नाथद्वारा चातुर्मास कर खेरवा आए। मुनि गुलावजी को ४१ वोलो की शका हो गई। मुनि जीतमलजी ने उन सवका निराकरण किया। उनकी शका दूर कर प्रायश्चित दे उनसे लिखित करवाया, जिसमे यावज्जीवन साधु-साध्वियो के अवर्णवाद करने का त्याग किया।[4]

आचार्यश्री खेरवा से विहार कर मुनि जीतमलजी के साथ सिरियारी आए। आचार्य श्री ने मुनि जीतमलजी का चातुर्मास वीकानेर का निश्चित किया।

१५. स० १८९३

स० १८९३ का चातुर्मास पाली मे सपन्न कर विहार करते हुए आचार्यश्री मेवाड प्रदेश मे पधारे।[5]

आचार्यश्री आपाढ़ महीने मे मुनि सरूपचन्दजी को मारवाड भेजने लगे तव वे वोले : "आप भेजते है पर वापिस बुलाया तो ?" तव आचार्य ऋषिराय ने कहा · "बुलाऊं तो भी नही आना। मेरी आज्ञा है।" इस तरह वात कर विहार कराया। वे आमेट होकर कुआथल पहुचे। पीछे से मुनि अमीचन्दजी ने अपने साधुओ को विहार करा दिया। आचार्य ऋषिराय और मुनि अमीचन्दजी दो रहे। मुनि अमीचन्दजी वोले . "मै गोगुन्दे चातुर्मास करूगा। आप राजनगर मुनि माणकचन्दजी के पास चले जाए।" ऐसा कह वनास तक तो साथ आए। फिर वोले . "मेरे नदी क्यो लगाते है ? मैं वापिस जाता हू। आप पधार जायें।" यह सुनकर आचार्य ऋपिराय उनके

तव त्यां अर्ज करी तिहवारो, अव के चोमासा री अवधारो।
आप म्हांने वंदणा देवो कराय, तो म्हे चन्द्रभाण ने द्या वोसराय ॥
जव गणि अग्यारी वात न्यारी रखाय, चोमासा री वदणा कराई ताय।
तव ते भाया नम्यां जय पाय, आगला गुरु ने दियो वोसिराय ॥

१. मघवा (ज०सु०), २१।१०-११
२. जय (रा०सु०), १०।दो०२
३. मघवा (ज०सु०), २२।११-१६
४ वही, २२।दो०१-५
५. जय (ऋ० रा० सु०), १०। दो० २

दुष्ट परिणामो को जान कर वापिस फिरे। गृहस्थो ने कासीद भेजा, तब मुनि सरूपचन्दजी आए। जब एक मजिल की दूरी रही, तब अमीचन्दजी आचार्य ऋषिराय को अकेले छोड़ चले गये। इस तरह आसातना की। आचार्य ऋषिराय बोले "ऐसी आसातना की है। छह महीने मे पाप उदय मे आ जाते दिखते है। इस बार जीतमल आने से निकलवा दूगा।"[1]

मुनि सरूपचन्दजी को इस घटना का पता चला तब आचार्यश्री की सेवा मे पधार गये।

मुनि जीतमलजी थली मे थे। वहा से पाली चातुर्मास करने के लिए पधार रहे थे।

आषाढ महीने मे आचार्य श्रीजीद्वार पधारे और वहा मुनि जीतमलजी की अनुपस्थिति मे उन्हे युवराज-पद प्रदान किया।[2]

स० १८७९ से १८९३ तक के प्रत्येक चातुर्मास के बाद शेषकाल मे मुनि सरूपचन्दजी आचार्य ऋषिराय के दर्शन कर उनकी विविध रूप से वैयावृत्य करते रहे।

स० १८९३ के शेषकाल मे आषाढ महीने मे आचार्य ऋषिराय ने सरूपचन्दजी से कहा "मैने मुनि जीतमल को युवराज-पद अर्पित किया है। यह निर्णय स्वमति से किया है। इसमे किसी का हाथ नही है।" इस तरह कह लिखित सहर्ष मुनि सरूपचन्दजी को सौप दिया। उन्हे युवराज-पद दिया।

इतरा वर्षा ने विपै, सेखे काल उदार।
सेव पुज्य ऋपीराय नी, किधी विविध पुकार॥
परम व्यावच पुज्य नी, अहनिश मे अधिकाय।
रिझाया विध विध करी, स्वाम भणी सुखदाय॥
थली देश मे विचरतो, जीत ऋषि तिणवार।
पाली चोमासो करण, आवै हर्ष अपार॥
आण अखडत पूज्य नी, जीत अराधे जाण।
चित अनुकेडै चालता, अधिक हर्ष मन आण॥
श्रीजीद्वारै सरूप नै, असाढ मास मझार।
अति ही प्रसन चित्त थई, भाषै वचन विचार॥
श्री मुख हुक्म फुरमावियो, साभल शीष्य सरूप।
जीतमल्ल भणी स्थापीयो, पद युवराज अनूप॥
ए काम कीयो स्वमत थकी, इणमे अन्य तणो जश नाय।
इम वहु विध लिख सूपियो, सरूप भणी ऋपिराय॥
जीत प्रपूठेई स्वामजी, स्थाप्यो पद युवराज।
सुगुरु रिझाया उभय भव, सिझै वछित काज॥[3]

---

१. प्रकीर्ण-पत्र (घटनात्मक), क्रम २
प्रकीर्णक-पत्र मे लिखा है
अमीचन्दजी को शीतला निकल आई। कार्तिक मे विराधक अवस्था मे काल कर गये।
२ जय (ऋ० रा० सु०), २२।७-११
३ जय (स० न०),७। दो० ७-११, गा० १-३। जय (ऋ०रा०सु०), १०।१-२ मे वर्णन है :—
परम दृष्टि करी जीत ने परख्यो, अधिक ए मुझ आज्ञाकारी।
पद युवराज समापू इण ने २, पूज्य इसी मन धारी॥

युवाचार्य पद प्रदान करते समय जो पत्र लिखा, उसके विषय मे निम्न वृत्तान्त मिलता है

ॐ नमो सिद्ध सुख करण, गुरु भिक्खू भारीमाल ताकोस रण।
ऋपि भिक्खु पाट भारीमाल, ऋषिराय पाट गुण माल ॥
ऋपि जीतमल गुण वन्न, युवराज पदवी स्थापन।
विनयवत जावजीव जाण, चालसी ऋषिराय आज्ञा प्रमाण ॥
वहु हरप स्वमत थी ए काम कीधो, वीजा नो जश इण मे नही लीधो
एहवा अक्षर ऋपिराय गणनाथ, एक लघु पत्र लिखी निज हाथ ॥
सूप्या सरूप शशी ने स्वामी, कह्यू चोमास उतर्यां हित कामी।
ऋपि जीत मिल्या गुण गेहो, जद वात प्रगट कराला एहो ॥[1]

मुनि सरूपचन्दजी से कहा—"चातुर्मास के वाद जव मुनि जीतमल दर्शन करेगा, तव यह वात प्रकट करनी है।"

इस तरह इस वात को पूर्णत गुप्त रखा गया।[2]

जयाचार्य ने इस घटना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है

स्व हस्त दिक्षा गुणतरे दिधी, सिंघाडो इक्यासी सभारी।
पद युवराज त्रैणमै प्रगट, आप थाप्यो सुविचारी ॥
जन्म प्रारभीक कन्या ने पाली, मात पिता तिण वारी।
युक्तभर्तार सू जोग मिलावे, तिम शिष्य ने आचार्य धारी ॥
दशवेकालीक नवमे आख्यो, ए दृष्टान्त सुविनीत शिष्य ने सुधारी।
सूत्र भणाय अनुक्रमे स्थापे, पद आचार्य अधिकारी ॥
एहीज रीत धारी ऋपराजी, स्वमुख दिक्षा उचारी।
कुरव वधाय सिंघाडो करी ने, पद युवराज प्रकारी ॥
आप मेवाड जीत अन्य देश मे, पर पूठे स्वाम ए धारी।
वर्प त्रेणवा नी आखी वारता, पूज्य परम उपगारी ॥[3]

१६. स० १८९४

स० १८९४ के श्रीजीद्वार चातुर्मास की समाप्ति के वाद आचार्यश्री मुनि सरूपचन्दजी के साथ उदयपुर पधार गये।

स्वाम सरूप थकी कर मिसलत, वर दिल उडी विचारी।
स्व हस्त अक्षर लिख जय थाप्यो, पद युवराज प्रकारी ॥

१ मघवा (ज०सु०), २२।१२-१६

२. वही, २३।दो०१

पिण ऋपि जीत भणी जदा, दीधो पद युवराज।
खवर नही इण वात नी, कियो प्रच्छन्न गणि ए काज ॥

३. जय (ऋ०रा०सु०) १०।३-७

इस वर्ष मुनि जीतमलजी का चातुर्मास पाली में था। चातुर्मास समाप्ति के बाद आप फलौदी होते हुए खीचण पधारे। वही आचार्यश्री द्वारा प्रेषित दो साधु आपके नाम के पत्र लेकर पहुचे। एक पत्र दीर्घ था और दूसरा लघु। इस घटना एव दीर्घ और लघु पत्रो के वृत्तो का विवरण इस प्रकार मिलता है :

इह समय मुनि युग आवे, समाचार श्रेष्ट अति लावे।
देश मेवाड मे शोभावे, ऋषिराय तणे प्रस्तावे॥
पद युवराज तणो सुप्रभावे, कागद मुनि सग मे लावे।
वलि गणपति इम फुरमावे, ए कागद इण प्रस्तावे॥
तुझ वाचण आण नही थावे, जय ने सूपीज्यो शुभ भावे।
इम कही वे मुनि ने पठावे, खास रुको खीचन मे ल्यावे॥
सूप्यो जय ने शुभ भावे, वलि मुख सू समाचार कहावे।
गोचरी मे आहार जे आवे, तसु पाती वगसीस करावे॥
करो पाती विना आहार जे भावे, तसु ए अभिप्राय जणावे।[1]

अने छोटो कागद जय वाचने जी काई, जाण्यो युवराज पद मुझ दीध।
वले वडो कागद गणि हाथो रो जी, मेल्यो श्रमण साथ सुप्रसिद्ध जी काई॥

तिण समाचार लिख्या इह विधे जी काई, शिष्य जीतमल्ल सू जान।
म्हारी सुखसाता वंचावज्यो जी काई, था उपर मुज सुविधान जी काई॥
दिन २ हेत विशेष घणु घणूँ जी काई, छै जाणसी मन सुप्रसन्न।
पिण ताकिद सू वेगो आवेजे जी, कीजे शरीर का अधिक सुयत्न जी काई॥
था आया काम काज होसी भलाजी काई, आसी रसायण अधिक विशेष।
कसर नही छै किण ही वात री जी काई, थारी म्हारी सला छै एक जी काई॥
वाकी समाचार लघु कागद विषे जी काई, तिके जाण लिजे मन माही।
पिण अति ही वेगो आवज्यो जी काई, ढील म कीजो काय जी कांई॥
सरूप उपर म्हारी मरजी घणी जी काई, सती दीपाजी नो जान।
था सू मन राजी छै घणो जी काई, या री वदणा लीज्यो मान जी काई॥
उदेपुर उपगार कियो मोकलो जी, म्हारे सहु जिन मग नो भार।
था उपर छे एहवो जी, लिखी कागद अति श्रीकार जी काई॥[2]

पत्र प्रेषित करते समय आचार्य ऋषिराय ने साधुओ को कहा—पत्र मुनि जीतमल को सौपना। सन्तो ने खीचण मे पत्र मुनिश्री को सौंपा और मौखिक रूप से कहा—आचार्यश्री ने पांती ही वगसीस कराई है। विना पाती आहार करने का अनुग्रह फरमाया है।

मुनि जीतमलजी ने छोटे पत्र को पढकर जाना कि उन्हे युवराज पदवी प्रदान की है। वडे पत्र मे लिखा था कि लघु पत्र को पढ लेना, पर उसके समाचार मन मे ही रखना। मुनिश्री ने उस पत्र के वृत्त की वात किसी से नही की।

---

१. मघवा (ज०सु०), २३।गाथा १० के वाद के दोहे १-६

२. वही, २३।२०-२६

दीर्घ पत्र मे लिखा था कि अति शीघ्र आना। युवाचार्यश्री ने खीचण से तुरन्त विहार कर दिया और लोहावट पधारे। तीन मुनियो को वही छोड दिया कि और कहा—आप धीरे-धीरे पधारें। स्वय ने दो मुनियो के साथ विहार किया और ऐसा अभिग्रह लिया कि एक रात से अधिक किसी गाव मे नही रहना। दूसरे दिन रहना पडे तो चारो आहारो का त्याग।

इस प्रकार बहुत शीघ्रता से विहार करते हुए आप श्रीजीद्वार पहुचे। एक रात वहा रहकर विहार कर शहर के बाहर पधारे। तभी आचार्य ऋषिराय उदयपुर से विहार कर श्रीजीद्वार के समीप पहुचे। आपने दर्शन कर परमानन्द प्राप्त किया। आचार्यश्री आपको साथ ले श्रीजीद्वार पधारे और आपको युवराज-पद देने की बात प्रसिद्ध की।

इस अवसर पर पुर मे मुनि गुलाबजी आदि तीन साधु विपरीत हो गये थे। आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री श्रीजीद्वार से पुर पहुचे और उन्हे गण से दूर कर दिया। वे अन्य साधुओं का बहुत अवर्णवाद बोलने लगे। कुछ लोग उनका पक्ष लेने लगे। तीसरे दिन युवाचार्य श्री ने उनको समझा कर अनुकूल कर लिया। तीनो ने आकर आचार्यश्री के चरणो मे झुक कर वदना की और जनता की उपस्थिति मे प्रायश्चित मागा। आचार्यश्री ने उन्हे योग्य दण्ड दे शुद्ध किया। लोग आश्चर्यचकित थे।[1]

युवाचार्यश्री द्वारा विविध प्रकार से समझाने पर गुलाबजी समझे, इसके बाद का उपसहारात्मक वर्णन निम्न शब्दो मे उल्लिखित मिलता है

> थारी प्रतीत है मुझ मन मे, आराधक मुज कर देवो रे।
> जद कहै प्रायश्चित किण ऊपर थापे, जब जय उपर थाप्यो ततखेवो रे॥
> थे देवो सो कबूल है म्हारे, जद कहै पूज कने आई रे।
> वदना करने प्रायश्चित मागो, जद तीनू जय सग आई रे॥
> तब तिक्खुत्ता रो पाठ गुणी ने, बहु लोगा रा वृन्द मांयो रे।
> वदना करी नें प्रायश्चित माग्यो, जब जन बहु आश्चर्य पायो रे॥[2]

१७. स० १८९५

स० १८९५ का चातुर्मास उदयपुर मे संपन्न कर आचार्यश्री सिरियारी पधारे।

साध्वी चदणाजी ने लगभग १७ वर्ष की अवस्था मे संयमी जीवन ग्रहण किया था। आचार्य भारमलजी ने उन्हे अनेक सूक्ष्म चर्चाएं सिखाई थी। उनको हजारों पद कंठस्थ थे। वे बडी तपस्विनी साध्वी थी। तीस वर्ष तक अपने उपदेशो द्वारा बहुत उपकार किया। इकतीसवें वर्ष मे अर्थात् स० १८९५ मे सिरियारी पधारी। वहा आचार्य ऋषिराय के दर्शन किए। ५५ ठाणा एकत्रित हुए। ऋषिराय ने लगभग एक मास सेवा कराकर साध्वी चंदणाजी को सतुष्ट कर वहां से विहार किया।[3]

---

१. जय (रा०सु०), १०।८-१४

२. मघवा (ज०सु०), २५।१९-२१

३. जय (शा० वि०), ४।६ वार्तिक, पृ० ५०-५१

उपवास वेलादिक वहू कीया रे, पाच आठ अधिकार।
वहु क्रोध मान माया सती परीहर्या रे, गण मे वहु सुखकार॥
तीस वर्ष उपकार कियो घणो, इकतीशमा वर्ष मांय।
विचरत विचरत सिरीयारी आविया, पूज्य रा दर्शण री चाय॥
पूज्य परम गुरुनां दर्शण करी रे, पाम्यो वहू सतोप।
ठाणा पचावन आसरै आविया रे, पूज्य वचन मुख पोप॥
पूज्य महाराज सती ने दर्शण दीया रे, एक मास आसरै जाण।
विहार कीयौ सती नै सतोष नै रे, पूज्य वच अमिय समाण॥
सती चदणाजी चउमासो त्यां कीयो रे, कायक कारण जाण।
मिगशर मास पूज्य पधारीया रे, दर्शन दीधा आण॥[1]

१८ सं० १८९६

स० १८९६ के पाली चातुर्मास मे साधु गुमानजी के गण के भवानजी ने पिता सहित आचार्यश्री से दीक्षा ग्रहण की।

साध्वी नाथाजी का चातुर्मास आचार्यश्री के साथ पाली मे ही था। एक श्रमणी प्रव्रजित हुई।[2]

चातुर्मास समाप्त होने पर आचार्यश्री चदणाजी को दर्शन देने सिरियारी पधारे। वे अस्वस्थ थी। आचार्यश्री ने उन्हे ७ दिन दर्शन का लाभ दे सेवा कराई।[3]

सिरियारी मे स्थान का असुभीता देखकर उन्हे कटालिया पहुचा दिया।

मिगसर मास मे पूज पधारिया, चनणाजी हुई हर्ष अथाय।
जागादिक कारण जाणनै, दीधी कटालिये पोचाय॥[4]

युवाचार्यश्री का इस वर्ष का चातुर्मास चूरू मे था। चातुर्मास समाप्ति के वाद आचार्यश्री ने युवाचार्यश्री के पास दो साधुओं को भेजा जिन्होने लाडनू मे युवाचार्य के दर्शन किए।[5]

युवाचार्यश्री ने लाडनू से विहार कर मारवाड पहुच पाली मे आचार्यश्री के दर्शन किए।

आचार्यश्री पाली से पीपाड पधारे, वहा तक युवाचार्यश्री आपकी सेवा मे रहे। इसके वाद आचार्यश्री ने उन्हे मेवाड जाने की आज्ञा दी।[6]

१९ स० १८९७

आचार्यश्री का स० १८९७ के जयपुर का चातुर्मास आठ मुनियो से था, वहा धर्म का वडा उद्योत हुआ।[7]

---

१. चन्दना सती गुण वर्णन ढाल, गा० १०-१४
२. जय (रा० सु०), ११।दो० १-३
३. जय (शा० वि०), ४।६, वार्तिक, पृ० ५१
४. चदना सती गुण वर्णन ढाल, गा० १२
५. मघवा (ज० सु०), २६।९, १०
६. वही, २६।१०-१२
७. जय (ऋ० रा० सु०), ११।१

चातुर्मास समाप्ति पर युवाचार्यश्री ने उदयपुर से विहार कर रास्ते के गावो मे सिर-दाराजी एव लालजी को दीक्षा दे नागौर पहुच आचार्य श्री के दर्शन किए।

दूसरे दिन साध्वियो ने साध्वी सिरदाराजी के साथ आचार्यश्री के दर्शन किए।

आचार्यश्री ने वहा रूपकुवरजी को दीक्षा दी।

वाद मे वहा से विहार कर डीडवाना पधारे और सिरदार सती का सिंघाड़ा कर दिया।

साध्वी सुखाजी के पास से साध्वी ऋद्धूजी, दीपाजी से ऋद्धूजी को लेकर साध्वी सिरदाराजी को सौप दिया और कहा "कल्प न आवे तव तक साध्वी ऋद्धूजी सिघाडपति रहेगी। कल्प आने के वाद साध्वी सिरदाराजी होगी।"

आचार्यश्री ने सिरदाराजी का चौमासा डीडवाना निर्धारित किया।

युवाचार्यश्री का चातुर्मास जयपुर का निर्धारित किया।

पछे घाटे उतर नागौर शहर मे, किया गुरु दर्शन जय गुणकारी जी काई।
सतिया सग सिरदार विजे दिन, दर्शन कर लह्या सुख भारी जी कांई॥
तिहा रूपकुवर ने चरण देइ, ऋपिराय गणि अतिशय जशधारी जी काई।
डीडवाणे आय कियो सिघाडो, सिरदारा नो सुखकारी जी काई॥
सुखाजी कनला ले ऋद्धु जी, वलि जेताजी ने जिहवारी जी कांई।
दीपाजी कने लेने सूप्या, सिरदार ने सुखकारी जी काई॥
कल्प नावे त्या लग सिघाडो, कियो ऋधु नामे अवधारी जी काई।
या ने कल्प आयां सिघाड़ो, सिरदार तणो है सुखकारी जी काई॥
सिरदारा जी ने चोमासो, भोलायो डीडवाने धारी जी काई।
युवपद ने जयपुर चोमास भोलायो, अठाणुंवे वर्प नो भारी जी॥[1]

आचार्य रायचन्दजी वड़े कृपालु थे। मुनि भीमराजजी ने स० १८९७ के शेषकाल मे पादू मे नदोजी को प्रव्रजित किया। वाद मे आचार्यश्री के दर्शन किए। मुनि भीमराजजी का मन था कि नदोजी उनके पास रहे। आचार्य श्री ने उनके मनोगत भाव को जानकर मुनि नदोजी को उन्हे ही सौप दिया। जयाचार्य ने इस घटना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है :

पुज दयाल कृपाल गुर, जाण्यो भीम नौ मन।
नदो सूप्यो भीमने, तन मन थयो प्रसन्न॥
भीम घणो हरषत हुवौ, गुण वोले वेकर जोड।
ऋपराय विना कहो भीमना, कुण पूरे मन कोड॥
परम पूज गुण जाण, भीम भणी सुविहाण।
साहज सजम नौ आछो दियोजी॥
एसा आचार्य जोय, त्यारे उणारत किम होय।
पूज तणो जश छावियौ जी॥

---

१. मघवा (ज० सु०), २८।१५-१९

सुखदायक महाराज, सजम तप नौ साज।
च्यार तीर्थ मे सुहामणा जी।।
भीम चित मे समाध, पूज करी निरावाध।
भारी कुरब धारीयो।।[1]

२०. सं० १८६८

सं० १८६८ के चातुर्मास की समाप्ति के बाद आपने चातुर्मास स्थल लाडनू मे मिगसर वदि १ के दिन कुवारी कन्या मगनाजी को प्रव्रजित किया।[2]

इस वर्ष युवाचार्यश्री का चातुर्मास जयपुर मे था। उन्होने भागचन्दजी जौहरी और हीरालालजी को आचार्य ऋषिराय के दर्शन करने का उपदेश दिया और कहा—अगर आचार्य श्री विनती मान यहा पधार जाए तो एक महीने जयपुर मे साधु-साध्वियो का वडा अच्छा सगम हो जाए। उन्होने लाडनू मे जाकर आचार्यश्री के दर्शन किए और जयपुर पधारने की भावभरी विनती की।

चातुर्मास समाप्ति के बाद साध्वी सिरदाराजी ने डीडवाने से आकर आचार्यश्री के दर्शन किए। आचार्यश्री ने वहुत साधु एव दीपाजी, सिरदाराजी आदि सतियो के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर पधारने के समाचार सुनकर युवाचार्यश्री ने सागानेर पधारकर जयपुर से बाहर ही आचार्यश्री के दर्शन किए। आचार्यश्री उन्हे साथ ले जयपुर पधारे।

यहा फलौदी निवासी नवलाजी को मिगसर सुदी ४ को मोहनवाडी मे दीक्षा दी और उनको साध्वी सिरदाराजी को सौप दिया।

आचार्य ऋषिराय एक महीने जयपुर विराजे। फिर युवराजश्री को साथ ले सीकर, फतेहपुर होते हुए चूरू पधारे। वहा कई दिन रहकर बिदासर, लाडनू की ओर विहार किया।[3]

२१ स० १८६६

स० १८६६ का आचार्यश्री का चातुर्मास मुनि जीतमलजी आदि ११ साधु एव वडा रगूजी, सिरदाराजी आदि आठ साध्वियो से बीदासर मे हुआ था।

वहा आश्विन मास मे कुवारी कन्या हरषूजी ने दीक्षा ग्रहण की।[4] आचार्य श्री ने उनको दीक्षित कर साध्वी सिरदाराजी को सौपा।

चातुर्मास समाप्त होने के बाद मिगसर मे आचार्यश्री ने हरपूजी की माता सिणगाराजी को दीक्षित कर साध्वी सिरदाराजी को सौपा।

साध्वी ऋधुजी को पुन. सुखाजी को सौप दिया। सिरदाराजी के पास नवलाजी, सिणगाराजी और हरषूजी तीन साध्वियो को रखा।[5]

युवाचार्यश्री का चातुर्मास लाडनू का निर्धारित किया।

---

१. भीम विलास, ५।दो० १, २, गा०१, २ ४, ७
२. जय (ऋ० रा० सु०), ११।२
३. मघवा (ज० सु०), २६।१-६
४. जय (ऋ० रा० सु०), ११।३
५ मघवा (ज० सु०), २६।७-११

२२ स० १६००

स० १६०० के जयपुर चातुर्मास मे आसोज महीने मे हीरालालजी ने पत्नी सहित दीक्षा ग्रहण की।[1]

२३ स० १६०१

स० १६०१ के श्रीजीद्वार चातुर्मास मे साध्वियां भी रही। आचार्यश्री से मिगसर वदि १ के दिन जैचन्दजी और झूमाजी ने दीक्षा ग्रहण की।

वाद मे विहार कर आप विचरण करते-करते श्रीजीद्वार पधारे। वहां थली मे आकर माता सहित चतुर्भुजजी और छोगमलजी ने दीक्षा ग्रहण की।[2]

जयपुर चौमासा कर हरीगढ मे वाजोली के वालक वीजराजजी को मा सहित दीक्षा देते हुए युवाचार्य श्री ने मेवाड मे आचार्य श्री के दर्शन किए।[3]

२४ स० १६०२

स० १६०२ के पाली चातुर्मास मे आचार्य श्री के साथ साध्वियो का चातुर्मास भी था।

माधोपुर के शिवचन्दजी ने स्त्री को छोडकर दीक्षा ग्रहण की।[4]

इस वर्ष युवाचार्य श्री का चातुर्मास कृष्णगढ मे था। चौमासा उतरने के वाद हमीरजी को दीक्षा दे युवाचार्य श्री ने धामली मे आचार्य श्री के दर्शन किए। वहा से विहार कर आचार्य श्री युवराजश्री के साथ पाली पधारे। सताइस ठाणा साथ थे। वहां गुमानजी के गण के कनीराम जी चर्चा करने आए। आचार्य श्री की आज्ञा से युवाचार्य श्री ने चर्चा कर उन्हे निरुत्तर किया।[5]

२५ स० १६०३

आचार्यश्री का स० १६०३ का चातुर्मास वहुत साधु-साध्वियो के परिवार से जयपुर मे था। माधोपुर से आकर चिमनजी ने पत्नी सहित सयम ग्रहण किया।[6]

अश्व द्वारा चोट लगा देने से आचार्यश्री का हाथ उतर गया। वेदना को साहस और समभाव के साथ सहन किया। उस कारण से चैत्र सुदी १४ तक आचार्य श्री वही विराजे।

श्रीजीद्वार का चौमासा सपन्न कर युवाचार्य श्री ने जयपुर मे आचार्य श्री के दर्शन किए। वहुत सत एकत्रित हुए।

दीपाजी आदि साध्वियो का चातुर्मास साथ ही था। वे भी तव तक वही रही।

---

१ जय (ऋ० रा० सु०), ११।४
२ वही, ११।५,६
३. मघवा (ज० सु०), २६।१५-१६
४. जय (ऋ० रा० सु०), ११।७
५. मघवा (ज० सु०), ३०।दो० ४-८
६. जय (ऋ० रा० सु०), ११।८

चैत्र की पूर्णिमा के दिन आचार्य श्री ने वहा से विहार किया। इसके वाद श्रमण सतियो का विहार हुआ।[1]

२६. स० १९०४

सं० १९०४ का श्रीजीद्वार का चातुर्मास वहुत साधु-साध्वियो के परिवार से था।[2]

इस वर्ष का युवाचार्यश्री का चातुर्मास जयपुर मे था। यहा उन्होने मोहनवाड़ी मे छोटूजी को दीक्षा दी। आचाराग सूत्र के प्रथम स्कन्ध का पद्यवद्ध अनुवाद (जोड) किया। चातुर्मास उतरने के वाद आचार्यश्री के दर्शन किए।[3]

२७ स० १९०५

सं० १९०५ का आचार्यश्री का चातुर्मास वहुत साधु-साध्वियो के परिवार के साथ पाली मे था। वहा देवीचन्दजी ने पत्नी सहित दीक्षा ग्रहण की।[4]

इस वर्ष युवाचार्य श्री का चातुर्मास उदयपुर मे था। प्रथम श्रुतस्कन्ध की जोड सम्पूर्ण की। चौमासा उतरने के वाद वडे गाव मे नाथूजी की मा वनिताजी को समझाकर नाथूजी को दीक्षा लेने की अनुमति दिलाई। पदराडे मे नाथूजी को दीक्षा दे राणपुर होते हुए मारवाड पधारे और नाथाजी के गुढे मे आचार्यश्री के दर्शन किए।

आचार्यश्री युवाचार्यजी के साथ थली पधारे।[5]

२८. स० १९०६

आचार्यश्री का स० १९०६ का चातुर्मास लाडनू मे था। मिगसर वदि १ को विहार कर उसी दिन सुजानगढ पहुचे और वहा एक वाई को दीक्षा दी।[6]

युवाचार्य श्री का इस वर्ष का चातुर्मास वीकानेर था। वहा मदनचन्दजी राखेचा के छोटे भाई फकीरचन्दजी का राज-दरबार मे वडा सम्मान था। उनको प्रतिवोधित किया। और भी वहुत लोग समझे। अच्छा उपकार हुआ। युवाचार्यश्री ने वीकानेर से आकर आचार्यश्री के दर्शन किए।[7]

आचार्य ऋषिराय ने आगामी चातुर्मास के लिए जयपुर की ओर विहार किया। युवाचार्य श्री का चातुर्मास बीदासर का निर्धारित किया।

२९. सं० १९०७

स० १९०७ का चातुर्मास आचार्यश्री ने जयपुर मे १० साधु और १५ साध्वियो के परिवार से किया था।[8]

---

१ मघवा (ज० सु०), ३०।५-८
२. जय (ऋ० रा० सु०), ११।१९
३. मघवा (ज० सु०), ३०।९-१०
४. जय (ऋ० रा० सु०), ११।१०
५. मघवा (ज० सु०, ३०।११-१५
६. जय (ऋ० रा० सु०), ११।११
७. मघवा (ज० सु०), ३१।दो० १-४
८. जय (ऋ० रा० सु०), ११।१२

युवाचार्यश्री बीदासर चातुर्मास करने के लिए आषाढ में वहा पधारे। बीकानेर से मदनचन्दजी राखेचा ने आचार्यश्री को निवेदन कराया कि युवाचार्यश्री का चातुर्मास इस वर्ष बीकानेर करावें, मौका है। आचार्यश्री ने युवाचार्यश्री को आज्ञा दी—मुनि सरूपचन्दजी दीक्षा मे बडे है, उनके साथ बीकानेर से चातुर्मास करना कल्पता है। अत: बीकानेर चौमासा करें। उक्त आज्ञा का पालन करते हुए ग्रीष्म ऋतु के उष्ण दिनो मे युवाचार्यश्री ने ज्येष्ठ मुनि सरूपचन्दजी के साथ बीकानेर पधारकर वहा चातुर्मास किया।[1] बीकानेर मे वहुत उपकार हुआ। बडी महत्त्वपूर्ण चर्चाए हुई।[2] चातुर्मास उतरने के वाद हरिगढ़ मे आचार्यश्री के दर्शन कर अनेक दिनो तक उनकी सेवा मे रहे।

आचार्यश्री अजमेर पधारे। युवाचार्यश्री वहा तक साथ रहे। वहा से आचार्यश्री ने मेवाड की ओर विहार किया। युवाचार्यश्री आचार्यश्री की आज्ञा से जयपुर आए।[3]

३० स० १९०८

स० १९०८ का चातुर्मास, जो आचार्यश्री के जीवन का अन्तिमचातुर्मास था, उदयपुर मे ११ साधु और ३ साध्वियो से सम्पन्न हुआ।

मालव देश से अनेक श्रावक दर्शनार्थ आए और मालव पधारने की विनती की। आचार्य श्री ने विनती स्वीकार की।

१. चरम चौमासो उदियापुर कियो, सत इग्यार हो तीन सतिया सहीत।
रूडो सखर व्याख्यान आप वाचता, वारू करता हो धर्म उद्योत वदीत॥[4]

२. चर्म चौमासे स्वामजी, कीयो घणो उद्योत।
सूत्र प्रभाते सुणावता, घणा घट घाले जोत॥
श्रावक मालव देशना, आया वदना काज।
करे वीनती पूज्य सू, दर्शन दो ऋषराज॥
पूज्य मानली वीनती, मुनि नी रीत प्रमाण।
श्रावक सुण हरषित हुआ, पूज्य वचन अमिय समान॥[5]

संस्मरण

'नखेद' तिथि

ऋषिराय स० १८७८ माघ वदि ९ के दिन पट्टासीन हुए। किसी ने कहा—यह तिथि

---

१. मघवा (ज० सु०), ३१।२-६
२. (क) वही, ३२।दो० १-५, गा० १-८; कलश १,२, गा० ९-१३
(ख) वही, ३३।दो० १-५
३. वही, ३३।१-३
४. जय (ऋ० रा० सु०), ११।१३
५. वही, १३।दो० १-३

नखेद (निपिद्ध) है। आपने प्रसन्न मुद्रा मे कहा—'न खेद'—खेद रहित है। ठीक ही तो है।[1]

विद्या प्रेम

आचार्य ऋपिराय वडे विद्या-प्रेमी थे। जयाचार्य ने लिखा है

> आवश्यक, दशवैकालिक, अरु उत्तराध्येन उमग।
> वृहत्कल्प ए च्यार सूत्र, सीख्या मुनि सखर सुचग॥
> सूत्र वतीस सार रस सखरा, वाच्या वोहली वार।
> सार सिद्धन्त तणो अति सखरो, परम पूज्य रे प्यार॥[2]

सामने गए है और जायेगे

आचार्य ऋषिराय राजनगर मे विराज रहे थे। मुनि जीतमलजी पास मे थे। मुनि हेमराजजी वहा पधार रहे थे। मिलाप देखने के लिए अनेक गावो के लोग इकट्ठे हुए। पर आचार्यश्री सामने नही गये। मुनि हेमराजजी ठहरते-ठहरते ठिकाने तक पहुच गये। वहा आकर पाटे पर विराज गये। आचार्यश्री ने वाजोट पर वैठे-वैठे ही उन्हे वन्दना कर ली। लोगो के मन मे आया। "इसा अवे काइ ठहरे है।" इसी समय जसराजजी मारू ने आचार्यश्री से कहा "आपने यह क्या किया ? भला सामने जाते तो अनेक लोगो के कर्म कटते, यह क्या किया ?" इस तरह उपालम्भ दिया। तव मुनि जीतमलजी वोले—"गृहस्थ के वीच मे पडने का क्या काम ? सामने जाने की कोई रीत है क्या ? आचार्य किस-किस के सामने जायेगे ? मालिक है। आचार्य की इच्छा हो तो सामने जा सकते है। मन न हो तो नही भी जा सकते है। इससे गृहस्थ को क्या प्रयोजन ?" इस तरह कह उन्होने जसराजजी मारू को टोका। तव अनेक लोगों को आश्चर्य हुआ— ये तो एक है। वाद मे प्रच्छन्न मे मुनि जीतमलजी ने आचार्य ऋपिरायजी से कहा "वाजोट पर से उतर कर खडे होकर वन्दना कर लेनी थी।" तव आचार्यश्री वोले· "यो क्यो ? सामने गये है और फिर जायेगे। मुझे तो इस कालकी ने कहा यहा वैठे रहे सो हम भी देख ले।" कालकी साध्वी चत्रुजी का नाम था।[3]

आपनै आ न चाहीजै

गोगुदा से पत्र आया। २५ व्यक्तियो के नाम थे। उसमे लिखा था—आपको ऐसा (करना) नही चाहिए था। युवाचार्य पदवी मुनि हेमराजजी को दिलानी थी।

वृत्तात निम्न शब्दो मे सगृहीत है·

गोगुदा को कागद आयो। तिण मे २५ भाया का नाम तिण मे ऋषराय ने लिख्यो आप मारा गाम रा छौ तिण सु लिख्यो। आपनै आ न चाहीजै। हेमराजजी स्वामी ने दिवाइ छाहीजै इसा गृहस्थी भोला सो वेदा मे पडै। भारीमाल भोला जाण्या।[4]

---

१. (क) सेठिया (सप्त सुमन), सुमन १
   (ख) सेठिया (ऐतिहासिक सुमन सदोह), भा० ५ प्र० ११२

२. जय (ऋ० रा० सु०), १२।६१०

३. प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक), क्रम ७

४. वही, ८

ऐसा न कहें

आमेट में जगराजजी साह (हेमराजजी साह के पुत्र, साध्वी नगणाजी के भाई) ने आचार्य ऋषिराय के प्रति असम्मानपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया। आचार्यश्री ने उन्हें टोकते हुए दरिद्री, पुण्यहीन आदि शब्द कहे। अन्त में कहा : "ऐसा करेगा तो तू कभी मिथ्यात्वी हो जायेगा।" जगराजजी बोले : "और तो आप दरिद्री आदि इच्छा आवे सो कहें, पर मिथ्यात्वी हो जाऊंगा—ऐसा न कहें। आप बड़े हैं।"

ऐसा मिथ्यात्व का भय था।[1]

वृद्ध संतों का बहुमान

एक आर्या को कटु वचन कहने पर १४ आर्याएं टोला बाहर होने को तैयार हो गयी। बाद में आचार्य ऋषिराय ठिकाने पधारे। क्रोध को शान्त किया। मुनि सरूपचन्दजी साथ थे।[2]

अन्तिम चातुर्मास

मुनि हेमराजजी अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे। उनका अन्तिम चौमासा आमेट में सं० १९०४ में हुआ था। चौमासे के बाद ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे काकरोली शहर की ओर अग्रसर हुए। उस समय आचार्य ऋषिराय काकरोली में विराजमान थे। जब उन्होंने मुनि हेमराजजी के काकरोली पधारने का समाचार सुना, वे बड़े हर्षित हुए और आचार्य होते हुए भी अनेक सन्तों को साथ ले उनके स्वागतार्थ गए और विनयपूर्वक उनकी वन्दना की। कई दिनों तक मुनि हेमराजजी एवं आचार्य ऋषिराय काकरोली विराजे तथा विहार कर दोनों साथ ही धोइन्दा गांव में आए। आचार्य ऋषिराय वृद्ध सन्तों के प्रति बहुमान का एक जीता-जागता आदर्श छोड़ गए। यह घटना उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

आपने आचार्य भारमल को अन्त समय में बड़ा सहारा पहुंचाया।

'हेम नवरसो' रचने की प्रेरणा

आमेट के सं० १९०४ के चातुर्मास के बाद मुनि हेमराजजी ने सिरियारी की ओर प्रस्थान किया। वहां उनका स्वास्थ्य नरम रहने लगा। उनके श्वास का दौरा आने लगा। आचार्य ऋषिराय को इसका पता श्रावकों से जेठ वदि १ को चिरपाटी में लगा। उसी दिन उन्होंने कपूरजी नामक एक सन्त को मुनि हेमराजजी का कुशल-क्षेम जानने को भेजा। मुनि हेमराजजी ने आचार्य ऋषिरायजी से कहलवाया कि उसी दिन या अगले दिन प्रातः ही दर्शन देने पधारें। चेष्टा करने पर भी वे समय पर न पहुंच सके और जेठ वदि २ के प्रातः मुनि हेमराजजी का स्वर्गवास हो गया। आचार्य-प्रवर देहान्त के करीब दो मुहूर्त के बाद पहुंच सके। मुनि हेमराजजी की रुग्णावस्था के समाचार सुनते ही उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र विहार किया, यह उनकी विशाल-हृदयता का द्योतक है।

मुनि हेमराजजी के स्वर्गवास के पश्चात् आचार्य ऋषिराय की प्रेरणा से युवाचार्यश्री जीतमलजी ने मुनि हेमराजजी का एक नव-रस-पूर्ण काव्यमय सुललित जीवन-चरित्र

---

१. प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक), क्रम ९

२. वही, क्रम ३

लिखा जो 'हेम नवरसो' नाम से विख्यात है। आचार्य ऋषिराय कितने गुणग्राही थे—यह घटना से स्पष्ट है।

मालवा यात्रा सम्पूर्ण कर आचार्य ऋषिराय मुनि जीतमलजी के साथ पुर पधार रहे थे। मुनि हेमराजजी वहां पहले से थे। वे स्त्री-पुरुषो के वडे वृन्द सहित सामने गए और वडे सम्मान-पूर्वक उन्हे पुर मे लाए।

आलोचना : आचार्य के सम्मुख

साय प्रतिक्रमण के वाद चली आती हुई परिपाटी के अनुसार मुनि हेमराजजी ने स्वय ही आलोवणा (आलोचना) कर ली। आचार्य ऋषिराय ने मुनि जीतमलजी से कहा "आलोचना आचार्य के समीप करनी चाहिए। मुनि हेमराजजी मेरे पास आकर आलोचना करे तव तक तुम्हे चार आहार का त्याग है।" मुनि जीतमलजी ने विनयपूर्वक आलोचना आचार्यश्री के सम्मुख करने का निवेदन मुनि हेमराजजी के सम्मुख रखा। आपने तत्क्षण आचार्यश्री के सम्मुख जाकर आलोचना की। तव से आलोचना गुरु के सम्मुख करने की परिपाटी चालू हुई।

आचार्य मघवा ने इस घटना का वर्णन करते हुए लिखा है

पुर मे आया घणे हगाम, तठा ताइ चोलणा न हुइ ताम।
तिण सू पडिक्कमणे माहि मुनि हेम, निजमत आलोयण ले तेम ॥
जद जय ने कह्यु ऋषिराय, आलोयण लेणी गणी कने ताय।
हेम ने आरे कियां विण इण जाग, तुझ ने च्यारू आहार ना त्याग ॥
जद ऋषि जीत अर्ज करी जाय, हेम ने आरे कराया ताय।
तठा पछे हेम मुनिराय, आलोयण करता पूज्य पे आय ॥[1]

क्या सव गोले ही गोले है ?

एक वार आचार्य ऋषिराय साधुओ के साथ विहार कर रहे थे। कुछ साधु आगे वढ गए। उन्हे घोडे पर चढे कुछ डाकुओ ने आ घेरा। साधुओ ने कहा "हम साधु है, हमारे पास रुपये-पैसे या अन्य कोई कीमती वस्तु नही है। हमारे काम मे आने के वस्त्र और उपकरण ही है।" डाकू छीना-झपटी करने पर तुल गए। तव एक साधु कम्वल जमीन पर विछा उस पर वैठ गए। डाकू कम्वल खीचकर निकालने लगा। इसी समय आचार्य ऋषिराय समीप पहुचे। उन्होने डाकुओ को उत्पात करते देखकर दूर ही से वुलन्द आवाज मे कहा "क्या सव गोले ही गोले है ?"

यह स० १८८४ के शेषकाल की घटना है। डाकुओ का सरदार उनके पास पहुचकर वोला "आपने ऐसा कैसे कहा ?" आचार्यश्री वोले : "राजपूत कभी साधुओ को लूटते-खसोटते नही। लगता है, सव गोले है।" सरदार सहमकर लज्जित हो गया। छीना-झपटी वद कर वोला "आप मजिल पर न पहुच जाए, तव तक मेरे दो सरदार साथ मे रहेगे जिससे कि आपको पुन कोई कष्ट न दे सके।"

---

१. मघवा (ज० सु०), ११।यतनी १-३

देख रहा हूं कहीं सूर्यास्त तो नहीं हो गया ?

मांढा (मारवाड़) गांव की बात है। आचार्य ऋषिराय आहार कर चुके थे। साधु आहार कर रहे थे। आकाश में बादल छाए हुए थे। उससे अंधेरा छा गया। आचार्यश्री स्वयं मकान की छत पर गए और डोली पर खड़े हो आकाश की ओर देखने लगे। पड़ोस के मकान के एक व्यक्ति ने पूछा "आज आप डोली पर खड़े आकाश की ओर क्या देख रहे हैं ?" आचार्यश्री ने कहा "साधु आहार कर रहे हैं। अंधकार छा गया है। देख रहा हूं, कहीं सूर्यास्त तो नहीं हो गया ?"

मीठी चुटकी

सं० १६०३ में घोड़े की चोट से हड्डी उतर गयी। इससे आचार्य ऋषिराय चातुर्मास-काल के बाद चैत्र मास तक जयपुर में ही रुके रहे। आचार्य ऋषिराय कोई तेल लगाकर आता उसे पसंद नहीं करते, टोका करते। हाथ उतर जाने से उन्हें उपचार के रूप में तेल-मालिश कराना पड़ रहा था। मुनि जीतमलजी चातुर्मास के बाद दर्शनार्थ आए तब उन्होंने आचार्य ऋषिराय को तेल मालिश कराते देखकर विनोद में कहा :

> कोई तेल लगाई आवतो, करता तिण सूं तर्क।
> इक दिन ऐसो आवियो, गुरु हुआ तेल में गर्क॥

आपने कहा वह फल गया

एक बार कुचामन के ठाकुर ने बोरावड़ पर आक्रमण कर दिया। बोरावड़ के ठाकुर केसरीसिंहजी आचार्य ऋषिराय के प्रति बड़े श्रद्धालु थे। वे मुकाबला करने जाने लगे, तब आचार्य ऋषिराय के दर्शन किए। उनकी रणसज्जा देखकर आचार्यश्री के पूछने पर उन्होंने घटना बताते हुए कहा : "जीवित रहा तो दर्शन होंगे।" आचार्य ऋषिराय ने सहज भाव से कहा : "जीत सच्चे की होती है।" केसरीसिंहजी विजयी हुए। विजय की दुन्दभि बजाते हुए ससैन्य वापिस लौटते समय आचार्य ऋषिराय के दर्शन कर बोले : "आपने कहा वह फल गया।"

तमाखू का निषेध

उस समय साधु तमाखू सूंघ सकते थे। अन्य संघ से आकर दीक्षा लेने वाले साधु में भी यह आदत देखी जाती थी। आचार्य ऋषिराय ने क्रमश. मर्यादा बनाकर तमाखू सूंघने के कार्य को कठिन कर दिया। आगे चलकर तमाखू सूंघने की चाल समाप्त हो गई।

संथारे का सहयोग

मुनि खेतसीजी (सतजुगी) आपके मामा थे। उनके संथारे की घटना के साथ आपके जीवन का एक बहुत रोचक प्रसंग जुड़ा हुआ है।

मुनि खेतसीजी ने आपसे कहा, "आप मेरे संसार-पक्षीय भानजे हैं; मैं मामा हूं। मैं आपकी प्रीति तभी समझूंगा जब कि आप मुझे आराधक पद की प्राप्ति करावें।" आचार्य

ऋषिराय ने फरमाया "जो निशल्य होता है, वह आराधक ही होता है।" आचार्यश्री खेतमीजी के परिणामो को बढाते रहे और आपाढ कृ० १४ के दिन खेतसीजी से बोले "अब अवसर है। आप कहे तो यावज्जीवन सथारा करा दू।" मुनि खेतसीजी ने स्वीकृति दी, तब आचार्यश्री ने उन्हे यावज्जीवन तिविहार संथारा करा दिया। तत्पश्चात् आचार्यश्री बोले "आपने सथारा ग्रहण किया हो तो मेरे मस्तक पर हाथ रखे।" मुनि खेतसीजी ने आचार्यश्री के मस्तक पर हाथ रक्खा। इस तरह आचार्यश्री ने मामा की मनोकामना पूरी की। लगभग प्रहर रात्रि बीतने पर सथारा सम्पन्न हुआ। दो प्रहर का सथारा आया। यह घटना स०१८८० की है।

> वलि वलि कहै ऋषिराय नै, ससारी लेखे हू मामो थे भाणेज।
> पद आराधक मुझ हुवै, तिमिज करो जद जाणू थारो हेज॥
> पूज कहे सतजुगी भणी, सल रहित ने कह्यो आराधक स्वाम।
> एम कही सतजुगी तणा, विविध प्रकार करी चढावै परिणाम॥
> चवदस दिन ऋपराय जी, सतजुगी नै बोलै इण विध वाय।
> अवसर आयो दीसै आपरो, जावजीव देऊ सथारो पचखाय॥
> सतजुगी हकारो भरियो सही, ऋपराय करायो तिविहार सथार।
> पूज कहै सथारो सरध्यो तुम्हे, तो म्हारे माथे हाथ देवो इण वार॥
> सतजुगी हाथ माथे दियो, सावचेत इसा मुनि गुण माल॥[1]

जयाचार्य ने इस घटना पर अन्यत्र इस प्रकार लिखा है.—

> आया सैहर पीपाड मझार, ऋषिराय सतजुगी सार॥
> सतजुगी भवोदधि पाज, तिहा सार्या आतम काज।
> सावचेत पणे सुखदायो, ऋषिराय अणसण अदरायो॥
> दियो सखर सहाज सुवदीत, पाली पूर्ण परघल रीत।
> अत समे सतजुगी नी सेव, स्वामी कीधी तजी अहमेव॥[2]

आचार्य भारमलजी की आलोचना

आचार्य भारमलजी का स० १८७८ का चातुर्मास केलवा मे ही हुआ। वे सलेपणा करने लगे। चातुर्मास समाप्ति के बाद उन्होने आत्म-आलोचना की। उल्लेख है कि उन्होने एक-एक बात को स्मरण कर युवाचार्य ऋषिराय को सुना-सुना कर आलोचना की थी।

अपने उपदेश के सिलसिले मे उन्होने कहा—मैने मुनि खेतसीजी और हेमराजजी को पूछ कर ऋषिराय को पाट दिया है। उसकी आज्ञा को शिरोधार्य करते रहना।[3] उसकी मर्यादा का उल्लघन मत करना।[4]

---

१. जय (खे०च०), १२।११,१३,१६-१८
२. जय (ऋ०रा०सु०) (लघु), ३।४-६
३. देखिए पृ०७७, प्रथम अनुच्छेद
४ देखिए पृ० ७८, शिक्षा क्रम १०

क्षान्ति गुण का विकास

एक बार ऋषिराय व्याख्यान दे रहे थे। आचार्य भारमलजी सुन रहे थे। कहने मे अखरने वाली चूक होने पर परिषद् मे ही आचार्यश्री ने ऋषिराय को उपालम्भ दिया। बाद मे वे बोले "भूल के लिए आप मुझे एकान्त मे फरमा दिया करें।" आचार्यश्री बोले : "अब तो परिषद् मे ही निषेध करने (टोकने) का भाव है।"[1] ऋषिराय ने हाथ जोड, विनयपूर्वक उक्त निवेदन के लिए क्षमा-याचना की। भविष्य मे वे सबके सामने दी हुई शिक्षाओं को भी बड़े प्रसन्न मन से ग्रहण करने लगे। क्षान्ति गुण का जीवन मे बड़ा विकास किया।

जयाचार्य ने इस घटना और दूसरे सन्तो के जीवन की ऐसी ही घटनाओ को लेकर विनय के विषय पर एक सुन्दर कृति दी है। ऋषिराय ने आचार्यश्री की बात को शिरोधार्य किया, इस बात को उनकी महत्ता का एक अंग माना है।

> पामी पडीयां बहु जन मझैं, गुर चौडै निषेदै सुन्याया हो लाल।
> अवनीत मूह विगाड दै, सुवनीत रै हरष सवाया हो लाल॥
> इमहीज सिंघाडाबंध तणी विध, पामी पडीयां निषेदै अथाया हो लाल।
> मन ह्वे तो आगै विचरज्यो, गुरु आगूच शब्द सुणावै हो लाल॥
> चौडे मोनै निषेदो मती, कदा गुरु नहीं मानै वाया हो लाल।
> तिण सू चोट खमणी पहली धारनैं, अगवांण विचरी मुनीराया हो लाल॥
> रीत ए सहु संत समणी भणी, अगवांण नै तो अधिकाया हो लाल।
> सूत्र वखाण सीखै सही, तिम खमवों सीख्या सुख पाया हो लाल॥
> सतजुगी नै वैणीरामजी वले, हेम अनै ऋषराया हो लाल।
> गणस्थंभ ज्यूं च्यारुं महागुणी, समभाव सह्या तज माया हो लाल॥
> गुणधरा भार तिणरैं भुजा, वहु मान अहंकार मिटाया हो लाल।
> औरा री कुणसी चली, गुरु सर्व उपर कहिवाया हो लाल॥
> अधिक तोल त्यांरो वध्यौ, तीर्थ च्यार सराया हो लाल।
> भारीमाल परससीया चौडे, खमीयारा ए फल पाया हो लाल॥
> जिण नैं सुगुर वचन खमवा दोहिला, तौ अवर ना कठण अथाया हो लाल।
> मान राखै सतगुर थकी, ते तो महा मूहरख कहिवाया हो लाल॥
> कठन वचन गुर सीख दै, ते तो अमृत सुं अधिकाया हो लाल।
> भाग दिसा भारी हुवे, जब सतगुर सीख सवाया हो लाल॥
> बहुवार सतजुगी हेम नैं, इमहिज स्वाम ऋषराया हो लाल।
> त्यांनै चौडे परषद मे निषेदीया, समभाव रह्या मुनिराय हो लाल॥
> मोद पिडतपणां री आण नैं, अभिमानी कहै इम वाया हो लाल।
> प्रषद माहि मोने मत कहो, छानै सीख देवौ मुनिराया हो लाल॥
> इम अभिमानी चोडै कह्या, दुर्लभ रहिवौ सम अधवसाया हो लाल।
> कुरब वधै त्यांरो किण विधै, मांन मेल्या सु कुरब वधाया हो लाल॥

---

१. देखिये, पृ० ११५

उत्तराध्यैन पहिला मै कह्यो, गुर कठण सीष कहिवाया हो लाल।
सुवनीत हित मानै सही, अवनीत नै धेप भराया हो लाल॥
मित्र भाइ न्याती नै कहै, तिम जाण वनीत सुहाया हो लाल।
अवनीत सीप कठन सुणी लेखवे, दास जेम रुलाया हो लाल॥
गुरु कठण वचन निपेदीया, सुवनीत चिंतै मन माह्या हो लाल।
आज अनुग्रह गुरु तणो, मुझ उपर छै अधिकाया हो लाल॥
सीतल कठण वचने करी गुरु, सीप देवै सुपदाया हो लाल।
परम लाभ अति लेपवै, सुवनीत को मुनिराया हो लाल॥
आचार्य ने कोप्या जाण नै, सुवनीत संत सुपदाया हो लाल।
प्रश्न करम धुर वचन सु, वले करी घणी नरमाह्या हो लाल॥
बुझावे क्रोध अग्नि सु गुर तणी, कर जोड वदै इम वाया हो लाल।
आज पछै इसौ काम हू वले, कदे ही न करू ऋपराय हो लाल॥
आज कृतार्थ हू थयो मोनै, निषेद्यो परषद माह्या हो लाल।
आज भलो भाण उगीयौ मो नै, अमृत प्याला पाया हो लाल॥'[1]

आचार्य ऋषिराय का व्यक्तित्व बडा ही यशस्वी था। आप मे अनेक अद्वितीय गुण थे। आपके विपय की प्रशस्तिया परिशिष्ट मे दी जा रही है।

१. परिपद मे निवेधण री ढाल, १५-१७,२०, ३४-३८, ४२-५१

४२. मुनि ताराचन्दजी

आप जाति से ओसवाल थे। गगापुर (मेवाड) के निवासी थे।[1] आपने अपनी पत्नी और ज्येष्ठ पुत्र से नेह-नाता तोड़ अपने अविवाहित पुत्र डूगरसी के साथ दीक्षा ग्रहण की थी।[2] दीक्षा स० १८५७ के जेठ महीने[3] मे मुनि वेणीरामजी (२८) के द्वारा सम्पन्न हुई थी। दोनों ने बड़ी ऋद्धि को छोडकर दीक्षा ली थी। आप दोनों मुनि वेणीरामजी के साथ विचरते रहे। उन्होंने पिता-पुत्र दोनो को पढाकर प्रवीण किया।

---

१. (क) जय (शा० वि०), १।२६ वार्तिक

(ख) ख्यात, क्रम ४२

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, २४७ .

ताराचन्दजी पिता पुत्र तेहना रे, डुगरसीजी जस नाम।
गाम गगापुर वासिया रे लाल, ओसवाल जाति अभिराम॥

२. (क) जय (शा० वि०), १।२६ वार्तिक

(ख) ख्यात, क्रम ४२

(ग) जय (भि० ज० र०), ५०।दो० २ :

ताराचन्दजी तात-सुत, डूगरसी महामण्ड।
पिता भार्या परहरी, सुतन सगाई छण्ड॥

३. (क) जय (भि० ज० र०), ५०।दो० १ :

सवत् अठारै सतावनै, जेठ मास मे जोय।
पिता पुत्र धर चरण पद, हर्ष घणो अति होय॥

(ख) जय (ऋ० रा० सु०), ४।४ .

चैत्री पूनम चारित्र लियो स्वामजी रे, रायचन्द ऋषराय।
जेठ माहे चारित्र आदर्या, पिता पुत्र बिहू सुखदाय॥

(ग) जय (शा० वि०) ,१।२६ .

तात ताराचन्द डुगरसी सुत न्हाल कै, सतावनै सयम लियोजी।

(घ) ख्यात, क्रम ४२

(ड) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, २४६

तारাचन्दजी डूगरसी धर्म पासी, गंगापुर नां वासी।
त्यां सजम लियो छै हो, वेणीरामजी स्वामी कने ॥
वाप ने वेटो वैरागी, दोनू छती ऋधना त्यागी।
चेला हुवा छै हो भीखू रीपना भलभाव सू ॥
दोनू वेणीरामजी कने साथे दिख्या लीधो, त्या भणायने पका कीधो।
त्यारे हीज साथे हो विचरया भले भाव स्यू ॥[1]

स० १८५९ माघ मुदी ७ के लिखित की एक प्रति मे उस समय गण मे विद्यमान सव साधुओ की सही है। केवल आप और मुनि नाथोजी (४०) की सही नही है। वे अन्यत्र थे।

आप, नाथोजी (४०) और मयारामजी (३३) का १८५९ मे सिंघाडा था। मयारामजी स० १८५९ माघ सुदी ७ के लिखित के पूर्व अलग हो गए तव आप और नाथोजी दो रह गए। अन्यत्र होने से लिखित मे हस्ताक्षर नही हो पाए।

मुनि ताराचन्दजी वडे ही वैरागी साधु थे। अन्त समय मे आपने सथारा किया था।[2] आपके सथारे के विपय मे निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होते हैं

१ ताराचन्दजी झलरापाटन मझे, अणसण गुणचालिस दिन आयो ए।
राम सथारो इन्द्रगढ में कीयो, गुणतरे दोनू ही मुनिरायो ॥[3]

२. अणसण इकतालीस दिन ताराचन्द उवेख।[4]

३. ताराचन्दजी अणसण दिन इकताल कै।[5]

४. ताराचन्दजी नै संथारो दिन ४१ स नो आयौ।[6]

५ पिता ताराचन्दजी अठारै सत्तरै रे, इकतालीस दिन ने सथार।
कोटै मे वेणीरामजी पासे रही रे लाल, पाम्या भवदधि पार ॥[7]

प्रथम सवसे प्राचीन उल्लेख के अनुसार आपका सथारा झालरापाटन मे सिद्ध हुआ। यति हुलासचन्दजी के अनुसार मुनि वेणीरामजी के सान्निध्य मे कोटे[8] मे सपन्न हुआ। सन्त विवरणी मे सथारे का स्थान पुर वताया गया है। स्थान-सम्वन्धी वाद के दोनो ही उल्लेख ठीक नही है।

प्रथम उल्लेख के अनुसार आपका सथारा स० १८६९ मे मपन्न हुआ और यति हुलासचन्दजी के अनुसार स० १८७० मे। आपका और मुनि रामजी (२३) का मथारा एक ही

---

१. वेणीरामजी रो चौढालियो, ३।१, २, ३

२ जय (भि० ज० र०), ५०।दो० ३
वड वैरागी सत विहु, सखरो कर सथार।
भिक्खु स्वाम पछै उभय, समचित जन्म सुधार ॥

३. पण्डित मरण ढाल, १।१२

४. जय (भि० ज० र०), ५०।दो० ४

५ जय (शा० वि०), १।२६

६. ख्यात, क्रम ४२

७. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, २५५

८. श्री मालचन्दजी सेठिया ने भी ऐसा ही उल्लेख किया है।

वर्ष मे हुआ कहा गया है। यदि यह तथ्य हो तो आपका सथारा स० १८७० का ही मानना चाहिए। कारण, मुनि रामजी का सथारा इसी वर्ष कार्तिक १० के दिन सपन्न हुआ था।

स० १८७० मे देवलोक होने की बात अन्य तरह से भी समर्थित है।

स्पष्ट उल्लेख है कि स० १८७० का उज्जैन का चातुर्मास कर मुनि वेणीरामजी झालरापाटन पधारे, तब वहा मुनि ताराचन्दजी ने अनशन ग्रहण किया। इससे सिद्ध होता है कि आपका देहावसान १८६९ मे नही बल्कि स० १८७० के शेषकाल मे हुआ था। आपका संथारा झालरापाटन मे ही परिपूर्ण हुआ था, न कि कोटा या पुर मे।

नगर उजैणी शहर मे, आछो कियो उपगार।
रामेजी सयम लीयो, पछै कियो तिहा थी वोहार॥
झालरापाटन शहर मै ताराचन्दजी हो अणसण कियो अमाम।
दिन इकतालीस मै सिझीयो, मुनि राख्या हो रूडा सुद्ध परीणाम॥[1]

आपको ४१ दिन का सथारा आया न कि ३९ दिन का, जैसा कि पण्डित-मरण ढाल मे उल्लेख है।

आप और डूगरसीजी मुनि वेणीरामजी के साथ ही रहे, पर स० १८६२ मे मुनि सुखरामजी (९) ने पीसागण मे सथारा किया। उस समय मुनि नानजी (२६) और वेणीरामजी के साथ मुनि डूगरसीजी तो उनकी सेवा मे थे और आपके उपस्थित होने का उल्लेख कही नही मिलता।[2]

---

१. वेणीरामजी रो चौढालियो, ४।दो० १, गा० १

२. (क) जय (शा० वि०), १।११ वार्तिक

(ख) वेणीरामजी रो चौढालियो, ढा० ४

(ग) श्रा० चन्द्र (मुनि सुख०), २।दो० २, ३, ४, ५

४३. मुनि डूगरसीजी

ससार पक्ष मे आप मुनि ताराचन्दजी के पुत्र थे (देखिए क्रम ४२)। आपकी सगाई हो चुकी थी। विवाह की तैयारी होने लगी थी, पर आपका विचार अपने पिता ताराचन्दजी के साथ दीक्षा लेने का हो गया, अत सगाई छोड़ दी। माता और वडे भाई का मोह छोड आप पिता ताराचन्दजी के साथ दीक्षित हो गए।[1]

तात ताराचन्द दीपतो रे, पुत्र डूगरसी पिछाण।
पिता भार्या परहरी ए, सुत छोडी सगाई सयाण॥[2]

आपकी दीक्षा स० १८५७ के जेठ महीने मे सपन्न हुई।[3]

आप वडे वैरागी सन्त थे। दीक्षा के समय आप वाल्यावस्था मे थे। आपके विपय मे निम्न उद्गार मिलते है

डूगरसीजी नही डिगे, डूगर जेम अडोल।
वाल-वय वैरागियो, त्यारो भारी तोल॥[4]

तपस्या से आपका वडा प्रेम था। जीवन के अन्तिम दिनो मे आपने कठोर तप किया। कवि को कहना पडा—"मरण साहमा पग रोपिया।"

---

१. (क) जय (शा० वि०), १।२६ वार्तिक
(ख) ख्यात, क्रम ४३
(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, २४८-२४९

डूगरसी रे परणवा री त्यारी हुती रे' तिण अवसर वैराग वहु आण।
पिता ताराचन्द निज स्त्री छोडने रे लाल, पुत्र डूगरसी सगाई तजाण॥
सगपण छोड मात भाई ना नेह नाता तोडने रे, पिता सहित दिक्षा जिण लीध।
सवत् अठारै सतावने रे लाल किता काल, पछै डूगरसी सलेपणा सुह कीध॥

२. जय (ऋ० रा० सु०), ४।५
३ देखिए—प्रकरण ४२
४ श्रा० चन्द्र (सुख०), २।दो० ५

स० १८६८ के कार्तिक मास मे[1] आपने निम्न नियम ग्रहण किये :

१. फाल्गुन सुदी १५ स १८६८ के बाद विगय और औषध सेवन का त्याग।[2]

२. चैत्र मास मे ६ वेले, प्रथम वैसाख मे ५ तेले, द्वितीय वैसाख मे २ चोले, जेठ मे २ पचोले करने का वधा।[3]

आपने फाल्गुन महीना आते ही तपस्या आरम्भ कर दी। वधे की तपस्या के उपरात ८, ५, ४, ६, ५, ५ दिनो की तपस्या की। बाद मे दस दिनो की तपस्या ग्रहण की।[4] १० दिन की तपस्या के तीसरे दिन सथारा ग्रहण कर लिया। आपकी उक्त दोनो प्रकार की तपस्याओ तथा सथारा का वर्णन इस प्रकार उपलब्ध है

फागण मास आया थका हो, झाली तप तरवार।
एकन्तर धार्या भाव सू हो, काया तोलण तिवार॥
चवदे दिन एकन्तर किया हो, सात किया उपवास।
चवदस पूनम रो वेलो कियो हो, तपस्या कीधी फागण मास॥
पडवा कीधो पारणो हो, आयो वैराग मन माहि।
आठ करी कियो पारणा हो, छव वेला किया कर्मकाट॥
चैती पूनम लग मोटा मुनि हो, कीधा पारणा आठ॥
तेले-तेले धार्या पारणा हो, प्रथम वैसाख रे माहि।
वधा ऊपर तपस्या तणी हो, हूस घणी छे ताहि॥
तेला पाच किया वधा तणा हो, पांच च्यार नो अधिक वैराग।
पारणा सात वैसाख मे हो, लीधो मुगत रो माग॥
दुतीक वैसाख धुर छव किया हो, पाच-पाच किया दोय वार।
चोला दोय पाच पारणा हो, दुतीक वैसाख मझार॥

---

१ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत गुण वर्णन, २५० के अनुसार कार्तिक सुदी ४ के दिन यह नियम किया था।

२. नाथू (डूगरसी) २,

फागण सुद पूनम पछे हो, विघे ओपध रा त्याग।
आगे वधो करस्यू तणा हो, लेस्यू मुगत मारग॥

३ वही, दो० १३-१४.

वेला धार्या चेत मास मे, तेला प्रथम वैसाख।
चोला दूतिक वैशाख मे, पाच जेष्ठ अरिहत मिध साख॥
छव वेला पांच तेला किया, दोय चोला किया वुधवान।
दोय पाच किया वधा तणा, मुनिगण रत्ना री खान॥

४ वही, दो०।१५

आठ पांच च्यार छव किया, पाच पाच दस वधा उपर जाण।
मरण साह्मा पग रोपिया, मारग लियो निरवाण॥

पाच-पाच किया जेष्ठ मास मे हो, वद वारस लग मुनिराय।
तेरस कीधो पारणो हो, फेर पाच दिया पचखाय॥
पाच पचखे वैराग सू हो, चवदस रे दिन माहि।
छव पचखे सात पचखिया हो, नव दिया पचखाय॥
एक दिन अधिक लेवा भणी हो, अमावस रे दिन माहि।
साधां ने कहे दस पचखिया हो, मन रलियायत थाय॥
दस दिन रा तीजा दिन मझे हो, साधा ने लिया बोलाय।
मन उठयो सामी माहरो हो, सथारो द्यो पचखाय॥
सूरपणे सथारो किया हो, चढियो पोरस पुर।
वचन निभावे आपरो हो, ते साचेला सूर॥
समत अठारे चउसटे[1] हो, जेष्ठ सुदी बीज बुध माहि।
दिन सवा पहर आसरे चढता थका हो, दियो सथारो ठाय॥[2]

आपने कितनी शूरवीरता के साथ सथारा किया, यह ऊपर के पद्यो से प्रकट है।

तपस्या की तालिका इस प्रकार होती है

तपस्या	मिति	पारणा	तपस्या दिन	पारणा दिन	कुल दिन
स० १८६८					
एकान्तर १४	फागण सुदी १ से १३ (एक दिन वढा)		७	७	१४
वेला १	फागण सुदी १४ से १५	चैत वदि १	२	१	३
अठाई १	चैत वदि २ से ९	,, १०	८	१	९
वेला ६	चैत वदि ११ से १२	,, १३	२	१	३
	चैत वदि १४ से सुदी १ (एक दिन टूटा)	चैत सुदी २	२	१	३
	चैत सुदी ३ से ४	,, ५	२	१	३
	चैत सुदी ६ से ७	,, ८	२	१	३
	चैत सुदी ९ से ११ (एक दिन टूटा)	,, १२	२	१	३
	चैत सुदी १३ से १४	,, १५	२	१	३
तेला ५	वैसाख पहला वदि १ से ३	वैशाख वदि ४	३	१	४
	वैसाख पहला वदि ५ से ७	,, ८	३	१	४

---

१. नाथू (डूगरसी), १, २८ को देखते हुए 'चउसटे' के स्थान मे 'अडसठे' शब्द होना चाहिए। जय (शा० वि०), वार्तिक मे भी स० १८६८ का ही उल्लेख हे।

२. वही, १।३-५, ८-१७

	वैसाख ४० वदि ९ से १० (एक दिन अधिक)	वदि ११	३	१	४
	वैसाख ४० वदि १२ से १४	,, १५	३	१	४
	वैसाख ४० सुदी १ से ३	सुदी ४	३	१	४
पचोलो १	वैसाख ४० सुदी ५ से ९	सुदी १०	५	१	६
चोला १	वैसाख ४० सुदी ११ से १४	,, १५	४	१	५
छह १	वैसाख दूजा वदि १ से ७ (एक दिन टूटा)	वदि ८	६	१	७
पंचोला २	वैसाख दू० वदि ९ से १३	,, १४	५	१	६
	वैसाख दू० वदि १५ से ४	,, ५	५	१	६
चोला २	वैसाख दू० सुदी ६ से ९	,, १०	४	१	५
	वैसाख दू० सुदी ११ से १४	,, १५	४	१	५
पचोला २	जेठ वदि १ से ५	,, ६	५	१	६
	जेठ वदि ७ से १२ (एक दिन टूटा)	,, १३	५	१	६
अनशन	जेठ वदि १४ से १५		२		२
संथारा	जेठ सुदी १ से ७		७		७
		कुल योग	९६	२९	१२५

सार रूप तालिका इस प्रकार है :

मिति	तपस्या	संख्या	उपवास दिन	पारणा
स० १८६८				
फाल्गुन मे	एकान्तर	१४	७	७
	बेला	१	२	१
चैत्र मे	अठाई	१	८	१
	बेला	६	१२	६
वैशाख (प्रथम) मे	तेला	५	१५	५
	पंचोला	१	५	१
	चोला	१	४	१
वैशाख (द्वितीय) मे	छह	१	६	१
	पंचोला	२	१०	२
	चोला	२	८	२
जेठ वदि मे	पंचोला	२	१०	२

जेठ वदि १४ से १५	अनशन	२	
जेठ सुदी १ बुधवार[1] से जेठ सुदी ७ मगलवार	सथारा	७	
		९६	२९
	सर्व दिन		१२५

कुल १२५ दिनो मे ९६ उपवास और २९ पारण हुए। जेठ वदि १४ से जेठ सुदी ७ तक नौ दिन की तपस्या मे ७ दिन का सथारा आया। स० १८६८ जेठ शुक्ला ७ वार मगलवार को लगभग डेढ पहर दिन चढने पर आपका सथारा सपन्न हुआ।

सीझ्यो सथारो दिन सात मे हो, जेठ सुद सातम मगलवार।
दिन डेढ चढता आसरे ही, प्राण छोड्या हुवा जय जयकार॥
तपस्या कीधी दिन सवासे मझे हो, पारण किया गुणतीस।
छिनू उपवास किया भला हो, पूरी मन री जगीस॥
समत अठारे अडसटे हो, जेष्ठ महिना मझार।
डूगर रिप जमारो जीतियो हो, कर दियो खेवो पार॥[2]

ख्यात मे भी आपकी तपस्या का वर्णन प्राप्त है।[3] वह उपर्युक्त कृति के विवरण से सम्पूर्णत मिलता है। हुलास (शा० प्र०) के तपस्या वर्णन मे ६ के थोकडे का उल्लेख नही है।[4] शेप वृत्तान्त उक्त कृतियो के अनुसार है।

---

१ मूल मे 'ज्येष्ठ सुदी वीज वुध' शब्द है। 'वीज' की जगह 'एकम' होने से ही कृति की वाद की गणना ठीक वैठ सकती है। वाद के दो विवरण जय (शा० वि०), १।२६ वार्तिक और ख्यात, क्रम ४३ मे ज्येष्ठ सुदी १ का स्पष्ट उल्लेख है।

२. नाथू (डूगरसी), २३-२४, २८

३ ख्यात, क्रम ४३

४. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, २५०-२५४ मे तपस्या का वर्णन इस प्रकार है

अठारै अडसटै काती सुद चोथ नै मुनि किया रे,
फागण सुदि पूनम पछै छ विगय रा छै त्याग।
फागण थी लेई तपस्या घणी करी रे लाल,
डूगर मुनि महाभाग॥
एकान्तर सात उपवास किया रे,
एक वेलो फिर अठाई एक कार।
छव वेला पांच तेला एक पचोलो कियो रे लाल,
एक चोलो कर्यो सुविचार॥
फेर दोय पचोला दोय चोला किया रे,
फुन दोय पचोला कीध।
फुन दश दिन नो थोकडो रे लाल,
मुनिवर पचखी लीध॥

जय (शा० वि०), १।२६ वार्तिक का वर्णन उपर्युक्त विवरण मे कई जगह भिन्न है। उसके अनुसार तपस्या के कुल दिन १२० होते है—६२ दिन उपवास के एव २८ दिन पारण के। विवरण इस प्रकार है

तपस्या	संख्या	उपवास	पारण
एकान्तर	१४	७	७
वेला	१	२	१
अठाई	१	८	१
वेला	६	१२	६
तेला	५	१५	५
चोला	१	४	१
छह	२	१२	२
पाच	२	१०	२
चोला	२	८	२
पचोला	१	५	१
अनशन और सथारा		६	
		९२	२८=१२०

पचोले के वाद १० दिन की तपस्या शुरू की। इस तपस्या के तीसरे दिन जेठ सुदी १ को वडे हठ से सथारा किया। स० १८६८ की जेठ सुदी ७ मगलवार को सथारा सम्पूर्ण हुआ। दो दिन पहले अनशन के तीसरे दिन से सथारा किया, जो सात दिन चला। ये नौ दिन जानने चाहिए।

जहा तक अनशन—सथारे का प्रश्न है उपर्युक्त तीनो विवरणो मे ७ दिन का वताया गया है। जय (शा० वि०) मूल मे लिखा है

ताराचन्दजी अनसण दिन इकताल कै।
डूगरसी दिन सात नो जी॥[1]

यां दशा मे तीजै दिन जेठ सुदि एकम दिने रे,
घणा हट सु सथारो पचखाय।
दोय दिन पहला सात सथारा तणा रे लाल,
एव नव दिन थी सथारो सीझाय॥
अठारै अडसठै जेठ सुदि सातम मगलवार ने रे,
डूगरसीजी सार्‌या निज काज।
महामुनीश्वर मोट का रे लाल,
थया दीपता सकल समाज॥

१. जय (शा० वि०), १।२६

इससे भिन्न उल्लेख जय (भि० ज० र०) मे है। उसमें कहा है

अणशण इकतालीस दिन, ताराचन्द उवेख।
दश दिन अणशण दीपतो, डूगरसी नैं देख ॥[१]

मुनि 'वेणीरामजी रो चौढालिया' मे निम्नलिखित गाथा है

डूगरसिघजी आमेट सथारो आयो दिन दस सुविचारो।
वालपणो सुधार्‌यो हो आतम कार्य आछी तरै ॥[२]

अन्य प्राचीन कृति पण्डित-मरण-ढाल मे भी दस दिन के सथारे का उल्लेख है ·

डूगरसी पैसठे अणसण कीधो, सथारो दस दिन रो सीधो ए।
आमेट शहर मे जाणजो, वालपणै प्रसिद्धो ए ॥[३]

पर ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि कृतियो मे जो सात दिन के सथारे का उल्लेख है, वही ठीक है, १० दिन का उल्लेख सही नही।

सथारे का वर्ष स० १८६५ कहा गया है, पर स० १८६८ का उल्लेख ठीक है।

आपकी तपस्या और सथारे की घटना पर टिप्पणी करते हुए कवि ने लिखा है

तपस्या कीधी जिन दिन थकी हो, सथारा लग मुनि सूर।
अडिग रह्या तपस्या ऊपरे हो, कर्म किया चकचूर ॥[४]

उक्त तपस्या और सथारे के समय आप मुनि वेणीरामजी के सिघाडे मे थे।[५] आपकी आयु उस समय २२ वर्ष की थी।[६]

कहा गया है कि भिक्षु के देहान्त के वाद जो संथारे हुए उनमे अठारहवा सथारा आपका है

साम भिक्खू काल गया पछे, दस अठ हुआ सथार।
अठारवो अणसण रिष डूगर तणो, शहर आमेट मझार ॥[७]

इस उल्लेख मे भी सथारा-स्थल आमेट कहा गया है।

आपके सथारे के समय धर्म-ध्यान विपयक जो उद्योत हुआ, उसका वर्णन इस प्रकार है .

सुणियो सथार रिष डूगर तणो हो, गावा नगरा जाण।
वादण आवे नर-नारिया हो, करै वैराग पचखाण ॥
क्षत्री कुल करषाण मे हो, आडी पूण रे माहि।
कसव छोड्या सथारा लगे हो, साचै मन चित्त ल्याय ॥

---

१. जय (भि० ज० र०), ५०।दो० ४
२ वेणीरामजी रो चौढालियो, ३।४
३. पण्डित-मरण ढाल, १।१०
४. नाथू (डूगरसी), २५
५. वही, ६
६. बम्ब (मुनि गुण प्रभाकर)
७. नाथू (डूगरसी), दो० १०

श्रावक आया लावा शहर ना हो, वाधा साधा रा पाय।
वैराग कियो मन भाव सू हो, हरप धरे मन माहि॥
आदरे श्रावक-श्राविका हो, वाधा साधां रा पाय।
उपवास वेला तेला आदरे हो, आठ दिन पचखाय॥[1]

अन्त की यात्रा का वर्णन निम्न रूप मे मिलता है

महिमा कीधी श्रावकां अति घणी हो, तेरे खण्डी कीधी त्यार।
दाम टका उछालिया हो, शोभा कीधी श्रीकार॥
धर्म तणो कारज नही हो, सोभा ससार मझार।
अनाद काल री रीत छे हो, ओ ससार बुहार॥[2]

आपकी प्रशस्ति मे जयाचार्य ने लिखा है

ताराचन्दजी डूगरजी ततसार के, पिता-पुत्र दोनूं भलाजी।
जन्म सुधार्यो उत्तम कर सथार के, याद आया मन हुलसोजी॥[3]

---

१. नाथू (डूगरसी) १९-२२
२. वही, २६-२७
३. जिन शासन महिमा, ७।१७

४४. मुनि जीवोजी

आप तासोल (मेवाड) के निवासी थे। जाति से वरल्या बोहरा थे। आपकी दीक्षा भिक्षु के हाथो सम्पन्न हुई थी।[1]

दूसरे विवरण से पता चलता है कि आपके पिताजी का नाम टीलोजी था और उन्हे छोड़ कर आप दीक्षित हुए थे।[2] आप अविवाहित थे। आपकी वडी मा साध्वी गुमानाजी (३३) आपसे पूर्व ही स० १८४४ एव १८४८ के बीच दीक्षा ले चुकी थी।[3] मुनि ताराचन्दजी और डूगरसीजी की दीक्षा सं० १८५७ के जेठ महीने मे हुई थी। आपकी दीक्षा तदनन्तर हुई थी।[4]

एक जगह उल्लेख है कि स० १८५९ मे आपका आचार्य भिक्षु से साक्षात्कार हुआ और आपने दीक्षा ग्रहण कर जीवन को सार्थक किया।[5] आपके ठीक बाद के मुनि जोगीदासजी की दीक्षा स० १८५८ की सिद्ध हो चुकी है।[6] वैसी स्थिति मे आपकी दीक्षा स० १८५९ की नही हो सकती। ऐसा भूल से लिखा गया है।

---

१. (क) जय (ऋ०रा०सु०), ४।८

जीवो मुनि तासोल नो रे, जाति वरल्या बोहरा जाण।
सयम लियो स्वाम पै, ओ तो सरल भद्र सुविहाण॥

(ख) ख्यात, क्रम ४४। इसमे जाति 'वरडया बोहरा' लिखा है। हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन), २५६ मे भी ऐसा ही है—

"जीवोजी तासोल ना रे वरडया वोहरा जात।"

२ सत गुण वर्णन, २०।दो०२

पिता टीलोजी परहर्या, चित्त मे पाया चैन॥

३. देखिए साध्वी प्रकरण, ३३

४. जय (भि०ज०र०), ५०।दो०५

तदनन्तर सयम लियौ, वरल्या वौहरा ताहि।
जीवौ मुनि तासोल नौ, महा मोटो मुनि राय॥

५ संत गुण वर्णन, २०।दो०३

समत अठारै गुणसठै, मगर पचीसी माहि।
भिक्खू गुरु पाया भला, लेखे जन्म लगाय॥

६. देखिए—प्रकरण, ४५

उल्लेख है कि दीक्षा ग्रहण करने के वाद आप भिक्षु के साथ केलवा पधारे।[1] भिक्षु का स० १८५८ का चातुर्मास केलवा मे हुआ था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आपकी दीक्षा स० १८५७ के आपाढ मास की समाप्ति के पूर्व हुई थी। आपने 'मगर पचीसी'—२५ वर्ष की पूर्ण युवावस्था मे दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के वाद स० १८५८ का आपका प्रथम चातुर्मास भिक्षु के साथ केलवा मे हुआ।

आपका स० १८५९ का चातुर्मास किसके साथ हुआ, इसका उल्लेख नही मिलता।

आपका स० १८६० का चातुर्मास भिक्षु के साथ सिरियारी मे हुआ। भिक्षु का स्वर्गवास इसी चातुर्मास मे हुआ था। भिक्षु के सथारे के समय आपको उनकी सेवा का दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ।

इस तरह भिक्षु के साथ आपके दो चातुर्मास हुए।[2]

आपकी प्रकृति वडी सरल और भद्र थी। विनय मे वडे सजग थे। आपको अपने मुनि जीवन मे प्रथम तीन आचार्यों की सेवा करने का सौभाग्य मिला।

सरल भद्र प्रकृति सखर, तीन पाट नी ताम।
सेव करी साचै मनै, धुन सुविनय मैं धाम ॥[3]

आचार्य भारमलजी स० १८७७ के फाल्गुन मास मे केलवा पधारे। अस्वस्थता के कारण स० १८७८ के चातुर्मास के वाद मिगसर तक वही विराजे। इस चातुर्मास मे आपको आचार्य श्री की सेवा का लाभ प्राप्त हुआ।[4]

स० १८८९ के शेपकाल मे आपका झारोल मे होने का उल्लेख प्राप्त है। आपके साथ

---

१. सत गुण वर्णन, २०।दो०२
तासोल मे दीक्षा ग्रही, आया केलवै एन।

२. (क) सत गुण वर्णन, २०।२.
भगत कीधी भिखू गुरु री भाव सु, दोय चौमासा देख रे।
छेहलै अवसर पुगो चाकरी, वारूवार विशेप रे॥
(ख) जय (भि०ज०र०), ५२।१५
जीवो मुनि हो भगजी गुण भण्डार।
स्वाम तणी हद सेवा सुसाझता॥

३. जय (भि०ज०र०), ५०।दो० ६।तथा
(क) सत गुण वर्णन २१।४
भिक्षु भारीमाल ऋपिरायनीजी भगत करी भरपूर।
सत रिछपाल सुहामणा जी कारण कर्म करूर॥
(ख) वही, २२।४
भिक्षु भारीमाख ऋपिराय नी, साचै मने करी सेव।
याद आया तन-मन उल्लसै, जीवो तज्यी अहमेव॥

४. हेम (भा०च०), ७।७

मुनि जवानजी (५०) और रामसुखजी (१०५) थे।[1]

आचार्य रायचन्दजी गुजरात की यात्रा पर निकले, तब आपकी भी साथ जाने की इच्छा थी। कोचेला तक आप साथ थे। वहां से आपको आचार्यश्री ने वापिस भेज दिया था।

आपका स० १८९० का चातुर्मास मुनि सरूपचन्दजी (६२) के साथ गोगूदा मे हुआ था। यही चातुर्मास काल मे आपका सागारी सथारापूर्वक देहावसान हुआ।[2]

इसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है

विचरत-विचरत मरुधर ने मेवाड मै, वले मालवा देश ढूढार रे।
मढीयो गुजरात जावा नै गुणनिलो, पिण आप पहुतो काल रे॥
कोचैला सू रायचदजी पाछो मोकल्यो, आप आगै गया गुजरात रे।
जीवै मुनि शहर गोगूदे चौमासो कीयो, सरूपचदजी रे साथ रे॥
कारण पडीयो शरीर मे चकेरा तणो, अणोदरी कीध अथाय रे।
ओषध भेखद पिण कीध घणा, पिण आयु नेडो लागो आय रे॥
पाचू साध सेवा कीधी प्रेम सू, सरूपचदजी भलो दीधो साज रे।
सागारी अणसण कीधो अति भलो, जीत नगारा रह्या वाज रे॥
परिणाम चढते आयुष्य पूरो कीयो, वधियौ नगर मे वैराग रे।
भाया वाया हर्ष सू तप अति आदर्‌यो, जीवो मुनि वड भाग रे॥
सवत अठारै नैवू वर्ष जाणजो, आसोज सुद आठम जणाय रे।
शुद्ध सयम पाल्या पहुचै सिद्धगति मजै, देवलोक मे सका नही काय रे॥[3]

---

१. मघवा (जय० सु०), १९।३-४
तिहा सरूप शशी प्रते स्वामी, ऋषिराय पुस्तक भोलाय ने।
दश ठाणे गुजरात कानी, विहार कियो थो शुभ मने॥
तिहा स्वरूपचन्दजी स्वाम ना, दर्शन करी जय शुभ मना।
शुभ मना जय रात्री इक रही, थया दोय भाया साथे जिहा॥
छ मुनिवर सग विहार करने, झारोल मे आया तिहा।
जीवो मुनि ने जवान स्वामी, हुता त्या कने उमही।
रामसुख मुनि कह्यु हु पिण, तुझ सगे आवू सही॥

२. (क) जय, (भि०ज०र०), ५०।७
भिक्खु भारीमाल पाछै भलौ, नेउए वर्ष निहाल।
गोघुदै अणसण गुणी, महामुनि गुणभाल॥

(ख) जय (शा०वि०), १।२७
सखर सथारो साझया आतम काज कै।
सवत अठारै नेउए जी॥

(ग) ख्यात मे गोगुदा का नाम नही है पर हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २५७ का अन्तिम चरण इस प्रकार है—
"अठारै निवै सथारो करी रे लाल, गोघुदै कार्य सराय।"

३. सत गुण वर्णन, २०।७-१२

आपको हटात् चक्कर आने लगे। इससे अस्वस्थ रहने लगे। आप ऊणोदरी कर लगे—थोडे आहार पर रहे। उपचार भी किया, पर कोई फायदा नही हुआ।

सथारा के समय मुनि स्वरूपचन्दजी आदि सभी सतो ने आपकी वडी सेवा की। आप सागारी अनशन किया, जो स० १८९० की आसोज सुदी अष्टमी को सम्पन्न हुआ। इस अवस पर नगर के लोगो मे वैराग्य भावना छा गयी। वहिनो और भाइयो ने वडे उल्लास के सा विविध तपस्याएं की।

आपने मारवाड़, मेवाड, मालवा और ढूढाड इन चार प्रदेशों मे विचरण किया था।[1] गुजरात के विहार के लिए सन्नद्ध थे, पर आचार्यश्री ने आपका चातुर्मास गोगूदे का फरमा दिया, जहा आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके सम्वन्ध मे 'महा मोटो मुनिराय' (भि०ज०र० ५।दो०२), 'जीवो मुनि महिमा नीलो, सकल सत सुखदाय' (सत गुण वर्णन, २०।१) जैसे शब्दो का व्यवहार किया गया है। ऐसे उद्गारो से आपके गरिमा मय जीवन का पता लग जाता है।

आपका व्यक्तित्व वडा ही गुण-सम्पन्न था। आप अत्यन्त विनयी थे। आचार्यों की आज्ञा शिरोधार्य करने मे प्रवीण थे। आचार्य भिक्षु के वाद आपने आचार्य भारमलजी एव रायचन्दजी की दत्तचित्त से सेवा की। मुनि खेतसीजी तथा अन्य संतो के साथ वड़े विनय-पूर्वक रहे। आप सवको अच्छे लगते, सवके प्रिय थे। गण मे आपकी वडी प्रतीति थी। सवको सुख पहुचाने वाले थे। आपके दिन ज्ञानार्जन मे वीतते। सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करते रहते, चर्चा सीखते। व्याख्यान मे रस लेते।[2]

आपका जीवन वडा कठोर, तपस्वी और सहिष्णु था। आपने २५ वर्ष तक केवल एक पछेवडी ओढी। ग्रीष्म ऋतु मे कडी धूप मे आतापना लेते।

२६ वर्ष तक आप प्रति वर्ष एक थोकडा करते रहे। जघन्यत पाच दिन और उत्कृष्टत ग्यारह दिन के थोकडे आपने किए। अन्य भी विविध तपस्याएँ आपने की। पाच-छह की वहुत तपस्या की। ध्यान और स्वाध्याय मे रत रहते।

आपमे वैयावृत्य की विशेष रुचि देखी जाती है। गोचरी मे उद्यमी थे। आचार्य भारमलजी, मुनि खेतसीजी आदि के साथ गोचरी करते।

आप स्वाध्याय-प्रेमी थे। आपने वत्तीसो सूत्रो का वार-वार वड़े हर्ष से अध्ययन किया।

आप अति ऋजु थे। आपका स्वभाव वडा भद्र और सरल था। प्रज्ञावान् थे। विवेकशील और विचारवान् थे।

आप कम वोलते और कम आहार करते थे। आपकी वाणी सरस और मधुर थी।

आपके क्रोध, मान, माया और लोभ वडे प्रतनु थे। परीषह से क्षुभित नही होते थे। चरण-करण मे प्रवीण थे।

वडे वैरागी थे। विगय का परिहार करते थे। वडे त्यागी थे। वड़े निर्मल थे।

आपके उपर्युक्त गुणो को प्रकट करते हुए प्रशस्ति मे जयाचार्य ने लिखा है

१. सत गुण वर्णन, २०।दो०४, २०।१
२. संत गुण वर्णन, २०।१
सीखैं छै दिन-दिन चरचा सिधंत नी रे, वखाण वाणी सू पूरो नेह रे।

१ भारीमाल सतयुगी भेलो रह्यौ, ब्रह्मचारी सू रूडै भाव रे।
गमतो लागै तीर्थ च्यार नै, जीवो मुनि चित्त चाव रे।।
पचीस वर्ष आसरै पिछाण जो, ओढण पछेवडी एक रे।
उन्हालै लेतो कठिन आतापना, विनय व्यावच मै वारू विशेष रे।।
थोकडा छवीस कीया मन स्थिर करी, वर्ष-वर्ष माहै एक रे।
जघन्य पाच उत्कृष्टा इग्यारे दिन तणो, ओर ही तपस्या अनेक रे।।
सूत्र तीस वाच्या घणा हर्ष सू, वारवार विख्यात रे।
गोचरी उठवा नै उद्यमी अति घणो, सतयुगी भारीमाल रै साथ रै।।[1]

२ जीवोजी स्वामी नै नित्य वदिये जी, सरल घणा सुवनीत।
आज्ञा आराधी आछीतरै जी, त्यारी गण मे घणी प्रतीत।।
प्रकृति भद्रिक प्रज्ञा भलीजी, अल्पभासी अल्प आहार।
विनय विवेक विचार मे जी, सकल जीवा सुखकार।।
पाच पट आठ तपस्या घणीजी, उन्हालै अधिक आताप।
शीत कालै वहु सी धम्योजी, ध्यान सज्झाय मन थाप।।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय नी जी, भगत करी भरपूर।
सत रिछपाल सुहामणाजी, काटण कर्म करूर।।
शील सुमता रस सागरूजी, पतला क्रोध मान माया लोभ।
चरण करण मे चातुर घणा जी, परीसह उपसर्ग अक्षोभ।।
समण मुद्रा कर शोभता जी, घणी विगय नो परीहार।
त्यागी वैरागी हीयै निर्मलाजी, वदणा करू वारूवार।।[2]

३. धन्य धन्य जीवो मुनि जगतारक, जगत उद्धारक जाणी।
सुविनीता मे जीवो शिरोमणी, सुदर मधुरी वाणी।।
प्रकृति भद्रिक घणी जीवा मुनि, वर पतली च्यार कषायो।
सुखदाइ गण मे महा गिरवो, सुयश लोक मे पायो।।[3]

ख्यात मे उल्लेख है—"दिन मे गिनती के शब्द वोलते थे। महामुनि, महाध्यानी थे।"
हुलास (शा०प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २५६, २५७ मे लिखा है

प्रकृति भद्रक विनयी घणा रे लाल, दिन मे गिणतीरा शब्द वोलता।
महाध्यानी महिमा निलारे, महा मोटा मूनिराय।।

दूसरो को तारने के लिए आप पोत की तरह थे।

भिक्षु गण मे जीवो मुनि जिहाज कै, मधुर अल्प वच जेहनाजी।[4]

---

१ सत गुण वर्णन २०।३-६

२. वही, २१।२-६

३ वही, २२।१,३

४ जय (शा०वि०), १-२७।तथा जिन शासन महिमा, ७।२०
जिन मारग मे मुनि लिहाज कै, सरल भद्रिक सुहामणो जी।
पचम आरे प्रत्यक्ष भवोदधिपाज के, सेव करी स्वामी तणी जी।।

मुनि हेमराजजी ने लिखा है

"जीवो मुणी घणो गुणवत, साधां मे शोभा घणी जी।"[1]

आपके विशेष गुण की चर्चा करते हुए जयाचार्य ने लिखा है :

जीवोजी मुनि मोटका रे, त्या मैं विनय तणो गुण जाण रे।
ते ब्रह्मचारी छै थेट रा रे त्यानै वंदो चतुर सुजाण रे॥[2]

आपका साधु-जीवन ३३ वर्ष व्यापी रहा।[3]

---

१. हेम (भा०च०), ७।७

२. जिन शासन महिमा, १।२०

३. वम्व (मुनि गुण प्रभाकर) मे ३० वर्ष लिखा है वह अशुद्ध है।

४५. मुनि जोगीदासजी

आपके विषय मे उक्ति है "वय बालक महा वैरागियो"[1] अर्थात् बाल्यावस्था मे भी बडे वैरागी थे। ख्यात मे कहा है "वडा आच्छा साध हा"— बडे अच्छे साधु थे।

आपका जन्म-स्थान केलवा (मेवाड) था। आपकी पत्नी का नाम कुनणाजी था। आपका विवाह बाल्यावस्था मे ही हो गया था, पर इससे आपकी सहज वैराग्य-वृत्ति मे अन्तर नही आया। पत्नी और ऋद्धि छोडकर आपने तीव्र वैराग्यपूर्ण भावो से छोटी वय मे ही दीक्षा ले ली। आप भिक्षु द्वारा प्रव्रजित किए गये थे।[2]

वालपणे व्रत आदर्‌या रे, जोगीदास जसवत।
छाड त्रिया ऋध छिनक मे, थयो मोटो सत महत ॥[3]

यति हुलासमलजी ने आपका दीक्षा-सवत् १८५७ बतलाया है।[4] आपसे ज्येष्ठ मुनि श्री जीवोजी की दीक्षा स० १८५७ के ज्येष्ठ अथवा आषाढ महीने मे हुई थी। आपकी दीक्षा उसके वाद स० १८५८ के केलवा चातुर्मास मे हुई थी। आप केलवा के ही थे। चातुर्मास के आरभ

---

१ सत गुण माला, ८।८५

२. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २५६ मे निम्न उल्लेख मिलता है
पछै काका वावा झगडा किया रे, भिक्षु गिणत न राखी काय।
दीक्षा के समय या वाद मे ऐसे उत्पात का अन्य किसी कृति मे उल्लेख नही है। यह वात मुनि भगजी (४७) के जीवन-वृत्त से मिलती है। सभव है, वहा का वर्णन भूल से यहा भी लिखा गया हो।

३. जय (ऋ० रा० सु०), ४।६
जय (भि० ज० र०), ५०।१ मे भी ऐसा ही उल्लेख है
जोगीदासजी स्वामी जोरावर, तदनन्तर त्रिया त्यागी।
स्वाम भीखणजी सजम दीधो, बालपणै वड वैरागी ॥

४ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, २५८
जोगीदासजी केलवा तणा रे, वारय वये त्रिय-त्याग।
दिक्षा लीधी वड वैराग थी रे लाल, अठारै सत्तावन भिक्षु हस्त वड़भाग ॥
सेठिया मुनिगुण वर्णन ने भी दीक्षा सवत १८५७ लिखा है। सभवत. यह शासन प्रभाकर के आधार पर ही है।

मे आचार्य भिक्षु, मुनि भारमलजी, खेतसीजी, उदैरामजी चार सत थे। आपकी दीक्षा के बाद पाच सत हुए।

स० १८५९ मे पीसागण मे आपने चौविहार संथारा किया, जिसका प्रथम उल्लेख निम्न गाथा मे हुआ है·

जोगीदासजी पीसांगण शहर में, गुणसठे धर्म रागो ए।
वालपणै चलता रहया, करी च्यारू ही आहारना त्यागो ए ॥[1]

आप सथारे के समय मुनि हेमराजजी के सिघाडे मे थे। मुनि हेमराजजी के सान्निध्य मे छह सथारा होने की उल्लेख पाया जाता है, उनमे आपका नाम प्रथम स्थान पर है।[2]

मुनि हेमराजजी का सवत् १८५९ का चातुर्मास सिरियारी मे था। इस चातुर्मास में मुनि रामजी (२३) और आप उनके साथ थे। चातुर्मास के बाद आपने मुनि हेमराजजी के साथ सिरियारी से विहार किया, पीसागण पधारे और वही आपका देहावसान हो गया। ऐसी स्थिति मे आपका स्वर्गवास १८५९ मे माघ सुदी ७ के पूर्व ही संभव है। कारण, उक्त मिति के लिखित मे मुनि हेमराजजी और रामजी के हस्नाक्षर होने पर भी आपके हस्ताक्षर नही है।

प्रश्न किया जा सकता है कि सभव है आप सवत् १८५९ के सिरियारी चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी के साथ नही रहे हो। यह भी सभव है कि १८५९ के माघ सुदी ७ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर अन्यत्र रहने से न हुए हो और आप उक्त मिति के वाद मुनि हेमराजजी के साथ हुए हो। मुनि हेमराजजी सवत् १८६० का चातुर्मास पीसागण मे करने के लिए १८५९ के आषाढ मे वहा पधारे हो और उस समय आपका देहान्त हुआ हो।

मुनि हेमराजजी ने स० १८५९ माघ सुदी ७ के लिखित के कुछ दिन वाद भिक्षु के

---

१. पडित-मरण ढाल, १।४ तथा देखे

(क) जय (भि० ज० र०), ५०।३-४

अल्प काल मै आचाणचक रौ, शहर पीसागण मैं सुणियौ।
चौविहार सथारौ चोखौ, थिर चित्त स्यू मुनिवर थुणियौ॥
गुणसठै वर्ष मुनि गुणवतौ, पूज्य छता परभव पहुतौ।
आतम तार्‌यौ जन्म सुधार्‌यौ, हियै निर्मल ऋपराज हुतौ॥

(ख) जय (शा० वि०), १।२८ .

वालक वय मे त्रिया छाड व्रत धार कै, जोगीदासजी गुण निलो जी।
पिसागण मे वर्ष गुणसठै सार कै, चौविहार सथारो कियो जी॥

(ग) ख्यात मे पीसागण का उल्लेख नही है, पर हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २६० मे वहा आराधक पद पाने का उल्लेख है .

गुणसठै पिशागण मझै रे लाल, शुद्ध आराधक पद पाय॥

२ सत गुण वर्णन, १।१७, १९

पट अणसण त्या कनै हुवा, त्याने वैराग्य चढ़ायो भरपूर।
जन्म-मरण त्यारा मेटवा, उपगार कियो वडसूर॥
जोगीदासजी स्वामी जीवण जी, सुखजी स्वामी भोपजी जाण।
सामजी नै स्वामी रामजी, ऐ छह तपसी वखाण॥

दर्शन किए तब केवल मुनि रामजी (२३) आपके साथ थे। आप (मुनि जोगदासजी) का स्वर्गवास हो जाने से दो ही ठाणा रहे। सवत् १८५९ माघ सुदी ७ के लिखित मे दोनो के हस्ताक्षर है, पर आप (जोगीदासजी) के नही है। लिखित की एक प्रति मे मुनि ताराचन्दजी और नाथोजी(४०) को छोडकर विद्यमान सबके हस्ताक्षर है।

आप वडे साहसी, स्थिरचित्त हृदय के अति निर्मल और निर्मोही सन्त थे। आपको 'सच्चा योगी' कहा गया है। आपने प्राप्त भोगो का त्याग किया।

शहर कैलवा रा वासी सुद्ध, जोगीदास साचौ योगी।
सखर सौभागी ममता त्यागी, भल सुमति पिण नही भोगी॥

ख्यात (क्रम ४५) मे उल्लेख है "सत जोगीदासजी स्त्री ने घर मे छोडकर सयम लियो। पाछे श्री भारमलजी स्वामी समीप आपकी स्त्री श्री कुनणाजी सयम लियो। घणा वरस सयम पाल्यो। वडा उत्तम सती हुया।

"आप रा नणद तथा जोगीदासजी स्वामी रा सागी वहिन श्री दोलांजी पिण सजम" लियो। तपस्या मोकली कीधी। स० १८६७ दिपाली ने सथारो कर आतम का कारज सारया जोगीदासजी री दो वेटी खेमाजी परणोडा तथा हस्तुजी कुवारी री दीक्षा स० १८०९ मे हुई थी।"

यह ठीक है कि मुनि जोगीदासजी की पत्नी कुनणाजी ने उनके देहान्त के वाद आचार्य भारमलजी के आचार्यत्व-काल मे दीक्षा ली थी। इसका उल्लेख जय (शा०वि०) मे भी प्राप्त है

सती कुशाला भीलवाडा नी, कैलवै री कुनगा धारी जी काई के० ।
जोगीदासजी चल्या चरण तसु, तास त्रिया अति सुखकारी जी काई ता० ॥ स०[1]

कुनणांजी की दीक्षा स० १८६२ मे वैसाख सुदी १३ के पहले हुई थी, पर दोलाजी खेतसीजी की भतीजी थी, मुनि जोगीदासजी की नही। उन्ही का स्वर्गवास स० १८६७ मे हुआ था।

सगी वहन सतयुगी स्वाम नी, काकडोली सासर न्हाली जी काई का० ।
परभव वर्ष सतसठै आसरै, दोलां अणसण दीवालीजी काई दो० ॥ स०१ ॥[2]

इसी तरह खेमाजी और हस्तुजी जिन जोगीदासजी की पुत्रिया थी, उनकी दीक्षा जयाचार्य के समय मे स० १९१९ मे हुई।[3] और भिक्षु के वतयुारे के जोगीदासजी उनसे सर्वथा भिन्न थे। इस तरह उक्त पुराने विवरण का उत्तरार्द्ध भिक्षु के वरतारे के मुनि जोगीदासजी के साथ भूल से जोडा गया है।

---

१. जय (शा० वि०), ४।४
२. वही, ४।५
३. मघवा (ज० सु०), ४७। दो० ४

मोखणदे थी अनि मुदा, जोगीदास (१९०) सुविचार।
सती हस्तु खेमा पिता, लीधो चरण तिवार॥

आपके सम्बन्ध मे कहा गया है·

जिन शासन मे जोगीदासजी सत के, बालक वय मे संयम लीयो जी।
सुखदायी सुवनीत घणा जशवत के, अचतरया भिक्षु ना प्रताप सू जी ॥[1]

यति हुलासचन्दजी ने लिखा है

भण्या गुण्या भारी घणा रे लाल, दिल रा वडा दरियाव ॥
अभयदान दाता खरा रे, इर्या भापा ये अधिक सदाय ॥[2]

१ जिन शासन महिमा, ७।१६
२ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २५६ का उत्तरार्द्ध एवं २६० का पूर्वार्द्ध।

४६. मुनि जोधोजी

आपकी जन्मभूमि करेडा (मेवाड) थी। आप जाति से मारू थे। आपकी दीक्षा स० १८५६ माह सुदी ७[1] के पहले पाली[2] (मारवाड) मे सम्पन्न हुई। दीक्षा किसके द्वारा सम्पन्न हुई, इस विषय मे निम्न उल्लेख मिलते है

१ तदनन्तर जोधो मारू ते, गाम केरडा नौ गुणियौ।
स्वाम भिक्खु स्वहथ सजम शुद्ध, भारी तपसी तप भणियौ॥

जय (भि० ज० र०), ५०।५

२. जोधो मारू करेडा तणो रे, स्वाम सयम दियो सार।

जय (ऋ० रा० सु०) ४।१०

३. जोधो मारू सयम भिक्षु पास कै, तपसी तप वहुलो कियो जी।

जय (शा० वि०), १।२६

४. करेडा ना वासी। जाति मारू। स० १८५६ साम राम पे सयम लियो।

जय (शा० वि०), १।२६ वार्तिक

५. वासी ग्राम करेडा का। जाति मारू। स० १८५६ साम राम पै दीक्षा लीधी।

ख्यात, ४६

६. जोधो जी मारू गाम करेडा तणा रे, गुणसटै सयम भार।

हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २६१

प्रथम तीन कृतियो मे दीक्षा सवत् का उल्लेख नही है। उनमे दीक्षा भिक्षु के हाथ से

---

१ इस मिति के लिखित मे आपके हस्ताक्षर पाये जाते है।

२ मुनि भोपजी (४६) की दीक्षा स० १८५६ मे पाली (मारवाड) मे हुई उल्लिखित है (प्रकरण-४६, पृ० ५१५, पा० टि० १, २)। स० १८५६ का भिक्षु का चातुर्मास पाली मे था। अत इनकी दीक्षा या तो चातुर्मास मे हुई या मिगसर वदि १,२ के दिन। उनसे ज्येष्ठ आप, भगजी (४७) और भागचन्दजी (४८) की दीक्षा भी स० १८५६ की होने से पाली के अतिरिक्त अन्य स्थान मे नही घटती। दीक्षा चातुर्मास मे हुई अथवा मिगसर वदि १ या २को।

हुई, उल्लिखित है।[3] वाद के दो वृत्तो मे दीक्षा सवत् है। उनके अनुसार दीक्षा मुनि साम राम के हाथो हुई थी। ये दोनो वृत्त एक-दूसरे पर आधारित है, इसमे सन्देह नही। जय (शा० वि०) लिखा जा चुका तव मुनि साम-राम द्वारा जोधोजी की दीक्षा की बात सामने आई, और उसे वार्तिक रूप मे जोड दिया गया। अन्तिम कृति हुलास (शा० प्र०) मे भिक्षु अथवा मुनि साम-राम किसी द्वारा दीक्षित होने का उल्लेख नही है।

उक्त उद्धरण मे भिक्षु के हाथ से दीक्षा होने का उल्लेख करने वाले उद्धरण ही सही प्रतीत होते है। निम्न विवेचन से यह स्पष्ट होगा।

स० १८५८ का भिक्षु का चातुर्मास केलवा (मेवाड़) मे था। उसके वाद आपने मारवाड की ओर विहार किया था। मारवाड का विहार ही भिक्षु का अतिम विहार था। इस विहार-काल मे भिक्षु द्वारा साधुओ की ४ दीक्षाए होने का उल्लेख पाया जाता है।[2] इन चार की पूर्ति आपकी दीक्षा को गर्भित करने से ही होती है। सर्वप्रथम आपकी ही दीक्षा हुई थी। अत: इसमे सदेह नही रह जाता कि आपकी दीक्षा भिक्षु द्वारा ही सम्पन्न हुई थी।

स० १८६० के चातुर्मास मे भिक्षु द्वारा कोई दीक्षा सम्पन्न नही हुई। अतः चारो ही दीक्षाए स० १८५९ मे सम्पन्न हुई थी, इसमे संदेह नही रहता। स० १८५९ के पाली चातुर्मास के वाद उस वर्ष के शेषकाल के विहार मे मार्गशीर्ष वदि १ और माघ सुदी ७ के वीच के समय मे आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई।

इस सम्वन्ध मे सभी कृतिया एक मत है कि मुनि जोधोजी वहुत वड़े तपस्वी थे। जयाचार्य ने लिखा है. "महा तपसी महिमा निलो, शुद्ध सरल भद्र सुखकार।"[3]

महान तपस्वी होने के साथ-साथ आप वडे भद्र, सरल और स्वच्छ हृदय के संत थे।

आपकी तपस्या का वर्णन इस प्रकार मिलता है.

(१) १३ का थोकडा (स० १८६० प्रथम चातुर्मास) मे।

---

१. जय (भि० ज० र०), जय (ऋ० रा० सु०) के उल्लेखो से स्पष्ट है कि दीक्षा भिक्षु के हाथ से हुई थी। हेम (भि० च०), ५।१-२ और वेणी (भि० च०), ५।४-५ भी इसका समर्थन करते है। (उद्धरणो के लिए आगे टिप्पणी देखे)

२ (क) हेम (भि० च०), ५।दो० १-२

वयाली वरसां लग पूज जी, वोहत कीयो उपगार।
विचरत विचरत आविया, मुरधर देश मझार॥
उपगार कीयो दोय वरस मे, मारवाड मे आय।
च्यार साध सात साधव्या हुई, त्या सजम लीयो सुखदाय॥

(ख) वेणी (भि० च०), ५।दो० ४-५ ·

करता पर उपकार, आया मुरधर देश मझार।
चरम उपकार हुओ घणो जी॥
चार भाया ने वायां सात, त्यां दीष्या लीधी जोडे हाथ।
वेरागे घर छोडियाजी॥

३. जय (ऋ० रा० सु०), ४।१४

(२) ४२ का थोकडा (स० १८६१ द्वितीय चातुर्मास) मे ।
(३) ४५ का थोकड़ा
(४) ४७ का थोकडा
(५) ३० का थोकडा
(६) ३१ का थोकडा
(७) २६ का थोकडा
(८) ६० का थोकडा
(९) ७५ का थोकडा (पुर चातुर्मास मे)

उपर्युक्त सारी तपस्याए आछ के आगार से की गई थी ।[1]

हुलास (शा० प्र०) मे इस प्रकार उल्लेख है :

जोधोजी मारू गाम करेडा तणा रे, गुणसठै सयम भार।
पहिलै चोमासै तेरा रो थोकडो रे लाल, दूजै चोमासै वयालीस उदार ।।
पछै पैताल सेताल तीस इकतीस किया रे, किया छाइस ने वलि साठ ।
पुर मे पिचहत्तर किया रे लाल, आछ आगारे वह्या शुद्ध वाट ।।[2]

आपका स० १८७४ का चातुर्मास मुनि हेमराजजी के साथ गोगुन्दा मे था। उस समय आप द्वारा ४६ दिन की तपस्या करने का उल्लेख मिलता है ।[3]

इसके उपरान्त आपने उपवास, वेला, तेला, चोला, पचोला आदि की तपस्याए भी अनेक वार की ।[4]

आपके सथारे के सम्वन्ध मे प्राचीनतम उल्लेख इस प्रकार मिलता है

जोधोजी तपसी जोरावर करी, अणसण अडतीस दिन रो रूडो ए ।
पिचतरे वर्ष गाव कोचले, हुवो साचेलो सूरो ए ।।[5]

इस उल्लेख के अनुसार आपने स० १८७५ मे कोचले मे सथारा किया, जो ३८ दिन मे

---

१. (क) ख्यात, क्रम ४६
   (ख) जय (शा० वि०), १।२९ वार्तिक
२ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २६१,२६२
३. जय,(हे० न०), ५।२५
   जोधराज किया छियाली रे, सरूपचन्द चवदे दिन निहाली रे।
   भीम द्वादश दिन सुविशाली ।।
४. (क) ख्यात, ४६
   (ख) जय (शा० वि०), १।२९ वार्तिक
   (ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, गा० २६३
   "उपवास वेला तेला पचोला वहु कियो रे।"
५. पण्डित मरण ढाल, १।१६

४७. मुनि भगजी

आप खैरवा के निवासी थे। जाति के वैद मुहता थे। जब दीक्षा के लिए तैयार हुए, तब काका-बावा के लडको ने बहुत हो-हल्ला मचाया। कहा · "हमारी आज्ञा नही है।" लोग आपसे व्यग मे पूछने लगे "दीक्षा तो लेते हो, पर आज्ञा किसकी है ?" आप उत्तर देते—वड़ी वहिन है उसकी।"[१]

वाद मे भिक्षु ने आपकी वडी बहिन की आज्ञा से स० १८५६ मे पाली (मारवाड़) मे आपको दीक्षा दी। स० १८५६ माघ सुदी ७ के लिखित पर आपके हस्ताक्षर देखे जाते है अत आपकी दीक्षा उसके पूर्व ही सम्पन्न हुई थी।

दीक्षा के बाद आपके चाचा और वावा के लडको ने वडा ववडर उठाया। हो-हल्ला करने लगे "हमारी आज्ञा नही थी, तव दीक्षा कैसे दी ?" भिक्षु ने उत्पात की परवाह नही की।[२] क्योकि उन (काका-वावा के लडको) की आज्ञा प्रयोजनीय नही थी। बड़ी वहिन की ही आज्ञा आवश्यक थी.. वह मिल चुकी थी। भिक्षु ने भगजी से पूछा · "ये तुम्हे उठाकर ले गये, तो क्या

---

१. इस विपय से सम्वन्धित एक गाथा जय (शा० वि०), १।४६ वार्तिक मे उद्धृत है, जो इस प्रकार है

भगो वैरागी दीक्षा लेवै, लोक कहे आज्ञा किणकी।
भगो वैरागी कहै म्हारै, बडी बहिन छै जिणकी ॥
सत गुरु एहवो भाख्योजी।
साभल ने भगा वैरागी शक मूल मे राखोजी ॥

२ (क) जय (भि० ज० र०), ५०।८ .
शहर खैरवा रा भगजी शुद्ध, वर आज्ञा दो वहिन वडी।
सजम भिक्खु स्वाम समाप्यौ, सखर विनय थी शोभ चढी ॥

(ख) जय (शा० वि०), १।४६ वार्तिक

(ग) ख्यात, क्रम ४७

(घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २६६ .
भगजी वैद मुहता खैरवा तणा रे, वड़ी बहन री आज्ञा लिराय।
स्वाम पासे सयम लियो गुणसठे रे लाल,
काका वावा रा भाई झगडया पिण गिणत न थाय ॥

करोगे ?" भगजी बोले : "यदि वे जबरदस्ती घर ले गये तो मुझे चारो आहार करने का त्याग है ।"[1]

स० १८६० का आचार्य भिक्षु का चातुर्मास सिरियारी मे था। मुनि भगजी साथ थे। ज्ञातियो ने वहा आकर फिर बडा हो-हल्ला मचाया, पर भिक्षु भयभीत नही हुए।[2]

मुनि भगजी वडे सुविचारक और विनयी थे। आपके सम्बन्ध मे लिखा है

> जाति वैद मुहता जाँणजो रे, भगजी गुण भण्डार।
> स्वाम सयम दियो शोभतो, ओ तो विनयवान सुविचार ॥[3]

आपने प्रथम तीनो ही आचार्यो की वडी ही भक्ति-भाव से सेवा की थी

> जाति वैद मूहता जशधारी, भगजी भक्ति करी भारी।
> भिक्खु भारीमाल ऋषिराय तणी भल, पेखत ही मुद्रा प्यारी ॥[4]

'भगजी भगत मे जी' (वेणी (भि० च०), ५।१३)—भगजी विनय-भक्ति मे वडे दक्ष थे। भिक्षु के सथारे के समय आप सिरियारी मे उनकी सेवा मे थे। आपकी प्रशस्ति मे मुनि हेमराजजी ने लिखा है

> भगजी कीधी हो स्वामीजी री सेवाभगत।
> जिण सू साधा मे सोभा घणी जी ॥[5]

इसी विषय मे जयाचार्य ने लिखा है

> जीवौ मुनि हौ भगजी गुणना भण्डार।
> स्वाम तणी हद सेवा सुसाझता ॥[6]

आचार्य भारमलजी का अतिम चातुर्मास (स० १८७८) केलवा मे था। आप उनकी सेवा मे थे। अतिम अवस्था मे आचार्यश्री का गात्र शिथिल पडने लगा। आप ताड गये। आप ही ने साधु खेतसीजी एव रायचन्दजी का ध्यान आकर्षित करते हुए आचार्यश्री को चौविहार सथारा करा देने के लिए सावधान किया था।

> देखता-देखता ढल गया सामी, वहुत न लागी वेला वारो।
> भगजी वैरागी कहै स्वामीजी जावै छै, कराय द्यो सर्वथा पूर्ण सथारो ॥[7]

स० १८६६ मे मुनि हेमराजजी ने पाली मे चातुर्मास किया। अस्वस्थता के कारण चातुर्मास की समाप्ति पर विहार नही कर पाये। अस्वस्थता का समाचार सुनकर आचार्य

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १९०
२. वही, दृ० १९० जव वे किसी तरह रुके नही, तव सरीयारी ना भाया राज मे कहिनै गाम वारै कढाय दीया।
३. जय (ऋ० रा० सु०), ४।११
४. जय (भि० ज० र०), ५०।९
५ हेम (भि० च०), ५।१२
६ जय (भि० ज० र०), ५३।१५
७ हेम (भा० च०), ९।७

भारमलजी ने आपको मुनि हेमराजजी की सेवा के लिए पाली भेजा। मुनि जवानजी (५०) भी साथ भेजे गये।[1]

स० १८९७ मे आप देवगढ विराज रहे थे। गिरदाराजी दीक्षा लेने के लिए उदयपुर जयाचार्य के पास जा रही थी। बीच मे आपके देवगढ मे दर्शन किए।[2]

आचार्य ऋषिराय के शासन-काल मे आपने पण्डित-मरण प्राप्त किया। आपका देहावसान स० १८९९[3] मे हुआ था।

ऋषराय तणे वरतारे रूडो, पण्डित मरण मुनि पायो।
निनाणुवे आतम नै निन्दी, शुद्ध परिणामे शोभायो॥[4]

आप भीलोडा (भीलवाडा) मे थे। जेठ वदि १३ की रात्रि के प्रथम पहर में आप स्वर्गस्थ हुए। मुनि शिवजी (८२), जीवोजी (४४) एव शिवचन्दजी (१३६) सेवा मे थे। अन्त तक तीनो ने आपकी बडी सेवा की और सहयोग दिया।

अंतिम समय मे मुनि शिवजी (८२) ने आपकी जो सेवा की, उसे निम्न शब्दो मे स्मरण किया गया है.

सिवजी सामी सरल सभावी सूर रे, सेवाज हो सेवा कीधी साच मन वदको।
थेट निभाया कर्म कीया चकचूर रे, कीर्ति हो किरत कीज्यो भवीया शिवचन्द की॥
चर्म चाकरी मे पिण साजी आय रे, प्रसन्न हो प्रसन्न होइने मुनिवर पागरचा।
सत ऋपिनो सरणो भव भव माय रे, सोनेज हो सोने होइज्यो मुनिवर लांवरया॥
विचरत २ सैहर भीलोडे जाय रे, देखत ही देखत सटको कर चलतो रह्यो॥
वरस नीनाणूवै समत अठारे जाण रे, जेठज हो जेठ विध तेरस दिन की रात मै।
परभव पूगा प्रथम पौहर मे प्राण रे, वैदज हो वैद मूहता वाज्या जग जात मै॥[5]

आपने ४० वर्ष से कुछ[6] अधिक समय तक साधु-जीवन वहन किया।

---

१. हेम दृष्टात, दृ० ३४
२. जय (सरदार सुजश), ८।२८.
त्यां साथै आवी सती हो, शहर देवगढ माय।
भगजी स्वामी ना भला हो, दर्शन करी हरपाय॥
३. वम्व (मुनि गुण प्रभाकर) मे स० १८८९ लिखा है, पर वह ठीक नही है।
४. जय (भि० ज० र०), ५०।१०। ख्यात, क्रम ७४, जय (शा० वि०), १।४६ वार्तिक
५. मुनि भगजी गुण वर्णन, ढाल गा० ८-११
६. जिन शासन महिमा, ७।४१ मे लिखा है:
भगजी लीधो संयम भिक्षु पास के, ऋपिराय तणे वारे चल्या जी।
छव वर्षे संयम पालीयो जी॥
यहां 'छव वर्षे सयम पालियोजी' यह वात गलत लिखी गयी है।

आप साहित्यिक प्रतिभा से सम्पन्न थे। आपने वहुत लेखन कार्य किया।[1] साधु-साध्वियो को कृतियो की प्रतिलिपिया कर देते।

आप पुस्तको के दो जोडो का वोझ उठाया करते थे, जो लगभग ६ सेर होता है। एक कधे पर स्वय अपने द्वारा लिखित ग्रन्थो के जोड का वोझ उठाते तथा दूसरे कधे पर शासन के ग्रन्थो के जोड़ का।

जयाचार्य ने लिखा है

भगजी ऋषि रै वै जोडा विहु खध कै, जोडो एक पाती तणो जी।
वीजो जोडो हस्त लिख्यो वहु सध कै, नीत इसी चल्या निनाणुए जी॥[2]

अपना जोड़ा भारी होने पर भी शासन का जोड़ा उठाये बिना नही रहते थे। ऐसी सेवा भावना वाले थे।[3] ऐसे विनय गुण के कारण शासन मे आपकी वडी शोभा हुई है।

ख्यात, क्रम ४७ मे लिखा है "दिल रा दरियाव भण्या गुण्या नीतवान ईर्या-भाषा मे सचेत घणा" अर्थात् आप अतीव उदारमना, वहुश्रुतव नीतिमान थे। ईर्या, भाषा आदि समितियो की परिपालना अतीव जागरूकता के साथ करते थे।

आपके विशेष गुण का उल्लेख करते हुए जयाचार्य ने लिखा है

भगजी स्वामी अति शोभता रे, त्या मै लिखणा रो गुण होय।
साधु साध्वियो ने लिख दीयै रे, त्यानै वदो सहू कोय रे॥[4]

साधु जीवोजी ने आपका गुण कीर्तन करते हुए लिखा है

भणिया गुणिया कठकला मे ऐन रे, प्रश्न हो प्रश्न पडुत्तर विध जाणै घणी।
पायो पायो चरित गुणा मे चैन रे, सुरत हो सुरत मुद्रा अधिक सुहामणी॥
दीधो दीधो भव जीवा ने साज रे, विविध हो विविध गुण वगस्या कीधा समजणा।
उत्पत वुध की जोड कला कविराज रे, साताज हो साताकारी साधा ने गुण घणा॥
चरचा पद सीखावण अधिकी चूप रे, तवन हो तवन सज्झाय खजीनो थो खरो।
ओपै गत मत आछी भात अनूप रे, मार्ग हो मार्ग वतावो मुनिवर मोख रो॥
मुसलमान महेसरी नै ब्राहमण जाट रे, साधुज हो साधु साधवी श्रावक श्रावका।
भूप कुलादिक भोजक चारण भाट रे, वारूज हो सीखाया चरचा पद जात स्वभाव का॥

---

१. जय (शा० वि०), १।३० वार्तिक
२. जय (शा० वि०), १।३०
३. (क) जय (शा० वि०), १।३० वार्तिक
(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २६७, २६८

पछै पोतै पिण लिखणो घणो कियो रे, एक जोडी तो पोतारी नेश्राय।
एक खधै दूणी समचा तणी रे लाल, दूजै खाधै जोडी लिवाय॥
पोतारी जोडी रो वोझो मोकलो रे, तो पिण समचारी तो लिराय।
एहवा नीतवत मुनिवर हुता रे लाल, घणा वर्ष चारित्र पाली निनाणवे स्वर्ग सिधाय॥

जोडी अर्थात् दो पोथी। एक पोथी मे लगभग ३ सेर वजन समझना चाहिए।

४ जिन शासन महिमा (सत गुण माला) १।२२

जिण धर्म सू बहु रागी कीधा जीव रे, गैहराज हो गैहरा गंभीर गुण में गाजिया।
आलोचे ए ऊंडो अर्थ अतीव रे, गुणेज हो गुण नीपन नाग आनजी वाजिया ॥[1]

आप बड़े विद्वान थे। कंठ-कला मे प्रवीण थे। प्रश्न करने और प्रश्नोत्तर में प्रत्युत्पन्न-मति थे। आप मुमुक्षु लोगों को अपने उपदेशों से लाभान्वित करते रहते थे। अनेक लोगों को प्रतिबोध दिया। प्रत्युत्पन्नमति युक्त कवि थे। काव्य-कला मे चतुर थे। चर्चा सिखाने की बड़ी रुचि थी। स्तवन आदि का आपके पास प्रचुर खजाना था। आप मुसलमान, हिन्दू, जैन, अजैन सबको जात्यानुकूल धर्मपद सिखाते। आपने अनेक लोगों को जैन धर्म का अनुरागी बनाया था। आप गहरे गवेषक थे।

दिन कों रात मैं।
हुंता वाज्या जग जात मैं ॥
ग्रहन किया।

1. मुनि भगजी गुण वर्णन, ढाल, २-७

४८. मुनि भागचन्दजी

आप वीदासर (थली) के निवासी थे। आप ओसवाल थे। जोगड थे। आपने स० १८५९ मे आचार्य भिक्षु के हाथ से दीक्षा ग्रहण की थी।[1] ज्येष्ठ सत जोधोजी (४६) और भगजी (४७) की तरह आपकी दीक्षा भी पाली (मारवाड) मे सम्पन्न हुई।

दीक्षा लेने के वाद आप कई वर्ष तक गण मे रहे। बाद मे द्वितीय आचार्य भारमलजी के युग मे अलग हो गये। आप कब पृथक् हुए, इसका उल्लेख नही मिलता।

देखा जाता है कि सवत् १८६२ का आपका चातुर्मास मुनि हेमराजजी के साथ जेतारण मे था। मुनि सुखरामजी (३५) और जीवणजी (५?) साथ थे। इस चातुर्मास मे मुनि जीवणजी ने एक साथ २? दिन की तपस्या ग्रहण की। वाईसवे दिन आजीवन सथारा ग्रहण कर लिया। १७ दिन का सथारा आया। ४९ दिन के अनशन मे कार्तिक वदि १ बुधवार के अन्तिम

पायो पायो चारित [2]

दीधो दीधो भव जीवा ने साज रे तुर्मास मुनि हेमराजजी (३६) के साथ देवगढ मे था।

उत्पत वुध की जोड कला कवि थ थे।[3]

[illegible] पद सीखावण अधिकी

१. (क) जय [illegible] ।सो० १,२

जोगड जाति सुजाण रे, वासी वीदासर तणू।
पुज समीप पिछाण रे, भागचद आवी करी ॥
वारू गुणसठै वास रे, चारित्र धार्‌यौ चूप सू।

(ख) जय (ऋ० रा० सु०), ४।१२

वासी विदासर तणो रे, भागचन्दजी नाम।
जोगड जाति सुजाणजी, छेहडे सार्‌या आतमकाम ॥

(ग) ख्यात, क्रम ४८

भागचन्दजी वीदासर का ओसवाल जोगड।
स० १८५९ ठे दीक्षा लीधी।

(घ) हुलास (शा०प्र०) (भिक्षु सत वर्णन) गा० २६९

२. जय (हे०न०), ४।१०-११

३ जय (शा०वि०), १।२२ कार्तिक

६४ ठै देवगढ चौमासो हेम १ सुखजी २ भागचन्दजी ३ दीपो ४।

सं० १८६६ का आपका चातुर्मास मुनि हेमराजजी के ही साथ पाली मे हुआ था। संत सामजी (२१), रामजी, (२३), भोपजी (४९), पीथलजी (५६) (इसी चातुर्मास मे दीक्षित) साथ थे।[1] ख्यात एव अन्यत्र भी उल्लेख है कि आप कई वर्ष तक गण मे रहे।[2] चातुर्मास विवरण एव उक्त तथ्य पर विचार करने से लगता है कि आप सं० १८६६ के चातुर्मास के वाद ही कभी गण से पृथक् हुए होगे।

पृथक् होने के वाद आप पाच महीने तक चन्द्रभाणजी के साथ रहे। श्रद्धा मे अटल रहे। उनके पास दीक्षा नही ली। मन मे आचार्य भारमलजी को ही साधु मानते रहे। आचार्य भारमलजी के पास आकर ऐसा निवेदन किया और गण मे वापिस लेने की नम्रतापूर्वक विनती की। आचार्य भिक्षु के स० १८३७ के लिखित को ध्यान मे रखते हुए तथा आगम न्याय से छह महीने का चारित्र छेद कर आचार्यश्री ने आपको गण मे लिया।[3]

---

१. हेम दृष्टान्त, दृ०३४
२. (क) ख्यात, क्रम ४८
केइ वर्ष रही कर्म जोग सु नीकल्यौ।
(ख) जय (भि० ज० र०) ५०।सो० २.
वर्ष कितैक विमास रे, कर्म जोग थी निकल्यो।
(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, गा० २६९
भागचद जोगड वीदासर तणो रे, गुणसठै दीख लियत।
भिक्षु वार गण मे रही रे लाल, भारीमाल वारै गण जी टलत ॥
३ जय (भि० ज० र०), ५०।सो० ५-१२ मे इसकी विशद चर्चा है।
भारीमाल ऋषराय रे, छेद दियौ पटमास रौ।
लियौ तास गण माहि रे, अवलोकी भिक्खू लिपत ॥
आपा माहिलौ जांण रे, जाय चन्द्रभाणजी मझै।
अल्पकाल पहिछाण रे, आहार पाणी भेलौ करै ॥
पिण आपा नै साध रे, सरधै शुद्ध मन सू सही।
श्रद्धै तास असाध रे, नवी दीख्या दैणी न तसु ॥
जथा जोग दण्ड जाण रे, दे लैणु तस गण मझै।
वर्ष सैतीसै वाण रे, लिपत भिक्खू ऋप नौ कियौ ॥
एहवौ लिखत अवलोक रे, नवी दीख्या दीधी न तसु।
छेद दे मेट्यो दोष रे, भारीमाल व्यवहार थी ॥
पासत्था पास पिछाण रे, आहार आद लेवै देवै तसु।
निसीथ वीस मैं जाण रे, डंड चौमासी दाखीयौ ॥
चौमासी डड स्थान रे, वार-वार सेव्या छता।
व्यवहार प्रथम कही वान रे, चौमासी प्राछित तसु ॥
इम वहु न्याय विचार रे, वलि मर्याद विमास ने।
वारू देख व्यवहार रे, छेद देई माहै लियौ ॥

कुछ अर्से के वाद परिणाम पुन शिथिल हो गये और दूसरी वार गण से निकल गये। कुछ दिन अकेले रहे। फिर भवानजी नामक व्यक्ति को दीक्षा दे शिष्य किया। परिणामो मे पुन. परिवर्तन आया। दण्ड स्वीकार कर गण मे आए। तप का कडा अभिग्रह ग्रहण किया, पर निभा न सके। आखिर तीसरी वार फिर निकल गये।

कुछ समय के वाद आए और निवेदन किया "मै अढाई द्वीप के चोर से भी वडा चोर हू। मेरा उद्धार करे। आप कहेगे उसी प्रकार आत्मा को वश मे करूगा। यावज्जीवन वेले-वेले की तपस्या का प्रत्याख्यान करवा दे। चाहे तो सथारा करवा दे। प्राण निकल जाएगे तो भी गण नही छोड़ूगा।" इस तरह अपनी ओर से पूर्ण विश्वास दिलाया, तव स० १८७१ मे पुन दीक्षा देकर आचार्य श्री ने आपको गण मे लिया।

इस तरह से तीन वार निकले। अत मे फिर दीक्षा लेकर आत्म-कार्य सिद्ध किया।

वारू गुणसठै वासरे, चारित्र धार्‍यौ चूप सू।
वर्ष कितैक विमास रे, कर्म जोग थी निकल्यो॥
चन्द्रभाणजी माहि रे, रह्यो पच मास आसरै।
भारीमाल पै आय रे, कहै मुझ नै ल्यो गण मझे॥
हू रह्यो चन्द्रभाण माहि रे, त्यानै साध न श्रद्धियो।
थे मोटा मुनिराय रे, साधु श्रद्धतो स्वाम गण॥
भारीमाल ऋषराय रे, छेद दियो पटमास रौ।
लियो तास गण माहि रे, अवलोकी भिक्खू लिखत॥
वीत्यो कितोयक काल रे, फिर छूटक थयो एकलौ।
इक शिष्य कीधौ न्हाल रे, नाम भवानजी तेहनौ॥
डड ले आया माहि रे, तपनौ अभिग्रह आदर्‍यौ।
नायौ पालणी ताहि रे, तिण कारण थयौ एकलौ॥
काल कितोक वदीत रे, फिर आयो भारीमाल पै।
सत-सत्या ने सुरीत रे, कर जोडी वदना करी॥
वोलै वे कर जोड रे, मुझ नै लेवौ गण मझै।
अढी दीप ना चोर रे, त्यासू हू अधिको घणो॥
छठ-छठ तप पहिछान रे, जावजीव अदराय दौ।
कहो तो करूं सथार रे, पिण मुझ नै ल्यौ गण मझे॥
भारीमाल वहु जाण रे, दीख्या दे माहि लियौ।
संवत अठारै पिछाण रे, एकोतरै चर्ण आदर्‍यौ॥[1]

---

१ जय (भि० ज० र०), ५०।सो० २-५, १३-१८। मिलाए—

(क) ख्यात, क्रम ४८ मे ठीक ऐसा ही वर्णन है।

(ख) जय (शा० वि०), १।३१.

भागचन्दजी सयम भिक्षु पास कै, तीन वार गण थी टल्या जी।
भारीमाल पै चरण एकोत्तरै वास कै, परभव वर्ष सिताणुवें जी॥

आपको अन्तिम वार स० १८७१ मे गण मे लिया गया। स० १८७१ की फाल्गुन वदी १३ की ढाल मे उस समय वर्तमान सतो के नामों का उल्लेख है। उनमे आपका नाम नही पाया जाता। उक्त ढाल मे आपका नामोल्लेख न होने से यह निष्कर्ष निकलता है कि आप उक्त तिथि के वाद शेप काल मे वापिस गण मे आये थे।

इस नई दीक्षा के वाद आपका कायापलट ही हो गया। आपका वाद का जीवन वडा तपस्या-रत रहा। आपने मास-मास उपवास की विकट तपस्या अनेक वार की। अन्य भी विविध तपस्याए की। शीत-ताप सहन करते रहे।[1]

आपका स्वर्गवास स० १८९७ मे हुआ। आपके देहान्त का प्रसग निम्न रूप मे सामने आता है।

स० १८९७ के चातुर्मास के वाद शेपकाल मे दर्शन करने पर आचार्य ऋषिराय ने मुनि भीमराजजी का आगामी चातुर्मास चूरू का फरमाया। साथ मे आपको, मुनि पूजलालजी (८८) और नन्दोजी (१२१) को दिया।

उक्त सतो के साथ मुनि भीमराजजी रामगढ पहुचे और वाद मे वहा से विहार कर

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २७०-२७६.

चद्रभाण मे पाच मास भेलो रही रे, पाछो भारीमाल गणी कने आय।
इम कह्यो उणा ने साध सरध्या नही रे लाल, नुई दिक्षा पिण त्या न लिवाय॥
आप तारो हिव मुझ भणी रे, इम कह्या वचन नरमेय।
भिक्षु लिखित तथा सूत्र शाख सू रे लाल, छ महीना रो छेद दे माही लेय॥
किताक वर्ष पछै फिर नीकल्यो रे, एकलो रही एक चेलो करी तजाय।
फिर पाछो इज आपने रे लाल, भारीमाल ने लागो पाय॥
तप रो अभिग्रह करडो देइने रे, माही लियो मुनिराय।
तप करवो अति दोहिलो रे लाल, तिण थी फिरती लै टलाय॥
फिर भारीमाल पासे आय कर जोडने रे, घणी-घणी नरमाय करत।
कहै अढी दीप रा चोर थी रे लाल, हू मोटो चोर महंत॥
मोने तारो हिव नाथजी रे, आप फरमास्यो तेह करेस।
कहो तो आत्मा वश कर तप करू रे लाल, कहो तो सथारो उचरेस॥
पिण कृपा कर मुझ गण माहि ल्यो रे, प्राण खड पिण आणा न खडु लिगार।
इम पक्की प्रतीत उपजाया थका रे लाल, इकत्तरै लीधो गच्छ मझार॥

१ (क) जय (भि० ज० र०), ५०।१९

मास खमण वहु वार रे, विकट तप मुनिवर कियौ।
सताणुवै सुखकार रे, जन्म सुधारी जश लियौ॥

(ख) ख्यात, क्रम ४९ मास खमण तप केइ वार कीयो। स० १८९७ जन्म सफल कीधौ। और तपस्या मोकली कीधी · शीत उष्ण घणो खमी

(ग) हुलास (शा० प्र०), गा० २७७

पछै गण मे रही वहुत तप तप्या रे, मासखमणादिक करी केइ वार।
शीत-उष्ण परिपह सही रे लाल, सत्ताणवै स्वर्ग श्रीकार॥

स० १८९७ की आपाढ वदि ६ के दिन विसाऊ पहुचे। आषाढ सुदी ७ के दिन वही उनका अकस्मात् देहावसान हो गया। सथारा आया। आप सेवा मे थे ही।

आप अनेक वर्षो से मुनि भीमराजजी की सेवा मे थे। उनके देहान्त ने जैसे आपके प्राण-वल को क्षीण कर दिया हो। आपका देहान्त अकस्मात् दूसरे ही दिन हो गया। इस तरह विसाऊ मे स० १८९७ की आपाढ वदि ८ के दिन आपका स्वर्गवास हुआ।[1]

उक्त तीन वार गण से अलग हुए थे, पर आखिर मे आपने जीवन को मोड दी और खेवा पार किया।[2] आपका वाद का जीवन कितना उदात्त हुआ, इसकी झाकी निम्न चित्रण से प्राप्त होगी

मुनी भागचन्द गुण भरीयौ, ससार समुद्र सू तिरीयो ॥
सद मारग सचरियो ए, चित धरीयो चारित निरमलो ॥

---

१. (क) भीम विलास, ५।६, ६।१, २, १०, १६
भागचन्द पूजलाल, वली नदा आप्यो सुविशाल।
चूरू चौमासो भोलावियो ॥
मास खमण रामगढ माहै कीधो, भीम ऋप सत च्यार सहीत।
निरमल भावना भाव रह्या छै, सयम तप सू पूरण पीत ॥
शहर रामगढ सू विहार करी, पाछा विसाउ मे आया चलाय।
आपाढ विद छठ तिथ रै दिन, जितरै आउ अणचित्यो आय ॥
समत अठारै वर्प सताणूऐ, आपाढ सातम दिन जोय।
पाछलो महूरत दिवश आसरै, भीम ऋपि पोहता परलोय ॥
आठम दिन आउषौ पुरौ कीधौ, भागचन्द ऋपि ओ पिण भारी।
तपसी त्यागी वैरागी छै सुगामे, वर्प घणा विचर्या भीम लारी ॥

(ख) जीवोजी कृत ढाल, गा० १४-१८
मुनि विचरत-विचरत आयौ, थली देस न्यातिला मायो।
वीदासर मे सुख पायो ए, सिधायो चुरू सैहर ने ॥
मुनी भीम गुणा मै भारी, भागचद भीम रिप लारी।
पूजीजी नदोजी ए, च्यारूइ सत पधारिया ॥
चुरू मे दरसण देई रामगढ तणौ जस लेई।
पछै वीसाउ मे आया ए, चूरू चौमासौ ठवाया ॥
अणचित्यौ आउ आयो, ऋख भीम विसाउ मायो।
प्रभवना सुख पायो ए, चित्त सटकौ कर चलतो रह्यो ॥
विध असाढ अष्टमी आइ ऋख भीम वस्यो मन माई।
जाणै सेवा करू सुवाडए औ पिण चटकै चलतौ रह्यो ॥

२ (क) जय (ऋ० रा० सु०), ४।१२
(ख) सत गुण वर्णन, २।२६
जिन मार्ग मे मोट्या गुरु भारीमाल के, भागचन्द भलोजी।
विविध प्रकारै मेट्या तपकर त्रास के, जन्म सुधारी जश लीयो जी ॥

सैहर वीदासर नौ वासी, मुनि हिवरे आंण हुलासी।
मेटी आरत उदासी ए, भल पिडत मरणज पामीयो॥
जात जोगड जोर हद कीधी, मुनि जग मे सोभा लीधी।
नीव मुक्त री दीधी ए, अति कीधी आतम उजली॥
घणी सोम प्रकृत सुखकारी, भरपूर खिम्या गुण भारी।
सुमति गुपत आचारी ए, साताकारी सहु सत नौ॥
गुर आग्या मे चित घाल्यो, सुवनीत मारग सुध चाल्यो।
खम्या खडग कर झाल्यो ए, मुनी चायो तीर्थ च्यार मै॥
नित ग्यान ध्यान चित ध्यातो, नवकार समर सुख पातो।
गुणवत ना गुण गातो ए, साध वदणा नित चीतारतौ॥
इसकौ खेदौ नही गमतो, चित साति गुणा मे रमतो।
चाल्यौ सता सू नमतो ए, मन मान वडाई मेटने॥
मुनि असल सत आकारी, भल गुण था भारी भारी।
तपसा चौमासा री ए, उन्हाले ताप सह्यौ घणो॥
वहु प्रमाद मे नही परतौ, मुनि पाप पथ सू डरतो।
कर्म कटक सू लरतो ए, गुण धरतो समता सायरू॥
मुनि तप रस प्याला पीधा, भारी भारी थोकडा कीधा।
ए लाभ मुगत णा लीधा ए, गुण दीधा तस सेवा करी॥
श्रावका ने घणौ सीखातौ, उपगार करण नै जातो।
लाभ कमावी ल्यातो ए, मुनी मधुर वचन मुख भाखतो॥
श्रीमुख सू पूज सरायौ, सहु साता रे मन भायो।
ऋप भीम घणो सुख पायौ ए, जाणै मुनिवर सतजुगी माहिलो॥[1]

मुनि जीवोजी ने यह ढाल आचार्य ऋपिराय की आज्ञा पाकर लिखी थी।[2] इससे पता चल जाता है कि आचार्य का आपके प्रति कितना सम्मान रहा।

---

१. मुनि जीवोजी रचित गुण वर्णन ढाल, १-१३
२ वही, २४ ·
श्री पूज हूकम फुरमायो, तिण सू मैं मुनिवर गायो।

४६. मुनि भोपजी

आपकी जन्मभूमि कोसीथल थी। आपके पिताजी का नाम लालजी था। आप जाति से चपलोत थे। आपकी दीक्षा भिक्षु के हाथो सम्पन्न हुई थी।[1] आपने स० १८५६ मे दीक्षा ग्रहण की। स० १८५६ के माघ सुदी ७ के लिखित पर आपके हस्ताक्षर पाए जाते है। अत दीक्षा उक्त मिति के पूर्व हुई। दीक्षा-स्थल पाली रहा।[2]

आप बडे भारी तपस्वी हुए। विविध तपो के द्वारा आपने कर्मो पर क्रूर प्रहार किया। अत मे आपने सथारा किया।[3]

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ५०।११

भारी तपसी भोप हुवा भल, कोसीथल वासी कहियौ।
जाति तणो चपलोत जाणिजै, लाभ स्वाम हाथै लहियौ॥

(ख) जय (ऋ० रा० सु०), ४।१३

भारी तपसी थयो भोपजी रे, जाति तणो चपलोत।
सयम स्वाम समापियो, इणा कियो घणो उद्योत॥

(ग) भोपजी गुण वर्णन ढाल, दो० ३

कोसीथल मे जनमीया, पिता लाल पीछाण।
पाली मे सजम लीयो, गुरु मीलीया आण॥

(घ) ख्यात, क्रम ४६

२. (क) पा० टि० १ (ग)

(ख) जय (शा० वि०), १।दो० १२, जय (भि० ज० र०), ५०।१२

(ग) ख्यात, क्रम ४६

(घ) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सत वर्णन, २७८ :

भोपजी कोशीथल तणा रे जाति चपलोद उदार।
स्वामी कने गुणसठ समे रे लाल पाली मे लीधो सयम भार॥

३. जय (शा० वि०), १।३२

भिक्षु गण मे भारी तपसी भोप कै, सयम भिक्षु पासे लियो जी।
त्रिविध तपे करी कीधो कर्मा सू कोप कै, सथारो वर्ष छ्यासठै जी॥

दीक्षा लेने के बाद से ही आप तपस्या करने पर तुल गए। आपकी विशिष्ट तपस्याएं ३६ एव ६८ दिनो की थी। एक बार चार महीने मे केवल सतरह पारण ही किए। इस तरह के दुर्धर्ष तपस्वी थे।[1]

आपकी तपस्या का पूरा विवरण इस प्रकार है :[2]

१. स० १८६० मे पीसागण मे हेम ऋषि के साथ चातुर्मास था। १३ दिन की तपस्या की और फिर ५ दिन की।

२. स० १८६१ मे पीसागण मे आचार्य भारमलजी के साथ चातुर्मास था। क्रमश. ३० दिन और २०[3] दिन की तपस्या की।

३ सं० १८६२ का चातुर्मास आचार्य भारमलजी के साथ पाली मे था। ४० दिन की तपस्या की। रात-दिन तप का ही ध्यान रहता था। उपवास, वेले, चौले किए। तेले, चौले और पाच किए। छ, सात, आठ, नौ और दस किए। वर्णन इस प्रकार है :

> तीजो चोमासो पीसांगण सैहर मे, चालीस किया अमाम रे।
> पूज भारीमालजी साथे रह्या, तपस्या ऊपर घणा परिणाम रे॥
> उपवास वेला चोला किया, तेला चोला मे पांच वखाण रे।
> छ सात आठ नव दस चढ्या, इग्यारै बारै तेरै जाण रे॥[4]

४ स० १८६३ का चातुर्मास माढे गाव मे था। पहले ३० दिन की और बाद मे ३१[5] दिन की तपस्या की। इस चातुर्मास मे ९२ दिन ही अन्न लिया।[6] शेषकाल मे शरद ऋतु मे १५।१५ दिन की तपस्या करते रहे। ग्रीष्म ऋतु मे आतापना लेते थे। उष्ण शिला और गर्म बालू पर सोते रहे।

> चोथो चोमासो मांढे कियो, एक मास ने इकतीस दिन्न रे।
> बाणुवै दिन अन्न नही भोगव्यो, सैंठो राख्यो तिण मन्न रे॥

---

१. जय (भि० ज० र०), ५०।१२-१३ .
पाली मे सजम लै प्रत्यक्ष, मुनि तपसा करवा मंडियो।
कवहिक छासठ कवहिक अडसठ, चढत-चढत अधिको चढियो॥
कवहिक चार मास मै कीधा, सतरह पारण सुमति सहु।
ग्रन्थ वहुल भय तप गुर्णन गुण, तिण कारण सहु ते न कहू॥

२. ख्यात, क्रम ४९

३. (क) सेठिया (मुनि गुण वर्णन) एव (ख) वम्ब (मुनि गुण प्रभाकर) मे इस २० की तपस्या का उल्लेख नही है, जो होना चाहिए था।

४. भोपजी गुण वर्णन ढाल, गा० ४, ५

५. ख्यात मे ३१ दिन का उल्लेख है, पर अन्य कृतियो मे ४१ दिन का।

६. भोपजी गुण वर्णन ढाल, गा० ६, ७

सीयाले सीयाले पनर किया, उन्हाले लेता आतपना आप रे।
उष्ण सिला तथा रेत नी, पूर्व सच्या काटण पाप रे॥

५. स० १८६४ का चातुर्मास मुनि सामजी रामजी के साथ लाहवे मे था। चार मास मे सतरह पारण किए। यही आपने अभिग्रह किया कि जब तक पूज्यश्री के दर्शन नही हो पाते तब तक तीन आहार ग्रहण नही करूगा। उन्तीसवे दिन आचार्यश्री के पास पहुचे। इस तरह अभिग्रह पूरा होने पर आहार लिया।

पाचमो चोमासो ल्हावा सैहर मे, साम राम ने तपस्वी भोप रे।
च्यार मास मे सतरै पारणा, आछो कियो कर्मां स्यू कोप रे॥
वलि एक अभिग्रह इसडो कियो, किया अन्न तणा पचखाण रे।
पूजा रा दर्शण न करू ज्या लगै, पूगो गुणतीसमे दिन आण रे॥[1]

६. स० १८६५ का चातुर्मास मुनि हेमराजजी के साथ सिरियारी मे था।[2] ६६ दिन की तपस्या एक साथ ग्रहण की। आछ का आगार रखा।

चातुर्मास के वाद शेषकाल मे पूज्यजी के दर्शन कर सर्व सत आर्याओ से क्षमा-याचना कर पूज्यजी से सलेषणा की आज्ञा चाही। आमेट मे, पाली मे सथारा करने की आज्ञा प्राप्त की।

छठो चोमासो सिरियारी सैहर मे, छासठ दिन पचख्या एक साथ रे।
तिण री महिमा हुई घणी सहर मे, आ तो इचरज वाली वात रे॥
पछे दर्शण किया पूज रा, सर्व साध साधविया नै खमाय रे।
हिव आग्या छै स्वामी आप री, पाली देऊ सथारो ठाय रे॥[3]

७. स० १८६६ का चातुर्मास मुनि हेमराजजी के साथ पाली मे किया। उदक आगार से ५८ दिन[4] की तपस्या ठा दी। अत्यन्त वेदना उत्पन्न हुई, पर आप अडिग रहे। आपने मुनि हेमराजजी को सथारा करा देने के लिए कहा। आप वोले, एक वार पारण तो करो। फिर जैसा अवसर होगा, तुम्हारी इच्छा होगी तो सथारा करा देगे। कहना मानकर पारण किया। यह सवत्सरी के दूसरे दिन भाद्र सुदी ६ की वात है। सवत्सरी के तीसरे दिन (भाद्र शु० ७) को अल्प आहार लिया। आपका मन सथारा करने पर तुला हुआ था।

आमेट मे लीधी आगन्या, साधा साथै कियो विहार रे।
विचरत-विचरत आवीया, पाली शहर मझार रे॥

---

१. भोपजी गुण वर्णन ढाल, गा० ८,९
२. इस वर्ष मुनि हेमराज के साथ आपका चातुर्मास होने का उल्लेख कही नही मिलता। वडी तपस्या चातुर्मास विना नही होती। इस वर्ष सिरियारी मे मुनि हेमराजजी का चातुर्मास था (जय (हे० न०), ४।१४) तपस्या सिरियारी मे की गई थी (जय (शा० वि०), ११९) अत उक्त वात निष्कर्ष रूप मे लिखी गई है।
३. भोपजी गुण वर्णन ढाल, गा० १०, ११
४. हेम दृष्टान्त, दृ० ३४ मे धोवन पानी के आगार से ५७ दिन लिखा है।

धूर स्यु तो अठावन पचखीया, तिण में पानी रो आगार रे।
वेदना उठी अति आकरी, ओ तो अडिग रह्यो अणगार रे।।
सथारो माग्यो साधा कने, कह्यो पारणो करो एक वार रे।
पछै तो केवली देखी रह्या, थाने कराय देस्या सथार रे।।
कह्यो मानने कीधो पारणो, छमछरी रे दूजै दिन रे।
तीजे दिन अन्न थोडो लीयो, तिण रो सथारा उपर मन रे।।[1]

उपर्युक्त तपस्या का वर्णन सक्षेप मे इस प्रकार मिलता है

भोप गुणसठै चरण वर, छ्यासठै कृत सथार।
तपस्या बीचे करी तसु, ते सुणज्यो विस्तार।।
साठै पिसागण मझे, हेमऋषि पे सच।
तरै तप दिन थोकडो, फुन जाणीजै पच।।
द्वितीय चौमासो कीयो वलि, पिसागणे जगीश।
भारीमाल रे साथ ही, तिहा तीस फुन वीस।।
पाली वर्षज वासठै, तप दिन वर चालीस।
वली थोकडा वहु किया, तप सू चित निश दीस।।
माढै ग्रामज त्रेसठे, एक मास अवधार।
वलि इकतालीस किया मुनि, तप करवा अति प्यार।।
लावै वर्षज चौसठे, साम राम ने भोप।
चिहु मासे पारण सतरै, कियो कर्मा सू कोप।।
अभिग्रह एहवो आदर्यो, पूज दर्शण लग जाण।
तीन आहार ना त्याग है, पूग्यो गुणतीसमै दिन आण।।
सिरीयारी मे पैसठे, छ्यासठ दिन एक साथ।
आछ आगारे पचखिया, सुयश अधिक सजात।।
पूज्य तणा दर्शन करी, अज्जा सन्त खमाय।
आज्ञा सलेषणा तणी, पूज्य कनै ली ताप।।
पाली वर्षज छ्यासठै, हेम समीप उदार।
दिवस अठावन तप भलो, उदक तणे आगार।।[2]

५८ दिन की तपस्या का पारण मुनि हेमराजजी ने अपने हाथ से कराया। दूसरे दिन थोड़ा-सा आहार लिया और उसी दिन पश्चिम रात्रि के समय मुनि हेमराजजी के पैर पकडकर बोले "मुझे सथारा करा दे।" अनेक लोग इकट्ठे हो गए। ईश्वरदासजी नाहटा नाडी के अच्छे जानकार थे। नाडी देखकर बोले "सथारा करा दीजिए।" मुनि हेमराजजी बोले ·

---

१. भोपजी गुण वर्णन ढाल, गा० ११-१५
२. जय (शा० वि०), १।दो० १२-२१। तथा देखे—
हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, २७९-२८५

"एक मास की तपस्या करानी सरल है, पर सथारा सरल नही।"[1] नाहटाजी बोले. "चेले का मोह मत कीजिए। यह नाडी तीन दिन से अधिक टिकने की नही।"

इस पर मुनि हेमराजजी ने मुनि भोपजी की उत्कृष्ट इच्छा देख सथारा करा दिया।

हेम करायो पारणो, दूजै दिन अल्प आहार।
पग पकड्या निशि पाछली, हेम तणा तिणवार॥
कहै मुझ प्रते कराय द्यो, सथारो सुखकार।
लोक सहु भेला थया, जन मन करी विचार॥
ईश्वरदासजी नाहटो, नाडी तणो जे जाण।
बोलावियो छे ते भणी, नाडी देख कहै वाण॥
स्वाम सथार कराय दो, हेम कहै तिणवार।
सोहरो मास करावणो, पिण दोहरो सथार॥
मोह चेला रो मत करो, वैद कहै इम वाय।
तीन दिवस उपरन्त ही, ए नाडी छै नाय॥
तास कहण थी हेम मुनि, पचखायो सथार।
अणसण आयो आसरै, पोरज साढा च्यार॥[2]

यह भाद्र सुदी ७ की बात है। रात्रि के पश्चिम भाग मे आपने सथारा ग्रहण किया।

हिवै सथारो पचख्यो भोपजी, आणी ने अधिक वैराग रे।
सातमी पाछली रातरा, जावजीव कीधा त्याग रे॥[3]

---

१. ख्यात मे "बिना अवसर पचखावणी आवै नही" इतना और अधिक है।

२. जय (शा० वि०),१।दो० २२-२७

हेम नवरसो (४।१८-२०) मे सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है

अठावन कीया भोपजी, तपस्या अधिक विशाली हो।
उदक आगारे जाणज्यो, तपकर कर्म प्रजाली हो।
मुनि आतम उजवाली हो, भजो हेम निमल निहाली हो॥
करि पारणो हेम ना, चरण ग्रह्या तिण काली हो।
जावजीव पचख्यो, सथारो सुविशाली हो।
तन मन लागी ताली हो, भजो हेम निर्मल निहाली हो॥
बहु जन वृन्द भेला थया, ते पिण कहै भोप न्हाली हो।
हेम सथारो करावियो, च्यार पोहर जाझो भाली हो।
माडी खड इकताली हो, भजो हेम निर्मल निहाली हो॥
देखिए—हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० २८५-२९०

३ भोपजी गुण वर्णन ढाल, गा० १९

आपको साढे चार पहर का सथारा आया।[1] इस तरह सं० १८६६ की साल पाली मे संथारा कर आप स्वर्ग सिधारे।[2] आपकी तपस्या और सथारे के कारण वडा धर्मोद्योत हुआ। उल्लेख है · "धर्मरो उद्योत वैराग घणो थयौ। त्याग वैराग करावता साधा रा कठ रह गया।"[3]

आपकी शव-यात्रा ४१ खण्डी मण्डी मे निकाली गई थी। लगभग साढे तीन सौ रुपये खर्च हुए।[4]

मुनि भोपजी भिक्षु के चरम शिष्य थे। आपने स० १८५९ मे दीक्षा ग्रहण की। स० १८६६ मे आपका सथारा सम्पन्न हुआ। इस तरह लगभग सात वर्ष आप साधु-जीवन मे रहे।

भिक्षुनो ए भोप ऋषि, चरम शिष्य सुविचार।
सात वर्ष रै आसरै, सयम पाल्यो सार॥[5]

आपकी प्रशस्ति मे कहा है

जिन शासन मे भारी तपसी भोप के, सथारो कर जन्म सुधार्योजी।
विविध तपे कर किधो करमा सू कोप के, शिष्य भिक्षु ना सुहामणाजी॥[6]

यति हुलासचन्दजी ने लिखा है

---

१. जय (हे० न०), ४।१९ मे सथारा चार प्रहर जाझा आया लिखा है।

२. (क) पण्डित मरण ढाल, १।११
भोपजी तपसी भलो हुवो, पाली सैहर संथारो ए।
समत अठारे ने छासठे··· ॥

(ख) मुनि भोपजी गुण वर्णन, गा० १८.
समत अठारै छासठै, भादवा सुद आठम विचार रे।
साढा च्यार पौहर रै आसरै, सथारो आयो श्रीकार रे॥

३. जय हेम दृष्टान्त, दृ० ३४। तथा देखिए—

(क) जय (भि० ज० र०), ५०।१४.
साडी चार पहोर सथारो, स्वाम पछै शुद्ध गति सारू।
पाली धर्म उद्योत[1] प्रगट हद, वर्ष छासठै मुनि वारू॥

(ख) मुनि भोप गुण वर्णन, ढाल १७
नरनारी हजारा आवुता, सूस कीधा विविध प्रकार रे।
वेराग वध्यो घणो शहर मे, जद भोपजी कीधो संथार रे॥

(ग) हेम दृष्टान्त, दृ० ३४

४. जय (शा० वि०), १।दो० २८ :
धर्म उद्योत हुवो घणो, माढी खड इकताल।
साढा तिन सौ आसरै, रोकड लागा न्हाल॥

५. वही, १।दो० २९

६. जिन शासन महिमा, ७।२२

भिक्षु नो अतेवासियो रे चरम भोप मुनिराय।
वडभागी वर सूरमो रे लाल, तपसी महा सुखदाय ॥[1]

मुनि हेमराजजी के सान्निध्य मे भिन्न-भिन्न समय मे ६ सथारे हुए, जिनमे चौथा संथारा आपका गिना जाता है।[2]

---

१. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, २८१

२. (क) सत गुण वर्णन, १।१७, १६। (प्रकरण ४४ मे उद्धृत)

(ख) मुनि भोप गुण वर्णन ढा०, गा० १६

अणसण पट त्यां कनै हुआ, वैराग चढायो भरपूर रे।
जन्म-मरण मिटायवा, हद उपगारी वढ सूर रे॥

उपसंहार

आचार्य भिक्षु-कालीन ४९ साधुओ के इतिवृत ऊपर दिए गए है। उक्त साधुओ मे से निम्न ९ साधुओं का स्वर्गवास आचार्य भिक्षु के जीवन-काल मे ही हो गया था

१. थिरपालजी (१)
२ फतेचन्दजी (२)
३. टोकरजी (५)
४ हरनाथजी (६)
५. नगजी (२०)
६. नेमजी (२७)
७. वर्धमानजी (३१)
८ उदयरामजी (३७)
९ जोगीदासजी (४५)

निम्न १८ साधु उनके जीवन-काल मे ही गण से अलग हो गए थे ·

१. वीरभाणजी (४)
२. लिखमोजी (८)
३ अमरोजी (११)
४. तिलोकचन्दजी (१२)
५. मोजीरामजी (१३)
६ चन्द्रभाणजी (१५)
७. अणदोजी (१६)
८. पन्नजी (१७)
९. सतोपजी (१८)
१०. शिवरामजी (१९)
११. सभूजी (२४)
१२. सघवीजी (२५)
१३. रूपचन्दजी (२९)
१४. सुरतोजी (३०)
१५. रूपचन्दजी (३२)
१६. मयारामजी (३३)
१७. वगतोजी (३४)
१८. नाथोजी (४०)

उपर्युक्त दोनो सख्याओ को वाद मे देने पर स० १८६० भाद्रवा सुदी १२ के दिन आचार्य भिक्षु सहित २२ साधु (४९-२७) गण मे रहे। आचार्य भिक्षु स० १८६० भाद्रवा सुदी १३ के दिन देवलोक हुए। गण मे २१ साधु अवशिष्ट रहे। इनकी सूची पृ० ८७-८८ पर दी जा चुकी है।

सक्षिप्त विवरण तालिका :

भिक्षु-कालीन साधुओ की दीक्षा, स्वर्गवास आदि का विवरण चावुक मे इस प्रकार है ·

१	२	३	४	५
क्र० स०	नाम	दीक्षा	स्वर्गवास	गण वहार
१	थिरपालजी	सं० १८१६	स० १८३३ कार्तिक वदि ११	
२.	फतैचन्दजी	,, १८१६	स० १८३१ शेषकाल	
३.	आचार्य भिक्षु	,, १८१६	स० १८६० भाद्र सुदी १३	
+४.	वीरभाणजी	,, १८१६		स० १८३२ मे माघ सुदी ७ और जेठ सुदी ११ के वीच
५.	टोकरजी	,, १८१६	स० १८३८ वैशाख सुदी ६ और आषाढ सुदी १५ के वीच	
६.	हरनाथजी	,, १८१६	स० १८४६ के शेप-काल से लेकर स० १८४८ के शेषकाल के अन्त के वीच	
७.	भारमलजी	,, १८१६	स० १८७८ माघ वदि ८	
+८	लिखमोजी	,, १८१६		स० १८२४ से पूर्व अथवा १८२६ एव १८३१ आषाढ तक की मध्यावधि मे
९	सुखरामजी	स० १८२२ शेषकाल	स० १८६२ भाद्र सुदी ९	
१०.	अखैरामजी	स० १८२४	स० १८६१ कार्तिक वदि अमावस्या	
+११	अमरोजी	,, १८२४		स० १८२६ एव १८३१ आषाढ तक की मध्यावधि मे
+१२.	तिलोकचन्दजी	,, १८२४		स० १८३६ शेप काल
+१३	मोजीरामजी	अथवा १८२५		स० १८२६ एव १८३१ आषाढ तक की मध्यावधि मे
१४.	शिवजी	स० १८२४-२५		
+१५	चन्द्रभाणजी	,, ,,		स० १८३६ शेपकाल
+१६.	अणदोजी	स० १८२९ मे माघ सुदी १२ के बाद		स० १८३२ जेठ सुदी ११ और १८३७ माघ वदि ९ के वीच
+१७.	पन्नजी	स० १८२९ मे माघ सुदी १२ के वाद		स० १८३२ के मिगसर वदि ७ के लिखित के पूर्व

१	२	३	४	५
+१८.	सतोपजी	स० १८३२ जेठ सुदी ११ के लिखित के वाद अथवा १८३३ मे		स० १८३७ शेपकाल
+१९.	शिवरामजी	,, ,,		स० १८३७ शेपकाल
२०.	नगजी	स० १८३२ जेठ सुदी ११ एव १८३७ माघ वदि ९ के वीच	स० १८४१ द्वि० चैत्र वदि १० और १८४५ जेठ सुदी १ के वीच	
२१	मामजी	स० १८३८ चैत्र पूर्णिमा के पहले	स० १८६६ मिगसर वदि ५	
२२.	खेतसीजी	स० १८३८ चैत्र पूर्णिमा	स० १८८० आपाढ़	
२३.	रामजी	स० १८३८ चैत्र १५ के वाद	स० १८७० कार्तिक मास	
+२४.	सभूजी	स० १८३८ चैत्र वदि		सं० १८४१ द्वि० चैत्र वदि १० और १८४५ जेठ सुदी १ के वीच
+२५.	सववीजी	,, ,,		सं० १८४१ आषाढ़
२६.	नानजी	स० १८४१ चैत्र वदि १३ के पूर्व	स० १८७१ माघ	
२७	नेमजी	सं० १८४१ द्वि० चैत्र वदि १० और १८४३ आपाढ के वीच	स० १८४५ जेठ सुदी १ और १८५३ माघ सुदी १३ के वीच	
२८.	वेणीरामजी	स० १८४८ मिगसर वदि १	सं० १८७० शेपकाल	
+२९.	रूपचन्दजी	स० १८४६ जेठ या १८४७ शेपकाल		स० १८५० मे मिगसर के वाद
+३०.	सुरतोजी	,, ,,		दीक्षा के कुछ दिनों वाद
३१.	वर्धमानजी	,, ,,	स० १८५५ शेपकाल	
+३२.	रूपचन्दजी	,, ,,		सं० १८५३ माघ सुदी १३ के पूर्व
+३३	मयारामजी	स० १८४७		स० १८५५ के वाद एवं १८५६ माघ सुदी ७ के पूर्व
-३४.	वगतोजी	,, ,,		स० १८५० मिगसर एवं १८५३ माघ सुदी १३ के वीच
३५.	मुन्नजी	,, ,,		स० १८६४ शेपकाल

१	२	३	४	५
३६.	हेमराजजी	म० १८५/३ माघ सुदी १३	स० १६०४ जेठ सुदी २	
३७	उदयरामजी	स० १८५५ चातुर्मास	स० १८६०-शेपकाल	
+३८.	कुसालोजी	स० १८५७ मे माघ सुदी १५ के पूर्व		सं० १८६६
+३६	ओटोजी	स० १८५७ माघ सुदी १५		म० १८६० शेपकाल
४०.	नाथोजी	स० १८५७ माघ मुदी १५ एव चैत्र सुदी १५ की अवधि मे		स० १८५६ के माघ सुदी ७ के लिखित के पश्चात्
४१	रायचन्दजी	स० १८५७ चैत्र सुदी १५	स० १६०८ शेपकाल	
४२.	ताराचन्दजी	स० १८५७ जेठ	स० १८७० शेपकाल	
४३	डूगरसीजी	,, ,,	स० १८६८ शेपकाल	
४४	जीवोजी	स० १८५७	स० १८६० चातुर्मास	
४५.	जोगीदासजी	स० १८५७ या १८५८	स० १८५६ माघ सुदी ७ के पूर्व	
४६	जोधोजी	स० १८५६ चातुर्मास या मिगसर वदि १/२	स० १८७५ शेषकाल	
४७.	भगजी	,, ,,	स०१८६६ शेपकाल	
४८.	भागचन्दजी	,, ,,	स० १८६६ शेपकाल	
४६	भोपजी	,, ,,	स० १८६६ चातुर्मास	

अवधियो के अनुसार साधुओं के स्वर्गवास की विगत

१. स० १८५३ माह सुदी १३ के पूर्व दिवंगत :

१. फतैचन्दजी (३)	सं० १८३१ शेषकाल
२. थिरपालजी (२)	सं० १८३३ कार्तिक वदि ११
३. हरनाथजी (६)	स० १८४६ के शेषकाल मे लेकर सं० १८४८ के शेषकाल के अन्त के बीच।
४. टोकरजी (५)	स० १८३८ वैशाख सुदी ६ और आषाढ़ सुदी १५ के बीच।
५ नगजी (२०)	सं० १८४१ द्वि० चैत्र वदि १० और १८४५ जेठ सुदी १ के बीच।
६ नेमजी (२७)	स० १८४५ जेठ सुदी १ और १८५३ माघ सुदी १३ के बीच।

२. स० १८५३ माघ सुदी १४ से स० १८६० भादवा सुदी १२ तक दिवगत :

१. वर्धमानजी (३१)	स० १८५५ शेषकाल
२ जोगीदासजी (४५)	स० १८५६ माघ सुदी ७ के पूर्व

३. स० १८६० भादवा सुदी १३ के दिन दिवंगत :

१. आचार्य भिक्षु (१)	स० १८६० भादवा सुदी १३

४. स० १८६० भादवा सुदी १४ से १८६८ जेठ सुदी ७ तक दिवंगत

१. उदयरामजी (३७)	स० १८६० शेषकाल
२. अखैरामजी (१०)	,, १८६१ कार्तिक वदि अमावस्या
३ सुखरामजी (६)	,, १८६२ भाद्रवा सुदी ६
४. सुखजी (३५)	,, १८६४ शेषकाल
५ भोपजी (४६)	,, १८६६ चातुर्मास
६. सामजी (२१)	,, १८६६ मिगसर वदि ५
७. डूगरसीजी (४३)	,, १८६८ शेषकाल

५. स० १८६८ जेठ सुदी ८ और स० १८७१ फाल्गुन वदि १२ के बीच दिवगत :

१. ताराचन्दजी (४२)	स० १८७० शेषकाल
२ रामजी (२३)	,, १८७० कार्तिक मास
३. वेणीरामजी (२८)	,, १८७० शेषकाल
४. नानजी (२६)	,, १८७१ माघ

६. (क) स० १८७१ फाल्गुन वदि १३ की ढाल के अनुसार निम्न साधु उक्त तिथि को विद्यमान थे .

१. आचार्य भारमलजी (७)
२. खेतसीजी (२२)
३. हेमराजजी (३६)
४. रायचन्दजी (४१)

५ जीवोजी (४४)
६. जोधोजी (४६)
७. भगजी (४७)

(ख) आचार्य भिक्षु द्वारा दीक्षित साधुओ मे से उन साधुओ के नाम वाद देने से, जिनका देहान्त स० १८७६ भाद्र वदि ८ की ढाल के अनुसार स० १८७८ की माघ वदि ८ तक हो गया था, निम्न साधु माघ वदि ६ स० १८७८ के दिन विद्यमान रहते है .

१. शिवजी (१४)
२. खेतसीजी (२२)
३. हेमराजजी (३६)
४. आचार्य रायचन्दजी (४१)
५ जीवोजी (४४)
६. भगजी (४७)
७ भागचन्दजी (४८)

७. उक्त ६ (क) और ६ (ख) तालिका को मिलाने पर स० १८७१ फाल्गुन वदि १४ और स० १८७८ की माघ वदि ६ के बीच निम्न दो चारित्रात्माए दिवगत हुई

१. जोधोजी (४६)	स० १८७५ शेपकाल
२. आचार्य भारमलजी (७)	,, १८७८ माघ वदि ८

८. स० १८७८ माघ वदि ६ एव १८६८ जेठ वदि १३ के बीच दिवगत सन्तो के नाम

१. शिवजी (१४)	
२ खेतसीजी (२२)	स० १८८० आषाढ कृष्णा १४
३. जीवोजी (४४)	,, १८६० चातुर्मास
४. भागचन्दजी (४८)	,, १८६६ शेपकाल

६. उक्त तालिका ६ (ख) से तालिका ५ के नाम वाद देने पर स० १८६८ जेठ वदि १४ के दिन निम्न सन्त विद्यमान रहे

१ हेमराजजी (३६)
२ आचार्य रायचन्दजी (४१)
३. भगजी (४७)

१०. स० १८६८ जेठ वदि १४ और स० १६०४ कार्तिक वदि १२ के बीच दिवगत चारित्रात्माओ के नाम

१. भगजी (४७) — स० १८६६ शेपकाल

११ स० १६०४ कार्तिक वदि १३ के दिन विद्यमान चारित्रात्माओ के नाम

१. हेमराजजी (३६)
२ आचार्य रायचन्दजी (४१)

१२. स० १६०४ जेठ सुदी २ के दिन दिवगत

१ हेमराजजी (३६)

१३ स० १६०४ जेठ सुदी ३ के दिन विद्यमान सन्त

१. आचार्य रायचन्दजी (४१)

१४. सं० १९०८ माघ वदि १४ के दिन दिवंगत :

१. रायचन्दजी (४१)

स० १९०८ की माघ वदि १४ के बाद आचार्य भिक्षु के आचार्य-काल के दीक्षित साधुओं मे से कोई भी विद्यमान नही रहा।

क्रमिक देहान्त तालिका

उपर्युक्त तालिकाओ मे चर्चित सन्तोके क्रमिक देहान्त की तालिका इस प्रकार बनती है :

१. भतेहचन्दजी (३)	सं० १८३१ शेषकाल
२. थिरपालजी (२)	,, १८३३ कार्तिक वदि ११
३. टोकरजी (५)	सं० १८३८ वैशाख सुदी ६ और आषाढ सुद १५ के बीच
४ नगजी (२०)	सं० १८४१ द्वि० चैत्र वदि १० और १८४५ जेठ सुदी १० के बीच
५. नेमजी (२७)	सं० १८४५ जेठ सुदी १ और १८५३ माघ सुदी १३ के बीच
६. हरनाथजी (६)	,, १८४६ के शेषकाल से लेकर सं० १८४८ शेषकाल के अन्त के बीच
७ वर्धमानजी (३१)	सं० १८५५ शेषकाल
८. जोगीदासजी (४५)	,, १८५६ माघ सुदी ७ के पूर्व
९ आचार्य भिक्षु (१)	,, १८६० भादवा सुदी १३
१०. उदयरामजी (३७)	,, १८६० शेषकाल
११. अखैरामजी (१०)	,, १८६१ कार्तिक वदि अमावस्या
१२ सुखरामजी (६)	,, १८६२ भाद्र सुदी ६
१३. सुखजी (३५)	,, १८६४ शेषकाल
१४. भोपजी (४६)	,, १८६६ चातुर्मास
१५. सामजी (२१)	,, ,, मिगसर वदि ५
१६. डूगरसीजी (४३)	,, १८६८ शेषकाल
१७. ताराचन्दजी (४२)	,, १८७० शेषकाल
१८ रामजी (२३)	,, ,, कार्तिक मास
१९. वेणीरामजी (२८)	,, ,, शेषकाल
२०. नानजी (२६)	,, १८७१ माघ
२१ जोधोजी (४६)	,, १८७५ शेषकाल
२२. आचार्य भारमलजी (७)	,, १८७८ माघ वदि ८
२३. शिवजी (१४)	
२४ खेतजी (२२)	,, १८८० आषाढ
२५. जीवोजी (४४)	,, १८९० चातुर्मास
२६ भागचन्दजी (४८)	,, १८९६ शेषकाल
२७. भगजी (४७)	,, १८९९ शेषकाल
२८. हेमराजजी (३६)	,, १९०४ जेठ सुदी २
२९. आचार्य रायचन्दजी (४१)	,, १९०८ शेषकाल

२
साध्वियां

आचार्यश्री भीखणजी के समय की साध्वियां

आचार्य भिक्षु के काल मे ५६ साध्विया प्रव्रजित हुई थी। उनकी सूची प्रव्रज्या-क्रम मे निम्न प्रकार है·

१	साध्वी कुशलाजी	२४.	साध्वी रत्तूजी
२.	मटुजी	२५.	जेतूजी
* ३.	अजवूजी	२६	वन्नाजी
४.	सुजाणाजी	२७.	वगतूजी
५	देऊजी	२८	हीराजी
* ६.	नेतुजी	२९.	नगाजी
७.	गुमानाजी	३०	अजवूजी
८.	कुसुमाजी	३१	पन्नाजी
९	जीऊजी	* ३२.	लालांजी
* १०.	फत्तूजी	३३	गुमानाजी
* ११.	अखूजी	३४.	नेमाजी
* १२.	अजवूजी	* ३५.	जमुजी
* १३.	चन्दूजी	* ३६.	चोखाजी
* १४.	चैनाजी	३७.	रूपाजी
१५.	मैणाजी	३८.	सरूपाजी
१६	धनूजी	३९	वरजूजी
* १७.	केलीजी	४०.	वीजाजी
* १८.	रत्तूजी	४१	वनाजी
* १९.	नंदूजी	* ४२.	वीनाजी
२०.	रगूजी	४३.	उदांजी
२१.	सदाजी	४४.	नूमाजी
२२.	फूलाजी	४५.	कुन्नुजी
२३.	अमराजी	४६.	गुलाबांजी

४७.	साध्वी किस्तूजी	५२.	साध्वी वीराजी
४८.	जोताजी	५३.	गोमांजी
४९.	नोराजी	५४.	जशोदाजी
५०.	कुशालाजी	५५.	डाहीजी
५१.	नाथाजी	५६.	नोजांजी

इन प्रव्रजित ५६ आर्याओं में से १७ गण में नही रही। ३९ गण में रही :

गण में गुणतालीस रही, सतरै टली गण बार।
छप्पन ए भिक्षु छता, अज्जा थई तिणवार॥[1]

जो गण में नही रही, उनके पीछे तारक लगा दिये गये है। उनकी क्रम-संख्या इस प्रकार है—३,६,१०-१४,१६-१९,२४,२६,३२,३५, ३६,४२।

अब क्रमश उक्त सभी साध्वियों के जीवन-वृत्त उपस्थित किये जा रहे है :

---

१ जय (शा० वि०) २।दो०६

१. साध्वी कुशलांजी :

साध्वी विवरणिका के अनुसार आप मेवाड प्रदेश की रहने वाली थी। पर, यह किस आधार पर लिखा है, इसका वहा कोई उल्लेख नही है। अत॰ इस कथन को अन्तिम रूप से प्रामाणिक नही माना जा सकता।

स० १८२१ मे तीन वहनो—आप (१), मटुजी (२) और अजवूजी (३) ने एक ही दिन आचार्य भिक्षु से साध्वी-जीवन ग्रहण किया।

सवत् १८२१ मे भिक्षु का चातुर्मास केलवा (मेवाड) मे था और स० १८२२ मे सिरियारी (मारवाड) मे। उस समय मेवाड मे चातुर्मास काल मे दीक्षा न देने की परम्परा थी। अत उक्त दीक्षाए स० १८२१ के चातुर्मास-काल मे सम्पन्न हुई हो, ऐसा प्रतीत नही होता। उक्त चातुर्मास के वाद शेप काल मे भिक्षु का विहार मेवाड और मारवाड दोनो प्रान्तो मे हुआ और अन्त मे चातुर्मास के लिए मारवाड के सिरियारी ग्राम मे पधारे। अत उक्त तीनो साध्वियो की दीक्षा स० १८२१ के शेपकाल मे मेवाड या मारवाड के किसी गाव मे हुई। ऐसा उल्लेख नही मिलता कि आप तीनो ने या आप मे से किसी ने पति को छोडकर दीक्षा ली। ऐसी स्थिति मे लगता है कि पति-वियोग के वाद ही तीनो दीक्षित हुई थी।

दीक्षा के वाद भिक्षु ने तीनो साध्वियो मे आप (कुशलाजी) को ज्येष्ठ रखा। इस प्रकार शासन की सर्वप्रथम दीक्षित साध्वी आप ही है।

इकवीसा रै आसरै तीन जण्या तिहवार।
एक साथ व्रत आदर्या पहिला कियो करार॥
सयम लियो एक साथ त्रिहु, कुशल क्षेम करतार।
कुशलाजी थापी वडी, भिक्षु गुण भण्डार॥[1]

साध्वियो की दीक्षा की शुरुआत आप ही से हुई, अत आपके सम्वन्ध मे "कुशल क्षेम करतार", "कुशल क्षेम अवतार"[2] शव्दो का प्रयोग किया गया है। आपका नाम गुण-निष्पन्न समझा गया।

---

१ जय (शा०वि०), २।दो०२,५

२. जय (भि०ज०र०), ५१।दो०५

इक साथ व्रत आदरया, तीन जण्या तिणवार।
कुशलाजी वडी करी, कुशल क्षेम अवतार॥

ऊपर जो दोहे उद्धृत है, उनमे उल्लेख है कि दीक्षा देने के पूर्व भिक्षु ने तीनो दीक्षार्थिनियों को प्रतिज्ञा-बद्ध किया था। जैन आगमों का नियम है कि तीन साध्वियों से कम नहीं रह सकती। संघ मे इनके पहले कोई साध्वी दीक्षित नही थी, बाद मे कब हो, इसका क्या पता? तीनो को दीक्षा देने पर यदि एक साध्वी का वियोग हो जाता है तो बाकी दो साध्वियों के संथारा करने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भिक्षु के सामने यह समस्या थी। भिक्षु ने यह स्थिति तीनो दीक्षार्थिनियो के सम्मुख स्पष्ट रूप से रख दी। तीनो ने दृढतापूर्वक नियम लिया कि यदि किसी एक का वियोग हो गया तो अवशिष्ट दो सलेषणा करने को उद्यत रहेगी। भिक्षु ने इस तरह प्रतिज्ञा-बद्ध कर तीनो को दीक्षा दी। इस घटना का प्राचीनतम विवरण मुनि हेमराजजी के शब्दो मे इस प्रकार प्राप्त है :

"स्वामीजी नवी दिक्षा लीधा पछै केतलै एक वर्से तीन जणिया दिक्षा लेवा त्यारी थइ। जद स्वामीजी बोल्या . थे तीन जणिया साथे दिक्षा लेवो अनै कदाचित एकण रो वियोग पड़ जावै तो दोया ने कल्पै नही सो पछै सलेखणा करणी पडै। थारो मन हुवै तो दिक्षा लीज्यो। इम आरै कराय तीन जण्या ने साथै दीक्षा दीधी। पछै मोकली आर्या थइ पिण स्वामीजी री नीत ठेट सूइ इसी तीखी हुती"[1]

जयाचार्य ने पद्यात्मक रूप मे लिखा है :

> तीन बाया त्यारी हुई, संजम लेवा साथ।
> भिक्खु रिष भाखै भली, सुन्दर सीख साख्यात ॥
> संजम लेवो साथ त्रिण, पण तीना मे पेख।
> वियोग एक तणो हुवा, स्यू करिवो सुविशेष ॥
> सलेषणा करणी सही, त्यां दोया नै ताम।
> करार पक्को इम करी, संजम दीधो स्वाम ॥
> कुशलाजी मटू कही, त्रीजी अजबू ताय।
> एक साथै अदरावियो, साधपणो सुखदाय ॥[2]

एक बार साध्वी चन्दूजी (१३) ने आप पर दोषारोपण किया। बोली : "कुशलांजी ने

---

१. हेम (भि० दृ०) दृ० १४७। तथा देखिए ख्यात :

सं०१८२१ सा रे वर्स श्री भिक्षुगणी महाराज रा उपदेश सु ३ बाया दिक्षा नै त्यारी थइ कुशलाजी मटुजी अजबूजी जरै भिक्षु फरमायो तीन आर्य्या थका ओर आर्य्या हुय जाय जद तो अटकै नही कदा तीना मै सो एक दोय रो वियोग पड जाये तो काई करेला एकली नै दोय आर्य्या नै तो विचरावा रूप कल्पै नही विरह पडै जरे एक दोय नै रहणो नही तिण सू सलेषणा करी आत्मा रा कार्य सारवारी हीमत हुवै तो लवो नही तर थारी इच्छा इम त्यानै स्वामीजी पकी खराय आरे कराय ते पण सूरापणै आरे थइ जरे त्यांनै तीनू नै श्री भिक्षु महाराज एक साथै साधपणो दीयो।

२. जय (भि०ज०र०), ११।दो०६-९

कहा—हम तो पहले ही वहुत दु ख पा रही है, दु.खिनी है, कष्ट पा रही है, आप दु ख मे क्यो आ पडी ?"

भिक्षु ने जाच करने के लिए आपको वुलाया। आप सिरियारी पहुची। आपने अनेक श्रावक-श्राविकाओ की उपस्थिति मे अनन्त सिद्धो की साक्षीपूर्वक शपथ ग्रहण कर लगाये गये आरोपो को मिथ्या वतलाया। भिक्षु ने आपको निर्दोप पाया। यह स० १८५२ फाल्गुन वदि ८ की घटना है।[1]

आपका स्वर्गवास सर्प-दश से गुदोच मे हुआ

पवर चरण शुद्ध पालताजी, कुशलाजी ने विचार।
दीर्घपृष्ठ गुदोच मैं जी ते डसियो तिणवार।
शुद्ध परिणामे महासती जी, पोहती परलोक मझार॥[2]

सर्प के उपसर्ग को आपने वडे ही समभाव से सहन किया। कोई उपचार स्वीकार नही किया। यन्त्र-मन्त्र, झाड-फूक आदि की इच्छा तक नही की। परिणाम वडे शुभ्र रहे। इस तरह अनेक वर्पो तक शुद्ध सयम का पालन कर परीषह को प्रसन्न-मन से झेलते हुए आपने पण्डित-मरण प्राप्त किया।

स० १८३४ की जेठ सुदि ९ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर प्राप्त है। पर स०१८३७ माघ वदि ९ एव स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लिखितो मे नही है।

इससे ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि आपका देहान्त प्रथम दो लिखितो अथवा वाद के दो लिखितो के मध्यवर्ती-काल मे हुआ। पर ऐसा अनुमान करना क्यो ठीक नही, इसका प्रमाण नीचे दिया जा रहा है.

साध्वी चन्दूजी द्वारा दोपारोपण की जिस घटना का ऊपर उल्लेख हुआ है उससे यह तो निश्चित है कि आप स० १८५२ की फाल्गुन वदि ८ तक वर्तमान थी।

स० १८५४ मे गण से दूर किये जाने के वाद भी चन्दूजी ने आपका अवर्णवाद वहिनो और साधुओं के वीच किया था।[3] इससे स्पष्ट है कि आप स० १८५४ के शेपकाल तक वर्तमान थी।

---

१. लेख १८५२-५४।२५ (३) अनु० ३ एव १८५२।२६।(११।५)

२ जय (भि०ज०र०), ५१।१-२। तथा देखिये—

(क) जय (शा०वि०) २।१

दीर्घपृष्ठ डसियो कुशलाजी काल कियो गुँदोच विषै।

(ख) ख्यात,क्रम १

(ग) हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सती माला, गा० ४

गूँदोच गाव मे सर्प डस्या ने जोग।
अति तीखी भावे पडित-मरण परलोक॥

३. लेख १८५२।२७, अनु० १२

हुलास (शा०प्र०) मे स्पष्ट उल्लेख है कि आप भिक्षु के युग मे ही दिवंगत हुई थी।[1]

भिक्षु के देहान्त के समय जो २७ साध्वियां वर्तमान थी, उनमें भी आपका नाम नहीं आता। इससे सिद्ध होता है कि आपका देहान्त स० १८५४ के शेषकाल और स० १८६० की भाद्र शुक्ला १३ के बीच किसी समय में हुआ था।

ख्यात में लिखा है : "कुशलाजी प्रकृत रा वोहत शुद्ध वनीत ठेठ ताइ कुशल क्षेम थका पार उतर्‌या।"

हुलास (शा०प्र०) मे जो वर्णन मिलता है वह ख्यात से प्रभावित है :

कुशलाजी प्रकृत रा वड भद्रक बुधवान ।।
वलि विनय गुणे युत थेट ताइ गण माय।
रह्या कुशले खेमे चरण करण चित लाय ।।[2]

शासन प्रभाकर के अनुसार आपने अंत मे संथारा किया था।[3] पर यह कथन अप्रामाणिक है। प्राचीन किसी भी कृति से इसका समर्थन नहीं होता। केवल पण्डित-मरण और शुभ परिणामो से देहावसान का उल्लेख है।[4] ख्यात में भी पण्डित-मरण का ही कथन है।

---

१. हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सती माला, ८४-८६

हिव रही गुण चाली सतिया माथी इग्यार।
सुरलोके पहुती भिक्षु थका व्रत धार ।।
कुशलाजी मटुजी सुजाणा देऊ जाण।
गुमानाजी कुसुमा जीऊजी पहिचाण ।।
मेणा वर पडित सदांजी सुखकार।
फूलाजी रूपा सर्व लह्यो सथार ।।

२. वही, २-३

३ देखिये पा० टि० १

४. पण्डित-मरण ढाल २।१

कुसलाजी मटुजी सुजाणाजी साची, देऊ पण्डित मरण राची।
ए च्यारू आरज्या हुई चतुरमति, सुमरो मन हर्षे मोटी सती ।।
तथा देखिये इस प्रकरण के उद्धरण।

२. साध्वी मटुजी

साध्वी विवरणिका के अनुसार आप मेवाड प्रदेश की निवासिनी थी। पर वहा इसका आधार न रहने से इसे अन्तिम रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता । आप मारवाड की भी हो सकती है। स० १८२१ के आरम्भ मे एक साथ दीक्षित तीन साध्वियो मे भिक्षु ने प्रथम स्थान पर कुशलाजी और द्वितीय स्थान पर आपको रखा। आपने वैधव्य अवस्था मे दीक्षी ली थी।

जैसा कि पूर्व प्रकरण मे लिखा जा चुका है, आपकी दीक्षा १८२१ के शेपकाल मे मेवाड अथवा मारवाड के किसी गाव मे हुई। दीक्षा के पूर्व भिक्षु ने जो करार किया था, उसका वर्णन पूर्व प्रकरण मे दिया जा चुका है। आप महान् साध्वी सिद्ध हुई। आपने चरित्र-रूपी रत्न की वडे सम्यक् प्रकार से रक्षा की। भिक्षु की आज्ञा को आप वडे प्रसन्न मन से शिरोधार्य किया करती। अन्त मे पण्डित-मरण कर आपने आराधक-पद प्राप्त किया '

मटूजी मोटी सतीजी, स्वाम आण शिरधार।
पद आराधक पामियौजी, औ भिक्खु नौ उपगार ॥[1]

हुलास (शा० प्र०) मे आपका देहान्त भिक्षु के युग मे हुआ स्पष्ट लिखा है।[2] अत आपके स्वर्गवास की अन्तिम सीमा स० १८६० भाद्र शुक्ला १२ है।

स० १८३४ जेठ सुदि ६ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर उपलब्ध है लेकिन स० १८३७, माघ वदि ६ एव स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लिखितो मे आपके हस्ताक्षर नही है। अत

---

१. जय (भि० ज० र०), ५३।३। तथा देखिये

(क) जय (शा० वि०), २।१

पण्डित मरण मटूजी पाया, धन जै चारित्र रत्न रखै।

(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० ५

मटुजी पिण वहु वर्षा चारित्र पाल।
आत्मा ना कारज सार थई उजमाल ॥

२. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला, गा० ८४-८६ (प्रकरण १, पृ० ५३० पा० टि० १ मे उद्धृत।)

अनुमान हो सकता है कि आपका देहान्त प्रथम दो लिखितो के मध्यवर्ती-काल मे हुआ अथवा द्वितीय और तृतीय लिखित के अन्तराल मे ।

उक्त कृति मे यह भी उल्लेख है कि आपका देहावसान सथारापूर्वक हुआ था।[1] पर इस कथन का किसी भी प्राचीन कृति द्वारा समर्थन नही होता । उस प्रकरण के उद्धरणों मे "आराधक पद पाया", "पण्डित-मरण पाया" जैसे ही शब्द है । सथारा करने का कही उल्लेख नही है। ख्यात मे भी केवल पण्डित-मरण ही लिखा है—"घणा वरस चरित्र पाल आतम उजवाल पण्डित-मरण पाया ।"

१. देखिये प्रकरण १, पृ० ५३० की पा० टि० १ और उससे सम्बन्धित मूल

३. साध्वी अजबूजी

जैसा कि पूर्व दो प्रकरणो मे बताया जा चुका है, भिक्षु के आचार्यत्व-काल मे दीक्षित प्रथम तीन साध्वियो मे आप तीसरी है। आपकी दीक्षा प्रथम दो साध्वियो के साथ ही स० १८२१ मे हुई थी, इसका भी उल्लेख पूर्व प्रकरण मे किया जा चुका है। आपने पति-वियोग के बाद दीक्षा ली थी।

कई वर्षो तक आप गण मे रही। बादमे आप अपनी असयत प्रकृतिवश गण से दूर हो गई

काल केतले ताम रे, अज्जा अपर थया पछै।
अजबु छूटी आम रे, प्रकृति अयोग्य प्रताप थी ॥[1]

स० १८३४ जेठ सुदी ६ के लिखित मे आपकी सही नही देखी जाती। इससे अनुमान किया जा सकता है कि आपके अलग होने की घटना स० १८२१ के कुछ वर्षो बाद एव सं० १८३४ के लिखित की मध्यावधि मे हुई थी।

एक जगह आपके गग से बहिर्भूत होने का वर्ष स० १८३७ मिलता है। पर इसका आधार नही मिलता।

आप गण से "अज्जा अपर थया पछै" अन्य साध्वियो की दीक्षा के बाद निकली। ख्यात मे लिखा है—"अजबुजी केइ वर्ष तो माहे रह्या पछै ओर आर्य्या मोकला हुय गया पछे छूटी।"

स० १८३४ के उक्त लिखित तक १३ साध्विया दीक्षित हो चुकी थी और स० १८३७ तक १६ साध्विया।

---

१. जय (शा० वि०), २ सो० १। इसी बात को जय (भि० ज० र०), ५१। सो० १ मे अन्य शब्दो मे इस प्रकार कहा गया है

अजबू प्रकृति अजोग रे, कर्म जोग सू नीकली।
प्रकृति कठिन प्रयोग रे, चारित्र खोवै छिनक मै ॥

तथा देखिये

(क) ख्यात, क्रम ३

(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, सोरठा ६

४. साध्वी सुजाणांजी

आपके विषय मे जयाचार्य ने लिखा है . "नाम सुजाणां निरमली ।"[1] इससे स्पष्ट है कि आप अत्यन्त स्वच्छ प्रकृति की साध्वी थी। आप बड़ी समझदार थी। आपकी वाणी बडी ओजस्वी थी। "सती सयाणी सखर वाणी, नाम सुजाणा शोभन्ती"[2] "वर सतिय सुजाणा सखर गुणे शोभन्ती"[3] आदि उद्गारो मे आपके उक्त गुणो का उल्लेख पाया जाता है।

दीक्षा क्रम मे आपका नाम साध्वी अजवूजी (क्रम ३) के पश्चात् और साध्वी फत्तूजी (क्रम १०) के पूर्व आता है। साध्वी अजवूजी की दीक्षा सं० १८२१ के शेपकाल मे हुई थी, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। साध्वी फत्तूजी की दीक्षा स० १८३३ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया के दिन हुई थी। अत आपकी दीक्षा उक्त दोनो तिथियो की मध्यावधि मे हुई थी, यह सुनिश्चित है। इस मध्यावधि मे आपके वाद पाच दीक्षाए और होने का उल्लेख है तथा क्रम मे आपका नाम साध्वी अजवूजी के तुरन्त वाद मे आता है। अत यह सभव है कि आपकी दीक्षा उक्त मध्यावधि के पूर्व भाग मे अर्थात् अजवूजी की दीक्षा (स० १८२१) के समीपवर्ती-काल मे हुई हो।

शासन प्रभाकर के उल्लेखानुसार यह तो निश्चित ही है कि आप भिक्षु के जीवन-काल मे ही स्वर्गस्थ हो गयी थी।[4] अत आपके स्वर्गवास की अन्तिम सीमा स० १८६० की भाद्र शुक्ला १२ है।

सं० १८३७ के शेपकाल मे भिक्षु चूरू पधारे थे। उस समय शिवरामजी, सतोपचन्दजी ने उनके सामने फतूजी (१०) से सम्वन्धित जो वाते रखी, उनमे से एक मे फत्तूजी का आप (सुजाणाजी) के प्रति कैसा कटु व्यवहार था इसकी चर्चा है।[5] भिक्षु ने साध्वी फतूजी आदि को गण से पृथक् किया, इसका एक कारण यह भी रहा कि उन्होने साध्वी सुजाणाजी को अन्य साध्वियो के साथ नही भेजा।[6]

---

१. जय (भि० ज० र०), ५१।४

२. जय (शा० वि०), २।३

३. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० ७

४. वही, ८४-८५। प्रकरण १, पृ० ५३० पा० टि० १ मे उद्धृत)

५. लिखत १८३७।१६।२१ · सुजांणी आश्री म्हा आगै घणी कूकी। यांरे माहोमां धेष छै।

६ फत्तूजी दोप सेव्या त्यांरी विगत १८३७।१६ के नीचे वाले लेख का परि० १०

साध्वी सुजाणाजी की स्वच्छन्दवर्तिनी फत्तूजी के साथ पटती नही थी।

सवत् १८३७ का आपका चातुर्मास फत्तूजी के साथ नही था। यह स० १८३७ माघ वदि ६ के लिखित से स्पष्ट है जिस पर आपके हस्ताक्षर है और फत्तूजी आदि के नही है। अत मुनि संतोषचन्दजी आदि ने आपसे सम्वन्धित जो उपर्युक्त बात कही, वह स० १८३३ मार्ग-शीर्ष वदि २ और स० १८३६ की समाप्ति के पूर्व उस समय की होनी चाहिए, जबकि मुनि सतोषचन्दजी आदि अनुकूल रहे। उक्त घटना से पता चलता है कि उपयुक्त अवधि मे आप कभी फतूजी के साथ थी।

स० १८३७ माघ वदि ६ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर मिलते है। तदुपरान्त स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपकी सही नही है। अत अनुमान किया जाता है कि आपका देहावसान स० १८३७ और स० १८५२ के लिखितो के मध्यवर्ती-काल मे हुआ था।

ऐसा भी कथन मिलता है कि अन्त मे आपने सथारा किया था।[1] पर किसी भी प्राचीन कृति मे इसका समर्थन नही पाया जाता।[2] प्राचीनतम कृति मे भी केवल पण्डित-मरण की ही बात है।[3] ख्यात मे भी "आराधक-पद पाया"—इतना ही उल्लेख है।

---

१. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० ८४-८६, प्र० १, पृ० ५३० पा० टि० १ मे उद्धृत।

२. (क) जय (भि० ज० र०), ५१।४
स्वाम तणे गण मे सती जी, परभव पहुती जाय।
(ख) जय (शा० वि०),२।३
भिक्षु गण मे परभव पहुती

३ पण्डित-मरण ढाल, २।१ (प्रकरण १, पृ० ५३० पा० टि० ४ मे उद्धृत)।

५. साध्वी देऊजी

आप शासन मे एक अतीव ओजस्विनी सती हुई—यह जयाचार्य के "देऊजी दीपाय"[1] "फुन देऊजी दीपती"[2] आदि शब्दो से प्रकट है।

पूर्व प्रकरणगत विवेचन के अनुसार क्रमाधार पर आपका दीक्षा समय स० १८२१ के शेपकाल मे और स० १८३३ की मार्ग शीर्प कृष्णा द्वितीया के मध्यवर्तीकाल मे पडता है। दीक्षा-क्रम मे अजबूजी के वाद दूसरा नाम आपका आने से सहज ही अनुमान होता है कि आपकी दीक्षा उक्त अवधि के पूर्वार्द्ध अर्थात् स० १८२१ के समीप के वर्पो मे हुई होगी।

जैसा कि शासन प्रभाकर मे लिखा है, आपका देहावसान भिक्षु के जीवन काल मे हुआ था।

स० १८३४ के लिखित मे आपकी सही नही है। पर क्रम मे उत्तरवर्ती साध्वियो (यथा गुमानाजी आदि) की सही है। आपकी सही न होने के दो ही कारण हो सकते है—या तो किसी कारणवश आप लिखित मे सही करने के अवसर पर उपस्थित न थी अथवा लिखित के पूर्व ही आपका देहावसान हो चुका था। पूर्वापर प्रसगो को देखते हुए दूसरा कारण ही तथ्य रूप दिखाई देता है। स० १८३७ माघ वदि ६ एव स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखितो मे सही न होने का कारण यही है।

उक्त कृति के अनुसार आपने सथारा किया था[3], पर प्राचीन सभी कृतियो मे साधारण स्वर्गवास का ही उल्लेख है।[4] यहा तक कि ख्यात भी सथारे के उल्लेख का समर्थन नही करती। उसमे "आराधक-पद पाया"—इतना ही उल्लेख है। अत आपके सथारा करने की वात किसी भी तरह प्रमाणित नही होती।

कुशलाजी, मटूजी, सुजाणाजी और आपके सम्वन्ध मे उद्‌गार है—"ए च्यारू आरज्या हुई चतुरमति"।[5]

---

१. जय (भि० ज० र०), ५१।४

२. जय (शा० वि०), २।३

३ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला ८४-८६। देखिये प्र० १ पृ० ५३० पा० टि० ८

४. (क) पण्डित-मरण ढाल, २।१ देऊ पण्डित मरण राची।
 (ख) जय (भि० ज० र०), ५१।४ स्वाम तणै गण मै सहीजी, परभव पोहती जाय।
 (ग) जय (शा० वि०), २।३ भिक्षु गण मे परभव पहुची, फुन देऊजी दीपन्ती।

५ पण्डित-मरण ढाल, २।१

६. साध्वी नेतूजी (नेऊजी)

उत्कट भाव से दीक्षा ग्रहण करने पर भी अपनी अयोग्य प्रकृति और असयत वृत्तियो के कारण आप गण से अलग हो गई .

> १. तदनन्तर तिण वार रे, साधुपणौ लीधौ सही।
> नेउ नाम निहाल रे, कर्म प्रयोगे नीकली ॥[1]
>
> २. प्रकृति अयोग्य प्रताप रे, नेतु गण थी नीकली।
> प्रवल उदय जसु पाप रे, ते किम जिन मारग वले ॥[2]

जैसा कि पूर्व दो प्रकरणो मे वताया गया है क्रमाधार पर आपका दीक्षा-काल स० १८२१ के शेपकाल एव स० १८३३ मिगसर वदि २ की मध्यावधि मे पडता है। क्रम मे अजवूजी से तीसरा नाम आने से सभव है कि आपकी दीक्षा उक्त कालावधि के पूर्वार्द्ध मे हुई हो।

स० १८३४ के जेठ सुदी ६ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है। इसके दो विकल्प हो सकते है :

१. लिखित से पहले ही आप गण से अलग हो गयी हो।

२. हस्ताक्षर करने के समय कारणवश आप उपस्थित न रही हो।

पूर्वापर स्थिति पर विचार करने से पहला विकल्प ही सभव लगता है। यही कारण है कि स० १८३७ माघ वदि ६ एव स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है।

---

१. जय (भ० ज० र०), ५१।सो० २

२ जय (शा० वि०), २।सो० २। मिलावे—

(क) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सती माला, सो० ८

> अयोग्यता परताप रे, नेतू गण थी नीकली।
> उदय थया जस पाप रे, ते किम जिन मारग वहै ॥

(ख) ख्यात, क्रम ६ 'परछदे रहणो दोरो'।

७. साध्वी गुमानांजी

आप वडी पुण्यवान् साध्वी थी। संयम मे वडी दृढ और प्राणवान् थी। "सतिय गुमानांजी सुखदाई"—आप साधु-साध्वियों को वडी सुखकर थी। अन्त समय मे आपने सथारा किया था।[1]

जैसा कि पूर्व तीन प्रकरणो मे वताया जा चुका है आपकी दीक्षा स० १८२१ के शेप काल एव स० १८३३ की मार्ग शीर्ष कृष्णा द्वितीया के वीच की अवधि मे सं० १८३३ के समीपत्व मे हुई थी। दीक्षा के पूर्व पति-वियोग हो चुका था।

स० १८३४ के जेठ सुदी ६ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर है, पर स० १८३७ माघ वदि ६ और वाद के लिखित मे नही देखे जाते। इससे कल्पना हो सकती है कि आपका देहावसान उक्त दोनो तिथियो के मध्यवर्ती-काल मे हुआ। यह तो निश्चित ही है कि आपका देहान्त भिक्षु के जीवन-काल मे हो गया था।[2]

आपसे दीक्षा मे ज्येष्ठ छह साध्वियो मे से किसी को सथारा नही आया। अतः दीक्षा-क्रम की दृष्टि से आप ही पहली साध्वी थी, जिनका स्वर्गवास सथारापूर्वक हुआ। ख्यात मे लिखा है "गुमानाजी सती वडी सुध।"

---

१. (क) पण्डित-मरण ढाल, २।२

गुमानांजी कसूवाजी जीऊजी जाणो, तीनू संथारो कर छोड्या प्राणो।
या पाम्या होसी सुख अमरपति, सुमरो मन हर्प मोटी सती।।

(ख) जय (भि० ज० र०), ५१।५

सती गुमानाजी शोभतीजी, सजम वर सथार।
इमज कसूवाजी अखीजी, अणसण अधिक उदार।।

(ग) जय (शा० वि०), २।४

सतिय गुमानाजी सुखदाई, वल कुसमा गुणवन्ती।
सथारो कर ए विहु सतिया, परभव पहुती पुण्यवन्ती।।

(घ) ख्यात, क्रम ७

(ड) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० ६

वलि सतिय गुमाना, कुसुमां गुणखान।
ए दोनो सतिया, गण सथार कराण।।

२. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, ८४-८६, प्र० १ पृ० ५३० पा० टि० १ मे उद्धृत।

८. साध्वी कुसुमांजी (कसुंमांजी)

आप गुमानाजी की तरह ही वडी गुणवान साध्वी थी। अन्त समय मे आपने सथारा कर आत्मार्थ साधा।[1] आपके सथारे के सन्दर्भ मे 'अनशन अधिक उदार'[2] शब्द विशेषण के रूप मे व्यवहृत है। इससे सूचित होता है कि आपका सथारा लम्वे समय तक चला।

आपसे ज्येष्ठ साध्वियां क्रमाक ४, ५, ६, ७ की दीक्षा स० १८२१ के वाद घटित है। उलटे क्रम से आपका नाम साध्वी श्री फतूजी के पहले एक नाम छोड कर दूसरा है। साध्वी श्री फत्तूजी की दीक्षा स० १८३३ मे मार्ग शीर्ष कृष्णा द्वितीया के दिन हुई थी। इससे सहज अनुमानित है कि आपकी दीक्षा स० १८२१ शेप काल के एव स० १८३३ मार्गशीर्ष कृष्णा २ के मध्यवर्ती काल मे स० १८३३ के समीप किसी वर्ष में हुई थी। आपके पति का स्वर्गवास दीक्षा के पूर्व हो चुका था।

स० १८३४ जेठ सुदी ९ के लिखित पर आपके हस्ताक्षर देखे जाते है जव कि स० १८३७ माघ वदि ९ के लिखित मे नही है। सभव है आपका स्वर्गवास दोनो लिखितो के बीच की अवधि मे हुआ हो। यदि आपके हस्ताक्षर अन्य किसी कारण से न हुए हो तो आपका स्वर्गवास स० १८३७ एव स० १८५२ के लिखितो के वीच की अवधि में हुआ। क्योंकि वाद वाले लिखित मे भी आपके हस्ताक्षर नही हैं।

शासन प्रभाकर मे स्पष्टत उल्लिखित है कि आपका सथारापूर्वक देहावसान भिक्षु के जीवनकाल मे ही हुआ था।[3]

---

१. देखिये—प्रकरण ७ पा० टि० १। सथारे का उल्लेख सभी कृतियो मे।
२. जय (भि० ज० र०)५ १।५ (प्रकरण ७ पा० टि० १ मे उद्धृत)
३. हुलास (शा० प्र०). भिक्षु मती माला ८४-८६।प्र० १, पृ० ५३० पा० टि० १ मे उद्धृत।

६. साध्वी जीऊजी

आप रीयां (मारवाड़) की निवासिनी थी। आपने पुत्र, पुत्र-वधू और पौत्र को छोड़कर सयम ग्रहण किया था।[1] ख्यात मे अनेक पुत्रादि को छोड़कर दीक्षा लेने का उल्लेख है—"बेटा बहु पोता छोड दीक्षा।" पर अन्य किसी वर्णन से इसकी संगति नही बैठती।[2] दीक्षा के पूर्व पति-वियोग हो चुका था।

आपका क्रम फत्तूजी (१०) के ठीक पूर्व है। फत्तूजी की दीक्षा स० १८३३ के मार्गशीर्ष मास के कृष्ण-पक्ष के प्रारम्भिक सप्ताह मे हुई थी। अत आपकी दीक्षा उससे पूर्व हुई। प्रकरण ४ से ८ की तरह आपकी दीक्षा की पूर्व सीमा स० १८२१ शेपकाल के बाद की है। इस तरह आपकी दीक्षा उक्त दोनो अवधियो के बीच हुई।

शासन प्रभाकर मे स्पष्ट उल्लेख है कि आपका देहान्त भिक्षु के जीवन-काल मे हुआ अर्थात् स० १८६० भाद्र सुदी १३ के पूर्व हुआ।[3]

सं० १८३४ की जेठ सुदी ६ एव स० १८३७ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर हैं, पर सं० १८५२ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही हैं। इससे यह निष्कर्प निकाला जा सकता है, कि आपका देहान्त सं० १८३७ और स० १८५२ के लिखितो के बीच की कालावधि मे हुआ।

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ५१।६

जीऊजी वले जाणियैजी, स्वाम तणै गणसार।
पोतो बहु सुत परहरीजी, वासी रीयां रा विचार॥

(ख) जय (शा० वि०) २।५:

बहु सुत पोतो तज सयम भज, जीऊ रिया तणी न्हाली।
परभव शहर पीपाड सथारो, तसु माडी खंड इकताली॥

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० १०.

जीऊ रइयां री सुत बहु पोतो छड।
पीपाड सथारो तस मढी इकतालीस खंड॥

२. देखिए पा० टि० १

३. हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सती माला, गा० ८४-८६। प्रकरण १ पृ० ५३० पा० टि० १ मे उद्धृत।

यह सर्वसम्मत है कि आपने कई वर्ष सयम पालन के वाद साध्वी गुमानाजी (७) और कुसुवाजी (८) की तरह सथारा किया था।[1] आपका सथारा पीपाड मे सम्पूर्ण हुआ था।

आपकी शव-यात्रा ४१ खडी अर्थी मे निकाली गई थी।[2]

---

१ (क) पडित-मरण ढाल, २।२, प्रकरण ७, पृ० ५३८ पा० टि० १ मे उद्धृत।

(ख) जय (भि० ज०), ५१।७

काल कितैक पछे कियोजी, शहर पीपाड मझार।
डगताली खडी ओपतीजी, माडी करी निवार॥

२. पा० टि० १

१०-१२. साध्वी फत्तूजी, अखुजी, अजबूजी (१८३३-३७)

ये तीनो एव चन्दूजी (१३) आचार्य रुघनाथजी के टोले मे थी। वहा से निकलकर चारो ने भिक्षु से दीक्षा देने की अर्ज की। भिक्षु ने आचार की विधि वतलाते हुए स० १८३३ मार्ग शीर्प कृष्णा २ को एक लिखित किया। चारो ने उसे स्वीकार किया।[1]

उक्त लिखित मे उल्लेख है . "ए लिखत वचाय अगीकार करायो ने सामायक चारित अगीकार करायो छै।" इससे स्पष्ट है कि भिक्षु ने इन चारो को उक्त लिखित की मिति स० १८३३ मार्गशीर्प वदि २ बुधवार के दिन दीक्षा दी थी। १९वी हाजरी मे उल्लेख ही है : "स० १८३३ मिगसर वदि २ बुधवार पाली स्यू विहार कर ४ आर्या फत्तूजी, अखूजी, अजवूजी चदूजी नै लिखत कर स्वामीजी टोला वाला मा सू दीक्षा दीधी।"

वाद मे जव छेदोपस्थापनीय चारित्र दिया तव भी उक्त लिखित को पढ़ सुनाया और चारो आर्याओ ने उसे मजूर किया।

उक्त लिखित, जिसमे शिक्षाए और आचार-गोचरी की विधि समाहित है, इस प्रकार है .

१. खडे हुए चीटी न दिखाई दे तव सलेपना करना।

२. विहार करने की शक्ति न रहे तव सलेखना करना।[2]

---

१ जय (भि० ज० र०), ४१।सो० ३-४ :

फत्तू अखूजी न्हाल रे, अजवू चन्दूजी अजा।
भेपधार्‍या मै भाल रे, पछै चर्ण लियौ पूज पै॥
समत अठारै सोय रे, वर्प तेतीसै वारता।
लिखत करी अवलोय रे, मुनि लीधी टोला मझे॥

२. जयाचार्य ने उक्त लिखित का पद्यानुवाद करते हुए (सोरठा, ५-१०) मे स्पष्ट किया है कि प्रथम दो नियम सर्व साध्वियो के लिए नही, केवल फत्तूजी के लिए थे :

उभी नै अवलोय रे, जो कीडी सूझै नही।
विहार सक्ति घट्या सोय रे, सलेपणा मडणो सही॥
ए दोनूं वोल अवलोय रे, फत्तूजी नै इज छै।
अवरा नै नहि कोय रे, न्याय पैतालीसा लिपन मै॥

३. आर्याओ का वियोग हो जाने पर, रहना न कल्पे तव सलेपना करना।

४. साधु कहे वहा चातुर्मास करना।

५. साधु कहे वहा शेपकाल मे रहना।

६. शिष्या करनी हो तो साधुओ के कहने से करना। आज्ञा विना न करना।

७. शिष्या करने पर यदि कोई साधुत्व के लायक न हो, साधुओ के चित्त को ठीक न लगे तो साधुओ के कहने से दूर कर देना।

८. साधुओ की इच्छा अलग विहार कराने की हो अथवा और आर्याओ के साथ अलग-अलग भेजे तो ना नही करना।

९. साधु-साध्वियो मे कोई त्रुटि-दोप, प्रकृति आदि का अवगुण हो तो गुरु को कहना, किन्तु गृहस्थादिक से न कहना।

१०. आहार, पानी, कपडादिक के विपय मे लोलुपता की साधुओ को शंका हो तो साधुओ को प्रतीति हो वैसा करना।

११. अमल (अफीम), तम्वाकू आदि रोगादि वश लेना, किन्तु व्यसन रूप नही लेना। लेने से ही चले वैसा न करना।

१२. सर्व साधु-साध्वियो को आचार-गोचर मे शिथिल होते देखकर अथवा शका पडती जानकर समुच्चय सर्व साधु-साध्वियो के लिए कडी मर्यादा की जाए तो भी ना न करना।

साध्वी फत्तूजी आदि ने उक्त वारह वाते स्वीकार कर साध्वी-जीवन ग्रहण किया।

साध्वी फत्तूजी आदि का पूर्व-जीवन स्वच्छद था। इससे भिक्षु की दृष्टि के अनुसार चलना उनके लिए अत्यन्त कठिन सिद्ध हुआ।

एक वार भिक्षु ने इन्हे कल्पानुसार कपडा ले लेने के लिए कहा। कल्प से अधिक कपडा ले लेने पर भी भिक्षु के पूछने पर झूठ वोल गई। भिक्षु ने मुनि अखैरामजी को भेजकर कपडा मपवाया। प्रमाण मे अधिक निकला।

भिक्षु ने देखा कि चारो ही प्रकृति से वडी अविनीत है। आत्म-साक्षी से सयम का पालन नही कर रही है। जान-बूझकर झूठ बोली। अत उन्हे गण से दूर कर दिया।

फत्तू अखू ताय रे, अजवू चन्दू ए चिहु।
भेषधार्‌या थी आय रे, वर्ष तेतीसै स्वाम गण॥
वर्ष सेतीसै जेह रे, तुझ तन्तु कल्पै तिको।
इम कहि कपडो देह रे, पूछ्या कहै अधिको न मुझ॥

आय्यादिक वृध गिलाण रे, कारणीक जे कोइ हुवै।
व्यावच तसु अगिलाण रे, करणी रूडी रीत सू॥
सलेपणा री सोय रे, ताकिदी करणी नही।
वैराग वधै ज्यू जोय रे, वीजा नै करणो सहि॥
विहार करण रीत रे, काची निजर हुवै तदा।
वहु षप कर धर पीत रे, चलावणो तेहनै सहि॥
पैतालीसा लिषत माहि रे, इण विध आस्यो स्वामजी।
ते विहू वोल इण न्याय रे, फतूजी नै इज छै॥

अखयराम अणगार रे, मूक्यो कपडो मापवा।
तस थानक तिहवार रे, माप्यां अधिको नीकल्यो ॥
इम ततु अति राख रे, झूठ बोली वले जाण नै।
शुद्ध नहि सयम साख रे, अविनय प्रकृति अयोग्य पुन ॥
च्यारू तेह पिछाण रे, चैना भेली पाचमी।
झट पांचू ने जाण रे, छोड़ी चडावल मझे ॥[1]

भिक्षु ने फत्तूजी आदि चारों साध्वियो को चडावल मे गण से बाहर किया। यह स० १८३७ की फाल्गुन वदि २ की घटना है।[2]

उक्त चारो साध्वियों के साथ ही भिक्षु ने चैनाजी (१४) को भी छोड़ दिया।

फत्तूजी आदि चारो आर्याओ के गण मे चार चातुर्मास हुए—स १८३४, १८३५, १८३६ एवं १८३७ के। वे गण मे ४ वर्ष ३ महीने और १ दिन रही।

फत्तूजी आदि साध्विया गण से पृथक् की जाने के बाद मुनि सतोपजी और शिवरामदासजी, चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी के पास आई। घटनाओ का फुटकर उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है

१. फत्तूजी ने बोरावड मे चातुर्मास[3] किया, वह इनके[4] आदेश से किया था।[5]

---

१. जय (शा० वि०), २।सो० ३-७। तथा देखिए—
  (क) जय (भि० ज० र०), ५१।सो० ५।११
  (ख) जय (भि० दृ०), दृ० १५४
  (ग) ख्यात, क्रम १०-१३
  (घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत वर्णन, गा० ११-१५। यह वर्णन ख्यात का पद्यानुवाद मात्र है।

२. (क) फतूजी दोप सेव्या त्यारी विगत (१८३७).
  फतूजी आदि पाच आर्या नै टोला वारै काढी १८३७ फागुण विद २ त्या दोप सेव्यारौ प्राछित न लीयौ तिण सू वारै काढी।
  (ख) लिखत १८३७।२०।४.
    फतू घणां दोप सेव्या साधपणा रा लषण जाण्या नही तिण सू वारै काढी।
  (ग) जय (भि० ज० र०), ५१।सो० ६, १०, ११
    अशुद्ध प्रकृति अविनीत रे, सुमते जांणी स्वामीजी।
    शुद्ध नही सयम साख रे, नीति चरण पालण तणी ॥
    च्यारू ते पहिछान रे, चैना भेली पांचमी।
    झट पाचू नै जाण रे, छोड़ी चंडावल मझै ॥

३. यह चातुर्मास किस वर्प का था, कहा नही जा सकता।

४ सतोपजी।

५. १८३७।२४।३ (वाजोली का लेख)

२. वाजोली के श्रावको ने कहा : "फत्तूजी की तिक्खुता के पाठ मे वन्दना चातुर्मास[1] मे और शेषकाल मे भी की ।" उसका उपालम्भ तक हम लोगो को नही किया। अब फत्तूजी को झूठ बोलने वाली कहते है ।[2]

३ वाजोली के भाई ने कहा "साधुओ ने फत्तूजी आर्या को अच्छी साध्विया कहा। जिससे हम लोगो ने तिक्खुत्ता के पाठपूर्वक वन्दना की । चातुर्मास मे[3] आहार जल से बहुत साता पहुचाई । साधुओ के कहने से इन्हे साध्विया समझी । साधुओ ने कहा 'पहले दोष लगा उसकी आलोचना कर शुद्ध हुई है। अब तो अच्छी साध्वियां है। इनके प्रति शका मत रखना ।' अब इन्हे खोटी बताई है इससे हमने वदना छोड़ी है ।"[4]

४. सतोषचन्दजी ने (वाजोली के श्रावको से) कहा "इन्हे साध्वियां समझो ।" तब एक भाई ने पूछा "फिर इन्हे जुदा क्यो रखते है (इनसे आहारादि सभोग क्यो नही करते) ?" तब उत्तर दिया "तपस्वी (सिवरामदासजी) का मन नही है इसलिए ।"[5] तपस्वी से पूछा तब बोले · "यहा आप लोगो को प्रतीति आई है। वैसे ही उधर[6] आए बाद देखा जाएगा ।" नकार मे केवल तपस्वी थे ।[7]

५. सतोषजी ने कहा "फत्तू आदि आर्या तो शुद्ध है। साधुत्व का पालन करती है। इनकी सेवा-भक्ति करना ।"[8]

६. फत्तूजी को छेद दिया । सभोग भी खोला । पर आहार नही किया । अमरचन्दजी ने भी कहा : "मेरा मन एक बार हुआ इन्हे अन्दर ले । अब तो मन से भी वाञ्छा नही करता ।"[9]

७. तिलोकचन्दजी ने कहा · "आर्या फत्तू महा खोटी है। बहुत बुरे कर्मो की करने वाली है। महा मिथ्या बोलने वाली है। इनमे साधुत्व नही है। यदि सतोषजी इन्हे लेगे तो हम लोग "यां सू जावजीव भेला हुवा कोई नही ।"[10]

उपर्युक्त घटना-वृत्तो से पता चलता है कि भिक्षु द्वारा पृथक् किए जाने के बाद फत्तूजी आदि को अन्दर लेने के विषय मे चारो में मतभेद रहा। सतोषचन्दजी और सभी साधु उन्हे अन्दर लेना चाहते थे। पर शिवरामदासजी को यह स्वीकार नही था । भिक्षु ने लिखा है ·

"फतू सू सभोग कीधो श्रावका नै गुणग्राम कीधा आर्या सूल है यारी सेव भगत कीजो। वाजोली माहे इरवा माहे गुण ग्राम करनै साधवीया सरधाइ यारी कह्यो सू श्रावक श्रावका वदणा कीधी यानै माहे लेता था। सिवरामजी सभोग तौर अलगो जाय बैठो यानै माहे लेन्यो तो

---

१. यह चातुर्मास सं० १८३८ का होना चाहिए ।

२. १८३७।२४।१५-१६ (वाजोली का लेख)

३. स० १८३८ का चातुर्मास ।

४. १८३७।२३।१८ (ईडवा का लेख)

५. १८३७।२४।८ (वाजोली का लेख)

६. सभवत. यह सकेत तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी के प्रति है ।

७. १८३७।२४।९-१० (वाजोली का लेख)

८. १८३७।२३।१३ (ईडवा का लेख)

९. १८३७।२३।१८ (ईडवा का लेख)

१०. वही ।

हूं माहे रहू नहीं तिण मू माहे न लीधी बीजा तो मगलाई जणो माहे नेना त्था ते भाया घणां जणां कनै साभल्यो छै।[1]

ऐसा पाया जाना है कि गण से पृथक् कर दिए जाने के बाद फत्तूजी ने कुछ दीक्षाएं दी थी। उनकी चेलियो मे से दो के नाम—गंगाजी (६२), नोजांजी (६३) थे। दोनो ने फत्तूजी को छोडकर आचार्य भारमलजी के युग मे सं० १८७० मे दीक्षा ग्रहण की थी और अन्त मे संथारा-पूर्वक मरण प्राप्त किया था।

गगा नोजा ए दोनूई, फत्तू तणी चेली धारी।
चरण लेई ने वर्ष गुणयासीयै, सथारो वर सिरियारी ॥[2]

स० १८३७ के शेषकाल मे भिक्षु चूरु गए थे। वहा संतोषचन्दजी, शिवरामदासजी तथा श्रावको ने फत्तूजी आदि चारों आर्याओं की शिकायत करते हुए कहा .

१. पात्र ठीक न आने से बाई और आर्याओं को दु.ख हुआ। इससे पात्र दो फिर उतरवाए। दूसरी बार पात्र भारी आए तब आर्याओ को दिखाकर वापिस भेज फिर उतरवाए। इनमें से एक पात्र पांचो आर्याओ ने याचा।

२. एक तूबा रंगा। वह रखने योग्य था। पात्र के बदले मे उसे परठ दिया। फिर एक तूबा रंगा। वह रखने योग्य था। उसे भी परठ दिया और दूसरा याच लिया। इस तरह रग-रंग कर परठती रहती और नए याचती रहती।

३. एक बाई (कुमली) की पछेवड़ी देखकर आर्याओं ने उसे हल्की बताई। इसमे उसने दो थान नए खरीदे। पहले वाले फिरती दिए। उसके कोरे पात्र फत्तूजी ने रगे। इस बाई से ऊन याची। उसने बदले में ऊन खरीदी।

४. साधुओ के मनाही करने पर भी सावद्य चौपाइया कहती रहती।

५. ईर्या मे, परठण (प्रतिष्ठापन) मे, पूजण मे, प्रतिलेखन मे—इन क्रियाओ मे विशेष शुद्ध नही। आते-जाते अनेक बार वनस्पति का स्पर्श होता रहता है।

६. रजोहरण के होते हुए भी अनेक गांवो मे ऊन याचती रही।

७. लूकार को उधेड़कर रजोहरण किया। कहा : "लूंकार भारी है, वहन नही होता।"

८. कुम्हार के घर से कच्चा जल लिया।

शिवरामजी सतोषजी ने निम्न शिकायतें भी की :

९. हम लोगो के पहुंचने के पूर्व ही दीक्षा दे डाली—डर से।[3]

१०. जिस-तिस बाई को दीक्षा लेने के लिए कहती है। चेली की भावना बहुत है।

११. आपने आर्याओ को चेली करने का त्याग कराया, वह हम लोगो को नहीं बताया।

१२. हमने चेली का नाम लिया उससे शीघ्र विहार कर चूरु पहुची।

१३. हम लोगों के सम्मुख चेली करने के पूर्व वंदना की। यह आर्याओ को नही बताया। हम लोगो ने कहा था—हमारी ओर से वदना करायी है पर तुम स्वामीजी से कहना। स्वामीजी न सूपे तो वे जानें। यह बात आपसे नही कही।

---

१. १८३७।२०।४

२. जय (शा० वि०), ४।२१

३. संभवत. चैनांजी को।

१४. इनके केवल सख्या बढाने की भावना है। आचार-पालन की कोई भावना नही।[1]

१५ अखूजी और चन्दूजी बडी अयोग्य है। इनमे परस्पर लडाई, बोल-चाल बहुत होती है। इससे बाई कुसला के दीक्षा लेने के विचार फिर गए। आर्याओ के कहने से साधुओ ने चन्दूजी को समझाया। इससे वह उन पर कुढने लगी।[2] सुजाणाजी (४) और इनमे द्वेष है।[3]

१६ आदमी अनेक दिनो के लिए अभिलाषा दिखाकर साथ लिया। सतोषचन्दजी ने कहा "तुम लोग स्वामीजी के सामने आलोचना कर प्रायश्चित लेना। मैने तो तुम्हे नाम मात्र प्रायश्चित दिया है।" उन सबने आपके सामने आलोचना कर प्रायश्चित्त नही लिया। उन आर्याओ की प्रतीति हमे कैसे हो? पहले तो ये आर्याए भागलो के बेदे मे से निकली। अब उन्हे अच्छा कैसे समझती है?[4]

१७. इन क्षेत्रों मे हम लोगो को बहुत नीचा दिखलाया। हमारा तो इन आर्याओ से पहले ही बिल्कुल मन फट गया था। इनका परिणाम साधुत्व-पालन का जरा भी दिखाई नही देता। इनकी कूट-कपट की बहुत चाले है। पूछने पर ये सच्ची बोले वैसी नही जानी जाती। हम क्या जाने कि आर्याए ऐसी है? अब तो इनका ताम्बा उघड चुका है। इनके साथ हम आहार कैसे करे? पहले से ही हमारा मन इनसे फटा हुआ था। यहा आकर इन्होने हमारे मन को टोले से विशेष तोड दिया है। अब तो हम उधर आकर निर्णय कर सभोग करेगे। पहले नही करेगे।[5]

१८. सुजाणाजी (४) को लेकर हम लोगो के सामने बडी कूक मचाई।[6]

१९. बहिनो मे इनको लेकर बडा असतोष है। उनका कहना है इनकी टोले वाली आदत गई नही।[7]

फत्तूजी आदि को अलग करने के बाद उनके विषय मे जो बाते आई, उन पर टिप्पणी करते हुए भिक्षु ने लिखा

१. कपड़ा कल्प से कम बतलाया। पछेवडी छह बतायी। कपडा बहुत अधिक निकला।

२. शिष्या करने का त्याग था, उसे भग किया।[8] मुनि सतोषजी को वदना कर शिष्या की। सतोषजी ने कहा था "अपनी ओर से सौपता हू, पर स्वामीजी को सूचित करना। स्वामीजी जो करेगे सो वे जाने।" फत्तूजी ने इस बात को दगा कर छिपा रखा। कहा नही। मायापूर्ण झूठ और अदत्त का दोष लगाया।

३ अन्य की चेली[9] को बिना आज्ञा अपनी की। यह चोरी का पाप किया। उसे फटा

---

१. १८३७।१९।१५, १६, २२, २४, २५

२ १८३७।१९।१३-१४

३. १८३७।१७।२१

४ १८३७।१९।८

५. १८३७।१९।२६

६. १८३७।१९।२१

७ १८३७।१९।१७

८. सभवत चैनाजी को दीक्षा दी थी।

९. किससे अभिप्राय है पता नही चला।

कर अपनी की। अन्य आर्याओ का अवर्णवाद कर, गुरु और गुरु-भाइयो का भी अवर्णवाद कर सबसे मन तोडकर अपनी बनाई। फोडा-तोडी और चोरी का पाप किया।

४. गुटबन्दी करने का त्याग था। उसे भग कर चार-पाच ने मिलकर वैसा किया।

५. कहने लगी लिखित मे लिखे त्याग और लिखित को नही मानना। इस तरह त्याग और लिखित को उत्थापित किया। लिखित के अनेक त्यागों को तोड़ा।

६. गृहस्थो के सम्मुख साधु-साध्वियो के अवगुण कहने का त्याग था। उसे भग कर दिया।

७. आर्या को अन्य के साथ भेजने पर ना कहने का त्याग था। उसे तोडा। साध्वी सुजाणाजी को नही भेजा।[1]

८. विना आज्ञा चातुर्मास किया। इस विषयक त्याग का भग किया।

९. किसी आर्या को छोडने पर उसके साथ जाने का त्याग था। साध्वी अजबूजी और अजवूजी को छोडने पर उनसे सभोग किया।

१०. अभिप्राय सूचित कर विहार करते समय आदमी को साथ मे बहुत दिनो तक रखा।

११ कुसलाजी ने दीक्षा ली तव पछेवडी अधिक ली।

१२. विना आज्ञा शेषकाल और चातुर्मास मे विचरण किया।

१३. वगडी की बहिनों ने अनेक दोष बताए और मुकावला कराया।

१४. लिखित करा कर सौगन्ध कराए। अजवूजी उसी दिन बदल गई। दूसरी आर्याओं को इसका पता होने पर भी बताया नही।

१५. उपर्युक्त त्याग-भंग और दोष-सेवन के लिए प्रायश्चित्त लेने की वात आई तब प्रायश्चित्त लेना अस्वीकार कर दिया।

उक्त लेख से पता चलता है कि फत्तूजी ने एक दीक्षा दी थी और साधु संतोषचन्दजी ने इस सम्बन्ध मे जो बात कही वह बात स्वामीजी को नही कही। दूसरी साध्वी की चेली को अपनी चेली बनाया था। उससे यह भी पता चलता है कि फत्तूजी ने कुसली बाई को दीक्षा दी थी। स्वामीजी की साध्वियो मे उनका नाम नही है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि वह फत्तूजी आदि के साथ ही चली गई थी। अत उसकी गणना नही की गई।

---

१. किसके साथ नही भेजा इसका उल्लेख नही मिलता।

१३. साध्वी चन्दूजी

पूर्व प्रकरण मे यह बताया जा चुका है कि आपकी दीक्षा साध्वी फत्तूजी (१०), अखूजी (११) और अजबूजी (१२) के साथ स० १८३३ के मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया के दिन हुई थी। उनके पिता का नाम विजैचन्दजी लुणावत था, जो पीपाड (मारवाड) के निवासी थे।[1] साध्वी फतूजी आदि की तरह ये भी स्थानकवासी सम्प्रदाय की साध्वी थी। वहा से आकर दीक्षा ली थी।

प्रकरण (१०) मे बताया जा चुका है कि चन्दूजी को उक्त तीनो साध्वियो के साथ ही स० १८३७ की फाल्गुन सुदी २ के दिन भिक्षु द्वारा चण्डावल मे गण वाहर कर दिया गया था। ऐसा होते हुए भी देखा गया कि स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित पर उनके हस्ताक्षर है। जय (भि०ज०र०), जय (शा०वि०), ख्यात, हुलास (शा०प्र०) आदि किसी भी कृति मे ऐसा उल्लेख नही कि स० १८३७ मे पृथक् करने के वाद आप पुन दीक्षित हो, गण मे आयी थी। ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठता है कि स० १८५२ के उक्त लिखित मे उनके हस्ताक्षर कैसे पाये जाते है ?

अनुसधान करने पर "५२।२५ चन्दूजी वीरा २५" शीर्षक एक लेख प्राप्त हुआ है जिसके प्रारम्भ मे लिखा है—"चन्दूजी को अन्दर लेने के पूर्व भिक्षु ने करार किया, गम्भीरता से कहा, वहुत बार कहा—मै जो बोल (वाते) कहता हू उनका चारित्र ग्रहण करने के साथ प्रत्याख्यान है। आत्म-वल हो तो गण मे आना।"

इसके वाद भिक्षु ने निम्न वोल (वाते) उनके सामने रखी

१. टोला मे मर खपना पर वाहर नही निकलना।

२. जिस आर्या के साथ भेजा जाय उसके विनय मे चलना, मुझ तक शिकायत आवे वैसा विल्कुल नही करना।

३. तुम दोनो को जुदी-जुदी भेजेगे। साथ रखने की वाट मत जोहना। वाद मे कहोगी—हम दोनो को साथ रखे। ऐसी कोई वात नही है।

४. कपड़ा जैसा दिया जाये लेना, ना नही करना।

५. आर्याओ से स्वभाव-प्रकृति न मिले तो सलेखना सथारा करना, पर टोला के वहिर्भूत न होना। तुम्हारी, मेरी और ज्ञातियो की ठीक लगे वही करना है।

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० २७०।

६. चेली करने का यावज्जीवन त्याग है ।[1]

भिक्षु ने पहले का भी पत्रक पढा दिया और जो प्रत्याख्यान उसमे थे और जिन्हे भग किया गया था, उन्हे फिर से स्वीकार कराये ।[2]

भिक्षु ने कहा—"फतूजी (१०) आदि सब साध्विया असाध्विया कहलायी है ।" चन्दूजी बोली—"मैने मोह के वश जन्म खोया ।" इसके बाद चन्दूजी ने पुन. कहा—"उभी मुकावै तो उभी सूकू पिण आगन्या लोपु नही ।"[3]

साध्वी चन्दूजी और साध्वी वीराजी (४२) की बीच की एक बात इस प्रकार मिलती है "वह कहती तू मुझे लायी और वह कहती तू मुझे लायी ।"[4] चन्दूजी ने एक बार वीराजी से कहा—"(मै तुम्हे क्या लायी) तू उधर से तोड़ कर अघा गई तब इनमे आयी ।"[5]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जब चन्दूजी ने भिक्षु से पुनर्दीक्षा ग्रहण की तब वीराजी ने भी उनके साथ दीक्षा ग्रहण की थी । वीराजी बाईस सम्प्रदाय के किसी टोले मे थी । वहा से अलग हो गई थी और चन्दूजी के साथ आकर भिक्षु से दीक्षा ग्रहण की थी ।

भिक्षु ने चन्दूजी से जो करार किए उनमे से उपर्युक्त तीसरे करार के मूल शब्द इस प्रकार है—"थानै दोया नै जूदी २ मेलसा भेली राखण री बाट जोयजो मती । पछै कहोला महानै भेली राखो जका बात छै कोइ नाही ।" यहा "तुम दोनो" शब्दो का अभिप्राय चन्दूजी और वीराजी से है ।

साध्वी वीराजी के प्रकरण मे सिद्ध किया गया है कि उनकी दीक्षा सं० १८५२ में हुई थी । दोनो की दीक्षा साथ होने से चन्दूजी की पुनर्दीक्षा भी उसी वर्ष की सिद्ध होती है । लेख के हाशिए पर "अकित ५२" का सम्बन्ध उन शर्तो से है जो चन्दूजी वीराजी ने स० १८५२ मे दीक्षा लेते समय की थी ।

उक्त लेख मे पहले के जिस पत्रक को पढने और उसकी शर्तो को पुन. स्वीकार कराने का उल्लेख है उसका सम्बन्ध १२ बातो वाले स० १८३३ मिगसर वदि २ बुधवार के दिन फतूजी यावत् चन्दूजी की दीक्षा के समय उनसे कराये गये लिखित के साथ है । फतूजी यावत् चन्दूजी को इसी लिखित की शर्तो को भग करने तथा मर्यादा से अधिक वस्त्र रखने के कारण गण से दूर किया था । चन्दूजी को पुनर्दीक्षित करते हुए उक्त लिखित भी उनको पढाया गया और जो प्रत्याख्यान भग किए थे उन्हे पुन स्वीकार कराया गया था ।

स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित पर दोनो के हस्ताक्षर है, इससे इतना तो निश्चित हो जाता है कि चन्दूजी के पुनर्दीक्षित होने की घटना उक्त लिखित के पूर्व की है ।

साध्वी वीराजी के ठीक पूर्व की तीन साध्वी—वरजूजी (३९), बीजाजी (४०) और वनाजी (४१) की दीक्षा एक साथ स० १८५२ मे हुई थी । इससे यह सिद्ध होता है कि चन्दूजी और वीराजी की दीक्षा उनके बाद स० १८५२ मे हुई ।

---

१. लेख ५२-५४। चन्दूजी रो २५ (१) उपोद्‌घात एव अनु० १-४,८
२. वही, २५ (१) अनु० ५
३ वही, २५ (१) अनु० ६,७
४. १८५२ चंदूवीरा २६ (८) अनु० ५
५. १८५२।५४ चदूजीरो २५ (५) १९

वाद की घटनाओ से प्रगट होगा कि आपकी दीक्षा स० १८५२ के चातुर्मास के समीप-वर्ती-काल मे होनी चाहिए।

भिक्षु ने सह-दीक्षित साध्वी वीराजी (४२) को साध्वी सदाजी (२१) को सौपा। वाद मे उन्हे इन (चन्दूजी) के साथ किया।[1] दोनो की साठगाठ हो गई। गुटवदी करने लगी।

चन्दूजी तीव्र भावना से कई प्रत्याख्यानो को ग्रहण कर पुनर्दीक्षित हुई थी पर उनकी प्रकृति उनके वश मे न रही। उनकी दृढता अधिक समय तक न टिकी और उनकी आन्तरिक इच्छा वीरांजी (४२) को अपनी चेली करने तथा कुछ और साध्वियो को विचलित कर उन्हे गण से दूर कर अपने साथ करने की हो गई। वीराजी (४२) के सम्मुख साधु-साध्वियो के समय-समय पर अवर्णवाद कह कर उन्हे भ्रान्त कर अपने अधीन कर लिया। अव दोनो-सम्मिलित रूप से साधु-साध्वियो की निन्दा करने लगी।

साध्वी धनाजी (१६) को चन्दूजी ने कहा—"साध्वी हीराजी (२८) नित्य-नित्य एक ही घर से पूरी फीना-रोटी ला कर खाया करती थी। तीनो साध्विया शाम को गर्म आहार लाकर खाती। वहिने कहती है कि वे चोहरा मे खडी ही रहती है। तुम पाचो साध्वियो को स्वामीजी अयोग्य कहते है।"[2]

सिरियारी की वहिनो मे साध्वियो की निन्दा करते हुए चन्दूजी ने कहा—"तीनो शाम को गर्म रोटिया और घी लाकर खाती।" निहालचन्दजी की पत्नी की निन्दा करते हुए कहा—"मुह पर तो हीराजी (२८) की खुशामद करती है। कहती है—'महासतियाजी थे एकण रोटी रै खाधै किकर वैठा रहौ' और पीठ पीछे छिपे-छिपे निन्दा करती है।"[3]

अन्यत्र कहा—सिरियारी की वहिने साध्वी हीराजी (२८) आदि तीन आर्याओ के विषय मे कहती है कि वे विना कारण शाम को गर्म आहार लेती है।

भिक्षु ने जाच-पडताल की तव तथ्य यह निकला कि सिरियारी की वहिनो ने ऐसा कुछ कभी कहा ही नही था तथा हीराजी (२८) पर जो दोप मढा गया था वह मिथ्या था।[4]

इसी तरह चन्दूजी द्वारा साध्वी कुसलाजी (१) और वन्नाजी (४१) पर लगाए गए आरोप भी जाच करने पर मिथ्या सिद्ध हुए।[5]

वीराजी (४२) को वहकाते हुए चन्दूजी ने गुमानाजी (३३) के विषय मे कहा—"यह सुरीकता है, रेणादेवी है, अभवी दुप्ट जीव है, कसाइन है। राप करनै आवै तो ही साता पूछै नही। मुझे वहुत दु ख दिया।" इस पर वीराजी (४२) गुमानाजी (३३) से झगड पडी। अनु-चित वात कहने लगी—"गुरुआनी को दुर्वल कर दिया, वहुत दु ख दिया है।" प्राण आखो

---

१ वही, २५ (४) अनु० १,२
२ लेख १८५२।२६ (४) अनु० १-४
३. वही, २६ (५) अनु० ५-६
४ लेख ५२-५४।२५ (३) अनु० १-२
५ वही, २५ (३) अनु० ३-४

मे आ गये है। जाच-पडताल करने पर चन्दूजी और वीरांजी (४२) झूठी ठहरी।"[1]

इसी तरह धनाजी (१६) के सामने भी गुमानाजी (३३) मे वहुत झूठे-झूठे दोप वताए।[2]

पन्नाजी (३१) से कहा—"स्वामीजी तुम पाचो को अयोग्य समझते हैं। स्वामीजी से न कहना।"[3]

सिरियारी, वगडी, मुहालिया मे अनेक लोगो में साध्वियों के विपय मे 'अयोग्य', 'अविनीत', 'साधुत्व के लायक नही', ऐसे शब्द कहे।"[4]

इस तरह दोनो मिल कर साध्वियो का अवर्णवाद करते हुए मिथ्या-प्रचार करने लगी। गण से वहिर्गत साध्वी फत्तूजी (१०) की प्रशसा करने लगी।

भिक्षु ने फूलाजी (२२), धनाजी (१६), वन्नाजी (४१), गुमानाजी (३३), से सारी वाते पूछी। उनके नाम से कही गई वाते उनके सामने रख कर स्पष्टीकरण चाहा। इस जाच-पडताल के आधार पर भिक्षु ने पाया कि चन्दूजी और वीराजी ने अन्य साध्वियो के नाम पर मिथ्या प्रचार किया है। गण की साध्वियो के प्रति भ्रान्ति फैला कर श्रद्धा उतारने की वात कही है। मिथ्या ही एक दूसरी साध्वी का नाम लेकर परस्पर विवाद और मनोमालिन्य पैदा करने का प्रयास किया है।

यह जाच पडताल स० १८५२ फाल्गुन वदि ८ तक चलती रही।[5]

स्वामीजी को मालूम हुआ वीराजी (४२) चन्दूजी को गुरुआनी कहती है, चन्दूजी वीरांजी (४२) को शिष्या कहती हैं। अलग-अलग विहार के लिए कहने पर अस्वीकृत हो जाती हैं। दोनो मे इस तरह की साठ-गाठ है। किसी की आज्ञा का पालन नही करती।[6]

हालाकि वीराजी (४२) मोह-वश चन्दूजी के साथ गठवन्धन मे थी तथापि चन्दूजी की प्रकृति से वह सन्तुष्ट नही थी। उन्होने रहस्य मे साध्वियो से चन्दूजी के विपय मे कई वार कहा—कपडे और आहार के लिए अत्यन्त व्याकुल रहती है। मैने तो इनके न्यातियो के कहने से इनके साथ दीक्षा ली। उन्होने विश्वास दिलाया कि उनमे वहुत वैराग्य है पर इनके लक्षण वहुत वुरे हैं। छूटने के वाद भी साधु-साध्वियो का अवर्णवाद करती दीखती है। मिथ्या-दोप मढती लगती है। वहुत प्रत्याख्यान करा कर इन्हे अन्दर लिया, पर एक भी प्रत्याख्यान पालती दिखाई नही देती। अनेक साध्वियो के मन फटाने की कुचेष्टा की है। अव न्यातियों के मन भी फटाने की चेष्टा करती मालूम देती है।[7]

---

१. (क) वही २५ (३) अनु० ५
   (ख) लेख १८५२।२६ (६) अनु० १-८
   (ग) वही २६ (९) अनु० १-९
२ लेख ५२-५४।२५ (३) अनु० ६
३. वही २५ (३) अनु० ९
४ वही २५ (३) अनु० ७
५. लेख १८५२।२६ (९) अनु० १० का अन्तिम अश
६. लेख ५२-५४।२५ (४) अनु० ४-१०
७. लेख ५२-५४।२५ (५) अनु० ११-१५

चन्दूजी की हरकतो से जो स्थिति वनी उसे व्यक्त करते हुए भिक्षु ने कहा है "घणा साधनै आर्या चदु नै घणी अजोग नै अवनीत जाण चूका। कहे—यानै वेगी वारै काढो। यारा साधपणा पालण रा लपण कोइ दीसै नही।"[1]

परिस्थिति को सुधारने के लिए भिक्षु ने स० १८५२ मे फाल्गुन सुदी १४ के दिन एक लिखित किया जिसमे महत्त्वपूर्ण विधानो के साथ-साथ कुछ वाते इस प्रकार है

सर्व साधविया रे मरजादा वाधी छै। आचार तो चोखो पालणो नै माहो मा गाढो हेत राखणो तिण उपर मरजादा वांधी।

टोला रा साध-साधविया मे साधपणो सरधो, आप माहे साधपणो सरधो तका टोला माहे रहिजो। कोइ कपट दगा सू साध-साधविया भेला रहै तिणनै अनता सिद्धा री आण छै, पाच पदा री आण छै।

साधवी नाम धराय ने असाधवीयो भेली रह्या अनत ससार वधै छै। जिणरा चौखा परिणाम हुवै ते इसरी परतीत उपजावौ।

किण ही साध-साधवीया रा आगुण वोलनै मन भागनै फारण रा त्याग छै। खोटा सरधाय नै फारण रा त्याग छै।

किण ही साध आर्या माहै दोप देखे तो ततकाल धणी धणीया नै कहिणो के गुरानै कहिणौ पिण ओरा नै कहिणौ नही।

किण ही रा टोला सू न्यारा होण रा परिणाम हुव जव पिण ओरा री परती कहिणरा त्याग छै।

आप मै टोला रा साध-साधवीया मे साधपणौ सरधो तका टोला माहे रहिज्यो। ठागा सू माहे रहिणरा अनंता सिद्धा री साख करनै पचखाण छै।

किण ही साधवी मैं दोप हुवै तो दोष री धणीयाणी ने कहिणौ के गुरा आगै कहिणौ पिण ओर किण आगै कहिणो नही। रहिसै-रहिसै और भूडी जाणै ज्यू करणो नही।

किण ही आर्या दोष जाणनै सेव्या हुवै ते पाना मे लिखीया विना विगै तरकारी खाणौ नही।

माहो मा अजोग भापा वोलनी नही। कोइ साध-साधवीया रा ओगुण काढै तो साभलण रा त्याग छै। इतरो कहिणो सामीजी ने कहिजो।

ए मरजादा पालण रा परिणाम हुवै ते आरे होयज्यो। कोइ सरमा-सरमी रो काम छै नही।

इस लिखित पर अन्य साध्वियो के साथ चन्दूजी और वीराजी के भी हस्ताक्षर है।

इस लिखित को स्वीकार करने के वावजूद दोनो ने अपने स्वभाव को नही वदला और नाना प्रकार अवर्णवाद करती रही।

भिक्षु ने दोनो को अलग-अलग भेजना चाहा। तव दोनो ने इस वात को अस्वीकार कर दिया। चन्दूजी वोली "मेरा वीराजी विना काम नही चलता। मेरा शरीर अस्वस्थ है। पीपाड पहुचने के वाद उससे अलग हो जाऊगी। विजयचन्दजी कहेगे वैसा करूगी। पीपाड़ तक आर्याओ को साथ भेजे। वहा जाकर सलेखना करूगी और वीराजी को अलग भेज दूगी।"

---

१. लेख ५२-५४।२५ (३) अनु० ८

वीराजी वोली "मै भी सथारा करूंगी। आर्याओ को माथ नही भेजेगे तो हम दोनों पीपाड चली जावेगी। विजैचन्दजी से वात कर आप होंगे वहा आपके पास आ जावेगी। तव आप कहेगे वैसा करेगी।[1] "मेरा विना इनके आर्तध्यान रहता है। साधुत्व नही पलता।"

आज्ञा न मानने पर भिक्षु ने उन्हे छोड़ने का अभिप्राय प्रगट किया। तव वहस करने लगी—"हम मे क्या दोप है ? आपका मुझसे वैर था, उसे पूरा करना चाहते है। मै लोगो को कहूगी। हम लोगो को छोडने पर उपकार घट जायेगा। फतूजी (१०) की तरह नही हू। मेरा प्रभाव है। उसकी वात लोग नही मानते थे पर मेरी वात मानेगे। मेरी प्रतीति है। पीपाड़ जाऊगी। पाली जाऊगी। देखे, आपको क्या अच्छी लगती है, देखे आप पीपाड़ मे क्या उपकार कर लेते है।"[2]

इस धमकी का भिक्षु पर कोई असर नही पडा। उन्होने दोनो को छोड दिया। दोनो रोने लगी।[3] वोली, हमे इस गांव मे मत छोडे। मोटे गाव मे छोड़ी होती तो कोई आपको हमे कहकर साथ रखाते। भिक्षु ने आसुओ मे कोई सार नही देखा। उन्होने उन्हे स० १८५२ वैशाख वदि ९ के दिन गण से पृथक् कर दिया।

पृथक् होने के वाद भी दोनो ने अवर्णवाद करना नही छोड़ा। साध्वियों पर मिथ्या दोपारोपण करते हुए भ्रांति फैलाती रही। इस अवर्णवाद का विस्तृत वर्णन 'लेख चन्दू वीरा २७' मे सकलित है।[4] "आर्याए ढीली है, तव हमे टोला मे कैसे रखते ? भीखनजी मे कूट-कपट दगा वहुत हे। वाहर मे काले है, भीतर से काले है। भीखनजी करोड कसाइयो से भी भारी कसाई है। रूपांजी के खेतसीजी भाई है, नगाजी के वेणीरामजी भाई है। इससे उनका आदर-सम्मान है। हीराजी लाडली है। दूमरी साध्वियो की कोई गिनती नही। दूसरी तो रोती रहती है, तव तुम्हारी तो वात ही क्या ? वेचारी धनाजी रोती है, रतुजी रोती है, कुशलांजी रोती है। मुझ अस्वस्थ की कोई वैयावृत्य (सेवा) किसी ने नही की। नगांजी की वैयावृत्य इसलिए की कि उनके भाई वैणीरामजी गण में है। रूपाजी के भाई खेतसीजी है इससे उनका यत्न करती है। लालाजी की वैयावृत्य इसलिए करते है कि उनके पुत्र आहार आदि वहुत देते है। साध-साध्वियो मे किसी मे भी साधुत्व नही है। ये भी टोले के भेपधारियो की तरह ही है; केवल एक स्थानक का अन्तर है।

पीपाड़ मे नया उपकार हम से हुआ है। भीखनजी को कौन जानता था ? पाली मे सारा उपकार हमसे हुआ है, भीखनजी को कौन पहचानता था ?"—इस तरह की अनेक निर्मूल अहभरी वातो को कहती हुई मिथ्या प्रचार करती रही। हीराजी, गुमानाजी, रूपाजी, धनांजी, रतूजी, कुशलाजी, अजवाजी आदि अनेक साध्वियो पर मिथ्या दोपारोपण किए। वहिनो का नाम लेकर उनके नाम पर अनेक साध्वियो का अवर्णवाद किया।

सिरियारी, माढा, पाली, पीपाड, कुमारी, विठौरा, सोमारी आदि वहुत गावों मे ऐसा प्रचार किया।

---

१. लेख १८५२।२६ (१). अनु० २-१०,२१
२. वही, २६ (१). अनु० १, ११-१८
३. लेख ५२-५३।२५ (५) अनु० १६
४. लेख १८५२।२६ (१) : अनु० १९-२०

ज्ञातियो से भिक्षु की आज्ञा-भग करने के दोप को छिपाते हुए कहा "म्हे यू कह्यौ सामीजी माने वैलै-वैलै पारण करावो ६ विगैरा त्याग करावो छदाम हाथ रो दो पिण मोनै छोडो मती। वीराजी कनै राखण रा इ त्याग करावो पिण छोडो मती"[1] भिक्षु ने इस वात को झूठ वताया।

भिक्षु ने चन्दूजी और वीराजी को गण वाहर करने के वाद पहला चातुर्मास स० १८५३ मे सोजत रोड मे किया और स० १८५४ का चातुर्मास खैरवा मे। उन्होने चन्दूजी, वीराजी द्वारा फैलायी गयी भ्रातियो को दूर करने और उनके मिथ्या प्रचार के चगुल से लोगों को उबारने की दृष्टि से स० १८५२ श्रावण सुदी ३ के दिन एक कृति की रचना की, जिसकी कुछ गाथाए इस प्रकार है·

टोला वारै काढी जद रोवती वोली, म्हानै मती काढौ आप टोला वार।
विलविलाट तो कीधा इण विविध प्रकारै, इण बोल्या मै साच न जाण्यो लिगार ॥
मर्यादा वाधी ते तौ लोप दीधी छै, सूस कराया ते पिण दीया उडाय।
अनत सिद्धा री आण पिण भागी छै पापण, तिण नै कुण रापसी टोला रै माहि ॥
गुर वैहनै फाड चेली कीधी छाने, ओ पण पाप मोटौ चौरी रो लागो।
वलै दोष अनेक चौडेधाडै सेव्या, तोही टोला माहै रहिवारौ मन आछौ ॥
कूडा-कूडा आल साधवीया नै दीधा, गुर वैहनै चेली करवा रै ताइ।
तिण रो मन भाग्यो साधु साधव्या थकी, तिण नै कुण रापसी टोला रै माहि ॥
साध साधव्या नै असाध ठहराया, आपतौ पोतै साधवी ठैहरी।
विकला आगै वणी छै कूकडधम ज्यू, एहवी जैन री विगडायल गैरी ॥
हियै साध आये काढी सगला री सका, आल दीया त्यारौ काढ्यो नीकालौ।
जव लोका पिण झूठी जाणै लीधी तिण नै, जव इण पापण मूहढौ कर दियो कालौ ॥
अै गामा नगरा रुलीयारा ज्यू फिरती, साध साधविया रा अवगुण गावै।
झूठा २ आल साधा नै देई, काचा नै साधा सेती भिडकावै ॥
ए झूठा २ आल देवै साधा रै, त्या भागला री कोइ मानसी वात।
तिणरै पिण अशुभ कर्म उदै आया छै, थांरी सगत कीया सू आवै मिथ्यात ॥
समदृष्टि ने थारौ सग न करणौ, वले न करणी या सू पीत।
अै अनंत सिद्धा री आण करै तोही, थारी तो मूल न करणी प्रतीत ॥
कहि कहि नै कितरायेक कहू, यारा चाला नै चरित विविध प्रकार।
पिण ए साधपणा लायक नही दीसै, तिण सू काढ दीधी छै टोला वार ॥

चातुर्मास समाप्ति के वाद भिक्षु पीपाड पधारे। वहा चन्दूजी, वीराजी भी आयी। वहा मुनि हेमराजजी जिस हाट मे थे उसके सामने खडी हो अन्य सम्प्रदाय के श्रावको के मम्मुख साधुओ और साध्वियो की निन्दा करने लगी। द्वेपी लोग इस निन्दा मे रम लेने लगे। तव भिक्षु सामने की दूसरी हाट से उठ कर आए और कहा—"यह वही चन्दूजी है, जो पहले रुघनाथजी के टोले मे फत्तूजी की चेली थी। जव फत्तूजी (१०) पर दोप आया तो पहले तो यह कहने लगी—"सूर्य मे खेह हुवै तो म्हारी गुरुणी मे खेह हुवै" और वाद मे इसी ने एक वाई मे ओढने

---

१. लेख १८५२।२७ अनु० १०

का चोसरा कपडा याच कर फत्तूजी (१०) को ओढा कर नई दीक्षा दिलाई । इसकी वात सच माने या नही देख ले ।" भिक्षु की वात सुनते ही लोग तितर-वितर हो गये। चन्दूजी भी चलती बनी ।[1]

यह घटना स ० १८५४ के शेपकाल की है।

चन्दूजी और वीरांजी (४२) के गण वहिष्कार की घटना के सम्वन्ध मे निम्न दो उल्लेख मिलते है

१. चदु वीरा नै अलगी कीधी टोला स्थकी स० १८५२ वेसाप विद १ ।[2]

२. स० १८५४ रे वर्प चन्दू, वीरा ने टोला वारै काढी जद पीपार मे आयने हेमजी स्वामी विराज्या तिण हाट अवगुणवाद वोलवा लागी ।[3]

प्रथम उल्लेख जिस लेख मे प्राप्त है उसके वायी ओर के हाशिये पर "५२।५४। चन्दू वीरा। २५" ऐसा अकित है। "५२" स० १८५२ का सूचक है। इसका सम्वन्ध उक्त लेख के शुरू के इकरारनामे से है, जो भिक्षु ने चन्दूजी और वीराजी से उन्हे दीक्षा देने के पूर्व कराया था। साथ ही उनको गण से वहिर्भूत करने की घटना का भी सूचक है।

"५४" अक स० १८५४ का सूचक है पर उसका सम्वन्ध किस घटना से है यह देखना अवशेप रहता है।

"स० १८५४ रे वर्ष चदू वीरा ने टोला वारै काढी जद पीपार मे आयने···अवगुणवाद वोलवा लागी छै"—इसके दो अभिप्राय हो सकते है ·

१ चदू वीरा को स० १८५४ मे वाहर किया। उसके वाद पीपाड मे आकर अवर्णवाद किया।

२. चदू वीरा को वाहर करने के वाद स० १८५४ मे वे पीपाड मे आई और अवर्णवाद किया।

प्रथम अर्थ स्वीकार करने पर फलित होगा कि सं० १८५२ वैशाख वदि १ के दिन वाहर करने के वाद चदूजी और वीराजी दोनो गण मे पुनर्दीक्षित हुई और वाद मे उन्हे पुन. १८५४ मे वाहर किया गया। पर ऐसा सकेत उक्त लेखों मे कही भी प्राप्त नही होता।

वहिर्गत करने के वाद भी दोनो अवर्णवाद करती रही और नाना प्रकार के मिथ्या प्रचार द्वारा लोगो मे भ्राति फैलाती रही। स० १८५४ की श्रावण शुक्ला ७ के दिन भिक्षु ने खैरवा मे जिस कृति की रचना की और जिसकी कुछ गाथाए ऊपर उद्धृत की गई है वह चदूजी और वीराजी को गण से पृथक् करने के वास्तविक कारणों को वताकर उनके मिथ्या प्रचार के चगुल मे न फसने के लिए सावधान करने की दृष्टि से रचित है। उसमे ऐसी कोई वात नही देखी जाती कि उनका निष्कासन स० १८५४ मे किया गया था। उसमे मात्र पूर्व घटी घटना का वर्णन है। ऐसी स्थिति मे उक्त उद्धरण का प्रथम अर्थ सम्यक् प्रतीत नही होता और उसका दूसरा अर्थ ही ठीक है।

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० २७०
२. लेख ५२-५४।२५ (२) प्रारम्भिक अश
३. जय (भि० दृ०), दृ० २७०

उक्त उद्धरण मुनि हेमराजजी के कथन को उपस्थित करता है। वे स० १८५८ के खैरवा चातुर्मास मे भिक्षु के साथ थे। उसकी समाप्ति के वाद विहार कर भिक्षु मुनि हेमराजजी सहित पीपाड पधारे तव पूर्व निष्कासित चदूजी वीराजी वहा आयी और उक्त अवर्णवाद किया था।

लेख के हाशिए पर '५४' का अक किस अभिप्राय से लिखा गया, यह ठीक नही वताया जा सकता है। पर इतना निश्चित है कि वह स० १८५४ मे पुन गण से वहिर्गत करने का सूचक नही है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साध्वी चदूजी दो वार गण से पृथक् की गई थी। प्रथम वार साध्वी फत्तूजी आदि के साथ स० १८३७ मे और द्वितीय वार स० १८५२ मे वैशाख वदि १ के दिन, जवकि वीराजी एक वार ही गण से वहिष्कृत की गयी थी।

साध्वी चदूजी और वीराजी के जीवन-वृत्त परस्पर ओत-प्रोत है, अत इस प्रकरण के साथ वीरांजी का प्रकरण (४२) भी देख लेना चाहिए।

१४. साध्वी चैनांजी

आपका ससुराल केलवा (मेवाड) मे था। आपने विधवावस्था मे दीक्षा ग्रहण की थी।[1]

क्रम सदर्भ के आधार पर कहा जा सकता है कि आपकी दीक्षा फत्तूजी यावत् चन्दूजी के वाद स० १८३३ की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया के पश्चात् हुई। स० १८३४ के जेठ सुदी ६ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है जवकि क्रम-पर्याय मे आपसे लघु साध्वी मेणाजी और धनूजी के हस्ताक्षर है। इसका कारण एक ही सभव हो सकता है कि उक्त लिखित के समय कुछ अन्य साध्वियो की तरह आप भी अनुपस्थित रही। अत आपकी प्रव्रज्या उक्त दो तिथियो सं० १८३३ मिगसर सुदी २ और स० १८३४ जेठ सुदी ६ की मध्यावधि मे हुई थी, इसमे सदेह नही।

स० १८३७ माघ वदि ६ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही देखे जाते है। पर उस समय आप गण मे ही थी। हस्ताक्षर न होने का कारण फत्तूजी आदि की तरह आपकी भी अनुपस्थिति रही।

सयम मे शिथिल देखकर भिक्षु ने आपको भी फत्तूजी आदि चार साध्वियो के साथ स० १८३७ फाल्गुन वदि २ के दिन चडावल मे गण से अलग कर दिया गया था।[2]

---

१. सती विवरण

२ जय (भि० ज० र०), ५१।सो० ११.

च्यारू ते पहिछान रे, चैना भेली पचमी।
झट पाचू नै जाण रे, छोडी चडावल मझै॥

तथा देखिए—

(क) जय (शा० वि०), २।सो० ७, क्रमाक १०-१२ मे उद्धृत।
(ख) ख्यात, क्रम १४.
(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, ३।१५

१५. साध्वी मैणांजी

आप पुर (मेवाड) की निवासिनी थी। आपने पति को छोडकर वडे वैराग्य भाव से आचार्य भिक्षु से साध्वी-जीवन ग्रहण किया। पढ-लिखकर पण्डिता वनी। अनेक आगमो की जानकारी हुई।

मैणाजी मोटी सतीजी, वासी पुर ना विचार।
स्वाम कनै सजम लियौ जी, छाडी निज भरतार॥
पढी भणी पण्डित थई जी, वहु सूत्रा नी रे जाण।
साठै सथारौ करै जी, कीधौ जनम किल्याण॥[1]

स० १८३४ जेठ सुदी ६ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है पर आपसे कनिष्ठा साध्वी नन्दूजी (१६) के हस्ताक्षर है। इससे फलित होता है कि आप लिखित के समय अनुपस्थित रही। इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि आपकी दीक्षा स० १८३३ मिगसर वदि २ (पूर्व प्रकरण की साध्वी फत्तूजी यावत् चदूजी की दीक्षा तिथि) और स० १८३४ जेठ सुदी ६ (उक्त लिखित की तिथि) के वीच हुई थी।

आपके गुणो से प्रभावित हो भिक्षु ने आपका वहुत शीघ्र ही सिघाडा कर दिया।

भिक्षु ने स० १८३८ की चैत्र पूर्णिमा के दिन नाथद्वारा मे रगूजी को दीक्षा प्रदान की। तव आप सिंघाडपति के रूप मे भिक्षु की सेवा मे थी

मैणाजी आदि महासती, समणी गण सिणगार हो।
सेव करे स्वामी तणी, आण अखडित धार हो॥[2]

भिक्षु ने साध्वी श्री वरजूजी (३६), वीजांजी (४०) और वनाजी (४१) को सं० १८५२ मे (कार्तिक सुदी १५ और फाल्गुन सुदी १४ के वीच) दीक्षित किया। उनकी शिक्षा आपके द्वारा हुई थी।[3]

स० १८५५ जेठ वदि ६ के दिन साध्वी धनूजी (१६), फूलाजी (२२) और गुमानाजी (३३) आपके साथ देखी जाती है। स० १८५५ और वाद के स० १८५६ के चातुर्मास मे भी ये

१ जय (भि० ज० र०), ५१।८-६

२. जय (खे० च०), २।६

३. साध्वी गुण वर्णन, ६।३
मेणाजी भणाया ज्ञान भल पाया।

तीनो साध्वियां साथ रही प्रतीत होती है। साध्वी धनूजी (१६) तो सभवत: स० १८५८ के चातुर्मास और शेषकाल मे भी आपके साथ रही। बाद मे आपको स० १८५८ जेठ वदि १२ के दिन साध्वी नन्दूजी (१९) के पास भेज दिया गया।

आपके जीवन मे कुछ अनहोनी घटनाएं भी घटी। वे इस प्रकार हैं :

१ मुनि चन्द्रभाणजी ने जिन साधुओ और साध्वियो को बहकाकर अपने पक्ष मे किया था, उनमे आपका नाम सम्मिलित है। स० १८३७ माह वदि ९ के लिखित मे लिखा है—"सुपाजी नै मेणाजी नैं नैश्चे फोर्‌या जाण्या।"

मैणाजी ने प्रायश्चित्त ग्रहण कर आत्मा को शुद्ध किया—"सुखाजी नै मैणाजी आगै कहिवाय लीयौ त्यां आलोवण करै प्राछित लेनैं सुध हुआ।"

२. स० १८५४ चैत्र वदि ६ के लिखित मे उल्लेख है—"मेणाजी रा परिणाम अजोग घणा देख्या, घणी घणी उवा अजोग वोली आर्या आगे, तिण री बोली ऊपर साध नै आर्या नैं सका परी, आतो टोलास्यु न्यारी परती दीसे छैं सरूपा ने फोरी दीसै छै···।"

उस समय ऐसा सोचा जाना संगत हो गया था कि संभवत: मैणाजी को गण से दूर कर दिया जाएगा। पर मैणाजी ने दोष स्वीकार कर प्रायश्चित्त ग्रहण कर आत्म-शुद्धि की।

३. भिक्षु ने एक वार कहा था . "आखो मे औषध बहुत डालती हो। लगता है आखे खो वैठोगी।" ऐसा कहने पर भी औषध डालना नही छोड़ा। बाद मे आंखें कची पडी।[1]

जयाचार्य ने अपनी चौदहवी हाजरी मे लिखा है :

"मैणाजी रै आष री कारण। ते गोगूदै हुता। त्या ऊपर भीखनजी स्वामी कागद लिख्यौ। सिथलपणौ जाण्यौ ते मिटावा अर्थे।"

यह पत्र स० १८५५ जेठ वदि ६ का है। इस पत्र मे साध्वी मैणाजी पर कितने ही सख्त प्रतिवन्ध लगाते हुए भिक्षु ने उन्हे एव उनके साथ की साध्वियो को कई हिदायतें दी हैं। कुछ इस प्रकार है :

१. आर्या मैणाजी, धनांजी, फूलाजी, गुमानाजी गोघूदा मे रहे तो वैशाख सुदी १५ के वाद चुपडी रोटी और सूखडी ग्रहण करने का त्याग है। फूलाजी और गुमानाजी के इनका आगार है। घी ग्रहण कर सकती है, पर चुपडी रोटी ग्रहण नही करनी है।

२. फूलाजी, गुमानाजी कहे वही गोचरी जाना।

३. फूलाजी, गुमानाजी जहा इन्हे ठीक लगेगा गोचरी करेगी। अश मात्र भी कलुष भाव मत लाना। अश मात्र भी उन्हे उपालम्भ न देना।

४. अनुक्रम से गोचरी करनी। रोटी देने वाले का घर छोड़ना नही।

५. आखे ठीक होने पर साधु (स्वामीजी) के साथ होने पर साधु (स्वामीजी) आज्ञा दे तब चुपडी रोटी और सूखडी का आगार है। आज्ञा विना चुपडी रोटी और सूखड़ी ग्रहण करने का त्याग है।

६. मैणाजी गोघूदे मे ही वैठी रहे तो सूखडी का आगार है।

७. गोचरी फूलाजी, गुमानाजी की इच्छा होगी तब जाएंगी। गृहस्थ को जानकारी नही

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १६५

देनी। गृहस्थ के सुनते हुए यह नही कहना कि मेरे लिए पारण ला दो। गृहस्थ कहें इनके लिए पारणा ला दे तो मैणाजी को ऐसा कहना चाहिए—तुम लोग क्यो कहते हो ? इससे मेरे प्रति शका होती है। तुम लोग भले हो तो मेरे पारण की कभी बात मत करना। हम साधुओ की वात साधु जाने।

८. गोघूदा से विहार कर नाथद्वारा मत आना। काकरोली, केलवा, लाहवा, आमेट मत आना। साधुओ (स्वामी) के पास आए तो और क्षेत्रो से होकर आना।

९. कदाचित् मैणाजी गोघूदा मे पड़ी रहे तो आर्याओ को किसी गाव कपड़े के लिए नही भेजना। महीन-मोटा मिले जैसा गोघूदा मे ही लेना और भोगना।

१०. मैणाजी, धनाजी मे राग-द्वेष, क्लेश, कदाग्रह अधिक देखो, इनके साधुत्व का पालन न होता देखो, कर्म बधते देखो तो फूलाजी और गुमानाजी इन दोनो के साथ आहार-पानी का सभोग न करे। तुम दोनो जनी यहा आ जाना। चौमासा हो तो शेप होने पर आ जाना। इनके झगडे मे अपना साधुत्व मत खोना। इनमे भारी दोष होते हुए इनके साथ आहार-पानी मत करना।

दोष लगावे वह भाइयों-वहनो को बताना। जितनी वार दोष करे वह सारा भाइयो को बताते रहना, जिससे इन्हे भी न्यायी-अन्यायी का पता चले।

फूलाजी, गुमानाजी सीधी न चली तो विशेष फितूर होता मालूम देता है। अत तुम दोनो सावधान रहना।

११. जेठ सुदी १५ के बाद फूलाजी और गुमानाजी के सूखडी का आगार है। मैणाजी के साधु (स्वामीजी) के साथ होने पर आज्ञा दे तव आगार है—चुपड़ी रोटी और सूखड़ी का।

१२. मैणाजी के बदले प्रतिलेखन धनाजी, गुमानाजी दोनो बारी-वारी करे। हर कोई काम वारी-वारी से करना।

१३. आर्या बीमार हो उससे गोचरी नही करानी। ठीक होने पर उससे करा लेनी। बीमार से कोई काम नही कराना। उसका काम भी उससे कराना जो बीमार न हो।

१४. फूलाजी को गोचरी नही भेजना। उनसे जरा भी काम नही कराना। फूलाजी के गाढी साता हो, उनका मन हो तो करेगी। दूसरी आर्या यह न कहे कि काम नही करती।

१५. फूलाजी की सेवा-भक्ति करनी हो तो उन्हे रखना। फूलाजी की शक्ति होगी, मन होगा तो करेगी। फूलाजी की अवस्था ढलती है, अत यह वात है।

१६. कोई फूलाजी, मैणाजी को ऐसा कहे—हम तुम दोनो बैठी को खिलाती है—ऐसी भावना भी जतावे उसे तेले का प्रायश्चित्त है। जितनी वार कहे उतनी वार तेला।

जयाचार्य ने लिखा है—"आचार्यो को प्रकृति की कमियो को दूर करने के लिए—दोपो को मिटाने के लिए प्रतिवन्ध करने पडते है। मैणाजी पर भिक्षु ने कितने ही प्रतिवन्ध लगाए वे उनके खामी—दोप को दूर करने के लिए थे।" ये प्रतिबन्ध कठोर थे। पर जैसा कि जयाचार्य ने लिखा है, मैणाजी ने "साधपणौ पालवा री दिस्ट तीखी राषी पिण मर्यादा लोपी नही।"[1] यही उनके जीवन की महनीयता थी।

---

१. चौदहवी हाजरी

साध्वी मैणांजी के सामने जब भी उनके दोषों की बात आई, उन्होंने सरलतापूर्वक स्वीकार किया और जो प्रायश्चित्त दिया गया उसे प्रसन्न मन से स्वीकार, उसका पालन कर आत्म-प्रमार्जन किया। आत्म-प्रमार्जन की अपनी इस विशेषता के कारण ही उनका स्थान उच्च बना रहा। इसी कारण आपके विषय में कहा गया है : "मैणांजी मतिमान।"[1]

आपने सं० १८६० में संथारा कर आत्मार्थ साधा।[2] आपका संथारा खैरवे में सम्पन्न हुआ।[3] यह भिक्षु के जीवन-काल की घटना है।[4]

आपको 'मोटी सती', 'समणीगण सिणगार' आदि विशेषणों से आमण्डित किया गया है। इससे आपका आचार्यों की दृष्टि में और गण में जो महनीय स्थान था, उसका पता चल जाता है।

आपके सम्बन्ध में निम्न उल्लेख मिलता है :

"भणी गुणी वखाण वाणी की कला घणी हिमतवान घणी तपस्या मोकली करी।"[5]

---

१. शासन सुषमा, ५६

२. जय (शा० वि०), २।६ :

पुर ना वासी छांडी प्रीतम, संयम लियो धर चित्त शांती।
सखर पढी साठै संथारो, वारूं मेणां लजवन्ती॥

मिलाए—हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, १६ :

पुरना मेणाजी, छांडी प्रीतम संग।
लियो चरण सखर पढ, साठे संथार अभंग॥

३. पण्डित-मरण ढाल, २।३ :

मैणांजी संथारो खैरवें कीधो, साठां रे वर्ष सुजस लीधो।
भीखू गुरु पाया सतवन्ती, सुमरो मन हर्षे मोटी सती॥

४. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० ८४-८६। (प्रकरण १, पृ० ५३६, पा० टि० १ में उद्धृत)

५. ख्यात, क्रम १५। तथा देखिए—सती विवरण।

१६. साध्वी धनूंजी

इनकी दीक्षा कब हुई, इस विषय मे कोई उल्लेख प्राप्त नही हो सका। स० १८३४ जेठ सुदी ६ के लिखित मे इनके हस्ताक्षर नही पाये जाते, पर इनसे कनिष्ठ साध्वी नन्दूजी (१६) के हस्ताक्षर है। इससे सिद्ध हो जाता है कि आपकी दीक्षा उक्त लिखित के पूर्व हो चुकी थी। साध्वी फतूजी यावत् चन्दूजी (१०-१३) आपसे दीक्षा-पर्याय मे ज्येष्ठा है। उनकी दीक्षा स० १८३३ मिगसर वदि २ को हुई थी। अत निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि आपकी दीक्षा स० १८३३ मिगसर वदि २ एव स० १८३४ जेठ सुदी ६ के मध्यकाल मे साध्वी चैनाजी (१३) और साध्वी मैणाजी (१५) के बाद हुई थी।

साध्वी चन्दूजी (१३) इनके (धनूजी) के सामने साध्वी हीराजी (२८) और गुमानाजी (३३) आदि की निदा करती रहती थी। इनको फटाने की भावना से एक वार चन्दूजी (१३) ने कहा—"स्वामीजी तुम पाचो को[1] अयोग्य कहते थे।"[2] एक वार कहा—"धनूजी और गुमानाजी (३३) रात भर लडी।" आचार्य भिक्षु ने पूछा—"धनूजी ने क्या वात कही? गुमानाजी ने क्या कहा? यह मुझे लिखाओ।" चन्दूजी वोली "मुझे कौन-कौन सी वात याद रह सकती है? मुझे याद नही आता।" साध्वियो से कहा—"परस्पर एक दूसरी को मिथ्यात्वी कहती थी, अभवी कहती थी।" इस तरह अनेक बाते कही। भिक्षु ने धनूजी, फूलाजी, गुमानाजी और वन्नाजी को एकत्रित कर जाच-पडताल की। पता चला—धनूजी ने कठोर वचन कहे थे। भिक्षु ने उनको निषेध कर उन्हे प्रायश्चित्त दिया। चन्दूजी के परिणाम धनूजी को प्रायश्चित्त दिलाने के नही थे, इसीसे उन्होने जो वात कही वह भिक्षु को नही वतायी। गुमानाजी को धनूजी ने कडे शव्द कहे वे चन्दूजी की ओर से और उनके वहकाने से कहे थे।[3]

स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे इनके हस्ताक्षर पाये जाते है।

स० १८५५ जेठ वदि ६ को भिक्षु ने मैणाजी (१५), धनांजी आदि को एक पत्र लिखा था, जिसमे साध्वी मैणाजी और इनके परस्पर सम्वन्ध की चर्चा करते हुए फूलाजी (२२) गुमानांजी (३३) को उद्देश्य कर लिखा था—"मैणाजी, धनूजी के राग द्वेष क्लेश-कदाग्रह

---

१. धनूजी (१६), केलीजी (१७), रत्तूजी (१८), नदूजी (१६) और सभवत. वन्नाजी (२६) से अर्थ है।

२ लेख स० १८५२।२६ (४) अनु० ४

३ लेख स० १८५२।२६ (१०)

बहुत देखो, परस्पर झगड़ा करते देखो, उनके साधुत्व पलता न देखो तो उनके साथ आहार-पानी का संभोग मत करना। तुम दोनों जनी चली आना। चातुर्मास हो तो उसके बाद चली आना। उनके झगड़े में अपना साधुत्व मत खोना। उनमें भारी दोष होने पर उनके साथ आहार-पानी का संभोग न करना। दोष लगावे वह आर्याओं बहिनों को जताते रहना। अंश मात्र बात भी छिपी न रखना।"

इसके पहले लिखा—"मैणाजी, धनाजी सोपूरा में रहे तो वैसाख सुदी १५ के बाद चुपड़ी रोटी और सूखड़ी का बिलकुल त्याग है। फूलाजी गुमानाजी कहे वहां गोचरी जाना। फूलाजी, गुमानाजी को कोई उपालंभ न देना। उनकी इच्छा होगी वहां गोचरी आवेगी। अंश मात्र भी कलुष भाव मत लाना। अनुक्रम से गोचरी करना। रोटी देने वाले के घर को मत छोड़ना। जब तक मेरे पास न आवो और आज्ञा न दूं तब तक चुपड़ी रोटी और सूखड़ी लाने का त्याग है। मैणाजी का प्रतिलेखन धनाजी गुमानाजी करें।"

सं० १८५८ जेठ वदि १२ को भिक्षु ने साध्वी नन्दूजी (१६), रत्तूजी (२४) और वन्नाजी (२६) को सम्बोधित कर एक पत्र लिखा जिसमें धनूजी को उनके पास प्रेषित करने का उल्लेख है। लिखा है—"तुम लोगों के पास धनूजी को भेजा है। आचार गोचर का पालन करने में बात अच्छी लगेगी।...अब चारों ही आर्या मिलकर चलाना। श्रद्धा के क्षेत्र में मन रहना। मेरा भी जल्दी आने का विचार है।" अब भी आलोचना प्रतिक्रमण में शुद्ध हो (संयम) अच्छी तरह पालन करना। लोगों ने कहा—एक आर्या और भेजें। पर कोई आर्या आती दिखाई नहीं दी। धनाजी को तुम लोगों के पास भेजा है। तुम लोगों ने ना कही तो तुम लोगों का विचार आचार पालन का नहीं दीखता।...श्रद्धा के क्षेत्र में चौमासा मत करना। चारों ही आर्या परस्पर हेत रखना।" चुपड़ी रोटी मत लेना। धनूजी! यदि नन्दूजी (१६) तुम्हें न रखे तो तुम अकेली ही आहार-पानी लाकर खाना और इनके पास रहना। इनके आचार को देखना। न्याय अन्याय देखो वैसा प्रगट करना। मेरी आज्ञा है।...इनकी पूरी जांच करनी है। नन्दूजी (१६) की विहार करने की शक्ति न हो तो माडै चौमासा करना।"

इस तरह देखा जाता है कि धनूजी को सं० १८५८ जेठ वदि १२ के दिन साध्वी मैणाजी से अलग कर साध्वी नन्दूजी (१६) के पास भेजा गया था।

धनूजी की प्रकृति अनुचित और झगड़ालू थी। अन्त में इसी कारण से उन्हें गण से पृथक होना पड़ा। मुनि हेमराजजी ने इस विषय में कहा है—"धनाजी री प्रकृति करड़ी जाणने स्वामीजी विचारचो आ भारमलजी सूं निभनी कठिन है। साह्मी बोले इसी है। यूं जाण ने छोड़ण रो उपाय करने कला सूं परपूठे छोड दीधी।"[1]

भिक्षु ने इन्हें केलीजी (१७), रत्तूजी (१८) और नन्दूजी (१६) के साथ मांढा[2] गांव में गण से पृथक् कर दिया।

---

१ जय (भि० दृ०), दृ० १७७

२ जय (शा० वि०) मुद्रित, २।सो०८ में मोटा गाव है

धनूं केली धार रे, रत्तु नंदु, चिहुं भणी।
मोटा ग्राम मझार रे, छोडी अयोग्य जाण रे॥

पर मूल हस्तलिखित प्रति देखने पर माढा गाव उल्लिखित पाया गया।

चूकि धनूजी का निष्कासन केलीजी, रत्तूजी और नन्दूजी के साथ हुआ था अत यह स्पष्टत ही फलित है कि निष्कासन की घटना स० १८५८ जेठ वदि १२ के बाद ही घटित हुई थी। भिक्षु ने उक्त पत्र मे धनूजी, नन्दूजी, रत्तूजी और बन्नाजी को स० १८५९ का चातुर्मास माढा मे करने की आज्ञा दी थी। सभव है वे स० १८५८ के आषाढ महीने मे वहा पहुची हो और तभी भिक्षु ने उनको गण बाहर किया हो अथवा स० १८५९ चातुर्मास मे उन्हे दूर किया।

जय (भि०ग०र०) ५१।सो०१२ माढा गांव का ही उल्लेख है।

धन्नू केलीजी धार रे, रत्तू नदूजी वली।
माढा गाव मझार रे, छोडीया च्यारां भणी॥

ख्यात मे भी माढा गाव का उल्लेख है।

हुलास (शा०प्र०) भिक्षु सतीमाला गा० १७ मे मोटा गाव लिखा है, जो ठीक नही।

धन्नु केला जाण रे, रत्तु नन्द ए चिहु।
अप छन्द अयोग्य उपाण रे, मोटा गाव मझे टली॥

१७. साध्वी केलीजी

क्रमाधार पर कहा जा सकता है कि आपकी दीक्षा भी सवत् १८३३ मिगसर वदि ७ के पूर्व नही हुई। कारण आपसे ज्येष्ठ तीन (१४,१५,१६) साध्वियों की दीक्षा उक्त तिथि के वाद की है।

स० १८३४ जेठ सुदी ६ के लिखित पर आपके हस्ताक्षर नही है पर आपसे कनिष्ठा साध्वी नन्दूजी (१६) का देखा जाता है। इससे निश्चय हो जाता है कि आपकी दीक्षा उक्त तिथि के वाद नही हुई।

इस तरह निष्पन्न है कि आपकी दीक्षा सं० १८३३ मिगसर वदि २ एव स० १८३४ जेठ सुदी ६ के मध्यकाल मे हुई थी।

स० १८३४ जेठ सुदी ६ के लिखित पर आपके हस्ताक्षर नही है। इसका कारण यह है कि उस समय धनूजी (१६), आप और रत्तूजी अन्यत्र थी।

आपका निष्कासन साध्वी धनूजी (१६), रत्तूजी (१८) एवं नन्दूजी (१६) के साथ ही माढा गाव मे हुआ था। यह पूर्व प्रकरण (१६) मे वताया जा चुका है। यह घटना स० १८५८ के आसाढ महीने मे घटित हुई प्रतीत होती है अथवा स० १८५६ के चातुर्मास मे।

स०१८५२ फाल्गुण सुदी १४ के लिखित पर आपके हस्ताक्षर नही है। पर देखा जा चुका है कि आप स० १८५८ जेठ वदि १२ तक तो निश्चित रूप से गण मे थी।[1] अत उक्त लिखित मे हस्ताक्षर न होने का कारण आपका अन्यत्र होना ही रहा।

---

१. देखिए पूर्व प्रकरण १६

१८. साध्वी रत्तूजी

आपकी दीक्षा कब हुई, इसका उल्लेख नही मिलता। आपसे क्रम मे ज्येष्ठ साध्वियां चैनाजी (१४) आदि की दीक्षा स० १८३३ मिगसर वदि २ के वाद हुई थी। अत आपकी दीक्षा उसके पूर्व नही हो सकती।

स० १८३४ जेठ सुदी ९ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है जवकि आपसे कनिष्ठा साध्वी नन्दूजी (१९) का है। इससे सहजतया फलित है कि आपकी दीक्षा स० १८३४ जेठ सुदी ९ के वाद नही हो सकती।

इस तरह यह निश्चित है कि आपकी दीक्षा सवत् १८३३ मिगसर वदि २ और सवत् १८३४ जेठ सुदी ९ के वीच चैनाजी आदि चार (१४-१७) साध्वियो की दीक्षा के वाद हुई थी।

सवत् १८३४ जेठ सुदी ९ के लिखित पर आपकी तरह ही साध्वी देऊजी (५) एवं साध्वी चैनाजी (१४) के हस्ताक्षर नही है। सभवत आप तीनो का सिंघाडा लिखित पर हस्ताक्षर के अवसर पर अन्यत्र रहा। स० १८३७ माघ वदि ९ के लिखित पर आपके हस्ताक्षर न होने का कारण भी अनुपस्थिति ही थी। भिक्षु ने स० १८५८ जेठ वदि १२ के दिन साध्वी नन्दूजी (१९), वन्नाजी (२६) एव आपके नाम से एक पत्र लिखा था। इससे पता चलता है कि साध्वी नन्दूजी सिंघाडपति थी और वन्नाजी तथा आप उनके साथ थी। इस पत्र का साराश इस प्रकार है—-

"मैने तुम्हारी वदनामी वहुत सुनी है। सुना है भाइयो और वहनो ने वदना करनी छोड दी है। तुम और वन्नाजी मिल गई सुनी जाती हो और रत्तू को न्यारी सी रखती हो। क्लेश वहुत सुना है। आहार-पानी का झगडा वहुत सुना है। आचार विपयक खामी वहुत सुनी है। अनेक दोप लगाये सुना है। आज्ञा का उल्लघन कर श्रद्धा के क्षेत्रो मे विचरण किया है। खैरवा चातुर्मास की आज्ञा दी थी। तुम लोगो को आज्ञा का लोप नही करना चाहिए था। अव तुम लोगो के पास धनूजी को भेजा है सो आचार गोचर पालने से शोभा होगी, अच्छी लगेगी। स्वच्छद चलती हो शोभा नही होगी। दोप लगे है उनका प्रायश्चित देना है। अव चारो ही आर्या मिलकर चलना। श्रद्धा के क्षेत्र मे मत रहना। मेरा भी शीघ्र ही आने का विचार है। रत्तू और तुम्हारा निर्णय करने का भाव है। तुमने रत्तू का लोगो मे वहुत फितूर किया है. अनेक गाव के भाई-वहनो ने वदना करनी छोडी है, ऐसा सुना है। मेवाड मे भी भाई-वहिने तुम्हारी वहुत फितूर करते है। उपालभ देते है—इन्हे टोला मे क्यो रखते है? वन्नांजी रत्तू से बोलती है वह नन्दूजी के पक्ष से। खैरवा मे तुम्हारे फित्तूर का समाचार मुझ तक आया है।

बिलकुल साधपने मे अन्याय करती है—ऐसा कहते है। पिछेवडी आहार-पानी का झगडा सुना। टोला की हलकी लगाई है। साधु-साध्वियों का तुम्हारे प्रति मन भग हुआ है। पर तुम लोग चिन्ता मत करना। अब भी आलोचन प्रतिक्रमण से शुद्ध हो सयम अच्छा पालन करना। धनूजी को भेजा है। ना कही तो तुम्हारे परिणाम आचार पालन करने के नही ऐसा प्रतीत होगा। वन्नाजी को फोड कर, अपनी की जान कर, वन्नाजी के साथ रखने की ना मत कहना। श्रद्धा के क्षेत्र मे चौमासा मत करना। अब चारों ही आर्या परस्पर हेत रखना। नन्दूजी की विहार करने की शक्ति न हो तो माढै चौमासा करना और दूसरे क्षेत्र मे चौमासा करो तो मार्ग मे श्रद्धा के क्षेत्र टाल कर विहार करना। मेरे साथ होने के पहले प्रायश्चित्त लेने के पहले विगई मत खाना चारो जनी।"

उक्त पत्र से पता चलता है कि स० १८५७ का चातुर्मास साध्वी नन्दूजी ने खैरवा मे किया था और वन्नाजी तथा आप साथ थी। उसके पहले साध्वी नन्दूजी का यह सिंघाड़ा मेवाड मे था। ऐसा उल्लेख प्राप्त है कि साध्वी धनूजी (१६), केलीजी (१७) आप और नन्दूजी इन चारो का निष्कासन भिक्षु ने एक ही दिन माढा[1] गाव मे किया .

१. धन्नू केलीजी धार रे, रत्तू नदुजी वली।
माढा गाव मझार रे, छोडी या च्यारा भणी ॥[2]

२. धनू केली धार रे, रत्तु नदु चिहुं भणी।
माढा ग्राम मझार रे, छोडी अयोग्य जाण रे ॥[3]

उक्त पत्र के बाद क्या घटना हुई और अन्त मे किस आधार पर चारो को छोडा इसका विवरण प्राप्त नही है। साध्वी केलीजी (१७) साध्वी नन्दूजी (१६) आदि के साथ कब हुई, और किसके पास से आकर हुई, इसका भी पता नही चलता।

सभव है चारो साध्विया चातुर्मास करने की दृष्टि से स० १८५८ के आसाढ महीने मे माढा गाव पहुची हो और वही भिक्षु ने उनको निष्कासित किया हो। अथवा उन्होने माढा मे चातुर्मास किया हो और भिक्षु ने चातुर्मास काल मे स० १८५६ मे उन्हे छोडा हो।

---

१. हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सत वर्णन, मे मोटा गाव लिखा है
धन्नु केला जाण रे, रत्तु नदू ए चिहू।
अपछन्द अयोग अयाण रे, मोटा गाव मझे टली ॥
ख्यात मे भी माढा गाव ही लिखा है। अत मोटा गाव लिखना भूल है।
२. जय (भि०ज०र०), ५१।सो०१२
३. जय (शा० वि०), २।सो०८

१६. साध्वी नन्दूजी

आपकी दीक्षा चैनाजी (१४), मैणाजी (१५), धनूजी (१६) के वाद हुई थी। उक्त साध्वियो की दीक्षा का पूर्व-काल स० १८३३ मिगसर वदि २ है अत आपकी दीक्षा उक्त मिति के पूर्व नही हो सकती।

स० १८३४ जेठ सुदी ६ के लिखित पर आपके हस्ताक्षर है। अत यह भी निश्चित है कि आपकी दीक्षा इस तिथि के पूर्व हो चुकी थी।

इस तरह आपका दीक्षा-काल स० १८३३ मिगसर वदि २ एव स० १८३४ जेठ सुदी ६ के अन्तराल मे पडता है।

आप, वन्नाजी (२६) एव रत्तूजी (१८) को सम्वोधित कर भिक्षु ने जो पत्र स० १८५८ जेठ वदि १२ के दिन दिया था, उसका साराश रत्तूजी के प्रकरण (१८) मे दिया जा चुका है। उस पर से आपके सम्वन्ध मे कुछ जानकारी मिलती है। आपकी अनेक शिकायते भिक्षु के पास पहुची थी। भिक्षु ने साध्वी धनूजी(१६)को आपके पास भेजा। धनूजी को भिक्षु ने अधिकार दिया था कि वे परिस्थिति की अच्छी तरह जानकारी करे। पत्र मे इस सवध मे लिखा है "अव तुम्हारे पास धनूजी को भेजा है सो आचार गोचर पालने से अच्छी लगेगी। स्वच्छद चलती हो इससे अच्छी नही लगेगी। आगे दोप लगाया उसका प्रायश्चित्त देना है। अव चारो (नन्दूजी, वन्नांजी (२६), रत्तूजी (१८) और धनूजी (१६) मिलकर चलना। लोगो ने कहा एक आर्या और भेजे। पर किसी आर्या को आते नही जाना। धनाजी (१६)] को तुम्हारे पास भेजा है। तुमने ना कही तो तुम्हारे परिणाम आचार पालन के नही ऐसा प्रतीत होगा। वन्नाजी (२६) को फोड़कर अपनी की जानती हो। वन्नाजी (२६) के साथ रखने की ना मत कहना। चारो ही आर्या आपस मे वहुत हेत रखना।" धनूजी (१६) को सम्वोधित कर पत्र मे लिखा था—"धनाजी, तुम्हे नन्दूजी न रखे तो तुम अकेली आहार-पानी लाकर खाना और इनके पास रहना। इनका आचार देखना। न्याय अन्याय देखो वैसा लोगो मे प्रगट करना। मेरी आज्ञा है "यानै चेहरी मेलजो मती, यारी पूरी परिपा करणी छै।"

वताया जा चुका है कि भिक्षु ने साध्वी धनूजी (१६), केलीजी (१७), रत्तूजी (१८) और आपको एक साथ माढा गाव मे गण मे पृथक् कर दिया।[1] जैसगकि वताया जा चुका है, यह घटना स० १८५८ के आपाढ महीने की अथवा स० १८५९ चातुर्मास की होनी चाहिए।[2]

---

१. देखिए पूर्व प्रकरण १६, १७, १८

२ वही

२०. साध्वी रंगूजी

आप नाथद्वारा (श्रीजीद्वार) मेवाड़ की रहने वाली थी। पोरवाल थी। आपकी दीक्षा स० १८३८ की चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन आचार्य भिक्षु के द्वारा नाथद्वारा मे सम्पन्न हुई थी।[1] आप विधवा थी।

अनेक कृतियो मे यह उल्लेख है कि आपकी दीक्षा मुनि खेतसीजी के साथ हुई थी।[2] मुनि खेतसीजी का विवरण भी इसी बात को पुष्ट करता है।[3]

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ५१।१०-११

रगूजी रलियामणा जी, श्रीजीद्वार ना सार।
पोरवाल प्रगटपणै जी, सजम लियौ सुखकार॥
अडतीसै व्रत आदर्‍या जी, स्वाम खेतसी रै साथ।
सिरियारी चलता रह्या जी, वारू भणी विख्यात॥

(ख) जय (शा० वि०), पृ० ३६ पोरवाल नाथद्वारै रा वासी।

(ग) ख्यात, क्रम २० रगूजी पोरवार नाथादूवारा का स० १८३८ खेतसीजी स्वामी साजै दीक्षा।

(घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० १८

खेतसी सग दीक्षा, रगूजी पोरवाल।
वासी नाथद्वारा ना, दीक्षा अडतीस साल॥

२ (क) पा० टि० १

(ख) जय (शा० वि०), २।७

३. जय (खे० च०), २।१२, ३।दो० १-४

रगूजी तिहा सयम लिये, जात पोरवाल जाण हो।
दिख्या मोछव दीपतो, मडिया बहु मडान हो॥
भोमा सा रा डील मे, कायक कारण देख।
रगूजी सजम लिये, निसुणी वात विशेष॥
कह बोलावो खेतसी भणी, ते साभल आया ताहि।
विनय करी उभा रह्या, जद पूछ्यौ भोमोसाह॥
स्यू भाव था रा चरण लेण का, सतयुगी कहे कर जोड।
साधपणो लेवा तणी, मुझ मन अधिको कोड॥
भोमो साह इण विधभणे, तू सुखे ले सजम भार।
कहे मोछव दिष्या तणो, इण रो करो अपार॥

आपकी दीक्षा के समय मैणाजी आदि साध्विया भिक्षु के साथ थी ।[1] आप बडी बुद्धिमान थी । बहुत अध्ययन किया ।

ख्यात मे आपके विपय मे लिखा है "भण्या गुण्या विनै कर सोभा घणी लीधी।" हुलास (शा० प्र०) मे भी ऐसा ही वर्णन है ।[2]

लगता है दीक्षा के थोडे वर्षो बाद ही आपको सिघाडपति कर दिया गया था। साध्वी वगतूजी (२७), हीराजी (२८) और नगाजी (२९) की दीक्षा एक साथ सं० १८४४ मे हुई थी। भिक्षु ने तीनो को दीक्षा के बाद आपको सौपा था ।[3]

शासन प्रभाकर मे उल्लेख है कि स० १८५९ चातुर्मास मे पाली मे दीक्षा देकर भिक्षु ने कुशालाजी (५०), नाथाजी (५१) और बीझाजी (५२) को आपको सौपा ।[4] पर यह उल्लेख ठीक नही । कारण दूसरे प्राचीन उल्लेखो के अनुसार उन्हे साध्वी वरजू (३९) को सौपा गया था ।[5]

आपका स्वर्गवास सिरियारी मे हुआ था ।[6] शासन प्रभाकर मे आपके द्वारा सथारा किए जाने का उल्लेख है ।

वाद की कृति विशेप साध्वी गुण-वर्णन[7] उक्त उल्लेख का समर्थन करती है। ये दोनो ही कृतिया अर्वाचीन है ।

स० १८७९ भादवा सुदी ७ के दिन जयाचार्य द्वारा रचित ढाल मे निम्न पद है.

> रगूजी सजम रग राच रही, सदाजी फूलाजी अमराजी कही ।
> त्या सथारो कर पूरी मन खंती, समरो मन हर्षे मोटी सती ॥ [8]

'त्या सथारो कर पूरी मन खती' शब्द यदि साध्वी रगूजी के प्रति भी लागू होते हो तो यह कृति शासन-प्रभाकर के उक्त कथन को पुष्ट करती है, ऐसा कहा जा सकता है ।

पर जयाचार्य की अन्य कृति मे निम्न दो पद पाये जाते है

> स्वाम खेतसी साथे दीक्षा, अडतीसै वर्ष धर खती।
> परभव सिरीयारी मे पहुती, वडी रगूजी बुधवती ॥

---

१. जय (खे० च०), २।९, (प्रकरण १५ पृ० ५६५ पर उद्धृत)

२ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० १९

> भण गुण थया भारी विनयवत सुविचार ।
> गण शोभा लीधी सिरियारी सथार ॥

३ देखिए प्रकरण, २७-२९

४. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० ६९

> कुशाला ने नाथा बीझा ए त्रिहु सार, पाली ना वासी गुणमठै सयम भार ।
> दे एकण दिन मे सूपी रगू ने स्वाम, तेहनो सहु व्यतिकर जुवो जुवो छे ताम ॥

५. देखिए प्रकरण ३९

६. देखिए—पृ० ५७६, पा० टि० १ तथा ऊपर पा० टि० २

७. सोहनलालजी सेठिया द्वारा रचित

८. पण्डित-मरण, ढा० २।४

तिलेसरा श्रीजीद्वारा ना, सती सदांजी मुखकरं।
सुत बहु तज व्रत धार्‍या फूला, फुन अमरा त्रिहुं संथार ॥'

इनसे स्पष्ट हो जाता है कि साध्वी सदाजी, फूलाजी और अमराजी इन तीनों ने ही सथारा किया था। साध्वी रगूजी ने नही किया। अतः 'त्यां संथारो कर पूरी मन खती' शब्दों का सम्बन्ध साध्वी सदाजी आदि तीन साध्वियो के साथ ही समझना चाहिए। इन तीन के सथारा करने की बात अन्य प्राचीन कृतियो से भी समर्थित है[2] पर साध्वी रगूजी के सथारा करने की बात अन्य प्राचीन कृतियों की तो बात दूर, ख्यात से भी समर्थित नही। 'सिरियारी चलता रह्या जी'[3] 'सरीयारी परभव पहुता'[4] शब्द उनके साधारण पण्डित-मरण की ही बात प्रस्तुत करते हैं। अत पूर्वोक्त अर्वाचीन कृतियो का आपका सथारा करने का उल्लेख ठीक नही।

शासन प्रभाकर के अनुसार भिक्षु के देहावसान के समय २८ साध्विया विद्यमान थी। इनमे पहला नाम आपका है। इस तरह उक्त कृति के अनुसार आपका देहावसान आचार्य भारमलजी के शासनकाल मे हुआ था।[5] पर वास्तव मे भिक्षु के देहान्त के समय २७ साध्वियां ही कायम थीं[6] और आपका ही नाम ऐसा है जो २८ मे से कम किया जा सकता है। इस तरह आपका देहान्त भिक्षु के जीवनकाल मे ठहरता है।

स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है। दो विकल्प सम्भव है—

१ आपका देहावसान उसके पूर्व ही हो गया हो, अथवा

२. आपके हस्ताक्षर न होने का कारण अन्य कुछ रहा हो और आपका देहान्त उक्त वर्ष और मिति के एव १८६० भादवा सुदी १३ के मध्यवर्ती काल मे हुआ हो।

इन दोनो विकल्पो मे से प्रथम विकल्प ही अधिक सभव लग रहा है।

---

१. जय (शा० वि०), २।७, ८
२. देखिए प्र० २१, २२
३. देखें, पृ० ५७६ पा० टि० १
४. ख्यात, क्रम २०
५ हुलास (शा० प्र०), भारीमाल सती माला, गा० १३६-१३७
६ (क) हेम (भि० च), १३।१५
(ख) जय (ल० भि० ज० र०), १।२७
(ग) जय (आर्या दर्शन), १।दो० ४

२१. साध्वी सदांजी

साध्वी रगूजी (२०) और वगतूजी (२७) की दिक्षाओं के बीच छ दीक्षाए सम्पन्न हुई थी। जिनमे आप प्रथम स्थानीय है। साध्वी रगूजी की दीक्षा स० १८३८ की चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन और वगतूजी की दीक्षा स० १८४४ (फाल्गुन सुदी) मे हुई थी। अत आपकी दीक्षा उक्त तिथियो के मध्यवर्ती काल मे हुई थी।

आप नाथद्वारा (श्रीजीद्वार) (मेवाड) के तलेसरा परिवार मे विवाहित थी।[१] आप सम्पन्न घर की थी। ख्यात मे लिखा है "घरका आच्छा।"

आपकी दीक्षा पाली मे सम्पन्न हुई थी।[२] आपने पति-वियोग के वाद दीक्षा ली।

स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपकी सही है। इसी वर्ष के शेपकाल मे वीराजी (४२) की दीक्षा हुई थी।[३] दीक्षा के वाद वह आपके साथ भेजी गई थी। इससे पता चलता है कि आप अग्रणी थी। वीराजी आपके साथ रही जव तक विनयपूर्वक रही।

शासन प्रभाकर मे आपका देहान्त भिक्षु के शासन-काल मे माना है, जो तथ्य है।[४]

सर्व सम्मत है कि अतकाल मे आपने सथारा किया था।[५]

ख्यात मे लिखा है—'प्रकृत री साधु सथारो कीयो।'

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ५१।१२
सदाजी मोटी सती जी, तलेसरा तत सार।
श्रीजीद्वार ना सही जी, सखर कियो सथार॥

(ख) जय (शा० वि), २।८
तिलेसरा श्रीजीद्वार ना, सती सदाजी सुखकार।
सुत वहु तज व्रत धार्‍या फूला, फुन अमरा त्रिहु सथार॥

(ग) ख्यात, क्रम २१ नाथदुवारा का तलेसरा रा घर का।

२ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, २०
सदाजी श्रीजीद्वार ना, तिलेसरा तस जात।
शुद्ध योग पाली मे, अत सथार लहात॥

३. लेख १८५२-५४।२५।४ अनु० १

४. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, ३।८४-८६

५. (क) पण्डित-मरण ढा० २।४ (प्रकरण २० मे उद्धृत)
(ख) देखिए—पा० टि० १ एव २

२२. साध्वी फूलांजी

आप कटालिया ग्राम (मारवाड) की निवासिनी थी। आपके सम्बन्ध मे कहा गया है "सुत बहु तज व्रत धार्‌या फूला।"[1] इसका अर्थ साधारणत यह होगा कि आपने कई पुत्रो को छोडकर दीक्षा ली थी। दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि पुत्र और पुत्र-वधू को छोडकर दीक्षा ली। ख्यात मे "सुत वहु तज" के स्थान मे "सुत वहु रिध छोड दीक्षा"[2] शब्द है जिनका अर्थ होता है— आपने पुत्र और वहु सम्पत्ति छोडकर दीक्षा ली थी। आपने पति-वियोग के वाद दीक्षा ग्रहण की।

क्रमाक को देखते हुए स्पष्ट है। कि आपकी दीक्षा १८३८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा (साध्वी रगूजी की दीक्षा तिथि) और स० १८४४ (फाल्गुन सुदी) मे वगतूजी की दीक्षा तिथि के वीच सदाजी (२१) की दीक्षा के उपरात किसी समय हुई। इस कालावधि मे ६ दीक्षाए हुई थी, जिनमे आपका स्थान दूसरा है।

स० १८५२ के फाल्गुन शुक्ला १४ के लिखित मे आपकी सही नही है। लेकिन स० १८५५ जेठ वदि ६ को अपने एक पत्र मे भिक्षु ने मैणाजी (१५), धनूजी (११), गुमानाजी (७) के साथ आपको भी सम्बोधित किया है। अत यह तो निश्चित है कि आप उक्त पत्र के दिन तक वर्तमान थी। उक्त पत्र से यह भी पता चलता है कि आप साध्वी मैणांजी (१५) के सिंघाडे मे रही। प्रतीत होता है स० १८५५ एव बाद के स० १८५६ के चातुर्मास मे भी आप उन्ही के साथ थी।

स० १८५५ जेठ वदि ६ के उक्त पत्र मे आचार्य भिक्षु ने आपके विपय मे निम्न उद्‌गार प्रकट किए है

१. आर्या मैणाजी, धनाजी, फूसाजी, गुमानांजी गोघूदा मे रहे तो वैशाख सुदी १५ के वाद चुपडी रोटी और सूखड़ी विलकुल ग्रहण करने का त्याग है। फूलाजी, गुमानाजी को इनकी छूट है। घी लेना पर चुपडी रोटी न लेना।

---

१. जय (शा० वि०), २।८ (प्र० २१ मे उद्धृत) तथा देखिए—जय (भि०ज० र०), ५१।१३
सुत वहु तज सजम लियौ जी, कटाल्या ना कहिवाय।
अणमण लोढोती मझैजी, फूलाजी सुखदाय॥

२ हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सती माला, गा० २१ ख्यात का अनुसरण मात्र है
फूला फावती गाम कटाल्या ना जाण।
सुत वहु ऋद्धि छड्य, सथार लोटोती कराण॥

२. फूलाजी, गुमानाजी कहे वहा गोचरी करनी। ये इनकी इच्छा होगी गोचरी करेगी। इस बात की चर्चा जरा भी न करना। अशमात्र भी उपालम्भ न देना। अशमात्र कलुष भाव न लाना। जब इच्छा होगी गोचरी करेगी।

३. कदाचित मैणाजी गोघूदे मे ही वैठी रहे तो फूलाजी और गुमानाजी को सूखडी का आगार है।

४. मैणाजी, धनूजी के कदाग्रह मे न पडना। यदि उनके द्वारा साधुत्व न पलता देखे तो फूलाजी, गुमानाजी उनके साथ आहार-पानी का सभोग न करे।

५. फूलाजी, गुमानाजी बहुत सावधानी से रहे। सीधा न चलने पर बहुत फितूर होता दिखाई देता है।

६. मैणाजी का प्रतिलेखन-कार्य वारी-वारी धनूजी, गुमानाजी करे। हर काम वारी-बारी करे।

७. बीमार साध्वी से गोचरी न कराना।

८ फूलाजी को बिलकुल गोचरी के लिए न भेजना। उन्हे थोडा भी कार्य न सोपना। फूलाजी के साता होगी, मन होगा तो करेगी। दूसरी आर्या ऐसा न कहे कि यह काम करो।

९. फूलाजी की सेवा-भक्ति करनी हो तो रखना। नही तो हटा लू। फूलाजी की आयु ढलती है, अत यह बात है।

१०. यदि कोई फूलाजी से कहे कि हम तुम्हे बैठी को खिलाते है उसे तेले का प्रायश्चित्त। जितनी वार कहे उतनी वार प्रायश्चित्त।

जैसा कि हुलास (शा० प्र०) मे लिखा है आपका देहान्त भिक्षु के जीवनकाल मे अर्थात् स० १८६० भादवा सुदी १३ के पूर्व हुआ।[1]

यह सर्व सम्मत है कि आपने लाटोती मे सथारापूर्वक पण्डित-मरण प्राप्त किया था।[2] आपका पण्डित-मरण स० १८५६ चातुर्मास एव स० १८६० भाद्र शुक्ला १३ की मध्यावधि मे किसी समय हुआ।

---

१. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला ८६ (प्र० २० मे उद्धृत)

२. (क) पृ० ५८०, पा० टि० १ और २

(ख) जय (साधु-साध्वी पण्डित-मरण), ढा० २।४ (प्र० २० मे उद्धृत)

(ग) जय (शा० वि०), पृ० ३९

(घ) ख्यात—लाटोती मै सथारो कीयो।

२३. साध्वी अमरूजी

स० १८३८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा और स० १८४४ (फाल्गुन सुदी) के वीच जो ६ दीक्षाये हुई, उनमे आपका नाम तृतीय स्थान पर है।

सभी कृतियो के अनुसार आपने सथारा कर पण्डित-मरण प्राप्त किया था।[1] आपके सथारे का स्थान एक कृति मे लाटोती[2] कहा गया है।

ख्यात मे उल्लेख है कि आपने वहुत वर्षो तक सयम का पालन किया। हुलास(शा० प्र०) के अनुसार कई वर्ष सयम पालन के वाद आपने सथारा किया। आपका साध्वी जीवन १८ वर्ष से कम नही रहा।

स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही पाये जाते। इससे ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि आपका देहान्त उसके पूर्व ही हो गया था। पर सही न होने का कारण आपकी अनुपस्थिति रही, यह वात नीचे के विवेचन से स्पष्ट होगी।

हुलास (शा० प्र०) मे आपका नाम उन सतियो मे समाहित है जो भिक्षु के देहान्त के उपरात विद्यमान रही। उक्त कृति मे आपका देहान्त आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे माना गया है।[3] जो विलकुल ठीक है। आचार्य भिक्षु के देहान्तोपरात (स० १८६० भाद्र शु० १३) से मुनि डगरसी के देहान्त (स० १८६८ जेठ सुदी ७ तक) जो १८ सथारे हुए उन्ही मे आपके सथारे की गिनती होती है। अत आपका देहान्त स० १८६० मिती भादवा सुदी १३ और सवत् १८६८ जेठ सुदी ७ के मध्य-काल मे कभी हुआ।

---

१. (क) पण्डित-मरण ढाल, २।४ (प्र० २० मे उद्धृत),
(ख) जय (भि० ज० र०), ५१।१४:
उत्तम अमरा आर्या जी, स्वाम तणै उपगार।
जीतब जन्म सुधारियौ जी, सखरो कर सथार ॥
(ग) जय (शा० वि०), २।८ (प्र० २१ मे उद्धृत),
(घ) ख्यात घणा वर्ष सयम पाल आतम उजवाल सथारो कीयौ
(ङ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, ३।२२
अमरां पिण केता वर्ष चारित्र पालत।
सथार करीने कीधो भव नो अत ॥

२. सती विवरण

३. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, गा० ८७ के वाद का छद।

२४. साध्वी रत्तूजी

स० १८३८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा और स०१८४४ फाल्गुन सुदी के मध्यवर्ती काल मे जो छ दीक्षाए हुई, उनमे आपका स्थान चौथा है।

अपनी असयत वृत्तियो की परवशता से चारित्र छोड आप गण से अलग हो गई। विपक्षियो ने आपको मिला लेने की बहुत चेष्टा की, पर टेक रख उनमे सम्मलित नही हुई। बाद मे पाली मे जाकर सथारा किया।

रत्तू ले चारित्र रे, छूटी खोयौ चर्ण नै।
पाली माहि पवित्र रे, पछै सथारो पचखियो॥
उपाय किया अनेक रे, भेपधारचा लेवा भणी।
तौ पिण राखी टेक रे, त्या माहै तो ना गई॥[1]

स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आप उससे पहले ही गण से निकल गई। यह भी सभव है कि उस समय आप अन्यत्र रही हो और बाद मे किसी समय गण से दूर हुई हो। भिक्षु के स्वर्ग-वास के समय विद्यमान साध्वियो मे आपका नाम नही पाया जाता। इससे इतना तो निश्चित है कि आप भिक्षु की विद्यमानता मे ही गण से पृथक हो गयी थी।

---

१. जय (भि० ज० र०), ५२ सो० १, २। तथा देखिये—

(क) जय (शा० वि०), २। सो० ६, १०

रत्तू ग्रही चारित्र रे, छूटी प्रकृति अजोग थी।
पाली माही पवित्र रे, पछै सथारो पचखियो॥
उपाय किया अनेक रे, भेपधारचां लेवा भणी।
तो पिण राखी टेक रे, त्या माही तो ना गई॥

(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, सो० २३-२४ प्राय. उपर्युक्त शब्दों मे ही है।

२५. साध्वी तेजूजी

सं० १८३८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा और सं० १८४४ (फाल्गुन सुदी) के मध्यवर्ती काल मे सम्पन्न छ दीक्षाओ मे पाचवी दीक्षा आपकी है। आप पोरवाल थी। ढोलकम्बोल (मेवाड़) की रहने वाली थी। दीक्षा के कई वर्ष बाद आपने सथारा किया। ४२ दिन का सथारा आया।

शुद्ध चित्त सू तेजू सती, पोरवाल पहिछाण।
वासी ढोलकबोल रा, सजम लियो सुजाण॥
काल कितैक पछै कियाँ, संथारो सुविहाण।
दिवस बेयांली दीपतो, कीधो जन्म किल्याण॥[1]

दूसरे वर्णन के अनुसार आपको ४१ दिन का सथारा आया।

इगतालीस दिन सथारो तेजूजी ने आयो।[2]

एक अन्य वर्णन के अनुसार आपके छियालीस दिन का संथारा आया :

तेजू ढोलकबोल नां तप तिण विविधत पाण।
छयाल दिवस संथारो शहर केलवै कराण॥[3]

सभव है 'बयाली' के स्थान मे भूल से 'छयाल' लिखा गया हो।

आपका संथारा केलवा मे सम्पन्न हुआ।

हुलास (शा० प्र०) के अनुसार आपका संथारा आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे हुआ था।[4] यह अभिमत ठीक पाया जाता है।

---

१. जय (भि० ज० र०), ५२। दो० १-२। तथा देखिये जय (शा० वि०), २।९ :

ढोलकंबोल तणा जे वासी, तंत बियालिस तणो।
शहर केलवै वर सथारो, समणी तेज सुयश घणो॥

२. पण्डित-मरण ढाल, २।६

३. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला २५। तथा देखिये ख्यात।

४. हुलास (शा० प्र०), पत्र २१

स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लिखित मे आपकी सही नही है। उस पर से ऐसा अनुमान करना कि आपका देहान्त उसके पूर्व हो गया था गलत होगा। उसका कारण आपकी अनुपस्थिति रही।

आपका नाम उन साध्वियो मे आता है जिनके संथारे भिक्षु के स्वर्गवास के वाद स० १८६८ जेठ सुदी ७ तक सिद्ध हुए थे। अत आपके स्वर्गवास की घटना इसी अवधि की है।

आपके सम्बन्ध मे ख्यात मे उल्लेख है: "बोहत भद्रीक गुणवान तपस्या मोकली कीधी पछै...सथारो कीधो"

२६. साध्वी वन्नांजी

स० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ के वाद और सं० १८४४ (फाल्गुन सुदी) के पूर्व छः दीक्षाए हुई, जिनमे आपकी दीक्षा अन्तिम है।

स० १८५८ जेठ वदि १२ के दिन साध्वी रत्तूजी (१८) और आप साध्वी नन्दूजी (१९) के सिंघाडे मे देखी जाती है। भिक्षु ने साध्वी धनूजी (१६) को नन्दूजी (१९) के पास भेजते हुए, उक्त मिति के दिन जो पत्र लिखा उसका सारांश साध्वी रत्तूजी (१८) के प्रकरण में दिया जा चुका है। उससे प्रतीत होता है कि साध्वी नन्दूजी (१९) और वन्नाजी ने साठ-गांठ कर साध्वी रत्तूजी (१८) को कष्ट दिया। "तुम नन्दूजी(१९) और वन्नाजी मिल गई हो ऐसा सुनने में आया है। रत्तूजी (१८) को अलगी रखती हो। मेरा शीघ्र ही आने का विचार है। रत्तू और तुम लोगो के विषय मे निर्णय करने का भाव है। रत्तू का लोगो में वहुत फित्तूर किया है।" आदि वाक्य उक्त वात को पुष्ट करते हैं।

उपर्युक्त पत्र से यह भी पता चलता है कि वन्नाजी मेवाड़ मे साध्वी नन्दूजी के सिंघाड़े मे थी। स० १८५८ का खैरवा चातुर्मास उन्ही के साथ किया। खैरवा चातुर्मास भिक्षु की आज्ञा विना किया गया था। श्रद्धा के क्षेत्र मे आज्ञा लोप कर विहार किया।

भिक्षु ने धनूजी (१६), केलीजी (१७), रत्तूजी (१८), एव नन्दूजी (१९) इन चारो को एक साथ माढा गाव मे गण से दूर कर दिया। यह स० १८५८ आषाढ की वात है। अथवा स० १८५९ चातुर्मास की। पर वन्नाजी को नही छोडा। पर अन्त मे अपनी अविनयी प्रकृति के कारण आप गण से दूर हो गई।

वन्ना निकली वार रे, आचारज नी आण सिर।
जेहनै दुष्कर कार रे, तेहनै, चारित्र दोहिलो॥[1]

ख्यात मे कारण भिन्न रूप मे है· "परिषह मे वडी कायर ते छूट गई।"

---

१. जय (शा० वि०), २। सो० ११। तथा देखिये·
(क) जय (भि० ज० र०), ५२। सो० ३.
वनाजी सुविचार रे, सजम लीधौ शुद्ध मनै।
कर्मा करी खुवार रे, टोला सून्यारी टली॥

२. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला. सो० २६.
वनां निकली वार, छोडी गुरु भिक्षु भणी।
आणा दुक्कर अपार, विरला धीरज धर वहै॥

२७. साध्वी वगतूजी

आप विधवा अवस्था मे दीक्षित हुई थी । आप वगडी (मारवाड) की रहने वाली थी । आप तथा आपसे कनिष्ठा साध्वी हीराजी (२८) और नगाजी (२९) की दीक्षा स० १९४४ (फाल्गुन सुदी) मे एक ही दिन एक साथ भिक्षु के हाथ से सम्पन्न हुई थी । दीक्षा के बाद भिक्षु ने तीनो को साध्वी रगूजी को सौप दिया था ।

वगतूजी वगडी तणा, वर कुल जाति सवेत।
हीरा हीर कणी जिसी, भारीमाल ना नेत ।।
नाम नगी गुण निर्मलौ, वैणीरामजी री वहैन ।
एक दिवस तीनू अजा, चर्ण धार चित्त चैन ।।
चौमालीसै वर्ष स्वामजी, सजम दे इक साथ ।
सूप्या रगुजी भणी, वारू जश विख्यात ।।[1]

स० १८६० मे जव भिक्षु ने सथारा किया, तव आप अपने चातुर्मास स्थान खैरवा से झूमाजी (४४) और डाहीजी (५५) के साथ सिरियारी पहुची थी ।[2] इससे प्रगट है कि आप उस समय अग्रणी (सिवाडपति) साध्वी थी ।

अन्त मे आपने सथारा किया था ।[3]

ए तीनू भिक्खु पछै, सथारा कर सार ।
महियल मोटी महासती, पामी भवनौ पार ।।[4]

---

१. जय (भि० ज० र०), ५२। दो० ३-५। तथा देखिये ·

(क) जय (शा० वि०) २।१०-११

वगतूजी वगडी ना वासी, हद हीराजी हीर कणी ।
भारीमल री मुरजी अतिहि, नाम नगाजी कीर्ति घणी ।।
ए त्रिहु साथे चरण स्वाम कर, सतिय रगूजी ने सूपी ।
वगतूजी अणसण कटाल्ये, सती भद्र समरस कूपी ।।

(ख) हुलास (शा० प्र०); भिक्षु सती माला, २७-२९

२. हेम (भि० च०), १०।६, वेणी (भि० च०), ११।५, जय (भि० ज० र०), ६१।६,

३ देखिये पा० टि० १ (क), (ख)

४. जय (भि० ज० र०), ५२। दो० ६

उपर्युक्त गाथा के "भिक्खु पछै" शब्द ऐसी ध्वनि देते हैं जैसे आपका तथा हीराजी (२८) और नगाजी (२९) का देहावसान भिक्षु के देहान्त के बाद सं० १८६० मे ही अथवा उसके अति समीपस्थ काल मे आचार्य भारमलजी के युग मे हुआ हो। ख्यात मे लिखा है—"वगतूजी हीराजी नगाजी साठै। भिक्खु सथारा पछै तीनू सथारा किया।" पर "भिक्खु पछै" तथा उक्त कृति के शब्दो का अर्थ इतना ही है कि उक्त तीनों साध्वियो का देहावसान भिक्षु की विद्यमानता मे नहीं हुआ था। पर उसके बाद शीघ्र ही हुआ, ऐसा नहीं। यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट होगा। उक्त तीन कृतियो मे साध्वी हीराजी का देहान्त सं० १८७८ मे अर्थात् भिक्षु के १८ वर्ष बाद हुआ उल्लिखित है, जिसे भिक्षु के देहावसान के बाद का समीपस्थ-काल नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति मे उक्त शब्दो के आधार पर ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं रहता कि आपका देहावसान आचार्य भारमलजी के शासन-काल के प्रारभिक वर्षो मे ही हुआ।

सती विवरण के अनुसार आपका सथारा स० १८६१ मे सम्पन्न हुआ था। और श्री मोहनलालजी सेठिया के अनुसार सं० १८६५ मे। पर ये दोनो ही उल्लेख अर्वाचीन हैं और किसी भी प्राचीन कृति से समर्थित न होने से मान्य नहीं हो सकते। शासन प्रभाकर के अनुसार आपका देहावसान आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे हुआ है।[1] पर यह भी ठीक नहीं है।

श्री जयाचार्य द्वारा सं० १८७९ भाद्र शुक्ला ९ के दिन रचित साधु-साध्वी पण्डित-मरण ढाल मे आचार्य भारमलजी के स्वर्गवास तक दिवगत हुए साधु-साध्वियो का वर्णन है। इस कृति मे आपका नामोल्लेख नहीं है। इससे फलित होता है कि आपका संथारा आचार्य भारमलजी के दिवगत होने की मिति सं० १८७८ माघ कृष्णा अष्टमी के पूर्व नहीं हुआ।

ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि वगतूजी ने मगदूजी (१०२) नामक को दीक्षा दी थी। साध्वी मगदूजी आमेट निवासी ऋषभदासजी हीगड़ की पुत्री थी। उनका ससुराल हिरणो के यहां था।[2] साध्वी मगदूजी ने ३६ वर्ष ६ दिन तक संयम पाला। उनका स्वर्गवास सं० १९१५ चैत्र कृष्णा ६ के दिन हुआ।[3] इस आधार पर उनकी दीक्षा स० १८७९ की ठहरती है, जो ख्यात से भी समर्थित है। इससे स्पष्ट है कि आपका स्वर्गवास उक्त मिती के बाद कभी आचार्य ऋषिरायजी के शासन-काल मे हुआ। आपका सथारा कटालिया मे सम्पन्न हुआ। आपने बड़े हठ से संथारा किया।[4]

---

१. हुलास (शा० प्र०), भारीमाल सती माला, गा० १२७

२. साध्वी गुण वर्णन ढा० १०५ : १-३ :

मगदूजी मोटी सती, पियर हीगर जाति।
सैहर आमेट मध्ये सही, ऋषभ सुता सुविख्यात ॥
हिरण सासारचा जाति हद, वगत्तूजी रै पास।
समचित संयम आदर्यो, विनय गुणा री रास ॥
सरल भद्र सुखदायनी, वगतूजी नी सेव।
पाछै झूमांजी तणी, सेव करी नित्यमेव ॥

३. मु० चरण वर्स छतीस सुपालीयो रे, ऊपर खट दिन अधिक उदार रे।
मु० उगणीसै पनरै चेत मास मे रे, कृष्ण पख छठ गुरुवार रे ॥

४. देखिये पूर्व पृ० पाद-टिप्पणी १, तथा ख्यात : "वगतूजी कंटाल्ये संथारो कियो हद सं।"

शासन प्रभाकर मे उल्लेख है कि सथारा के पूर्व आपने वहुत तप किया था। "तप वहुत करचो तिण, अणसण कटाल्या मझार ।"[1] पर इससे पूर्व की किसी भी कृति मे ऐसा उल्लेख नही पाया जाता।

आप वडी ही भद्र प्रकृति की साध्वी थी। प्रतीत होता था जैसे समरस की कूपी हो—"सती भद्र समरस कुपी।"

---

१ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, २९

२८. साध्वी हीरांजी

आपको पचपदरा की सती कहा गया है।[1] आपने वैधव्य अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की थी। जैसा कि पूर्व प्रकरण मे बताया जा चुका है, बगतूजी (२७), आप और नगाजी (२६) की दीक्षा सं० १८४४ (फाल्गुन सुदी) मे भिक्षु के हाथो सम्पन्न हुई थी। दीक्षा के बाद आप सती रगूजी (२०) को सौंप दी गई थी।[2]

श्रीमद् जयाचार्य ने आपको 'हीरे की कणी' की उपमा दी है। आपका व्यक्तित्व अतीव गुण-सम्पन्न और तेजस्वी था। आप बड़ी बुद्धिमान थीं।[3] आचार्य भारमल जी के प्रति अपने भक्ति-भाव के लिए आप प्रसिद्ध थी—'गुरु भक्ता होइ घणी'। अपने गुणो से उनकी असीम कृपा प्राप्त करने मे समर्थ हुई थीं। आपने अपने युग मे साध्वियो मे प्रमुख स्थान प्राप्त किया। 'भारीमाल री मुरजी अतिहि', 'भारीमाल ना नेत', 'भल कीरत भारीमाल भणी', 'सती शिरोमणि शोभती'[4] आदि वाक्य इसी बात की ओर सकेत करते है।

आप मे सहनशीलता का गुण बड़ा बलिष्ठ था। आप बड़ी क्षमाशील थीं।

---

१. (क) सती विवरण
   (ख) पचपदरा दीक्षा-तालिका

२. देखिये, प्रकरण २७

३. (क) देखिये, प्रकरण २७ मे उद्धृत पद
   (ख) जय (भि०ज०र०), ५२। छप्पय २ :
   हीरा हीर कणी जिसी, सती शिरोमणि शोभती।
   (ग) साध्वी गुण वर्णन, ४६।१ :
   भारीमाल मुख आगलै रे, मतिवती गुणमाल रे।
   हीरां हीर कणी जिसी रे, लाल, संजम सवत चोमाल रे॥
   (घ) साध्वी गुण वर्णन, १२।दो०५ :
   भीखूनी शिषणी भणी, वरजू विजा वजीर।
   हीरा हीर कणी जिसी, वगतू अजबू धीर॥
   (ङ) साध्वी गुण वर्णन, १८।६
   हीरां जी समणी हीर कणी, भल कीरत भारीमाल भणी।

४. देखिये प्रकरण २७ मे उद्धृत पद

साध्वी चन्दूजी (१३) ने स० १८५२ मे पुनर्दीक्षित होने के बाद गण मे रहते समय और फिर बहिष्कृत होने के बाद भी आप पर मिथ्या दोपारोपण किया ·

"हीराजी खाने के लिए पडी हुई है। इनमे साधुत्व नही है। पाव-पाव घी से पाच-पाच रोटिया खाती है। फिर भी विहार नही करती। सिरियारी मे अच्छा-अच्छा आहार मिलता है। लोलुपतावश क्षेत्र नही छोडती। हीरांजी ने नित्य-नित्य एक ही घर से पूरी फीणा रोटी-लाकर स्वय खायी। हीराजी पर राग (कृपा) है। वहिने कहती है—'वे चौहटे पर खडी ही रहती है। वहा से खाण्ड लाती है, शक्कर लाती है, गुड लाती है, खोपरा लाती है, लूग लाती है।' वह लाडली है, इसी से उसका इतना आदर है। हीरांजी, नगाजी (२९) और अजबूजी (३०) तीनो शाम को घी के साथ गर्म आहार करती है। निहालचन्दजी की वहू मुह पर तो हीराजी की खुशामद करती है, कहती है—'महासतिया जी थे एकण रोटी रे खाधे किकर बैठा रहो' और पीठ पीछे इनकी निन्दा करती है।"[1]

साध्वी हीराजी ने इन अवर्णवादो—निन्दा-चर्चा को वडे समभाव से सहन किया। जाच किए जाने पर निष्कलक निकली।

हेमराजजी ने आचार्य भिक्षु से स० १८५३ के शेपकाल मे शीलव्रत ग्रहण किया। उनका विचार दीक्षा लेने का था। उन्होने शीलव्रत ग्रहण करते ही भिक्षु से अपने गाव सिरियारी पधारने का निवेदन किया। भिक्षु ने हीराजी को भेजने का आश्वासन देते हुए कहा—"इनसे साधु-प्रतिक्रमण सीखना।"[2]

आपने देश-विदेश मे विचरण करते हुए जैन धर्म का वडा प्रचार किया। आपके द्वारा जनता का वहुत उपकार हुआ।

शिष्यणी भीक्खू स्वाम री, हीराजी हद वेष।
धर्म दीपायो जिन तणो, फिरती देश विदेश॥
गुरु भक्ता होइ घणी, तिण वहुत कियो उपकार।
हस्तुजी किस्तुराजी दो बैनडी, लीयो सजम भार॥[3]

---

१. लेख, १८५२।२५,२६,२७

२. जय (हे० न०), २।३६,३८,३९,४०

तव हेम वोलिया, शील अदराय देवो रे।
त्याग कराविया, स्वामी स्वयमेवो रे॥
तव हेम वोलिया, अव वेग पधारो रे।
शिरियारी मझे, मुझ आतम तारो रे॥
जव भिक्खू वोल्या, मुख वाणी वारू रे।
हीराजी भणी, म्हेला छा अवारू रे॥
साधु रो पडिकमणो, सीखे चित ल्यायो रे।
इम कही आविया, नीवली माह्यो रे॥

३ चदना सती गुण वर्णन ढाल, दो० ३-४

स० १८४८ मे दीक्षित साध्वी रूपाजी (३७) पहले साध्वी रगूजी (२०) के सिंघाड़े में थी और बाद मे आपके साथ देखी जाती है।[1]

स० १८५७ मे साध्वी हस्तूजी (४५) और कस्तुजी (४७) की दीक्षा आप ही के द्वारा सम्पन्न हुई थी। दोनो ने पुत्र, पति और सपति को छोडकर दीक्षा ग्रहण की।[2]

साध्वी नगाजी (२६) ने जब स० १८६२ मे सलेखना सथारा किया तब वे आपके सिंघाडे मे थी। साध्वी कुशालाजी (५०), कुशालांजी (६१) कुनणाजी (६२) और दौलांजी (६३) ये चारो भी साथ थी। नगाजी[3] को बढा बल पहुचाया।[4]

बाजोली की साध्वी बड़ा चतरूजी (६५) को आशुजी (५७) ने सं० १८६६ के शेष-काल मे दीक्षा दे आपको सोपा था। उनकी शिक्षा आप ही के द्वारा हुई थी। व्याख्यान-कल मे निपुण हुई। बडी विद्वान हुई। तीस सूत्रों का अध्ययन किया। उनका जीवन बड़ा तपस्वी था। तीन बार १६-१६ दिन के उपवास की तपस्या की थी।[5]

स० १८६६ के जयपुर चातुर्मास के बाद शारीरिक अस्वस्थता के कारण आचार्य भारमल जी को वही रुक जाना पडा था। उस समय आपका सिंघाडा दर्शनार्थ वहा पहुचा। आपके साथ साध्वी अजबूजी (३०) (मुनि सरूपजी, भीमजी, जीतमलजी की भुवा) भी थी, जिन्होने उस समय उपदेश दे मुनि सरूपचन्दजी को दीक्षा के लिए तैयार किया था।[6]

---

१. देखिए—प्रकरण ३७

२. (क) देखिए पूर्व पृ० टिप्पणी ३ मे सम्बन्धित उद्धरण

(ख) साध्वी गुण वर्णन ४६।२

हस्तु कस्तु भगिणी भणी रे, हीराजी दियो सयम भार रे।
लौकिक मांहे लखी रे, छोडचो पुत्र पिउ धन सार रे॥

(ग) वही १२।१

हीरांजी हस्तु कस्तु भणी रे, दीधो सयम भार।
लखेसरी लौकिक माहि कहै रे, छांड पुत्र पिउ सार॥

३. इनमे अतिम तीनों आचार्य भारमल जी के युग की साध्वियां रही।

४. देखिए, प्रकरण ३७

५. जय (शा०वि०)वार्तिक, पृ०५१। देखिये हुलास(शा०प्र०),भारीमाल सती माला, २४-२५ :

वडा चतुरूजी बाजोली तणा तिणनें दीक्षा आसुजी देई ए।
सवत अठारै छ्यासटै पछै हीराजी ने सूपेई रे॥
तठै हीराजी कनें भण्या गुण्या, व्याख्यान री कला अधिकाणी जी

इसके बाद चतरूजी के तपस्वी जीवन का वर्णन है।

६. जय (स० र०) ३।६,१३ :

दर्शन करवा आविया रे लाल, कृष्णगढ थी तेम।
हीरां अजबू महामती रे लाल, गुरु दर्शन स्यु प्रेम॥
स्वरूपचद ने चरण नों रे लाल, दे अजबू उपदेश।
विविध प्रकार करी तदा रे, वास रीति विशेष॥

इस विषय मे सब वर्णन एकमत है कि आपने स० १८७८ मे सथारा किया था और वह चेलावास मे सम्पन्न हुआ था। जहा तक सथारा की मिती का प्रश्न है स्वयं जयाचार्य के ही इस विषय मे दो भिन्न अभिप्राय प्राप्त है

१. संथारा आचार्य भारमलजी के दिवगत होने के १७ दिन पूर्व सम्पन्न हुआ।[1]

२. सथारा २१ दिन पूर्व सम्पन्न हुआ।[2]

पहले उल्लेख के अनुसार आपका सथारा पौप सुदी ६ और दूसरे उल्लेख के अनुसार पोप सुदी २ को सम्पूर्ण हुआ।

पचपदरा के श्रावक किसनोजी द्वारा सकलित तालिका मे स्वर्गवास स० १८७८ पौप सुदी २ का लिखित है। इससे आपका सथारा आचार्य भारमलजी के स्वर्गवास के २१ दिन पूर्व सिद्ध होता है।

आप वडी पुण्यवती थी। शासन मे आपने वडा यश प्राप्त किया।

ख्यात मे लिखा है. "भण्या गुण्या बोहत भद्रीक चरित्र पालवा री दृष्टि बोहत तीखी। भारीमालजी स्वामी री मुरजी घणी आराधी।"

इसी का अनुसरण करते हुए शासन प्रभाकर मे आपको 'वजीर' कहा है—

सीर कणी सम हीर

भारीमाल नी मुरजी अति ही घणी वजीर।[3]

मुनि धनराजजी का कथन है कि "आचार्य भारमलजी की मुख्य साध्वीजी का नाम हीराजी था।[4]

---

१. पडित-मरण ढाल २।५

हीराजी संथारो चेलावास कीधो, भारीमाल पेहला कारज सधो।
सतरे दिन आगूच पहुची, समरो मन हर्षे मोटी सती॥

२. (क) जय (शा०वि०), २।१२

चेलावास हीराजी अणसण, वर्प अठतरै पुण्यबती।
दिन इकवीस आसरै परभव, भारीमाल पहिला पहुती॥

(ख) ख्यात, क्रम २८

(ग) हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सती माला, ३०.

चेलावास हीराजी करी, अणसण यशवती।
दिन इकवीस पहिला, भारीमाल थी स्वर्ग पहुती॥

३ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, ७२

४. चमकते चाद, पृ० १३। सोहनलाल जी सेठिया ने अपनी कृति शासन सुषमा, ५७ मे लिखा है—

हीरा हीर कणीह, भारीमाल मरजी अतुल।
गण मे कीर्ति घणीह, पाई गुरु इगित लखी॥

२९. साध्वी नगांजी

आपकी ससुराल बगडी मे थी।[1] दीक्षा के पूर्व पति-वियोग हो चुका था। आप मुनि वेणीरामजी की वहिन थी।[2] जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, आपकी दीक्षा स० १८४४ फाल्गुन सुदी मे भिक्षु के द्वारा साध्वी श्री वगतूजी (२७) और हीराजी (२८) के साथ एक ही दिन सम्पन्न हुई थी। दीक्षा के बाद आपको भिक्षु ने साध्वी श्री रंगूजी (२८) को सौंप दिया था।[3]

आपने देवगढ मे आचार्य भारमलजी के युग मे संथारा किया था।[4]

---

१. सती विवरण

२. (क) जय (शा०वि०), २।१३ :

सती नगी सुरगढ संथारो, ए वेणीरामजी नी भगनी।
भिक्षु पाछै ए त्रिहु अज्जा, परभव पहुती शुभ लगनी॥

(ख) पा० टि० ३

३. (क) देखिये, प्रकरण २७

(ख) हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सती माला, गा० २७-२८ :

वगतूजी वगड़ी नां हीरकणी सम हीर।
भारीमाल नी सुरजी अति ही घणी वजीर॥
नगां वेणीरामजी स्वामी की सगी वेन।
चमाले दीक्षा एकण दिन त्रिहु चैन॥

४. (क) पण्डित-मरण ढाल, २।६ :

इगतालीस दिन संथारो तेजूजी ने आयो,
नगांजी संथारो देवगढ ठायो।
बंधव साझ दियो कीधी भगती,
सुमरो मन हर्षे मोटी मती॥

(ख) जय (शा०वि०), २।१३ (पा० टि० २ (क) में उद्धृत)

(ग) हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सती माला, गा०३१ :

वलि सतिय नगांने सुरगढ में संथार।
भिक्षु गणी पाछे त्रिहुं संथारा सार॥

स० १८६६ के कार्तिक महीने की शुक्ल पक्ष मे आपने साध्वियों से निवेदन किया : "मैने मन मे दृढ निश्चय कर लिया है कि अव मै अवश्य सल्लेखना करूंगी। इस विषय मे किसी की वात नही मानूंगी।" साध्वी हीरांजी से निवेदन किया "इस वार मुझे सल्लेखना की आज्ञा दे। मन मे किसी प्रकार की शका न रखे। मै आत्मा का उद्धार करना चाहती हू।"[1] सभी साध्वियों ने निवेदन किया "आपका स्वास्थ्य ठीक है। ग्रामानुग्राम विहार करने की शक्ति है। अच्छी तरह सयम का पालन कर रही है। अभी सल्लेखना का क्या प्रयोजन?" आपके भाई मुनि वेणीरामजी ने कहा "पूज्य आचार्यश्री कृपा कर दर्शन देने के लिए पधारने वाले है तव तक धैर्य रखे। शीघ्रता न करे।" साध्वी नगाजी ने उत्तर दिया "आप कहते है, वह ठीक है, पर मै कर्मो के फास को काटना चाहती हू।"[2]

इस तरह आप अपने विचारो से विचलित नही हुई, और कार्तिक सुदी १४ के दिन से सल्लेखना आरभ कर दी। सल्लेखना शुरू करने के कुछ दिन वाद आपके भाई मुनि वेणीरामजी दर्शन देने आये। वाद मे आचार्य भारमलजी भी शीघ्रता से दर्शन देने पधारे। उनकी वात को वहुमान देने के लिए आपने वीच मे दो दिन अन्न ग्रहण किया, पर सल्लेखना नही छोडी।

कार्तिक सुदी १४ के दिन सल्लेखना आरम्भ करते हुए उस दिन आपने उपवास किया। वाद मे तीन उपवास, नौ वेले, उन्नीस तेले, आठ चौले, एक अठाई और एक छह—इतनी तपस्या की। विस्तृत विवरण इस प्रकार है

सती तो सलेपणा हो मड गइ, गाढी वात हीया माहे धार।
चोथ भगत हो चवदस कीयो, पूनम पारणो विचार॥
एकम उपवास हो आछो कीयो, हिवे छठ भगत सु चित ल्याय।
हिवे वेला करे छै हो वीहरहित सु, ममता न आणे मन माहाय॥
हिवे भाइ पिण आया हो भली परे, पूज पधार्‌या धर पेम।
दरसण देवा हो आया उतावला, सगला वरजे छे एम॥
सकत छति छे हो विहार करण तणी, सुपे पालो सजम भार।
उत्तावल अवारू करो किण कारणे, पिण सतीय न मांने लिगार॥

---

१ नगांजी की ढाल, २-३

आरजीया ने कहे छे हो आयने, मै मन मे लीधी सेंठी धार।
साचे मन करस्यु हो सुध सलेपणा, काकी वात ने मानू लिगार॥
माहा सतिया जी मया करो मो उपरे, आगन्या दो इण वार।
शका मत राखजो सर्वथा, हु करसु आत्मनो उधार॥

२ वही, ४-६.

सहु आरज्या वरजे हो आछितरे, थे विचरो गामाणुगाम।
सुखे हो सजम पालो सदा, हिवडा काइ सलेपणा रो काम॥
आग्या लीनी छे हो अनेक उपाय सु, पिण सरीत राखी समझाय।
भाइ वरजी हो भलीनरे, थे धीरज राखो मन माहाय॥
पूज पधारसी प्रगट पणे दरमण देसी हो दयाल।
सती कहे छै ए साच छै, हु काटस्यु करमा रो जाल॥

नव वेला हो निरमल कीया, एक उपवास विच मे आंण।
अरज मान हो अन्न दोय दिन इधको लीयों, नही छोडी सलेषणा जाण ।।
पट दस तेला हो तीपा कीया, इधको पारणो न घाल्यो विच मे एक।
चित चोपे हो सात चोला कीया, इधका सु इधको वैराग विसेप ।।
अठाइ कीधी छे हो उजम आणने, अलप सो लीयो पारणों आहार।
पट तों कीधा छें इधकी पात सु, सेठो शरीर नौकल्यो श्रीकार ।।
वले चोलों पचक्यो छे हो चित्त चोषे करी, एक टक लीयो अलप सो आहार।
अणोदरी कीधो हो इधकी जाण ने, वले तेलो पचक्यो तिण वार ।।
पारणो कीधो छे हो पहली रीत सु, अठम भगत कीयों उजम आण।
वले तीजो तेलो कीयों तिण अवसरे, पिण परणाम चढता पिछांण ।।
तीन उपवास वेला हो जव नीका कीया, अठम भगत कीया उगणीस।
आठ चोला अठाइ हो वले छव कीया, आ सरव सलेपणा विसवा विस ।।[1]

इसके वाद वैसाख सुदी चौथ के दिन आपने तेला किया। तेले मे दूसरे दिन आपने कहा "मैने अरिहतो की साक्षी से सथारा कर लिया है।" साध्वियो ने कहा "हम सबने आपको कहा था, मुनि वेणीरामजी ने भी आपको कहा था, फिर आपने शीघ्रता क्यो की?" आपने उत्तर दिया "अगर दो मास का भी अनशन आ जाये तो भी कोई डर नही।" फिर आपने निवेदन किया "मुझे आज्ञा दें जिससे कि मेरे मन मे सुख हो, किसी तरह की शका न करे।"

काया रूप्यो हो किलो वस कीयो, वले मन तुरग वस कीध।
करम कटक हो दल मोरचा, हिव किण विध अणसण लीध ।।
वले तेलो कीधो छे हो तीपा भाव सु, तिण मे बीजे दिन उठी उजम आण।
सथारो कीधो छै हो अरिहत सापा सु, डर नही आण्यो चतुर सुजाण ।।
थाने भाई वरजे छे हो वाइ भगत सु, वले वरजे सतिया ने नर नार।
सती कहै अणसण आवे दोय मास रो, ताहि डर नही आणु लिगार ।।
हिवे अरज करे छे हो सती डण विधे, मोने आगन्या दो अणगार।
ज्यु सुप पामे हो जीव माहरो, मत सको मन मझार ।।[2]

इस तरह वैशाख सुदी दशमी आ गई। तपस्या का सातवा दिन था। दशमी सोमवार के दिन पहले दुघडिये के समय हीराजी ने उन्हे सथारा करा दिया।

इम करता पाच दिन परपीया, आयो सातमो दिन श्रीकार।
दसम रे दिन दुघरिये पेहल रे, सोमवार करायों सथार ।।[3]

आपके दर्शन के लिए जो आते उन्हे आप साधुओ का व्याख्यान सुनने का उपदेश देती। स्वय व्याख्यान सुनती।

पोते उपदेस देवे आछीतरे, वले सुणे साधा रो वखाण।
परणाम पका हो इसरा रह्या, देपो पाचमे अरे पिछाण ।।[4]

---

१. नगाजी की ढाल, ७-१६
२. वही, १७-२०
३ वही, २१
४. वही, २२

इस तरह आपके परिणाम वडे ही निर्मल और दृढ रहे। और अन्त मे स० १८६६ वैशाख शुल्ल १३ वृहस्पतिवार के दिन जव प्राय प्रहर दिन वाकी रहा तव देवगढ मे आपका सथारा सम्पन्न हुआ।

आपको १० दिन का संथारा आया। स्वय ग्रहण किया हुआ सथारा ६ दिन का आया। साधुओ की साक्षी से किया हुआ सथारा ४ दिन का आया। सल्लेपना कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी स० १८६६ से आरम्भ की थी। आपका सथारा स० १८६६ वैशाख शुक्ला तेरस को पूर्ण हुआ। इन १७९ दिनो मे से (घटी तिथि के) २ दिन वाद देने पर १७७ दिन रहे। इन दिनो की अवधि मे आपने ४३ दिन अन्न लिया। वाकी तपस्या के कुल दिनो की सख्या १३४ होती है। पारणे के दिनो मे आप अनोदरी करती रही।

अणसण रह्यो छे हो दिन दीपतो, पोता रो पछक्यो नव दिन सथार।
च्यार दिन चावो साधां री साख सु, इण विध कीधो आतम नो उद्धार॥
हिवे पष तो आयो छे हो, सुक्ल सोभ तो मास वैसाख विचार।
पोहर दिन मठेरो रह्यो पाछलो, तीपी तिथि तेरस विसपतवार॥
उत्तराधेन सुण्यो हो आछीतरे, छेहला दिन लग जाण।
पूरो हुवो छे हो प्रकट पणे, पछे चट दे छोड्या प्राण॥
अन्न तो लीधो छे हो तयालीस दिन मझे, एक सो चोतीस आया उपवास।
एकसो सीततर दिन सथारो सलेपणा, रह्यो दिन दिन इधक हुलास॥[1]

सथारे मे आप उत्तराध्ययन सुनती रही। उधर वह सम्पूर्ण हुआ और इधर आपका सथारा सम्पन्न हुआ।

साध्वी श्री हीराजी (२८), कुशालाजी (५०) एव आचार्य भारमलजी के युग की साध्वी कुशालाजी (६१), कुननाजी (६२) और दोलाजी (६३) सतिया सथारे के समय आपके पास थी।[2]

आपके भाई मुनि वेणीरामजी ने आपको सथारे मे वहुत सहारा पहुचाया।

आपके विषय मे कहा गया है

नगांजी निरमल करी, करणी इधक करूर।
साभल तांइ सुप लहे, जे हुवै वैरागी सूर॥
वीर थका हो मुनिवर वड वडा, हुवा सूरा सुभट अणागार।
त्याने नेणा न निरख्या हो सत, सती तणो देख्यो प्रतष पाचमे आर॥
जो चोथो आरो हुवै चतुर नरा, अलप कर्म हुदै एहवा जीव।
तो केवल पामे ने हो सिध हुवै सासता, यां दीधी मुगत री नीव॥
सजम पाल्यो छे हो सुधी रीत सु, जुगत सु जाझो वरस वावीस।
भद्रिक पणो हो भल भाव सु, सती तज दीया राग नै रीस॥[3]

---

१. नगाजी की ढाल, २३-२६

२. वही, ३२

सवत अठारे छासटे समे वडा हीराजी हाजर विचार।
कुसालाजी दोनु कुनणा दोलाजी सतिया सेवा कीधी श्रीकार॥

३. वही, दो० १, गा० ७,२७,२८,३०

आपके अनशन के समय फौजों का बहुत उपद्रव हुआ। लोग आर्त्तध्यान करने लगे। पर आपकी तपस्या के प्रताप से वह सहज ही टल गया :

विचे फंद उठ्या हो फोजारां घणां, आरत करै नर नार।
पिण तपसण रा पुन तो तीपा घणा, ते पिण साता हुई श्रीकार ॥[1]

आचार्य भारमलजी आपको 'सतयुगी' नाम से पुकारा करते थे। आपके व्यक्तित्व के विषय में निम्न उद्‌गार मिलते हैं

सतजुगी सुहामणो निरमल एहवो नाम।
पूज दीयो प्रगट पणे जिसा हिज रह्या प्रणांम॥
सकोमल सरल सभाव सु गमती घणी गणमाहाय।
साताकारी सतिया भणी साधा ने घणी सुखदाय॥[2]

---

१ नगाजी की ढाल, २९

२. वही, दो० २,३

३०. साध्वी अजबूजी

आप रोयट के शाह आईदानजी गोलछे की बहन थी। मुनि सरूपचन्दजी, भीमजी और जीतमलजी (जयाचार्य) की बुआ थी। आपका ससुराल भी रोयट मे था।

एक वार भिक्षु स० १८४४ मे फाल्गुन सुदी ६ के बाद रोयट पधारे। वहा के गोलछा तथा अन्य परिवारो के लोग उनका उपदेश सुन बडे प्रभावित हुए। आप भी अत्यन्त प्रभावित हुई। उत्कट वैराग्य उत्पन्न होने से आपने भिक्षु से दीक्षा की अर्ज की। भिक्षु ने आपको दीक्षित किया। आपकी दीक्षा स० १८४४ फाल्गुन सुदी ६ और आसाढ सुदी १५ के बीच रोयट से सपन्न हुई

भिक्षु स्वाम पधारिया, दीधो वर उपदेश।
जीव घणा समझाविया, गोलछादी सुविशेष॥
भूवा त्रिण, वधव तणी, अजवू समत अठार।
चमालीसे सयम लियो, आणी हर्ष अपार॥

आपके उपदेश से गोलछा परिवार और भी अधिक धर्मानुरागी हुआ। आप पढ-लिख-कर परिपक्व हुई, तव भिक्षु ने आपका सिघाडा कर दिया। स्वय जयाचार्य ने इस घटना को निम्न शब्दो मे व्यक्त किया है

तास प्रसगे धर्मरूची, गोलछा रे जाण।
अधिक अधिक ही आसता, पूर्ण प्रीत पिछाण॥
अजवू पढ परपक थया, स्वाम भिखणजी सार।
अज्या सूपी ने कियो सिघाडो सुखकार॥[1]

---

१ जय (स० न०), ढा० १।दो० ७-१०। तथा देखिए—
(क) मघवा (ज० सु०), १ गा० ६-१०
(ख) जय (भि० ज० र०), ५२।१०
सरूप भीम ऋष जीत नी, अजवू भुवा सुजोग।
चौमासे धार्‌यो चरण, अठासीयै परलोग॥
(ग) जय (शा० वि०), २।१४.
सरूप भीम वर जय गणपति नी, भूवा भद्र नाम अजवु।
चरण चोमालै वर्ष अठ्यासियै, अणसण तास ज्ञान गजवु॥
(घ) ख्यात, क्रम ३०

आपके भतीजे मुनि जीतमलजी के दीक्षित होने की नीव अपरोक्ष रूप से आप ही के हाथो से पडी।

एक वार (स० १८६२-६३ मे) आप रोयट पधारी। आइदानजी की पत्नी कल्लूजी से कहा "व्याख्यान रोज सुनना चाहिए। सत-सतियो की सगति से आत्मा मे सद्गुण आते है। धर्मोद्यम करना चाहिए।" कल्लूजी बोली "जीत वीमार रहता है, धान गले नही उतरता, जीने की आशा छूट सी गई है, इससे चित्त मे वडी चिता रहती है, आर्त्तध्यान रहता है। इसी करण सेवा कम हो रही है।" आपने उपदेश दिया "यदि जीत का रोग दूर हो जाए और वह जीवित रहे और उसका दीक्षा लेने का विचार हो जाए तो अपनी ओर से कभी अन्तराय मत देना। उसे रोकने का त्याग ले लो।" कल्लूजी ने बडे प्रेम से त्याग स्वीकार किया। इसके वाद जीतमलजी शीघ्र ही निरोग हो गए और धान खाने लगे। माता-पिता एव स्वजन इससे वडे प्रसन्न हुए। लोग कहने लगे कि जीत तो सन्तो के भाग्य से जीवित रहा है।

त्रिक बधव मै जीत रे, वालपणा रे माय।
गले वेदना उपनी, जिम्यो सुखे न जाय॥

गामा नगरा विचरता रे लाल, समणी अजवू सार रे।
रोयट शहर पधारिया रे लाल, सतिया ने परिवार रे॥
परषद वदन परवरी रे लाल, अजवू नै तिणवार रे।
वाण सुणी हरष्या घणा रे लाल, नित आवे नरनार रे॥
पभणै अजवूजी सती रे लाल, कल्लू ने पहिछाण रे।
धर्मोद्यम अति राखिये रे लाल, सुणिये नित्य व्याख्यान रे॥
कलु कहै सुण महा सती रे लाल, तीजा सुत तास रे।
धान गलै नही उत्तरै रे लाल, लागै जीवण री नही आश रे॥
तिण कारण थी माहरै रे लाल, चित्त माहे अति चिन्त रे।
सेवा पिण थोडी हवै रे लाल, आरत ध्यान अत्यन्त रे॥
तब उपदेश दियै आरज्या रे लाल, जो कारण मिट जाय रे।
जीवतो रहै दिक्षा ग्रहै रे लाल, तो मत दीजो अन्तराय रे॥
त्याग करो वरजण तणा रे लाल, ताम किया पचखाण रे।
कारण मिटियो तुरत ही रे लाल, खावण लाग्यो धान रे॥
मात पिता हरष्या घणा रे लाल, हरख्या सज्जन जोय रे।
भली थई रह्यो जीवतो रे लाल, ते साधा रे भाग रो जोय रे॥[1]

शाह आईदानजी का देहान्त स० १८६३ मे हो गया। तब कल्लूजी अपने तीनो पुत्रों सहित रोयट से आकर कृष्णगढ मे रहने लगी। स० १८६९ का चातुर्मास रोयट मे हुआ। उनकी सेवा से सारे परिवार मे धार्मिक भावना और भी तीव्र हुई।

एक वार आचार्य भारमलजी जयपुर पधारे और स० १८६९ का चौमासा वही किया। वहा सरूपचन्दजी, भीमजी और जीतमलजी अपनी माता कल्लूजी के साथ दर्शन करने कृष्णगढ

१. जय (स० न०), १।११, १-८। तथा देखिए—मघवा (ज०सु०), १।११-१७, जय (भि० ज० र०), ५२।१०

से आए। अस्वस्थता के कारण चातुर्मास समाप्त हो जाने के बाद भी फाल्गुण तक आचार्य भारमलजी जयपुर मे ही विराजे। उस समय सती हीराजी (२८), आप हस्तूजी (४५) और कस्तूजी (४७) आचार्यश्री के दर्शन करने के लिए जयपुर आई। जीतमलजी के चारित्र ग्रहण करने की भावना हो चली थी। आप सरूपचन्दजी को चारित्र्य लेने के लिए उपदेश देने लगी। हेतु, युक्ति, दृष्टान्त देकर उन्हे समझाया। हस्तूजी (४५) सती बोली . "क्या सोच-विचार कर रहे हो ? बुआ को यश दो। घर मे न रहने का अभिग्रह ले लो।" सरूपचन्दजी के हृदय मे अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ उन्होंने डेढ मास के बाद[1] घर मे रहने का त्याग कर दिया। जयाचार्य के ही शब्दो मे

भारीमाल रे तन मझे, व्रण वेदन भारी हो।
तिण कारण अधिका रह्या, फागण ताई विचारी हो॥
स्वामी गण शिणगारी हो, भिक्षु शिष महा सुखकारी हो।
सरूप भीम अरू जीत नै, माता सहित तिवारी हो॥
उपदेश देई समझावीया, दिक्षा ने किया त्यारी हो।
स्वामी महा उपगारी हो॥
हेम आदि मुनि आत्रिया, दर्शण री मन धारी हो।
हीरा अजबू हस्तु आदि दे, श्रमणी गण हितकारी हो॥
शिव पथ न त्यारी हो॥
भूआ तीन भाया तणी, अजबू नाम उदारी हो।
चौमालिसे चारित्र लियो, दियो उपदेश उदारी हो॥
वारू विविध प्रकारी हो॥
हस्तु सती उपदेश दे, सरूपचन्द ने तिवारी हो।
दे तू जश भुवा भणी, मान वचन हितकारी हो॥
करले वधो उदारी हो॥
वयण सुणी सतीया तणा, पाया प्रेम अपारी हो।
ततक्षिण त्या वध्यो कियो, सजम नो सुविचारी हो॥
डोढ मास हद धारी हो॥[2]

---

१. जय (स०न०), ३।१५ मे एक मास का लिखा है
वचन सुणी सतिया तणा रे, चढिया अति परिणाम।
तत्क्षिण त्याग किया तदा रे, मास आसरे आम॥

२ जय (ऋ० रा० सु०), ६।१-६। तथा देखिए—
(क) जय (स० न०), ३।८-१५
(ख) मघवा (ज० सु०), ४।दो० २, ३ एव गा० ३-५
हीराजी अजबू सती, आणी हर्ष सवाय॥
हस्तु कस्तु हरख धर, विहु भगनी सुविचार।
अधिक उमग धर आविया, देखण गणि दिदार॥

इस तरह मुनि सरूपचन्दजी और जीतमलजी की दीक्षा में अजबूजी का बडा प्रयत्न रहा। उल्लेख है : "अजबूजी के कारण ही सरूपचन्दजी आदि तीन भाइयो मे धर्म-प्रेम जागृत हुआ था।"

चमालीसै सजम लियो, अजबू भूवा पहिछाण।
तेह प्रसगे अति घणो, प्रेम धर्म सूं जाण ॥[1]

स० १८६६ की पोष सुदी ६ से फाल्गुन वदि ११ की कालावधि में तीनों भाइयो की दीक्षा सम्पन्न हुई।

स० १८६६ फाल्गुन कृष्णा ११ के दिन जब कल्लूजी ने प्रव्रज्या ली तब आचार्य भारमलजी ने दीक्षा के बाद उन्हे आपको सौंपा .

फागुण बद एकादशी आनन्दा रे, स्वहस्त भारीमाल कै आज आनन्दा रे।
मात सघाते भीम ने आनन्दा रे, चरण दियो सुविशाल के आनन्दा रे॥
दिक्षा महोत्सव दीपतो आनन्दा रे, धर्म उद्योत उदार कै मण आनन्दा रे।
वर समणी अजबू भणी आनन्दा रे, सूपी कलू ने तिणवार कै आज आनन्दा रे ॥[2]

स० १८८६ का आचार्य रायचन्दजी का चातुर्मास पाली मे था। चातुर्मास के बाद मिगसर महीने मे आचार्यश्री खैरवा पधारे जहा आप विराजती थी। साध्वी कल्लूजी आपके साथ थी। आचार्यश्री के साथ मुनि श्री सरूपचन्दजी, भीमजी और जीतमलजी भी थे। वहा ४३ साधु-साध्विया एकत्र हुए। पाली तथा जयपुर के अनेक श्रावक-श्राविकाए दर्शन के लिए आए। इस अवसर पर साध्वी श्री कल्लूजी ने आचार्यश्री से अति आग्रहपूर्वक निवेदन कर सलेषना का आदेश प्राप्त किया। २५ दिन विराजकर मुनि श्री भीमराजजी को वही छोड़ आचार्यश्री ने थली की ओर विहार किया।

कल्लूजी जीवन-पर्यंत अर्थात् स० १८८७ श्रावण सुदी १३ तक आप ही के साथ रही और विविध तप करती रही। उन्होने अनेक मास खमण किए। अंत मे संलेखनापूर्वक संथारा किया। तपस्या एव सलेखना-सथारे के समय आपने एवं साध्वी कंकुजी (११३) (आचार्य रायचन्दजी के युग की साध्वी) ने कल्लूजी की बडी सेवा की :

सरूपचन्दने चरण लेवा तणो, भुवा अजबुजी दिये उपदेश क।
हेतु युक्ति दृष्टान्त देई करी, विविध प्रकार सती सुविशेष क॥
इतले हस्तु सती इम उचरे, सुजश भुवा ने दे सुविचार क।
देखे काइ इण अवसरे, कर बधो मन धरनै करार क॥
वारु वयण सुणी श्रमण्या तणा, वधियो मनमांहि अति वैराग क।
घर में रहिवारा त्याग किया तदा, गयो विषय थकी मन मूल थी भाग क ॥

१ भीम विलास, १।दो० ३

२. जय (स०न०), ४।१७-१८। तथा देखिए—मघवा (ज०सु०), ४-१८-१६ :

स्वरूप जीत सजम आदर्‌या पछै, भाइ भीम तणा पिण हुआ परिणाम क।
फागुण कृष्ण ग्यारस मा सहित ही, सजम दियो भारीमालजी स्वाम॥
मोहनबाडी मे चरण महोछव हुवो, धर्म उद्योत सूं अधिक उदार क।
समणी अजबूजी ने सुपीया, सती कलूजी अति सुखकारक॥

सती कल्लूजी करी सलेखना, अजवूजी पैं आछी जी रे।
तन मन सेती मेव करी अति, सती कंकुजी साची जी रे॥[1]

अन्त समय मे आप ही ने साध्वी कल्लूजी को सागारी सथारा कराया था

आयु अचिन्त्यो आवियो, सागारी सथार।
अजवूजी उच्चरावियो, आसरै पोहर उदार॥[2]

ऐसा उल्लेख प्राप्त है कि आपने स० १८७२ मे पश्चिम थली की अमियाजी (८६) नामक एक वहन को प्रव्रजित किया था। उन्होने साध्वी गंगाजी (६८) के साथ दलवदी की। उनकी प्रकृति इस प्रकार दलवन्दी की होने से आचार्य भारमलजी ने दोनो को अलग-अलग रहने का आदेश दिया। एक सिंघाड़े मे न रहने की वात को उन्होने नही माना। अत दोनों को गण से दूर कर दिया।[3]

छोगजी चतुर्भुजजी के प्रश्नो के उत्तर सम्वन्धी एक पत्र से पता चलता है कि साध्वी अजवूजी ने सं० १८७८ का चातुर्मास उज्जैन मे किया था।

चातुर्मास के वाद वहा से विहार कर आपने स० १८७८ माघ वदि ८ के दिन राजनगर मे आचार्य भारमलजी के दर्शन किए। आप उज्जैन से कपड़ा और लिखने के कागद याचकर लाई थी। आपने आचार्यश्री को उनकी भेट की।[4]

इस प्रसग का वर्णन अन्यत्र पद्य रूप मे इस प्रकार प्राप्त है :

मालव देस थी आइ आरजिया, कपडो पूज ने आण देखायो।
उपगार धर्म री वाता करै छै, दर्शन करे पूज रो चित लायो॥
पाठा फिरगी रा चोखा घणा छै, ते श्रावका कने जाचने लाया।
पाठा खोल चोडा कर त्याने, ते पिण पूज ने आण देखाया॥[5]

आचार्यश्री पाठो को देख रहे थे तभी तन शिथिल पड गया। उपस्थित साधुओं ने उन्हे सथारा कराया।

देखतां देखता ढल गया सांमी, वहुत न लागी वेला वारो।
भगजी वेरागी कहे सामीजी जावे, कराय द्यो सर्वथा पूर्ण सथारो॥[6]

स० १८७८ के उज्जैन चातुर्मास के साथ मुनि गुलावजी (५३) और आप दोनो का नाम जुडा मिलता है। लगता है आप और मुनिश्री दोनो के ही चातुर्मास उज्जैन मे हुए थे। मुनि गुलावजी का ७ साधुओ से उज्जैन के उपनगर नयापुरा मे और आपका उज्जैन शहर मे।

---

१. कंकु सती गुण वर्णन, ५।५

२ सरूप विलास, ४।दो० १०

३ (क) जय (शा० वि०), ४।सो० २, वार्तिक पृ० ५४
(ख) हुलास (शा० प्र०), भारीमाल सतीमाला, ८४ सो० :
पिछम थली नी पेखरे, अमियां दीख अजवु कने।

४ ख्यात पुस्तक नं० १७८ का पत्र

५. हेम (भा० च०), ६।५-६

६ वही, ६।७

आचार्य रायचन्दजी के शासनकाल मे स० १८८३ मे साध्वी ककुजी को दीक्षा भी आपके द्वारा ही हुई थी।

सतिय ककूजी अधिक सयाणी, सैंहर उदैपुर जाणी जी रे।
सासरो पोरवाल संकलेचा, पियर आहिड पहिछाणी रे॥
अनुक्रम मिलीयो जोग अनूपम, जय गणपतिनी जाची रे।
भूआ अजवूजी महासतिया, पवर ज्ञान गुण राची रे॥
तसु उपदेश सुणी दिल समर्‌या, अठारै तयांसै वारूजी रे।
चैत शुक्ल दशमी तिथि लीधु, चर्ण उदयपुर चारू रे॥[1]

ख्यात मे आपके सम्वन्ध मे उल्लेख है .

"वडा पका भण्या गुण्या हीमतवान सिघाडावन्ध घणा देशा मैं विचर्‌या मालवा मै उजीण रा क्षेत्र काढ्या और भी उपकार घणो कीधो पाप रो भय घणो सासण मे विनय कर तप कर घणी सोभ लीधी।"

आपके सम्वन्ध मे शासन प्रभाकर मे निम्न विवरण है .

सरूप भीम वलि जय गणपति नी जेह, सासारिक भुवा अजवूजी गुण गेह।
वर चरण चमालै भण्या गुण्या अधिकाय, वहु देशा विचरी कृत उपगार अथाय॥
गण उन्नति करने शोभा लीध सवाय, अठियासियै सवत् अणसण दीधो ठाय।[2]

आपने १८४४ मे दीक्षा ली एव १८८८ मे आपका देहान्त हुआ। इस प्रकार आपने ४४ वर्ष तक सयम का पालन किया।

जय (भि० ज० र०), ५१।दो० ७ मे आपके सथारा करने का उल्लेख नही है। "अठासियै परलोकै"—इतना ही लिखा है। जय (शा० वि०), २।१४ के अनुसार आपको संथारा आया था—

"चरण चोमालै वर्ष अठासियै, अणसण तस ज्ञान गजवू।"

---

१. साध्वी ककूजी की ढाल, १, २, ३, ५। तथा देखिए—
हुलास (शा० प्र०), आचार्य रायचन्दजी सती माला, गा० ७
ककुजी नी दिक्षा रे, सवत तियासियै।
अजवूजी हस्त उदारी जी॥

२. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला, ३२-३४

३१. साध्वी पन्नांजी

आप सिरियारी (मारवाड) की निवासिनी थी। आपने पति-वियोग के वाद दीक्षा ग्रहण की।

साध्वी अजवूजी (३०) और साध्वी रूपाजी (३७) की दीक्षा के वीच छह दीक्षाए हुई। साध्वी अजवूजी (३०) की दीक्षा स० १८४४ के शेषकाल मे और साध्वी रूपाजी (३०) की दीक्षा स० १८४८ के शेषकाल मे हुई थी। उस कालावधि मे हुई छह दीक्षाओ मे पहला नाम आपका है।

जयाचार्य ने आपके विषय मे 'महासती', 'वर सती', 'हद भिक्षु गण हितकारी' आदि विशेषणो का प्रयोग किया है :

सिरियारी ना महासती, पन्नाजी पहिछाण।
सजम पाल्यौ स्वाम गण, सथारौ सुविहाण ॥[1]
शहर सिरियारी ना वासी वर, सती पनाजी सुखकारी।
सथारो कर कारज सारया, हद भिक्षु गण हितकारी ॥[2]

स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपकी सही नही है, पर इसमे ऐसा निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि आपका स्वर्गवास उस समय तक हो गया था। कारण भिक्षु के स्वर्गवास के समय वर्तमान साध्वियो की तालिका मे आपका नाम देखा जाता है। अत. आपका स्वर्गवास स० १८६० भादवा सुदी १३ के पूर्व नही हुआ। स० १८५२ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर का अभाव आपकी अनुपस्थिति म रहा।

शासन प्रभाकर का अभिमत है कि आपका देहावसान आचार्य रायचन्दजी के युग मे हुआ था।[3] इसका समर्थन करती हुई एक नोध मिलती है, जिसमे आपका देहान्त स० १९२० का

---

१. जय (भि० ज० र०), ५२।दो० ८।
ख्यात मे भी आपको सिरियारी वासी कहा है।

२ जय (शा० वि०), २।१५। मिलाए—हुलास (शा० प्र०), १४.
शहर सिरियारी ना पन्नांजी सुखकार।
संथारो करने कृत आतम उद्धार॥

३ हुलास (शा० प्र०), भारीमाल सतीमाला, १४०

उल्लिखित है।[1] पर ये दोनों उल्लेख भी कैसे प्रामाणिक नही है—यह भी नीचे के विवेचन से स्पष्ट हो जाएगा।

स० १८७९ मे रचित जयाचार्य की एक कृति मे आचार्य भारमलजी के युग तक दिवगत साध्वियों का विवरण आया है। इस ढाल मे आपके स्वर्गवास का उल्लेख है।[2] इस तरह आपके स्वर्गवास से सम्बन्धित उपर्युक्त धारणाए गलत सिद्ध होती है और यह प्रमाणित हो जाता है कि आपका स्वर्गवास आचार्य भारमलजी के शासनकाल मे हुआ था।

भिक्षु और मुनि डूगरसीजी के देहान्त की मध्यावधि मे १७ सथारे हुए थे, जिनमे आपका नाम सम्मिलित है। अत आपका स्वर्गवास स० १८६० भादवा सुदी १३ एव स० १८६८ जेठ सुदी ७ के बीच किसी समय ठहरता है।

इस विपय मे सभी कृतिया एक मत है कि आपने सथारापूर्वक पण्डित-मरण किया था।[3]

---

१ सती विवरण।

२. पण्डित-मरण ढाल, २।७ (प्र० ३३ मे उद्धृत)

३. देखिए—

(क) पूर्व पृ० पा० टि० १, २ से सम्बन्धित उद्धृत पद।

(ख) ख्यात घणा वरस सजम पाल गण माहे सथारो आयो।

३२. साध्वी लालांजी

स० १८४४ और स० १८४८ के बीच जो छ दीक्षाए हुई, उनमे आपकी दीक्षा का स्थान दूसरा है। आपने पति-वियोग के बाद दीक्षा ली थी।

आप काकरोली (मेवाड़) की थी। शीत रोग की परवशता के कारण गृह मे आ गयी। वाद मे अनेक वर्षो तक श्रावक धर्म का पालन करती रही। विविध तप-जप मे जीवन विताया।

काकरोली री कहाय रे, लालाजी सयम लियौ।
परवस शीत सुपाय रे, इण कारण गृह आविया ॥
वहु वर्षां सुविचार रे, श्रावक धर्मज साधियौ।
तप जप कियौ उदार रे, फिर चारित्र नही पचखियौ ॥[1]

स० १८५२ के एक पत्र मे आपका नामोल्लेख है तथा स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपकी सही है। अत. आपके वाद ही भिक्षु की जीवनावधि मे किसी समय आपने गण छोडा था।

आपकी दीक्षा स० १८४४ और स० १८४८ के अन्तराल मे हुई थी। इस अवधि मे दीक्षित छ साध्वियो मे आपका स्थान तीसरा है। दीक्षा के पूर्व पति-वियोग हो चुका था।

---

१. जय (भि० ज० र०), ५२। सो० ४, ५। तथा देखिये .

(क) जय (शा० वि०), २। सो० १२

काकडोली नी ताय रे, लालां चारित्र आदरी।
शीत वसे गृह आय रे, वर्ष वहु श्रावक पणो ॥

(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला सो० ३६

लाला चारित्र लेह रे, शीत वसे गण छाडियो।
पिण श्रावक व्रत नेहरे, वहु वर्षा लग पालियो ॥

(ग) ख्यात, क्रम ३२ · काकडोली का। शीत वशे नीकली पछै श्रावक पणो पाल्यो।

३३. साध्वी गुमानांजी

आप तासोल गाव की थी। आपके ससुराल वाले वरड्या वोहरा थे। आप मुनि जीवोजी (४४) की ताई (वडी मा) थी, जिनकी दीक्षा आपके वाद स० १८५७ में हुई थी।[1]

आपने उत्कृष्टत मासोपवास तप किया। ख्यात और शासन प्रभाकर के अनुमार आपने उपवास से लगा कर मासोपवास तक की तपस्या की थी।[2] अन्त मे आपने राजनगर मे सथारा-पूर्वक समाधि-मरण प्राप्त किया।[3]

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ५२ १

गुमाना महा गुणवती, तासोल तणी चित्त शाति।
जीवा मुनि री वडी मा जाणी, सती सजम लियौ सुखदाणी हो लाल॥

(ख) ख्यात जीवोजी (४४)

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला ३७

गुमानाजी समणी गाम तासोल ना जाण।
जीवो मुनि केरी सागी वडिया सयाण॥

२ (क) जय (भि० ज० र०), ५२।२

एक मास कियौ अतिभारी, दोय मास छेहडै दिलधारी।
शुद्ध राजनगर संथारौ, सती सरल भद्र सुखकारौ हो॥

(ख) ख्यात उपवास वेला सु लेने मासखमण ताइ तप कियो।

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला ३८

शुद्ध भद्रक प्रकृत भाग्यवत यशवत।
उपवास थी लेई मासखमण याव करत॥

३. देखिए—

(क) पा० टि० २ (क)

(ख) जय (शा० वि०), २।१६

ग्राम तासोल ग्रही चारित्र, राजनगर मे यशवन्ती।
छेडै दोय माम करी अणसण, भद्र गुमानां गुणवती॥
मुद्रित प्रति मे भूल से 'अणसण' के स्थान पर 'सलेपणा' शब्द है।

(ग) पण्डित-मरण २।७

पन्नाजी संथारो गुमानाजी भारी, दोय मास किया पाणी आगारी।
राजनगर सथारो कीयो गुणवंती, सुमरो मन हर्प मोटी सती॥

संथारा विषयक प्राचीन उल्लेखो से ऐसा लगता है कि अन्त मे आपने जल के आगार से दो मास की तपस्या की और उसके वाद फिर सथारा किया ।[1]

ख्यात और शासन प्रभाकर के अनुसार आपको दो मास का संथारा आया ।[2] पर प्रथम प्राचीन उल्लेख ही ठीक प्रतीत होता है ।

सं० १८५२ फाल्गुण सुदी १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर है। स० १८५५ जेठ वदि ६ के एक पत्र मे भिक्षु ने अन्य साध्वियो के साथ आपको भी सम्वोधित किया है। इससे सहज ही फलित होता है कि आप उस समय तक विद्यमान थी ।

शासन प्रभाकर (पत्र २१) के अनुसार आपने आचार्य भारमलजी के आचार्यत्व-काल मे देहावसान प्राप्त किया था। भिक्षु और मुनि डूगरसीजी के देहान्त के मध्यवर्ती-काल मे १७ सथारे हुए थे। इनमे आपका नाम आता है। अत आपका सथारा स० १८६० भादवा सुदी १३ (भिक्षु की स्वर्गवास तिथि) एव स० १८६८ जेठ सुदी ७ (आचार्य भारमलजी की स्वर्गवास तिथि) के वीच घटित हुआ ।

एक वार साध्वी वीराजी (क्रम ४२) ने आपसे कहा "तू सूरिकता है, तू रेणा देवी है, तू अभवी है, दुष्टजीव है, कसाई है। मेरी गुरुआनी (चन्दूजी १३) को तूने वहुत दुख दिया है। उनके प्राण आखो मे आ गये है। तूने उनको दुर्वल कर दिया है। मेरी गुरुआणी सूत्रो की अध्येता है। वहुत वर्षो की दीक्षित है। तेरे पैरो पडती है, इससे तू अहकार मे आई है।"[3]

गुमानाजी ने इन क्रूर मिथ्या प्रहारो को वहुत ही शांतिपूर्वक सहन किया।

एक वार साध्वी चन्दूजी (१३) ने कहा . "धनाजी (१६) और गुमानाजी रात-भर लडती रही। परस्पर एक-दूसरी के प्रति मिथ्यात्वी, अभवी आदि शब्दो का प्रयोग किया।" भिक्षु ने जाच-पडताल की। तव पता चला कि चन्दूजी ने मिथ्या आरोप किया है। गुमानाजी ने शपथपूर्वक अपनी निर्दोषिता सिद्ध की ।[4]

गण से अलग हो जाने के वाद भी चन्दूजी (१३) आपका अवर्णवाद करती रही।[5] पर आप समभाव से सहती रही ।

स० १८५५ जेठ वदि ६ के पत्र मे भिक्षु ने आपको लक्ष्य कर जो वाते कही है वे प्रसगवश

---

१. देखिए—पूर्व पृ०
  (क) पा० टि० २ (क)
  (ख) पा० टि० ३ (ख), (ग)

२ (क) ख्यात
  छेहडे वडा हठ सु सथारो कीयो सो दोय मास नों आयो

  (ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला ३६
  अत वड़ा हरख थी राजनगर मझार।
  दोय मास झाझेरो सथारो कृत सार ॥

३. लेख १८५२।२६ (६) अनु० १-६

४. लेख १८५२।२६ (६)

५. लेख १८५२।२७ अनु० ७, २६, ३१, ३५, ३७, ३८

प्रकरण १५ एव २२ मे उल्लिखित हो चुकी है। अतः पाठक वहां देखें। भिक्षु ने उसमें एक वात यह लिखी है कि साध्वी मैणाजी और धन्नाजी दोनों साध्विया फूलाजी (२२) और आपके कथनानुसार गोचरी करे।

सं० १८५५ जेठ वदि ६ के दिन आप साध्वी धनूजी (१६), फूलांजी (२२) के साथ साध्वी मैणाजी (१५) के सिघाड़े मे थी। स० १८५५ एव वाद के स० १८५६ के चातुर्मास और शेषकाल मे ही नही पर मैणाजी के स्वर्गवास (सं० १८६०) तक आप उनके साथ रही, ऐसा प्रतीत होती है।

ख्यात मे आपके प्रकरण मे लिखा है "प्रकृत रा वडा आछा भद्रीक लज्यावान दयावान···गुणवान है।" शासन प्रभाकर मे यही वात दुहराई गई हे।[1]

---

१. देखिए—पा० टि० २ (ग)

३४. साध्वी खेमांजी

सं० १८४४ और स० १८४८ की मध्यावधि मे निष्पन्न छ दीक्षाओ मे आपका क्रम चौथा है। आपने वैधव्य अवस्था मे दीक्षा ली थी।

आप बूदी (हाड़ौती) की रहने वाली थी। जाति से सरावगी थी। आपने खैरवा (मारवाड) मे सथारा कर आत्म-कार्य सिद्ध किया।[1]

आपको गण मे 'क्षेम-कुशल करने वाली' कहा गया है। आपके लिए 'सत्यवती' शब्द का प्रयोग आपकी महनीयता को प्रकट करता है।

स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपकी सही नही है। इसका कारण अन्य साध्वियो की तरह आपकी अनुपस्थिति रही। शासन प्रभाकर (पत्र २१) मे आपका देहावसान आचार्य भारमलजी के युग मे उल्लिखित है, जो ठीक है। आचार्य भिक्षु और मुनि डूगरसीजी के देहावसान के अन्तरवर्ती-काल मे १७ सथारे हुए थे। इन सथारो मे आपका नाम गर्भित है, अत. आपका पण्डित-मरण स० १८६० की भाद्र शुक्ला १३ एव स० १८६८ की जेठ सुदी ७ के मध्यवर्ती काल मे हुआ।

---

१. (क) पण्डित-मरण ढाल, ३।८

खेमाजी सथारो कियो खत करी।
समरो मन हरषे मोटी सती।।

(ख) जय (भि० ज० र०), ५२।३

वर शहर बुन्दी रा वासी, वारू सरावगी कुल सुविमासी।
खैरवै सथारो खती, खेमाजी खेम करती हो।।

(ग) जय (शा० वि०), २।१७

जाति सरावगी शहर बुदी ना, सयम धार्‌यो सत्यवती।
शहर खेरवा मे सथारो, खेम करण खेमाज हुती।।देव।।

(घ) ख्यात · बुदी रा। जाति सरावगी। घणा वर्ष सजम पाली खैरवै सथारो। खेमाजी खेम करी।

(ङ) हुलास (शा० प्र) भिक्षु सती माला गा० ४०

खेमाजी बुदी रा जात सरावगी जाण।
खैरवे सथारो सयम पाल सयाण।।

३५. साध्वी जसुजी

आपकी दीक्षा स० १८४४ और स० १८४८ की मध्यावधि मे किसी समय हुई। इस काल की दीक्षित छ साध्वियो मे आपका स्थान पाचवा है। आप विधवा थी।

आप काकरोली (मेवाड) की निवासिनी थी। आप जू परीषह को सहन न कर सकने से गण से पृथक हो गई।[1]

स० १८५२ के फाल्गुण सुदी १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नही है। इसके दो कारण सभव है

१. आप लिखित के पहले गण से अलग हो गई।

२. अन्य साध्वियों की तरह आप भी उस समय उपस्थित नही थी।

यदि दूसरा विकल्प सही हो तो उक्त लिखित एव भिक्षु के स्वर्गवास (स० १८६० भाद्र शुक्ला १३) के अन्तरवर्ती काल मे आप गण से दूर हुई। कारण भिक्षु के स्वर्गवास के समय विद्यमान साध्वियो मे आपका नाम नही पाया जाता।

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ५२।सो० १३

जू परिषह थी जाण रे, छुटी जसु छिनक मैं।
चोखी टली पिछाण रे, काकरोली री विहु कही।।

(ख) जय (शा० वि), २।सो० १३.

जसु चरण ग्रही सार रे, छूट गई परिषह थकी।
चोखा निकली वार रे, ए विहु काकडोली तणी।।

(ग) ख्यात जसुजी काकडोली री चारित्र लीया पिण जुआ रो परिसह न सह सकी जद निकली।

(घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, सो० ४१

जसु चरण ग्रही सार रे, छूटी जु परिषह थकी।
चोखा सिथिलाचार रे, विहु छूटी काकडोली तणी।।

३६. साध्वी चोखांजी

स० १८४८ मे साध्वी रूपाजी (३७) की दीक्षा हुई। क्रम मे आप ठीक उनकी पूर्ववर्ती है।

स० १८४४ और स० १८४८ के वीच छ दीक्षाए सम्पन्न हुई थी, उनमे आपका क्रम छठा है। आप विधवा थी।

अपनी पूर्ववर्ती साध्वी जसुजी (३५) की तरह आप भी काकडोली (मेवाड) की निवासिनी थी।[1]

कालातर मे आप गण से अलग हो गयी। ख्यात मे लिखा है "प्रकृत करडी ढीली आचार मैं तिण सू निकली।"

स० १८५२ फाल्गुण सुदी १४ के लिखित मे आपकी सही न होने से दो अनुमान हो सकते है·

१. आप लिखित के पूर्व ही पृथक हो चुकी थी,

२. उस समय कुछ अन्य साध्वियो की तरह आप भी उपस्थित नही थी।

यदि दूसरा अनुमान ठीक हो तो आप उक्त लिखित और भिक्षु के स्वर्गारोहण तिथि सं० १८६० भादवा सुदी १३ के मध्यवर्ती काल मे गण से पृथक हुईं। कारण भिक्षु के स्वर्गवास के समय विद्यमान साध्वियो मे आपका नाम नही पाया जाता।

---

१. (क) देखिए—प्रकरण ३५ पा० टि० १

(ख) ख्यात, क्रम ३६ . चोखाजी काकडोली री

३७. साध्वी रूपांजी

आप नाथद्वारा (श्रीजीद्वार), (मेवाड) के शाह भोपजी सोलंकी की पुत्री थी। आपकी माताजी का नाम हरूजी था।[1] मुनि खेतसीजी, जिन्हे 'सतयुगी' कहा जाता था, आपके बडे भाई थे। उनकी दीक्षा आपके पूर्व स० १८३८ मे हुई थी। साध्वी खुसालाजी (४६) आपकी वड़ी वहिन थी। आपके एक और भाई थे, जो गृहस्थ ही रहे। उनका नाम हेमजी था।[2] आप तृतीय आचार्य ऋषि रायचन्दजी की मौसी थी, जो आपकी वडी वहिन खुसालाजी के पुत्र थे और जिनकी दीक्षा माता खुसालाजी (४६) के साथ सं० १८५३ चैत्र शुक्ला १५ के दिन हुई थी।[3]

---

१. हेम (खे० प० ढा०), १।१ :

श्रीजीद्वारा सैंहर मैं रे, भोपो साह ओसताल सो भागी।
गोत सोलंकी गुणनिला रे, नार हरू मुखमान रे सो भागी ॥

२. जय (ऋ०रा०सु०), १।३

श्रीजीदुवारे भोपो साह वसै, पुत्र खेतसी हेम।
पुत्री खुसाला रूपां कही, पुरो धर्म सू प्रेम ॥

३. (क) जय (खे०च०), १।दो०२,३,६,७

(ख) जय (भि०ज०र०), ५२।४ .

सतजुगी री वहिन सुख वासी, ऋप रायचन्दजी मासी।
पिउ पुत्र तज्या पहिछाणी, रूपाजी महा रलियाणी हो ॥

(ग) जय (शा०वि०), २।१८ वार्त्तिक

(घ) साध्वी गुण वर्णन, १८।७ :

भाइ खेतसीजी मुनि ऋप राय तणी मासी धारी।
काइ सती रूपांजी सुखकारी ॥
भिक्षु सरीखा मल गुरु पाया, भारीमाल सतजुगी सोभाया।
रूडा भानेज ऋपिरायो ॥

(ङ) ख्यात, क्रम ३७

(च) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला, ४२ :

रूपाजी रावलिया रा, सतयुगीनी भगिनी जांण।
ऋपि रायगणी नी सागी मांसी कहाण ॥

आपकी वडी वहिन खुसालांजी की तरह आप भी गाव रावलियां मे ही व्याही गई थी।[1] विवाह के समय आप वाल्यावस्था मे ही थी। आपके एक पुत्र हुआ।[2]

आपके वड़े भाई मुनि खेतसी के प्रयत्न से रावलिया में वडी धर्म-जागृति हुई थी। वहिन-वहनोई आदि अनेक लोग दृढधर्मी हुए थे।[3] मुनि खेतसीजी के ही कारण आप में भी वैराग्य-भावना जागृत हुई।

धर्म के प्रति आपके हृदय मे सहज अनुराग था। विवाह-वद्ध कर दिये जाने पर भी आपकी वृत्ति वैराग्यमय ही रही। पुत्र पाकर भी सासारिक जीवन के प्रति मोहासक्त नही हुई। आपका मन संसार से खिन्न रहने लगा और अन्त मे गृह-त्याग कर साध्वी-जीवन अगीकार करने की भावना तक पहुंच गया।

आपने दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति मागी, पर घरवाले आज्ञा देने को स्वीकृत नही हुए। आपको प्रव्रज्या ग्रहण करने से विचलित करने के लिए विविध कष्ट दिये जाने लगे। आपका पैर खोडे मे डलवा दिया गया। इक्कीस दिन तक आप खोडे मे रही। इस दारुण कष्ट को आपने वडे समभाव और धैर्य के साथ सहन किया। भिक्षु का स्मरण करती रही। उसके वाद खोडा अपने आप टूट गया। अद्‌भुत घटना घटी। लोग आश्चर्य-चकित हुए। उदयपुर के महाराणा भीमसिंहजी ने यह वात सुनी तो सती का गुणगान करने लगे·

वर्प पनरै आसरे वय जाणी, सुत पिउ छाड सुमता आणी।
काइ सती रूपाजी महा स्याणी॥
इकवीस दिन उनमानो, आज्ञा देता दु असमानो।
खोडै पग घाल्यी दुख खानो॥
पछै खोड़ौ टूट्यो पुण्य प्रमाणो, जश विस्तरीयौ जग मै जाणो।
गुण गावै उदीयापुर राणो॥[4]

---

१. (क) जय (ऋ०रा०सु०), १।४
रावलिया व्याही सही, दोनू ने तिण वार।
(ख) साध्वी गुण वर्णन, १८।दो०१
रूपांजी स्थिर चित्तसू, धारचो सयम धीर।
रावलीया मे रगरली, श्रीजीद्वारे पीर॥
२. देखिये—पूर्व पृ०पा० टि० ३ (ख)
३. सतजुगी चरित्र १।१०.
वहन-वहनोई आदि वहु थया, प्रिय दृढधर्मी पेख।
धर्मवृद्धि रावलिया मे धुर थकी वपराई सुविशेष॥
४. साध्वी गुण वर्णन १८।२-४। तथा देखे—
(क) जय (शा०वि०) २।१८ वार्तिक
(ख) जय (खेतसी) ८।५-७
दिख्या लेता आज्ञा दोरी आई, न्यातीला घाल्या खोड़ा मांही।
आसरे दिन इकवीस ताइ रे॥

मुनि सागरमलजी ने घटना को विस्तृत रूप से प्रस्तुत करते हुए लिखा है : "रूपांजी के सुसराल वाले तेरापंथी नहीं थे, पर रूपाजी के संस्कार जन्म-जात तेरापन्थी थे। ससुरालों से उन्होंने दीक्षा की आज्ञा मांगी।…घरवाले दीक्षा की स्वीकृति देने को तैयार थे, पर उनका आग्रह था कि उनकी दीक्षा उनके सम्प्रदाय से हो।…परिवार वालों ने सार्वजनिया के रावले में जाकर उन्हें खोड़े में डलवा दिया।…२१ वें दिन प्रातः अचानक आवाज हुई और खोड़ा टूटकर अलग जा गिरा।…आरक्षकों ने दौड़कर अधिकारियों को सूचित किया। ठाकुर आये। गाव के पंच आये। घर के अगुआ पहुंचे।…देखते-देखते रावले में भीड़ लग गई।…एक घुड़सवार मोटा गाव (गोगुदा) भेजा गया। समाचार मिलते ही मोटा गाव से रावजी सार्वजनिया पहुंचे। एक प्यादा सन्देश लेकर उदयपुर महाराणा भीमसिंहजी की सेवा में भेजा गया। सारी स्थिति अवगत करा दी गई और आज्ञा मांगी गई। मोटा गाव (गोगुन्दा) के रावजी सती रूपांजी को देखते ही भक्ति में ओत-प्रोत हो गए।…कहते हैं कि ओढण कानसी मंगाई और रूपाजी को ओढण उढा कर बहन-बेटी की इज्जत सरोकार से उन्हें गाजों-बाजों से घर पहुंचाया।…रावजी ने आग्रह पूर्वक उन्हें अपने हाथ से इक्कीसवें दिन पारणा करवाया।

महाराणा भीमसिंहजी ने संदेश भेजा

"श्री एक लिंगजी

श्री नाथ बाणनाथजी

वेगा थी वेगा जिण जायगा अणी सती रो मन है साधपणो लेवा री अणी सती री दीखा में बैंधो घालणो नहीं। अपरंच महाराणा भीमसिंह री तरफ थी सती माता ने कैहवा में आवै के म्हारे नाव री माला बत्ती फेरसी जिण थी मेवाड़ री प्रजा में सुख चैन रेसी बत्ती काइ लखू।"[1]

घर वालों ने अब आपको दीक्षा की आज्ञा दी। आज्ञा पा पति और पुत्र का मोह छोड़ आपने साध्वी-जीवन अंगीकार किया। उस समय आपकी अवस्था मात्र १५ वर्ष की थी। पुत्र लगभग डेढ वर्ष का था। आपकी दीक्षा भिक्षु के हाथ से सम्पन्न हुई।[2]

खोडो तूटो पुण्य प्रमाणे, जगजग विसतरीयो जाणो।
करे गुण उदियापुर राणो रे॥
इम आयो संयम भारो, सतावने सिरियारी सधारो।
ओ तो सतयुगी नो उपगारो रे॥

(ग) ख्यात

(घ) हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सती माला,१४३-४५ :

इण दीक्षा लेता खोडा मे पग घालंत, पिण पुण्य प्रमाणे इक्कीस दिन ने तंत।
खोडा आपेई टूटने दूर पडो ते जाय, जिण धर्म नी महिमा लोक अचभे थाय॥
ए वात विस्तरी लोकां मे तिणवार, उदैपुरने राणै सुणी चितपाया चिमत्कार।

१ मुनि सागरमलजी से प्राप्त।

२. (क) जय (खे०च०), ८।४.

स्वाम भिक्खू मिल्या सुखकारो, रूपाजी लियो संजम भारो।
पुत्र पिउ छाड व्रत धारयो रे॥

आपको एक स्थान पर 'रंगूजी की नान्ही' कहा गया है।[1] सभव है, दीक्षा के बाद भिक्षु ने आपको साध्वी रगूजी (२०) को सौंपा हो और आप कुछ वर्षों तक उनके पास रही हों।

एक अभिमत के अनुसार आपकी दीक्षा स० १८५२ मे सम्पन्न हुई और सं० १८५७ मे आप संथारापूर्वक पण्डित-मरण प्राप्त हुई।

संजम बावनै सधीकौ, सत्तावनै सथारो नीको।
खुशालांजी री लघु बहिन कहियैं, रूपांजी जग जश लहियैं हो॥[2]

ख्यात मे दीक्षा और सथारा सवत् उपर्युक्त अनुसार ही है। मुनि छत्रमलजी ने भी ऐसा ही माना है।[3]

उपर्युक्त वर्णनो के अनुसार आपका दीक्षित जीवन मात्र पांच वर्ष जितना रहा।

दूसरे वृतान्त मे संथारे का संवत् तो पूर्व वृत्तात के अनुसार ही है, पर दीक्षित जीवन नौ वर्ष का कथित है.

१. नव वर्ष आसरे निकलको, व्रत पाल मेट्यो आतम वको।
दीयो जीत नगरा डको॥[4]

२. बाल वय हठ सु आज्ञा, छाड पुत्र पितु अघहरणी।
नव वर्ष दीक्षा सितावनै वर्ष अणसण रूपा हद करणी॥[5]

३. नव वर्ष आसरै पाली सयम भार।
सत्तावन साल सखर कियो सथार॥[6]

इस वृत्तान्त के अनुसार आपकी दीक्षा स० १८४८ मे हुई थी।

स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर नहीं हैं। इससे सहजत ही यह अनुमान होता है कि आपकी दीक्षा इसके बाद हुई होगी और इससे लगभग पाच वर्ष का दीक्षा-पर्याय वाला अभिमत ठीक प्रतीत होने लगता है, पर यहा एक दूसरा ही चिन्तनीय प्रश्न उपस्थित हो जाता है। वह यह है कि दीक्षा मे आपसे कनिष्ठ पाच साध्वियों के हस्ताक्षर उक्त लिखित मे हैं तब आपके हस्ताक्षर लिखित पर न होने पर भी यह मानने को बाध्य होना

(ख) साध्वी गुण वर्णन, १८।२
वर्ष पनरे आसरै वय जाणी, सुत पिऊ छाडे समता आणी।

(ग) जय (शा०वि०), २।३०.
बाल वय बहु हठ सू आज्ञा, छांड पुत्र पिउ अघ हरणी।

१. साध्वी गुण वर्णन, १८।८
बडी बहन कुसलाजी सूरी, रगूजी नी नानी रूडी।
सती रूपांजी गुण पूरी॥

२. जय (भि०ज०र०), ५२।५

३ इतिहास के बोलते पृष्ठ, पृ० १३६

४ साधु-साध्वी गुण वर्णन, १८।६

५. जय (शा०वि०), २।१८

६. हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सतीमाला, ४७

पडता है कि आपकी दीक्षा स० १८५२ फाल्गुण सुदी १४ के पूर्व हो चुकी थी, पर अनुपस्थिति अथवा अन्य किसी कारण से आपकी सही लिखित पर नही हो पायी थी।

पर मूल प्रश्न तो यह है कि आपकी दीक्षा स० १८५२ मे किस समय हुई अथवा स० १८४८ मे कब जयाचार्य ने अपनी बाद की कृतियो मे, जिनके उद्धरण ऊपर दिये गये है, दीक्षा-पर्याय नौ वर्ष का लिखा है। यह उनका बाद का मत है, जो किसी पुष्ट प्रमाण पर आधारित लगता है।

स० १८६७ चैत्र शुक्ला ७ के दिन आउवा मे रचित एक ढाल (गा०३९) मे उल्लेख है

वड़ी बहन खुसांलाजी सोभता, लघु बैन रूपाजी जाणोजी।
चारित्र पाल्यो नव वर्षां लगै, सिरीयारी माय सथारोजी॥

उक्त सब प्रमाणो से प्राचीन और जयाचार्य की दीक्षा के भी पूर्व रचित ढाल के उक्त उद्धरण से भी प्रमाणित होता है कि साध्वी रूपाजी ने नौ वर्ष तक सयम का पालन किया। इससे फलित हो जाता है कि आपकी दीक्षा स० १८४८ में हुई थी न कि स० १८५२ मे।

इस बात मे मतैक्य है कि आपका देहान्त सथारापूर्वक स० १८५७ मे हुआ।[1]

लगता है, आप पहले साध्वी रगूजी के सिघाडे मे रही[2] और बाद मे साध्वी हीराजी (२८) के सिघाडे मे ·

हीराजी समणी हीर कणी, भल कीरत भारीमाल भणी।
सुखै रहै तसु पास रूपां समणी॥[3]

आपके गुणो का स्तवन करते हुए लिखा गया है :

चारित्र इम लीधो चूप धरी कर्म काटण तपस्या बहुत करी।
समणी रूपाजी महा सुखकारी॥
निर्मल भाव अति निकलको, व्रत पालन आतम मेट्यो बंको।
दीयो जीत नगारा नो डंको॥
सवत् अठारै सतावनै, परलोक गया धर्मध्यान धूनै।
गुणी जन गुण गावै शुद्ध भनै॥[4]

'कर्म काटण तपस्या बहुत करी' शब्दो से प्रतीत होता है कि आपका साध्वी-जीवन बहुत तपस्वी रहा।

---

१. (क) देखिए—पा० टि० ३ से ६ से सम्बन्धित उद्धरण
(ख) पण्डित-मरण ढाल, ३।८
प्रकरण ३४ पा० टि० १ (क) मे उद्धृत
२ देखिए पूर्व पृ० पा० टि० १
३. साध्वी गुण वर्णन, १८।६
४ वही, १।५,९,१०१

३८. साध्वी सरूपांजी

दीक्षा क्रम मे आपका नाम रूपाजी (३७) के बाद ही है। स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपकी सही है। इससे यह पता चल जाता है कि आपकी दीक्षा उसके पूर्व हो चुकी थी। रूपाजी की दीक्षा स० १८४८ मे हुई थी। अत आपकी दीक्षा स० १८४८ के शेप-काल और १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के बीच हुई थी।

आप जाति से अग्रवाल थी। माधोपुर (ढूढाड) की निवासिनी थी। आपने पति-वियोग के बाद तीन पुत्रो को छोडकर बड़े वैराग्यभाव से दीक्षा ली। अनेक वर्षो तक सयम पालन के बाद आपने कटालिया ग्राम मे सथारा किया। सथारा-काल मे आपके परिणाम बडे शुभ्र रहे :

सरूपाजी कटाल्यै सथारौ, अग्रवाल जाति अवधारौ।
माधोपुर ना वसवानौ, सुत तीन तज्या व्रत ध्यानो हो ॥[1]

स० १८५४ की बात है। साध्वी मैणाजी के प्रति शका उत्पन्न हो गई। लगा, जैसे मैणाजी गण से दूर होने वाली है और आपको उन्होने फटा लिया है। आपके यह कहने पर भी कि मेरी मैणाजी के साथ जाने की कतई भावना नही है, आप पर विश्वास नही हुआ। इस पर आपने कठिन-कठिन प्रत्याख्यान लेकर भिक्षु को आश्वस्त किया। आपने मैणाजी के बाहर होने या किये जाने पर उनके साथ जाने का यावज्जीवन त्याग किया।

मूल घटना निम्न शब्दो मे अकित है

---

१. जय (भि०ज०र०), ५२।६। देखे

(क) जय (शा०वि०) २।१६

छोड तीन सुत चारित्र लीधो, माधोपुर ना वसवान।
शहर कटाल्ये सखर सथारो, सती सरूपा शुभ ध्यान॥

(ख) ख्यात, क्रम ३८ माधोपुर ना। जाति रा अगरवाला।
तीन बेटा परिवार को छोड दीक्षा बडा वैराग सु लीधी,
घणा वर्ष सयम पाली आल उजवाली कटाल्ये सथारो कीधो।

(ग) हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सतीमाला, गा० ४८
तज त्रय सुत चारित्र ग्रह्यो, माधोपुर वसिवान।
अग्रवाल सरूपा सथार, कटाल्यै मान॥

(घ) पडित-मरण ढाल, २।६
सरूपाजी सथारो कटाल्यै कीधो।

मैणांजी रा परिणाम अजोग घणा देख्या। घणी घणी ऊंधी अजोग बोली आर्यां आ आगैं। तिणरी बोली उपर साध नैं आर्या नैं संका परी आतो टोला सु न्यारी परती दीसैं छै सरूपा नैं फारी दीसैं छैं। तिण उपर सरूपांजी बोली म्हारैं तो मेणांजी साथे जाण रा परिणाम कोइ नही। वद वद नैं कह्यो। तिणरी सका नीकली नही। तिण उपर सरूपाजी करला करला सुस करनैं परतीत उपजाइ। अनंता सिधां री भगवतां री आंण कीधी। भगवंता री तीर्थकरां री साप करनैं सुस कीधा मेणांजी नैं टोला बारैं काढै अथवा साध मैणांजी नैं टोला बारैं काढै अथवा मैणांजी क्रोध करैं नैं टोला सु न्यारी परैं जद मैणांजी साथे जांण रा जावजीव रा पचपाण छै। अनता सिधा नैं तीर्थकरा भगवंतारी आंण कर परतीत उपजाइ छैं। घणी राजी होय नैं घणा हरप सु कीधा छैं संवत १८५४ रा चेत विद ६। ए सुस सरूपा हरप सु कीधा।

आप आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे दिवंगत हुई थी।[1]

भिक्षु के स्वर्गवास एवं मुनि डूगरसीजी के देहावसान के बीच के काल में १७ सथारे हुए थे, जिनमे आपका नाम गिना जाता है। अत. आपका संथारा सं० १८६० भादवा सुदी १३ और स० १८६८ जेठ सुदी ७ के बीच के काल में हुआ था।

---

१. हुलास (शा० प्र०), पत्र २१

३९. साध्वी वरजूजी

आप पादू (मारवाड) की निवासिनी थी।[1] आपकी दीक्षा स० १८५२ मे (फाल्गुन सुदी १४ के पूर्व) आचार्य भिक्षु द्वारा पादू मे ही सम्पन्न हुई थी। बीजाजी (४०) और वनाजी (४१) की दीक्षा भी उसी दिन आपके साथ हुई।[2] आप विधवा थी। आपका आरभिक ज्ञानाभ्यास मैणाजी (१५) के चरणो मे हुआ।[3] संभवत स० १८५३ और १८५४ तक के चातुर्मास उनके साथ हुए।

भिक्षु आपके गुणो से प्रभावित थे। अत आप सदा उनकी कृपापात्र रही। सयम लिये हुए लगभग तीन वर्ष हुए होगे कि आपका सिघाडा कर दिया।

१. वरजूजी वदीत विमासी, रूडी शील गुणा री रासी।
तिणरो भिक्खु तोल वधायो, सती सुजश शासण मे पायौ हो॥[4]

---

१ (क) जय (शा०वि०), २।२०
वरजूजी पादू रा वासी, भिक्षु नी मरजी भारी।
गण मे तोल वधायो तिणरो, आयु इडवै हुशियारी॥
(ख) ख्यात, क्रम ३९ वरजूजी वडी पादू रा

२ (क) साध्वी गुण वर्णन, १८।१-२
जवू द्वीप रा भरत क्षेत्र मे, मरुधर आर्य देशो रे।
पादु गाम रूपा रेल रूडो, पूज्य भीखनजी कीधो प्रवेशो रे॥
वरजूजी विजाजी तीजी वनाजी, एक दिन सयम लीधो रे।
भिखनजी स्वामी गुरु मिलिया भारी, सयम अमृत-रस पीधो रे॥
(ख) जय (ऋ०रा०सु०), २।दो०२.
त्या तीन जण्या सयम लियो, इक दिन भिक्षु पास।
वरजू वीजा वना सती, वरस वावनै तास॥
(ग) स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखत मे आपके हस्ताक्षर है। अत दीक्षा उसके पूर्व ही हो सकती है।

३ साध्वी गुण वर्णन, १८।३
मैणाजी भणाया ज्ञान भल पाया, हुई भिक्षु गरू री भगता रे।
गामा नगरा उपकार करती, स्वामीजी सू चौमासा कीधा लगता रे॥

४ जय (भि०ज०र०), ५२।७

२. संयम लीधा नें थया, तीन वर्ष उनमान।
किया सिघाडो स्वामजी, वरजू तणो पिछाण ॥[1]

अनुमानत: स० १८५५ से आपके चातुर्मास अलग होने लगे थे।

रायचन्दजी और उनकी माता खुशालांजी की दीक्षा में आपका प्रमुख हाथ रहा। आपके ही उपदेश से माता और पुत्र मे वैराग्य एव सयम लेने की भावना जागृत हुई। यह आपकी अत्यत महत्वपूर्ण प्रथम उपलब्धि थी।

समणी भिक्षु स्वामी जी, वरजू बीजा विचार।
गामा नगरा विचरती, सतिया ने परिवार॥

वडी रावलिया पधारिया रे लाल, वरजू सती सुवदीत रे।
हलुकर्मी सुण हरषीया रे लाल, पूरण धर्म सु प्रीत रे॥
सुन्दर देसना साम्भली रे लाल, समज्या चतुर सुजाण रे।
सुलभ घणा वहु धर्म सू रे लाल, उजम अधिको आण रे॥
माता सहित ऋषराय ने रे लाल, वारूं चढायो वैराग रे।
चारित लेवा चित थयो रे लाल, ससार सू मन गयो भाग रे॥[2]

बाद मे भिक्षु वडी रावलिया पधारे और रायचन्दजी तथा माता खुशलांजी को सं० १८५७ की चैत्र पूर्णिमा के दिन आम्र वृक्ष की छाया मे दीक्षा दी।[3] सयम देने के बाद भिक्षु ने खुशालाजी को आपको सौंप दिया।

सयम देइ माता भणी आनन्दा रे, सूपी वरजूजी ने स्वाम के आज आ०।
पूरण क्रिया पूज्य नी आनन्दा रे, गुणवता अभिराम के आज[4] आ०॥

स० १८५९ के चातुर्मास मे पाली की कुशालाजी (५०), नाथाजी (५१) और वीझाजी (५२) को वहा एक दिन दीक्षा दे भिक्षु ने वरजूजी को सौंपा था।[5]

इसी तरह साध्वी खुशालाजी (४६), कुशालाजी (५०) नाथाजी (५१), वीझाजी (५२) आदि अनेक यशस्विनी आर्याओ की शिक्षा आपके ही द्वारा हुई। साध्वी नाथाजी आपके

---

१. जय (ऋ०रा०सु०), २।दो० २।३। मिलाए—हुलास (शा०प्र०) भिक्षु रातीमाला ४९,५०
वरजू पादूरा भण्या गुण्या बुधवान, भिक्षु री मुरजी भारी गण मे तोल वधाण।
सिघाड वद्ध थई विचर्या देश अनेक, तस डडवा शहरे सथारो सुविवेक॥
२ वही, (ऋ०रा०सु०), २।दो०१-३
३ वही, ३।दो०१-६
४. वही, ३।३।१०
५ (क) (भि०ज०र०), ५२।२१-२२
(ख) (शा०वि०), २।३१
कुशलाजी नाथाजी वीझाजी, पाली ना गुण रस कूपी।
गुणसठै इक दिन दीक्षा, भिक्षु देई वरजूजी ने सूपी॥
शासन प्रभाकर भिक्षु मती वर्णन ६९ मे उल्लेख है कि आप तीनो को दीक्षा के बाद साध्वी रगूजी को सौंपा गया था।

स्वर्गवास तक आपके साथ रही।

पाली निवासिनी झूमाजी (५८) आचार्य भारमलजी के युग की द्वितीय साध्वी थी। उनकी दीक्षा स० १८६२ मे हुई थी। दीक्षा के वाद सभवत: उन्हे भी आपको सौपा गया था।[1] निम्न प्रसग से पता चलता है कि स० १८६८ मे वे आपके साथ रही।

आचार्य भारमलजी ने स०१८६८ मे पीसागण निवासिनी रभाजी (६२) को दीक्षित किया, जो २४ वर्ष की थी। ये आनन्दपुर के श्री मोतीलालजी कासलीवाल की पुत्री थी। उल्लेख है कि दीक्षा के वाद आचार्य भारमलजी ने उन्हे आप (वरजूजी) और झूमाजी (५८) को सौपा था।

वर्ष चौवीस रे आसरे, भारीमाल रे हाथ।
समत अठारै अडसठै, धार्‌यो चरण वर आय ॥
वरजू झमकू नै गणी, सूपी सुगुरु सयान।
सेव करे साचे मनै, रभा गुण नी खान ॥[2]

साध्वी झूमाजी (५४) और रंभाजी दोनो का प्रशिक्षण आप (वरजूजी) के द्वारा हुआ। साध्वी झूमाजी (५४) वडी अध्ययनशील थी और व्याख्यान कला मे निपुण हुई।[3] रभाजी ने वाद मे सिंवाडपति होने पर तीन साध्वियो को दीक्षित किया। वडी तपस्विनी निकली, अनेक थोकडे किए।

उपर्युक्त प्रसगो से स्पष्ट है कि आपको सौपी हुई साध्वियो के जीवन-निर्माण मे आपका वहुत वडा हाथ रहा। सिघाडपति के रूप मे आप वडी यशस्विनी रही।

स० १८६६ और १८६९ के वीच के वात है। मुनि जोधोजी, वखतोजी और सतोजी इन तीन के सिघाडे ने कारणवश पचपदरा मे चातुर्मास किया। ये तीनो 'अगड-सूया' (अकृत-सूत्र) थे। आचाराग निशीथ का वाचन किया हुआ न होने से प्रायश्चित्त देना-लेना नही कल्पता था। अत स्वतत्र चातुर्मास करना सभव नही था। आप (साध्वी वरजूजी) का चातुर्मास पचपदरा था, इसलिए वहा करना सभव हुआ।[4]

कुशाला ने नाथा वीजा ए त्रिहु सार।
पालीना वासी गुणसठै सयम भार ॥
ते एकण दिन मे सूपी रगू ने स्वाम।
तेहनो सहु व्यतिकर जुवो जुवो छै आम ॥

[1] पर यह उल्लेख गलत है।

१. रभा सती गुण वर्णन ढाल, २।दो०५

२. वही, २।दो०३-४

३. सैहर पालीना वर्ष वासठै, सजम लीधो सुखकारोजी।
कला वखाण तणी अति तीखी, भणी गुणी झूमा भारीजी ॥

४. परम्परा वोल २।२२६

जोधोजी वखतोजी सतोजी स्वामी अगडसूत्री था या तीना नैं सवन् १८६६ पचपदरे चौमासो कोई कारण सू कियो त्या आर्य्या वरजूजी हुता एक गाम मे।

आपके चातुर्मास भिक्षु से लगते होते रहे, ऐसा उल्लेख प्राप्त है।[1] साध्वी खुशालाजी (४६) की दीक्षा स० १८५७ चैत्र शुक्ला १५ को हुई थी और वह आपको सौंपी गई थी। उनके जीवन-प्रसग मे भी ऐसा उल्लेख है कि भिक्षु ने तीन चातुर्मास अपने पास करवाए। "तीन चौमासा भेला कराविया", "तीन चौमासा पुज कनै किया।"[2] इसमे लगते चातुर्मास करने की बात सिद्ध होती है।

साथ चातुर्मास कराने की यह बात आप पर विशेष कृपा-दृष्टि होने की ही सूचक है।

आपके द्वारा शासन की वडी वृद्धि होती रही। आपके हाथ से तीन दीक्षाए सम्पन्न हुई।

१ सवत् १८७४ मे आपके द्वारा कमलूजी ने दीक्षा ग्रहण की। इनके पति हीरजी भी उसी दिन दीक्षित हुए।[3] आचार्य भारमलजी ने हीरजी को दीक्षित किया और आचार्यश्री के सेवा मे उपस्थित आपने कमलूजी को।[4] साध्वी कमलूजी का अध्यापन आपके पास ही हुआ।[5] साध्वी कमलूजी वडी विदुषी, तपस्विनी तथा प्रभावशाली सती के रूप मे सामने आई।[6]

२. स० १८७९ की जेठ सुदी २ के दिन आपने साध्वी मयाजी को दीक्षित किया, जो आगे जाकर एक महान् साध्वी हुई।[7] आपके स्वर्गवास तक साध्वी मयाजी आपके सिंघाडे मे रही।

३. स० १८८७ के आस-पास माहठा निवासिनी साध्वी रायकुवरजी भी आप ही के द्वारा दीक्षित की गई थी। उनकी अवस्था १६ वर्ष की थी। साध्वी रायकुवरजी वडी गुणवान वनी। १६ वर्ष तक सयम का पालन कर दिवगत हुई।

माहठै पीहर सासरौ, राय कुवरि अभिधान।
सागर साह नी डीकरी, सेणी चतुर सुजांण॥

---

१. देखिए—पृ० ६२१, पा० टि० ३

२ देखिए प्रकरण ४६ पृ० ६५४ पा० टि० ६

३. जय (शा०वि०), ४।२६ वार्तिक ·
भिक्षु शिष्यणी वरजुजी तिण कने कमलु दीक्षा लीधी सवत् १८७४ स्त्री भरतार साथे।

४. जीवोजी कृत ढाल (स० १८९३ मे रचित)
समत् अठारे चिमतरे, भारीमाल अणगार।
सन्मुख चरण समाचर्यो, भामण ने भरतार॥

५ सती गुण वर्णन, २७।२
वरजूजी पास भणी, बुद्धिवता, सत्यवती सिरदारी।

६ जय (शा०वि०), ४।२६ वार्तिक.
हजारा ग्रन्थ मुढै सीख्या। सरल भद्रिक विविध तपस्या करी सूत्र सिद्धान्त वाच्या॥

७. जयाचार्य कृत मयाजी की ढाल दो०१,२ ·
मयाजी मोटी सती, जाति समुरनी छत्र।
पिय खेरवै जाणजो, जाति कोठारी तत्र॥
सजम वरजूजी कन्हे, लीधो सवत् अठार।
वर्ष गुण्यास्यै जेठ सुदी, तिथि वीज सुखकार॥

वरष सोलै रे आसरे, व्रजु महासती पास।
चारित्र लीधो चूप सू, पांमी परम हुलास ॥[1]

आपका स्वर्गवास ईडवा मे हुआ।[2] जय (भि०ज०र०) और हुलास (शा०प्र०) के अनुसार आपने सथारा किया था,[3] जबकि जय (शा०वि०) और ख्यात मे वैसा उल्लेख नही है।

पण्डित-मरण ढाल २ मे आचार्य भारमलजी के शासन-काल मे दिवंगत साध्वियो के नाम सकलित है। उनमे आपका नाम नही है। अत. फलित होता है कि सवत् १८७८ की माघ सुदी ८ तक आप विद्यमान रही।

उपर्युक्त साध्वी मयाजी के दीक्षा-प्रसग से यह निश्चित हो जाता है कि आप स०१८७६ जेठ सुदी २ तक विद्यमान थी।

आप द्वारा दीक्षित माहठा निवासिनी साध्वी रायकुवरिजी ने सोलह वर्ष सयम पालन कर सवत् १९०२ जेठ वदि १० बुधवार के दिन पण्डित-मरण प्राप्त किया था। इससे फलित होता है कि स० १८८६ तक आप (सती वरजूजी) विद्यमान रही। अपनी दीक्षा के बाद सोलह महीने साध्वी रायकुवरिजी को साध्वी व्रजूजी का सान्निध्य प्राप्त रहा। आपने इस काल मे साध्वी वरजूजी की बडी सेवा की।[4] इस तरह आप (वरजूजी) का अवसान काल १८८७-८८ मे पडता है।

"रूडी शील गुणा री रासी" "सती सुजश शासण मे पायो" आदि वाक्य आपकी चारित्रिक महिमा को प्रकट करते है।

आपके सम्बन्ध मे ख्यात मे लिखा है "भणी गुणी। सिघाड वध।···हीमतवान गुणवान धणा हा।···वडा जशधारी सत्या हा।

आपको महासती कहा गया है। आप सूत्रो और सिद्धान्त की अच्छी जानकार थी। शील-गुण से सम्पन्न थी।

---

१. सती गुण वर्णन ढा०, १०।दो०१,२

२. जय (शा०वि०), ७।२०। देखिए, पृ० ६२१ पा० टि० १ (क)

३. (क) जय (भि०ज०र०), ५२।१०

सखरी छेहडै सथारौ, समणी हद मुद्रा सारो हो।

(ख) हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सतीमाला, ४९-५० (पूर्व उद्धृत)

४ सती गुण वर्णन ढाल, १०।दो०२ एव गा० ५,१७,१९

वरप सोलैरे आमरे, व्रजु महासती पास।
चारित्र लीधो चूप मू, पामी परम हुलास ॥
मास सौलेरै आसरै जी, व्रजूजी नी करी सेव।
भक्ति करी भली भान सूजी, अलगो करी अहमेव ॥
समत उगणीसै वीजै ममैजी, जेठ विद दशमी बुधवार।
रायकुवरि परलोक पधारीया, पडत-मरण श्रीकार ॥
मोलै वर्म आज्ञो सजम पालीयो, रायकवरि सती सुखकार
तन मन आतम वम करीजी, कर गया सेवो पार ॥

सील तणो घर महासती, सूत्र सिद्धान्त सु बोल।
भिक्षु स्वाम पधारियो, तीखो तोल अमोल ॥[1]

भिक्षु ने आपका सम्मान बहुत बढ़ाया। उस समय की साध्वियों में आप प्रमुखस्थानीया थी।

सोहनलालजी सेठिया ने आपके विषय में लिखा है :

विनयशील गुणधाम, लख गुरु भक्ति में निपुण।
गण में भिक्षू स्वाम, वरजू तोल वधावियो ॥[2]

---

१. जय (ऋ०रा०सु०), २।दो०४
२. शासन सुषमा, ५६

४०. साध्वी बीजांजी

जैसा कि पूर्व प्रकरण में लिखा जा चुका है, आपकी दीक्षा सती वरजूजी (३९) और वनाजी (४१) के साथ भिक्षु द्वारा पादू मे सवत् १८५२ मे सम्पन्न हुई थी।[1] सवत् १८५२ फाल्गुण सुदी १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर पाये जाते है। अत आपकी दीक्षा उक्त मिति के पूर्व हुई। आप रीया (मारवाड) की निवासिन थी। (देखे पृ० ६२८ पा० टि० ५) से सम्वन्धित उद्धरण। दीक्षा के पूर्व आपके पति का वियोग हो चुका था।

आपका प्रारभिक शिक्षण साध्वी मैणाजी के हाथो हुआ।[2] आपके चातुर्मास मैणाजी और वाद मे साध्वी वरजूजी (३९) के साथ होते रहे।[3]

स० १८५८ के चातुर्मास उपरांत अथवा कुछ और वाद मे भिक्षु ने आपका सिंघाडा कर दिया और साथ मे साध्वी जोताजी (४८) को रखा जो वडी वुद्धिमती, प्रत्युत्पन्नवुद्धि तथा सूत्र सिद्धान्त की अच्छी जानकार थी। उनके कण्ठ वडे अच्छे थे। वे व्याख्यान देने मे प्रवीण थी। भिक्षु ने ऐसी गुणवान और व्याख्यान-कला मे कुशल साध्वी को आपको सौंपा

स्वाम भिक्षु सुविचारो रे, कीयौ विजाजी तणो सिंघाडो रे।
वखाणीक जोताजी उदारो॥

---

१. (क) प्रकरण ३९, पृ० ६२१, पा० टि० २
(ख) जय (भि०ज०र०) ५२।१०
शुद्ध या तीना ने सिख्या, दीधी भिक्खु एक दिन दीख्या।
सखरी छैहडै सथारो, समणी हद मुद्रा सारो हो॥
(ग) जय (शा०वि०) २।२२
स्वामी भीखणजी हाथे एक दिन, ए त्रिहु दीक्षा अवधारी।

२ प्रकरण ३९, पृ० ६२१, पा० टि० ३

३ (क) जोताजी की दीक्षा स० १८५७ के जेठ मास मे हुई थी। उल्लेख है कि वे वरजूजी, वीजाजी को सौंपी गई थी (देखिए प्र० ४८) इससे उस समय तक आपका वरजूजी के साथ होना प्रमाणित होता है।
(ख) जय (ऋ०रा०सु०), २।१
समणी भिक्षु स्वाम नी, वरजू विजा विचार।
ग्रामा नगरा विचरती, सतिया ने परिवार॥

हृद देशना महा हितकारो रे, निसुणी समझै नर नारो रे।
चित माह लहे चिमतकारो रे ॥[1]

मुनि श्री हेमराजजी ने स० १८७३ मे साध्वी श्री नन्दूजी (६२) को परिस्थितिवश गृहस्थ-वेश मे दीक्षा देकर आपके सिंघाडे की साध्वी श्री जोताजी को सौंपा, जो उस समय दीक्षा स्थान पर थी। साध्वी जोताजी ने दीक्षा के वाद उन्हें साध्वी के वस्त्र पहना कर प्रातिहारिक वस्त्र उनके पिताजी को सौंपे। तब से लेकर आप (वीजाजी) के स्वर्गवास तक साध्वी नन्दूजी आपके पास रही।

स० १८७८ मे आचार्य ऋषिराय ने साध्वी लच्छूजी (१०२) को दीक्षित किया, जो उनकी प्रथम शिष्या थी। इनके पिताजी का नाम चन्द्रभाणजी रिणधीरोत कोठारी था, जो वडी पादू के समीपस्थ वड़ी रीया के निवासी थे। इनके ससुर का नाम जोरावरजी धाडीवाल था, जो मेडता के निवासी थे।[2] आचार्य ऋषिराय ने अपनी इस प्रथम शिष्या को उक्त सवत् की फाल्गुण वदि ६ के दिन श्रीजीद्वार मे दीक्षित किया और दीक्षा के वाद उन्हे आप (साध्वी वीजाजी) को सौपा था।

सवत अठारै अठतरे, ऋपराय विराज्या पाट।
लछूजी शिखणी प्रथम, दिन दिन अधिकी थाट ॥
अठतरै व्रत आदरया हो, फागुण विद चौथ सु तिथ।
श्रीजीद्वारै आयने हो, धार्यौ है चरण पवित्र ॥
वडी वीजा वृद्धिकारणी हो, जोता गुणानी जिहाज।
नदू कुवारी किन्यका हो, सखर मिल्यो तसु स्हाज ॥
वीजा जोता नदू भणी हो, सूपी पूज ऋषराय।
विनय व्यापच करती थकी हो, दिन दिन हरख सवाय ॥[3]

दीक्षा से लेकर आपके देहान्त तक साध्वी लच्छूजी आपके साथ रही।

आप वडी ही सरल और भद्र प्रकृति की साध्वी थी। शासन मे आपने विशिष्ट स्थान और ख्याति प्राप्त की। अनेक लोगो को प्रतिवोधित किया।

अन्तिम वर्षो मे आपने वडी कठोर तपस्या कर आत्म-दमन किया था।

१. वीजाजी महा वृद्धकारी, धर चरण शील सुखकारी।
करड़ी तप छेहडै कीधी, सती जग माहे जश लीधौ हो ॥[4]
२. सती वीजाजी रीया तणा ए, छेहडै तपस्या कीध घणी।
सथारो कटाल्यै सखरो, सरल भद्र समणी सुगणी ॥[5]

---

१ सती गुण वर्णन ३०।९-१०
२. लछूजी की ढाल दो० १,२
३. लछूजी (१०१) की ढाल, दो० ३, गाथा-१,२,३
४. जय (भि० ज० र०) ५२।८
५. जय (शा० वि) २।२१। मिलावे—
हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला ५१.
वीझां रीयानी छेहडे तप वहु कीध,
संथारो कटाल्यै करिने वहु यश लीध।

ख्यात मे लिखा है : "छेहडै घोर तप करी आत्मा न भारी कसी।"

आपकी उग्र तपस्या और सलेपना की कुछ विशेपताए इस प्रकार है

१. जीवन के अन्तिम तीन वर्ष मे आपने ७६३ दिन की तपस्या इस प्रकार की—

१.	उपवास	७६	दिन	७६
२.	वेला	१५२	,,	३०४
३.	तेला	३२	,,	९६
४.	चोला	३८	,,	१५२
५.	पचोला	१४	,,	७०
६.	छः का थोकड़ा	६	,,	३६
७	साता	३	,,	२१
८.	अठाई	१	,,	८
				=७६३

२. आपने अधिकाश तपस्या चौविहार की। कभी कदाश जल लिया। पारण मे कभी विगय ली तो अल्प मात्र। अरस विरस आहार किया करती।

३. पच्चीस दिन तक ऊनोदरी की, अल्पाहार लिया और फिर सथारा ठा दिया।

सलेखना और सथारे का विस्तृत वर्णन इस प्रकार प्राप्त है

संलेपणा मडीया चित चोखै, उपवास वेला वहु कीधा रे।
तेला चोला पाच षट लग, सात आठ लग लीधा रे॥
छिहंतर उपवास कीधा चित चौखे, एक सो वावन वेला रे।
अडतीस चौला नै चवदे पंचौला, तीस नै दोय कीधा तेला रे॥
छ छ ना थोकडा पट कीधा, सात कीना तीन वेला रे।
एक अठाई अनमोल आछी, खेर कर्म कीया खोखा रे॥
सात सो तेसठ दिन तपस्या रा, तीन वर्ष माहै तामो रे।
काया कीधी खखर सरखी, सारचा आतम कामो रे॥
तिण मे तपस्या चौविहार घणी कीधी, कदेयक पाणी पीधो रे।
विगय लीधी तो अल्प मातर, अरस विरस अन लीधो रे॥
अल्प आहार दिन पच्चीस आसरे, पछै सथारो ठायो रे।
चोखा परिणाम हर्ष सहीत कर, जिन मार्ग जस चढायो रे॥
भजन कीधा भगवंत रा भारी, धर्म ध्यान मन ध्यायो रे।
नवकार लाखा गुणिया अति नीका, नव दिन अणसण आयो रे॥[1]

आपको ९ दिनो का अनशन आया। सलेषणा और संथारे के समय साध्वी जोतांजी

---

१. सती गुण वर्णन, ६।७-१३। तथा देखिए—वही, ३०।१२.
नव दिन नो सथारो नीको रे, सत्यासियै सती वीजां सधीको रे।
सती लियो सुयश नो टीको॥

(४८), वनाजी[1] (८४), नदुजी[2] (९२), नोजाजी[3] (९८) ने आपकी बड़ी सेवा की और हर तरह से चित समाधि पहुचाई। आपका संथारा सं० १८८७ की द्वितीय वैशाख सुदी चतुर्थी के दिन कटालिया मे पूर्ण हुआ।[4]

सिरियारी कटालीयै कारज सारचा, तपस्या कर देही तोडी रे।
जोताजी वनाजी नदुजी नोजाजी, सेवा कीधी कर जोडी रे॥
जाझो साज दीधो सयम तपरो, चित्त समाधि उपजाई रे।
कष्ट पड्यो पिण न हुई अलगी, च्यार तीर्थ मे शोभा पाई रे॥
आलोवण पडिक्कमणो सुध कीधो, जग माहि शोभा लीधी रे।
च्यार तीर्थ मे हुई सुखकारी, सुध गति पामी सीधी रे॥
सवत अठारै वर्ष सत्यासी, दूजै वैशाख सुद चौथ लीधो रे।
गाम कटालयै भिक्षु जनम्या, जिण मारग यश लीधो रे॥[5]

"कष्ट पड्यो पिण न हुई अलगी"—इन शब्दो मे किसी विशेष घटना की ओर सकेत है। पर आज उसकी जानकारी लुप्त हो चुकी है।

आपने नाना स्थानो मे विचरण कर बहुत जन-कल्याण किया।

आपने आचार्य भिक्षु की ९ वर्ष एव आचार्य भारमलजी की १८ वर्ष सेवा की। मुनि खेतसीजी की भी आपने बहुत सेवा की।

भिक्षु भारीमाल सतयुगी, साधा री सेवा कीधी सुखकारी रे।
विजांजी चारित्र पालता विचरे, घणा प्रतिबोध्या नरनारी रे॥
नव वर्ष आसरै भिक्षुनी सेवा, अठारै वर्ष आसरे भारीमाल रे।
सतयुगी बाल-ब्रह्मचारी सेव्या रे, पाप कर्म पेमालो रे॥[6]

उसके बाद आपको तृतीय आचार्य रायचन्दजी की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनका भी आपके प्रति बहुमान रहा।

आपने स० १८६७ मे संथारापूर्वक मरण प्राप्त किया। आपका संथारा कुशलपुर मे सम्पन्न हुआ।

वनाजी संथारो कीधो कुसलपुरा मे, तपस्या कर तन तायो रे।
संवत अठारै सतसठा वर्षे, जिन मारग दीपायो रे॥[7]

---

१. आचार्य भारमलजी के युग की सती।

२. आचार्य भारमलजी के युग की सती।

३. आचार्य भारमलजी की द्वितीय नोजाजी।

४. ख्यात, क्रम ४०

५. सती गुण वर्णन, ९।१४-१७

६. सती गुण वर्णन, ९।५-६

७. (क) जय (शा०वि०), २।२२ :
वनाजी पादुरा वासी, वर्ष सतसठै सथारो।
(ख) हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सतीमाला, गाथा ५३ :
वनाजी पादुरा सिडसठ साल सथार।
ए तीनू दीक्षा एकण दिन अवधार॥

"तपस्या कर तन तायो रे"—शब्दो से विदित होता हे कि सथारा के पूर्व आपने कठोर तपस्या कर तन को सुखा लिया। उसका विवरण अभी तक अनुपलब्ध है। आपके विषय मे उल्लेख है—

वनांजी सुविनयवती, शुद्ध चरण पालन चित सती।
सुखदायक गण सुविशाली, सती आतम नै उजवाली हो॥[1]

आपने लगभग १५ वर्ष साध्वी-जीवन वहन किया।[2]

---

१ सती गुण वर्णन ६।४। तथा देखिये पण्डित-मरण ढाल, २।६
सरूपाजी सथारो कटाल्ये कीधो, वन्नाजी रो कुसलपुरे सीधो।

२. जय (भि०ज०र०), ५२।६

४१. साध्वी वनांजी

आप पादू (मारवाड़) की निवासिन थी।[1] गृहस्थावस्था मे पति का वियोग हो गया। बाद मे आपने दीक्षा ग्रहण की।

पहले कहा जा चुका है कि आपकी दीक्षा वरजूजी (३९) और वीजाजी (४०) के साथ स० १८५२ पादू मे भिक्षु द्वारा सम्पन्न हुई थी।[2] स० १८५२ फाल्गुण सुदी १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर हैं। अत आपकी दीक्षा उक्त वर्ष मे उक्त तिथि के पूर्व ही सम्पन्न हुई थी।[2] साध्वी मैणाजी ने आपको ज्ञान-दान दिया।[3]

चन्दूजी (१३) ने दोपारोपण करते हुए कहा कि वनांजी कहती थी कि गुमानाजी "सी सी" करती रहती है। उन्हे सी (सर्दी) बहुत लगता है। वनाजी के उपवास के दिन गुमानाजी सामने वाले घर मे गोचरी नही गई।···मार्ग पर गणगणाट करती थी।

वनाजी को ये वाते पढकर सुनायी गयी। अनन्त सिद्धो की आन लेकर सूत्र पर हाथ रखकर वनाजी ने कहा—"मैंने तो इन वातो मे से एक भी वात नही कही। चन्दूजी मुझ पर कलक लगा रही हे। यदि वे सच्ची हो तो यहा आवे। दोनो भिक्षु के सम्मुख साधु और आर्याओं की साक्षी से कडे सौगध करेगी। मुझ पर झूठा दोप मढ कर चन्दूजी मुझे गण से वाहर कराना चाहती है।"

यह स० १८५२ चैत्र वदि १३ की घटना है।[4]

---

१. देखिए—पृ० ६३० पा० टि० ७

२. (क) प्रकरण ३९, पृ० ६२१ पा० टि० २
   (ख) प्रकरण ४०, पृ० ६२७, पा० टि० १

३. प्रकरण ३९, पृ० ६२१, पा० टि० ३

४. लेख १८५२।५४ (२५), १८५२ (२६)

४२. साध्वी वीरांजी

आपकी ससुराल थली के दडीवा गाव मे थी।[1] आप जाति से कुम्हारिन थी।[2] स० १८५२ के फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपके हस्ताक्षर है। आप से प्रव्रज्या मे ज्येष्ठ साध्वी वरजूजी (३९), बीजाजी (४०) और बनाजी (४१) की दीक्षा स० १८५२ मे उक्त लिखित के पूर्व हुई थी। अत यह निश्चित है कि आपकी दीक्षा भी उसी वर्ष फाल्गुन सुदी १४ के पूर्व उक्त साधुओ की दीक्षा के बाद किसी दिन हुई। बाद की अनेक घटनाओ से ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी दीक्षा स० १८५२ के चातुर्मास के बहुत समीप काल मे होनी चाहिए।

साध्वी चन्दूजी (१३) और वीराजी की एक घटना इस प्रकार अकित है—"वीराजी कहती—तू मुझे लाई और चन्दूजी कहती—तू मुझे लाई।"[3] "चन्दूजी ने एक बार उत्तर दिया—मै तुम्हे क्या लाई ? तू उधर से तोड़कर अघा गई तब इनमे आई।"[4] इस वार्तालाप से पता चलता है कि वीराजी पहले बाईस सप्रदाय के किसी टोले मे थी। उसे छोडकर चन्दूजी की प्रेरणा से उनके साथ गण मे दीक्षित हुई थी। बताया जा चुका है कि चन्दूजी स० १८३७ मे गण से दूर कर दी गई थी और उन्होने स० १८५२ मे पुनर्दीक्षा ग्रहण की थी। इस दीक्षा के अवसर पर वीराजी उनके साथ प्रव्रजित हुई।

---

१. ख्यात जाति की कुभारी। गाम दडीवा का। दिक्षा लीधी। प्रकृत अजोग तिण सु टली।

२. (क) जय (भि०ज०र०), ५२।सो०७

वीरा जाति कुभार रे, सजम लीधी स्वाम पै।
प्रकृति अशुद्ध अपार रे, तिण कारण गण सू टली॥

(ख) जय (शा०वि०), २।सो०१४

जाति कुभारी जाण रे, वीराजी दीक्षा ग्रही।
प्रकृत अजोग पिछाण रे, तिण सू छोडी स्वामजी॥

(ग) हुलास (शा०प्र०), सती गुणमाला ३।५३

जाति कुभारी जाण रे, वीराजी दीक्षा ग्रही।
प्रकृति अयोग्य पिछाण रे, तिण सु छोडी स्वामजी॥

३. लेख १८५२।२६ (८), अनु० ५

४. लेख ५२-५४।२५ (५), अनु० १९

भिक्षु ने चन्दूजी, वीराजी से एक लिखित करवाया। उसमें एक करार इस प्रकार है : "थानैं दोया ने जूदी जूदी मेलसा। भेली राखण री वाट जोयजो मती। पछै कहौला म्हानैं भेली राखो जको वात छै कोइ नही।"

दीक्षा के वाद भिक्षु ने वीराजी को साध्वी सदाजी (२१) के साथ रखा। उनके साथ रही तब तक वीराजी बडे अच्छे ढग मे रही। गण मे सुखानुभव करती रही। लोगो मे शोभा प्राप्त की। साध्वियो से वडी प्रीति रखी। परस्पर गुणानुराग रखा। कालान्तर मे भिक्षु ने उन्हे चन्दूजी (१३) के साथ कर दिया। उनकी सगत मे उनके परिणामो मे विकृति आ गई।[2]

साध्वी चन्दूजी (१३) की प्रकृति वहुत षड्यन्त्रकारी थी। स्वच्छन्द प्रकृति की होने से इनके लिए मर्यादा मे रहना असंभव था। प्रतिवन्धो का उल्लंघन करने लगी। ऐसी चेष्टा करने लगी कि वीराजी उनकी चेली हो जाय।

साध्वी चन्दूजी (१३) वीराजी को फटाने की दृष्टि से साध्वियो का अवर्णवाद करने लगी। उनको जव-तव कहने लगी "आर्याओ मे परस्पर ऐसा वैर था तव स्वामी ने मुझे क्यो डुवोया? ये तो वेषधारियो से भी अधिक विग्रहशील है। स्वामीजी को मुझे क्या गरज थी? मुझे मेरे वावा ने डुवो दी। ज्ञातियो ने डुवो दी। ऐसा पता होता तो क्या मै आती? इन साधु-साध्वियो मे किसी मे साधुत्व नही है। हीराजी (२८) ने खाने के लिए पडाव डाल रखा है। वह पाव-पाव घी मे पाच-पाच रोटियां खाती है, इस पर भी विहार नही करती। नित्य पिण्ड के रूप मे पूरी फीणा रोटी लाकर खायी। सिरियारी मे वहने वाते करती है—इनके केवल स्थानक टला है और तो सव दोष वेषधारियो की तरह सेवन करती है। हीराजी (२८) पर स्वामीजी का अनुराग है। चौराहे से चीनी लाती है। शक्कर लाती है। गुड़ लाती है। लूग लाती है।"[3]

साधु-साध्वियो की ऐसी निन्दा सुनते रहने से वीराजी का मन भी सन्देह-संकुल हो गया। भावना मे परिवर्तन आ गया। इस तरह चन्दूजी ने भ्रान्त कर वीराजी के मन पर पूरा आधिपत्य जमा लिया। अव ये भी साधु-साध्वियो के अवर्णवाद करने लगी। दोनो एक हो गई। किसी की आज्ञा नही मानती। दोनो साधु-साध्वियो मे छिद्र जोहती हुई रहने लगी।[4]

वीराजी कहती—"चन्दूजी मेरी गुरुआनी है।" चन्दूजी कहती—"वह मेरी शिष्या है।" एक वार विठोरा गाव से अलग-अलग विहार करने की वात सामने आई तव चन्दूजी वोली. "अपनी शिष्या विना विहार नही करूगी।" वीराजी वोली: "मैं अपनी गुरुआनी चन्दूजी से अलग विहार नही करूगी।"[5] परस्पर सोचती—"अलग-अलग विहार कर दिया तो फिर नही मिलने देगे।"[6]

---

१. लेख ५२-५४।२५ (१) अनु० २
२. वही, २५ (४) अनु० १-२
   सदाजी सात्थे वीराजी नें मेल्या। त्या भेली रही ज्या लगै सुखै २ रही। मांहोमा एक एक रा गुण करता। लोका माहे पिण शोभा हुई। चन्दुजी भेला हु (या) पछै वीराजी रा परिणाम (फिरया)
३. लेख १८५२।२६ (८). अनु० १-४, ८-१०, १२-१४
४. लेख १८५२-५४।२५ (४) २-४,६
५. वही, २५ (४) अनु० ५-७
६. वही, २५ (४) अनु० २१

एक वार वीराजी ने गुमानांजी (३३) से वडे कठोर शब्द कहे "तू सूरीकता है, रैणा-देवी है, अभयी है, दुष्ट जीव है, कसायिन है। तूने मेरी गुरुआनी को वहुत दुख दिया है। जीव आखो मे आ रहा है। ऐसी दुवली कर दी। मेरी गुरुआनी सूत्रो की अध्येता है। अनेक वर्षो की दीक्षित तेरे पैरो मे आ पडी इससे तू अहकार मे आ गई है।"[1]

अपनी मिथ्या निन्दा और इनकी दुराग्रहपूर्ण गुटबन्दी से साध्विया विकल हो गई। भिक्षु के सम्मुख इन्हे तुरन्त गण से अलग करने की वात आ गई।[2]

भिक्षु ने चन्दूजी और आपने जिन-जिन साध्वियो मे दोष वताये, उन सवको वुलाकर सारी वात की जाच-पडताल की। वाते मिथ्या पाई गयी।[3]

भिक्षु ने स० १८५२ फाल्गुण सुदी १४ के दिन एक लिखित किया। इसकी कुछ वाते चन्दूजी के प्रकरण मे दी गई है। उस लिखित का मूल उद्देश्य उस समय की स्थिति को शाश्वत मर्यादाए देकर कावू मे लाने का था। साध्वी चन्दूजी और वीराजी के भी उस पर हस्ताक्षर है। इस लिखित के वावजूद दोनो ने अपनी हरकते नही छोडी।

भिक्षु ने दोनो के सामने सारी वस्तुस्थिति रखी और दोनो को अलग-अलग रखने की वात कही।

चन्दूजी (१३) वहस करने लगी "हम मे क्या दोष है? वीराजी विना मेरा काम नही चलता। मेरा शरीर अस्वस्थ है।" वीराजी वोली "मेरे विना इनका समय आर्त्तध्यान मे वीतता है। साधुत्व का पालन नही होता।"[4]

भिक्षु छोड़ने पर उतारू हुए तव चन्दूजी (१३) वोली "पीपाड जाने पर अलग विहार करूगी। वहा विजयचन्दजी (उनके पिता) कहेगे वैसा करूगी। पीपाड तक आर्या साथ भेजे, पीपाड पहुचकर सलेखना करूगी। वहा से वीराजी को अलग भेजूगी।" आपने भी कहा—"मै भी सथारा करूगी, आर्या को साथ नही भेजेगे तो हम दोनो पीपाड चली जायेगी वहा विजयचन्दजी कहेगे वैसा करेगी। आप होगे वहां पहुचेगी और आप कहेगे उस तरह करेगी।"[5]

चन्दूजी (१३) कहने लगी "आपका मेरे प्रति वैर था। उसका वदला ले रहे है। मुझे छोडने से उपकार घट जायेगा। साध्वी फत्तूजी (१०) की वात लोग नही मानते थे पर मेरी मानेगे। मेरी प्रतीति है। पीपाड जाऊगी। पाली जाऊगी। लोगो से कहूगी। देखे आपकी क्या अच्छी लगती है? देखे आप पीपाड मे क्या उपकार कर लेते है?"[6]

भिक्षु उनकी धमकियो से भय-भ्रान्त नही हुए। उन्हे छोडने पर कटिवद्ध हुए तव रोने लगी। भिक्षु ने उनके इस रुदन पर ध्यान नही दिया और उन्हे स० १८५२ वैशाख सुदी १ के दिन गण से अलग कर दिया।

---

१. लेख १८५२।२६ (६) अनु० १-६
२. लेख वही, ५४।२५ (३) अनु० ८
३. लेख वही, २५ (३) अनु० ४-५
४. लेख वही, २६ (१) अनु० १-३,२१
५ लेख वही २६ (१) अनु० ४-२१
६. लेख वही, अनु० ११,१२-१८

खूबचन्दजी लूणावत ने लिखा है—"स्वामी भीखणजी चन्दू वीरा ने बाजार मे छोडी।"

आचार्य भिक्षु चन्दूजी, वीराजी को छोडने लगे तब चन्दूजी ने कहा था—"म्हानै इण गाव मे छोडो मती। म्हाने मोटे गाव छोडी हुवै तो कोइ थानै म्हानै केनै माहे रखावै।"

वीराजी चन्दूजी (१३) का अनुसरण करती। भोली थी। चन्दूजी का मोह छाया हुआ था। जाने के पूर्व अकेली भिक्षु के पास आई और एकान्त मे रुदनपूर्वक आत्मालोचन करते हुए बोली

"मैने फूलाजी (२२), सदाजी (२१), अजबूजी (३०) का जितना अविनय किया वह केवल चन्दूजी (१३) के कहने से। उन्हे मेरी वार-वार वंदना कहे। वे मुझे क्षमा प्रदान करे। सर्व आर्याओ को क्षमत क्षमापना और वन्दना कहे। मैने विना देखे चन्दूजी (१३) के कहने और वहकाने से उनमे दोष वताये। मै आपके टोले के किसी भी साधु-साध्वी मे दोष नहीं समझती, सवको अच्छा समझती हू। हममे साधुत्व और सम्यक्त्व दोनों ही नही है। मैं जीऊंगी तव तक टोले के साधु-साध्वियो के जरा भी अवगुण नही बोलूगी। गण की साध्विया महान् है। इनमे अवगुण नही है। चन्दूजी (१३) ने साधु-साध्वियो से मन फेरकर उनमे अवगुण वताये। उससे मैने साधु-साध्वियो मे अवगुण समझा। मैं तो वडे सात-सुख से टोले मे रही। मै हाथी छोडकर गधे पर चढ रही हू। मै रत्न छोडकर ककड ग्रहण कर रही हूं।"[१]

इस तरह वीराजी ने वहुत पश्चात्ताप किया। साधु-साध्वियों मे गुण देखे। उन्हे अपने दुर्गुण दिखाई दिये। वहुत रोयी। आखे भर-भर कर रोयी। लगा सरल परिणाम से आलोचना की है।[२]

इस प्रकार आलोचना करने के वाद भी वीराजी चन्दूजी के साथ चली गयी। वोली "मारै महामोहणी कर्म वधीयौ छै। मासू यारो सग छूटे नही। मारै न यारै भेला कर्म वधाणा दीसै छै। तिण सू या लार जाऊ छू। दुष भोगू छू।"[३]

जाते समय कह गई 'मेरे और उनके सम्मिलित कर्म वधे हुए है, इससे उनका संग नही छूटता। वसतमाल की तरह सम्मिलित कर्म वधे है। मैं आपके, साधु-साध्वियो के किसी के भी अवगुण नही करूगी। मै अवगुण कहू तो अपनी मा की जायी नही। जो अवगुण कहेंगे उन्हे मना करूगी। मै साथ जा रही हू। पर अपनी समझेगे। आप साधुओं को महापुरुष समझती हू। साध्वियो को महा साध्विया समझती हू। सव को अच्छा समझती हू। मेरे कर्म उदय मे आए है इससे इनके साथ जाती हू।"[४]

ये वाते एक वार नही, कई वार कही। रोते-रोते वार-वार कही।

ऐसा होते हुए भी चन्दूजी के साथ अवर्णवाद करने मे शामिल रही।

---

१. (क) लेख ५२-५४।२५ (२) अनु० १-५,८-१०,१२
   (ख) लेख १८५२।२६ (३) अनु० १-८
२ वही, २५ (२) अनु० ११-१७
३. वही, २५ (२) अनु० ६-७
४ लेख १८५२।२६ (३) अनु० ३-४,६-६

भिक्षु ने स० १८५४ के खैरवा चातुर्मास मे एक पद्यात्मक कृति की रचना कर दोनो को वहिष्कृत करने के वास्तविक कारण को वताते हुए उनके भ्रामक प्रचार से वचने के लिए श्रावको को सावचेत किया। इस कृति की कुछ गाथाए चन्दूजी के प्रकरण मे उद्धृत की जा चुकी है।

उक्त चातुर्मास के वाद शेपकाल मे भिक्षु पीपाड पधारे। मुनि हेमराजजी साथ थे। वहा चन्दूजी, वीराजी भी पहुंची। उनके अवर्णवाद का भिक्षु ने जो उत्तर दिया, उसका उल्लेख भी उक्त प्रकरण मे आ चुका है।

वीराजी के जीवन-वृत्तान्त चन्दूजी के साथ जुडे हुए है अत. यहा उनके प्रकरण को भी पढ लेना चाहिए।

४३. साध्वी उदांजी

आप जाति से स्वर्णकार थी। आपने अनेक वर्षो तक चारित्र का पालन कर अन्त मे आमेट मे सथारा किया

उदाजी उद्यमवती, सती जाति सोनार सोहती।
वहु वर्षा चरण सुविचारो, आंवेट माहे सथारो हो॥[1]

आपके सम्वन्ध मे ख्यात मे लिखा है—"वडी उद्यमवत सती हुई।"

स० १८५२ फाल्गुन सुदी १४ के लिखित मे आपकी सही नही है। अत आपकी दीक्षा उसके वाद हुई प्रतीत होती है। आपके वाद की साध्वी झूमांजी (४४) की दीक्षा सं० १८५६ मे हुई थी। उससे फलित होता है कि आपकी दीक्षा स० १८५२ फाल्गुन सुदी १५ और सं० १८५६ मे झूमाजी की दीक्षा की मध्यावधि मे कभी हुई।

आचार्य भिक्षु के देहान्त के समय विद्यमान साध्वियो मे आपका नाम प्राप्त है। अत. आपका देहान्त भिक्षु के वाद हुआ था, इसमे सदेह नही है।

आपका नाम स० १८७८ माघ कृष्णा ८ तक देहान्त प्राप्त साध्वियो की सूची मे है।[2] अत देहान्त आचार्य भारमलजी के युग मे घटित हुआ, उसमे भी सदेह नही है।

भिक्षु के स्वर्गवास एव मुनि डूगरसीजी (४३) के देहान्त की मध्यावधि मे १७ सथारे हुए थे, जिनमे आपका नाम आया है। अत. आपका देहावसान सं० १८६० भादवा सुदी १३ और स० १८६३ जेठ सुदी ७ के वीच कभी हुआ था।

---

१. जय (भि० ज० र०), ५२।११
इसी वात को शव्दान्तर के साथ जय (शा० वि०), २।२३ मे इस प्रकार कहा गया है
जात सुनार प्रकृति शुद्ध जेहनी, सयम वहु वर्ष पाली।
शहर आमेट सखर सथारो, उदा आतम उजवाली॥
तथा मिलाइए—हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला ५४
उदां सोनारी सयम वहु पालत, आमेट सथार आतम उजवालत॥

२. पण्डित-मरण ढाल, २।९

४४. साध्वी झूमांजी

आप जाति मे पोरवाल थी। आपका ससुराल नाथद्वारा (मेवाड) मे था। आप स० १८५६ मे दीक्षित हुई।[1] दीक्षा के पूर्व पति-वियोग हो चुका था।

स० १८६० भादवा सुदी १३ के दिन सिरियारी मे आचार्य भिक्षु का सथारा सम्पन्न हुआ। उस दिन प्रात. सूर्योदय के लगभग डेढ प्रहर वाद भिक्षु ने कहा "साधु आ रहे हैं, उनके सामने जाओ। साध्विया भी आ रही है।" इस वाणी के लगभग एक मुहूर्त्त वाद चातुर्मास स्थल पाली से चले दो साधु मुनि वेणीरामजी और कुशालजी ने आकर भिक्षु के दर्शन किए। लगभग दो मुहूर्त्त वाद साध्वी वगतूजी (२७), आप (झूमाजी) और डाहीजी (५५) पहुची और दर्शन किए।[2]

वेणीरामजी साध वदीता, साथे कुसालजी आया।
साधवीया वगतूजी झूमा डाहीजी, प्रणमे भीखू रा पाया ॥[3]

इस घटना से इस वात का पता चलता है कि स० १८६० मे आप साध्वी वगतूजी (२७) के सिघाडे मे थी। उक्त वर्ष का चातुर्मास खैरवा मे वताया जाता है। वही से चलकर तीनो साध्वियां सिरियारी पहुची थी।

---

१ (क) जय (शा० वि०), २।२४

छप्पनैं वर्ष श्रीजीद्वारा ना, हर्ष धरी दीक्षा लीधी।
वगड़ी मे सथारो शुभ चित्त, सती झुमाजी हद कीधी ॥

(ख) ख्यात घणा वरस पाल आत्म उजवाल वगडी मैं सथारो कीयो।

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला ५५

झुमा श्रीजीद्वार ना पोरवाल पहिचाण।
वहु हठ थी आज्ञा सयम छप्पन लियाण ॥
वहु वरस चरण धर सखर वडी गुरु आण।
जिण अत सलेपण वगडी शहर कराण ॥

२. हेम (भि० च०), १०।१, ३, ५

३. वही, १०।६

आपने वगडी मे सथारा कर आत्मार्थ साधा।[1] जय (भि० ज० र०), ५२।१२ में उल्लेख है—

झुमाजी जाति पोरवाल, श्रीजीद्वारा ना सार।
छप्पनै वर्ष सजम लीधी, स्वाम पछै संथारौ सिद्धौ हो॥

'स्वाम पछै सथारौ सिद्धौ हो' शब्दो से लगता है जैसे आपका स्वर्गवास भिक्षु के स्वर्गवास के बहुत ही समीपवर्ती काल मे हुआ हो, पर बात ऐसी नही है। वास्तव मे आपका स्वर्गवास स० १८९६ फाल्गुन सुदी ११ के बाद उसी वर्ष अथवा स० १८९७ की समाप्ति के कुछ पूर्व हुआ था। उक्त बात निम्न तथ्यो से फलित होती है

१. जयाचार्य ने स० १८७९ भाद्र शुक्ला ७ के दिन रचित अपनी एक कृति मे आचार्य भारमलजी के दिवगत होने तक स्वर्गवास हुई साध्वियों का उल्लेख किया है। उन चारित्रात्माओं मे आपका नाम नही पाया जाता। इससे इतना तो फलित हो ही जाता है कि आप आचार्य भारमलजी की स्वर्गवास तिथि स० १८७८ माघ कृष्णा ८ के उपरात विद्यमान थीं।

२ साध्वी मगदूजी (१०२) गुण-वर्णन ढाल (दो० १, २)[2] मे उल्लेख है कि उनकी दीक्षा साध्वी वगतूजी (२७) द्वारा सम्पन्न हुई थी। साध्वी मगदूजी को ३६ वर्ष ६ दिन जितने लम्बे साध्वी-जीवन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।[3] इनका देहान्त स० १९१५ चैत्र शुक्ला ६ के दिन हुआ। इससे मगदूजी की दीक्षा स० १८७९ चैत्र कृष्णा १ के दिन की ठहरती है।[4]

उक्त कृति मे यह भी उल्लेख है कि साध्वी वगतूजी (२७) के देहान्त के बाद साध्वी मगदूजी (१०२) ने आप (झूमाजी) की सेवा की।[5]

इससे दो बाते फलित होती है

१ आप साध्वी मगदूजी (१०२) की दीक्षा तिथि अर्थात् स० १८७९ चैत्र कृष्णा १ तक विद्यमान थी।

२ साध्वी वगतूजी (२७) के बाद आप (झूमाजी) को सिघाडपति किया गया और साध्वी मगदूजी (१०२) आपके साथ रखी गई।

ख्यात मे उल्लेख है कि स० १८९६ फाल्गुन सुदी ११ के दिन 'झूमाजी द्वारा चंदणा' (१६५) की दीक्षा हुई। आपके अतिरिक्त अन्य दो झूमाजी का उल्लेख पाया जाता है :

---

१. देखे—पूर्व पृष्ठ, पा० टि० १ (क) (ख)
हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला ३।५५ मे सलेपणा का उल्लेख तो है पर अन्त मे सथारा किया, ऐसा उल्लेख नही है। देखिए—पा० टि० १ (ग)।

२. प्र० २७, पृ० ५८८, पा० टि० २ मे उद्धृत।
ख्यात मे उल्लेख है कि साध्वी मगदूजी (१०२) को आप (झूमाजी) ने दीक्षित किया था पर पूर्वोक्त मगदूजी की ढाल मे यह बात अतथ्य ठहरती है। मगदूजी की दीक्षा आप द्वारा नही साध्वी वगतूजी (२७) द्वारा हुई थी।

३. सु० चरण वर्ष छतीस सुपालीयो रे, ऊपर षट् दिन अधिक उदार रे।
सु० उगणीसैं पनरैं चेत मास मे रे, कृष्ण पख छठ गुरुवार रे॥

४. ख्यात मे यही दीक्षा तिथि प्राप्त है।

५. मगदूजी गुण वर्णन ढा०, ३।दो० ३

१. आचार्य भारमलजी के युग मे दीक्षित साध्वी झूमाजी (५८)।

२. आचार्य ऋषिराय के युग मे दीक्षित साध्वी झूमांजी (१०३)।

प्रथम साध्वी झूमांजी (५८) का देहान्त स० १८८२ मे ही हो गया था। अत. उनके द्वारा चन्दनाजी (१६५) की दीक्षा का प्रसंग नही घट सकता।

द्वितीय साध्वी झूमाजी (१०३) की अग्रगामिनी होने की कोई घटना नही मिलती। स० १९१६ मे ये साध्वी सिणगाराजी (२८०) के सिघाडे मे देखी जाती है.

कोसम्बी चिउ ठाण सिणगारां, वर झूमा साकर ताहि।
दशम-दशम तप च्यारा कीधो, गणी सेवा अधिकाय॥[1]

सरल भद्र सुखदायजी, वगतूजी नी सेव।
पाछै झूमाजी तणी, सेव करी नित मेव॥

अत इन झूमाजी (१०३) द्वारा चन्दनाजी (१६५) की दीक्षा सम्भव नही।

उक्त दो झूमाजी (५८ और १०३) के अतिरिक्त तीसरी झूमाजी आप ही है। अन्य कोई झूमाजी नामक साध्वी स० १८९६ तक नही हुई। अत ख्यात का उल्लेख ठीक हो तो साध्वी चन्दनाजी (१६५) की दीक्षा आप ही के द्वारा सम्पन्न हुई कही जा सकती है।

इससे फलित होता है कि आपका देहावसान स० १८९६ फाल्गुन सुदी ११ के पूर्व नहीं हुआ।

ख्यात के अनुसार साध्वी मगदूजी (१०२) द्वारा स० १८९७ मे दो दीक्षाए सम्पन्न हुई। एक, साध्वी श्री हरखूजी (१७४) की और दूसरी उमाजी (१७५) की। इससे उनके सिघाडपति होने का समय स० १८९६ फाल्गुन सुदी ११ के बाद और स० १८९७ मे दो दीक्षा होने के बीच की अवधि मे ठहरता है।

इससे फलित होता है कि आप (झूमाजी) का स्वर्गवास या तो स० १८९६ फाल्गुन सुदी ११ के बाद उसी वर्ष मे हुआ अथवा स० १८९७ की समाप्ति के कुछ अर्से पूर्व। इस सारे विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आपका साध्वी-जीवन लगभग ४० वर्ष जितना दीर्घ रहा। आचार्य भिक्षु के देहान्त के लगभग ३६ वर्ष बाद आचार्य ऋषिराय के युग मे आपने सथारापूर्वक पण्डित-मरण किया।

१. आर्या दर्शन, ९।३०

४५. साध्वी हस्तूजी

आपके पिता का नाम जगु गाधी था, जो पीपाड (मारवाड) के रहने वाले थे। आपकी माता का नाम वदूजी था। आपकी छोटी वहन का नाम कस्तूजी था। दोनो ही वहनें वडी सुन्दर और बुद्धिमती थी। माता-पिता ने योग्य वर ढूढकर दोनो का विवाह किया। दोनों पीपाड के एक मुहता परिवार मे व्याही गई थी। ससुराल हर तरह से सम्पन्न था। ससुराल वाले लक्षाधिपति थे। वे लोहडा साजन थे।[1]

धनाढ्य कुल की वहुए होने पर भी दोनो वहने खाने-पीने और पहनने-ओढने के विषय मे निस्पृह थी। दोनो की चित्तवृत्ति वैराग्यमय थी। सासारिक वातो मे उन्हे रस नही था।

---

१ (क) हस्तूजी कस्तूजी रो पचढालियो, १।दो० १-५

चेली भिक्षु स्वाम री, ज्ञान कला गुण धार।
सगी सहोदरी सुन्दरी, प्रगटी शहर पीपाड ॥
जनक जगूजी जाणिये, गाधी जात गुणवत।
मात वदूजी जाणिये, पुत्री दोय पुनवंत ॥
हस्तूजी हद गुण भरी, कस्तूजी कुलवंत।
परणावी अति प्रेम स्यू, सुन्दर वर सोभत ॥
मूहता मोखमदासजी, मोटरमल मतिवत।
ए दोनू वर दीपता, विहु वहिना बुधिवत ॥
ऋध सपत घर मे घणी, लखेस्वरी कहिवाय।
भाग्यवत विहु भामणी, दिन-दिन रही दीपाय ॥

(ख) सती गुण वर्णन, १४।दो० १

हस्तु कस्तु वहिनडी, सती शिरोमणि सार।
सुता जुग गाधी तणी, वसुधा यश विस्तार ॥

(ग) जय (भि० ज० र०), ५२।१४ :

ससार नेखै शोभाया, लखपती ल्होडै सजनाया।
मतिवत हस्तु महि मडी, लीधी चरण पिउ सुत छडी हो ॥

(घ) ख्यात, ४५ ससार म लखपति न्यातीला

उनकी अभिरुचि गृह-जीवन का त्याग कर संयममय साध्वी-जीवन यापन करने की ओर झुकी हुई थी।[1]

जगु गांधी ने स० १८४५ के चातुर्मास मे आचार्य भिक्षु से श्रद्धा ग्रहण की थी।[2] दोनो बहनें स्वाभाविक रूप से आचार्य भिक्षु के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थी।

हस्तूजी के पति का नाम मोखमदासजी मूहता था।[3] आपके दो पुत्र थे। बडा पुत्र अमीचन्द छ. वर्ष का था और छोटा पुत्र खूवचद केवल १६ महीने का।[4]

उक्त स्थिति मे भी आपके मन मे सयम लेने की भावना अति तीव्र हो चली। आपने अपना विचार ज्ञातियों के सम्मुख रखा और प्रव्रज्या के लिए अनुज्ञा देने का अनुरोध किया। घर वालो ने आज्ञा देना अस्वीकार कर दिया। इतना ही नही, आपको विचलित करने के अभिप्राय से अनेक प्रकार के कष्ट देने लगे,[5] पर इससे आपका सयम ग्रहण करने का विचार दृढ मे दृढतर होता गया। अन्ततोगत्वा घर वालों को आपकी दृढ वैराग्य-भावना के सम्मुख झुकना पडा। छ महीनो तक कष्ट सहने के वाद आपको दीक्षा लेने की आज्ञा प्राप्त हुई।[6]

आज्ञा प्राप्त होते ही आपने पति, दो पुत्र तथा सास, श्वसुर, जेठ, देवर आदि सारे परिवार वर्ग को छोडकर साध्वी-जीवन अगीकार किया। मोह को जरा भी स्थान नही दिया।[7]

---

१. हस्तुजी कस्तुजी रो पचढालियो, १।६
खावा पीवा ने पहिरवा रे लाल, हुम नही मन माय।
मन लाग्यो शिव मोक्ष स्यू रे लाल, अवर न आवै दाय॥

२. जय (भि० दृ०), दृ० १६

३. देखिए—पूर्व पृष्ठ, पा० टि० १ (क) दो० ४

४. हस्तूजी कस्तूजी रो पचढालियो, १।४
पट वर्ष रे आसरै रे लाल, अमीचन्द वड पूत।
खूबचन्द सोलै मास नो रे लाल, छोड्या सहु धर सुत॥

५ (क) जय (भि० ज० र०), ५२।१५
दु.ख घर का वहुलौ दीधौ, सती अडिग पणै व्रत लीणौ।
सताणुवै लाहवै सथारो, हस्तु गुण ज्ञान भण्डारी ही॥

(ख) ख्यात, क्रम ४५ न्यातीला आज्ञा वडी दोरी दीधी

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्खु सती माला, ५८-५६
पीपाड ना वासी सासरिया ऋद्धवत, हस्तुजी आज्ञा वहु कष्ट करियन।
द्वय पुत्र पीउ तज उत्तम चरण गहाण, भण गुण यथा भारी हिम्मत धर अधिकाण॥

६. हस्तुजी कस्तुजी रो पचढालियो, १।१-२
पट् मासे लग खप करी रे लाल, मासू सुसरा सोय।
जेठ देवर सहु सासर्‌या रे लाल, अति ही उदासी होय॥
दियो आदेश दिख्या तणो रे लाल, पूरी मन री आश।

७ (क) वही, १।३
धन-धन लोक कहे घणा रे लाल, प्रीतम नै सुत दोय।
सर्व कुटव छिटकावता रे लाल, मोह न आण्यो कोय॥

आपकी दीक्षा सं० १८५७ में पीपाड (मारवाड) मे साध्वी श्री हीराजी के द्वारा सम्पन्न हुई थी। आपकी छोटी वहन हस्तुजी की दीक्षा भी उन्ही के हाथ से ही वही हुई।[1] दोनो दीक्षाए एक ही दिन सम्पन्न होने पर भी क्रम मे आप दोनों के वीच साध्वी खुशालाजी का नाम है, जिनकी दीक्षा स० १८५७ चैत्र शुक्ला १५ को हुई थी। निम्न विकल्प सम्भव है :

१ तीनो की दीक्षा चैत्र शुक्ला १५ को हुई। वडी दीक्षा के समय क्रम—साध्वी हस्तुजी, खुशालाजी, कस्तूजी—इस तरह रखा गया।

२. दोनो वहनो की दीक्षा चैत्र पूर्णिमा के कुछ पहले हुई। वडी दीक्षा मे उपर्युक्त क्रम रखा गया।

३. दोनो वहनो की दीक्षा चैत्र पूर्णिमा के वाद हुई, पर वडी दीक्षा मे उपर्युक्त क्रम रखा गया।

स० १८५७ मे साध्वियों की पाच दीक्षाए हुई थी। उनका क्रम अन्यत्र इस प्रकार प्राप्त है

> एक वर्ष माहे थई रे, पीउ छांड व्रत धार।
> श्रमणी पच मुद्रा सोहती, ए तो सासण री सिणगार ॥
> हस्तु कस्तु भगनी वेहू रे, खुसाला ऋपराय नी माय।
> जोता नौरा नो जश घणो, पांच पीउ छाउ व्रत पाय ॥[2]

(ख) देखिए—पृ० ६४२ पा० टि० १ (ग)

(ग) जय (शा० वि०), २।२६

लखपति सासारिक लेखैं कहियैं, पिउ वे सुत प्रते तज दीधा।
सताणुए लखैं सथारो, वड हस्तु कारज सीधा ॥

(घ) ख्यात क्रम ४५

पिउ वेटा २ परिवार छोडनै दीक्षा लीधी।

१ (क) सती गुण वर्णन, ४६।२

हस्तु कस्तु भगिणी भणी रे, हीराजी दीयो सयम भार रे।
लौकिक माहे लखी रे, छोड्यो पुत्र पिउ धन सार रे ॥

(ख) वही, १२।१

हीराजी हस्तु कस्तु भणी रे, दीधो संयम भार।
लखेसरी लौकिक मांहि कहै रे, छाउ पुत्र पिउ सार ॥

(ग) हस्तुजी कस्तुजी रो पचढालियो, १।दो० ६

समत अठारै सत्यावने, सती वैराग्ये आय।
सजोग मे चेती सती, छता भोग छिटकाय ॥

(घ) वही, १।२

हीराजी हाथे लियो रे लाल, चारित्र चित्त हुलास।

ख्यात मे दीक्षा भिक्षु द्वारा लिखी है—"दीक्षा लीधी स० १८५७ भिक्षु कनी।" पर यह ठीक नही है।

२. जय (ऋ० रा० सु०), ४।२-३

इससे स्पष्ट हो जाता है कि दीक्षा मे दोनो वहने खुसालाजी से वड़ी थी, पर वडी दीक्षा मे कस्तूजी से खुसालाजी को वडा किया गया। इस तरह उक्त विकल्पो मे द्वितीय विकल्प ही ठीक प्रतीत होता है।

दोनो ही वहने ज्ञान प्राप्त कर विख्यात हुई। दोनो ही अत्यन्त गुणवान थी। भोगों को विष सम जान सयम मे रमण करती रही।[1]

आगे चलकर दोनो बहनो का अलग-अलग सिंघाडा कर दिया गया।[2] तो भी दोनो साथ ही विचरती रही।

दोनो बहनो की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धि स० १८६१ मे साध्वी आसूजी को दीक्षा देना रहा, जो आचार्य भारमलजी के शासन-काल की पहली साध्वी थी और जिन्होंने २० वर्ष की युवावस्था मे दीक्षा ग्रहण की थी।

हस्तु कस्तु उपगार आछो कीयो रे, आसूजी ने सयम दियो सार।
या पिउ छाड व्रत आदर्‌यो रे, उ पिण हीरां सती रो उपगार॥[3]

स० १८६९ के जयपुर के चातुर्मास के वाद शारीरिक अस्वस्थता के कारण आचार्य भारमलजी शेषकाल मे भी कुछ समय तक जयपुर ही विराजे। उस समय एक दिन साध्वी अजवूजी मुनि सरूपचन्दजी को विविध रूप से उपदेश दे, चारित्र ग्रहण करने की प्रेरणा दे रही थी। आपने सरूपचन्दजी को सम्वोधित कर कहा "घर मे रहने का त्याग कर बुआ को यश दो।" इस पर सरूपचन्दजी ने डेढ महीने की अवधि के वाद घर मे रहने का त्याग किया :

भूआ तीन भाया तणी, अजवू नाम उदारी हो।
चौमालिसे चारित्र लियो, दियो उपदेश उदारी हो॥
वारू विविध प्रकारी हो॥

---

१. हस्तुजी कस्तुजी रो पचढालियो, १।७
भणी गुणी पडित थई रे लाल, गुण गिरवी विहू वैंन।
भोग जाण्या विप सारखा रे लाल, पाई चारित्र मे चैन॥

२. वही, २।दो० १
सतगुरु सिघाडा किया, विहु वाया ना दोय।
सता की सेवा किया, कमी रहै नही कोय॥

३. सती गुण वर्णन, ४६।३। तथा
(क) वही, १२।२
हस्तु कस्तु दोनू वहिनडी रे, कीयो घणो उपकार।
आसूजी नै सयम आपीयो रे, इण पिण छोड्‌यो पिउ धन सार॥
(ख) आसूजी गुण वर्णन ढाल, गा० १-३
समत अठारै इकसठै, सजम लीधो हो ए तो शहर पीपाड।
हस्तुजी वडा रै हाथी करी, वीस वर्प नी हो आमरे वय धार॥
घर सासरिया मे ऋद्ध सपत घणी, पियर मे पिण हो धन वहुत वखाण।
भरतार छोडी पूज भेटीया, सुखदाइ हो सुवनीत सुजांण॥
पूज भारीमाल पाट वैठा पछै, प्रथम सिखणो हो आसूजी पुनवान।
सूत्र सिद्धत सिखे सुविनय करी, छिम्यावती हो लाजवती गुणखांण॥

हस्तु सती उपदेश दे, सरूपचन्द ने तिवारी हो।
दे तू जश भूवा भणी, मान वचन हितकारी हो।।
कर ले वधो उदारी हो।।
वयण सुणी सतिया तणा, पाया प्रेम अपारी हो।
ततक्षिण तया वध्यो कियो, सजम नो सुविचारी हो।।
दोढ मास हद धारी हो।।[1]

इस तरह मुनि सरूपचन्दजी के दीक्षित होने मे आप निमित्त वनी थी।

साध्वी श्री नगाजी (७६) की दीक्षा साध्वी आसूजी (५७) द्वारा स० १८६९ आपाढ सुदी ५ के दिन वागोट मे सम्पन्न हुई थी। वाद मे साध्वी नगाजी आपको सौप दी गई[2]। और अन्त तक आपके सिघाडे मे रही।

स० १८७४[3] मे साध्वी हस्तुजी का चातुर्मास उदयपुर मे था। वहा श्रावक जैचन्दजी और दलीचन्दजी पोरवाल थे। दोनो भाई थे। द्वेपी लोगो ने महाराणाजी को वहका दिया। महाराणाजी ने आपको वहा न रहने का हुक्म दे दिया। साध्विया वैदले चली गयी। वाद मे जैचन्दजी ने महाराणा मे सही हकीकत अर्ज की। इस पर उन्होने हुक्म वापस ले लिया। तव साध्वियो को अर्ज कर वापस लाए।[4]

आपका साध्वी-जीवन वडा ही निर्मल था। आप पाच समिति और तीन गुप्तियो को शुद्ध रूप से पालन करने मे वडी निपुण थी। सयम-क्रिया मे दृढ थी। आर्त्तध्यान और विकथा को छोडकर धर्म-ध्यान मे लीन रहती। जीवन अत्यन्त वैरागी था। आप गावो और नगरो मे विचरती हुई प्रभावशाली धर्मोपदेश देती। इस तरह स्वय का कल्याण साधते हुए अन्य लोगो का भी आत्मोद्धार किया। आपका साध्वी-जीवन ४० वर्प जितना दीर्घ रहा। आपके चातुर्मासों का विवरण इस प्रकार है।

---

१. जय (ऋ० रा० सु०), ६।४-६। तथा देखिए—जय (स० न०), ३।१३-१४, मघवा (ज० सु०), ४।३-५।

२. (क) जय (शा० वि०), ४।१५ का वार्तिक हस्तुजी कने रहे।
(ख) नगा सती गुण वर्णन ढा०, गा० ५
सरल भदीक हिया तणी रे, हस्तुजी रे पास हो लाल।
वारू विनय विवेक मे रे, हिवडै अधिक हुलास हो लाल।।

३. मूल मे स० १८७५ है पर आपका उदयपुर चातुर्मास स० १८७४ मे ही हुआ था अत १८७५ के स्थान मे स० १८७४ लिखा है।

४. प्रकीर्ण-पत्र (घटनात्मक), क्रम २०
स० १८७५ उदेपुर हस्तूजी रो चोमासो, जठै जेचन्दजी दलीचन्दजी पोरवाल दोनूइ भाई श्रावक सेवा करै। पछै द्वेष्या म्हास्त्याजी रो नाम लेइ राणाजी नै लगावणी करी जरै राणाजी आर्य्या नै रहिवारो ना कह्यो। पछै वैदलै गया। पछै जेचन्दजी राणाजी नै अरज करी पाछा सत्या नै ल्याया।

१.	१८५८	देवगढ		२१.	१८७८	राजनगर	(मेवाड)
२.	१८५९	देवगढ		२२.	१८७९	पीपाड	(मारवाड)
३	१८६०	पीपाड	(मारवाड)	२३.	१८८०	पादू	,,
४.	१८६१	पीसागण	,,	२४	१८८१	वलूदा	
५.	१८६२	रीया		२५.	१८८२	सिरियारी	(मारवाड)
६.	१८६३	जेतारण		२६.	१८८३	रीछेड	
७.	१८६४	काकडोली	(मेवाड)	२७.	१८८४	सिवगढ	
८.	१८६५	रावलिया	,,	२८.	१८८५	रावलिया	(मेवाड़)
९.	१८६६	उदयपुर	,,	२९.	१८८६	पुर	,,
१०.	१८६७	समाणगढ		३०	१८८७	पीसागण	(मारवाड)
११.	१८६८	पीपाड	(मारवाड)	३१	१८८८	खाटू	,,
१२.	१८६९	पादू	,,	३२	१८८९	केलवा	(मेवाड)
१३.	१८७०	पीसागण	,,	३३	१८९०	रावलिया	,,
१४.	१८७१	वाजोली		३४.	१८९१	सिरियारी	(मारवाड)
१५.	१८७२	राणावास		३५.	१८९२	तिलोडी	
१६.	१८७३	माढा		३६.	१८९३	पादू	,,
१७.	१८७४	उदयपुर	(मेवाड)	३७.	१८९४	डवा	
१८.	१८७५	लाहवा		३८.	१८९५	सिहोदा	
१९.	१८७६	उज्जैन		३९.	१८९६	केलवा	(मेवाड)
२०.	१८७७	नोलाई		४०.	१८९७	लाहवा[1]	

१. हस्तूजी कस्तूजी रो पचढालियो, २। गा० ३-९

चालीश वर्ष रै आसरै, पाल्यो सजम भारो रे।
उपगार कियो सती अति घणो, तार्‌या वहु नर नारो रे॥
किया चौमासा सती प्रथम तो, देवगढ माही दोयो रे।
पीपाड पीसागण मे पाचमों, रीयां जेतारण मे जोयो रे॥
काकडोली कर रावलिया, उदियापुर अति नीको रे।
दसमो समाणगढ मे कियो, ते पीपाड नजीको रे॥
पादू पीसांगण शहर मे, वाजोली ने राणावासो रे।
मांढे उदियापुर मे महासती, ल्हावै लागो चौमासो रे॥
उजेण नोलाइ मे वीसमो, राजनगर पीपाडो रे।
पादू वलूदे वहु तारिया, सिरियारी एक सुखकारो रे॥
रीछेड शिवगढ नै रावल्या, पुर पीसागण ठायो रे।
खाटू कैलवे नै रावल्या, सिरियारी सुख पायो रे॥
तीलोडी पादू मे छतीसमो, इडवै अधिक उमंगो रे।
सिहोदै नेवली कैलवै, ल्हावै लागो छै रगो रे॥

आपका जीवन वडा तपस्वी था। आपकी तपस्याओ का वर्णन नीचे दिया जाता है

१ स० १८७६ के चातुर्मास तक निम्न प्रकार तपस्या की

१. तीन दिन
२. पद्रह दिन
३. नौ दिन
४. पाच दिन
५ सात दिन
६. आठ दिन
७ ग्यारह दिन
८ नौ दिन
९. चवदह दिन
१०. पाच दिन
११ पाच दिन
१२. चार दिन
१३. चार दिन
१४. चार दिन
१५. चार दिन
१६. नौ दिन
१७. आठ दिन
१८. छह दिन
१९. तीन दिन
२०. तीन दिन
२१ आठ दिन
२२. दो दिन
२३ तीन दिन[1]

उक्त विवरण के अनुसार साध्वी हस्तुजी ने सर्व २३ तपस्याए की, जिनके अन्तर्गत १८ थोकडे किए। ढाल मे २२ तपस्याओ मे १८ थोकडे करने का उल्लेख है।

२ अठावीस वर्ष तक चातुर्मासो मे दो मास का एकातर तप किया।[2]

३. शीत काल मे शीत सहन किया। केवल एक चद्दर ओढती रही। ऐसा १२ वर्षो तक किया।[3]

---

१. हस्तूजी कस्तूजी रो पचढालियो, ३।१-४

हिवै तपस्या करी ते साभलो, लीज्यो थेट स्यू लेखो रे।
प्रथम तेलो पनरै किया, नव दिन कर पाच पेखो रे॥
सात आठ इग्यारै किया, नव कर चवदै धारो रे।
पाच-पाच ना थोकडा, च्यार-च्यार किया सुखकारो रे॥
नव दिन कर अठाई करी, खट दिन स्यू घर खंतो रे।
दोय तेला अठाई करी, मेटी मन नी भ्रांतो रे॥
वेलो कर तेलो कियो, सर्व धरै बाइसो रे।
अठारा थोकडा आचिया, पूरी मन जगीसो रे॥

२. वही, ३।५.

चोमासे मे दोय मास ना, एकातर एक धारो रे।
अठाईस वर्ष रे आसरै, कदेय न लोपी कारो रे॥

३. वही, ३।६

सियालै मे वहु सी खम्यो, एक चदर ओघारो रे।
वारै वर्प लग इण विधै, करणी कीधी सारो रे॥

४. सं० १८७६ के शेषकाल में आपने उपवास, वेला, तेला की तपस्या एव एक षट् दिन की तपस्या की।[1]

आपका अन्तिम चातुर्मास स० १८९७ में लावा सरदारगढ मे था। विशेष समय तप-जप मे लगाया। ऊणोदरी तप करती रही। शरीर को माया रूप समझ, ससार को असार मान, अपनी आत्मा को वश मे कर अन्न से रुचि हटा ली। सम्वत्सरी के दिन आपने उपवास किया। वाद मे तेरस तक विशेष आहार ग्रहण नही किया।

भाद्र शुक्ला १३ के दिन आपने यह निश्चय किया कि अव आहार नही करूगी। रात्रि मे आपने चारो आहार का त्याग कर सथारा ग्रहण कर लिया और वाद मे साध्वियो से यह वात कही।

इस विवरण के अनुसार आपको डेढ प्रहर का संथारा आया।

दूसरे विवरण के अनुसार आपने डेढ़ प्रहर रात्रि वीतने पर सथारा किया, अर्द्ध रात्रि मे सम्पूर्ण हुआ।

नीचे सथारा विषयक दोनो विवरण प्रस्तुत किए जा रहे है·

१. चालीस वर्ष रे आसरै, सयम पाल्यो सार।
विचरत-विचरत आविया, मेवाड देश मझार॥
अणोदरी अधिकी करी, सलेखना मुध रीत रे।
महाव्रत आरोपी करी, खमत खामणा धर प्रीतो रे॥
चौथ भगत कीधो सती, सवछरी नो सोय रे।
पछै आहार वहु ना लीयो, तेरस तांइ जोय रे॥
सतीयां नै भाखै सती, छेहडैं मन सू कर सथार रे।
भव कल्याण करण तणा, एहवी गाढी धार रे॥
सतीया ने कहै रात्रि ना, म्हैं कर दीधो सथार रे।
आसरै दोढ पहर वीत्या पछै, पहुता परभव मझार रे॥
भाद्रव शुक्ल पक्ष तेरसी, कल्याण सीध कीध रे।
तेहज दिन हस्तु सती, लाहवै लाहो लीध रे॥[2]

२ ल्हावैगढ़ छेहलो कियो, चोमास घर चूपो रे।
तप जप खप करणी करी, आछी रीत अनूपो रे॥

---

१. हस्तुजी कस्तूजी रो पचढालियो, ३।७ :
उपवास वेला तेला किया, सेखे काल मजारो रे।
थिर मन खट दिन ठाविया, उजल भाव उदारो रे॥

२. सती गुण वर्णन, १४।६-१४
हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, ६० मे सलेषना का तो उल्लेख है, पर पूर्णाहुति सथारे के साथ हुई ऐसा उल्लेख नहीं :
चरचा यै चातुर देश नय नगर जाण।
अत सलेपणा सत्ताणमैं ल्हावे स्वर्ग लहाण॥

त्याग वैराग्य गुणा तणा, कहिता किम लेऊं पारो रे।
अणोदरी तप आदर्‌यो, जाणी लाभ अपारो रे।।
काया माया जाणी कारमी, जाण्यो जगत असारो रे।
निज आतम ने वस करी, अन्न स्यू भाव उतारो रे।।
भादवा सुद बारस दिने रे, उद्यम अधिको धार।
थिरकर मनडो थापियो रे, अबै नही करणो आहार।।
दोढ़ पोहरै आसरै रे, रात गई तिण वार।
च्यार आहार पचखी कियो रे, सुद्ध मन सथार।।
आधी रात के आसरै रे, सीझ गयो श्रीकार।
सुखै सुखै चलती रही रे, ध्याती सरणा चार।।[1]

सथारे के समय साध्वी श्री नगांजी (७६), मयाजी (८६), दोलाजी (६६) एव नन्दूजी (११७) आपकी सेवा मे थीं। प्रथम तीन साध्वियां आचार्य भारमलजी के युग की एव चतुर्थ आचार्य ऋपिराय के युग की रही।

करी चाकरी चूप स्यू रे, नगाजी चित्त ल्याय।
सतगुरु मुख सोभा लही रे, पडित-मरण कराय।।
मयाजी मोटी सती रे, रही ग्यान गुण पाय।
सूत्र सिद्धात वखाण स्यू रे, हस्तूजी सुख पाय।।
दोलाजी दिल उजलै रे, सेवा सखरी कीध।
चित्तसमाध उपजाय ने जी, महिमा मोटी लीध।।
नदूजी नीकी परै जी, थाप्यो मनडो ठीक।
छोटा मोटा काम मे जी, निस दिन रही नजीक।।
ए मोटी पाचूइ महासती रे, जग माहै जस लीध।
लाभ घणो निरजरा तणो रे, अमृत प्याला पीध।।[2]

आपके व्यक्तित्व के विषय मे जयाचार्य ने लिखा है

वड वैराग दशा घणी, हस्तु गुण नी खान रे।
शील तणो घर शोभती, जाकी कीर्ति जाण रे।।
श्री जिन मारग जमायवा, धोरी जिम धुन धार रे।
आराधन गुरु आगन्या, स्यू कहिवो अधिकार रे।।
निश्चय सहीत निरमले, तन मन इदी जीत।
वहुजन ने समजायवा, थइ देश मे वदीत रे।।
सुदर मुद्रा हस्तु तणी, सुदर तरण री रीत।
सुदर रूप गुणे भरी, पेख्या पामे प्रीत रे।।
सूत्र नी जाण मेणी गुणी, लीध जन्म नो लाह।
निर अहंकार पणै निरखनै, गुणी जन है वाह वाह।।

---

१. हस्तूजी कस्तूजी रो पचढालियो, ३।८-१०, ४।१, ३-४
२. वही, ४।६-१०

पाखड पथ उठायवा, सिहणी सम साहसीकरे।
गुरु भगता गाढी भणी, तत सरल तहतीक रे।।
इरखो अधिको स्त्री तणै, सहज स्वभावे होय रे।
पिण हस्तु नै पेखता, इचरज आवै सोय रे।।
हस्तु ना गुण एहवा तेहवा गुण अधिकाय रे।
नर पिण विरला जागज्यो, समणी महा सुखकार रे।।[1]

ख्यात मे लिखा है—"भण्या गुण्या वडा। वखाण वाणी री कला घणी। हीमतवान। देसना गुजारव।·· अन्यमती मण चरचा करता सकता।"

आपने तीन आचार्य भिक्षु, भारमलजी और रायचन्दजी की भरपूर भक्ति की। मुनि हेमराजजी और सरूपचन्दजी के प्रति वडा आदर-भाव रखा। सतो को वडी साता पहुचाने वाली थी।[2]

---

१. सती गुण वर्णन, १४।१-८

२ हस्तूजी कस्तूजी रो पचढालियो, १।८-६

भीखू ऋप भारीमाल नी रे लाल, भक्ति करी भरपूर।
रायचन्द ऋपराय जी रे लाल, सेव करी सनूर।।
हेत घणो स्वामी हेम स्यू रे लाल, सरुपचद सुखकार।
साताकारी सहु सत ने रे लाल, गई जमारो जीत उदार।।

४६. साध्वी खुशालांजी (कुशालांजी)[1]

आप नाथद्वारा के शाह भोपजी सोलकी की पुत्री थी। आप मुनि खेतसीजी की छोटी वहिन और साध्वी रूपाजी (३७) की वड़ी वहिन थी। आपकी माताजी का नाम हरू था।[2] आपके एक और भाई था, जिनका नाम हेमजी था।[3]

आपकी ससुराल वडी रावलिया ग्राम मे थी। आपके पति का नाम शाह चतुरोजी वम्ब था। आपके तीन पुत्र थे—नानजी, मोतीजी और रायचन्दजी। आपकी पुत्री का नाम मैना था।[3]

---

१ जय (भि० ज० र०), जय (शा० वि०), ख्यात आदि मे आप किस्तूराजी (४७) से ज्येष्ठ है। वडी दीक्षा के समय आपको वडा रखा गया, जबकि हस्तूजी की तरह किस्तूरांजी भी आप से दीक्षा मे ज्येष्ठ रही।

२. (क) जय (खेतसी), १। दूहा २-३ ·

श्रीजीद्वारा सहर मे, ओसवश अभिधान।
भोपो साह तिहा वसे, जात सोलंकी जाण॥
सुन्दर हरू सुहामणा, अगज अधिक उदार।
नाम खेतसी निरमलो, सोम प्रकृति सुखकार॥

(ख) वही, १।६ .

हेम सहोदर निरमल हिया तणो, वहन उभय वुद्धवान रे।
कुशालांजी रूपाजी दिलकुशी, जुग लघु भगनी जाण रे॥

३. (क) जय (ऋ० रा० सु०) १।१-६ ·

देश मेवाड सु दीपतो, वडी रावलीया वखाण।
गोगुन्दा रे परगने, ग्राम मनोहर जाण॥
शाह चतुरोजी तिहा वसे, सरल भद्र सुखकार।
जाति वव सुद्ध जाणज्यो, ओसवस अधिकार॥
श्रीजीदुवारे भोपो साह वसै, पुत्र खेतसी हेम।
पुत्री खुसाला रूपा कही, पूरो धर्म सु पेम॥
रावलीया व्याही सही, दोनू ने तिणवार॥
खुसाला चतुरा साह भणी, पुरो पुन्य प्रकार॥
पुत्र दोय पहिला हुता, नानजी मोती नाम।
उग्रभागी सुत तीसरो, ऊपनो अभिराम॥

आपके वडे भाई खेतसीजी सं० १८३८ मे और छोटी वहिन रूपाजी (३७) स० १८४८ मे दीक्षित हुई थी।

आपकी दीक्षा स० १८५७ की चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन वडी रावलिया मे भिक्षु द्वारा सम्पन्न हुई। आपने अपने ११ वर्षीय पुत्र रायचन्दजी के साथ दीक्षा ग्रहण की।[1]

आप साध्वी किस्तूराजी (४७) से दीक्षा मे छोटी रही, पर दीक्षा मे आपको ज्येष्ठ रखा गया।

इस तरह आपने पति, पुत्र, पुत्र-वधुओं तथा अन्य वहुत से कुटम्वी जन और ऋद्धि-सम्पन्न घर के मोह को छोडकर साध्वी-जीवन ग्रहण किया।

दीक्षा के वाद भिक्षु ने आपको सती वरजूजी (३९) को सौंप दिया।[2] उल्लेख है कि

समत् अठारे सैतालै समै, जशधारी सुत जायो।
पुण्य प्रवल गुण पोरसो, रायचन्द ऋपरायो॥

(ख) जय (ऋ० रा० सु०), ३।७-८
वर्ष इग्यारा रे आसरे आ०, रायचन्द गुण गेह क। आज आ०॥
तात भाई वहिन छोडने आ०, मात साथ व्रत लेह क॥ आज आ०॥
तात चतुरोजी सरल भला आ०, नांनजी मोती वै भ्रात क। आज आ०॥
भोजाया मन भावती आ०, वहिन मैना सुविख्यात क॥ आज आ०॥

१. (क) १८६७ चैत्र सुदी ७ के दिन आउवा मे रचित ढाल दो० ३:
खुसालाजी मोटी सती, पूज कने लीधो सजम भार।
कुटव कवीलो छोडने, मन मे समता धार॥

(ख) जय (भि० ज० र०), ५२।१६
कुशलाजी रावलिया रा कहियै, सतजुगी री वहिन व्रत लहियै।
ऋप रायचन्दजी नी माता, सजम ले पामी साता॥

(ग) जय (ऋ० रा० सु०), ३।६
समत अठारे सतावने आ०, चैती पूनम चाह क। आज आ०॥
स्वमुख भिक्षु स्वामीजी आ०, चरण दियो सुखदाय क॥ आज आ०॥

(घ) जय (ऋ० रा० सु०), ३।७
पूर्व पृष्ठ, पा० टि० ३ (ख) मे उद्धृत

(ङ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला ६१-६२.
कुशालाजी रावलिया रा ऋपीराय नी माय।
ऋपिराय सघाते ग्रह्यो चरण सुखदाय॥
थई मोटी सतिया वहु वर्प चारित्र पाल।
वर शोभ वधावी कुमति कदाग्रह टाल॥

२. (क) जय (ऋ० रा० सु०), ३।१०
सयम देई माता भणी आ०, सूपी वरजूजी नै स्वाम क। आज आ०॥
पूरण क्रिया पूज्य नी आ०, गुणवता अभिगम क॥ आज आ०॥

(ख) जय (ऋ०रा०), पंचढालियो, ५।५.
सती कुसाला मोभती, रहै वरजूजी रै पास।

आपके तीन चातुर्मास साध्वी वरजूजी (३९) के साथ भिक्षु और भारमलजी के समीप हुए।[1]

इस उल्लेख के अनुसार आप (सं० १८५८, १८५९ एवं १८६०) के चातुर्मास क्रमशः केलवा, पाली और सिरियारी में होने चाहिए, जहा आचार्य भिक्षु के हुए। पर सं० १८६० का सिरियारी मे नही था।[2]

इस अवधि मे आपको भिक्षु के मुखारविंद मे सूत्र-सिद्धान्त की बातें श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आप अपना समय धर्म-ध्यान में लगाती रही।

आपने सं० १८६७ मे आउवा मे संथारा किया।[3] पहले १५ दिन की संलेपना तपस्या की। इस तपस्या मे ही १५वें दिन आपने संथारा ठा दिया। आठ पहर का संथारा आया।

समत अठारेसै सतसठै मुनिन्द मोरा, पंदरह दिन तपस्या प्रधान हो।
पदर मांहे संथारो कियो मुनिन्द मोरा, आयो आठ पहर उनमान हो॥[4]

संथारे के समय आप श्रावक शोभाचन्दजी के मकान में विराजती थी।[5]

सल्लेषणा, तपस्या और संथारे का विस्तृत विवरण इस प्रकार है :

---

१ (क) सं० १८६७ चैत्र सुदी ७ रविवार के दिन आउवा मे रचित ढा० गा० ३ :
तीन चौमासा पुज कनै कीया, धर्म ध्यान बहु करियाजी।
सूत्र सिद्धान्त सुणिया घणा, जाडा पातक झडियाजी॥

(ख) जय (ऋ० रा० सु०), ५।९ :
महा भाग्यवान महासती मुनिन्द मोरा, भिक्षु तथा भारीमाल हो।
तीन चौमासा भेला कराविया मुनिन्द मोरा, गुण निष्पन्न नाम खुशाल हो॥

२ पाद-टिप्पणी १ के उल्लेखो के अनुसार साध्वी वरजूजी (३९) और आपका सं० १८६० का चातुर्मास सिरियारी मे होना चाहिए। इसका समर्थन वरजूजी के प्रकरण से भी होता है। (देखिये प्रकरण ३९ पृ० ६२१, पा० टिप्पणी न० ३)। पर ऐसा नही पाया जाता। ऐसी स्थिति मे तीन चातुर्मास पूज्यजी के समीप होने की बात किस अपेक्षा से है, समझ नहीं पडता। लगता है, आपके दो चातुर्मास सं० १८५८ एव १८५९ के आचार्य भिक्षु के साथ हुए और तीसरा सं० १८६१ का चातुर्मास स्वामी भारमलजी के साथ हुआ। संभव है, इन तीन चातुर्मासो की अपेक्षा से उक्त कथन हो।

३. (क) जय (शा० वि०), २।२७ :
ऋषिराय तणी माता सुत पिउ तज, कीर्ति अति गण मे जीकी।
सतसठै संथारो शहर आउवै, नाम कुशालांजी नीकी॥

(ख) पण्डित-मरण ढाल २।११
खुसालांजी नें संथारो आउवे आयो, घणो साझ दीयो पुत्र ने भायो।
खेतसीजी सामी री वडी बहन हुंती, समरो मन हर्षे मोटी सती॥

४. जय (ऋ० रा० सु०), ५।१० । तथा देखिये—हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला ६।६३ :
तप दिन पनरा नें आउवै संथारो कीध, संवत् सिडसठे अष्ठ पहर थी सिद्ध।

५. सं० १८६७ चैत्र सुदी ७ रविवार के दिन आउवा मे रचित ढाल गा० ४० :
सेज्झातर शोभाचद श्रावक, जायगा निरदोषण दीधी जी।
सेज्झातरी पिण वनीत घणी, सेवा वंदकी कीधी जी॥

आपने विचार किया—यह देह नश्वर है। अवसर रहते आत्मार्थ साध लेना चाहिए। इस तरह आपके मन मे संथारा करने का भाव जाग्रत हुआ। आहार के प्रति अरुचि रखने लगी। आपके सथारा करने की अभिलापा को सुनने पर मुनिश्री खेतसी (भाई), रायचन्दजी (पुत्र) एव आचार्य भारमलजी दर्शन देने पधारे। उन्होने पाया कि कर्मो को चकचूर करने के लिए आपका मन वैसे ही उद्यत है जैसे केसरिया वाना पहन कर वीर पुरुष सग्राम के लिए उद्यत होता है। सन्तो ने निवेदन किया—आप शीघ्रता न करे। सुखपूर्वक विचरते हुए जन-कल्याण करे। आपने उत्तर दिया—"मुझे उत्तम सयोग प्राप्त हुआ है। भाई, पुत्र और पूज्यजी ने पूर्ण कृपा कर दर्शन दिये है। इससे मेरा मन वैराग्य से परिपूर्ण हो गया है। मैं सथारा करना चाहती हूं।" इसके वाद सथारा की भावना से आपने तपस्या करने का विचार किया।

फाल्गुन सुदी १३ के दिन आपने उपवास किया। द्वितीय तेरस के दिन पारण मे थोड़ा-सा आहार लिया। चतुर्दशी से लेकर चैत्र वदि चौथ तक ऊणोदरी तप किया। पचमी के दिन भी थोडा आहार लेकर त्याग कर दिया। चैत्र वदि छठ के दिन आपका मन वैराग्य-भावना मे परिप्लावित हो गया। उस दिन आपने उपवास किया। उपवास मे ही वेला ठा दिया। वेला मे तेला, तेले मे पाच और पाच मे अठाई ठा दी। अठाई मे ग्यारह, ग्यारह मे तेरह, तेरह मे पदरह ठा दिया। वीच मे पारण नही किया। १५वे दिन (चैत्र शुक्ला छठ) को आपने याव-ज्जीवन तिविहार सथारा कर लिया और पंच परमेष्ठी का भजन करने लगी। शरण दिलाने पर चार शरणो का स्वमुख से उच्चारण किया। परिणाम वडे दृढ थे।

जनता मे आश्चर्यपूर्ण हर्षोत्साह छा गया। सथारा के उपलक्ष मे लोगो मे वहुत त्याग प्रत्याख्यान हुए। आउवा मे एक उत्सुकतापूर्ण वातावरण फैल गया। लोगो की चित्तवृत्तियो मे वैराग्य भावनाए हिलोरे लेने लगी। लोग यत्र-तत्र साध्वी का गुणगान करने लगे।

आपको आचार्य भारमलजी का योग प्राप्त हुआ। आचार्यश्री स्वय व्याख्यान सुनाते। भाई मुनि खेतसीजी आपको वैराग्यपूर्ण उपदेश देते। आप मनोयोगपूर्वक भगवती सूत्र का व्याख्यान सुनती। सुनकर आप वडी हर्षित होती। पुत्र रायचन्दजी ने भी वडी सेवा की। शरणे ग्रहण करवाए। परिणामो को तीव्र से तीव्रतर किया। सती के परिणामो की श्रेणी चढती गई।

अठाईस साधु-साध्वी दर्शन करने आये। छ साधु और ग्यारह साध्विया सथारे के समय आपकी सेवा मे थे।

आपका मनोरथ सफल हुआ। संथारा द्वारा समाधि-मरण प्राप्त कर खेवा पार किया।

आपकी गण मे वडी शोभा थी। आप साधु-साध्वियो के हित मे रत रहती। आपको 'भण्डारी' उपनाम प्राप्त था। आप वडी विनयशील साध्वी थी।

आपका अनशन चैत्र वदि ६ से आरभ हुआ। १५वे दिन[1] चैत्र सुदी ६ के दिन आपने तिविहार सथारा ग्रहण किया, जो चैत्र सुदी ७ के दिन दोपहर मे सम्पूर्ण हुआ। इस तरह १६ दिन के अनशन मे आपको आठ पहर का सथारा आया।

---

१. चैत्र वदि छठ से गिनने पर चैत्र सुदी छठ तपस्या का १६वा दिन होता है। वीच मे एक मिती टूटने से चैत्र सुदी ६ तपस्या का १५वा दिन हो जाता है।

संथारो आयो जावजीव रो, आठ पोहर मझारोजी।
वेल्या दोपारारी जाणज्यो, उचर्य पाम्या नरनारी जी॥
अणसण आयो तैतीस भक्तनो, तीण मे तीन भक्त सथारो जी।
चेत सुदी सप्तम दिने, कर गया खेवो पारो जी॥[1]

आपने स० १८५७ मे दीक्षा ग्रहण की एव स० १८६७ मे आप स्वर्गस्थ हुई। इस तरह आपने १० वर्ष का यशस्वी सयमी-जीवन प्राप्त किया।[2]

सल्लेखना सथारे का मूल चित्रण निम्न रूप मे प्राप्त है।[3]

कुसालांजी मन चितवै, अवसर आय लागोजी।
देही तो जाणी कारमी, आहार करवा स्यू मन भागोजी॥
भाइ सुत दोनू आवीया, दर्शन करवा काजोजी।
पूज पधार्‌या चूपस्यू, फलीया मनोरथ आजोजी॥
सुरो चढे सग्राम मे, कर केसरिया पूरोजी।
ज्यू सतीरो मन तपस्या थकी, कर्म करण चकचूरोजी॥
सता पिण वरज्या मोकला, उतावल मत करो काईजी।
विहार करो विचरो सुखै, गामा नगरा माहिजी॥
वलता कुसालाजी वोलीया, म्हारै जोग मील्यो छै रूडोजी।
भाई सुतने पूजजी, तिण स्यू आयो वैराग पूरोजी॥
कुसालाजी मोटी सती, तपस्या भारी किधी रे।
परिणाम राख्या निर्मला, नीव मुक्त नी दीधी रे॥
फागुण सुद तेरस दिने, उपवास कियो श्रीकारोजी।
बीजी तेरस पारणो, लियो अल्प सो आहारोजी॥
चवदस स्यू ले चोथ ताइ, आहार अल्प सो लीधोजी।
पाचम दिन अल्प आहार ल्यै, ततक्षिण त्यागज कीधोजी॥
चेत वदि छठ ने दिने, वैराग उपनो भारीजी।
अधिकी तपस्या आदरी, ते सूणज्यो विस्तारीजी॥
उपवास कर वेलो कियो, तेलो कियो तांमोजी।
तेला मे पांच पचखिया, पाचा मे आठ अभिरामोजी॥
अठाइ मे इग्यारै किया, इग्यारै में तेरा कीधाजी।
तेरा मे पनरै किया, विचे पारणा न लीधाजी॥
पनरा माहै सथारो पचखियो, किया तीन आहार ना त्यागोजी।
उचरग घणोइज उपनो, धन-धन सती नो वैरागोजी॥

---

१. कुसालाजी गुण वर्णन ढा०, गा० २१, २२

२. कुसालाजी गुण वर्णन ढा०, दो० ४
दस वर्ष संजम पालीयो, सूरपणो मन आणा।

३ कुसालाजी गुण वर्णन ढाल गा० १-५,८-२०,२३-३३,३६-३८

साधपणो पाल्यो चूप स्यू, खरो रंग लगायोजी।
सथारो कियो सोभतो, सजम कलश चढायोजी॥
भजन करता अरिहत नो, दूजै पद भगवतोजी।
आचार्य उपाध्याय ने, पाचमे पद सब सतोजी॥
च्यार शरण सुणी मुख उचरै, पाच परमेश्वर ध्यावैजी।
वैरागे मन वालीयो, कर्मारी कोड खपावैजी॥
पचमे आरे मझै, एहवी सतीया सूरीजी।
तपस्या कर ल्हावो लियो, चढीया घोडा मुक्त पूरीजी॥
सूस आकडी हुवा घणा, वैराग हुवो भारीजी।
आउवा मे इचर्य हुवो, धन धन कहै नर नारीजी॥
धन २ सतीरा गुर भजी, धन २ सती रो ग्यानोजी।
धन २ सतीरा ध्यान ने, मन कियो मेरु समानोजी॥

गुरू मिल्या भीखु स्वाम सारीखा, त्यारै शिख भारमलजी भारीजी।
त्यारो जोग मिल्यो छै सती नणै, धन २ सती रो अवतारीजी॥

भाइ खेतसीजी भली परै, दियो घणो उपदेसोजी।
सती सुण २ ने मगन हुइ, उपनो वैराग विसेखोजी॥
सुत पीण कीधी चाकरी, सुस सरणादिक दिधाजी।
परणाम ऊचा चढावीया, आत्म कार्य सिधाजी॥

भगोती सूत्र सूणीयो भलो, तिण मे विवध प्रकार नी पूछाजी।
सुण वैरागज उपनो, परणाम रह्या घणा उचाजी॥

वखाण सुणावता पूजजी, सीहनी परै गाजैजी।
साधा माहे सोभता, चद जेम विराजैजी॥
उजल धर्म जिनराज नो, उजला गुरु भारीजी।
उजल परिणाम सती तणा, ए तीनू ततसारीजी॥
सती गण मे घणी सोभती, सगला ने हूता हितकारीजी।
भडारी नाम दियो हुतो, वनीत हुवा श्रीकारीजी॥
अठाइस साध साधवी, दर्शण करवा आयाजी।
पट साधू इग्यारै साधवी, सथारा उपर मन भायाजी॥
जीता मनोर्थ माडीया, ते सगला हुवा ततोजी।
सलेखणा सथारो पिण हुवो, पूरी मनरी खतोजी॥
पुन भारी सती तणा, पामी भली वेल्याजी।
थाट लाग्या मोकला, साध साधवीया रा मेलाजी॥
सुख माहै चारित्र आदर्यो, सुख माहे आय वेठाजी।
सुख माहै करणी करी, सुखमा माहै जाय पेठाजी॥
साध साधवीया पिण चूप स्यूं, विनय वेयावच कीधोजी।
सेवा भक्ति कीधी सती तणी, भारी लाहवो लीधोजी॥

घणा ग्रामना श्रावक श्राविका, दर्शण करवा आया तामोजी

हर्ष संतोक पाम्या घणा, वनणा किधी हुलासोजी ॥

माढी कीधी सोभती, खड वण्या नव च्यारोजी ।

वाजत्र अनेक वजाडिया, संसारीक सोभा वीचारोजी ॥

हुलास (शा०प्र०) भिक्षु संत वर्णन गा० १९५-१९६ के अनुसार आपका देहान्त १८७० में कार्तिक सुदी १० के दिन माधोपुर में हुआ था

हिव साम भ्रात मुनि रामजी, संवत उठारै सत्तर आय ।

इन्द्रगढ चोमासो ते मझे रे लाल, च्यार मास एकांतरा कराय ॥

तिहा काती सुदी दशमी दिन रे, च्यार पहर संथार सीझाय ।

तिण हिज दिन माधोपुर मझे रे लाल, ऋषिराय री माता कुशालाजी नो आयु अंत थाय ॥

पर यह स्पष्टत भूल है । यह देहान्त-तिथि साध्वी कुशालाजी (५०) की है ।

ख्यात में लिखा है : "छेडे परिणाम वडा भारी रह्या अलोवणा निंदणा आछी करी ।"

आपके विषय में लिखा गया है : "विनय ना गुण थी सोभा घणी लीधी ।"[1]

---

१ सती विवरण

४७. साध्वी कस्तूजी[1]

जैसा कि साध्वी हस्तूजी के प्रकरण (४५) मे बताया जा चुका है, आप पीपाड के जगु गांधी की पुत्री थी और साध्वी हस्तूजी की छोटी वहिन। आपका विवाह पीपाड के उसी धनाढ्य मुहता परिवार मे हुआ था, जिसमे हस्तूजी का।[2] आपके पति का नाम मोटरमलजी माहता था।[3] आपके एक पुत्र था।[4] आपके विषय मे उल्लेख है —

---

१. जैसा कि बताया जा चुका है, आपकी दीक्षा स० १८५७ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के कुछ दिन पूर्व माननी होगी। अन्य कृतियों—जय (भिक्खु), जय (शासन), ख्यात आदि मे आपको खुनालाजी से कनिष्ठ माना गया है। इसका कारण बड़ी दीक्षा मे आपको कनिष्ठ किया गया था, ऐसा प्रतीत होता है।

२. (क) देखिए प्रकरण ४५, अनुच्छेद १ और २ तथा उनकी पाद टिप्पणिया।

(ख) सती गुण वर्णन, १४।दो० १-३

हस्तु कस्तु वहिनडी, सती शिरोमणि सार।
सुता जगु गाधी तणी, वसुधा यश विस्तार॥
सासरिया मुहता सही, लक्षेश्वरी कहिवाय।
कत पुत्र दोनू तजी, सयम धारचो सवाय॥
सवत अठारै सतावनै, सयम सहर पीपाड।
विनय विवेक विशेष गुण, कीधो जगत उद्धार॥

(ग) स्वरूप नवरसो ३।१०

हस्तु ने किस्तु भली रे लाल, विहु भगनी सुखकार।
पीउ छाड व्रत आदरचा रे लाल, आवी धर अति प्यार॥

(घ) चदणाजी (६४) की ढाल, दो०४,५ :

हस्तूजी कस्तुराजी दो वैनडी, लीधो सजम भार।
लख धन लोकीक मे, भल तजीया भरतार।
सतीया दोनू सोभती, वसती शहर पीपाड॥

३. देखिए, प्रकरण ४५, पा० टि० १ (क) दो०४

४. देखिए, पा० टि० २ (ख) दो०२

घर मे थका पिण महासती गुणवती,बुद्ध अकल कर पूरी रे।[1]

हालाकि यह उल्लेख नही है कि आपको भी दीक्षा लेने की आज्ञा प्राप्त करने के लिए बडे कष्ट उठाने पडे थे, पर चूकि आप हस्तूजी की छोटी बहिन थी और दोनों की ससुराल एक ही घर मे थी। अत यह मानना गलत न होगा कि आपको भी इस विषय मे अनेक यातनाए झेलनी पडी थी। निम्न पक्तियों मे इसी बात का सकेत है :—

उद्यम कियो आग्या तणो, ने तो बात अधूरी रे॥
नगांजी दोलाजी ने देखने, पूछी निरणो कीज्यो रे।
विवध वैराग नी वारता, सुण २ ने धार लीज्यो रे॥[2]

जैसा कि प्रकरण ४५ मे बताया जा चुका है, आपकी दीक्षा भी साध्वी हीराजी के द्वारा पीपाड मे स० १८५७ मे सम्पन्न हुई थी। सम्भावित तिथि चैत्र पूर्णिमा अथवा उससे कुछ दिन पूर्व है। आपने पति, पुत्र, परिवार और धन-सम्पदा को छोड़कर बडे वैराग्य भाव से दीक्षा ग्रहण की।[3]

आपका साध्वी-जीवन बडा तपस्वी रहा। ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि आप प्रत्येक चातुर्मास मे दो महीने एकातर तपस्या किया करती थी।[4] आपने अपने जीवन मे अनेक उपवास बेले, तेले किए। चोले से लेकर १७ दिन तक की तपस्याओं का विवरण इस प्रकार है।

१.	चोला	१	८.	११	१
२.	पचोला	१	९.	१२	१
३.	६	१	१०.	१३	१
४.	७	१	११.	१४	१
५.	८	१	१२.	१५	१
६.	९	१	१३.	१६	१
७.	१०	१	१४.	१७	१

उक्त विवरण से देखा जाता है कि आपने अपने साध्वी जीवन मे १४ थोकड़े किये। इस प्रकार तपस्वी जीवन बिताते हुए आपने मालवा के उज्जैन नगर मे संथारा कर पडित-मरण प्राप्त किया। लगभग सवा प्रहर का सागारी अनशन आया।[5]

---

१. हस्तूजी कस्तूजी रो पचढालियो ५।९
२. ,, ,, ,, ,, ५।९-१०
३. (क) प्रकरण ४५ पा० टि० ९ और १०
(ख) पा० टि० २ (ख) दो० ३
४. हस्तूजी कस्तूजी रो पचढालियो ५।१ :
तिरण तारण नावा जिसा, ग्यान ध्यान गुण धरती रे।
चोमासे मे दोय मास नां, सदा एकातर करती रे॥
५. वही, ५।२-६ :
उपवास बेला तेला बहु किया, चोला स्यू चाली आगे रे।
सतरा सुधी जाणज्यो, तपस्या प्यारी घणी लागै रे॥

आपके सथारा सम्पूर्ण होने के स्थान और संवत् के विषय मे तीन उल्लेख प्राप्त है :

१. प्रथम अभिमत के अनुसार आपका सथारा उज्जैन मे स० १८७६ मे सम्पूर्ण हुआ था। यह उल्लेख एकमात्र सवत् १८९७ की वैशाख कृष्ण २ बुधवार के दिन रचित सिरियारी मे सती गुण वर्णन ढाल १४ दोहा ४ मे पाया जाता है। गाथा इस प्रकार है :

समत अठारै छीहतरे, नगर उजेण मझार।
कीध कल्याण आतम तणो, कस्तू कर सथार॥

२. दूसरे अभिमत के अनुसार आपका सथारा उज्जैन मे स० १८७७ मे सम्पूर्ण हुआ। यह अभिमत अनेक कृतियो मे निम्न प्रकार पाया जाता है

जय (भि०ज०र०) ५२।१७

भल हस्तु नी भगनी, सती कस्तुराजी शुभ लगनी।
सुत पिउ छांड व्रत धरी, सततरै उजैण सथारो हो॥

जय (शा०वि०) २।२८ .

हस्तु नी ए लघु भगनी, पिउ पुत्र प्रति परहरिया।
सततरै उज्जैन सथारो, कहा कहू कस्तु किरिया॥

हुलास (शा०प्र०) भिक्षु सती वर्णन ६४ ·

हस्तुजी नी लघु भगिनी पिउ सुत कर परिहार।
व्रत पाल सिततर कृत कस्तु संथार॥

३ हस्तूजी कस्तूजी के पचढालिये मे साध्वी कस्तूजी के सथारा सवत् का उल्लेख नही है, पर ऐसा उल्लेख (ढा०५ दो०१) है कि उन्होने लगभग उन्नीस वर्ष सयम भार वहन किया और उनका संथारा उज्जैन मे सम्पूर्ण हुआ।[1] यह कृति सवत् १८९७ वैसाखी पूर्णिमा के दिन सवलपुर मे रचित है।

पहला अभिमत प्राचीनतम है। लगभग उन्नीस वर्ष सयम पालन करने के उतने ही प्राचीन उल्लेख से भी उसका समर्थन होता है। दोनो बहिने सिंघाडवद्ध होने पर भी साथ ही विहार करती रही। यह अभिमत सर्वसम्मत है। स० १८७६ का साध्वी हस्तूजी का चातुर्मास उज्जैन मे था। आपका स्वर्गवास उज्जैन मे हुआ। इसमे दो मत नही है। ऐसी स्थिति मे आपका

च्यार किया पाच पचखिया, पट् दिनकर पत ठाया रे।
आठ करी नव दस किया, इग्यारै वाहरै पचखाया रे॥
तेरा किया चवदे किया, पनरै किया जूवा २ रे।
सोलै किया सतरै किया, ए चवदे थोकडा हूवा रे॥
विवध प्रकारै तप तपी, मालवै देस मजारो रे।
नगर उजेणी मे कियो, किस्तूराजी सथारो रे॥
सवा पोहर कै आसरै, अणसण सागारी आयो रे।
जय २ कार जणावियो, कुल ने कलस चढायो रे॥

१. हस्तूजी कस्तूजी रो पचढालियो ५।दो०१
हस्तूजी नी वहनजी, किस्तुराजी सुखकार।
उगणीस वर्ष रे आसरै, पाल्यो सजम भार॥

स्वर्गवास स० १८७६ में उज्जैन में हुआ। यह उल्लेख ही ठीक प्रतीत होता है। स्वर्गवास चातु काल मे हुआ।

यदि स्वर्गवास के समय साध्वी कस्तूजी का सिंघाडा अलग रहा हो और चातुम उज्जैन मे हुआ हो तभी सं० १८७७ का सथारा घट सकता है। इस स्थिति मे उनका साध्व जीवन काल लगभग २० वर्ष का ठहरेगा। ये दोनों ही वाते निश्चित तथ्यो से विपरीत पड़त है। अत सथारा-सवत् विपयक दूसरा अभिमत ठीक प्रतीत नही होता।

यदि आपका स्वर्गवास स० १८७६ के शेपकाल मे फालगुन के वाद हुआ हो तो पचाग के हिसाव से वह स० १८७७ मे भी घट सकता है, पर दूसरे उल्लेख मे आई हुई कृतियों मे वर्णन जैन-सवत् के अनुसार ही है, अत इसकी सम्भावना कम है।

आपके व्यक्तित्व के सम्वन्ध मे निम्न उद्‌गार प्राप्त है

किस्तूराजी मोटी सती, भर जौवन मे चेती रे।
केसर किस्तूरी सारखी, लोका ने गुण देती रे॥
किस्तूराजी मोटी सती॥
पुत्र पिउ सती छोडिया, ऋध्र सपत अति भारी रे।
सरणो लियो सतगुरु तणो, तास नमो नर नारी रे॥
किस्तूराजी मोटी सती॥
सिह जिम संजम आदर्‌यो, पाल्यो सूरपणा सै रे।
त्याग वैरागनी वातनो, भेदू भाव जणासे रे॥
किस्तूराजी मोटी सती॥[1]

आप वडी विवेकशील थी। आप मे विनय गुण की विशिष्टता थी। आप आचार, क्रिया मे वडी निपुण थी।

साध्वी आसूजी (आचार्य भारमलजी की प्रथम शिष्या) की दीक्षा मे साध्वी हस्तूजी और आप दोनो का हाथ रहा।[2] आपके द्वारा इस तरह के अनेक आत्मोद्धार के कार्य हुए।

---

१. हस्तु-कस्तुजी रो पचढालियो, ५।१,७,८

२. (क) देखिए प्रकरण ४५ पा० टि० १३ और उससे सम्वन्धित अनुच्छेद

(ख) चन्दणाजी (६४।२-८) की ढाल, गाथा १.

हस्तूजी कस्तुराजी हद करी, आसूजी ने दीयो उपदेश।
धन माल तजी भरतार ने, सजम लियो वाल्वा वेस॥१॥

४८. साध्वी जोतांजी

आपकी ससुराल लाहवा (मेवाड) मे वावलियो के यहां थी । आपने पति को छोडकर साध्वी-जीवन ग्रहण किया ।[1] उस समय आपकी अवस्था करीव १७ वर्ष की थी ।

आपको दीक्षा की अनुमति अनेक यातनाए झेलने के वाद प्राप्त हुई । सयम-ग्रहण करने की भावना से आपको डिगाने के लिए घर वालो ने आपको अनेक यातनाए दी । "मार दीधी वाधी तन मोड्यो रे ।" तीन वार चूडा तोड दिया । आपने इन कष्टो को सहर्ष झेला । ससार-त्याग के अपने विचार मे दृढ रही । आपके उत्कट वैराग्य को देखकर आखिर घरवालों ने चौथी वार चूडा पहना कर दीक्षा की आज्ञा दी और भिक्षु को पधारने के लिए निवेदन किया । निवेदन को मानकर भिक्षु पधारे । स्वमुख से महाव्रत अगीकार कराकर दीक्षा दी । इस तरह स० १८५७ के जेठ मास में आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई ।

लाहवा थी भल सयम लीधो रे, पिउ छाड परम रस पीधौ रे ।
दुख सासरिया अति दीधौ ।।
तीन वार चूडौ तोड्यौ रे, मार दीधी बाधी तन मोड्यो रे ।
चित चारित्र थी नही छोड्यौ ।।
चौथी वार चूडौ पहिरायौ रे, घर का आज्ञा दीधी मन ल्यायौ रे ।
स्वाम भीखू नै लीया वोलायो ।।

---

१. (क) जय (भि०ज०र०), ५२।१८
ल्हावा थी सजम लीधौ, पिऊ छाड पर्म रस पीधौ ।
घणी वुद्धि अकल गुणवन्ती, जोताजी महा जशवन्ती हो ।।

(ख) जय (शा०वि०), २।२६
शहर लावै ना पिउ प्रते तज, जनवृन्द हरषे वाण सुणी ।
उगणीसे आठै सथारो, जोता जवरी भणी गुणी ।।

(ग) जय (ऋ० रा० सु०) ४।३
हस्तु कस्तु भगनी वेहू रे, खुसाला ऋपराय नी माय ।
जौता नौरा नो जश घणो, पाच पीउ छाड व्रत पाय ।।

(घ) हुलास (शा०प्र०) भिक्षु सतीमाला ६५
वसिवान ल्हावाना जोताजी तस नाम ।
प्रीतम तज भावै लियो सयम अभिराम ।।

वर्ष सतावनी सुखकारी रे, जेठ मास चारित्र जयकारो रे।
भीखू स्वमुख चरण उच्चारो ॥
ओसवश वावलिया सुजातो रे, आसरै वर्ष सतरै विख्यातो रे।
सती री बुद्धि घणी उत्पातो ॥[1]

दीक्षा के वाद भिक्षु ने आपको वरजूजी (३९) और वीजाजी (४०) को सौंप दिया।

थोड़े ही दिनों में आप सूत्र सिद्धान्त की अच्छी जानकार हो गई। आपकी बुद्धि वडी ऊर्वरा थी। कठ वड़े अच्छे थे। सरस व्याख्यान देने लगी :

वरजूजी विजांजी नै सूपी रे, सती जोताजी अधिक अनूपी रे।
शीलामृत रस नी कूपी ॥
हुई सूत्र सिद्धंत री जाणो रे, खिम्यां विनय गुणा री खाणो रे।
वर कठ मू वाचै वखाणी ॥[2]

भिक्षु ने स० १८५८ मे अथवा १८५९ मे वीजाजी (४०) का सिंघाड़ा किया। व्याख्यान कला आदि मे वडी निपुण होने से आपको साथ दिया।

स्वाम भिक्षु सुविचारो रे, कीयौ विजांजी तणो सघाडो रे।
वखाणीक जोतांजी उदारो ॥[3]

मुनि हेमराजजी ने स० १८७३ के मार्गशीर्ष या पोष महीने में खाम गाव मे कुंवारी कन्या नन्दूजी को दीक्षा दी। लाहवा और उसकी सीमा पर के चारणो के एक गांव मे ठाकुर और चारणो की मनाही से दीक्षा नही दे पाये तव समय टलता देख कर गृहस्थ के वस्त्र और आभूपण के रहते उन्हे खाम गाव मे दीक्षा दी। दीक्षा के वाद मुनि हेमराजजी ने उन्हे आपको सौंपा। आपने उनका केश लुचन कर उन्हे साध्वी के कपडे पहना, उनके गृहस्थावस्था के वस्त्र और आभूपण उनके पिता को सम्हला दिये।[4] साध्वी चन्दूजी आपके स्वर्गवास तक आपके सिंघाडे मे रही। जनश्रुति के अनुसार आप साध्वी नन्दूजी की संसारपक्षीय चाची थी।

स० १८८७ मे साध्वी वीजाजी (४०) ने सलेपना सथारा किया। ९ दिन का सथारा आया। तव आप वनाजी (८४), नन्दूजी (९२) और नौजांजी (९८) ने उनकी वडी सेवा की।[5]

विजाजी सती तप अति कीधौ रे, साझ जोतांजी अधिको दीधौ रे।
परम विनय तणौ रस पीधौ ॥
नव दिन नौ सथारो नीकौ रे, सत्यास्यै सती विजां सधीकौ रे।
सती लियौ सुयशनो टीकौ ॥[6]

---

१. साध्वी गुण वर्णन ३०।२-५,७
२. वही, ६,८
३. वही, ९
४. (क) जय (शा०वि०), पृ० ५५ साध्वी नदुजी का प्रकरण
(ख) जय (हे० न०), ५।२१-२३
(ग) हुलास (शा० प्र०), भारीमाल सती माला, गा० १०६-११२
गाथाए मुनि हेमराजजी के प्रकरण मे उद्धृत की जा चुकी है।
५. देखिये प्रकरण ४०
६. साध्वी गुण वर्णन ३०।११-१२

स० १८८७ मे साध्वी वीजाजी (४०) का सथारापूर्वक देहान्त हो जाने के वाद आचाय रायचन्दजी ने आपका सिंघाडा कर दिया ।

अपने सिघाडपति-काल मे आपने वडा जनोपकार किया । ख्यात के अनुसार आपके द्वारा निम्न दीक्षाए सम्पन्न हुई

१. साध्वी श्री मयाजी (८६) की, स० १८७२ मार्गशीर्ष कृष्णा १ के दिन आमेट मे । इसकी पुष्टि अन्यत्र से भी होती है

> चेली भीखू साम नी रे, जोताजी जसवत ।
> सैहत सजम आपीयो रे, मयाजी नै मतवत ॥
> समत् अठारै वोहोतरै रे, आवीयो आगण मास ।
> वासर विध एकम तणो रे, पूर्ण पूरी आस ॥[1]

२. साध्वी लछूजी (१०१) की स० १८७८ फाल्गुन सुदी ४ के दिन नाथद्वारा मे । लछूजी की ढाल के अनुसार इनकी दीक्षा आचार्य रायचन्दजी के द्वारा हुई थी । दीक्षा के वाद आचार्यश्री ने इन्हे वीजाजी (४०) आप तथा नन्दूजी (९२) को सौंपा था ।

> अठतरै व्रत आदर्‌या हो, फागुण विद चौथ सु तिथ ।
> श्रीजीदुवारै आपनै हो, धार्‌यो है चरण पवित्र ॥
> वडी विजा वृद्धिकारी हो, जोता गुण री जिहाज ।
> नन्दू कुवारी किन्यका हो, सखर मिल्यो तसु स्हाज ॥
> विजा जोता नन्दू भणी हो, सूपी पुज ऋषिराय ।[2]

सभव है केश लोच साध्वी जोतांजी ने किया हो ।

३. साध्वी पन्नाजी (१३४) की स० १८८८ मार्गशीर्ष कृष्णा १४ के दिन पाली मे । आप साध्वी जोतांजी के दिवगत होने तक उनके साथ थी ।

४. साध्वी महेषाजी (१४४) की स० १८९२ पौष सुदी ६ के दिन कणाणा मे । जोताजी के स्वर्गवास तक आप उनके साथ रही ।

५. साध्वी चम्पाजी (१६६) की स० १८९५ चैत्र वदि ४ के दिन जोजावर मे ।

६. साध्वी सोमाजी (२०८) की स० १९०६ मार्गशीर्ष शुक्ला १ के दिन हिंगोला मे ।

७. साध्वी दोलाजी (२४९) की स० १९०६ फाल्गुन सुदी ५ के दिन हिंगोला मे ।

आप वडी ही गुणवान साध्वी थी । विनय गुण से सम्पन्न अत्यन्त क्षमाशील थी । 'जोता 'बुद्धि घणी उतपाती'. 'घणी बुद्धि अकल 'गुणवन्ती', 'जोताजी महा जशवन्ती हो', 'जोता जवरी भणी गुणी'—आदि उद्‌गार आपकी वौद्धिक प्रतिभा के परिचायक है । आप वडी मेधावी और विदुषी थी ।[3]

---

१ जीवोजी (मया सती गुण वर्णन ढाल), १।४५

२. लच्छू सती गुण वर्णन ढा०, गा० १३

३. (क) जय (भि०ज०र०), ५२।१८ पृ० ६६३, (पा० टि० १ (क) मे उद्धृत)

(ख) जय (शा०वि०) २।२९ पृ० ६६२, (पा० टि० १ (ख) मे उद्धृत)

आपके व्यक्तित्व के विषय मे जयाचार्य ने लिखा है '

सती जोताजी महा सुखदायो रे, प्रभू पथ सती हृद पायो रे।
च्यार तीर्थ मे यश छायौ रे, जोतांजी मोटी सती सुखदायो रे।।
हृद देशना महा हितकारो रे, निसुणी समजै नरनारो रे।
चित मांहै लहै चिमतकारो।।
जोतांजी हुइ महायश धारी रे, अधिको करती उपगारी रे।
सती शासन री सिणगारी।।
घणा ने दीयौ संजम भारो रे, श्रावकपणौ घणां ने श्रीकारो रे।
घणां सुलभ कीया नर नारो।।
नीत चारित्र नी हृद नीकी रे, जूनी धारणा सखर सधीकी रे।
चौथा आरा नी सतीया सरीखी।।
सुध शासण जमावण सारो रे, सती जोतां सरीखी उदारो रे।
हिवडां विरली पचम आरो।।
पिंडत मरण करी पद पावै रे, अति कष्ट कदाचित आवै रे।
आचार्य सू वेमुख नहीं थावै।।
एहवी जोतां शासन सिणगारो रे, इसडा गुण आदरी नरनारो रे।
तेहथी पामीयै भवदधि पारो रे।।'[1]

वृद्धावस्था मे शारीरिक-बल क्षीण हो गया तब भी आप स्थानापन्न नहीं हुई। काठा-कोर[2] क्षेत्र मे विचरण करती रही। नन्दूजी, लाछांजी आदि सतिया आपकी मनोनुकूल सेवा करती।

आपका अधिकाश समय ध्यान, स्मरण आदि में बीतने लगा। नवकार मत्र के लाखों जाप किये।

अन्त मे आपने सथारा ठा दिया। ढाई पहर का सथारा आया। उस समय आप पाली मे थी। स० १९०८ के कार्तिक महीने में आपको पण्डित-मरण प्राप्त हुआ। आपका देहावसान तृतीय आचार्य रायचन्दजी के शासन-काल मे हुआ। जयाचार्य ने लिखा है :

छेहडै क्षीण जंघाबल जाणी रे, तौ पिण रह्या नही थापी थांणी रे।
काठा नी कोर विचर्या सुजाणी।।
नन्दूजी[3] आदि समणी सुंहांणी रे, मनमांनी सेवा मुख दांणी रे।
प्रबल पुन्य जोता ना पिछांणी।।
ध्यान समरण अधिको धारी रे, लाखां गमे नवकार सभार्यो रे।
विषय रस नै दूर निवार्यौ।।
लाहौ नर भवनो हृद लीधौ रे, अणसण पौहर अढाइ समृधौ रे।
सती जीत नगारौ दीधौ।।

---

१. साध्वी गुण वान, १३।१,१०,१३-१५, २३-२५

२. सिरियारी, राणावास, कटालिया, सोजत रोड, सुधरी आदि क्षेत्र।

३. आचार्य भारमलजी के युग की सती।

पाली सैहर पिडत मरण पायौ रे, उगणीसै आठै कातिक माह्यो रे।
जश जोता तणो हद छायौ ॥
मडी कीधी है खड ईकताली रे, महोछव कीधा अधिक निहाली रे।
ए तौ रीत ससार नी भाली ॥[1]

आपने लगभग साढ़े पचास वर्ष का सयमी जीवन निर्वहन किया।

आप पहले वरजूजी, वाद मे वीजाजी और वीजाजी के देहान्त के उपरात स्वतत्र सिघाड़े मे रही। साध्वी नन्दूजी (९०), लच्छूजी (१०१) उक्त तीनो सिघाडो मे रही। अन्त समय में साध्वी नन्दूजी (९०), साध्वी लच्छूजी (१०१), पन्नाजी (१३४), महेपाजी (१४४) सोनांजी (२०८) आदि ने आपकी विशेष सेवा की।

मुनिन्द मोरा की प्रसिद्ध ढाल गा० २१ मे स्तुत्य सतियो मे आपका स्मरण प्राप्त है

जोतां महा जशधारी, चपा आदि सयाणी रे।
शोभती रे ॥

सोहनलालजी सेठिया के शब्दो मे आप वडी यशस्विनी थी—जोता महायशवान।[2]

आपका संवत् १८७२ का चातुर्मास आमेट मे था।

सवत् १८९७ का जयाचार्य का चातुर्मास उदयपुर मे था, सरदाराजी दीक्षा के लिए जयाचार्य के पास जा रही थी। रास्ते मे पीपाड मे उन्होने आपके दर्शन किए। दो दिन से की। इससे पता चलता है कि आपका स०१८९७ का चातुर्मास पीपाड मे था।

दर्शन जोताजी तणा हो, सेव उभयदिवस अवधार।[3]

---

१. साध्वी गुण वर्णन, ३०।१६-२१। तथा देखिए
(क) जय (शा०वि०), २।२६ पा० टि० १ मे उद्धृत
(ख) हुलास (शा०प्र०), भिक्षु सतीमाला ६६
हिम्मत धर अधिका वर पडित वुधवान।
उगणीसै आठै सथारो शुभ ध्यान ॥

२. शासन सुषमा ५९

३ सरदार सुजश, ८।२०

४९. साध्वी नोजांजी (नोरांजी)

आप सिरियारी (मारवाड) की निवासिनी थी। आपने पति और पुत्र को छोडकर दीक्षा ली थी।[1]

साध्वी हस्तुजी (४५), खुशालांजी (४६), कस्तुजी (४७), जोतांजी (४८) की तरह आपकी भी दीक्षा स० १८५७ मे हुई थी।[2] आपसे ज्येष्ठा साध्वी जोताजी (४८) की दीक्षा जेठ महीने मे हुई थी। अत आपकी दीक्षा या तो उनके साथ जेठ महीने मे हुई अथवा उनके बाद जेठ मे अथवा आषाढ सुदी १५ के पहले-पहले।

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ५२।१९

सिरियारी रा सुमगन मे, छोड्यौ पिउ सुत तिण छिन मैं।
सथारौ बहुतरै सिदौ, नोराजी जग जश लीधो हो॥

(ख) जय (शा० वि०), २।३०

सिरियारी ना पुत्र पिउ तज, चारित्र लीधो चित्त आणी।
बहोत्तरे अणसण खेजरडै, सती नोराजी सुखदाणी॥

२ (क) जय (भि० ज० र०), ५२।१३-२०

(ख) जय (शा० वि०), २।२५

हस्तु अनै कुशाला किस्तु, जोता नोजा जशवती।
सतावनै वर्ष सखरो सथारो, पाचू सतिया पुन्यवती॥

(ग) जय (ऋ० रा० सु०), ३।१-३

सतावनै वर्ष स्वामीजी रे, आप थया अणगार।
धर्म उद्योत हुवो घणो, तिण वर्ष माहे अवधार॥
एक वर्ष माहे थई रे, पीउ छाड व्रत धार।
श्रवणी पच मुद्रा सोहती, ए तो सासण री शिणगार॥
हस्तु कस्तू भगनी बेहू रे, खुसाला ऋपराय नी मांय।
जौता नोरा नो जश घणो, पाच पीउ छाड व्रत पाय॥

आपने सं० १८७२ मे खेजरडा (खेजड़ला, मारवाड) मे संथारा कर पण्डित-मरण किया।[1]

आपने १५ वर्ष तक साध्वी-जीवन वहन किया।

---

१. देखिये—पूर्व पृष्ठ, पा० टि० १। तथा देखिये—

(क) पण्डित-मरण २।१२
नवराजी सथारो खेजरले कीधो।

(ख) ख्यात, क्रम ४९

(ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, ६७
सिरियारी नी नोरा पुत्र पीयु तज दीख, खेजरडै वोहोत्तर सखर सथार सुसीख।

५०. साध्वी कुशालांजी

कई जगह आपको खुसालाजी कहा गया है। आप पाली (मारवाड) की निवासिनी थी। आपने भिक्षु से साध्वी-जीवन ग्रहण किया। दीक्षा के बाद भिक्षु ने आपको साध्वी वरजूजी (३६) को सौंप दिया था।[1]

सती नाथांजी (५१) और बीझाजी (५२) की दीक्षा भी आपके साथ हुई थी और उन्हे भी साध्वी वरजूजी को सौंपा था। हुलास (शा० प्र०) के अनुसार उक्त तीनो साध्वियों को दीक्षा के बाद साध्वी रगूजी (२०) को सौंपा गया था।[2] पर उनका देहान्त स० १८५६ के बहुत पहले ही हो चुका था, अत. उनको सौंपने की बात सही नही है।

एक जगह उल्लेख है कि आपने पति को छोडकर ससार-त्याग किया था।[3] पर आपमे

---

१ (क) जय (भि० ज० र०), ५२।२१-२२ :

गुणसठै वर्ष गुणवती, बहु चरण धार बुद्धिवती।
त्या मैं तीन जण्या एक साथै, हद दीक्षा भिक्खु नै हाथै हो॥
कुशलाजी नाथाजी बीजाजी, पाली ना तिहुं भ्रम भाजी।
तीनू शीलामृत कूपी, दीख्या देई नै व्रजुजी नै सूंपी हो॥

(ख) जय (शा० वि०), २।३१

कुशलाजी नाथा बीझाजी, पालीना गुण रस कूपी।
गुणसठै एक दिन दीक्षा भिक्षु दे वरजूजी ने सूपी॥

(ग) ख्यात कुसालाजी, नाथाजी विजाजी ए तीनू पाली रा श्री भिक्षु एक दिन दिक्षा दीधी स० १८५६ पछै वरजूजी ने सूपी।

(घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती वर्णन ६८

कुशाला ने नाथा बीजा ए तिहु सार।
पाली नर वासी गुणसठै सयम भार॥

२. हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला ३६ :

कुशला ने नाथा बीझा ए त्रिहु सार, पाली ना वासी गुणसठै सयम भार।,
दे एकण दिन मे सूपी रगू ने स्वाम, तेहनो सहु व्यतिकर जुवो जुवो छै ताम॥

३. सती विवरण

सम्वन्धित ढाल में अथवा जयाचार्य की किसी भी कृति मे ऐसा उल्लेख नही मिलता। ऐसी स्थिति मे प्रचलित धारणा के अनुसार यही मानना ठीक होगा कि आपने वैधव्यावस्था मे दीक्षा ग्रहण की थी।

आपकी दीक्षा स० १८५६ में भिक्षु द्वारा पाली मे सम्पन्न हुई थी।[1] भिक्षु का सं० १८५६ का चातुर्मास पाली मे था। अत आपकी दीक्षा चातुर्माम काल मे हुई अथवा मिगसर वदि को वहा से विहार करते समय।

स० १८६६ मे साध्वी नगाजी (२६) का वैशाख शुक्ला १३ के दिन देवगढ मे सथारा-पूर्वक देहावसान हुआ। उनके सलेपणा-संथारे के समय आपने साध्वी हीराजी (२८), कुशलांजी (६१), कुनणाजी (६२), और दोलांजी (६३) के साथ उनकी वडी भक्ति-भाव से सेवा की।[2]

स० १८७० का आचार्य भारमलजी का चातुर्मास माधोपुर मे था। आपका चातुर्मास भी वही था। आपने कार्तिक मास मे मथारा पूर्वक पण्डित-मरण प्राप्त किया।[3]

मथारे के पूर्व के आपके सलेखना तप का वर्णन निम्न रूप मे मिलता है

विहार करती-करती आप माधोपुर पधारी। आपका विचार सलेपणा करने का था। आपकी आखो मे पीडा उत्पन्न हो गई। पर आप अडिग रही और सलेषणा तपस्या आरम्भ कर दी। चातुर्माम लगने के पूर्व आपाढ मे आपने नौ पारण किए। २० दिन तपस्या मे वीते।

श्रावण मास मे केवल चार पारण किये। इसी तरह भाद्र मे चार, आसोज महीने मे दो और कार्तिक महीने मे केवल तीन पारण किए। इस तरह चातुर्मास काल अर्थात् १२० दिनो मे आपने केवल १३ दिन आहार किया। अवशेप १०७ दिन तपस्या मे वीते वाद मे आपने अति हर्पित मन से सथारा ग्रहण किया।[4]

---

१. (क) पूर्व पृष्ठ, पा० टि० १ प

(ख) ण्डित-मरण ढाल, २।१२

नवरांजी सथारो खेजरले कीधो, कुसलाजी रो सथारो माधोपुर सीधो।
पाली मे संयम लियो धर खंती, सुमरो मन हर्पे मोटी सती॥

(ग) साध्वी श्रीकुसलाजी की ढाल, दो० ३

पाली शहर सुहामणो, तिण मे लीधो सयम भार।
स्वाम भीखणजी रै आगलै, सती खुसालोजी तिण वार॥

२. देखे . प्रकरण २६। पृ० ५६७, पा० टि० १ से सम्वन्धित का उद्धरण

३. जय (भि० ज० र०), ५२।२३

सत्तरै कुशलाजी सथारौ, भारीमाल भेला सुविचारो।
माधोपुर मास कार्तिक मैं, परलोक पोहता छिनक मै हो॥

प्रकाशित ग्रन्थ मे 'सत्तरै' के स्थान पर 'सततरै' है। स० १८७७ का आ० भारमलजी का चातुर्मास सिरियारी मे था न कि माधोपुर मे। माधोपुर मे स० १८७० का चातुर्मास था। अत. 'सततरै' भूल से छपा है।

४. साध्वी श्रीकुसालाजी की ढाल, १-५

विचरत विचरत आवीया रे लाल, करै सलेपणा मन धार।
उपनी असाता आख्या तणी रे लाल, माधोपुर मजार॥

संथारा सम्पन्न होने की तिथि के सम्बन्ध मे तीन उल्लेख प्राप्त हैं·

१ प्रथम उल्लेख के अनुसार आपका सथारा स० १८७० की कार्तिक कृष्णा १० के दिन सम्पन्न हुआ था।[1]

२. दूसरे उल्लेख के अनुसार स० १८७० की कार्तिक शुक्ला १० के दिन सम्पन्न हुआ था।[2] कथन है कि मुनि रामजी और आपका संथारा एक ही दिन सम्पन्न हुआ था।[3] मुनि रामजी के सथारे की मिति स० १८७० कार्तिक सुदी १० स्पष्ट रूप से उल्लिखित है।[4] अत. आपके सथारे की भी मिती यही है।

३. तीसरा उल्लेख साध्वी श्री कुसालाजी का गुण वर्णन ढाल मे निम्न शब्दां मे प्राप्त है

अपाढ मास तिण मझै रे, पारणा नव कीध रे।
बीस दिन तपस्या तणा रे लाल, जीत नगारा दीध रे।।
श्रावण मास सुहावणो रे लाल, तिण मे पारण कीधा च्यार रे।
इम हिज भाद्रवो जाणज्यो रे लाल, आसोज मे दोय विचार रे।।
तीन किया काति मझै रे, सूरपणो मन धार रे।
सर्व पारण तेरे किया रे लाल, चतुर मास मझार रे।।
च्यार तीर्थ सुणता थका रे, कियो सथारो जाण रे।
काति सुद आठम सोमवार ने रे लाल, हर्ष घणो मन आण रे।।

१. (क) जय (शा० वि०) (मुद्रित), २।३२ :

ल्होडी कुशलाजी सथारो, भारीमाल पै चौमासो।
कार्तिक वदि दशमी तिथिवारो, माधोपुर मे सुखरासो।।

(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सती माला, ३।७०

कुशला चोमासो भारीमाल सहजोय।
माधोपुर अणसण, काती विद दशमी जोय।।

२. (क) जय (शा० वि०) हस्तलिखित एव वार्तिक

तिण हिज वर्ष (१८७०) भारीमालजी स्वामी रो माधोपुर चौमासो। आर्य्यां पिण त्यां भेला हुता। तिहा काती सुदी १० कुशलाजी पिण आयुष्यो पूरो कियो। रामजी स्वामीरो साथ हुवो।

(ख) ख्यात कुसालाजी छोटा रो चोमासो भारीमाल स्वामी रै भेलो हुतो। सं० १८७० सहर माधोपुर मे कार्तिक सुदी १० के दिन आयु।

३. देखे पा० टि० १ (क)

४ जय (हे० न०) ५।२·

रामजी अठम भक्त मझारो रे, परभव पहुता सुखकारो रे।
काती सुदि दशम तिथ वारो।।

च्यार तीर्थ सुणता थकारे, कियो सथारो जाण रे।
काति सुदि आठम सोमवार के रे लाल, हर्ष घणो मन आण रे।।
साध साधवियां सकल स्यू रे, रूडी रीत खमाय रे।
पच महाव्रत फेर उचरावीया रे लाल, श्री मुख पूजजी आय रे।।
समत अठारे सितरे रे, काति सुदी नवमी मगलवार रे।
सथारो आयो पनरा पोहर आसरै रे लाल, धनधन करे नरनार रे।।[1]

इस उल्लेख के अनुसार आपने कार्तिक सुदी ८ को चार तीर्थ के सम्मुख स्वमुख से सथारा ग्रहण किया। सर्व साधु-साध्वियो से अच्छी तरह क्षमत-क्षमापन किया। इसके वाद आचार्यश्री पधारे और पाच महाव्रतो का पुनरारोपण कराया। सथारा पद्रह पहर के वाद काती सुदी ९ मगलवार के दिन सम्पन्न हुआ।

उक्त तीन उल्लेखो मे तीसरा उल्लेख घटना का हूवहू चित्रण उपस्थित करता है। अत. वास्तविक प्रतीत होता है। इस अति स्पष्ट उल्लेख को ही सथारे की सपन्नता की सही तिथि मानना ठीक होगा।

सभव है सथारा ९मी की रात्रि के पश्चिम काल मे सम्पन्न हुआ हो, दशमी तिथि का प्रात काल निकट होने से व्यवहार भाषा मे उसे दशमी को सम्पन्न लिखा हो और आपका और साधु रामजी का सथारा एक दिन पूर्ण हुआ वता दिया गया हो। दीक्षा विवरण(पृ० ६७) मे आपका देहान्त स० १८७८ का लिखा है वह अशुद्ध है। इस उपेक्षा से तीसरे और द्वितीय अभिमत मे कोई अन्तर नही रहेगा। प्रथम अभिमत सही नही है।

सती विवरण मे आपका सथारा-स्थान खेजडला वताया गया है, पर यह उल्लेख गलत है। प्राचीन सभी उल्लेखो मे माधोपुर का नाम सथारा-स्थल के रूप मे वर्णित है।[2] 'खेजडला' मे आपका नही नवराजी का सथारा सम्पन्न हुआ।

यति हुलासचन्दजी ने एक स्थल पर आपको आचार्य रायचन्दजी की माता वतलाया है, जो स्पष्टत. भूल है।[3]

आप वड़ी ही गुणवान और बुद्धिमान साध्वी थी। आपको 'महासती', 'मोटी सती' कहा गया है।

---

१. साध्वी कुशालाजी की ढाल, गा० ५, ६, ७

२. देखे—पूर्व टिप्पणिया

३ हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सत माला गा० १९५-९६.

हिय साम भ्रात मुनि रामजी रे, सवत् अठारै सत्तरै आय।
इन्द्रगढ चौमासो ते मझे रे लाल, च्यार मास एकातर कराय।।
तिहा काती सुदि दशमी दिन रे, च्यार पहर सथार सीझाय।
तिण हिज दिन माधोपुर मझै रे लाल, ऋषिराय नी मात।।
कुशालाजी नो आयु अत थाय।।

खुसालाजी मोटी सती रे, तपस्या कीधी करूर रे।
केसरिया कर झाखीया रे लाल, काम किया चकचूर रे।।
महासती कुसलांजी रा गुण गावस्यू रे लाल ।।
एहवी सलेपना सुणिया थका रे, आवे अधिक सतोक रे।
तो महासती नो कहियो किसू रे लाल, वेगी जानी दीमे मोख रे।
महासती कुसलाजी रा गुण गावस्यू रे ।।[1]

आचार्य भिक्षु के देहान्त के वाद आपका सथारा चौवीसवा वताया गया है :

स्वाम भीखणजी पाछै किया, सथारा ते वीस।
चौवीसमो सथारो सती तणो, पचीसमो राम जगीस ।।[2]

१. कुसालांजी गुर्ण वर्णन ढाल ६, १०.

२. वही, दो० २

५१. साध्वी नाथांजी

साध्वी कुशालाजी (५०) की तरह आप भी पाली (मारवाड) की रहने वाली थी। 'ससार लेखे ऋद्धिवती', 'वडी साहिवी तजी नाथाजी' जैसे उल्लेखो से पता चलता है कि आप वहुत ही सम्पन्न घराने की थी और प्रचुर धन सम्पत्ति और वडे परिवार को छोड़कर दीक्षा ग्रहण की थी।[1] आपके पति का देहान्त दीक्षा के पूर्व हो चुका था।

आपकी दीक्षा भी भिक्षु द्वारा पाली मे स० १८५९ के चातुर्मास मे अथवा मार्गशीर्ष वदि मे उसी दिन सम्पन्न हुई जिस दिन कुशालाजी (५०) और वीन्नाजी (५२) की। दीक्षा के वाद आपको सती कुशालाजी (५०) और वीन्नाजी (५२) के साथ साध्वी वरजूजी (३९) को सौंप दिया गया था।[2]

आप साध्वी वरजूजी (३९) के देहान्त तक अर्थात् स० १८८८ तक उन्ही के सिघाडे मे रही। उनके देहान्त के वाद आप स्वतत्र सिंघाडपति के रूप मे विचरण करती रही। साध्वी वरजूजी (३९) के साथ की साध्विया कमलूजी (९४) और रायकवरजी (११२) आपके स्वर्गवास तक आपके साथ रहीं।

साध्वी रायकुवरजी को साध्वी वरजूजी का १६ महीने, आपका १२ वर्ष एवं साध्वी कमलूजी का १५ वर्ष का सान्निध्य प्राप्त हुआ।[3]

---

१. (क) जय (भि०ज०र०), ५२।२४ :

नाथाजी गाम जसोल न्हाली, वर संथारी सुविशाली।
ससार लेखे ऋद्धिवती, समणी शुद्ध प्रकृति सोहंती हो॥

(ख) जय (शा०वि०), २।३३ :

वडी साहिवी तजी नाथाजी, प्रकृति सौम्य अति सुखदायी।
सताणुए सथारो सखरो, गण मे अति कीर्ति पायी॥

२. देखिये—प्रकरण ५० और इसकी पा० टि० १

३ साध्वी रायकवर गुण वर्णन ढाल गा० १,५,६ :

व्रजुजी नाथाजी कलू तणी जी, सेवा करी रूडी रीत।
चढतै परिणाम चित्त निरमलै जी, पूरण पाली प्रीत॥
मास सौलेरे आसरै जी, व्रजूजी नी करी सेव।
भक्ति करी भली भात सू जी, अलगो करी अहमेव॥
वर्स वारै रै आसरै जी, नाथाजी री सेव तन मन।
जाझा पनरै वर्सा लगै जी, कमलूजी नै कीया प्रसन्न॥

आचार्य रायचन्दजी का १८९६ का चातुर्मास पाली मे था। आपका चातुर्मास साथ मे था। वहा आचार्यश्री ने अणदोजी (१७०) को दीक्षित किया और दीक्षा के बाद आपको सौंपा।[1]

आपने अन्त मे संथारा किया जो स० १८९७ मे जसोल मे सम्पन्न हुआ।[2]

आपकी प्रकृति निर्मल, सौम्य और सरल थी। आप वडी विनयशील थी। आप साध्वियो को वडी सुखकर थी। सबकी प्रिय और मनभाविनी थी। गण मे आपकी वड़ी कीर्ति थी।

सती विवरण मे लिखा है—"वडी गुणवान, तपस्या घणी कीधी।"[3]

---

१. जय (ऋ० रा० सु०) ११।दो०१,३ :

पाली प्रगट छन्नुए, चौमासो सुखकार।
चौमासे भैला हुता; नाथाजी सुविशाल॥
श्रमणी एक थई तिहा, परम पुज्य पै न्हाल॥

२. देखिए—पूर्व पृष्ठ, पा० टि० १

३. (क) ख्यात : प्रकृत री वडी भद्रीक विनयवान गुण मे आछी शोभा लीधी। स० १८९७ गाम जसोल मे सथारो आयो।

(ख) हुलास (शा०प्र०) भिक्षु सतीमाला, ७१ :

वड विनय जेहनी प्रकृति सौम्य सुखदाय।
सताणमे संथारो कर नाथा सुरपद पाय॥

५२. साध्वी बीझांजी

आप वीजाजी के नाम से भी प्रसिद्ध रही। आपने वैधव्य अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की थी।

साध्वी कुशालाजी (५०) और नाथाजी (५१) की तरह आप भी पाली (मारवाड) की निवासिनी थी। आपकी दीक्षा भी उक्त साध्वियो के साथ ही आचार्य भिक्षु द्वारा पाली मे सं० १८५६ मे सम्पन्न हुई थी। दीक्षा के वाद आपको भी साध्वी वरजूजी (३६) को सौंपा गया था।[1]

आपने जीवन के अन्तिम साढे चार महीनो मे वडी ही विकट तपस्या की थी। उत्कृष्टत आपने वत्तीस दिन के उपवास की तपस्या की, तदुपरात आपने सथारा किया।

> १. तप दिवस वतीस सुतपियो, जिन जाप वीजाजी जपियो।
> तीन दिवस तणो सथारो, वर्ष छियासीयैं अवधारी हो॥[2]
> २. वीझाजी चौमासे वहु तप, छेहडै दिवस वतीस किया।
> अष्टम भक्त करी सथारो सखरो, वर्ष छियासियै सुयश लिया॥[3]

आपका स० १८८६ का चातुर्मास जयपुर मे था। उस समय आपके कुछ अस्वस्थता हुई। चातुर्मास के पश्चात् वहा से विहार कर आप कृष्णगढ आई। तीन दिन वहा रह अजमेर पधारी और वहा पाच दिन रही। वाद मे कालू और वलूद होती हुई पौष वदि ६ वुधवार के दिन लाटोती पधारी। दोस्तो की साधारण शिकायत हो गई। आपका मन तपस्या करने की ओर झुक गया। आर्याओ ने निवेदन किया कि आप जल्दी न करे, अभी आपकी खुराक अच्छी है। पर आपका उत्तर रहा—"अभी उत्तम अवसर है। मैं सहर्ष तपस्या कर खेवा पार करूगी।"

साध्वी हस्तुजी (५६), चनणाजी (६४), जमूजी (६६), मगदूजी (६६), दोलाजी (१०८) और एक अन्य साध्वी—कुल छ. साध्वियां आपके साथ थी। चार आर्याओ को आपने

---

१. देखिए प्रकरण ५० और उसकी पाद-टिप्पणी १

२. जय (भि०ज०र०), ५२।२५

३. जय (शा०वि०), २।३४

सर्व साधु-साध्वियों से खमत-खामणा किया। मन अत्यन्त हर्ष-विभोर था।[1]

शासन विलास आदि के अनुसार आपने अन्तिम तेले का पारण न कर पारण के दिन ही संथारा ठा दिया था। ६ दिन के अनशन में तीन दिन का संथारा आया।[2] आपका संथारा सं० १८८६ की वैसाख सुदी ६ को पूरा हुआ। आप लाटोती में स्वर्गवास हुई।[3]

आपने सं० १८५९ चातुर्मास में दीक्षा ली थी। सं० १८८६ में आप स्वर्गस्थ हुई। इस प्रकार आपने २७ वर्ष संयम का पालन किया।[4]

जयाचार्य ने सं० १८९० के वैशाख महीने में आमेट (मेवाड़) में रचित अपनी एक कृति में आपका संथारा सं० १८८७ वैशाख सुदी ६ के दिन पूर्ण हुआ बताया है।[5] जयाचार्य सं० १८८९ के शेषकाल में मेवाड़ पधारे थे[6], न कि सं० १८९० के शेषकाल में।[7] इससे स्पष्ट है कि उक्त ढाल का रचना वर्ष एवं उसमें उल्लिखित आपका स्वर्गवास वर्ष दोनों पंचांग के अनुसार उल्लिखित है, न कि साधु संवत् के अनुसार। उक्त वर्षों के पर्यायवाची साधु संवत् १८८९ और संवत् १८८६ ही है।

---

१. बीजां सती गुण वर्णन ढाल गा० १२-१३ :
तीन आहार संथारो पचखीयो,
तीन पोहर चोवीहार जाणज्यो, चोथी पोहर लेता पाणी तिवारो ॥
आलोवण कीधी तिहां मन में हर्ष अपारो।
साध साधवी खमावीया, न राखो मल लिगारो ॥

२. (क) जय (शा० वि०), २।३४ वार्तिक :
तेलो करी पारणो कियां विना संथारो पचख्यो, तीन दिन रो संथारो एवं ६ दिन रो अणसण सीझ्यो।
(ख) ख्यात, क्रम ५२
(ग) हुलास (शा० प्र०)

३. देखिए—इस प्रकरण का प्रारम्भिक अंश

४. (क) जय (शा० वि०), २।३४ वार्तिक :
सताईस वर्ष रै आसरै साधुपणो पाल्यो।
(ख) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला, ३९ :
गुणसठा थी लेई छियासिया लगसार।
सताईस वर्ष आसरै पाल्यो संयम श्रीकार ॥

५. बीजां सती गुण वर्णन ढाल, गा० १४ :
संमत अठारै सीत्यासीये, मास वेसाख जाण।
सुकल पष छठरे दिने, संथारो सिज्झो जाण ॥

६. मघवा (ज० सु०), ढाल १९

७. वही, ढाल २०

साध्वी हस्तुजी (५६), चन्दनाजी (६४), जसूजी (६६), मगदूजी (६६) तथा दोलांजी (१०८) आदि ने आपकी वडी सेवा की

हस्तुजी चनणाजी जसूजी सती, वलै मगदूजी सार।
दोलाजी दिल उजले, कीधी सेवा तिवार॥[1]

आपके विषय मे कहा गया है : "शासन मे वड़ी शोभा लीधी।"[2] ख्यात मे लिखा है "वडा गुणवान।"

---

१. वीजा सती गुण वर्णन, ढा० गा० १५
२. जय (शा० वि०), २।३४ वार्तिक

५३. साध्वी गोमांजी

आप रोयट (मारवाड) की निवासिनी थी। आपके ससुराल वाले गोलछा थे। आप साधु सरूपचन्दजी, भीमजी और आचार्य जीतमलजी की कौटुम्बिक सम्बन्ध मे चाची लगती थी।[1] आपकी दीक्षा स० १८५६ मे हुई थी[2], पर किसके द्वारा, कहा, कब सम्पन्न हुई, इसका उल्लेख आपसे सम्बन्धित सदर्भो मे नही है। दीक्षा के पूर्व ही आपके पति का देहान्त हो चुका था।

आचार्य भिक्षु का स० १८५८ का चातुर्मास केलवा (मेवाड) मे था। इस वर्ष के समाप्त होने के पूर्व ही आप मारवाड प्रात मे पधार गए और स० १८५९ का चातुर्मास पाली मे किया और तदुपरात प्राय[3] मारवाड़-प्रात मे ही विचरते रहे। इस अन्तिम मारवाड-कालीन यात्रा मे भिक्षु द्वारा सात साध्वियो की दीक्षाए हुई थी, ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है

१. उपगार कीयो दोय बरस मे, मारवाड मे आया।
चार साध सात साधव्या हुई, त्या सयम लीयो सुखदाया ॥[4]

---

१. (क) जय (शा० वि०), २।३५
गोमाजी रोयट ना वासी, वर्ष गुणसठै लीध दीक्षा।
वर्ष नेउए हद सथारो, सतगुरु नी धारी शीक्षा॥

(ख) जय (भि० ज० र०), ५२।२६
सरूप भीम जीत ना ताह्यौ, कलुवै काकी कहिवायौ।
गुणसठे दीक्षा गुणवती, गोमाजी नेवुयै पार पहोती हो॥

(ग) ख्यात गोमाजी रोयट नां वासी भीम जीत नी कडुवे काकी स० १८५९ दीक्षा।

(घ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला, ८०-८१
गोमा गुणवती रोयट ना वसिवाण, सरूप भीम जयनी कुडवे काकी जाण।
गुणसठे दीक्षा वड भद्रक सुभ ध्यान, निवै सथारो पाच पौहर अनुमान॥

२ देखिए—पा० टि० १

३. भिक्खु दृष्टान्त, दृ० १११ मे ऐसा उल्लेख है कि आप स० १८५९ मे देवगढ (मेवाड) पधारे, अत प्राय शब्द का व्यवहार किया गया है।

४. हेम (भि० च०), ५।दो० २

२ करता पर उपगार, आया मुरधर देश मझार।
चरम उपकार हुवो घणोजी ॥
चार भाया ने बाया सात, त्या दीख्या लीधी जोडे हाथ।
वेरागे घर छोडिया जी ॥[1]

इन सात मे से तीन (५०-५२) का भिक्षु द्वारा स० १८५९ मे पाली मे दीक्षित करने का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त है।[2] उक्त उद्धरणो के अनुसार आपकी दीक्षा भी आचार्य भिक्षु द्वारा ही मारवाड प्रदेश मे कही सम्पन्न होनी चाहिए। दीक्षा स० १८५९ के शेषकाल मे हुई। यही वात आपके वाद की तीन साध्वियो (५४-५६) के सम्वन्ध मे लागू पडती है।

आपने स० १८९० मे सथारापूर्वक पण्डित-मरण प्राप्त किया। आपको लगभग पाच प्रहर का सथारा आया।[3]

आप वडी गुणवती साध्वी थी। ख्यात मे कहा है—"वडी भद्रीक नीतवान विनेवान आछो चारित्र पालन सथारो कियो।"

आपके जीवन के अन्तिम ३१ वर्ष साधु-जीवन मे व्यतीत हुए।

---

१. वेणी (भि० च०), ५।४-५

२ देखिए—पूर्व प्रकरण ५० मे ५२

३. देखिए—पा० टि० १ तथा ख्यात आछो चारित्र पाल स० १८९० संथारो कीयो ५ पहर आसरै।

५४. साध्वी जसोदांजी

आपके सम्वन्ध मे वहुत थोडा विवरण मिलता है। आप खेरवा की निवासिनी थी और आपने भिक्षु के स्वर्गवास के वहुत वर्षो वाद संथारा कर पण्डित-मरण प्राप्त किया था।[1]

आपकी दीक्षा किसके द्वारा, कहा, कव सम्पन्न, हुई इसका कोई स्वतंत्र उल्लेख नही मिलता। आपने वैंधव्य अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की थी।

आपने सं० १८५६ के मारवाड़ प्रवास मे भिक्षु द्वारा साध्वियों की सात दीक्षाएं सम्पन्न हुई थी, यह हम पूर्व प्रकरण (५३) मे वता आए हैं। वहा यह भी वताया जा चुका है कि उक्त सात साध्वियो मे से प्रथम तीन की दीक्षा स० १८५६ में पाली चातुर्मास में भिक्षु द्वारा सम्पन्न हुई थी। पूर्व प्रकरण (५३) में उद्धृत उल्लेखो के आधार पर कहा जा सकता है कि आपकी दीक्षा भी भिक्षु के हाथो से स० १८५६ के शेपकाल मे मारवाड प्रदेश मे ही कही सम्पन्न हुई।

स० १८७६ भादवा सुदी ७ के दिन रचित पण्डित-मरण नामक ढाल मे स० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व दिवगत साध्वियो के नाम सकलित है।[2] उनमे आपका नाम भी गर्भित है। अत' यह सुनिश्चित है कि आपका स्वर्गवास सं० १८७८ माघ वदी ८ के पूर्व हुआ था।

---

१. (क) जय (भि० ज० र०), ५।२७

जसोदा खैरवा निवासी, डाहीजी नोजाजी विमासी।
सजम भिक्खु छता सारो, वहु वर्प पाछै सथारो हो॥

(ख) जय (शा० वि०), २।३६ .

सती जसोदा डाही नोजां, स्वाम छता सयम सारो।
वर्प कितायक चरण पालने, अणसण कर पामी पारो॥

(ग) पण्डित-मरण, ढा० २ गा० १३ .

जसोदाजी डाहीजी दोनू सथारो।
नोजाजी पीसागण उतरी पारो॥

(घ) ख्यात ' खेरवा रा भिक्षु छता दिक्षा पछै घणा वरसा पछै सथारो।

(ङ) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला, ८२ '

वलि सतिय जसोदा डाहा नोजा जाण।
स्वामी छता दिक्षा अणसण अत कराण॥

२. पण्डित-मरण ढा०, २।१३ . पा० टि० १ (ग) मे उद्धृत।

भिक्षु के स्वर्गवास (स० १८६० भादवा सुदी १३) और मुनि डूगरसीजी (४२) के देहान्त (स० १८६८ जेठ सुदी ७) के बीच १७ सथारे हुए थे। उनमे आपकी परिगणना नहीं है।[1] आपका नाम उन पाच सथारो मे आया है, जो मुनि डूगरसीजी (४२) और साध्वी कुशलाजी (५०) के संथारो के अन्तराल मे हुए। अत आपका स्वर्गवास स० १८६८ जेठ सुदी ७ और स० १८७० कार्तिक सुदी १० के बीच हुआ मानना होगा।

आपके जीवन के अन्तिम आठ से अधिक वर्ष साध्वी-जीवन मे व्यतीत हुए।

---

१. देखिए—परिशिष्ट २

५५. साध्वी डाहीजी

आपके सम्वन्ध मे केवल इतना ही उल्लेख प्राप्त है कि आपने संथारापूर्वक पण्डित-मरण प्राप्त किया था।[1]

"जसोदा खेरवा निवासी, डाहीजी नोजाजी विमासी" (जय (भि० ज० र०), ५।२७) के आधार पर सती विवरणी मे कल्पना की गई है कि आप खेरवा निवासिनी थी, पर यह ठीक नही लगता।

आपकी दीक्षा कहा, कव किसके हाथ से हुई, इसका एक भी स्वतत्र उल्लेख नही मिलता, पर जैसा कि पूर्व विवरण मे वताया जा चुका है, आपकी दीक्षा भी स० १८५९ के शेपकाल मे मारवाड प्रदेश मे भिक्षु से द्वारा सम्पन्न हुई संभव लगती है।[2] आपने वैधव्य अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की।

भिक्षु के संथारे के समय आप वगतूजी (२७) और झूमाजी (४८) के साथ सिरियारी आयी थी। इससे लगता है कि दीक्षा के वाद आप साध्वी वगतूजी को सौप दी गई थी।[3]

स० १८७९ भादवा सुदी ७ की पण्डित-मरण ढाल से निर्णीत है कि आपका सथारा स० १८७८ की माघ वदि ८ के पूर्व हो चुका था, कारण उस कृति मे उक्त समय तक दिवगत हुई साध्वियो मे आपका नाम गर्भित है।[4]

स० १८६८ जेठ सुदी ७ और स० १८७० कार्तिक सुदी ९ के वीच ५ राथारे सिद्ध हुए। इन पाच मे आपका नाम आता है, अत· आपका स्वर्गवास उक्त अवधि मे हुआ मानना चाहिए।[5]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आपका साध्वी जीवन काफी दीर्घ रहा। अनेक वर्ष संयम पालन करने के वाद सथारा कर आपने आत्मार्थ साधा।[6]

---

१. देखिए—प्र० ५४, पा० टि० १

२ देखिए, प्र० ५३ और ५४

३. देखिए, प्र० २७

४ प्र० ५४, पा० टि० १ (ख)

५ देखिए, परिशिष्ट, क्रम ५

६. (क) देखिए, प्र० ५४ पा० टि० १

(ख) ख्यात डाहीजी नोजाजी ए दोनू भिक्षु छता दिक्षा पछै केइ वरस पछ दोनू सथारो।

(ग) हुलास (शा० प्र०) भिक्षु सतीमाला, ८२, (प्र० ५४ पा० टि० १ (घ) मे उद्धृत।

५६. साध्वी नोजांजी

आपके विपय मे मात्र इतना ही उल्लेख पाया जाता है कि अनेक वर्षो तक साध्वी-जीवन का पालन करने के वाद आपने सथारा किया, जो पीसागण मे पूर्ण हुआ।[1]

"जसोदा खेरवा निवासी, डाहीजी नोजाजी विमासी" (भि० ज० र० ५।२७) के आधार पर साध्वी डाहीजी की तरह ही आपके विषय मे भी कल्पना की गई है कि आप खेरवा मे रहने वाली थी। सती विवरण मे आपको स्पष्टत खेरवा वासी कहा गया है, जवकि पूर्व की किसी भी कृति मे ऐसा उल्लेख नही। उक्त उद्धरण से आप खेरवा निवासी सिद्ध नही होती।

प्रकरण ५४, ५५ की साध्वियों की तरह आपकी दीक्षा भी स० १८५९ के शेषकाल में हुई। उन्ही आधारो पर कहा जा सकता है कि आपकी दीक्षा भिक्षु द्वारा मारवाड के विहार-काल मे सम्पन्न हुई सभव लगती है। आप दीक्षा के समय विधवा थी।

पण्डित-मरण ढाल के अनुसार आपका स्वर्गवास स० १८७८ माघ ८ के पहले हुआ था। स० १८६८ जेठ सुदी ७ के दिन मुनि डूगरसीजी का सथारा सम्पन्न हुआ। आचार्य भिक्षु के स्वर्गवास के वाद उक्त स्वर्गवास तक १७ सथारे हो चुके थे। उनमे आपका नाम नही आता, अत आपका देहान्त स० १८६८ जेठ सुदी ७ तक नही हुआ। आपका नाम उन पाच सथारो मे है, जो स० १८६८ जेठ सुदी ७ और स० १८७० कार्तिक सुदी १० के वीच सम्पन्न हुए। अत आपका स्वर्गवाम इसी अवधि मे हुआ था।[2]

१. (क) देखिए, प्र० ५४, पा० टि० १
   (ख) देखिए, प्र० ५५, पा० टि० ६
   (ग) हुलास (शा० प्र०), भिक्षु सतीमाला ८२, प्र० ५४ पा० टि० १ (घ) मे उद्धृत।

२ देखिए, परिशिष्ट २

उपसंहार

आचार्य भिक्षु के आचार्यत्व-काल मे प्रव्रजित ५६ साध्वियो का विस्तृत विवरण ऊपर दिया जा चुका है। इनमे से सतरह गण मे नही रही। उनतालीस ही गण मे रही।

जो सतरह गण मे नही रही, उनकी सूची इस प्रकार है :

सतरै छुटक नाम तसु, अजबू[१] नेतू[२] ताय।
वलि फतू[३] नै अखू[४], फिर अजबू[५] कहिवाय ॥१४॥
चन्दूजी[६] चैना[७] छूटक, धनु[८] केली[९] धार।
रत्तू[१०] नदू[११] फिर रत्तु[१२], बनां[१३] थई गण बार ॥१५॥
लाला[१४] परवस नीकली, जसु[१५] चोखी[१६] वीरां[१७] जान।
सतरै छूटक साभली, गण गुण्याली सुजान ॥१६॥[१]

जो ३९ गण मे रही उनके नाम इस प्रकार है :

कुशला[१] मटु[२] कहाय, सुजाणा[३] कहियै साची।
देउ[४] गुमानां[५] देख, कसुवाजी[६] नहि काची ॥
जीऊ[७] मैणा[८] जिहाज, रंगू[९] सदा[१०] फूला[११] सुखकारी।
अमरा[१२] तेजु[१३] आण, वलि वगतु[१४] वृद्धकारी ॥
हीरा[१५] हीर कणी जिसी, सती शिरोमणि शोभती।
निकलंक नगा[१६] अजवू[१७] निमल, महियल ए मोटी सती ॥२॥
पन्ना[१८] सती पिछाण, गुमाना[१९] खेमा[२०] गुणियै।
रूपाजी[२१] वर रीत, सरूपां[२२] समणी सुणियै ॥
वरजु[२३] वीजा[२४] विशाल, बना[२५] ऊदां[२६] हर वारू।
झूमा[२७] हस्तु[२८] जिहाज, कुशाला[२९] गण सुखकारू ॥
कस्तुरा[३०] जोतांजी[३१] कही, शुद्ध सजम नौरा[३२] सजी।
इक वर्ष माहि व्रत आदर्या, पांचू या प्रीतम तजी ॥३॥
मखर खुशाला[३३] सती, पवर नाथा[३४] पुनवंती।
विनय वीजा[३५] सुविनीत, धणू गोमा[३६] गुणवंती ॥

---

१. जय (भि० ज० र०) ५२, दो० १४-१६ तथा देखिये जय (शा० वि०) २ कुंडलिया १-३

चर्ण यशोदा[३७] चित्त, हियै डाही[३८] हरपती।
नौजा[३९] निमल निहाल, स्वाम आणा समरती॥
ए गुणचालीस अजा गण मै अखी, एक सोनार सुजाणियै।
कुलवत इतरी सतिया कही, वडी वैराग वखाणियै॥४॥[१]

दीक्षित साध्वियो मे से कुछ के विषय मे विशेष विवरण इस प्रकार मिलता है

ए स्वाम तणौ गण सारू, छपन गण चरण प्रकारू।
सतरै छुटक हुई अजा, छोडी लौकिक लोकोत्तर लजा हो॥
रही गुणचालीस गण राची, पिउ छाड सात व्रत जाची।
दोय वहिन भाया रा जोडा, सतजोगी वेणीराम सु होडा हो॥
ऋष रायचन्द मा साथे, सजम लीधौ पूज हाथे।
आख्यौ ममणी नौ अधिकारी, औ तो भिक्खु तणौ उपगारो हो॥[२]

उक्त विवरण के अनुसार सात साध्वियो ने पति छोडकर दीक्षा ली थी। इन सात के नाम इस प्रकार है

१ मैणांजी	(१५)	५ कस्तुजी	(४७)
२. रूपाजी	(३७)	६ जोताजी	(४८)
३. खुसालाजी	(४६)	७. नोराजी	(४९)
४ हस्तुजी	(४५)		

साध्वी रूपाजी (३७) और खुसालाजी (४६) साधु खेतसीजी की वहिने रही।

साध्वी खुसालाजी (४६) तृतीय आचार्य रायचन्दजी की मा थी।

साध्वी नगाजी (२९) साधु वेणीरामजी की वहिन थी।

उक्त ३९ साध्वियो के सथारा करने, न करने की स्थिति भिन्न-भिन्न कृतियो मे निम्न रूप मे प्राप्त है—

१ जय (भि० ज० र०) ५२। छप्पय २-४ तथा देखिए जय (शा० वि०) २ छन्दगीतक १।३

२. जय (भिक्खु) ५२। २८-३०

१ क्रम	२ नाम	३ पंडित-मरण ढाल के अनुसार	४ जय (भि० ज०-र०)	५ जय (शा० वि०)	६ ख्यात	७ हुलास (शा० प्र०)
१	कुशालाजी (१)	पण्डित-मरण	प०म० (गुदोच)	प०म० (गुदोच)	प०म० (गुदोच)	सथारा (गुदोच)
२	मटुजी (२)	,,	,,	,,	,,	,, ,,
३	सुजाणाजी (४)	,,	,,	,,	,, (आ०-प०)	,, ,,
४	देऊजी (५)	,,	,,	,,	,, ,,	,, ,,
५	गुमानाजी (७)	सथारा	सथारा	सथारां	सथारा	सथारा
६	कुसुमाजी (८)	,,	,,	,,	,,	,,
७.	जीऊजी (९)	,,	,, (पीपाड)	,, (पीपाड़)	,, (पीपाड)	,, (पीपाड)
८	मैणाजी (१५)	,, (१८६०)	,, (१८६०)	,, (१८६०)	,, (१८६०)	,, (१८६०)
९.	रगूजी (२०)	प०-म०	प०म० (सिरियारी)	प०म० (सिरियारी)	प०म० (सिरियारी)	,, (सिरियारी)
१०	सदाजी (२१)	सथारा	सथारा	सथारा	सथारा	सथारा
११.	फूलाजी (२२)	,,	,, (लाटोती)	,,	,, (लाटोती)	,, (लाटोती)
१२.	अमरांजी (२३)	,,	,,	,,	,,	,,
१३.	तेजूजी (२५)	,,	,,	,, (केलवा)	,, (४६ दिन का)	,, (केलवा)
१४.	वगतूजी (२७)		,,	,, (कटालिया)	,, (स्वामीजी के बाद	,, (कटालिया)
१५.	हीराजी (२८)	,, (१८७८)	,,	,, (१८७८) चेलावास	,, (चेलावास)	,, (१८७८) चेलावास
१६.	जसुजी (२९)	,, (स्वामीजी के बाद)	,,	,,	,, (देवगढ)	,, (देवगढ)
१७.	अजबूजी (३०)		संथारा (१८८८)	,, (१८८८)	प०म० (१८८८)	,, (१८८८)
१८.	पन्नाजी (३१)	,,	संथारा	,,	सथारा	,, (राजगढ)
१९	गुमानांजी (३३)	,,	,, (राजनगर)	,,	,, दो मास का (राजनगर)	,, ,,
२०.	खेमाजी (३४)	,,	,, (खैरवे)	,, (खैरवा)	,, (खैरवा)	,, (खैरवा)
२१.	रूपाजी (३७)	,,	,, (१८५७)	,, (१८५७)	,, (१८५७)	,,

१	२	३	४	५	६	७
२२	स्वरूपाजी (३८)	सथारा	सथारा (कटालिया)	सथारा (कटालिया)	सथारा (कटालिया)	सथारा (कटालिया)
२३.	वरजूजी (३९)		,,	प० म०	प०म० (ईडवा)	,,
२४.	वीजाजी (४०)		,,	सथारा (कटालिया)	सथारा (कटालिया)	,, (कटालिया)
२५.	वनाजी (४१)	,,	,,	,, (१८६७)	,, (१८६७)	,, (१८६७)
२६.	उदाजी (४३)	,,	,, (आमेट)	,, आमेट	,, (आमेट)	,, (आमेट)
२७	झूमाजी (४४)		,,	,, (बगडी)	,, (बगड़ी)	सलेपणा
२८	हस्तूजी (४५)		,, (१८९७)लाहवा	,, (१८९७)	,, (१८९७) लाहवा	सलेपणा(१८९७)
२९.	खुशालाजी (४६)	,,		,, (१८६७)	, (आउवा)	सथारा(१८६७)आउवा
३०.	किस्तूराजी (४७)	,,	,, (१८७७)उज्जैन	,, (१८७७)	,, (१८७७)उज्जैन	,, (१८७७)
३१.	जोताजी (४८)			,, (१९०८)	सथारो (१८७०)	,, (१९०८)
३२.	नोराजी (४९)	,,	सथारा (१८७२)	,, (१८७२) खेजडला	,, (१८७२)खेजडला	,, (१८७२)खेजडला
३३.	कुशालाजी (५०)	,,	सथारा (१८७०)[1] माधोपुर	सथारा (१८७०) माधोपुर	उल्लेख नही (१८७०) माधोपुर	अणसण
३४.	नाथाजी (५१)		,,	,, (१८९७)	,, (१८९७)	सथारा (१८९७)
३५.	बीराजी (५२)		,, (१८८६)	,, (१८८६)	,, (१८८६) लाटोती	,, (१८८६) लाटोती
३६	गोमाजी (५३)		(१८९०)	,, (१८९०)	,, (१८९०)	,, (१८९०)
३७.	जशोदाजी (५४)	,,	सथारा	सथारा	,,	,,
३८.	डाहीजी (५५)	,,	,,	,,	,,	,,
३९	नोजाजी (५६)		,,	,,	,,	,,

१. यहां मूल में सतनरै माधोपुर में कार्तिक मास में भारमलजी के चातुर्मास में सथारा सीझने का उल्लेख है, पर १८७७ का चातुर्मास सिरियारी था। माधोपुर में स० १८७० का था

प्रथम कृति पडित-मरण ढाल मे आचार्य भिक्षु और आचार्य भारमलजी के काल में दिवगत हुई साध्वियो का ही उल्लेख है। भिक्षु के युग की जिन साध्वियों का स्वर्गवास वाद मे हुआ, उनका विवरण इस कृति का विषय नही है। अत सूची मे उन नामों के सामने क्रोस (×) कर दिया गया है। ऐसी स्थिति में इस कृति से ३९ साध्वियो मे से कितनी साध्वियों ने संथारा किया, इसका पूरा पता नही चल सकता। आचार्य भारमलजी के युग तक दिवगत भिक्षु की २९ साध्वियो मे से ७ (१,२,३,४,९,३९) के विषय मे सथारा करने का उल्लेख इस कृति मे नही पाया है। अत इसमे २२ (२९-७) सथारों का उल्लेख पाया जाता है।

द्वितीय कृति जय (भि० ज० र०) मे ३९ ही साध्वियों के विषय मे विवरण प्राप्त है। इसमे १,२,३,४,९ और १७, २९, ३१ एव ३६ क्रमांक की साध्वियों के विषय मे सथारा करने का उल्लेख नही है। अतः इसमे, उल्लिखित सथारों की सख्या ३० (३९—९) होती है।

तृतीय कृति जय (शा० वि०) मे क्रमांक १७ की साध्वी के संथारा करने का उल्लेख है, जबकि क्रमाक २३ की साध्वी के केवल पडित-मरण करने का तथा इसके अतिरिक्त साध्वी क्रमाक २९, ३१, ३६ के सथारा करने का भी उल्लेख है। साराश में यह है कि इस कृति मे १, २, ३, ४, ९ एव २३ क्रमाक की साध्वियो के सथारा करने का उल्लेख नही है। अत उल्लिखित सथारो की सख्या ३३ (३९—६) होती है।

चौथी कृति मे द्वितीय कृति की तरह क्रमांक १७ की साध्वी के सथारा करने का उल्लेख नही है। इस अन्तर के अतिरिक्त तृतीय और चतुर्थ कृति मे कोई अन्तर नही। एक सथारा (१७) और घट जाने से इस कृति के अनुसार सथारो की सख्या (३९—७) ३२ होती है।

पचम कृति के अनुसार सभी साध्वियों ने सथारा किया था। अत सथारो की सख्या ३९ होती है, परन्तु १, २, ३, ४ और ९ क्रम की साध्वियो के संथारे अन्य किसी भी प्राचीन कृति से समर्थित नही है। अत यह कथन गलत ही है। क्रम १७ का सथारा जय (शा०वि०) से समर्थित है और क्रम २३ का सथारा जय (भि० ज० र०) से। दोनो का सथारा ठीक मान लेने पर सथारो की सख्या ३४ (३९—५) होती है। सथारो की सख्या इससे अधिक सभव नही। अगर १७ और २३ मे से किसी एक ही साध्वी ने सथारा किया और निर्णय करना कठिन होने से एक कृति मे एक और दूसरी कृति मे दूसरा सथारा स्वीकार किया गया हो तो सथारो की सख्या अधिक-से-अधिक ३३ ही होगी।

श्री सेठियाजी ने अपनी कृति विशेष 'साध्वी गुण वर्णन' मे साध्वियो के ३२ सथारे और दूसरी कृति शासन-सुषमा मे ३४ सथारे माने है। पहली कृति के अनुसार क्रमाक १. (कुशालाजी), २. (मटुजी), ३ (सुजाणाजी), ४. (देऊजी), १४. (वगतूजी), २३. (वरजूजी) और ३० (किस्तूरांजी) ने सथारा नही किया। दूसरी कृति के अनुसार १. (कुशालाजी), २. (मंटुजी), ३ (सुजाणाजी), ४ (देऊजी) और २३. (वरजूजी) ने ही सथारा नही किया। पहली कृति मे १४. (वगतूजी) और ३० (किस्तूरांजी) का सथारा न मानना गलत ही था। सेठियाजी की दोनों कृतियो मे सती क्रम ९ (रगूजी) का देहान्त सथारापूर्वक माना गया है और २३ (वरजूजी) का स्वर्गवास विना सथारे। ९ (रगूजी) के सथारे करने की बात किसी भी प्राचीन कृति से समर्थित नही है, पर २३ (वरजूजी) के सथारे का समर्थन कम-से-कम एक प्राचीन कृति मे उपलब्ध है।

३

श्रावक-श्राविकाएं

तेरापथ के नामकरण की घटना के साथ जोधपुर मे १३ श्रावको का उल्लेख आता है। आचार्य भिक्षु के प्रखर तप, सयम सुरभित जीवन और अनवरत प्रचार-प्रसार कार्य के फलस्वरूप उनके श्रावक-श्राविकाओ की सख्या हजारो तक पहुच गयी थी। काल के तीव्र प्रवाह मे उनकी जीवन-गाथाए वह गई है। केवल कुछ प्रमुख श्रावक-श्राविकाओ के नाम चद घटनाओ के सदर्भ मे यत्र-तत्र मिलते है। उनमे भी इतिवृत्तात्मकता का निर्वाह नही हो पाया है, क्योंकि उद्देश्य का केन्द्र-विन्दु इनमे व्यक्त नही है अपितु उससे सम्वद्ध घटना और उसकी मानसगत प्रेरणा है। अत: प्राप्त नामो की भी इतिवृत्तात्मक रूपरेखा स्पष्ट नही है। यत्किचित इतिहास, जो इन स्फुट संस्मरणात्मक सदर्भो मे छिपा है, प्रस्तुत परिच्छेद मे आकलित किया जा रहा है। इसमे कालक्रम का निश्चित एव स्पष्ट निर्वाह तो सभव नही हो पाया है, किन्तु घटनाओ के समय-सदर्भो से एक धूमिल अनुमान अवश्य हो जाता है। अनेक स्थानो पर गावो का स्पष्ट सकेत नही है, पर घटना-स्थानो का सकेत देकर वर्णन मे स्थानीयता का ऐसा पुट दिया गया है जो उन व्यक्तियो को घटनाओ से सम्वद्ध स्थानो को ही सूचित करता है। इसके अलावा एक-आध घटनाए ऐसी है, जिनमे श्रावको के नामादि का भी उल्लेख नही हे, किन्तु वे घटनाए तत्कालीन श्रावको के इतिहास का अटूट खण्ड होने के कारण अतीव महत्त्वपूर्ण हे और दी जा रही हे। इसी स्फुट सामग्री के आधार पर प्रस्तुत परिच्छेद मे ऐतिहासिकता के आकलन का यत्किचित प्रयास किया गया है, जो अपूर्ण तो हो सकता है, परन्तु आपेक्षिक महत्ता से विरहित कदापि नही।

इन स्फुट घटनाओं से तत्कालीन श्रावक समाज का एक भव्य चित्र भी प्रस्तुत होता है, जिसमे रगो का पूर्ण सामजस्य यद्यपि न हो पाया हो, तथापि रेखाए व्यापकता और तीक्ष्ण स्पष्टता का आभास देती है। गुणग्राहकता, श्रद्धा, विनय, समवृत्ति, विनम्रता, युक्ति-चातुर्य, जिज्ञासा, उदारता, उत्सर्ग, हेतु ज्ञान, आस्था, प्रज्ञा और वाग्विदग्धता के प्रतिरूप इन श्रावको ने नीव के पत्थरो के रूप मे तेरापथ की आधार-शिला को सुदृढ़ वनाया, जिस पर आज चतुर्विध सघ का विशाल भवन खडा है।

आसोजी

आसोजी माढ्ढे के निवासी थे। आचार्य भिक्षु ने उनके व्याख्यान मे ऊघने की आदत विनोद द्वारा छुड़ाई।[1]

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० ४८

कचरदासजी बोहरा

पीपाड मे मोजीरामजी बोहरा के पुत्र कचरदासजी ने आचार्य भिक्षु को गुरु रूप मे स्वीकार किया। लोग कहने लगे—कचरदास ने भीखनजी को गुरु बना लिया है। पूर्व साथी उन्हे स्थानक मे ले जाकर उनको उपालभ देने लगे। साधु बोले—"भीखनजी की वदना करने का त्याग करो।" बहुत दबाने लगे। तब कचरदासजी बोले—"मुझे असाधुओ की वदना करने का त्याग करवा दे।" वे बोले—"असाधु कौन है? साधु कौन है?" कचरदासजी ने कहा—"यह बाद मे देख लीजिएगा। जिसे मै वदना नही करू वही असाधु।"

लोगो को आश्चर्य हुआ कि इतनी छोटी उम्र मे भी कैसी बुद्धिमता से सवाल-जवाब करते है।

कचरदासजी के पिता मोजीरामजी बोले—"यह ठीक ही त्याग करता है। असाधु की वदना का ही तो त्याग करता है, सो करा दे।" तब एक श्रावक बोले—इस लड़के को मोजीरामजी ने ही तो विगाडा है।

एक बार कचरदासजी और पूर्व परिचित साधु के बीच चर्चा हुई। साधु बोले—"सचित्र घर, पुष्पमाला, धूप, कपाट, धवलिका तथा चंदोवा इन छ. की एक साथ वान्छा नही करनी चाहिए, लेकिन केवल कपाट खोलने मे कोई दोप नही है।" तब कचरोजी ने एक दृष्टांत दिया—"छह जूतिया पडी थी। किसी व्यक्ति ने किसी से पूछा—'इस जूती की मार खाएगा?' उसने कहा—'नही।' इस प्रकार एक-एक कर तीन के बारे मे पूछा और उत्तर मिला—'नही।' चौथी जूती से मार खाने की बात पूछी तब बोला—'इस जूती से मार खाऊगा।' आप भी कपाट तो खोलते-बद करते है लेकिन पूर्व की चीजो के सेवन की स्थापना नही करते।" साधु बोले—"मूर्ख, तू साधु को जूती (से) मारने का नाम ले रहा है।" कचरोजी बोले—"मैने साधु का नाम कब लिया? आप ही तो अपने मुह से साधु की बात लाते है।"

केशरजी भंडारी

आप उदयपुर के निवासी थे। श्रावक शोभजी के सत्सग से आप प्रबुद्ध हुए। आप महाराणा भीमसिहजी के कृपापात्र थे। उच्च पद पर अधिष्ठित राज-कर्मचारी थे।

स० १८७६ मे विरोधियो ने महाराणाजी से आज्ञा प्रचारित कराकर आचार्य भारमलजी को उदयपुर से निकलवा दिया। इस अवसर पर भडारीजी ने अपने प्रभाव का उपयोग कर श्रावकोचित कर्तव्य का पालन किया। वे महाराणा से मिले, उनकी भ्रातिया दूर की। उन्होने अपनी आज्ञा वापिस ली। बाद मे राणाजी ने स्वहस्त से लिखकर एक रुक्का आचार्यश्री की सेवा मे भेजा और उदयपुर पधारने की अर्ज की, पर आचार्यश्री पधारे नही। बाद मे उन्होने फिर पधारने का निवेदन करते हुए दूसरा रुक्का भेजा। इस प्रार्थना पर आचार्यश्री स्वय तो नही पधार सके, पर १३ सतो के साथ मुनि हेमराजजी को भेजा। महाराणाजी मुनिश्री के दर्शन के लिए कइ बार आये।[1] धर्म चर्चा का लाभ लिया। एक बार राणाजी ने केसरजी से कहा—

---

१. प्रकीर्ण-पत्र(घटनात्मक)क्र०२० के अनुसार महीने मे ११ बार जुलूस से पधारकर दर्शन किए।

हम वैष्णवो के देवो की मूर्तिया प्राय खडे आकार मे होती है और जैनो के तीर्थकरो की बैठे आकार मे। इसका क्या कारण है ?"

केसरजी अपने स्थान से खडे हो गए और हाथ जोडकर कहने लगे . "दरबार सिंहासन पर विराजमान है और चाकर करबद्ध खडा है। वैसे ही समझे।"

इस विनोदपूर्ण उत्तर से महाराणा प्रसन्न हो उठे।

महाराणा ने एक बार केसरजी से कहा—एक अच्छे कथावाचक आये हुए है। उनकी कथा कराकर देखो।

केसरजी ने आज्ञा को शिरोधार्य किया। अनेक लोगो को निमत्रित कर पहले भोजन कराया। बाद मे कथाकार से कथनी प्रारभ करने का अनुरोध किया। कथाकार राणाजी से प्रेरित थे। उन्होने कथा कहते हुए अपने धार्मिक सिद्धातो को अच्छे ढग से रखा।

कथा के बाद केसरजी ने प्रश्न करने आरम्भ किए। पण्डितजी मे सिद्धात-बल नही था। उत्तर देने मे वे कदम-कदम पर अटकने लगे। भडारीजी को प्रभावित करना तो दूर रहा, अपनी अल्पज्ञता को समझ कथाकार वहा से चलते बने। जनता आश्चर्यचकित थी।

केशोरामजी

केशोरामजी माधोपुर के निवासी थे। केशोरामजी और गूजरमलजी की चर्चा का उल्लेख अन्यत्र किया गया है। अत समय मे गूजरमलजी के शका पडने पर केशोरामजी ने अन्य श्रावको के साथ गूजरमलजी को समझाने का प्रयास किया।[1]

कुशलोजी

ये रोयट के निवासी थे। आचार्य भिक्षु से बोध प्राप्त कर अनुयायी बने।

एक बार सोजत मे अपने पूर्व आचार्य के यहा प्रवचन सुनने गए।

आचार्यजी भाषण के विषय को छोड ब्रह्मचर्य के विषय पर बोलने लगे। कुशलोजी ने उनसे एक बार शील-भग के विषय को लेकर आलोचना ली थी। इस बात को मन मे कर उन्होने हठात् कुशलोजी से प्रश्न किया . "कुशलोजी ! अनत सिद्धो की साक्षी से सच-सच कहो कि शीलव्रत स्वीकार करने के बाद उसे कभी भग किया या नही ?"

इस तरह के प्रश्न पर कुशलोजी मर्माहत हुए, पर वे चुप रहे। आचार्यजी उत्तर देने पर जोर देने लगे, तब उन्होने मार्मिक ढग से उत्तर दिया "स्वामी भीषणजी को गुरु धारण करने के बाद मैने कभी शील-भग नही किया। जब मै आपकी श्रद्धा मे था, तब दूसरो की तरह मै भी था। मैने उस समय आपसे आलोचना भी ली थी।"

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० ५२

गुमानजी लूणावत

आप पीपाड के निवासी थे। आचार्य भिक्षु के अत्यन्त विश्वासपात्र थे। उन्होंने आचार्य भिक्षु की समसामयिक रचनाओ का अच्छा सग्रह किया।

गूजरमलजी

आप माधोपुर के निवासी थे। एक बार केमूरामजी से 'श्रावक की आत्मा कितनी होती है ?' इस विषय पर चर्चा मे अड गए, जिसका अनत· आचार्य भिक्षु ने समाधान दिया।

वाद मे एक अन्य घटना के सदर्भ मे इनकी आस्था के कच्चेपन को लक्षित कर आचार्य भिक्षु ने कहा था कि उनमे सम्यक्त्व रहना कठिन होगा। अतत: नदी उतरने के विषय मे शका-पूर्ण हो असम्यक्त्वी हो गए।

चतरोजी

ये देवगढ के निवासी थे। स० १८६४ की वात है। साधु उनके यहा गोचरी के लिए आए। गोचरी लेने के वाद चतरोजी से कहा · "मुझे कुछ पूछे।" अवसर न देख चतरोजी ने टालना चाहा, पर उनके वार-वार कहने पर उन्होंने पूछा . "आपके कर्म कितने है ?" मुनि ने उत्तर दिया "वारह"। चतरोजी ने कर्मो के नाम पूछे, तव दो-तीन नाम वतलाने के वाद वोले . "सव तो याद नही।" चतरोजी वोले "याद कर लीजिएगा।" मुनि ने लौटकर गर्वपूर्वक अपनी चर्चा का विवरण अपने गुरुजी के सम्मुख रखा। वे वोले · "आठ कर्म खपाने ही मुश्किल हो रहे है, तुमने तो आठ के वारह कर दिए। जाकर 'मिच्छामि दुक्कड' लेकर,कहो कि कर्म तो आठ ही है।" मुनि ने वैसा ही किया। चतरोजी ने कहा · "आपके तो आठ हैं तो ठीक पर आपके गुरुजी के कितने है ?" मुनि वोले "यह तो मुझे मालूम नहीं।"

चतुरोजी

चतुरोजी खेरवे के निवासी थे। आपने दीक्षा लेने की भावना अर्ज की थी। आचार्य भिक्षु ने उन्हे मोहग्रस्त देखकर दीक्षा नही दी।[1]

चन्द्रभाणजी

जव चन्द्रभाणजी टोले से निकले तव जाते समय वोले : "इज्जत तो मेरी भी घटेगी, पर आपके श्रावको को दाह से जले हुए आक के समान न कर दू तो मेरा नाम चन्द्रभाण नही।" तव चतुरोजी श्रावक वोले · "आप तो थोडा-थोडा विहार करेंगे और मै कासिद (सदेशवाहक) भेज-

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० ३७

कर जगह-जगह समाचार दे दूगा, जिससे आपको कोई पूछेगा तक नही। फिर दाह जले आक जैसे आप ही होगे।"[1]

चन्दूबाई

चन्दूबाई पेमजी कोठारी की बहन थी। आमेटवासिनी थी। चन्द्रभाणजी आचार्य भिक्षु से विग्रह कर गण छोडकर निकल गए। आमेट पहुचे। एक दिन चन्दूबाई से बोले—"तुम्हे भीखनजी कृपण कहते थे। कहते थे—पैसा तो बहुत है, पर दान का गुण नही।" यह सुनकर चन्दूबाई ने कहा—"दूर हट पेजारे। गुरु से मन छुटाना चाहता है। मुझ मे गुण नही देखा होगा तो महापुरुष ने कमी दूर करने के लिए कुछ कहा होगा।"

चन्दूबाई की यह दृढ श्रद्धा देखकर चन्द्रभाणजी चुप हो गए।

चैनजी श्रीमाल

लाटोती मे खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनचन्द्र सूरी आए। उपाश्रय मे व्याख्यान देते। काफी लोगो की उपस्थिति रहती। आश्रव का प्रसग चला तो बोले आश्रव अजीव है। वहीं चैनजी भी थे। वे बोले—श्री पूज्यजी, आश्रव जीव है, अजीव नही। श्री पूज्यजी बोले—आपकी धारणा गलत है। उत्तर मे चैनजी ने भी यही कहा। श्री पूज्यजी बोले—अपन फिर चर्चा करेगे। लोगो के चले जाने पर श्री पूज्यजी ने चर्चावादी सिद्धान्तवेत्ता यतियो को बुलाकर कहा, "सूत्र देखे—आश्रव जीव है या अजीव।" चर्चावादियो ने निर्णय किया कि सूत्र न्यायानुसार तो आश्रव जीव है। श्री आचार्यजी ने चैनजी से कहा—आपने आश्रव को जीव बताया तथा मैंने अजीव, सो मुझे मिच्छामि दुक्कड है। अभी तो तुमसे यो ही अनौपचारिक क्षमापना कर लेते हे। कल भरी सभा मे क्षमापना करनी है। दूसरे दिन प्रात कालिक प्रवचन मे बहुत लोगो के सुनते श्रीपूज्यजी बोले—चैनजी, मैने कल आश्रव को अजीव कहा था तथा आपने जीव। सो आप सही है तथा मै गलत। अत मिच्छामि दुक्कड है। तुमसे खमत खामणा है। इस प्रकार अहकार छोडकर सत्य को मानने वाले व्यक्ति थोडे ही होते है।

चोथजी सकलेचा

ये पाली के निवासी थे। प्रकृति शकाशील थी। अपनी इस प्रकृति के कारण वे शकाशीलता के उदाहरण बन गए थे।[2]

जयचन्दजी पोरवाल

आप उदयपुर के रहने वाले थे। सन् १८५७ की बात है। साध्वी श्री हस्तूजी का

१ जय (भि० दृ०), दृ० १६५
२. वही, दृ० १७२

चातुर्मास उदयपुर मे था। वे बडी विदुषी थी। उनका प्रभाव जमने लगा।

विद्वेषी लोगों ने महाराणी के माध्यम से महाराणा द्वारा साध्वीश्री के निकल जाने का आदेश निकलवा दिया। आदेश पहुचते ही साध्वीश्री ने वहा से विहार कर दिया।

इस गुप्त कार्यवाही से श्रावको का हृदय बड़ा मर्माहत हुआ। जयचन्द जी महाराणा से मिले। उन्हे समझाया तब उन्होंने अपना आदेश हटा लिया। जयचन्दजी तथा अन्यान्य श्रावकों के अनुरोध पर साध्वीश्री वेदला से वापस पधारी।

इसके वाद धर्म का वड़ा उद्योत हुआ।'[1]

जैचंदजी श्रावक

सभवत नीवली के थे। नीवली से चेलावास पधारते समय आचार्य भिक्षु ने रास्ता पूछा। जैचदजी वोले . "मार्ग मैं जानता हू।" मार्ग अच्छा न निकला। घास-पौधों से छाया निकाला। आचार्य श्री ने वडा उपालम्भ दिया। जैचदजी मार्ग भूल गए थे। क्षमा मांगी।[2]

जैचन्दजी की निरभिमानता तथा विनय-भावना उपरोक्त घटना मे प्रतिविम्बित है। वे ऋजुवृत्ति के एक सेवाभावी श्रावक थे।

जीवोजी मुहता

आप रिणही गांव के थे। आचार्य भिक्षु के इस कथन को याद रखते हुए भी कि धान मिट्टी सरीखा लगे तो सथारा कर लेना चाहिए। वीमारी मे वैसी स्थिति पाने के उपरान्त भी सथारा नही कर पाये। उसी रात्रि मे उनका आयुष्य शेष हो गया।

जीवोजी

मणही गांव के जीवोजी से एक साधु ने कहा "साधु के तीन अच्छी लेश्याए ही होती है।" इतने मे जोरजी कोठारी आये। उन्हे देखकर किशनोजी वोले—"वह आया जीवला भीखणजी द्वारा भरमाया हुआ।" जीवोजी वोले—"आप इस प्रकार वोल रहे है, यह कौन सी लेश्या का लक्षण है।" साधु चुप हो गये।

स० १८७९ के पीपाड चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी आचार्य भिक्षु और भारमलजी की ही रीति से गृहस्थो से मागी हुई छुरी रात्रि मे भी अपने पास रख लेते। तव विपक्षियो ने वहुत कदाग्रह किया। दोष वताने लगे। सणही गाव वाले जीवोजी से कहा—गृहस्थ की छुरी साधुओ को रात्रि मे नही रखनी चाहिए। तव जीवोजी वोले—इसमे क्या दोष है? विपक्षी वोले—कभी रात्रि मे आपस मे झगडा हो जाय तो छुरी मारे यह दोष हुआ। जीवोजी वोले—तव तो नागला (सामान वाधने तथा कंधे से लटकाने आदि) की रस्सी भी नही रखनी चाहिए क्योकि कदाचित् उससे कोई साधु फांसी लगाकर मर जाए।

---

१. प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक), क्रम २०
२. जय (भि० दृ०), दृ० २६१

जेठाजी डाफरिया

आप बीलाडा के रहने वाले थे। आचार्य भिक्षु से तत्त्व समझ कर आप अनुयायी बने।

एक बार एक अन्य सम्प्रदाय के एक साधु उनके यहा गोचरी के लिए आये। गोचरी करने के बाद कहने लगे : "भीखणजी दया के उत्थापक है, तुम क्या सोच-समझ कर उनके अनुयायी हुए ?"

जेठोजी बोले "यह तो भ्रम है। भीखणजी तो बडे दयालु है।"

मुनि बोले . "भीखणजी दया मे पाप बतलाते है। बताओ—कोई बालक पत्थर से चीटिया मार रहा हो तो उसे लड्डू देकर पत्थर छुडा देने वाले को क्या हुआ ?"

जेठाजी · "यह दया दीखती है, पर वास्तव मे दया नही है। लडके के मन मे यह बैठ जाएगा कि चीटियो को पत्थर से मारने पर लड्डू मिल जाएगा तो वह मन चाहे तब ऐसा ही करने लगेगा। चीटियो की हिंसा रुकेगी नही, बढेगी। दया पलवाने का यह तरीका हिसाकारी है।"

इसके बाद जेठोजी ने प्रश्न किया · "बालक के हाथ से पत्थर छुडाने के तीन उपाय हो सकते है—(१) लड्डू देकर (२) थप्पड मारकर और (३) समझा-बुझा कर। बालक के हाथ मे पत्थर हो। वह चीटियो को मार रहा हो और आपके पास मे लड्डू हो तो आप इन तीनो मे से कौन-सा उपाय काम मे लेंगे ? यह भी बतला दे कि आप लड्डू देकर पत्थर छुडा देगे तो आपको क्या होगा ?"

मुनिजी सकपका गये। उत्तर दिए बिना ही चलते बने। पहले दोनो ही काम उनको साधु के लिए अकल्प्य जचे।

एक बार अन्य मुनि से आपकी चर्चा हुई। उन्होने पूछा "कसाई को दो रुपये देकर किसी ने बकरा छुडाया, उसमे क्या हुआ ?"

जेठोजी ने उत्तर दिया "गृहस्थ चाहे तो दो रुपये देकर भी बकरे छुडा सकता है और अधिक देकर भी, पर आपसे पूछता हू—एक कसाई दस बकरे मार रहा हो। आप उसे छोडने का आदेश दे रहे हो। वह कह रहा हो कि आप अपनी पछेवडी दे तो मै बकरो को छोड सकता हू। ऐसी स्थिति मे आप उसे पछेवडी देकर बकरे छुडाएगे या नही।"

मुनिजी बोले "ऐसा करना हमे नही कल्पता।"

जेठोजी बोले "इसका अर्थ तो यह हुआ कि आपने साधु बनकर धर्म करना हमी लोगो के लिए छोड दिया। आपको धर्म नही करना है और हमी लोगो को करना है। क्या दया का पालन हम लोगो के लिए ही है, साधुओ के लिए नही ?"

जेठोजी ने कोई उत्तर नही दिया।

दामोजी

आप सीहवा गाव के निवासी थे। अन्य मतियो के स्थानक मे जाकर चर्चा की। कुछ प्रश्नो को आगे नही चला पाए। आचार्य भिक्षु ने उन्हे अधकचरे ज्ञान से चर्चा न करने की शिक्षा दी।[1]

१. जय (भि० दृ०), दृ० १२३

दीपचन्दजी मुणौत

आप रीया के थे। रीया मे आचार्य भिक्षु व्याख्यान दे रहे थे। आचार की गाथा सुनकर मोतीरामजी बोहरा बोले "भीखणजी! बन्दर बूढा हो जाता है तो भी छलाग मारना नही छोडता। वैसे आप बूढे हो चुके, तो भी आपने दूसरो की टीका-टिप्पणी करना नही छोडा।" भिक्षु बोले "आपके पिताजी ने हुण्डिया लिखी। आपके दादाजी ने भी हुण्डिया लिखी। आपने भी तो बोरिया-बिस्तर नही समेटा।"

दीपचन्दजी मुणौत ने मन मे तौलकर अपने हितू मित्रों से कहा "स्वामीजी के ऐसे वचन निकले है, सो अब बोहरा शीघ्र ही बोरिया-बिस्तर समेटता दिखता है।" ऐसी धारणा से सबने अपने-अपने रुपये हटा लिये। थोडे ही दिनो मे काम ठप्प हो गया। बोरिया-बिस्तर समेट लिये।[1]

देवीचन्दजी

आप सिरियारी के रहने वाले थे।

एक बार सिरियारी मे आप एक साधु आए, उनसे चर्चा करने गए।

मुनिजी ने कहा "भीखणजी ने तो हर बात को सावद्य और आज्ञा बाहर ठहरा दिया है। धर्मोपकरणो तक का अपवाद नही रखा। मुख-वस्त्रिका और पूजणी तक को सावद्य और आज्ञा बाहर कहते है।"

देवीचन्दजी बोले "भगवान ने शरीर तक को परिग्रह कहा है तब मुख-वस्त्रिका, पूजणी आदि उपकरण परिग्रह कैसे नही है? उन्हे धर्मोपकरण तो इसलिए कहा है कि उनका व्यवहार सामायिक आदि मे होता है। उनका उपयोग अन्य कर्मो मे भी हो सकता है।"

देवचन्दजी ने कहा एक बार मै देवगढ गया था। वहां सस्ते भाव मे रेजगी ली। रखने का अन्य साधन न होने से मुख-वस्त्रिका को सीकर उसमे रेजगी रखकर घर आया। मुख वस्त्रिका कर्मोपकरण हो गई।

धीरा पोखरणा

जैतारण मे धीरा पोखरणा नामक एक श्रावक था। उसे एक साधु ने कहा "भीखणजी कहते है—थोडे-से दोष के सेवन से भी साधुत्व का भग होता है। यदि इस तरह साधुत्व भग होता तो पार्श्वनाथजी की २०६ आर्याओ ने हाथ-पग धोये, काजल डाला, बच्चे-बच्चियो को खिलाया, वे भी मरने पर इन्द्र की इन्द्राणिया हुई और एकावतारी हुई (अत वास्तव मे ऐसा नही होता)।"

धीरजी बोले "पूज्यजी! आप अपनी आर्याओ से काजल डलवावे, उनसे हाथ-पैर धुलवावे, बच्चे-बच्चियो को खिलवाने की आज्ञा दे, जिससे वे भी एकावतारी हो।" तब टोडर-मलजी बोले "हे मूर्ख! हम ऐसा काम क्यो करने लगे?" धीरजी बोले "यदि ये कार्य आप

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० २३

अपनी साध्वियो से नही करवाते तो जिन आर्याओ ने किया उनकी प्रशसा क्यो करते है ?"[1] टोडरमलजी फिर धीरजी पोखरणे मे बोले "भीखणजी ने सूत्र का पाठ उत्थापित कर दिया। साधु को अशुद्ध देने से अल्प पाप बहुत निर्जरा होती है, ऐसा भगवती सूत्र मे कहा है।" तब धीरजी बोले "आप गोचरी पधारे। मेरे कटोरदान मे लड्डू है। कटोरदान गेहू मे रखा है। वह निकाल कर आपको लड्डू वहराऊगा। मुझे भी अल्प पाप बहुत निर्जरा होगी।" तब टोडरमलजी ने कहा "मूर्ख ! हम ऐसा कैसे लेगे ?" तब धीरजी बोले "नही लेते तो लेने की स्थापना क्यो करते है ?"[2]

धीरजी की तत्त्वज्ञान मे अच्छी पहुच थी। साथ ही उनका वाक्चातुर्य भी प्रशसनीय था।

नेणचन्दजी

ये पुर के निवासी थे और मुनि चन्द्रभाणजी के भाई थे। चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी गण स अलग हुए तो पुर आये और सोचा—इस क्षेत्र को समझा लेगे। नेणजी चन्द्रभाणजी से बोले "हम लोगो को खूब नीचा दिखाया। स्वामी भीखनजी से अलग हो गए। इहलोक-परलोक दोनो विगाड लिये।" यह सुनकर दाल गलती न देख दोनो ने वहा से विहार कर दिया।[3]

नेणचन्दजी दृढ श्रावक थे।

प्रतापचन्दजी कोठारी

ये आगरिया के रहने वाले थे। आपने आचार्य भिक्षु से पूछा कि आप रचनाए कैसे करते है ? एक टोपसी मे सफेदा था। वायु वह रही थी। भिक्षु ने रचना करते हुए ही उत्तर दिया :

न्हानी सी एक टोपसी, माहे घाल्यो सपेतो।
जत्न वणा कर राखजो, नही तो पड़ैला रेतो।।[4]

उपर्युक्त घटना आपकी विनम्र जिज्ञासुवृत्ति तथा आचार्य भिक्षु की श्रावको के प्रति वात्सल्यपूर्ण गुरु-भावना को प्रतिविम्वित करती है।

पुरुषोत्तमजी पारख

ये भी वडे श्रद्धालु तेरापथी श्रावक थे। कच्छ (गुजरात) मे इनके द्वारा वडा धर्म-प्रचार हुआ था।

---

१ जय (भि० दृ०), दृ० ३११
२. वही, दृ० ३१२
३ श्रावक दृष्टान्त, दृ० १
४. जय (भि० दृ०), दृ० २४४

आचार्य ऋषिराय की गुजरात-कच्छ की यात्रा के अवसर पर मुनि जीतमलजी अहमदाबाद पहुचे, उसके वाद का विवरण इस प्रकार है :

विहु ठाणे स्वामी नारायण नी, जायगा मे उतर्या जिहां।
लोक बोल्या अठा सु आज ही, थारे गुरु विहार कीधो सही ॥
सही कीधो विहार तुझ गुरु, सुण एक रात्रि तिहा रही।
बीजे दिन सानन्द में गुरु, दर्शन कर सुख पावही।
तिहा श्रद्धा मे हुती झवू बाई, ते समझाई पारख पुरुषोतम।
तिहां स्वामीजी सग रात्रि चिहु रही, हिवे विचरत मुनिपति अनुक्रमे ॥
शहर नीवडी मे आया तिहां, पुरुषोत्तम ना समझाया जिहां।
जिहा समझाया हुता श्रावक, तेरे इण श्रद्धा तणा ॥
महामुनि ऋपिराय ने जय, आया माडवी वदर मझे।
त्या पुरुषोत्तम ना समझाविया वहु, श्रावक अति सेवा करे ॥[1]

सानन्द मे झवू वहिन पुरुपोत्तमजी की समझायी हुई थी। नीवड़ी मे उनके समझाये हुए तेरह श्रावक थे। माडवी मे भी ऐसे श्रावक थे। इन सबसे धर्म-प्रचार के क्षेत्र मे पारखजी की सेवाओ का वडा अच्छा परिचय मिल जाता है।

फौजमलजी

मयाचन्दजी के लडके फौजमलजी ने श्रीजीद्वार से आकर मुनि हेमराजजी से वहां पधारने की अर्ज की।

बारीदासजी खीवसरा

आप सिरियारी के निवासी थे। एक वार व्यापार के निमित्त कोटा गए। वहा अन्य सम्प्रदाय के श्रावको के साथ साधुओ के यहा गए।

वहा प्रथम जिन साधुजी से मिले, उन्होंने खीवसराजी का परिचय जानना चाहा। खीवसराजी ने वताया कि वे सिरियारी के रहने वाले है। यह सुनते ही वे मुनिजी बोले · "उसी सिरियारी के जहा भिखणिया चोर रहता है।" खीवसराजी ने शातिपूर्वक कहा "क्या ऐसा कहना आपके लिए शोभास्पद है ?" मुनि क्रोध से झल्ला रहे थे। वोले "तुम क्या वात कर रहे हो। वह यहा आ जाए तो उसकी अच्छी तरह मरम्मत हो जाए।" खीवसराजी बोले : "क्या यह सब आपको कल्पता है ?" मुनिजी वोले . "मुझे नही कल्पता तो क्या ? श्रावक तो है ही।"

जो श्रावक खीवसराजी को वहां लाए थे वे वड़े लज्जित हो रहे थे। खीवसराजी को ऊपर की मजिल मे ले गए। वहा एक तपस्वी मुनि थे। पहले साधु से वातचीत हुई, वह उनके

---

१. मघवा (ज० सु०) १६।७, ८, १०

सामने आई तब वे बोले : "द्वेष रखना तो गलत ही है, पर भीखणजी भी तो ऐसा ही कहते है।" खीवसराजी ने पूछा "वे क्या कहते है।" मुनि बोले "देखो, मै तपस्वी मुनि हू। बेले-बेले पारण करता हूं। पारण मे केवल आटा घोलकर पीता हू। शीतकाल मे केवल एक पछेवडी ओढता हूं। इस पर भी भीखणजी मुझे साधु नही मानते।" खीवसराजी बोले "तपस्या की तो स्वामीजी प्रशसा ही करेगे। व्यक्तिगत रूप से स्वामीजी किसी को साधु-असाधु नही कहते। समुच्चय रूप से साधु-असाधु का लक्षण बतलाते है। तपस्या नही, महाव्रतो का सम्यक् रूप से पालन ही साधुत्व है।" तपस्वीजी बोले "इतनी तपस्या करने वाले के लिए महाव्रतो का पालन क्या बाकी रह जाता है?" खीवसराजी बोले "महाव्रतो के पालन मे तपस्या आ जाती है, पर तपस्या मे महाव्रतो का पालन नही आता। केवल तपस्या या कष्ट सहन से साधुता आ जाती हो तो मेरे नीलिये बैल को भी साधु कहा जा सकेगा। वह तो चारा पर ही गुजर करता है। कडकडाती सर्दी मे नगे बदन रहता है। कोई महाव्रतो का पालन करता है, इससे साधु होता है, इससे नही कि वह तपस्या करता है।" मुनिजी बोले "तुम्हारे हिसाब से तो मैं तुम्हारे नीलिये बैल से भी हीन हू।" खीवसराजी ने स्पष्ट किया "बैल का दृष्टान्त आप पर नही था, साधुता और तपस्या के भेद को बतलाने के लिए था। आप अपने पर न खीचे।" पास ही मे एक अन्य मुनि बैठे हुए थे। वे वहा उठ आए और बोले "इनसे क्या चर्चा कर रहे हो। चर्चा ही करनी हो तो इधर आओ। मुझसे चर्चा करो।" "आप इधर आओ कहते है। गृहस्थो को ऐसा कह सकते हे क्या?" मुनिजी बोले "क्या उचित है क्या अनुचित, यह मै तुझसे अधिक जानता हू।" ऐसे रुख को देखकर खीवसराजी ने चर्चा वही रोक दी और लौट आये।[1]

भैरोंदासजी चण्डालिया

आप भीलवाडे के निवासी थे। आपने अपने तीन मित्रो के साथ स० १८५६ मे नाथद्वारा मे आचार्य भिक्षु से सम्यक्त्व ग्रहण किया था।[2]

आचार्य भिक्षु के साथ घटित आपके एक वार्तालाप का विवरण आगे एक अध्याय मे दिया जा चुका है।

मनजी पोरवाल

आप उदयपुर के निवासी थे। एक बार आचार्य भिक्षु उदयपुर पधारे तब द्वेष-बुद्धि लोगो ने महाराणा को भड़का दिया। फलस्वरूप राणाजी ने आचार्य भिक्षु को उदयपुर से निकल जाने का आदेश दिया।

मनजी पोरवाल तथा अन्यान्य श्रावको को बडा आघात लगा। आदेश भिक्षु तक पहुचा नही था। मनजी तुरन्त ही राणाजी से मिले और वस्तुस्थिति से उन्हे अवगत किया।

राणाजी ने अपना आदेश वापस ले लिया।

---

१. श्रावक दृष्टान्त, दृ० ११
२. वही, दृ० २३

इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि लोग उत्सुकतावश अधिकाधिक लोग भिक्षु के पास आने लगे। वडा उपकार हुआ।[1]

मयाचन्दजी तलेसरा

आचार्य भारमलजी वहुत सत-सतियो के साथ गोघूदा, रावलिया होते हुए गेलानग पधारे। मुनि हेमराजजी दर्शन के लिए जा रहे थे। वीच मे नाथद्वारा आया। वहा मयाचन्दजी तलेसरा ने अर्ज की "मेरे कपडा आया है। शुद्ध है। आप ले। आचार्यश्री के पास ले जावे। वहा वहुत साधु है। खप जाएगा। आप ले जाये।" मुनि हेमराजजी वोले : "रास्ते मे चोर वहुत है। खोस ले तो पोथी-पन्नो की और जोखिम हो जाए। आपका कपडा क्या काम आए?" मयाचन्दजी ने अर्ज की "आपका एक सूत भी चला जाए तो मुझे घर मे रहने और चार आहार करने का त्याग है। आप ले।" तव मुनि हेमराजजी ने कपडा लिया। मयाचन्दजी स्वयं वन्दोवस्त कर साथ मे सेवा मे गए और वडे गाव तक पहुचाकर दर्शन कर वापस आए। वहां उनका सम्वन्ध था। पहले दर्शन करके आए थे, फिर भी सकोच न किया। ऐसे पक्के विनयी श्रावक थे।[2]

मानोजी सुराणा

आप ईडवा के निवासी थे। आचार्य जयमलजी की श्रद्धा मे थे। आचार्य भिक्षु से वोध प्राप्त कर अनुयायी हुए। जयमलजी ने तुक्का जोडा—

सोजत वगडी मे लालो, विजो वलूदा मे फत्तो।
इडवा मे मानो सुराणो, या मे दान रो गुण छत्तो॥

वाद मे आचार्य जयमलजी ईडवा पधारे तव उन्होंने सुराणाजी को उपालम्भ देते हुए कहा "मै तुम्हे चार दानियो मे गिनता रहा, पर तुमने तो धोखा दे दिया।"

मानोजी वोले : "आप मुझे दानियो मे गिनते रहे। सो मैंने दान देने मे अव भी संकोच नही किया है, तव मैंने धोखा कैसे दिया?"

आचार्य जयमलजी वोले · "तुम तेरापथी हो गए, यह धोखा नही तो क्या है?"

मानोजी वोले "आप कहा करते थे कि व्यापारी वह होता है, जो परख कर वस्तु का सौदा करे। मैने तौल कर सत्य श्रद्धा ग्रहण की है। धोखा नही खाया।"

आचार्य जयमलजी वोले . "ठीक है, ठीक है, भीखनजी कोई दूसरे नही। चार दानियो मे से एक गए हो। चौथाई पाती तो उनकी भी थी।"[3]

---

१ प्रकीर्ण पत्र (घटनात्मक), क्रम १६
२ प्रकीर्ण पत्र
३. श्रावक दृष्टान्त, दृ० ३५

मोजीरामजी बोहरा

पीपाड मे मोजीरामजी की वेटी के रोग हुआ। वहा एक साधु थे। उन्हे निवेदन कराया--घर पधारे। आने पर बोले · "लड़की के वहुत असाता है, वहुत कष्ट रहता है, कोई यन्त्र-मत्रादि करे, ताकि इसे साता मिल सके।" उरजोजी बोले "हम साधुओ को यह करना कहा है?" मोजीरामजी बोले "आप कहते है न कि हम जीव बचाते है, भीखनजी नही बचाते। यो ही जीव बचाने की बात करते है, लेकिन जीव बचाते तो नही।"[1]

रामचन्दजी कटारिया

रामचन्दजी कटारिया बीलाडै के निवासी थे। अत्यन्त श्रद्धावान थे। एक बार आचार्य भिक्षु बीलाडै गाव पधारे। आचार्यजी को मालूम हुआ तब जोधपुर से चलकर वहा आए। ब्राह्मणो को सिखाया "मेरा चेला अविनयी हो गया है। वह ब्राह्मणो को देने मे पाप कहता है।" ब्राह्मण आचार्य भिक्षु के पास आकर ऊधम मचाने लगे। तब रामचन्दजी कटारिया बोले "यदि तुम लोगो को देने मे आचार्यजी धर्म कह दे तो २५ मन गेहुओ से कोठी भरी है, वह तुम लोगो को दे दू।" तब ब्राह्मण रामचन्दजी को लेकर आचार्य रुघनाथ-जी के पास आए। रामचन्दजी ने रुघनाथजी से कहा "आप धर्म बतावे तो २५ मन गेहू कोठी मे भरे पडे है, उनकी गंठरी बधा ब्राह्मणो को दे दू। कहे तो घूगरी रधवा कर दे दू। कहे तो आटा पिसवा कर दे दू। कहे तो रोटिया बनवाकर दो मन चनो के आटे का खाटा करवा कर ब्राह्मणो को खिलाऊ। जिसमे अधिक धर्म हो वह बतावे।" तब आचार्य रुघनाथजी बोले "हम तो साधु है। हमे ऐसा कब कहना है? हमारे तो मौन है।" तब रामचन्दजी बोले · "जब आप को ऐसा करना नही कल्पता तो वे कैसे करेगे? आपकी अपेक्षा से तो वे कठोरता से रहते हैं। आप वडे होकर क्यो लोगो को भडकाते है? चर्चा करनी हो तो न्यायपूर्वक करे।" इस तरह कह कर रामचन्दजी वापस आए।[2]

रामचन्दजी कटारिया की तत्त्वज्ञान मे सम्यक् पहुच थी, आचार्य भिक्षु के प्रति दृढ श्रद्धा थी, छल-छद्मवृत्ति के प्रति तीव्र तिरस्कार-भावना थी और अमेय वाक्चातुर्य था। वे उदार-मना व्यक्ति थे जो चतुर्विध सघ की प्रभावना मे विरत रहते।

रतनजी छाजेड़

ये भीलवाडा के निवासी थे। आचार्य भिक्षु से चर्चा कर नाथद्वारा मे स० १८५६ मे श्रद्धा ग्रहण कर गुरु-धारणा की।[3]

---

१ श्रावक दृष्टान्त, दृ० २८

२. जय (भि० दृ०), दृ० ४२

३ श्रावक दृष्टान्त, दृ० २-३

राजमलजी बोहरा

रीया मे राजमलजी बोहरा रतनजी के पास गए। रतनजी बोले . "शुभ योग सवर है।" राजमलजी बोले "सवर का स्वभाव कर्म रोकना है। शुभ योग से तो पुण्य बढते है, रुकते नही। अत शुभयोग सवर किस न्याय से हुआ ?" रतनजी बोले "जिस समय शुभयोगो की प्रवृत्ति होती है, उस समय मे अशुभ योग के कर्मो का बंध नही होता। इस अपेक्षा से शुभ-योग सवर है।" राजमलजी बोले "इस दृष्टि से तो अशुभ योग को भी सवर कहना चाहिए, क्योकि जिस समय मे अशुभ योग का वर्तन होता है उस समय मे शुभ योग से कर्मो का अनुवध नही होता।" रतनजी बोले "सूत्र मे अयोग सवर कहा है, किन्तु हमारे यहा परम्परा से शुभ-योग को सवर कहते आए है।'

वीरा भूधरजी

आपकी जन्मभूमि कटालिया थी। आप मूलत स्थानवासी श्रावक थे। वाद मे आचार्य भिक्षु से समझकर श्रद्धा ग्रहण की।

एक वार उनके पूर्व परिचित एक मुनि कटालिया पधारे। उन्होने एक दिन रास्ते मे ही भूधरजी से पूछा "स्थानकवासी थे तव क्या नही मिला था, और अव क्या मिल गया ?"

भूधरजी वोले "मिथ्यात्व के स्थान पर सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है, मिथ्याचारियो के स्थान पर सदाचारी गुरुओ की शरण प्राप्त हुई है।"

साधु ने फिर पूछा "अव हमे क्या मानते हो ?" भूधरजी ने उत्तर दिया "प्रथम गुण स्थान के स्वामी।"

वातचीत के समय कुछ राजपूत इकट्ठे हो गये थे। मुनिजी ने उनका सहारा प्राप्त करने के लिए उनसे कहा "देखो ! यह हमे प्रथम गुणस्थान मे गिनता है।" भूधरजी ने कहा "मैने तो इन्हे प्रथम श्रेणी मे रखा है, फिर ये नाराज क्यो होते है ?"

वेचारे राजपूत इसका मर्म क्या समझते ! वोले . "मुनिजी ! इसमे आपके नाराज होने की तो कोई वात नही लगती।"

मुनि हतप्रभ हो शीघ्रता से आगे वढने लगे। भूधरजी ने व्यग मे कहा "इतर लोग भी मेरी वात को ठीक मानते है तव अव आपको भी स्वीकार होनी चाहिए।"

लखुबाई कलूबाई

चद्रभाणजी-तिलोकचन्दजी देवगढ से चलकर सिरियारी आये। गाव मे पहुचने पर वहुत धीरे-धीरे चलने लगे (ईर्या समिति के प्रदर्शनार्थ)। लखुवाई कलूवाई नामक दो श्राविकाओं ने यह देखकर पूछा "आज कहा से चलकर आये है ?" दोनो ने उत्तर दिया · "देवगढ से।" वहिने वोली . "यो चलने पर तो दो-तीन दिन मे पहुच पाते।"

---

२. श्रावक दृप्टान्त, दृ० १

विजयचदजी पटवा

आप पोरवाल थे। पाली (मारवाड) के निवासी थे। एक वार आचार्य भिक्षु पाली पधारे, तव पटवाजी अपने मित्र वर्धमानजी श्रीमाल को साथ ले रात्रि मे धर्म-चर्चा करने गये। आचार्य भिक्षु रात-भर उनसे चर्चा करते रहे। प्रात काल प्रतिक्रमण का समय होने पर उन्हे गुरु-धारणा करा प्रतिक्रमण पर वैठे।

पटवाजी वड़े दृढ़ श्रावक निकले। वे वडे श्रद्धानिष्ठ, विवेकशील और पटु श्रावक थे।

विजयचन्दजी पटवा को आशकरणजी दाती ने कहा—"आपके गुरु भीखणजी किंवाड खोलकर मेडी मे ठहरे। विजयचन्दजी ने कहा "नही, कभी नही ठहर सकते।" आशकरणजी ने जोर देकर कहा "विजयचद भाई! मेरा इतना-सा विश्वास करो।" विजयचन्दजी ने कहा "मुझे आपका पूरा विश्वास है कि आप मिथ्याभाषी है।" इतनी वातचीत होने पर भी पटवाजी ने सतो से कुछ पूछा तक नही। यह वात वाद मे आचार्य भिक्षु ने सुनी तव वोले "विजयचन्दजी पटवा में क्षामक-सम्यक्त्व दिखाई देता है। कारण वहुत-से लोग इन्हे साधुओ मे दोष वतलाते है, परन्तु वे किसी साधु से इसकी चर्चा नही करते।"

एक दिन शाम के वक्त विजयचन्दजी पटवा सामायिक प्रतिक्रमण करने साधुओ के पास आए। उस दिन आकाश मे वादल होने के कारण सूर्य दिखलाई नही पडता था। विजयचन्दजी ने अर्ज की : "महाराज! पानी शेष कर दीजिये, दिन थोडा है।" उनके ऐसा कहने पर साधुओ ने पानी शेष कर दिया। थोड़ी देर वाद धूप निकली तो आचार्य भिक्षु ने कहा "साधु को रात्रि मे पानी पीने का त्याग होता है, इसलिए अर्ज सोच-समझकर करनी चाहिए।" विजयचन्दजी ने नम्रता के साथ अपनी भूल पर खेद प्रकट किया। कहा . "मुझे मालूम नही हुआ।"[1]

श्री विजयचदजी पटवा के जीवन में आचार्य भिक्षु के प्रति अटल आस्था, भक्ति, विनय, धर्म के प्रति आस्था, स्वीय त्रुटियो को स्वीकार करने मे अतिशय विनम्रता का समुच्चय मिलता है। वे एक आदर्श श्रावक थे।

धर्म-प्रचार की उनकी लग्न को देखकर लोगो ने यह प्रचार करना शुरू किया कि पटवाजी रुपये देकर श्रावक वनाते है।[2] पटवाजी ने इस निंदा का उत्तर देते हुए कहा . "क्या उनके श्रावक इतने कच्चे और गये-वीते है कि अर्थ के लोभवश ही अपनी श्रद्धा छोड देते हैं। पैसे देकर वनाये हुए श्रावक टिकेंगे कितने दिन? अधिक पैसे मिलने पर श्रद्धा छोड़ते क्या देर लगेगी? मैं मूर्ख व्यापारी नही कि ऐसे घाटे का सौदा करू। मै तो श्रद्धा और आचार की वात वतला कर श्रावक वनाता हू।

आचार्य भिक्षु ने यह वात सुनी तव कहा . "यदि वे धन के प्रलोभन से धर्म छोड़ देते है तव तो यही वात है कि उन्होने अपने धर्म को समझा ही नही है। ऐसी स्थिति मे वाकी श्रावक भी कितने दिन टिकेंगे।"

गण से पृथक् होने के वाद एक वार चन्द्रभाणजी पाली आये। वहां उन्होंने पटवाजी के सामने बहुत निन्दा की वाते की। पटवाजी चुपचाप सुनते रहे। कुछ न वोले। आचार्य भिक्षु

---

१. जय (भि० दृ०), दृ० १८६

२. वही, दृ० २३४

पाली आए तब दूसरो ने यह बात उन्हे कही। आचार्य भिक्षु ने पटवाजी से कुछ नही पूछा। पटवाजी ने भी कोई बात नही चलायी। विहार करने लगे, उसके पहले दिन आचार्य भिक्षु ने पटवाजी से पूछा . "चन्द्रभाणजी ने तुम्हारे सामने काफी निन्दा की। कुछ पूछना तो नही है ?"

पटवाजी बोले "मुझे क्या पूछना है। उन्होंने कहा वह सुन लिया। मन मे सोच लिया—जो अनन्त सिद्धो की साक्षी से किए हुए अपने प्रत्याख्यानो को भग कर चुका, वह झूठ बोलने मे आगा-पीछा क्यो करेगा ? बोलता तो वे अधिक समय नष्ट करते, इससे मौन रहा।"

एक बार जोधपुर-नरेश ने पाली से एक लाख रुपया एकत्रित करने के लिए वहां राज्य-कर्मचारी भेजा। पहली बैठक मे पटावाजी नही थे। सुझाव आया कि छोटे-बड़े सब दुकानदारो से रकम लेनी चाहिए। बाद मे पटवाजी आये तब सारी बात उनके सामने रखी गई। उन्होंने छोटे दुकानदारो को रिहा कर देने का विचार रखा तथा स्वय ५० हजार देने को तैयार हो गये और ५० हजार एक दूसरे माहेश्वरी व्यापारी को देने के लिए तैयार किया। पटवाजी की उदार वृत्ति से छोटे व्यापारी बडे कृतज्ञ हुए। दो ही व्यक्तियो द्वारा एक लाख रुपये दे देने की बात जब जोधपुर-नरेश के पास पहुची तो यह कहते हुए कि अभी रुपयों की जरूरत नही है, रकम लौटा दी गई।

एक बार विजयचन्दजी पटवा ने आचार्य भिक्षु के दर्शन कर वही सामायिक ले ली। वे दुकान से आए थे। सामायिक लेने के बाद उन्हे याद आया कि वे दो हजार रुपये की थैली बाहर भूल आए है। आचार्य भिक्षु मे यह बात कही तब उन्होने कहा "समता भाव रखो।" सामायिक पूरी होने वाली थी। मन कुछ विचलित हुआ था। पटवाजी ने प्रायश्चित्त-स्वरूप एक सामायिक और ले ली और माला फेरने मे तल्लीन हो गए। दूसरी सामायिक पूरी होने पर पूर्ण कर दुकान पहुचे तो देखते है कि एक बकरा उस थैली पर बैठा हुआ है। पटवाजी ने थैली उठा ली। उन्होने सामायिक के सामने थैली को तुच्छ समझा।

विजयचन्दजी पटवा पाली मे दाह-क्रिया मे गए थे। दाह-क्रिया के बाद लोग तालाब मे स्नान करने लगे। पटवाजी एक बडे लोटे मे जल भर अलग स्नान करने लगे। तब बावरेचा बोले—विजयचन्दजी भाई, तुम ढूढियो मे से हो, इसीलिए पानी मे प्रवेश कर स्नान नही करते ना।" पटवाजी बोले . "होली मे लडकियां गोबर के खिलौने (भरभोलिया) बनाती है। कहती है, यह मेरा खोपरा है, यह तुम्हारा नारियल है। लेकिन ये नाम देने पर भी गोबर तो गोबर ही रहता है। मै तुम लोगो को भी भरभोलियो की माला के तुल्य समझता हू। मनुष्य जन्म पाने पर भी दया-धर्म जाने बिना पशु समान हो।"

एक व्यक्ति ने पटवाजी से कहा "तुमने क्या मत ग्रहण किया है! हम तो अपना ही मत ठीक समझते है। तुमने जो धर्म ग्रहण किया वह समझ मे ही नही आता कि अच्छा है या बुरा।" पटवाजी ने उत्तर दिया "एक अधेरी कोठरी हो, अधेरा छाया हुआ हो। एक व्यक्ति मुग्दर लेकर उसे पीटने लगे तो क्या इस तरह पीटने पर अधकार दूर होगा। अधकार दीपक जलाने से मिटता है। घट मे ज्ञानरूपी दीपक जलाओ, फिर मिथ्यात्वरूपी अधकार अपने-आप दूर हो जाएगा।

विजयसिंहजी पटवा एक वार कचहरी गये थे। वहा अनेक लोगो के सुनते हाकिम ने पूछा · "अच्छा मार्ग किसका है ? यती, सवेगी, बाईस टोला, तेरापंथी—इनमे से अच्छा मार्ग किसका है ?" पटवाजी ने उत्तर दिया : "जिसमे गुण अधिक हों, वही मार्ग अच्छा है।"

शोभजी श्रावक

शोभजी कोठारी (चोरडिया) केलवा के श्रावक थे। वे अच्छे कवि भी थे। उन्होने आचार्य भिक्षु के प्रत्येक दस पद्यो के पीछे एक पद्य बनाने की प्रतिज्ञा ली थी। इस तरह उन्होने ३८०० पद्य वनाये।

एक वार घटनावश उन्हे जेल जाना पड़ा। आचार्य भिक्षु नाथद्वारा पहुचे और शोभजी को दर्शन देने के लिए जेल मे गए। शोभजी अपनी कोठरी मे ध्यानमग्न हो गा रहे थे "स्वामीजी दा दर्शन किस विध होय, पूज्यजी रा दर्शन किस विध होय।" भिक्षु बोले "शोभजी ! मै दर्शन देने आया हू।"

शोभजी हर्ष से विभोर हो गये। दर्शन करने के लिए उठकर आगे वढने की ज्यो ही चेष्टा की उनकी हथकडिया और वेडिया टूट गई। शोभजी दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इस घटना मे चमत्कारिता का केन्द्र-विन्दु हथकडियो-वेडियो का टूटना नही, वल्कि वह भाव-प्रवण आस्था है, जो शोभजी के व्यक्तित्व का आधार-विन्दु थी।

सवाईरामजी ओसवाल

वूदी मे आचार्य भिक्षु वखाण देता सवाईरामजी ओसवाल कह्यो थोडो ओर वाचो। जद भिक्षु गणी फरमायो घोडा ने गास घणो न्हाखे तो उधालो करे है। जद वेराजी हुय जावा लागो—म्हाने तिर्यच कीया। जद भिक्षु 'ए तो दृष्टात है तू' घोडे ह्वतो मारो ग्यान घास हुय गयो। इम कही समझाया ए विस्तार वहु।[1]

सवाईरामजी ओसवाल .

सवाईरामजी बूदी के श्रावक थे। वे ओसवाल थे। एक वार उनसे किसी ने कहा . "मैंने तेरापथियो को इस तरह जवाव दिया, इस तरह हराया।" सवाईरामजी वोले : "दो मनुष्यो मे झगडा हो गया। एक अपना घर कृष्णार्पण कर चुका था, अत उसे डर नही था। दूसरा झगड़ा करते डरता था। उसके मन मे घर की रक्षा का प्रश्न था। अत. वोलते भय खाता था। आप अपना घर (सयम-साधुत्व) कृष्णार्पण कर चुके है। आपको उसकी रक्षा करते हुए नही चलना है। अत जो मन मे आता है वह वोलते है"।[2] (तेरापथी साधुओ के मन मे साधुत्व की रक्षा का प्रश्न है, अत. वे सयमपूर्वक वात कर सकते हैं।)

एक दिन चर्चा करते समय एक साधु ने सवाईरामजी से कहा : "आप हमे दोपी [3]दोष-सेवी कहते है, पर किवाडिया का दोष[4] तो आपके गुरु के भी लगता है।" सवाईरामजी वोले :

---

१. प्रकीर्ण-पत्र (घटनात्मक), क्रम० १०

२. जय (भि० दृ०), दृ० १

३. जानकार अनाचार का सेवन करने वाला।

४. किवाडिया अर्थात् खिडकी, आलमारी आदि के छोटे कपाट, उन्हे खोलने-ढकने का दोष।

"एक राजा का प्रधान राजा का माल नही खाता था—ईमानदार था, परन्तु दूसरे प्रधान द्वेषी थे। उन्होने राजा से चुगली की—"वह प्रधान आपका माल उड़ाता है।" राजा ने दोनो को एक साथ बुलाकर बात सामने रखी। चुगलखोर बोला : "इसने अपने लडके को दरबार के पन्ने, स्याही और कलम दी।" प्रधान बोला . "कागज, स्याही, कलम तो पढने को दी थी। पढ चुकने के बाद लडका राजा के ही काम आएगा।" यह सुनकर राजा खुशी हुआ। चुगलखोर ने फटकार खाई। चुगलखोर ने झूठी चुगली की, झूठा दोप निकाला है, उसी प्रकार आप लोग किवाडिये का दोष बतलाते है, सो झूठे है।'[1]

आप स्पष्टवादी थे। हेतुबुद्धि अच्छी थी। आचार्य भिक्षु मे अटल आस्था तथा अविचल भक्ति रखते थे, तथा अतीव विवेकशील एव वाग्विदग्ध थे।

सामेंजी भंडारी

सिरियारी के वडे श्रद्धालु श्रावक थे। एक बार आचार्य भिक्षु सिरियारी से विहार करने लगे तो आपने उनके पैरो मे पगड़ी रख कर उस दिन विहार न करने की विनती की।

हरजीमलजी

रीया के हरजीमलजी सेठ आचार्य भिक्षु के अनुरागी हुए तव एक साधु एक लवा चिट्ठा हाथ मे लेकर सुनाने लगे। भीखणजी ने वहा अमुक गाव मे कच्चा जल लिया, अमुक गाव मे किवाड बद कर सोये, अमुक गाव मे नित्य पिण्ड लिया इत्यादि अनेक दोष पढने लगे। तव हरजीमलजी बोले "जोधपुर जाकर राजाजी से पुकार करे। यह तो व्यावट है। यह झगडा हमसे नही निपटेगा। आप इतने दोप वतलाते है और वे कहेगे कि एक भी दोष का सेवन नही किया। इसका समाधान कैसे निकाले?" तव वे मुनि वोले "भीखणजी भी तो हमे कहते है कि ये दोष तुम्हे लगते है।" हरजीमलजी बोले · "वे तो सूत्र की साक्षी से समुच्चय रूप से दोप वताते है—कहते है कि साधुओ को ये काम नही कल्पते—ऐसा नही करना चाहिए।"[2]

हरजीमलजी की आचार्य भिक्षु मे जितनी सुदृढ अस्था थी, उतना ही उन्हे तत्त्वज्ञान भी अच्छा था।

परिशिष्ट

१. सं० १८३२ मिगसर वदि ७ का लिखित

मुनि भारमलजी को युवाचार्य पद प्रदान किया, तत्सम्वन्धित लिखित (देखिए— पृ० ६२)

ऋप भीखन सर्व साधा ने पूछने सर्व साध साधवीया री मरजादा वाधी ते साधा ने पूछने, साधा कना थी कह्वाय नै, लिखिए छै।

सर्व साध साध्वी भारमलजी री आज्ञा माहै चालणो।

विहार चोमासो करणो ते भारमलजी री आज्ञा सू करणो।

दीख्या देणी ते भारमलजी रे नाम दीख्या देणी।

चेला री, कपडा री, साताकारीया खेतर री आदि देई ने ममता कर २ ने अनता जीव चारित गमाय नै नरक निगोद माहै गया छै तिण सू सिपादिक री ममता मिटावण रो नै चारित चोखो पालणरो उपाय कीधो छै।

विनै मूल धर्म ने न्याय मारग चालण रो उपाय कीधो छै।

भेपधारी विकला ने मूड भेला करै ते सिपा रा भूखा एक २ रा अवर्णवाद वोले। फारा-तोरो करै, कजीया राड करै। एह्वा चरित देख ने साधा रे मरजादा वाधी।

सिष सिष्या रो सतोष कराय ने सुखे सजय वालण रो उपाय कीधो। साधा पिण इमहिज कह्यौ।

भारमलजी री आज्ञा माहे चालणो। सिप करणा ते सर्व भारमलजी रे करणा।

भारमलजी घणा रजावध होय ने ओर साध ने चेलो सूपे तो करणो। वीजू करण रो अटकाव कीधो छै।

भारमलजी पिण आपरे चेलो करै ते पिण तिलोकचन्दजी चंदरभाणजी आदि वुधवान साध कहै ओ साधपणा लायक छै वीजा साधा ने परतीत आवै तेह्वो करणो। परतीत नही आवै तो नही करणो। कीधा पछै कोई अजोग हुवै तो पिण तिलोकचन्दजी चदरभाणजी आदि वुधवान साधा रा कह्या सू छोड देणा पिण माहै राखणो नही।

नवपदार्थ ओलखाय ने दिख्या देणी।

आचार पाला छा तिण रीते चोखो पालणो।

एहवी रीत परम्परा वाधी छै।

भारमलजी री इच्छा आवै जद गुरभाइ चेलादिक नें टोलारो भार सूपै त पिण कबूल छै। ते पिण रीत परपरा छै।

सर्व साध साधवीयां एकण री आज्ञा माहे चालणो एह्वी रीत वांधी छै।

कोइ टोला मा सू फारा तोरो करनें, एक दोय आदि नीकलै घणी धुरताइ करै, वुगल ध्यानी हुवै, त्यांने साध सरधणा नही। च्यार तीर्थ माहिं गिणवा नही। यांने चतुरविध सघ रा निंदक जाणवा। एहवा नै वादै पूजै तके पिण आज्ञा वारै छै।

चरचा वोल किण नें छोडणो मेलणो तिलोकचंदजी चदरभाणजी आदि बुधवान नै पूछने करणो। सरधा रो वोल पिण इत्यादिक तिमहीज जाणवो।

वले कोइ याद आवे ते पिण लिखणो। ते पिण सर्व कवूल कर लेणो।

ए सर्व साधा रा परणाम जोय नें, रजावंध करने, यां कनासू पिण जुदो २ कहवाड नै मरजादा वाधी छै।

जिण रा परिणाम माहिला चोखा हुवै ते मतो घालणो। कोइ सरमा सरमी रो काम छै नही।

मूढै ओर नें मन मे ओर इम तो साधु ने करवो छै नही।

इण लिखत में खूचणो काढणो नही। पछै कोइ ओर रो ओर वोलणो नही। अनंता सिधा री साख सू पचखाण छै।

स० १८३२ मिगसर विद ७ लिखतू ऋप भीखन रो छै। साख १ थिरपाल री छै।

लिखतु वीरभाणजी उपर लिखीयो सही। लिखंतू हरनाथ ऊपर लिखियो ते सही।

लिखतु ऋप सुखराम ऊपर लिखियो ते सही।

लिखतु ऋप तिलोकचद ऊपर लिखियो ते सही।

लिखतु ऋप चंदरभाण ऊपर लिखियो ते सही।

लिपतु ऋप अखैराम ऊपर लिखियो सही।

लिखतु ऋप अणदा उपर लिखियो सही।

२. सं० १८२९ माघ सुदी १२, वृहस्पतिवार का लिखित

मुनि अखैरामजी (१०) के गण मे पुनर्दीक्षित किया, उस समय का लिखित। (देखिए पृ० १३५)

साधु अखैरामजी स० १८२४ मे दीक्षित हुए, वाद मे गण से अलग हो गए। उनकी इच्छा पुन. गण में आने की हुई, पर उनके प्रति दिलजमयी नही होती थी। वे वार-वार अनुरोध करते थे। भिक्षु ने उनसे वातचीत की और कई कठोर शर्तें उनके सामने रखी। उन्होंने शर्तें मंजूर की। चारित्र ग्रहण करने के साथ-साथ सारी वातों का प्रत्याख्यान करना सहर्ष स्वीकार किया, तव अन्य साधुओं की सहमति से उन्हे दीक्षा दी। वह लिखित-पत्र अविकल रूप से नीचे दिया जा रहा है :

अपैरामजी रा टोला माहे आवण रा परिणाम साधपणों पालण रा परिणांम दीठा पिण अपरतीत घणी ऊपनी तिणसू एतली परतीत पूरी उपजावै अनता सिद्धां री सापै तो माहे लेणरा परणांम छै।

सर्व साधा री आगन्या माहे चालणों। सभाव आपरो फैरणों। वडारे छांदै चालणो। आचार चोपों पालणों। साधां रो आचार दीठोइज छै। ए टोला सू न्यारो थाय तो चार आहारना पचपाण करै तो माहे ल्यां।

पूचणी काढनें अलगा वैणरा पचपाण करै तो ल्यां। साधारी इछा आवै तो सलैपणा सथारो करावै जद करणौ । ना कहैणरा पचपाण करै तो ल्या।

सभाव मैं धेठापणौ देखै अथवा अवनीतपणौ देषे अथवा साधा रे चित्त न वेसे इत्यादिक अनेक वोल सू छोडै तो च्यार आहार मुख माहे घालणरां पचखाण करे तो ल्या।

टोला माहै पाना लिपे ते साधारा। साध-साधवी श्रावक-श्रावका त्यांनै पूचणौ दोप हूतो अथवा अणहूतों पेला नै भास जाय तों पैलारा कह्या थी प्राछित लैणो। ना कहिणरा पचखाण करे तो ल्या।

जिण साध साथे मेलिया तिणरा हुकम माहै चालणो। आगन्या लोपणी नही। जिकोइ साध सार्थे भेजा घणो रजावध उपजै ज्यू चालणो। असमात्र उलभो आवै ज्यू न करणो। आ परतीत पूरी उपजावणी। आज पाचमा आरा माहे भारीकर्मा जीव घणा छै। त्या सू पोतै आचार न पलै। सभाव न फिरे। त्या पछै कर्म उदे आया एहवी भाषा वोलै—एकला वैणरा परिणाम हुवै तरै वोले—टोला माहि माधपणौ दीसै नही हू किम माहे रहू। इम कही अनेक उपद्रव करे, अनेक अवर्णवाद वोलै छै। तिम करण रा पचपाण करै तो ल्या।

मांहोमाहि सरधा मैं किणही वोलरो फेर परै तो ओर वुधवत साधारी परतीत सू मान लेणौ। ना कहिणरा पचखाण करै तो ल्या। ए आचार पाला छा तिणसू विरुद्ध चालणो नही। जे कोइ चूक मैं परै तो औरा साधा नै कहिणौ पिण तांण करनै तोरणरा त्याग करे तो ल्यां।

ओर साधारी इच्छा थावै ज्यू करणौ। पाछौ उरो उतर कहिवारा त्याग करै तो ल्या। अथवा एतावता टोला सू न्यारों होणो नही। एकलो अथवा दोया तीना आदि देइनै पिण अलगौ वैणो नही। एहवा पचखांण करै तो ल्या।

सर्व सरीर साधा रे कारण सूपणो। पैले ने अणहुता आपरा मन सू ढीला जाणै तो च्यार तीन आहार त्याग करणो पिण किणसू मिलनै टोला माहि भेद पाडनै अलगो न हुणो। ए पचखाण करै तो ल्या।

सझाय तवन सूत्र वपांण रा कहै तो छती सकत ना कहिण रा पचखाण करैं तोल्या।

असमात्र धेठापणौ तुरग पिण रग पिण विरग न करणौ। इत्यादिक अनेक वोल वले याद आवे ते वले लिप लेणो। तेहना ना कहिणरा पचखाण करे तो ल्या।

एहवी परतीत उपजावै तो सगला ने परतीत उपजै।

सवत् १८२९ रा माघ सुदी १२ वार वृस्पत लिपतु रिप भिपन गाम वुसी मध्ये। ए लिपत श्री थिरपालजी फतैचदजी हरनाथजी भारमलजी तिलोकचदजी ने पिण सुणायो छै।

ए पाछै कह्या लिप्या ते सगलाइ वोल अपैराम सुणनै अगीकार कीधा, चारत सघाते पचखाण करनै साधा नै परतीत उपजाइ लिपनू अपैराम।

३. सं० १८४१ चैत्र वदि १३ बृहस्पतिवार का लिखित

मुनि अखैरामजी (१०) और सिघवीजी (मघजी, २५)ने स्पर्धा से विगय खाने का त्याग किया, तत्सम्वन्धित लिखित। देखिए पृ० १३५-३६)

रिप अषैरामजी नै रिप सिघजी रे अभिग्रह कीधो। पाचू विगै नूपटी ते खध विगै

चौपडी रोटी धुरा धरं खावा रो त्याग कीधो। चौपडी रोटी री पोली पप करनै ऊतारी पछै अटकाव कोइ नही। छती लूखी थका तो पैलांरी पांती लैणी न लूखो आहार आपरी पाती वाट नैं लेणां। खीर गुलराव इत्यादिक सर्व खध विगैरा त्याग। जो पैहिला अखैरामजी कहै मां सूं विगै विना आछी तरैं रहिणी आवे नही जव यारैं तो खाण (ो) नै सिंघजी रैं पिण खाणो। जो कदा पहिला सिघजी कहै मा सू तो विगै विना आछी तरै रहिणी आवै नही जव यारे तो खाणी नै अखयरामजी रै पिण खाणो या दोयां माहिलो एक जणो कह्या दोया रे आगार छै। जिण रै वैराग थोडा होसी ते पहिला कहि देसी। या दोनू जणा वार २ घणो २ कह्यो छै म्हा दोया री परिपा करो म्हे गाढा राजी छा। जो अवै अहकार रो घाल्यो पहिला कहिणी तो आवै नही मौनै विगै घालो तिण सू खिटोर वुराइ करै और साधा नै खाता देख नै मन मैं आयवो करै, खाअै त्या रा खूचणा काढै गोचरी करता कोरा फारे तिण नै इन्याइ पिण सरधणो परिणाम भागा पिण जाणीजै। कोइ कूडे नै टोला न्यारी पिण तो उणरा इज परिणाम भागा जाणीजै। या दोयां माहिलो ज कोड सुधै तरै न चाल्यो तो सका परती दीसै छै। इतला माहे एक परै तो दूजा रै आगार छै। एकण रैं कर्म धकी दीधा टोला स्यूं न्यारी परै तो दूजा रैं आगार छै। अखेरामजी रै दोय अठाइ करनी छै तिण रैं पारणो धारणो आगार छै सवत् १८४१ चैत विद १३ वार ब्रसपत लिखतू रिप भीपन रा छै।

१. लिखतु अखेराम उपर लिप्यो सही ए पचपाण हरप सु किधा छै।

२ लिखतु अे सघजी सही ए पचपाण हरप सु कीधा छैं जिणरा परिणाम विगै पावारा हुवै जद उ रा कांना माहि काढ उण पनै आखर लिप दे नै पछै विगै खाणो पैहिला परिणाम खावारा हुव आपरो नाव लिख उण नैं सूप नैं आगे पछै खाणो अठा पहिला माहो माहि भेला रह्या रो दोप काढणो नही। प्राछित हुसी तो प्राछित माहै छै नही तो निरजरा है तैं छै।

४. सं० १८५० मिगसर वदि ८ का लिखित

(सं० १८५० मे मुनि अखैरामजी (१०) को गण मे लिया, उस समय का लिखित। देखिए, पृ० १३६-१३८)

अपैरामजी नै रूपचंदजी रिप भीपन सू मिथ्यात पडिवजीयो अनेक प्रकारे अणहुंता दोप वताय नैं न्यारा हुआ तिण मैं अपैरामजी पाछा सुलटे नै आलोवण कीधी। म्है थानै घणा पोटा कह्या ते एकत धेपरै वस कह्या। म्हे थामैं अनेक प्रकारै अणहुता धैपरे वस दोष रूपचंद आगै कह्या रूपचद (नैं) म्हे धेप चढाय २ ने वोलाया, म्है आगुण वोलण (ने) पाछ काइ रापी नही। म्हारै किणही तरैं रा पाप उदे हुआ तिणसूं हू घणो अजोग वोल्यो। इण रूपचन्द रैं प्रसंगै करी हू महा अन्याइ, हूं महा अकार्य रो करण हारी, हू महा पापी, हू म्हारी काइ काइ (आंगुण) कहू। म्हारी आत्मा नै घणी पराव कीधी। म्हारो इहलोक परलोक दोनूइ लोक विगारयो। हिवै कितरोयक कहि कहिनै कहू। आप मौनै ल्यौतौ आप कहो सो करू। आप कहो तो सलेपणा संथारो करूं, आपरी इछा आवै तो एक माध कनैं रापो तो सलेपणा करू। आपनैं भासै साधां नै भासै जितरो प्राछित देनैं माहि रापी। म्हारा कीधा साम्हो जोयजो मती। म्हारी आलोयण प्रमाणै मोनै माध प्राछित देवे जितरी कवुल छै। पछैइ कोइ थारे च्यार तीरथ (ने) म्हारी सका परै

मतइ आप कोइ पूचणौ काढै तो मोनै सलेपणा कराय जौ। कै मौनै पछैइ सीप दीजौ। साधारी इछा आवे ज्यु कीजै जो आप मोनै माहे नही ल्यौ तोही म्हारै इण रूपचद माहे जावारा तौ जाव-जीव लगै पचपाण छै। तिण उपर रिप भीपनै साधा कह्यौ अवै थे चिता करौ, अवेड चौपा पालौ, साधां रे सभाव प्रमाणै, चोपी मभाव रापनै मिलता चालजौ। थे कह्या त्या वौला मै साध कहै ज्यु करजौ पिण ग्रहस्था माहे वात गाम गाम (मे) घणी त्रिपरी छै थानै गृहस्था आगै ग्राम ग्राम आपरी आगुण काढ छै म्हे घणौ अकार्य कीधो इत्यादिक आगुण काढणा और साध माध्वी थां वैठा ग्रहस्थ आगै आगुण वोलै अथवा पर पुठै च्यारै तीर्थ मै लोका मै हैले निदे पूछे विना रेणो नही कुछ ..साध वोलाव ज्यू वोलणौ इत्यादि आगेवाण आरे किधी आलोयण पिण नरल परणामा किधी साधा माहे पिण चोपौ साधपणौ जाण नै इत्यादिक अनेक वोलारा सूम परतीत करनै अनता सिधरी आण करनै परतीत उपजाय नै माहि आया आगै परतीत उपजाय नै लिप्या ते पिण सर्व कवुल छै हिवै वदलण (रा) जावजीव रा पचपाण छै। ओर माध अपैरामजी सु कुलप भाव रापसी तो यानै मुमकल छै। पिण अपैरामजी सेठो रहणौ, रूपचद आगुण वोल्या छै साध साधवाया रे ते रिप भीपन कहिवारै तौ कहिणा पिण और साध माधवीया आगै जठै तठै कहिवारा त्याग छै कोई पूछै तौ यू कहिणौ मारी मै सामा आलोवण कीधी मनै मत पूछो वले कोड याद आवै ते लिपणी ना कहिवारा त्याग सवत् १८५० रा मिगमर विद ८ लिपतु रिष भीपनरो छै

लिपतु रिप अपेराम उपर लिप्यो सही अे त्याग हरप सहित किधा छै साधा नै सुध माध सरधे ने आया छै

५. आचार्य ऋषिराय

प्रशस्तियां

(देखिए पृ० ४७७)

आचार्य ऋषिराय वड़े प्रतापी पुरुप थे। वे वडे यशस्वी थे। सव उनका यशोगान करते। उनकी मुख-मुद्रा वडी शान्त थी। प्रकृति से वड़े गम्भीर थे। वे वडे हसमुख थे। उनका व्यक्तित्व अनेक गुणो से युक्त था। हृदय के वडे निर्मल थे। वडे पुण्यशाली थे, वडे दीप्तिमान् थे।[1] उनके

१. (क) जय (ऋ० रा० सु०), १।दो० ४
तिजे पट अधिका तप्या, रायचन्द ऋषिराय।

(ख) वही, १। दो० ८,९
जसधारी ऋपराजजी, सुजश करे ससार।
हस्तमुखी सुरत सुहद, पेषत नावे पार॥
गुण सागर गिरवा घणा, निर्मल नयनानन्द।

(ग) वही, १।६,७
पुन्य प्रवल गुण पोरसी, रायचन्द ऋपरायो।
दिशावान मुत दिपतो, परम पुरुप प्रधान॥

(घ) वही, १।७
निर्मल वुद्धि निधान।

सम्बन्ध मे उक्ति है—'उत्तम पुरुष उदार'[1]।

वे बालब्रह्मचारी थे। आचार्य भिक्षु उन्हे 'ब्रह्मचारी' नाम से ही सम्बोधित किया करते। वे बहुत अच्छे व्याख्याता रहे। व्याख्यान-कला मे बड़े कुशल थे। वाणी बड़ी मधुर थी। घोष बुलन्द था। उनसे सम्बन्धित कुछ प्रशस्तिया इस प्रकार है :

१ .

पुन्य प्रबल ऋपिराय ना आ०, गण नायक गुणवान के आ०।
हसतमुखी हिये निरमला आ०, पुज्य परम गुणखाण के आ०॥
सुखकारी सहू गण भणी आ०, अमृत वाणी अमोल के आ०।
गण प्रतिपालक स्वाम रो आ०, दिन-दिन अधिको तोल के आ०॥
पुज्य याद आया थका आ०, पामे मन विसराम के आ०।
नैत्र देख्या श्रीनाथ ने, उपजै अधिक आराम के आ०॥

: २ .

ऋपराय बडा ब्रह्मचारी रे, ज्यारी मूरत री बलिहारी रे।
पूज्य शासण रा शिणगारी॥
गण वच्छल महा गुणवन्ता रे, तीजे पाट जबू ज्यू सोहन्ता रे।
बहु श्रुति घणा बुद्धिवन्ता॥[2]

३ .

भगवत महावीर रे पाट तीजे भला, जम्बू स्वामी गुणवंत जाचा।
ज्यु भिक्षु रे तीसरे पाट जबू जिसा, पुण्यवान गुणखान शोभता साचा॥
सुवड चातुरपणो अधिक स्वामी तणो, मल सूत्र सग्रहवानै बुद्ध भारी।
तीसरे पाट जम्बू जिम प्रतपो, एह आशीश जाणो हमारी॥
विनय विवेक विचार नीवारता, वले अवसर तणा जाण शुद्ध गण चलावै।
उद्यमवंत उपकार करवा भणी, सत्यवत स्वामी जिनमत जमावै॥
आचार्य आराधवा स्वाम शूरा घणा, आदेज वचन सुण इष्ट लागै।
गिलाण तपसी लघु दीर्घ साधा तणी, त्यारी सार सभाल मे सुवास सागै॥
(जिन शासन महिमा/३)

४ .

रायचन्दजी स्वामी ने जाणज्यो रे, ते वखाण वाणी देवै श्रीकार।
भवि जीवा ने समझावता रे, त्यानै बांद्या खेवो पार रे॥
ते दया पालै छ काय नी रे, बाल ब्रह्मचारी शुद्ध मान।
विनैवत घणा सत गुरु तणा रे, एहवा रायचन्दजी स्वामी बुद्धवान॥
दश विध यती धर्म सहित छै रे, शील पालै नववाड।
पाच महाव्रत रूपियो कोट सेंठो कीयो, पछै करै कर्मा सु राड रे॥
(सत गुणमाला)

---

१. जय (ऋ० रा० पु०), १।१३
२. जय (हे० चो०), ४।७-९
३. जय (हे० न०), ५।६५-६६

पुन्यवान नीति निपुण, सरल हृदय सुखकंद।
गण मे वहु वृद्ध करी, रायचन्द गण इन्द।।

(शासन सुषमा)

जयाचार्य माघ सुदी १५ के दिन पदासीन हुए। उसके बाद उनके द्वारा आचार्य ऋषिराय के विषय मे प्रथम रचित गीतिका अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती है, वह नीचे दी जा रही है·

*भीक्खू पाट भारीमाल ए, ऋषराय तीजे पट न्हाल ए।
महिमागर मोटो मुनिंद ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।ध्रुपदं।।
ग्यार वरस तणै उनमान, सुखे संजम धार्यो स्वाम।
निरमल नयणानन्द, रटलै तू पूज रायचन्द ए।।
प्रवल वुद्धि गुण पूर ए, स्वामी उपगारी महासूर ए।
फेरण मिथ्या फंद ए, रटलै तू पूज रायचन्द ए।।
स्वाम भीक्खू साठे सथार ए, भारीमाल पाट गण भार ए।
मुख आगे ऋषराय मुनिंद ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।
अठतरे अणसण आवियो ए, भारीमाल ने कलश चढावियो ए।
धूर सू सेव करी तज धंध ए, रटलै तू पूज रायचन्द ए।।
भारीमाल तणै भाल ए, ऋषराय पाट सुरसाल ए।
पाम्या परमानन्द ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।
संजम दियो वणा नै श्रीकार ए, वलि श्रावक ना व्रत वार ए।
गणधार गुणा रा समंद ए, रटलै तू पूज रायचन्द ए।।
नित्य याद करै नर नार ए, हस्तमुखी पूज हितकार ए।
गुणी नित्य प्रति जस गावंद ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।
सुपनो तुम सुरत संभार ए, आवै मुझ हरप अपार ए।
किण विध जाय कथिंद ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।
पूरण वाधी म्हे आपसू पीत ए, रूडी राखता मुझ मन रीत ए।
हिये हरप हुलसंद ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।
चट देई उतरतो चोमास ए, म्हारै हूतो दर्शण रो हुलास ए।
पूज पेख्या हुतो परमानन्द ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।
वारू एकावन वास ए, वर संजम सखर विमास ए।
जशकर रह्या वहुजन वृंद ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।
मुझ परम उपगारी सिर मोड ए, माहरे आप जिसो कुण ओर ए।
धुन आपरो ध्यान ध्यावंद ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।
धुर थी चरण दे अतसीम ए, निरमल पीत निभावी मुनीम ए।
कीरत जीत कथिंद ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।
उगणीमे आठे फागुण मास ए, सुदि वीज रच्या गुण राम ए।
सैहर लाडणू सोहंद ए, भजलै तू पूज रायचन्द ए।।

*लय—जाण छे राय तूं

६. चौबीस संथारे

(आचार्य भिक्षु के स्वर्गवास के बाद हुए २४ सथारा का विवरण)

साधु डूगरसीजी (४३) का सथारा स० १८६८ की ज्येष्ठ शुक्ला ७मी के दिन सम्पन्न हुआ था। भिक्षु के देहान्त के बाद जो सथारे हुए, उनमे अठारहवा सथारा साधु डूगरसीजी का था—

सामी भिक्खू काल गया पछै, दगअठ हुआ सथार।
अठारवो अणसण रिष डूगर तणों, शहर आमेट मझार ॥[1]

आपसे पूर्व १७ संथारे किन-किन के हुए, इसका उल्लेख प्राप्त नही है। यहा इस विषय की खोज उपस्थित की जाती है।

भिक्षु के आचार्यत्व मे कुल ४८ साधु दीक्षित हुए, उनके नाम इस प्रकार है—

१. थिरपालजी
२ फतैचन्दजी
*३. वीरभाणजी
४ टोकरजी
५ हरनाथजी
६ भारीमालजी
*७ लिखमीचदजी
८. सुखरामजी
९. अखैरामजी
*१०. अमरोजी
*११. तिलोकचदजी
*१२. मौजीरामजी
१३. शिवजी
*१४. चन्द्रभाणजी
*१५ अणदोजी
*१६. पनजी
*१७. सतोकचंदजी
*१८ शिवदासजी
१९. नगजी
२०. सामजी
२१. खेतसीजी
२२. रामजी
*२३ सभूजी
*२४ सधजी
२५. नानजी
२६. नेमजी
२७. वेणीरामजी
*२८ रूपचदजी
*२९. मुरतोजी
३०. वर्द्धमानजी
*३१. रूपचंदजी
*३२. मयारामजी
*३३. विगतोजी
३४. सुखजी
३५. हेमराजजी
३६. उदैरामजी
३७. खुशालजी
*३८. ओटोजी
*३९. नाथोजी
४०. रायचदजी
४१. ताराचदजी
४२. डूगरसीजी
४३. जीवोजी
४४. जोगीदासजी
४५. जोधोजी
४६. मगजी
४७. भागचन्दजी
४८. भोपजी

---

१. नाथू (डूगरसीजी) दो० १०

उपर्युक्त ४८ साधुओं मे से निम्न २० साधु (जिनके पीछे स्टार लगे है) गण बाहर हो गए—

३, ७, १०, ११, १२, १४, १५, १६, १७, १८, २३, २४, २८, २६, ३१, ३२, ३३, ३७, ३८ और ३९।

निम्न ७ साधुओ ने संथारा नही किया—२, ६, २५, २७, ४०, ४६ और ४७।

निम्न ६ साधुओ के सथारे स० १८६० भाद्र सुदी १३ के पूर्व ही सम्पन्न हो चुके थे—१, ४, ५, १३, ३० और ४४।

निम्न ४ साधुओ के सथारे स० १८६८ जेठ सुदी ७ के बाद और स० १८७८ माघ वदि ८ तक सम्पन्न हुए—६, २२, ४१ और ४५।

निम्न ३ साधुओ के सथारे सं० १८७८ माघ वदि ८ के बाद और स० १९०८ माघ वदि १४ तक सम्पन्न हुए—२१, ३५ और ४३।

क्रमाक १९ मुनि नगजी का सथारा किस वर्ष मे सपन्न हुआ उसका उल्लेख प्राप्त नही है। उनके सम्बन्ध मे ख्यात मे लिखा है—"घणा वर्ष सयम पाल वनीतपद पाय सथारो करने कारज सार्‌या।" बहुत वर्ष संयम पालन करने का कथन एकमात्र ख्यात मे ही है। उससे पूर्व की किसी भी प्राचीन कृति मे ऐसा उल्लेख नही मिलता। ऐसी स्थिति मे केवल ख्यात के आधार पर अनुमान लगाना कि उनका सथारा स० १८६० भादवा सुदी १४ और स० १८६८ जेठ सुदी ७ के मध्यवर्ती काल मे हुआ, युक्तियुक्त नही होगा।

क्रमाक २६ मुनि नेमजी के सम्बन्ध मे जय (भिक्षु) ४७।२ मे निम्न उल्लेख मिलता है—"पवर चर्ण भिक्खू पासे पायो रै, सयम बहु वर्षे शोभायो रे।" जय (शा० वि०) मे लिखा है—"बहु वर्षा लग पाल्यो गुणमणि हीर कै, नेम सथारो नैणवैजी।" दो प्राचीन कृतियो मे एक-सा ही उल्लेख होने से यह अनुमान प्रत्यक्षत निरा निराधार नही होगा कि उनका देहान्त स० १८६० भादवा सुदि १४ और १८६८ जेठ सुदि ७ के मध्य हुआ।

पर मुनि नगजी (१९) और नेमजी (२६) दोनो ही के विषय में एक ही बात चिंतनीय है। सं० १८७९ मे रचित जयाचार्य की पण्डित-मरण ढाल मे मुनि वर्द्धमानजी (३०) का देहान्त स० १८५५ मे उल्लिखित है।[1] यह अन्य सूत्रो से भी समर्थित है। इस कृति मे दिवगत सन्तो की सूची मे मुनि नगजी (१९) और मुनि नेमजी (२६) का देहान्त क्रम मे मुनि वर्द्धमानजी (३०) के पूर्व मे उल्लिखित है। अत. स० १८५५ के पूर्व हुआ, इतना निश्चित हो जाता है।

जब हम लिखितो पर दृष्टि डालते है तब देखते है कि स० १८४५ जेठ सुदि १ के लिखित मे मुनि नगजी के हस्ताक्षर नहीं है। उस समय वर्तमान सर्व साधुओ के हस्ताक्षर हो और केवल उनके न हो तो उससे यह बात कट जाती है कि वे अन्यत्र थे। नियमानुसार कोई साधु अकेला नही रह सकता। इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि नगजी स० १८४५ जेठ सुदी १ के पहले ही दिवगत हो गए थे।

मुनि हेमराजजी की दीक्षा स० १८५३ माघ सुदी १३ के दिन हुई थी। देखा जाता है कि मुनि नेमजी उस समय विद्यमान नही थे।

---

१. पण्डित मरण ढाल १।३

वर्द्धमानजी लूरा कारण थकी, मार्ग मे कीयो सथारो ए।
समत अठारे पचावने, ढूढार देश मझारो ए॥

इस तरह उक्त दोनों साधु—नगजी (१४) और नेमजी (२६) के संथारे सं० १८६० भाद्र सुदी १३ के पूर्व सम्पन्न सथारो की परिगणना मे आ जाते है ।

ऊपर के विवेचनानुसार कुल दीक्षित ४८ साधुओ मे से ४२ (२० + ७ + ६ + ४ + ३ + २) वाद देने पर मुनि डूगरसीजी (४२) को छोडकर केवल पांच साधु (८, २०, ३४, ३६ और ४८) के सम्बन्ध मे ही छानवीन करना अवशेष रह जाता है ।

क्रमाक २० मुनि सामजी के विषय मे दो उल्लेख प्राप्त है—

(१) वे उपवास मे दिवगत हुए । उन्होने सथारा नही किया ।

(२) उनका देहावसान सथारापूर्वक हुआ था ।

जयाचार्य ने एकाधिक जगह लिखा है कि मुनि हेमराजजी के सान्निध्य मे छह संथारे सम्पन्न हुए । इन सथारो मे उन्होने सामजी का नामोल्लेख किया है ।[1] अन्यत्र के उल्लेख से सामजी का देहान्त पाली मे स० १८६६ मे हुआ था ।[2] ऐसी स्थिति मे आपका संथारा भिक्षु के देहान्त के वाद स० १८६८ जेष्ठ सुदी ७ के पूर्व सम्पन्न सथारो की श्रेणी मे आता है ।

क्रमाक ८, ३४, ३६ और ४८ के साधुओं का स्वर्गवास सथारापूर्वक हुआ था, यह उनके जीवन-वृत्तान्तो से समर्थित है । उनके दिवगत होने के सवत् भी प्राप्त है, जिनसे सवके सथारे स० १८६० भाद्र सुदी १३ एव स० १८६८ जेष्ठ शुक्ला ७ की मध्यावधि मे घटित सिद्ध होते है ।

उपर्युक्त विश्लेपण से सिद्ध होता है कि भिक्षु के युग के पाच साधुओ (८, २०, ३४, ३६ और ४८) के ही सथारे भिक्षु और डूंगरसीजी के स्वर्गवास की मध्यावधि मे सम्पन्न हुए थे । अव हमे १२ सथारो का और पता लगाना है, जो उक्त अवधि मे पूर्ण हुए ।

आचार्य भारमलजी का स्वर्गवास सं० १८७८ माघ वदि ८ को हुआ था । उस समय तक उनके आचार्यत्व-काल मे दीक्षित केवल एक ही साधु जीवनजी (भा० २) का स्वर्गवास सथारापूर्वक स० १८६८ की जेष्ठ सुदि ७ के पूर्व स० १८६२ मे हुआ था । अत. उनका नाम आचार्य भिक्षु के युग के उपर्युक्त पाच साधुओ के साथ जोडने पर कुल छह साधु होते है, जिनके सथारे भिक्षु के स्वर्गवास के वाद और मुनि डूगरसीजी के स्वर्गवास के पूर्व सम्पन्न हुए । सूची नीचे दी जा रही है—

---

१. सत गुण वर्णन १।१७, १९ .

खट अणसण त्या कने, त्याने वैराग चढायो भरपूर ।
जन्म-मरण त्यारा मेटवा, उपकार कियो वड़ सूर ।।
जोगीदास स्वामी जीवणजी, सुखजी स्वामी भोपजी जाण ।
सामजी ने स्वामी रामजी, ए छहूं तपसी वखाण ।।

२. (क) जय (शा० वि०)

भिक्षुगण मे युगल भाया री जोड नै, साम राम विहू मुनि भलाजी ।
वर्ष अडतीसै चरण लियो घर छोड़ कै, परभव छयासठै सत्तरै जी ।।

(ख) वही, वार्तिक :

सवत् १८६६ उपवास मे, स्वामजी परभव पहुता ।

(१) सुखरामजी (८)
(२) सामजी (२०)
(३) सुखजी (३४)
(४) उदयरामजी (३६)
(५) भोपजी (४८)
(६) जीवनजी (भा० २)

अव हम उक्त अवधि मे घटित साध्वियो के सथारो के विपय मे ऊहापोह करेंगे।
आचार्य भिक्षु के युग में कुल ५६ साध्विया दीक्षित हुई, जिनकी सूची इस प्रकार है—

१. कुशलाजी
२. मटुजी
३. अजवुजी
४. सुजाणाजी
५ देऊजी
६ नेतुजी
७. गुमानाजी
८. कसुमाजी
९. जीउजी
*१०. फत्तूजी
*११. अखूजी
*१२. अजवूजी
*१३. चन्दूजी
१४. चेनाजी
१५. मेणाजी
१६. धनुजी
१७. केलीजी
१८. रत्तुजी
*१९ नदूजी
२०. रगूजी
२१ सदाजी
२२. फूलाजी
२३ अमराजी
२४. रत्तुजी
२५ तेजजी
*२६. वन्नाजी
२७. वगतूजी
२८ हीराजी
२९ नगाजी
३०. अजवूजी
३१. पन्नाजी
३२. लालाजी
३३ गुमानाजी
३४. खेमाजी
३५. जसुजी
३६ चोखाजी
३७ रूपाजी
३८. सरूपाजी
३९. वरजूजी
४०. वीजांजी
४१ वनाजी
*४२ वीराजी
४३. उदाजी
४४. झूमाजी
४५ हस्तुजी
४६. कुशालाजी
४७ किस्तुजी
४८ जोताजी
४९ नोजाजी
५०. कुशलाजी
५१ नाथाजी
५२. वीझाजी
५३ गोमाजी
५४. जसोदांजी
५५. डाहीजी
५६. नोजाजी

उक्त साध्वियों मे से निम्न १७ साध्विया गणवाहर हो गई—३,६, १०, ११, १२,१
१४, १६, १७, १८, १६, २४, २६, ३२, ३५, ३६ और ४२।

निम्न ५ साध्वियो ने सथारा नही किया और उनका स्वर्गवास भी भिक्षु के जीवनका मे हो गया—१,२,४,५ और २०[1]।

निम्न ७ साध्वियो ने भिक्षु के जीवनकाल मे ही सथारा सम्पूर्ण किया—७, ८, ६, १५, २१, २२ और ३७।

निम्न ४ साध्वियो का संथारा पूर्वक स्वर्गवास सं० १८६८ ज्येष्ठ सुदि ७ के वाद और स० १८७८ माघ वदि ८ के वीच सम्पन्न हुआ—२८, ४७, ४६, ५०।

निम्न १० साध्वियो के सथारे स० १८७८ माघ वदि ८ और सं० १६०८ माघ वदि १४ के बीच घटित हुए—२७, ३०, ३६, ४०, ४४, ४५, ४८, ५१, ५२ और ५३।

कुल दीक्षित ५६ साध्वियो की सख्या मे से उक्त विवेचित ४३ (१७+५+७+४+१०) साध्वियो की सख्या वाद देने पर तेरह साध्विया वचती है, जिनका संथारा सं० १८६० भादव सुदि १३ के वाद एव स० १८६८ ज्येष्ठ सुदि ८ के पहले सिद्ध होने की सभावना की जा सकती है।

उक्त तेरह साध्वियो की तालिका नीचे दो वर्गो मे दी जाती है—

१. अमराजी (२३)
२ तेजूजी (२५)
३. नगाजी (२६)
४ पन्नाजी (३१)
५. गुमानाजी (३३)
६. खेमाजी (३४)
७. सरूपाजी (३८)
८. वनाजी (४१)
६. उदाजी (४३)
१०. कुशालांजी (४६)
११. जसोदाजी (५४)
१२. डाहीजी (५५)
१३. नोजांजी (५६)

जय (भि० ज० र०) एव जय (शा० वि०) के क्रमिक वर्णन मे पहला नाम वगतूजी (२७) का है, जहा कहा गया है कि इनका सथारा भिक्षु के वाद हुआ।[2] इस आधार पर अनुमान हो सकता है कि अमराजी (२३) और तेजूजी (२५) क्रम के सथारे भिक्षु के समय मे सिद्ध हुए। तेजूजी की दीक्षा स० १८३८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा और स० १८४४ के मध्यवर्ती काल मे हुई थी। थोड़े काल के वाद ही आपने संथारा कर दिया . "काल कित्तै पछै कियो सथारो सुविचार।" इससे भी आपका सथारा भिक्षु के समय मे सिद्ध माना जा सकता है, पर इन साध्वियो के विपय के उक्त अनुमान सही नही है, इसका कारण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

जयाचार्य के अनुसार भिक्षु के स्वर्गवास के समय २७ साध्वियां विद्यमान थी और

---

१. इस क्रमाक की साध्वी का नाम रंगूजी है। इन्होने सथारा नही किया, इस सम्बन्ध मे सव उल्लेख एकमत है। यति हुलासचंदजी के अनुसार उनका देहान्त आचार्य भारमलजी के युग मे हुआ था, पर लेखक का अभिमत है कि उनका देहान्त आ० भिक्षु के जीवनकाल मे ही हो गया था।

२. पण्डित-मरण ढा० २।

यति हुलासचदजी के अनुसार २८। यह सख्या तभी पूरी हो सकती है जब उक्त दोनो साध्वियो को गिना जाए। यतिजी ने अवशिष्ट साध्वियो के नामो का उल्लेख करते हुए इनके नाम भी लिखे है। अत दोनो साध्वियो का सथारा स० १८६० भादवा सुदि १३ और स० १८६८ के वीच की अवधि मे ही मानना ठीक होगा।

जसोदाजी (५४), डाहोजी (५५), नेजाजी (५६) इन तीनो की दीक्षाए स० १८५६ मे हुई थी। पण्डित-मरण ढाल के अनुसार इनका सथारा आचार्य भारमलजी के काल मे हुआ था। इनके विपय मे उल्लेख है कि तीनों की दीक्षाए आ० भिक्षु के समय में हुई और सथारा बहुत वर्षो के बाद "संजम भिक्षु छता सारो, बहु वर्प पाछै सथारो।" अत इनका सथारा सवत् १८६८ जेठ सुदि ७ के बाद ही ठहरता है। इनके सथारे का काल जेठ सुदि ८ स० १८६८ एव माघ वदि ८ स० १८७८ के वीच की अवधि मे हुआ मानना चाहिए।

इस तरह १३ की सख्या मे से द्वितीय वर्ग की जसोदा आदि ३ साध्वियो के नाम वाद देने पर पहले वर्ग की १० साध्विया वचती है, जिनके सथारे भादवा सुदि १४ स० १८६० से लेकर जेठ सुदि ७ स० १८६८ तक सम्पन्न ठहरते है।

स० १८७९ भादवा सुदि ७ के दिन पीपाड मे रचित पण्डित-मरण ढाल के अनुसार आचार्य भारीमालजी के आचार्यत्व काल मे दीक्षित ९ साध्वियो का देहावसान स० १८७८ की माघ वदि ८ तक हो चुका था। उनके नाम इस प्रकार है—

१ आशाजी (भा० ।१)	६ उमेदाजी (भा० ।२१)
२. कुशालाजी (भा० ।५)	७. खुसालाजी (भा० ।११)
३. कुनणाजी (भा० ।६)	८ फत्तूजी (भा० ।१५)
४. दोलाजी (भा० ।७)	९. गीगाजी (भा० ।१२)
५. वालाजी (भा० ।१९)	

नीचे इस वात पर प्रकाश डालेगे कि उक्त साध्वियो मे से किसका सथारा व देहावसान किस समय हुआ :—

१. आशाजी (भा० ।१) की दीक्षा स० १८६१[1] अथवा स० १८६२[2] मे पीपाड मे हुई थी और उनका सथारा लाहवा मे सवत् १८७४ मे।

२, ३, ४. कुशालाजी (भा०।५), कुनणाजी (भा०।६) और दोलाजी (भा०।७)—ये तीनो साध्विया साध्वी नगाजी के सथारे के समय उनके पास थी, जिनका सथारा स० १८६२ की वैशाख सुदी १३ के दिन सम्पन्न हुआ था। दीक्षा क्रम मे इनसे ज्येष्ठा साध्वियो की दीक्षा स० १८६२ की है। अत इन तीनो की दीक्षा भी उसी वर्प मे सम्पन्न माननी होगी। दीक्षा वैशाख सुदी १३ के कुछ समय पूर्व हुई थी।

---

१. आसु सती गुण वर्णन, गा० १

समत अठारै इकसठै, सजम लीधो हो ए तो शहर पीपाड।
हस्तुजी वडारै हाथे करी, वीस वर्प नी हो आसरै वय धार ॥

२. जय (शा० वि०), ढा० ४, गा० १.

शहर पीपाड तणी प्रीतम तज, वर्प वासठै वर दीक्षा जी।
सवत् अठारै चिमतरै अणसण, धुर शिष्यणी आसु शिख्या जी ॥

पण्डित-मरण ढाल के अनुसार कुशालांजी (भा०।५) का स्वर्गवास संथारा ·
था। आपके बारे मे ख्यात में लिखा है : "घणा वर्ष संयम पाल्यो।" शासन प्रभा ·
बहुत वर्षो तक सयम पालन करने की वात का उल्लेख है—

कुशलाजी झीलवाडा ना दीक्षा घणा वर्ष पालजी।
पछै सथारो पचखियो निज आतम उजवालीजी ।।

इस आधार से आपका संथारा सं० १८६८ जेठ सुदि ७ के वाद मे मानने ˋ
कठिनाई नही है, क्योकि वहुत वर्ष की वात तभी घट सकती है।

साधु-साध्वी पण्डित-मरण ढाल के अनुसार कुनणाजी (भा०।६) ने भी संथारा f
था "कुसालाजी कुनणाजी संथारा सूरी" (भा०।१४)। आपके विपय में शासन प्रभाकर
उल्लेख है·

पछै भारीमाल वरतार मे कुनणां सयम लीधोजी।
घणां वर्ष चारित्र पालनें सफल जमारो कीधोजी ।।

इस आधार से आपका सथारा भी सं० १८६८ जेठ सुदी ७ के वाद मानने में ˋ
कठिनाई नही रहती।

भिक्षु के युग मे साध्वी कुशलाजी (५०) का संथारा सं० १८७० की कार्तिक शुक्ला
दशमी के दिन सम्पन्न हुआ था। यह भिक्षु के वाद २४वां संथारा था। इस हिसाव से मुनि
डूगरसीजी और साध्वी कुशलाजी (५०) के देहान्त के मध्यवर्ती काल मे ५ संथारे सम्पन्न हुए
थे। कुशलाजी (भा०।५) और कुनणाजी (भा०।६) के सथारे उनमे परिगणित हुए है।

दोलाजी (भा०।७)—पण्डित-मरण ढाल मे आपने सथारा किया, ऐसा उल्लेख नहीं है :
"दोलाजी वालाजी सजम सूरी" (भा०।१४)। पर शासन विलास मे स्पष्टतः आप द्वारा संथारा
किए जाने का उल्लेख पाया जाता है। आपका सथारा सं० १८६७ की दीवाली के दिन पूर्ण
हुआ था (ढा० ४ गा० ५)·

परभव वर्ष सतसठै आसरै।
दोला अणसण दीवालीजी काई ।।

५. वालाजी (भा०।१६)—पण्डित-मरण ढाल के अनुसार आपने सथारा किया था,
ऐसा नही लगता : "दोलाजी वालाजी संजम पूरी (गा०।१४)।" शासन विलास में भी सथारे
का उल्लेख नही है : "वालाजी आऊवा ना वासी, पिउ तज संयम हितकारी जी कांई" (ढा० ४,
गा०।१५)। पण्डित-मरण ढाल मे आपका नाम सथारा प्राप्त दो साध्वियों के वीच में आता है।
इससे अनुमान किया जाता है कि आपने संथारा किया, पर यह वात मान्य नही ठहरती।

६. साध्वी उमेदांजी (भा०।२१)—आपकी दीक्षा कल्लूजी (भा०।१८) के पश्चात
अर्थात् स०१८६९ की फाल्गुन कृष्णा ११ के वाद हुई थी, पर आपकी दीक्षा साध्वी नगांजी के भी
वाद थी, जो स० १८६९ की आपाढ सुदी ५ के दिन दीक्षित हुई। दूसरे शव्दो मे आपकी दीक्षा
स० १८६९ आपाढ़ सुदी ५ एवं आपाढ़ सुदि १५ के वीच हुई अथवा सं० १८७० मे। आपने
अन्त मे सथारा किया था "उमेदांजी सथारो कीयो सतवंती" (प० म०।१४)। शासन विलास
मे भी ऐसा ही उल्लेख है· "शहर पाली नी सती ऊमेदां वीदासर अणसण भारीजी कांई" (ढा०
४-१६)।

७. खुसालांजी (भा०।११)—आपकी दीक्षा क्रमानुसार जसुजी (१०) के वाद है,

जिसकी दीक्षा सं० १८६८ मे हुई थी। अत आप उसी वर्ष जमुजी (१०) के कुछ समय वाद दीक्षित हुई प्रतीत होती है। आपने भी सथारा किया था "वोरावड नी सती कुसाला, अणसण कर पहुंती पारोजी काई" (शा० वि० ढा० ४-६)। पण्डित-मरण ढाल के अनुसार भी आपका मरण सथारापूर्वक हुआ था।

८. फत्तूजी (१५)—हम ऊपर वता आए है कि जसुजी (१०) की दीक्षा स० १८६८ मे हुई थी। जसुजी (१०) के वाद और फत्तूजी के पूर्व कुसालाजी (११), गीगाजी (१२), खुसालाजी (१३) और छोटी चतरूजी (१४) की—ये चार दीक्षाए सम्पन्न होती है। फत्तूजी के वाद रभाजी (१६), पन्नाजी (१७) और कल्लूजी (१८) की दीक्षाए होती है। कल्लूजी की दीक्षा की मिति १८६९ की फाल्गुन कृष्णा ११ है। इस तरह फत्तूजी की दीक्षा का काल स० १८६८ के उत्तरार्द्ध एव १८६९ के प्रारभिक अश की मध्यावधि मे पड़ता है। आपने अन्त मे चेलावास मे अनशनपूर्वक देह त्याग किया (शा० वि० ४-१२).

वोरावड़ नी सती फत्तूजी, उत्तम अणसण सुविचारीजी काई।
गीगाजी रो चेलावास सथारो (प० म०।१५)।

९ गीगाजी (१२)—आपकी दीक्षा स० १८६८ मे हुई थी। आप और अभियाजी (३३) की साठ-गाठ के कारण आप दोनो को गण से एक साथ अलग कर दिया गया था। आप प्रायश्चित्त ले वापस गण मे आयी थी। अभियाजी की दीक्षा स० १८७२ मे हुई थी। अत उक्त घटना उसके वाद की है। गीगाजी का देहान्त उक्त घटना के वाद सथारापूर्वक हुआ था

वाजोली री मुत तजी गीगा, चेलावास कर सथारो जी काई। (शा० वि० ४।११)

उपर्युक्त विवेचन के वाद हम इस निर्णय पर पहुचते है कि

१. आशाजी (१) और गीगाजी (९) का देहात मुनि डूगरसीजी के देहावसान के उपरात होने से उनके सथारे आ० भिक्षु और डूगरसीजी के देहावसान के मध्यवर्ती काल मे नही पडते।

१. वालांजी (५) और उमेदाजी (६) की दीक्षा ही मुनि डूगरसीजी के देहान्त के वाद सम्पन्न हुई थी। अत उनका सथारा आ० भिक्षु और डूगरसीजी के देहान्त के मध्यवर्ती काल मे नही पडता।

३. फत्तूजी (८) की दीक्षा या तो मुनि डूगरसीजी के देहान्त के वाद हुई अथवा उसके इतने कम दिन पूर्व कि उनका सथारा डूगरसीजी के पूर्व मानना सहजत स्वीकृत नही होता।

४ उक्त विवेचन के अनुसार कुसालाजी (२) और कुनणाजी (३) दोनो का देहावमान मुनि डूगरसीजी के संथारा के वाद घटित लगता है।

५. खुसालाजी (७) के दीक्षा-काल तथा डूगरसीजी के देहावसान-काल मे इतना कम अन्तर है कि स्पष्ट प्रमाण के अभाव मे उनका देहावसान डूगरसीजी के देहावसान के पूर्व मानने की कल्पना सहजतया नही की जा सकती।

उपर्युक्त ९ साध्वियो मे से विवेचित ८ नाम वाद देने पर केवल दोलाजी (४) शेप रहती है, जिनके विपय मे स्पष्ट उल्लेख के आधार से यह कहा जा सकता है कि आपका सथारा स० १८६० की भादवा सुदी १४ एव १८६८ की जेठ वदि ७ के वीच हुआ।

भिक्षु के आचार्यत्व-काल की १० एव आचार्य भारमलजी के आचार्यत्व-काल की एक साध्वी (दोलांजी), इस तरह कुल ११ साध्विया होती है, जिनका सथारा स० १८६०

भादवा सुदी १४ से ले कर स० १८६८ जेठ सुदी ७ तक होने की सभावना रहती है। सूची इस प्रकार है ·

१. अमराजी (२३)
२. तेजूजी (२५)
३. नगाजी (२६) स० १८६२
४. पन्नाजी (३१)
५. गुमानाजी (३३)
६. खेमांजी (३४)
७. स्वरूपांजी (३८)
८ वन्नाजी (४१) सं० १८६७
९. ऊदाजी (४३)
१०. खुशालाजी (४६) स० १८६७
११ दोलाजी (भा०।७) ,, दीवाली

मुनियो के उक्त ६ और साध्वियो के उक्त ११ सथारो को जोडने पर भिक्षु और डूगरसीजी के स्वर्गवास के मध्य-काल मे १७ सथारे सम्पन्न होते है। इनके बाद डूगरसीजी ने सथारापूर्वक पण्डित-मरण प्राप्त किया। अत उनका सथारा १८वा सिद्ध होता है।

हम ऊपर कह आये है कि आ० भिक्षु के युग की साध्वी कुशालाजी (५०) का सथारा स० १८७० कार्तिक शुक्ला १० को पूर्ण हुआ था। यह आ० भिक्षु के 'वाद २४ वां सथारा था। इससे फलित होता है कि डूगरसीजी के देहांत (स० १८६८ ज्येष्ठ शुक्ला ७ मी) और साध्वी कुशालांजी (५०) के देहांत (स० १८७० कार्तिक शुक्ला १०) के बीच ५ सथारे हुए थे।

स्वाम भीखणजी पाछै, कीया सथारा तैवीस।
चौवीसमों संथारो सती तणो, पचीसमौ राम जगीस ॥[1]

अब हम इन पांच संथारो के वारे मे कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करेगे।

आचार्य भिक्षु के युग की तीन साध्वियो का सथारा हमने मुनि डूगरसीजी के बाद माना है, जिनके विवरण इस प्रकार है—

१. जशोदाजी (५४)
२. डाहीजी (५५)
३. नोजाजी (५६)

पण्डित-मरण ढाल मे आप तीनो का नाम साध्वी कुशालांजी (५०) और साध्वी आशांजी (भा०।१) के वीच मे प्राप्त है। साध्वी कुशालांजी (५०) का स्वर्गवास स० १८७० कार्तिक शुक्ला १० के दिन और आशांजी (भा०।१) का स्वर्गवास स०१८७४ मे हुआ था। इससे सहजतया यही निष्कर्ष निकलता है कि उपर्युक्त तीनो साध्वियो के सथारे उपर्युक्त कालावधि मे हुए थे और मुनि डूगरसीजी (४२) और साध्वी कुशालाजी (५०) के स्वर्गवास के वीच हुए पांच सथारो मे इन तीन साध्वियों की गणना नही की जा सकती, पर यहां यह उल्लेख कर

---

१. कुशालांजी की गुण वर्णन ढा०, दो० २

देना आवश्यक है कि उक्त ढाल मे सर्वत्र क्रम का निर्वाह हुआ है, ऐसी वात नही देखी जाती। अनेक जगह पूर्व दिवगत साध्वी का नाम वाद मे और वाद मे दिवगत साध्वी का नाम पहले दिया भी हुआ है। उदाहरणार्थ दोलाजी (भा०।७) का स्वर्गवास स० १८६७ मे दीवाली के दिन हुआ था, पर उनका नाम आशाजी (भा०।१), जिनका देहात स० १८७४ मे हुआ था, के वहुत वाद आया है। साध्वी जसोदाजी आदि तीनो साध्वियो के विपय मे ऐसा ही हुआ है। उनका नाम साध्वी आशांजी (भा० १) के ही नही, साध्वी कुशालाजी (५०) के भी पूर्व आना चाहिए। इस तरह इन तीन साध्वियो के सथारे साधु डूगरसीजी (४२) और साध्वी कुशालांजी (५०) के स्वर्गवास की अवधि मे आ जाते है अर्थात् स० १८६८ जेठ सुदी ७ और स० १८७० कार्तिक सुदी १० के वीच हुए पाच सथारो मे से तीन सथारे यही है।

आचार्य भारमलजी के युग की स० १८७८ की माघ वदि ८ के पूर्व दिवगत जिन ६ साध्वियो के वारे मे ऊपर विवेचन किया है, उनमे से निम्नोक्त साध्वियो के सथारे ही डूगरसीजी और साध्वी कुशालाजी (५०) के देहात के मध्यवर्ती काल मे घटित माने जा सकते है—

१. कुशालाजी (भा०।५) ४. उमेदाजी (भा०।२१)
२. कुनणाजी (भा०।६) ५ खुशालाजी (भा०।११)
३. वालाजी (भा०।१६) ६. फत्तूजी (भा०।१५)

१. उक्त छह साध्वियो मे से वालाजी (भा० १६) ने सथारा नही किया, अधिक सभव यही लगता है। मान लिया जाये कि उन्होने सथारा किया था तो उनकी दीक्षा (स० १८६६ फाल्गुन वदि ११ के वाद) और कुशालाजी (५०) के देहात से स० १८७० कार्तिक सुदि १०) के वीच लगभग ६ महीनों का अतर रहता है। दीक्षा के इतने स्वल्प काल के वाद ही सथारा करने की वात साधारणत बुद्धिगम्य नही होती। उमेदाजी (२१)की दीक्षा स० १८६६ आपाढ अथवा स० १८७० का आरभ और कुशालाजी (५०) के सथारे (स० १८७० का कार्तिक सुदी १०) के वीच लगभग ५ महीने का अतर। इतने स्वल्प-काल के वाद ही सथारा करने की वात साधा-रणत मान्य नही हो सकती

खुशालाजी (भा०।११) और फत्तूजी (१५) के वारे मे भी यही वात लागू होती है।

अत मे कुशालाजी (भा०।५) और कुनणाजी (भा०।६) ये दो साध्विया ही वचती है, जिनके सथारे आलोच्य-काल के वीच हुए माने जा सकते है।

इस तरह निम्न पाच साध्वियो के सथारे ही मुनि डूगरसीजी और कुशालाजी के सथारे के वीच सम्पन्न हुए—

१. साध्वी जसोदाजी (५४)
२. " डाहीजी (५५)
३. " नोजाजी (५६)
४. " कुशालाजी (भा०।५)
५. " कुनणाजी (भा०।६)

मुनि डूगरसीजी तक सम्पन्न १८. सथारो के साथ उक्त पाच सथारो को जोड देने पर कुशालाजी (५०) के पूर्व सम्पन्न २३ सथारो का विवरण प्राप्त हो जाता है। इनके वाद साध्वी कुशालाजी (५०) का सथारा हुआ जो २४वा था।

७. साध्वी मैणाजी आदि को पत्र

आचार्य भिक्षु ने साध्वी मैणाजी मे शिथिलाचार महसूस किया। उन्हे सावधान करने और भविष्य के लिए सयम पर तीक्ष्ण दृष्टि हो यह बोध देने के लिए उन पर कठोर अनुशासन किया। अनेक हिदायते उन्हे और उनके साथ की साध्वियो को दी। सघ को शुद्ध रखने के लिए आ० भिक्षु कितने जागरूक रहते थे, उसका सूक्ष्म दर्शन उक्त पत्र से होगा। मूल पत्र राजस्थानी भापा मे है। उसे अनुच्छेदो मे विभक्त कर पूरा का पूरा नीचे दिया जा रहा है '

आर्या मैणाजी धनाजी फुलाजी गुमानाजी गोघूदा माहै रहै तो वैसाप सुद १५ पछै चोपडी रोटी नै जावक सूषरी वैहरणरा त्याग छै। फूलाजी गुमानाजी रे यारो आगार छै वैहरणौ पिण चौपडी रोटी न बैरणी।

मारगीया रे घरै आठ दिन टाल नै नवमे दिन जाणौ। एक रोटी तथा एक रोटी रौ वारदानौ वहरणौ पिण इधकौ न वैरणो। इम मारगीया रे घरे च्यार पांतरा टाल जाणौ। कदी पाणरी भीड पडै तो दूजै पातरै जाणो। पाणी धोवण ल्यावणौ पिण वीजो कांइ न ल्यावणौ।

फुलाजी गुमानाजी कहै जठे गोचरी जाणौ। अै जाअै जिण वातरौ लिगारमातर जणावणौ नही। यारी दाय आवै जठै जायै तो यू कहणो नही। अस मातर इण वातरौ केतव करणौ नही ओलभो देणौ नही। यारी दाय आवसी जठै गोचरी जासी। असमात्र कुलप भाव आंणणा नही।

अनुक्रमै गोचरी करणी रोटी रा देवालरौ घर छोडणौ नही।

आखीया अवल हुवा पछै साधू सू भेला हुवां पछै साध आज्ञा देवै जद चौपडी रोटी नै सूपडी रौ आगार छै। आगना दिया विना चोपडी रोटी नै सूषडी वैहरणरा त्याग छै।

कदा मैणाजी घोघूदै वैस रहे तो फूलाजी गुमानीजी रै सूपडी रौ आगार छै।

गोचरी फूलाजी गुमानाजी रै दाय आवै जरै उठसी। ग्रहस्थ नै जणावणो नही।

ग्रहस्थ साभलता यू कहिणौ नही म्हारै पारणो आंण दौ। ग्रहस्थ कहै आनै पारणो आण दो जद मैणांजी नै यू कहणौ थे किण लेखै कहो छौ। साहम म्हारी संका पडै। थे भेला होवौ तो म्हारा पारणा री थे कदेइ वात कीजौ मती। मा साधांरी साध जाणा। थे क्या नै विचै पडो छो।

गोघूदा सू विहार करनै नाथ दुवारै आवणौ नही काकडोली राजनगर केलवै लाहवै आवैट आवणो नही। साधा कनै आवै तो और क्षेत्रा मै वेहनै आवणौ।

कदा मैणाजी गोघूदै पर रहै तो आर्य्या नै किण ही गाम कपडा नै मेलणी नही। मही मोटौ आवै जिसौ गोघूदा माहै लेणौ नै भोगवणौ।

मेणाजी धनांजी रे रागा धेपो घणो देषो कलेस कदागरौ घणो देषो माहोमाहि कजिया करता देपो यारै साधपणौ नीपजतो न देपो थारै पिण कर्म बंधता देषो नीपजतो न देषो फूलाजी नै गुमाना या दोया सू आहार पाणी कीजौ मती। थे दोनू जणी उरी आवज्यो पिण यारा कजीया मै थारो साधणौ पोयजो मती। यामै भारी दोष थकौ आहार पाणी भेलो कीजौ मती। भेलो करयौ तौ थानै भारी प्राछित आवसी पछै थारा थे जाणौ।

दोप लगावै ते भाया वाया नै जणावजो जितरी वात हुवै दोपरी ते सगली भाया नै जणावो कीजौ ज्यू यानै पिण न्याइअ न्याइरी खबर परैज्यूं। हिवै अस मातर वात भाया वाया सू

छानी रापजौ मती। वात तौ विगर चूकी हिवै क्याने छानी रापौ।

"मैणाजी गोघूदे रह्या घणौ फितुरौ वैतो दीसै छै। या पैत्रा मै साध साधवीयां सगला री हलकी लागती दीसै छै तिणसु जिणमहि दोप थोरोह हुवै तो वाया भाया नै तुरत रौ तुरत जणायजौ। आगौ काढ्यौ तो थारै घणो घणो कजियौ वैतौ दीसै छै।

"फूलाजी गुमानाजी थे पाधरा न चालीया तो थारौ वसेप फितुरो वैतो दीसे छै। तिण सु थे घणा सावधान रहिजौ।

"जेठ सुद १५ पछै फूलाजी नै गुमानाजी रै सुपरी रौ आगार छै। मैणाजी रै तो साधा सू भेला हुवै जद साध आगन्या देवै जद आगार छै चोपरी रोटी नै सूखरी रो।"

"मैणाजी री पडिलेहण धनाजी गुमानाजी दोनू जणी वारिया सारीया करणी।

हर कोई काम वारिया सारीया करणो।

"और आरज्या मादी ताती हुवै तिण नै गोचरी उठावणी नही। पछै उण आगा मू कराय लैणो पिण मादी आगा मू कोइ काम करावणौ नही। उण रौ पिण काम माजी हुवै त्या कनै करावणो।"

"हिवे फूलाजी ने गोचरी जावक उठावणी नही। लिगार मातर काम भलावणौ नही। फूलाजी री तरफ सू गाढी सान्ता हुवै तो फूलाजी रै दाय आवे तो करसी। बीजी आर्य्या नै यू कहिणौ नही थे करो नही काम। फूलाजी री सेवा भगत करणी हुवै तो फूलाजी नै रापजौ। फूलारी सक्त हुसी तौ मन होसी तौ करसी। फूलाजी रा दिन परता छै तिण सू ए करार कीधौ छै। रापणा हुवै तो रापजौ नही तर परी ले जावा।"

"कोइ फूलाजी नै मैणाजी न यू कहै मै थानै वैठीनै खवारा इसी आमना पिण जणावै तिणनै तेलो प्राछित कै जीती वार तेला।

"मैणाजी रे सुपरी रा त्याग सर्वथा लाफी सीरादिक रा साधा सू भेला हुवै जठ तांई धनाजी रै छै ज्यू

जेठ विद ६, १८५५"

८. साध्वी नदूजी आदि को पत्र

साध्वी नदूजी आदि कुछ साध्वियो के विषय मे भिक्षु के पास शिकायते आई। भिक्षु ने एक मार्मिक पत्र पथ-प्रदर्शन करते हुए लिखा। पूरा पत्र नीचे दिया जा रहा है

आर्या नदूजी वनाजी रतूजी सू रिप भीषन रो कहिण वाचजौ उप्रच थारी कूक घणी सुणी छै। भाया वाया वदणा छोडी सुणी छै। थूनै वनाजी मिली सुणी छै। रत्तुनै न्यारी करी रापी छो। माहो मा कलेस घणौ सुण्यौ छै। आहार पाणी रो कजीयो घणो सुण्यों छै। आचार आश्री षामी घणी सुणी छै। दोष घणा लगाया सुणीया छै। आगना लोप नै सरधारा खेत्रा मै फिरीया छौ। षैरवो चौमासो आगना विना किधो छै। थानै आगना लौपणी नथी।

हिवै था कनै धनाजी नै मेल्या छै सो आचार गोचार पाल्या आछी लागसी। आपरै छादै चालो छौ आछी लागसी नही। आगै दोष लागारौ प्राछित दैणो छै हिवे च्याराइ आर्या मिलनै चालजौ। सरधा रा षेत्रा माहे रहिजौ मती म्हारै पिण वेगी आवण रा भाव छै। रत्नै थारौ

निकाली काढणरौ भाव छै। थे रतू रो लोका माहे घणी फितूर घनी कीधो छै। घणा खेतरां मायो वदणा छोडी मुणी छै। मेवार मै पिण भाया वायां थांरो वणी फितूर करै छै साधां नै उलभो देवै छै। यानै टोला माहे क्यू रापै छै यू कहै छै। वनाजी रतूजी सु वोलै छै ते नदुजी रा भेद मै कहै छै। पेरवा महि थारा फितूर रो समाचार म्हा ताइ आयो छै जावक साधपणै अन्याय करै कहै छै। रतू ने दुप दैवे इम कहै छै। पिछोवरी आहार पाणी रो कजीयौ मुणीयौ। भेपधारा मेवार माहि ते पिण थारी फितूर म्हा कनै लोका मै कीधो। टोला री घणी हलकी लगाइ। माध साधव्या रो मन थामु भागो छै। हिवे थे चिंता कीजो मती। अवेइ आलोय पडिकम नै मुध होनै चौपी पालजो।

लोका कह्यो एक आर्या ओर मेलण रौ कह्यौ पिण काइ आर्या आवती जांणी नही धनाजी नै था कनै मेल्या छै। थे ना कह्यौ तो थारा परिणाम आचार पालण रा दीसे नही।

वनाजी नै फारनै आपणी कीधी जाणसी तिण सु वनाजी भेला रापण री ना कहिजो मती नै सरधा रा पैत्र मै चौमासो कीजो मती। थे घणा पेतरां टोलारो फितूरो करायो तिण सु सरधा रा पेत्र वरज्या छै हिवै च्यारो ही आर्या माहो मा घणी हेत रापजो पाटापेटो करजो मती। लिपतु रिप भीपन स० १८५८ जेठ विद १२। चोपडी रोटी वेहरजो मती। चोपडी रोटी री सका परी।

जो धनाजी थानै नंदूजी न रापै तो थे एकलाइ आहार पाणी आणनै पायजो नै या कनै रहिजो यारो आचार देपजो। न्याय नै अन्याय देपो जिसा लोकां माहे परगट कीजो। म्हारी आगन्या छै। यानै छैहरी मेलजो मती यांरी पूरी पारपा करणी छै।

नदूजी रे विहार करवा सक्त न हुवै तो माडे चौमासो कीजो। वलै अनैरै पेत्र चौमासो करो तो मारग माहि सरधा रा पेतर टालनै विहार कीजो। मांह सू भेला हुयै पेली प्राछित लिया पेली वीगे खाइज्यो मती च्यारु जणी।

ग्रन्थ-संकेत सूची

संकेत	ग्रन्थ	लेखक
उत्तरा०	उत्तरज्झयणाणि	
उ० चौ०	मुनि उदयचंदजी रो चोढालिया	श्री जयाचार्य
चन्द्र (मुनि सुख)	मुनि सुखरामजी	श्रावक चन्द्र
पनजी (जीवनजी गु० ण०)	जीवनजी गुण वर्णन ढाल	श्रावक पनजी
पी० गु० ढाल	पीथलजी गुणवर्णन ढाल	श्री जयाचार्य
भि० ग्र० र०	भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर	श्री जयाचार्य
भो० गु० ढा०	भोपजी गुण वर्णन	श्री जयाचार्य
मघवा (ज० सु०)	जय सुयश	श्री मघवा गणी
वेणी (भि० च०)	भिक्खु चरित्र	मुनि वेणीरामजी
सती०	सतीदासजी चरित्र	श्री जयाचार्य
हृ० चो०	हृरख चोढालियो	श्री जयाचार्य
हुलास (शा० प्र०)	शासन प्रभाकर	यति हुलासचदजी
हेम (खे० प० ढा०)	खेतसीजी रो पचढालियो	मुनि हेमराजजी
हेम (भा० च०)	भारमल चरित्र	मुनि हेमराजजी
हेम (भि० च०)	भिक्खु चरित्र	मुनि हेमराजजी
हेम (भा० सु०)	भारमल सुजश	मुनि हेमराजजी
जय (आ० द०)	आर्या दर्शन	श्री जयाचार्य
जय (ऋ० र० सु०)	ऋपराय सुजश	श्री जयाचार्य
जय (क० च० गु०)	मुनि कर्मचन्दजी गुण वर्णन ढाल	श्री जयाचार्य
जय (ख० च)	खेतसी चरित्र	श्री जयाचार्य
जय (मो० चौ०)	मोतचदजी रो चोढालिया	श्री जयाचार्य
जय (भि० ज० र०)	भिक्खु जश रसायण	श्री जयाचार्य
जय (लघु भि० ज० र०)	लघु भिक्खु जश रसायण	श्री जयाचार्य
जय (भि० दृ०)	भिक्खु दृष्टान्त	श्री जयाचार्य
जय (भी० वि०)	भीम विलास	श्री जयाचार्य

जय (शा० वि०)	शासन विलास	श्री जयाचार्य
जय (स० न०)	सरूप नवरसो	श्री जयाचार्य
जय (स० वि०)	सरूप विलास	श्री जयाचार्य
जय (हे० गु०)	हेम गुण वर्णन ढाल	श्री जयाचार्य
जय (हे० न०)	हेम नवरसो	श्री जयाचार्य